व्यवहार-शुद्धि

•

श्रीकृष्णदास जाजू

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

दुर्भाग्य से हमारे निजी, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में बड़ी गंदगी आ गयी है, जिससे देश की उन्नति में बड़ी बाधा पड़ रही है। आज सबसे बड़ी आवश्यकता इस गंदगी को दूर करने की है। सचाई और ईमानदारी का मार्ग सरल नहीं होता, किन्तु इसमें भी कोई संदेह नहीं कि बिना उस पर चले देश की स्थिति में वास्तविक सुधार नहीं हो सकता।

जीवन के सभी व्यवहारों को शुद्ध बनाने पर जोर तो हमेशा से दिया जाता रहा है; लेकिन उसे आंदोलन का रूप मिला राऊ के सर्वोदय-सम्मेलन के बाद। तब से उस दिशा में प्रयत्न जारी है।

इस पुस्तक में व्यवहार-शुद्धि की पृष्ठ-भूमि तथा विचार-धारा स्पष्ट की गयी है। व्यवहार-शुद्धि-आन्दोलन की जानकारी भी दी गयी है।

आशा है, पाठकों के लिए यह पुस्तक लाभदायक सिद्ध होगी।

—प्रकाशक

अ नु क्र म

आमुख

•

व्यवहार-शुद्धि आंदोलन

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद, लोगों में सुराज्य की आशा का जागना स्वाभाविक था, परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों परिणाम विपरीत दिखाई देने लगा। जनता में व्याकुलता बढ़ने लगी, अनेक प्रकार के दोष उभरते-से दीखने लगे। इनमें सबसे प्रमुख था भ्रष्टाचार, जो सब क्षेत्रों में फैला हुआ था। स्वराज्य के पहले भी भ्रष्टाचार था, पर बाद में वह तेजी से बढ़ने लगा। सज्जनों को वह ज्यादा खटकने लगा। स्वराज्य तो केवल राजनीतिक ही मिला था; पर केवल उतने से देश की दशा थोड़े ही बदलनेवाली थी! केवल धन-सम्पत्ति के बढ़ने मात्र से सुराज्य नहीं आ सकता। जब तक मनुष्य नहीं सुधरता, तब तक सुराज्य कहाँ और कैसा? लम्बे अरसे से हममें सामाजिक और नैतिक दोषों का प्रवेश कैसे हुआ और स्वराज्य मिलने के बाद भी वे कैसे बढ़ते गये, इसके कारणों की मीमांसा में जाने की जरूरत नहीं है। इतना समझना काफी है कि वस्तुस्थिति बड़ी चिन्ताजनक हो उठी है।

शुद्धि के लिए अपरिग्रह की जरूरत थी

मेरे मन में एक विचार स्वराज्य मिलने के समय से चलता रहा कि बढ़ती हुई अनीति और भ्रष्टाचार को घटाने का तथा देश,

को सदा के लिए सन्मार्ग दिखाने का जो एक रास्ता था, उसे स्वराज्य मिलने पर अपनाया जाता, विशेषकर बदले हुए जमाने में, तो अच्छा होता। उस विचार का यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक मानता हूँ।

स्वराज्य-प्राप्ति के प्रयत्न में जितने त्याग की आवश्यकता थी उससे कई गुने अधिक त्याग की आवश्यकता देश के पुनरुत्थान के लिए थी और है। त्याग के बिना नैतिक स्तर ऊँचा नहीं उठ सकता और जीवन-व्यवहार में भी शुद्धि नहीं आ सकती, जो समाज-कल्याण के लिए जरूरी है। परन्तु स्वराज्य मिल जाने के बाद ऐसा कुछ दीख पड़ा कि बहुत से लोग, विशेषकर कांग्रेसजन, जिनके कि हाथ में सत्ता आयी, यह समझने लगे कि अब त्याग की वैसी जरूरत नहीं रही; भोग का मौका है, इसलिए स्वराज्य के फलस्वरूप जो कुछ शक्ति या अधिकार मिल रहा है, उसे अपनी ओर खींचने में बाधा नहीं है। इसका परिणाम पतन ही हो सकता था। प्रश्न यह है कि ऐसी दशा में आम जनता में त्याग की मात्रा कैसे बढ़े ? सद्ग्रन्थों में तथा साधु-सन्तों के द्वारा त्याग की महिमा हम पढ़ते-सुनते रहते हैं, तथापि आम जनता तो उसे अपनी कक्षा या बूते के बाहर की बात समझती है और यह मानती है कि वह संसार के झंझट से दूर रहनेवाले थोड़े से लोगों की ही चीज है। हम त्यागवृत्ति का आदर करें, परन्तु हमारे जीवन से उसका विशेष सम्बन्ध जोड़ने की जरूरत नहीं है। सामान्य जनता तो अपना मार्गदर्शन अपने समान संसार में रचे-पचे लोगों से ही पाने का प्रयत्न करती है। अपने आचरण के लिए वह वैसी ही वृत्तिवाले अपने से ऊँचे माने जानेवाले लोगों की ओर देखती है। "यद् यद्

आचरति श्रेष्ठस् तद् तद् एवेतरो जनः। महाजनो येन गतः स पन्थाः।" यह प्रश्न अलग है कि हम श्रेष्ठ या महाजन किसे कहें। व्यावहारिक दृष्टि से सामान्य जनता जिसे श्रेष्ठ मानती है, उसीकी देखा-देखी वह चलने का प्रयत्न करती है। सत्ताधीश लोग ही श्रेष्ठ माने जाते हैं, फिर वे राजसत्तावाले हों या धनसत्तावाले। नैतिक दृष्टि से ऐसा मानना उचित तो नहीं है, परन्तु लोकमानस जैसा बन गया है, उसे स्वीकार करके ही विचार करना होगा।

बहुत लम्बे समय तक अंग्रेज सत्ताधीशों की एक विशेष प्रणाली रही। वे यहाँ थोड़ी-सी संख्या में थे। उन्हें करोड़ों लोगों पर रोब डालकर अपना राज्य कायम रखना था। वे अपना प्रभाव सामान्य जनता पर शान-शौकत, ठाट-बाट, दरबार, प्रदर्शन आदि से डालने का प्रयत्न करते रहे। पर स्वराज्य के बाद उस पद्धति की आवश्यकता नहीं रही। भारतीय संस्कृति में भोग की अपेक्षा त्याग तथा अपरिग्रह को अधिक महत्त्व दिया गया है। वर्तमान आर्थिक विषमता का मुकाबला भी अपरिग्रह से किया जा सकता है; इसलिए स्वराज्य मिलने पर अगर हमारे सत्ताधीश, विशेषकर ऊँचे पदों पर गये हुए देश भर के हजार-पाँच सौ महानुभाव पुरानी पद्धति बदलकर अपरिग्रह-वृत्ति पर चलते, तो राजनैतिक परिवर्तन के साथ-साथ नैतिक परिवर्तन का दृष्टिकोण भी जनता के सामने आता; उसके सामने त्याग का उदाहरण रहने पर वह उन बड़ों का अनुकरण करती और समझ लेती कि हमारे स्वराज्य में भी त्याग की आवश्यकता है। 'राजा कालस्य कारणम्', यह बात पुराने जमाने की अपेक्षा आज सहस्रगुना अधिक अर्थ-भरी है। अब हमारी सरकारों की सत्ता हमारे चूल्हे तक भी पहुँचती है, परन्तु देश की बढ़ती हुई विपन्ना-

वस्था में भी दिल्ली की तथा प्रांतों की राजधानियों की शान-शौकत और अमीरी रहन-सहन अंग्रेजी सत्ताधीशों की-सी रही। जनता के सामने त्याग का आदर्श नहीं रहा, जिसकी बदले हुए काल में बहुत-कुछ आवश्यकता थी। राजनैतिक परिवर्तन हुआ, परन्तु देश के कारोबार में बहुत कुछ पुरानी परम्परा ही चल रही है। लोग भोग की तथा धन-संग्रह की तरफ ही झुके हुए हैं। वस्तुएँ अत्यन्त महँगी होने के कारण, ऊँचे आदर्श के अभाव में, भ्रष्टाचार की ओर बढ़ने में किसीको संकोच नहीं रहा।

व्यवहार-शुद्धि आंदोलन का प्रारंभ

लड़ाई के समय से ही अनेक वस्तुओं पर कण्ट्रोल लगे हुए आ रहे थे। बाद में भी न्यूनाधिक परिमाण में उनकी आवश्यकता मानी गयी। अन्न का प्रश्न हल करनें के प्रयत्न में कण्ट्रोल कुछ ज्यादा कड़े भी किये गये। कण्ट्रोलों के कारण भ्रष्टाचार भी बेशुमार बढ़ा। पाश्चात्य देशों में भी लड़ाई के समय तथा बाद में कण्ट्रोल थे, परन्तु वहाँ नागरिक कर्तव्य-बुद्धि जाग्रत रहने के कारण कण्ट्रोल तोड़ने की अपेक्षा उनके पालन की ओर ही जनता का अधिक झुकाव रहा। भारत में उससे उल्टा हुआ। यहाँ कुछ अपवाद छोड़कर व्यापारी तथा सामान्य जनता प्रायः इसी कोशिश में रही कि कण्ट्रोल के नियम कैसे तोड़े जायँ। जब भ्रष्टाचार का इतना बोलबाला है, तब स्वराज्य होते हुए भी समाज का कल्याण कैसे हो सकता है, इस विचार ने सज्जनों को चिन्तित कर दिया। जहाँ कहीं खानगी या सार्वजनिक रूप से, मुसाफिरी में या सभाओं आदि में थोड़े से भी व्यक्ति इकट्ठे होते, तो भ्रष्टाचार की चर्चा चलती, उसकी निंदा की जाती और दूसरों को दोष दिया जाता। जिस दोष की इतनी

व्यापक निंदा हो, वह समाज में इतने बड़े पैमाने पर वस्तुतः क्यों चलता रहे ? परन्तु निंदा करनेवाले भी उन दोषों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अछूते थोड़े ही रहते थे ! बहुतेरे जान-बूझकर या विवश होकर भ्रष्टाचार के सहायक बनते थे। केवल निंदा करने से किसी दोष का निराकरण नहीं हो सकता। दोष तो न करने से ही दूर हो सकता है। इतने व्यापक पैमाने पर भ्रष्टाचार के चलते हुए भी चुपचाप बैठे रहना बड़ा दोष है। मनुष्य का पुरुषार्थ इसीमें है कि कोई साथ न दे, तो भी वह अकेला ही दुष्टता का मुकाबला करे। परन्तु प्रायः अकेला आदमी उतना साहस नहीं कर सकता। अकेले आदमी का प्रयास सफल होना भी मुश्किल होता है। जैसे गुण में बल और शक्ति होती है, वैसे ही जन-सहारा पाकर दोष भी व्यापक बन जाता है। सामूहिक दोष के आगे व्यक्तिगत गुण का टिकना मुश्किल हो जाता है, इसलिए संगठन की आवश्यकता होती है। वैसा व्यवस्थित प्रयत्न करने का विचार कुछ सज्जनों के दिल में उस समय आया।

व्यवहार-शुद्धि-मंडल, बम्बई की स्थापना

शायद पहले-पहल श्री गुलजारीलालजी नंदा ने यह सुझाया कि लोगों से प्रतिज्ञा-पत्रक भरवाये जायँ कि वे अमुक-अमुक प्रकार का भ्रष्टाचार नहीं करेंगे। सन् १९४९ में राऊ के सर्वोदय-समाज के सम्मेलन में उन्होंने अपना यह विचार रखा और चाहा कि सम्मेलन ऐसा आन्दोलन चलाये। उनका विचार पसन्द तो आया, परन्तु सर्वोदय-समाज कोई संगठित मंडल नहीं था कि वह खुद इस काम को उठाता और आज के जैसा 'सर्व-सेवा-संघ' भी उस समय नहीं बना था। फिर भी बम्बई के श्रीनाथजी महाराज के दिल में

आया कि ऐसा कुछ काम होना चाहिए। राऊ-सम्मेलन के थोड़े ही समय बाद उन्होंने बम्बई में 'व्यवहार-शुद्धि मंडल' की स्थापना की।

श्रीनाथजी महाराज के शब्दों में 'व्यवहार-शुद्धि मंडल' का उद्देश्य और उसकी प्रक्रिया इस प्रकार है :

व्यवहार-शुद्धि की पृष्ठभूमि

"मानव-समाज का स्वास्थ्य, उत्कर्ष और उन्नति मनुष्यों के सद्गुणों पर अवलम्बित है। सत्य, प्रामाणिकता, उदारता, प्रेम, मित्रता, परस्पर योग्य सहयोग और सहानुभूति के बिना मानवीय व्यवहार का चलना और समाज का ठीक से टिके रहना सम्भव नहीं है। अगर मनुष्य को मनुष्य के नाते जीना है, तो उसे मानव-धर्म को अंगीकार करना ही चाहिए। ये सब बातें सही और स्पष्ट होते हुए भी हम आज उन्हें भूल गये हैं। आज समाज में अनेक प्रकार के असत्य और दुर्व्यवहार खुल्लमखुल्ला चल रहे हैं। केवल धन ही सबकी आराध्य वस्तु बन गयी है। धन प्राप्त करने में न्याय-अन्याय, नीति-अनीति आदि का विचार नहीं किया जाता। मानवीय जीवन की दृष्टि से यह दशा अत्यन्त शोचनीय है।

"किसी भी देश की या समाज की श्रेष्ठता उस देश या समाज के लोगों की संस्कारिता से जानी जाती है। उच्च और उदात्त नैतिक निष्ठा के बिना इस तरह की संस्कारिता और सभ्यता प्राप्त नहीं हो सकती। जिस देश के लोग एक-दूसरे के लिए, स्वार्थरहित बुद्धि से कष्ट सहन करना चाहिए ऐसा समझकर तदनुसार आचरण करते हैं, उस समाज की नैतिकता सदा उज्ज्वल रहती है। पर हम लोग तो आज अपने देश के भाइयों का शोषण कर समाज-द्रोह कर रहे हैं। कोई धन-तृष्णा से, तो कोई मोह से, कोई सत्ता के मद से, तो कोई जीविका चलाने की अड़चन से, वैसा कर रहे हैं। हमारा कदम विनाश की दिशा में बढ़ रहा है।

"हम सब जानते हैं कि आज सर्व-साधारण जनता कितनी तकलीफ और आपत्ति में अपने दिन बिता रही है। जीवन की आवश्यक वस्तुओं की महँगाई मध्यम-वर्ग से लेकर गरीब तक सबको बहुत तंग कर रही है। अनेक प्रकार के सांसारिक संकटों, व्याधियों, आपसी कलह और द्वेष, आज की और भविष्य की चिंताओं आदि नाना कष्टों से जनता त्रस्त है। समाज की संस्कारिता, सभ्यता और नैतिकता खतरे में है। इस परिस्थिति के अनेक कारण होंगे। फिर भी हमें यह खेदपूर्वक कबूल करना होगा कि इसमें हमारी दुष्ट बुद्धि भी एक बड़ा कारण है। जब तक वह नहीं बदलेगी, तब तक केवल सरकारी आर्डिनेन्स, नियन्त्रण या दंड-नीति विशेष परिवर्तन नहीं कर सकती। ऐसी दशा में भी मेरी और मेरे मित्रों की मनुष्य-मात्र में रहनेवाले दैवी अंश पर श्रद्धा है। अगर वह अंश जाग्रत हो, हम समझ लें कि मानवीय जीवन स्वार्थ के लिए नहीं धर्म के लिए है, एक-दूसरे के लिए कष्ट सहन करना भी धर्म का एक अंग है और इस प्रकार हमारा व्यवहार होने लगे, तो हमारा जीवन शुद्ध होगा और हम आज के पाप-चक्र में से बच सकेंगे। इस श्रद्धा से हमने अपनी और दूसरों की जीवन-शुद्धि के हेतु से ता० २९-५-१९४९ से 'व्यवहार-शुद्धि-मण्डल' की स्थापना की है।

"भारत स्वतन्त्र हो गया है। उसके हरएक दोष की जवाबदारी अब उसी पर है। उसे दुनिया के स्वतन्त्र और सुख-संपन्न राष्ट्रों की बराबरी का दर्जा प्राप्त करा देना, उसे वैभवशाली बनाना हम सब भारतीयों का कर्तव्य है। वह फर्ज अदा करने के प्रयत्न में हमको पहले इस चलते हुए व्यावसायिक पाप-चक्र को नष्ट करना चाहिए। इसका एक उपाय यह है कि हरएक व्यक्ति को अपने-अपने व्यवहार में शुद्धि लानी चाहिए। यही व्यवहार-शुद्धि-मण्डल का प्रमुख हेतु है। इसीसे पाप-चक्र की गति धीमी होते-होते हम सबके सामुदायिक प्रयत्न से वह एक दिन नष्ट हो जायगी। हमारा हेतु केवल व्यापारिक व्यवहार में ही शुद्धि लाने का न होकर जीवन के हरएक क्षेत्र में, शरीर, बुद्धि और मन के द्वारा होनेवाली प्रत्येक क्रिया में, वैयक्तिक, कौटुंबिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि बातों

के विचारों में, भावनाओं में और कर्मों में शुद्धि लाना है। संयम, विवेक और पुरुषार्थ की वृद्धि करते रहकर अपना जीवन निर्मल, निर्दोष और व्यवस्थित हो और सब परमात्मा द्वारा मानव के लिए नियोजित किये हुए शुभ और मंगल आदर्श की ओर सदा बढ़ते रहें, यह उच्च हेतु व्यवहार-शुद्धि के प्रयत्न के पीछे है। इसीको हम जीवन-शुद्धि कहते हैं, जिसके लिए व्यवहार-शुद्धि की आवश्यकता है।

मण्डल के सदस्यों के प्रकार

"ऊपर के वक्तव्य से, मण्डल स्थापित करने के पीछे की मनोभूमिका समझ में आ सकेगी। इस विचार के अनुरूप सजग होकर प्रयत्नशील होने के लिए, हमने दो प्रकार के प्रतिज्ञा-पत्रक बनाये हैं। नम्बर १ वाला प्रतिज्ञापत्र सब प्रकार का दुर्व्यवहार छोड़ देनेवालों के लिए है। नम्बर २ वाला क्रमशः एक-एक, दो-दो दुर्व्यवहार छोड़ते हुए अन्त में नम्बर १ पत्रक का पात्र होने की इच्छा रखनेवाले प्रयत्नशील सदस्य के लिए है। नं० १ वाले को सदस्य और नम्बर २ वाले को सहायक सदस्य नाम दिया गया है। पत्रक भरने के लिए कोई आग्रह नहीं किया जाता अथवा कोई लालच नहीं दिखाया जाता। खुद की परिस्थिति और शक्ति का विचार करके पत्रक भरना चाहिए। भरने के बाद दृढ़ता से उसके अनुसार चलने का प्रयत्न हो। इतने पर भी अगर किसीको दीख पड़े कि वह अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चल नहीं सकता, तो कोई संकोच या ढोंग न करते हुए उसे अपनी प्रतिज्ञा वापस ले लेनी चाहिए। क्योंकि एकाध सदस्य के असत्य से भी पूरे मण्डल के बारे में शंका खड़ी हो सकती है, समाज में एक-दूसरे के प्रति विश्वास घटने लगता है और कुल मिलाकर सामुदायिक कार्य की हानि होती है। इसलिए कोई भी दम्भ का आश्रय न ले, इस दृष्टि से प्रतिज्ञा-पत्रक के बारे में यह सावधानी और नीति रखी गयी है। इसी कारण मण्डल के सदस्यों की संख्या विशेष रूप से बढ़ नहीं

पायी। सदस्य न बनते हुए भी जो सज्जन मंडल से सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्ध रखते हैं, वे मंडल के हितैषी समझे जाते हैं।"

श्रीनाथजी महाराज के वक्तव्य का उपर्युक्त कुछ लम्बा-सा अंश यहाँ इसलिए उद्धृत किया गया है कि उस समय की दशा और शुद्धि का आन्दोलन चलाने का उद्देश्य तथा देश का कल्याण करने के लिए कौन-कौन से सद्गुणों के विकास की आवश्यकता है और उसके आड़े आनेवाले कौन से दोष हममें हैं, इसका ठीक भान हो जाय।

वर्धा के प्रयत्न

इसी सम्बन्ध में दूसरा प्रयत्न श्री किशोरलालभाई मशरूवाला की प्रेरणा से वर्धा में हुआ। उनका भी जोर इस बात पर रहा कि जब व्यापक रूप में फैले हुए भ्रष्टाचार की दशा में अकेला आदमी अपने को उससे बचाने में या उसको रोकने में असमर्थ पाता है, तो समान उद्देश्य रखनेवाले सज्जन इकट्ठे होकर एक-दूसरे की मदद करें और संगठित शक्ति से उसका मुकाबला करने का प्रयत्न करें। इस हेतु से वर्धा में एक 'शुद्ध व्यवहार समिति' की स्थापना सन् १९५० में हुई। उसके कार्यक्रम का स्वरूप इस प्रकार रहा:

इस आन्दोलन में सबसे बड़े महत्त्व की बात यह है कि जो इसमें शामिल होना चाहें, वे पहले अपने खुद के व्यवहार में शुद्धि

लायें। खुद काम शुरू करके जो उनके पहचान के हों और जिनके वचन-पालन पर वे भरोसा रख सकते हों, उनको अपने साथ जुटावें। अगर कोई बनी-बनायी संस्था इस काम के लायक हो और वह भार उठावे तो उसकी मार्फत आन्दोलन चलाया जाय, अथवा शुद्ध व्यवहार में शामिल होनेवालों की नयी समिति बनायी जाय। वे इकट्ठे होकर सोचें कि कौनसी प्रतिज्ञा उनके सदस्यों के लिए उपयुक्त हो सकती है। प्रतिज्ञाओं में भिन्नता रह सकती है, पर वह इतनी कमजोर न हो कि आखिर बेकार हो जाय। प्रतिज्ञा लेनेवाले अपना व्यवहार भरसक शुद्धि से करने लगें। जहाँ अड़चन खड़ी हो, वहाँ वे इकट्ठा होकर सोचें कि कठिनाई में से रास्ता कैसे निकाला जाय। इस काम में पड़नेवालों को खुद सोच-विचारकर आगे बढ़ना चाहिए। कहीं दूर से या दूसरों से सूचना मिलने के लिए रुकना नहीं चाहिए। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि इस काम का संगठन स्थानीय ही हो सकता है, ताकि एक-दूसरे की मदद का सबको लाभ मिले। दूर-दूर के सदस्यों का संगठन करने से कोई विशेष लाभ नहीं होगा।

प्रतिज्ञा के नमूने

व्यवहार शुद्धि मंडल, बम्बई।

सदस्य

आज चालू व्यापारी व्यवहार में रिश्वत, कालाबाजार, टैक्स की चोरी, मिलावट वगैरह बुराइयाँ बड़े पैमाने पर फैली हुई हैं। उन्हें दूर करने के लिए मैं ......व्यवहार-शुद्धि-मंडल का सदस्य बनता हूँ। मैं जो कुछ व्यवहार करूँगा, उसमें ऊपर बतायी हुई किसी भी बुराई में भाग नहीं लूँगा। ऐसा आचरण करने में जो कोई कठिनाई आयेगी, उसे दूर करने के लिए मुझे यदि कोई उपाय न सूझे, तो मैं अपनी असुविधा मण्डल के सामने रखूँगा। मंडल जो सलाह या आज्ञा देगा, उसे व्यवहार में लाने के लिए मैं बँधा हूँ।

सही

पूरा नाम, पेशा, स्थान

ता०........

सहायक सदस्य

आज चालू व्यापारी व्यवहार में रिश्वत, कालाबाजार, मिलावट वगैरह अनेक प्रकार की बुराइयाँ बड़े पैमाने पर फैली हुई हैं। उन्हें दूर करने के वास्ते मैं... .... व्यवहार-शुद्धि मंडल का सहायक सदस्य बनता हूँ। नीचे लिखे जिस दुर्व्यवहार के सामने मेरी सही है, वह दुर्व्यवहार मैं नहीं करूँगा और बाकी के सब दुर्व्यवहारों से बचने का सतत प्रयत्न करता रहूँगा। इस प्रयत्न में मैं व्यवहार-शुद्धि-मंडल की सलाह और आज्ञा के अनुसार चलने के लिए बँधा हूँ।

रिश्वत

कालाबाजार

मिलावट

अनाज का कालाबाजार

कपड़े का कालाबाजार

खोटे माप-तौल

टैक्स की चोरी

सही

पूरा नाम, पेशा, स्थान

ता०........

शुद्ध व्यवहार समिति वर्धा।

मैं ....

(१) जिस चीज की बाजार में कमी हो, उसे जरूरत से ज्यादा नहीं खरीदूँगा और कृत्रिम कमी पैदा करनेवाली प्रवृत्तियों में शामिल नहीं होऊँगा। (२) जिन चीजों के भाव सरकार द्वारा नियत किये गये हों, वे चीजें नियत भाव से ही खरीदने की कोशिश रहेगी, अर्थात् कालेबाजार से नहीं खरीदूँगा। (३) सुविधा, आराम या सामाजिक कार्यों के लिए कानून को टालकर या गुप्त रीति से चीजें नहीं खरीदूँगा। (४) मैं किसीको रिश्वत नहीं दूँगा। (५) मैं अपना जीवन शुद्धता से और न्याय-नीति से बिताने की कोशिश करता रहूँगा और ज्यादा से ज्यादा लोगों को शुद्ध व्यवहारी बनाने की कोशिश करूँगा।

सही

पूरा नाम, पेशा, स्थान

ता०........

ऊपर की प्रतिज्ञाओं का विचार करने पर मालूम होगा कि दोनों संस्थाओं की प्रतिज्ञाओं में उस समय चलनेवाले अशुद्ध व्यवहार को रोकने का विशेष यत्न है। यहाँ इतनी तफसील देने का यह भी एक कारण है कि अब भी, और भविष्य में भी, लम्बे अरसे तक, ऐसे आन्दोलनों का महत्त्व कम नहीं होगा। जो यह काम करना चाहें, उनको इस तफसील से कुछ मदद और मार्ग-दर्शन मिलेगा और ऐसा काम करने की प्रेरणा भी मिलेगी, ऐसी आशा है।

बम्बई-मण्डल और वर्धा-समिति का कार्य

बम्बई-मण्डल के सदस्य करीब १०० तक बने और सहायक सदस्य उससे आधे। वर्धा-समिति के करीब १०० सदस्य बने। वर्धा में एक सुविधा यह रही कि यहाँ के कंट्रोल उतने कड़े नहीं थे तथा कुछ रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्ता भी सदस्य बने, जिन्हें प्रतिज्ञा निभाने में विशेष कठिनाई नहीं थी। बम्बई का काम कठिन था। वहाँ कंट्रोल के नियम बहुत कड़े थे और व्यापारी-वर्ग से भी संबंध आया। बम्बई-मण्डल का काम अब भी चल तो रहा है, पर उसमें पहले जैसी गति नहीं रही। सन् १९५१ में बम्बई-मण्डल ने वहाँ एक व्यवहार-शुद्धि सप्ताह मनाया, जिसमें बम्बई के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में तथा भिन्न-भिन्न स्तरों के लोगों में प्रचार किया गया। वर्धा में दो वर्षों में ('५२-'५३ में) अधिक काम नहीं हो पाया। अधिकतर कार्यकर्ता भूदान-यज्ञ के काम में लगे रहे। निकट भविष्य में शुद्ध-व्यवहार समिति के काम के लिए विशेष प्रयास होने की परिस्थिति न देखकर उस समिति का विसर्जन कर दिया गया। बम्बई और वर्धा के अलावा बाहर भी ऐसा संगठन करने का कुछ थोड़ा-सा प्रयत्न जरूर हुआ, परन्तु वह उल्लेख योग्य नहीं है। बाहर के कुछ

व्यक्तियों ने अपने फॉर्म वर्धा-समिति को भेजे। परन्तु उन्हें लिखा गया कि बाहर के व्यक्ति सदस्य नहीं बनाये जा सकते, वे स्थानिक संस्था खड़ी करने का प्रयत्न करें। स्थानिक या बाहर के जो भाई प्रश्न या शंका करते, उनका उत्तर दिया जाता रहा और महत्त्वपूर्ण बातें 'हरिजन' पत्रिका में प्रकाशित होती रहीं। उनका कुछ अंश भी इस पुस्तिका के अन्त में दिया गया है। 'हरिजन' के वे लेख कुछ दूसरे अखबार भी उद्धृत करते रहे। इस सारे आन्दोलन में श्रीनाथजी महाराज तथा श्री किशोरलालभाई से बहुत स्फूर्ति मिली। श्रीनाथजी महाराज ने बम्बई के बाहर भी व्यवहार-शुद्धि का प्रचार किया। इस आन्दोलन से प्रेम रखनेवाले अनेक भाई-बहनों ने प्रचार में मदद की। यहाँ इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि जैन-श्वेताम्बर तेरापन्थी समाज के आचार्य श्री तुलसी महाराज ने भी इसी प्रकार का, जैन परम्परा के अनुसार 'अणुव्रत' नाम से एक आन्दोलन चलाया है और वह बढ़ रहा है।

आन्दोलन का परिणाम, प्रभाव

इस आन्दोलन का परिणाम कैसा क्या हुआ, इसका अन्दाज लगाना कठिन है। इतना जरूर कहा जा सकता है कि उन दो-तीन वर्षों में यह विषय देश के सामने जोरों से आया और अनेक व्यक्तियों के जीवन पर उसका असर पड़ा। जो पहले शुद्धाशुद्ध व्यवहार के बारे में सोचते ही नहीं थे, वे सोचने लगे और जिन अशुद्ध बातों में वे दोष नहीं देखते थे, वे बातें वास्तव में दोषास्पद हैं, यह उनके खयाल में आया। हम बहुत-सी बातें बिना सोचे-समझे प्रवाह-पतित या लोगों की देखा-देखी करते रहते हैं। जब विचार करने

लगते हैं तब उसमें रहे हुए दोष का स्वरूप जानने लगते हैं और उसे हटाने की कोशिश करते हैं। इस आन्दोलन ने कई व्यक्तियों को इस तरह विचारप्रवण किया है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि जिन्होंने अंतःशोधन कर अपनी शुद्धि करने की कोशिश की है। ऐसे अनेक पत्र दफ्तर में आते रहे। उदाहरण के तौर पर नीचे एक पत्र का सारांश दिया जाता है, जो हमारे लिए प्रेरणादायी है। अगर हम इस प्रकार का विचार करते रहें, तो अनेक अशुद्धियों से बच सकते हैं :

"जब से मैं 'हरिजन' में शुद्ध-व्यवहार आन्दोलन के लेख पढ़ने लगा हूँ, तब से मैं अपने जीवन में ईमानदारी से चलने की कोशिश कर रहा हूँ। कभी कामयाब हुआ हूँ, कभी निराश भी। इसके पहले मैं अपने राशन-कार्ड पर से, जो लोग गैरहाजिर थे, उनका राशन ले लिया करता था। अब मैंने वैसा न करने का निश्चय किया है। चार पाँच माह हो गये, मेरा टीक निभ रहा है और मुझे विश्वास है कि ऐसा ही निभता रहेगा। इसके पहले मैं अपने निजी काम के लिए अपने मालिक के दफ्तर के टेलीफोन, स्टेशनरी और टाइपराइटर का छूट से उपयोग करता रहा, पर अब मुझे दीख गया है कि यह गैरवाजिब है। अब मैंने वह बन्द कर दिया है। दफ्तर के समय के बाद भी मैं अपने पढ़ने-लिखने के लिए दफ्तर की बिजली की रोशनी का उपयोग करता था। वह भी मुझे गैरवाजिब मालूम हुआ। तब से मैंने अपने लिए अलग बत्ती न लगाकर, जहाँ दूसरे काम के लिए बत्ती जलती रहती है, वहाँ जाकर मैं अपने पढ़ने-लिखने का काम कर लिया करता हूँ। इसके पहले छुट्टी माँगने के लिए सच्चे कारण देने से छुट्टी मिलने की सम्भावना न समझकर रिश्तेदारों की बीमारी आदि झूठे कारण बताकर छुट्टी लिया करता था। दफ्तर के बहुत से लोग प्रायः ऐसा ही किया करते हैं और अधिकारी लोग भी जान-

बूझकर वैसा चलने देते हैं और उसमें दोष नहीं मानते। अगर सच्चा कारण बताया जाय तो छुट्टी मिलती भी नहीं। मेरे दिल में जाग्रति होने के बाद जब एक बार छुट्टी की आवश्यकता हुई, तो मैंने सच्चा-सच्चा कारण लिख दिया, जिससे छुट्टी की दरख्वास्त नामंजूर हो गयी। फिर भी मेरा विचार तो यही है कि भविष्य में सच्चा कारण बताकर ही छुट्टी माँगता रहूँगा। सचाई के मार्ग में ऐसी अड़चनें काफी आती हैं और कभी-कभी जी घबड़ाता भी है। इस भरोसे पर हूँ कि ईश्वर बल देगा।"

इसी भाई ने बाद में लिखा कि जब अधिकारियों का मुझ पर विश्वास बढ़ गया, तब जिस कारण पर पहले छुट्टी नहीं मिली थी, उसी कारण पर बाद में मिल गयी। पाठक देखेंगे कि उक्त भाई के जीवन में जो बीती, वही हालत बहुतों की रहती है। बिना कारण ही हमसे बहुत से असत्य होते रहते हैं। पर हम सोचते ही नहीं, अथवा चूँकि बहुत से वैसा करते हैं, इसलिए हमें उसमें दोष ही नहीं दीखता। अगर हम ऊपर लिखे अनुसार अंतर्निरीक्षण कर अपनी शुद्धि का प्रयत्न करते रहें, तो बहुत से पापों से बच सकते हैं।

वर्तमान स्थिति और व्यवहार शुद्धि

अब बहुत से कण्ट्रोल हट गये हैं। कुछ ढीले भी पड़ गये हैं। कण्ट्रोलों को लेकर जो कुछ अशुद्धि थी, उसके लिए अब विशेष कारण नहीं रहा और वैसी शिकायत भी अब कम है। तथापि सर्वसाधारण जीवन की जो अशुद्धि थी, वह तो ज्यों-की-त्यों बनी है। इस व्यापक अशुद्धि को हटाये बिना समाज का कल्याण सम्भव नहीं है। सुराज्य का होना मनुष्य के नैतिक सुधार पर ही अवलंबित है। व्यवहार-

शुद्धि का लगातार प्रयत्न होते रहने की आवश्यकता अब भी उतनी ही है। इसलिए व्यवहार शुद्धि का आन्दोलन चलाने में जो प्रश्न खड़े हुए और जो अनुभव आये, वे संक्षेप में इस पुस्तिका में प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है। हमारे सत्ताधीश तथा सब दलवाले लोग शुद्ध व्यवहार पर जोर दे रहे हैं। आशा की जा सकती है कि इस पुस्तिका द्वारा भी यह विषय जनता के सामने रहने से शुद्धि के प्रयत्न में मदद मिलेगी। इस पुस्तिका में सिद्धान्त-निरूपण की अपेक्षा व्यावहारिक दृष्टिकोण पर ज्यादा जोर दिया गया है। शुद्धि के सब प्रसंगों का वर्णन करना तो असंभव है, परन्तु जीवन के अनेक प्रसंगों में, जो अशुद्धि दीख पड़ती है, उनमें से कुछ का केवल नमूने के तौर पर इस पुस्तिका में जिक्र किया गया है।

सर्व-सेवा-संघ का प्रस्ताव

सर्व-सेवा-संघ ने ता० ७-७-'५१ को व्यवहार-शुद्धि के बारे में नीचे लिखा प्रस्ताव पास किया था :

"देश में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार कैसे रोका जाय, इसके बारे में 'सर्व-सेवा-संघ' की ता० १५-७-१९५० की बैठक में चर्चा हुई। शिवरामपल्ली के सर्वोदय-समाज के सम्मेलन में भी शुद्ध-व्यवहार का आन्दोलन कैसे चलाया जाय, इस पर विचार हुआ था। बम्बई, वर्धा आदि कुछ स्थानों में यह आन्दोलन शुरू हो गया है। 'सर्व-सेवा-संघ' इस आन्दोलन को पसन्द करता है और देश की जनता से, विशेषकर सब रचनात्मक कार्यकर्ताओं से और सर्वोदय-समाज के सेवकों से अनुरोध करता है कि वे खुद शुद्ध व्यवहारी बनकर दूसरों

को भी व्यक्तिगत तथा सामुदायिक सहकारी रूप से शुद्ध व्यवहार अपनाने की प्रेरणा दें।

"सर्व-सेवा-संघ यह भी महसूस करता है कि इस काम में सरकारी कर्मचारियों के सहयोग के बिना सफलता मिलना संभव नहीं है। सामान्य जनता की शुद्धि बहुत-कुछ अंश में सरकारी कर्मचारियों की शुद्धि पर अवलंबित है। आज की विषम परिस्थिति में तो सरकारी कर्मचारियों का शुद्धिकरण अपना खास महत्त्व रखता है। इसलिए राज्यों के मन्त्री-मण्डलों का फर्ज है कि वे अपने कर्मचारियों के शुद्धिकरण की ओर विशेष ध्यान दें।"

●●●

पहला अध्याय

अशुद्ध-व्यवहार की जड़

एक हिन्दी कहावत का आशय यह है कि केवल चोर को मारने से क्या होगा? चोर की नानी को मार दें, तो चोर का जन्म ही न हो। अशुद्ध व्यवहार की नानी कौन और उसे कैसे मारा जाय? इन प्रश्नों का उत्तर देना बहुत कठिन है। शायद अपनी-अपनी समझ के अनुसार अलग-अलग उत्तर हों। यहाँ हम दो-तीन मोटी बातों का ही विचार करेंगे। उसमें भी व्यावहारिक पहलू पर ही जोर देना उचित होगा।

शुद्ध और अशुद्ध वृत्ति

अगर मनुष्य-स्वभाव में ही ऐसी कोई चीज है कि जिससे अशुद्धि का रहना अवश्यम्भावी है, तो उसका सम्पूर्ण नाश करना असम्भव है। अशुद्धि की व्यापकता को देखते हुए यह स्वीकार करना होगा कि मनुष्य-स्वभाव में ऐसा कुछ अंश जरूर है, जो अशुद्धि को जन्म देता है। परन्तु चूँकि मनुष्य शुद्धि की ओर भी बढ़ता है, इसलिए यह भी मानना होगा कि शुद्धि का बीज भी उसमें है।

संत सहजोबाई का नीचे लिखा भजन मननीय है :

हरि ने जन्म दियो जगमाहीं। गुरु ने आवागवन छुटाहीं॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा॥
हरि ने कुटंब जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता-बेरी॥
हरि ने रोग भोग उरझायौ। गुरु जोगी कर सब छुटायौ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ। गुरु ने आतमरूप लखायौ॥
हरि ने मोसूँ आप छिपायौ। गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ॥

यह नहीं कि इस भजन का अर्थ अक्षरशः लिया जाय। भक्त ने इस भजन में हरि की तुलना में गुरु की महिमा अधिक बतायी है। हरि से आशय कुदरत, मनुष्य-स्वभाव लिया जा सकता है। सद्ग्रन्थ और संतों के अलावा मनुष्य खुद भी बहुत-कुछ अंश में अपना गुरु है। आखिर गुरु के बताये हुए मार्ग से खुद को ही चलना पड़ता है। इसलिए हमारे मन की कमजोरियाँ कितनी भी हों, हम सन्त-जनों का उपदेश ग्रहण कर उन्हें अपने पुरुषार्थ से हटा सकते हैं।

मनुष्य अपूर्णता में से पूर्णता की ओर जाने का प्रयत्न कर रहा है। पूर्णता के आड़े जो दोष आते हैं, उन्हें दूर करने का भी प्रयत्न होता रहता है। उसकी स्वार्थ-वृत्ति प्रबल है, पर उसमें परार्थ-वृत्ति भी है। उसे समाज में रहना पड़ता है और समाज से ही उसे भरण-पोषण, विद्या, कला, ज्ञान आदि मिलते हैं। अनेक लोगों से उसके अनेक प्रकार के सम्बन्ध आते हैं। अगर वह इन संबंधों में शुद्धि से व्यवहार न करेगा तो स्वयं उसको भी अशुद्धि का शिकार बनकर तकलीफ भोगनी पड़ेगी। इस तरह मनुष्य के लिए शुद्धि और अशुद्धि, दोनों के कारण मौजूद हैं। अच्छे संस्कारों से बुराई दबकर अच्छाई प्रकट होती है। इसके अलावा जिस समाज में उसको रहना पड़ता है, उसमें अगर ऐसी व्यवस्था हो कि भलाई को प्रोत्साहन मिले और बुराई निंद्य मानी जाय तो व्यक्ति के आचरण के सुधार में काफी मदद मिल सकती है। इस प्रकार व्यक्तिगत और सामुदायिक प्रयास से अशुद्धि काफी घट सकती है।

सामाजिक भावना की आवश्यकता

हमारी परम्परा में सामुदायिक हित की अपेक्षा व्यक्तिगत लाभ

पर अधिक जोर रहा है। हमारे धार्मिक और व्यावसायिक विचारों में व्यक्ति का अधिक खयाल किया गया है। पुरुषार्थ का लक्ष्य व्यक्तिगत मोक्ष माना गया है। संभव है कि इनके कारण सामुदायिक उत्कर्ष के लिए जिन गुणों की विशेष जरूरत है, वे उचित मात्रा में नहीं बढ़ पाये। व्यक्ति और समाज के संबंध की विचार-धारा में परिवर्तन होने की आवश्यकता है। व्यक्ति समाज का अंग है, समाज की भलाई में ही उसकी भलाई है। अगर सारे समाज को कष्ट भोगना पड़े तो व्यक्ति भी कष्ट से नहीं बच सकता। इस प्रकार की भावनाएँ हममें दृढ़ होनी चाहिए।

धन का लोभ

यह तो स्पष्ट है कि अशुद्धि का मूल कारण धन का लोभ है। परन्तु धन का लोभ इतना क्यों बढ़ा? यह दृश्य व्यापक पैमाने पर हर क्षेत्र में दीख पड़ेगा कि करोड़ों आदमियों के कष्ट-यातनाएँ भोगते हुए भी सम्पन्न लोग उसी संकट में से अपना स्वार्थ साधने में नहीं हिचकिचाते। सन् १९४३ में बंगाल में जो अकाल पड़ा था, उसकी घटनाएँ बड़ी हृदय-विदारक हैं। उसके बाद के चार-पाँच वर्षों में अनाज की जितनी कमी थी, उतनी उस अकाल में नहीं थी। लड़ाई चल रही थी, यह एक विशेष बात थी; फिर भी उस अकाल की जाँच करने के लिए जो समिति मुकर्रर की गयी थी, उसने लिखा था कि ग्राहक, व्यापारी, किसान, जो समर्थ थे और जिनके हाथ आया, उन्होंने अनाज का खूब संग्रह कर लिया। अनाज के भाव इतने बढ़ गये कि गरीब जनता में अनाज खरीदने की शक्ति ही नहीं रही। उस अकाल में करीब तीस लाख स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चे भूख से मरे। अनाज का मुनाफा और मरनेवालों की संख्या का परिमाण देखने पर

पाया गया कि मरे हुए हर व्यक्ति के पीछे व्यापारी को एक हजार रुपये का मुनाफा रहा। खाने को न मिलने के कारण रोज-रोज यातना भुगतते हुए प्राण कैसे जाते होंगे, इसकी कल्पना, जिनको खाने को मिलता है, वे कर ही नहीं सकते। सप्ताह दो सप्ताह बिल्कुल निराहार रहनेवाला थोड़ी कल्पना कर सकता है। देश भर में हर साल किसी-न-किसी सूबे में कुछ अंशों में अकाल रहता है। अब तो सरकारें प्रयत्न करके यथासंभव अनाज उपलब्ध करा देती हैं। फिर भी यह बात तो रह ही जाती है कि ऐसे संकटकाल में भी धनिक लोग चीजों के भाव बढ़ाकर मुनाफा कमाने में संकोच नहीं करते। कुछ दानी लोग मदद के लिए जरूर आगे बढ़ते हैं, परन्तु उसका महत्त्व भी इससे अधिक नहीं कि संकट में से धन कमाकर उसमें से थोड़ा सा दान कर दिया जाता है।

प्रचलित अर्थ-व्यवस्था

पैसे के लोभ के लिए हमारी प्रचलित आर्थिक-व्यवस्था भी जिम्मेवार है। अंग्रेजी राज्य के काल में पाश्चात्य अर्थशास्त्र और सभ्यता का बोलबाला रहा। अब भी प्रायः वैसा ही चल रहा है। अंग्रेजों को इंग्लैंड के हित में भारत से धन ढोकर इंग्लैंड में ले जाना था। जब खुद के लिए इतना लाभ उठाना था, तो भारत में भी यहाँ के कुछ लोगों को लाभ उठाने देना जरूरी था। देश के कुछ लोगों को मध्यस्थ बनाये बिना परदेशवालों का अपना काम संपन्न नहीं हो सकता था। परिणामस्वरूप देश में आर्थिक विषमता बढ़ी। खास इंग्लैंड में भी धनिक-वर्ग रहा। परंतु वहाँ की सरकार टैक्सों तथा अन्य आर्थिक व्यवस्था के द्वारा गरीबों को, यहाँ तक कि बेकारों को

उनसे बिना काम लिये भी घर बैठे मदद देती रही, जिससे गरीब लोग दीन-हीन नहीं बने। भारत के गरीबों और इंग्लैंड के गरीबों की तुलना ही नहीं हो सकती। वहाँ के गरीब यहाँ के खुशहाल लोगों जैसे रहे। यहाँ गरीबों की कोई परवाह नहीं की गयी। राज-सत्ता ने तथा धनिकों ने उनको अपने भाग्य के भरोसे छोड़ रखा। आर्थिक विषमता बढ़ती गयी। दुर्भाग्य से वह खटकी भी नहीं। वास्तव में वह मनुष्य की करनी का परिणाम होते हुए भी हम मानते रहे कि वह हमारे काबू के बाहर तथा कुछ दूसरी अदृश्य शक्तियों का परिणाम है। आर्थिक विषमता में जब थोड़े लोग धनिक बनकर ऐशो-आराम में रहते हैं या प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं, तब दूसरों का दिल भी वैसा ही बनना चाहता है। प्रायः अशुद्धि के बिना धन इकट्ठा नहीं होता, इसलिए अशुद्धि बढ़ती जाती है। अगर पैसे का लोभ घटाना है, तो आर्थिक विषमता कम होनी चाहिए। समाज और राजसत्ता दोनों मिलकर यह कर सकते हैं। अब गरीब जनता आर्थिक विषमता घटाने की बात कर रही है और वह कुछ आतुर भी होने लगी है। परन्तु उसमें भी दोष यह है कि वह भी बेजा लोभ से मुक्त नहीं है। राजसत्ता भी विषमता घटाने की कुछ बात कर रही है। परन्तु वर्तमान खर्चीला शासन चलाने के लिए उसे जो धन चाहिए, वह धनिकों को कायम रखकर उनसे टैक्सों द्वारा प्राप्त करने की नीति, विषमता को कहाँ तक घटने देगी, यह एक विचारणीय प्रश्न है। फिर भी समता जमाने की माँग है। उसे टाला नहीं जा सकेगा। उसमें आवश्यक सफलता मिलने तक समाज को भी पैसे की महिमा घटाने के उपाय करते रहना चाहिए।

ता० ९ जनवरी, १९५२ के 'हरिजन सेवक' में श्री मायकल

फस के भ्रष्टाचार और पैसे सम्बन्धी अंग्रेजी लेख का हिन्दी अनुवाद छपा है। उपयोगी होने के कारण वह यहाँ उद्धृत किया जाता है :

भ्रष्टाचार का कारण और उसका निवारण

"भ्रष्टाचार, कालाबाजार, संग्रहबाजी, सट्टा आदि समाज के लिए हानिकर प्रवृत्तियों का कारण क्या है ? बेशक, ऊपर से तो यही प्रतीत होता है कि यह सारा पाप पैसे के लिए हो रहा है। लेकिन सोचने की बात है कि आखिर लोग पैसा चाहते किसलिए हैं ? यह प्रश्न सुनने में हास्यास्पद मालूम हो सकता है, पर उसमें अर्थ है। गुनाह अगर ज्यादातर गरीब लोग ही करें, तो उससे सूचित होगा कि वे अपनी जरूरत से लाचार होकर ही कानून का उल्लंघन करते हैं। कोई गरीब सरकारी कर्मचारी अगर इनाम या रिश्वत ले तो शायद हम उसे क्षम्य मान लें, क्योंकि उसका वेतन जीवन की जरूरतों के लिए पर्याप्त नहीं है। इसी तरह गरीब व्यापारी भी अपनी चीज का दाम एक-दो आना महँगा ले सकता है। अगर ऐसा हो, तो इस आचरण की हम निन्दा तो करेंगे, लेकिन उसके कारणों को दूर करने की कोशिश भी करेंगे। उस सरकारी नौकर की तनख्वाह और व्यापारी का मुनाफा बढ़ा देंगे। लेकिन हम देखते हैं कि इन गुनाहों के लिए बड़े-बड़े मिल-मालिक और लखपति, करोड़पति तथा उच्च सरकारी पदाधिकारी भी पकड़े जाते हैं। इनके बारे में तो ऐसा नहीं कह सकते कि वे अपनी जरूरत से लाचार होकर ही ऐसा करते हैं। वे तो पैसा कमाने की, उसका ढेर लगाने की गरज से ही ऐसा करते हैं।

"अक्सर यह माना जाता है कि धनोपार्जन की प्रवृत्ति उन परिस्थितियों से उत्पन्न होती है, जिन्हें जीवन-संघर्ष का नाम दिया जाता है और जीवन के साधनों की प्राप्ति के बाद भी या तो इस बीच में उत्पन्न हो गयी संग्रह की आदत के कारण चलती रहती है, या इसलिए कि व्यक्ति और भी ज्यादा सुरक्षा की इच्छा करने लगता है। लेकिन इस विषय पर अधिक बारीकी से विचार करें, तो यह नतीजा प्रकट होता है कि इस प्रवृत्ति को न तो यह कहकर समझाया जा सकता है कि वह सिर्फ एक आदत है जो उत्पन्न हो गयी है और न इस तरह ही कि संग्रह का काम अतिरिक्त सुरक्षा के लिए किया जाता है।

"मनुष्य सिर्फ रोटी पर नहीं जीता, रोटी में वह जीवन की सफलता नहीं मानता। शरीर की आवश्यकताओं के सिवा, वह मान-सम्मान, आदर और प्रतिष्ठा आदि भी चाहता है। अधिकांश लोग धन का संचय इसलिए नहीं करते कि वे उससे जीवन की सुख-सुविधाएँ प्राप्त कर सकते हैं। असल में धन से उन्हें समाज में प्रतिष्ठा का स्थान दिया जाता है, उसके लिए ही वे धन जोड़ते हैं। माना तो यह जाता है कि हम लोकतंत्र-शासित राज्य में रह रहे हैं, लेकिन इस तथ्य को देखने के लिए किसी गहरे अध्ययन की अपेक्षा नहीं है कि हमारे संविधान में चाहे जो लिखा हो, समाज के विभिन्न सदस्यों के सम्बन्धों की रचना को देखें तो प्रतीत होगा कि हमारा राज्य का रूप लोकतंत्र की अपेक्षा धन-तंत्र का ही ज्यादा है। धनिकों को विशेष सम्मान दिया जाता है। यह दृश्य इतना सामान्य है कि उसकी चर्चा की जरूरत नहीं है। कोई धनाढ्य व्यक्ति गुनाह भी करता है, तो उस गुनहगार को जो व्यवहार मिलता है, वह गरीब वर्ग के ऐसे ही गुनहगार के प्रति जो व्यवहार होता है, उससे भिन्न होता है। हम देखते हैं कि ऐसी घटना होती है तो अखबार सुर्खी के अक्षरों में बड़ा शीर्षक देते हैं—"करोड़पति .... गिरफ्तार," गोया यह सूचित करते हैं कि कोई असाधारण घटना घट गयी है। अपराधी के कठघरे में खड़ा होने पर या अदालत की न्याय-विधि के दरमियान, या न्यायाधीश के निर्णय में उसका सम्बोधन और उल्लेख एक साधारण अपराधी से अलग तरह का होता है। सजा होने पर और भोग चुकने पर भी अमीर आदमी, जब तक उसके पास पैसा है, समाज में अपना पुराना दर्जा फिर पा लेता है।

"अमीरों के लड़के-लड़कियों की शादी होती है, तो अखबारों में उनकी तसवीरें छपती हैं और उनका निरर्थक रूप में विस्तृत वर्णन प्रकाशित होता है। मेहमानों का, उनकी पोशाक का, यहाँ तक कि भोजन का भी वर्णन आता है। सार्वजनिक प्रार्थना हो, या धार्मिक समारम्भ, किसी भी आयोजन में वह पहली पंक्ति में बैठता है। चुनाव के दिन आते हैं, तो लोग उसीके पास पैसा माँगने जाते हैं।

"कोई उत्तम महात्मा ही क्यों न हो, यदि वह गरीब है, तो उसकी पूछ नहीं होती। लेकिन अमीर आदमी, फिर चाहे वह बेईमान हो, आदर पाता है। ऐसी हालत में किसी व्यापारी से यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि वह सीधी राह पर चलकर ऐसा नगण्य हो जाय कि उसके साथ कोई भी गण्यमान्य

व्यक्ति सरोकार न रखे ? ऐसी स्थिति में अमीर आदमी को मनचाहे साधनों से पैसा कमाने की इच्छा और कोशिशों से रोकने का क्या उपाय हो सकता है ? फिर, चूँकि ऊपरी वर्ग का अर्थ, अमीर-वर्ग ही होता है, सामान्य जन भी अमीरी को अभीष्ट मानते हैं और उसके लिए प्रयत्न करते हैं। ऐसे वातावरण में समाज-विरोधी प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं।

"यदि हमें यह सारा भ्रष्टाचार मिटाना है, तो हमें समाज की रचना में बुनियादी परिवर्तन करना होगा। समाज की रचना ऐसी होनी चाहिए कि किसी व्यक्ति को उसके पैसे के कारण कोई सम्मान न दिया जाय। समाज पर इस फर्क का ठीक क्रांतिकारी परिणाम हो, इसलिए कुछ समय तक ऐसा करना होगा कि हम अगर कोई व्यक्ति अमीर है तो उसे सम्मान दें ही नहीं। इसमें यह भी हो सकता है कि वह व्यक्ति दूसरी तरह से योग्य और प्रतिष्ठा का सही पात्र होते हुए भी उसका सम्मान, सिर्फ इसलिए कि वह अमीर है, न किया जाय। इसमें कोई चिन्ता की बात नहीं है। ऐसे अमीर, अगर वे सचमुच सज्जन हैं, तो वे प्रतिष्ठा मिलने न मिलने की कोई परवाह नहीं करेंगे, क्योंकि उन्हें प्रतीति रहेगी कि इससे हमारे देश का कल्याण होनेवाला है।

"यह मनोवृत्ति जब सर्वत्र फैल जायगी, तब ज्यादा-ज्यादा लोग एक सीमा पर पहुँचकर—यानी अपने जीवन-यापन के लिए काफी कमाने के बाद, पैसा पैदा करना और जोड़ना छोड़ देंगे। साथ ही अगर हम सामान्य और पूजनीय व्यक्ति का एक नया आदर्श खड़ा करें, उदाहरण के लिए, समाज-सेवक, साधु-पुरुष, साधारण किसान और मजदूर—तो एक बहुत बड़ा काम हम करेंगे, एक नयी जीवन-दृष्टि का विकास होगा और भारत की इस पुरातन-भूमि में अभिनव महिमा-मण्डित गौरवशाली प्रजा का आविर्भाव होगा।

"अगर यह विचार सही मालूम होता हो, तो इसका आरम्भ गांधीजी के प्राथमिक अनुयायियों यानी सर्वोदय के सेवकों को करना होगा। वे अपने आयोजनों में, सभा-समितियों में धनवानों को कोई विशेष सत्कार न देकर इसकी शुरुआत करें, बाद में इस चीज को कांग्रेस उठा ले और उसका अमल करे। कांग्रेस को चुनावों के लिए लगनेवाला पैसा, अगर उसकी जरूरत ही हो तो, गरीबों से आना-पाई कर-करके लेना चाहिए। धनिकों से लाख-करोड़ करके नहीं।

" "अभी की बात है। कहीं किसी चुनाव के सिलसिले में यह बात कही गयी है कि उम्मीदवार को प्रचार के लिए अपना ही पैसा खर्च करना चाहिए। यह बुनियादी तौर पर गलत है। ये चीजें छोड़नी होंगी। कोई आदमी अगर पचास हजार रुपया खर्च करता है—यह रकम कही गयी थी, काल्पनिक नहीं है—तो इस रुपये के बदले में, वह न सिर्फ प्रतिष्ठा की आशा रखता है और उसे पाता है, उसका किसी न किसी तरह इस रुपये को वापस पाने की कोशिश भी करना सम्भव है।

"अगर कांग्रेस यह दृष्टि अपना ले, तो धीरे-धीरे समाज का चेहरा ही बदल जाय। जब यह स्पष्ट हो जायगा कि पैसे के जरिये सिर्फ दाल-रोटी या सुख-सुविधा ही ली जा सकती है, सम्मान और प्रतिष्ठा नहीं, तो सिर्फ दाल-रोटी के लिए अपना ईमान बेचनेवालों की और अमीरों की नकल करनेवालों की संख्या कम होती जायगी। जब हमारा राष्ट्रीय आदर्श ऐसे साधु और महात्मा का हो जायगा, जो निरहंकार भाव से अपने मानव-भाइयों की सेवा करता है, तो राम-राज्य न सही, पर आज की अपेक्षा कहीं अधिक शीलवान भारत का दर्शन होगा।"

उक्त लेख के लेखक ने लिखा है कि यदि हमें भ्रष्टाचार मिटाना है, तो समाज की रचना में बुनियादी परिवर्तन करना होगा। लेकिन उन्होंने जो सुझाव दिया है, वह समाज के बुनियादी आर्थिक परिवर्तन का नहीं है। उनके सुझाव का अवलंबन करने से व्यावहारिक दृष्टि से लोक-मानस में परिवर्तन हो सकना सम्भव है। इसलिए वह बहुत उपयोगी है। परन्तु यदि बुनियादी परिवर्तन करना हो तो अभी देश में भूदान-यज्ञ का जो आन्दोलन चल रहा है, उसे कामयाब करना आवश्यक है। उस विषय में यहाँ अधिक लिखने की जरूरत नहीं है। पाठक कृपा कर भूदान-यज्ञ और संपत्तिदान-यज्ञ के तथा सर्वोदय विचारधारा के साहित्य का ध्यान-पूर्वक अध्ययन करें। एक विचारधारा यह भी है कि अगर हिंसा से या कानून से आर्थिक समता आ जाय, अर्थात् पूँजीवादी

एवं व्यक्तिवादी अर्थव्यवस्था नष्ट होकर साम्यवादी अर्थव्यवस्था हो, तो अशुद्धि के लिए स्थान नहीं रहेगा। परन्तु यह भी सही नहीं है कि केवल भौतिक परिवर्तन होने से अशुद्धि मिट जायगी। जीवन शुद्धि के विना व्यवहार शुद्धि नहीं हो सकती। प्रश्न अंतःकरण की शुद्धि का है। इसका कुछ विवेचन इस पुस्तिका के दूसरे अध्याय में किया गया है।

दान में कीर्ति का दोष

इसी सिलसिले में एक दूसरी बात पर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए। श्रीमान लोग अपने धन में से कुछ दान किया करते हैं। यह प्रवृत्ति बहुत अच्छी है और वह बढ़नी चाहिए। पू० विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ और संपत्तिदान-यज्ञ का प्रारंभ किया है। उन्हें सफल करने की हम सबको कोशिश करनी चाहिए। इसमें नित्य त्याग की भावना है, जिससे हमें अन्तःकरण की शुद्धि करने का एक साधन मिलता है। यहाँ यह खयाल में रखना चाहिए कि इन यज्ञों में 'दान' शब्द का उपयोग 'संविभाग' के अर्थ में हुआ है। अर्थात् जायदाद पर अपनी निजी व्यक्तिगत मालिकी न मानकर उस पर समाज का हक मानना चाहिए और उसका एक अंश समाज को सदा अर्पण करते रहना चाहिए। आखिर में जायदाद का उपयोग ट्रस्टी के तौर पर समाज के हित में होना चाहिए। वैसे, परंपरा के अनुसार चलनेवाला सात्त्विक दान भी प्रशंसनीय है। पूर्व-काल में भी दान को स्थान मिलता रहा है। समय-समय पर दान के स्वरूप भिन्न-भिन्न रहे हैं। पुराने जमाने में दान में पारलौकिक विचार भी रहा। इस जमाने में उसका स्वरूप कुछ बदल गया है। सामाजिक और सार्वजनिक-हित के कामों में उसका उपयोग होने लगा है।

इस वृत्ति का हमें स्वागत करना चाहिए। परंतु इस समय के दानों में एक बड़ा दोष यह घुस गया है कि दाता का कीर्ति या स्मारक की तरफ बेहद झुकाव बढ़ गया है। हमारे शास्त्रों ने तो गुप्त-दान की ही महिमा गायी है। दूसरे धर्मवालों ने भी ऐसा ही कुछ लिखा है। अगर धनिक अपने दान के परिमाण में ही कीर्ति चाहें तो हम उसे क्षम्य मान लें, परन्तु व्यावसायिक मुनाफाखोरी की तरह कीर्ति में भी मुनाफाखोरी बढ़ गयी है। दान में भी उनकी वृत्ति पूरी व्यावसायिक बन गयी है। कोई किसी संस्था को एक लाख रुपये की मदद देता है, तो वह चाहता है कि उसके बदले में दस लाख के दान की कीर्ति मिले। उदाहरणार्थ किसी संस्था के लिए दो-तीन लाख के मकान की जरूरत है; हम जानते हैं कि संस्था के चलाने में अनेक व्यक्तियों को त्याग करना पड़ता है; कार्यकर्ताओं को आधे पेट रहकर और लम्बी अवधि तक संस्था चलाने की जिम्मेवारी उठानी पड़ती है; इसका मूल्य पैसे में नहीं आँका जा सकता। लेकिन जिसके पास करोड़ों रुपये हैं और जो धन कमाने में शुद्धि-अशुद्धि की परवाह न कर, वह एकाध लाख रुपया देकर सम्पूर्ण संस्था को अपना नाम देने की शर्त रखता है। संस्था के संचालक भी संस्था चलाने की धुन में, लाचारी से या व्यापक पैमाने पर वैसा चल रहा है, यह देखकर ऐसी अनुचित शर्त मान लेते हैं। बड़े-बड़े सत्ताधीश उन संस्थाओं का उद्घाटन कर दाता का गुणगान करते हैं और कभी-कभी इस सारे प्रकरण के फलस्वरूप दाता को अधिक धन कमाने के मौके भी मिल जाते हैं। केवल पैसे के बल पर किसीका गौरव बढ़ना अनीतिपूर्ण ही है। गौरव हो, लेकिन गुण का, धन का नहीं।

धनिक दाता को भी सोचना चाहिए कि अच्छे परोपकारी काम

की सुगंधि अपने आप फैलती है। उसका पुण्य भी अधिक होता है। सौदा करके उसे घटाना इष्ट नहीं है। यह भी सोचना चाहिए कि अगर नाम या स्मारक करना है तो वह आदरणीय होना चाहिए। ऐसे दाताओं के बारे में लोग कहते हैं, थोड़ा सा धन लगाने में ज़ोर क्या लगा ? कालाबाजार में अथवा बेईमानी से काफी कमा लिया है। नाम के लिए दूसरों के दिल में आदर तब ही खड़ा होगा, जब हममें उसके लायक गुण होगा, नहीं तो अनादर भी हो सकता है। एक ज़माना था कि जब अंग्रेजी राज्य द्वारा दी गयी उपाधियाँ जनता में बड़प्पन का कारण मानी जाती थीं। लेकिन आगे चलकर वे ही उपाधियाँ देशद्रोह का चिह्न मानी जाने लगीं। ऐसा समय आ सकता है कि जब केवल पैसे के बल पर खड़े किये गये स्मारक या नाम कभी तिरस्कार के भी पात्र हों। बेहतर यह है कि संस्थाओं को नाम साधु-संतों के या विशेष गुणवाले व्यक्तियों के ही दिये जायँ, जिससे सुननेवाले या देखनेवाले को कुछ स्फूर्ति मिले। उस श्रेय में दान-दाता का भी कुछ अंश रहेगा ही।

परिग्रह और ऐशो-आराम की वृत्ति

कीर्ति के अलावा ऐश-आराम की विशेष सामग्री जुटाना भी पैसे का एक उद्देश्य है। आजकल औद्योगिक नीति का यह भी एक उद्देश्य माना जाता है कि जीवन का स्तर (Standard of living) बढ़े। भारत जैसे गरीब देश में गरीब लोगों के जीवन का स्तर बढ़ाना है और वह ज़रूर बढ़ना चाहिए। लेकिन जब 'जीवन-स्तर बढ़ना चाहिए', इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, तब धनिकों का या जिनका जीवन आज ऐश-आराम का है, उनका जीवनस्तर घटना चाहिए, इसका विचार तो किया ही नहीं जाता। सुविधाएँ प्रायः

उन्हें ही उपलब्ध होती हैं। इस तरह जीवनस्तर के बढ़ाने की बात करना एक प्रकार से धनिकों का परिग्रह बढ़ाने की ही बात हो जाती है। बिना कारण परिग्रह बढ़ाने में सदा असंतोष ही रहता है। मनुष्य की कामनाओं की पूर्ति में ही उनके बढ़ने का बीज है। जहाँ करोड़ों लोग दरिद्रावस्था में हैं, वहाँ थोड़े धनिकों के जीवनस्तर का बढ़ना उचित नहीं है। उल्टे, वैसी चीजों का गरीबों में भी मोह बढ़ता है और अशुद्धि को प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए शरीर और मन को स्वस्थ रखने योग्य चीजों से अधिक चीजों का संग्रह बढ़ाने का विचार करना भारत की वर्तमान दशा में गलत है। समाज में अपरिग्रह-वृत्ति बढ़ने के लिए आवश्यक है कि धनिक तथा सत्ताधीश लोग अपना जीवनस्तर घटावें और अपरिग्रह का उदाहरण जनता के सामने रखें। जहाँ कहीं शान-शौकत, ठाट-बाट, फिजूल-खर्ची दीख पड़े, उसके खिलाफ आवाज उठनी चाहिए और समाज में ऐश-आराम के जीवन के विरुद्ध विचारधारा चलनी चाहिए। ऐसे वातावरण का निर्माण होना चाहिए कि परिग्रह और ऐशो-आराम समाज-द्रोह के लक्षण समझे जायँ। ●●●

दूसरा अध्याय

शुद्ध-व्यवहार की जड़

मेरे खयाल से शुद्ध-व्यवहार की जड़ सत्य की उपासना एवं धर्म है।

आपसी व्यवहार में सत्य-निष्ठा

एक ओर मनुष्य के साथ स्वार्थ-भावना है तो दूसरी ओर उसका जिन-जिन से सम्बन्ध आता है, उनके प्रति कर्तव्य भी है। इस कर्तव्य-बुद्धि द्वारा स्वार्थ का नियन्त्रण होना चाहिए। हरएक मनुष्य की इच्छा रहती है और वह स्वाभाविक है कि दूसरा उसके साथ सचाई से पेश आये, छल-कपट न करे, धोखा न दे। ऐसी हालत में उसका भी यह पवित्र कर्तव्य हो जाता है कि वह दूसरों के साथ उसी तरह पेश आये। यह सचाई केवल दिखावे की न होकर मन, वचन और क्रिया की होनी चाहिए। अन्तःकरण पारदर्शक काँच की तरह स्वच्छ हो, ताकि दूसरे लोग भी देख सकें कि हमारे दिल में क्या चल रहा है। अर्थात्, हममें पूरी सत्य-निष्ठा हो। हमारे अन्तःकरण की वृत्ति सत्यमय हो जानी चाहिए। हमारा दिल और हमारी वृत्ति ऐसी बन जाय कि हमारी इच्छा सदा सत्य-व्यवहार की ही रहे और हम शुद्ध व्यवहार ही करें। शुद्ध व्यवहार के लिए इसके सिवा दूसरी और कौन सी प्रेरणा हो सकती है कि सत्य की हमारी उपासना सब प्रसंगों में और सतत चालू रहे। सत्य धर्म का प्राण है। "नहि सत्यात् परो धर्मः", "नहिं असत्य

सम पातक पुंजा ।" सब धर्मों ने सत्य पर जोर दिया है। महात्माजी तो यहाँ तक कहते थे कि सत्य ही ईश्वर है ।

सत्य का दर्शन ?

सत्य के बारे में सबकी ऐसी मान्यता होते हुए भी अगर यह कहा जाय कि सब जान या अनजान में, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, कुछ-न-कुछ असत्य करते हैं या उनसे असत्य होता है, तो इसमें अतिशयोक्ति जैसी कोई बात नहीं दीखती। भूतकालीन और वर्तमानकालीन कुछ अपवाद जरूर हैं, परन्तु आम जनता की दशा कुछ ऐसी ही है। इस कमजोरी को दूर करने का भरसक प्रयत्न होना चाहिए। स्वार्थ के गुलाम बने रहने में मानवता नहीं है। मानवता तो इसीमें है कि प्रयत्नपूर्वक बुरी वृत्तियों को दबाकर अच्छी वृत्तियों का विकास किया जाय। मनुष्य को चाहिए कि वह प्रकृति का गुलाम न रहकर उससे ऊँचा उठे और अपनी जीवन-शुद्धि करता रहे।

मनुष्य की यह बहुत बड़ी दुर्बलता है कि वह एकाएक अपना दोष कबूल नहीं करता। इसमें उसका अहंकार आड़े आता है। वास्तव में विद्या का परिणाम यह होना चाहिए कि वस्तु जैसी है, वैसी ही हम उसे देखें। परन्तु विद्या आजकल कमजोरी का समर्थन करने में चतुर-सी बन गयी है। एक तो सत्य को पहचानना पहले ही आसान नहीं है। मनुष्य अपूर्ण है और वह किसी न किसी अंश में अपूर्ण बना रहेगा। किस परिस्थिति में कौनसा व्यवहार सत्याचरण है और कौनसा असत्य, इसका सही निर्णय करना कभी-कभी सचमुच मुश्किल हो जाता है। एक उदाहरण लें। कहीं-कहीं सौ या पचास मील के भीतर डाकगाड़ी में तीसरे

दर्जे से प्रवास करने की इजाजत नहीं है; इस कारण कई लोग बिना टिकट के प्रवास करते रहते हैं और टिकट कलक्टर के हाथ में कुछ पैसे रखकर अपना काम चला लेते हैं। कुछ लोग टिकट लेकर ही जाते हैं, परन्तु अपने स्टेशन का टिकट न लेकर सौ या पचास मील के आगे के स्टेशन का तीसरे दर्जे का टिकट लेकर प्रवास करते हैं। यह व्यवहार सत्य के अनुरूप है या नहीं ? प्रवासी कह सकता है कि मैंने इसमें अपना पैसा बचाया नहीं, रेलवे का नुकसान किया नहीं, कुछ ज्यादा ही पैसे दिये हैं। दूसरी ओर रेलवे द्वारा ऐसा नियम बनाने का कुछ कारण तो है ही। मुख्य कारण दूसरे प्रवासियों की तकलीफ कम करने की दृष्टि से भीड़ न होने देना है। नियम के खिलाफ प्रवास करके वे भीड़ तो बढ़ाते ही हैं। इन दोनों दृष्टियों में से सही कौनसी है, इसका निर्णय करना, बहस करने बैठें तो कठिन है, अन्यथा आसान भी। जीवन में इस प्रकार के अनेक प्रसंग आते हैं, जिनमें अमुक व्यवहार सचाई का है और अमुक नहीं है, इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है। अतः हमें यह मानकर चलना पड़ता है कि निःस्वार्थ भाव से और बिना किसी मोह या विकार के जो बात हमारी शुद्ध बुद्धि को सही दीखे, वही व्यावहारिक दृष्टि से सत्य है। जब तक हम उसके अनुसार चलते हैं, तब तक दोष के पात्र नहीं बनते, क्योंकि हम जो कुछ करते हैं, वह ईमानदारी से करते हैं।

असत्य का समर्थन

परन्तु कुछ भाइयों का कहना है कि कौनसा व्यवहार सत्य है और कौनसा असत्य, यह स्पष्ट होते हुए भी हमेशा उसे व्यवहार में लाना लाजिमी क्यों माना जाय ? संतों द्वारा सत्य की महिमा का

गाया जाना और उसका अमल करना एक बात है और रात-दिन सांसारिक व्यवहार चलाना बिल्कुल दूसरी। सदा सत्य न माननेवालों से काम पड़ता है, इसलिए केवल सिद्धांत के पीछे पड़कर और नुकसान उठाकर दूसरों को अपनी भलाई का फायदा उठाने का मौका क्यों दिया जाय? वे यह भी कहते हैं कि ऐसे अनेक प्रसंग हो सकते हैं कि जब अच्छी बात साधने के लिए थोड़ी बुराई का आश्रय लेना अनुचित नहीं मानना चाहिए। आगे बढ़कर वे यहाँ तक भी कहते हैं कि इस त रह का म का देखकर व्यवहार करना ही सच्चा व्यावहारिक सत्य है, उसे असत्य कहना ही गलत है। अपनी इस विचारधारा को स्पष्ट करते हुए वे कुछ प्रसंगों का वर्णन भी करते हैं जो प्रायः काल्पनिक ही होते हैं। एक प्रसिद्ध काल्पनिक उदाहरण यह है कि एक व्यक्ति किसी भले और निरपराध व्यक्ति की हत्या करने के लिए उसका पीछा कर रहा है। मुझे उसका पता मालूम है और पीछा करनेवाला अगर मुझसे पूछे तो मैं गलत पता क्यों न बता दूँ, ताकि उस निरपराध की जान बच जाय और इसका दुष्ट हेतु सफल न हो। इसका इतना ही उत्तर काफी होगा कि ऐसे अवसर पर मैं उत्तर ही न दूँ, बिल्कुल मौन रह जाऊँ। संभव है कि वह गुस्से में मेरी जान ही ले ले। जो लोग सत्य की उपासना में परमत्याग की आवश्यकता नहीं मानते, उनके लिए यह सुझाव बेकार है। फिर भी हमें एक ऊँचे सिद्धांत के लिए बड़े से बड़े त्याग की आवश्यकता माननी होगी।

साधन-शुद्धि का प्रश्न

यह बहस केवल सिद्धांत या किसी पराकाष्ठा के प्रसंग तक ही सीमित रहती तो भी एक बात थी, किंतु बहुत बार तो वह छोटे-छोटे

हानि-लाभ के मौकों के लिए भी पेश की जाती है। यहाँ साध्य और साधन की शुद्धि का प्रश्न खड़ा होता है। कुछ लोग कहते हैं कि अगर हमारा हेतु शुद्ध है, तो साधन की शुद्धि पर इतना जोर देने की आवश्यकता नहीं। वास्तव में देखा जाय तो साधन ही हमारे हाथ की बात है। उसी पर हमारा काबू चल सकता है। साध्य का सफल होना उन अनेक बातों पर अवलम्बित है, जिन पर हमारा वश नहीं चलता। इसलिए केवल साध्य को, जो हमारे काबू के बाहर है, महत्त्व देना और साधन को, जो हमारे हाथ की बात है, गौण मानना गलत होगा। यह भी मानना गलत है कि बुराई से भलाई हो सकती है। अशुद्ध साधनों के अवलम्बन से जगत् में कितने ही अनर्थ हुए हैं।

शास्त्रों के हवाले

ये भाई अपने मत-समर्थन में शास्त्रों का भी आधार लेते हैं। शास्त्रों में ऐसा आधार है या नहीं, यह भी एक प्रश्न ही है; क्योंकि शास्त्र भी अनेक व्यवहारों का वर्णन किसी उद्देश्य से ही करते हैं। शुद्ध-अशुद्ध सब तरह के व्यवहारों को, लोगों को समझाने के लिए, उनमें स्थान देना शायद जरूरी भी हो। लेकिन बहुत बार हम उसका मर्म न समझकर अपने मत के अनुकूल अर्थ निकाल लेते हैं। धर्मराज के "नरो वा कुंजरो वा" प्रकरण से हम यह सार निकालते हैं कि अगर धर्मराज ने भी वैसा किया, तो हमें वैसा करने में दोष क्यों लगना चाहिए? लेकिन उसी प्रकरण के सिलसिले में महाभारतकार ने बता दिया है कि जो धर्मराज का रथ उस कथन के पहले अधर चलता था, वह बाद में धरती पर आ टिका। यानी ग्रंथकार ने उसमें असत्य के दोष को बतला ही दिया है।

इसी प्रकार हिंसा के समर्थन में शास्त्रों का आधार लिया जाता है। यह तो मानना होगा कि जहाँ अन्याय होता है, वहाँ उसके प्रतिकार का भी कोई न कोई इलाज होना ही चाहिए। ऐसा न हो तो समाज का काम चलना मुश्किल हो जाय। अब तक प्रायः अन्याय के प्रतिकार के लिए दण्ड, लड़ाई आदि उपयुक्त माने गये। लेकिन अब दण्ड और लड़ाई का स्थान सत्याग्रह ले सकता है, यह बात महात्माजी ने केवल प्रतिपादित ही नहीं की, एक बड़े पैमाने पर अमल में भी लाकर सिद्ध की। अब जब यह पाया गया है कि सब क्षेत्रों में हिंसा का मुकाबला अहिंसा के द्वारा हो सकना सम्भव है, तो सिद्धांत रूप से यह मानना उचित होगा कि अन्याय के प्रतिकार के लिए अशुद्ध साधनों का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं रह जाती। व्यावहारिक दृष्टि से हम भिन्न क्षेत्रों में अहिंसा के द्वारा कहाँ तक पहुँच सकते हैं, यह बात अलग है। परन्तु सिद्धान्त रूप से सत्य और अहिंसा को अटल मान लेने पर उनकी ओर ही हम धीरे-धीरे निःशंक रूप से बढ़ सकते हैं।

अहिंसा-विरोधी विचार का परिणाम

दूसरों से व्यवहार करने में सत्य के समान ही प्रेम का भी महत्त्व है। जिन पर हमारा प्रेम होता है, उनके प्रति हम छल-कपट नहीं करते। अगर हमारे प्रेम की वृत्ति व्यापक बन जाय, तो किसी के भी प्रति हमसे छल-कपट या अशुद्ध व्यवहार नहीं होगा। विगत तीस-चालीस वर्षों में सत्य और अहिंसा शब्द जोरों से हमारे सामने आये। अहिंसा प्रेम का ही पर्यायवाची शब्द है। इसका भी महत्त्व समझना आसान होना चाहिए। मैं नहीं चाहता कि कोई मुझसे द्वेष करे। मैं प्रेम का भूखा हूँ और चाहता हूँ कि सब मुझ पर प्रेम

करें। अतः मेरा भी धर्म हो जाता है कि मैं सब पर प्रेम करूँ। फिर भी ज्यों-ज्यों महात्माजी ने जीवन के सब क्षेत्रों में, राजनीति में भी, सत्य और अहिंसा पर जोर दिया, त्यों-त्यों भारत में एक वर्ग ने उसके विरुद्ध भी प्रचार किया। "शठे शाठ्यम्" आदि उक्तियाँ सामने आयीं। महात्माजी की हत्या को भी इसी विचारधारा का फल समझना चाहिए। उस कृत्य को व्यक्तिगत समझना गलत होगा। वह व्यक्ति तो एक समूह के मतविशेष का प्रतिनिधित्व करता था, जो मानता था कि महात्माजी देश का बड़ा अकल्याण कर रहे हैं। इसलिए कुछ व्यक्तियों के सिर पर यह भूत सवार हुआ कि साधन-शुद्धि आदि की परवाह न कर उनकी हत्या करने में हर्ज नहीं है। इस जमाने में महात्माजी जैसे की हत्या होना एक ऐसा महान् अनर्थ है, जिससे साधन-शुद्धि के बारे में हमारी आँख पूरी तरह खुल जानी चाहिए।

व्यवहार में सत्य स्वाभाविक बन जाय

अगर हरएक व्यवहार के बारे में हम सोचने बैठेंगे कि उसमें सत्य का अनुसरण है या नहीं, तो शायद निर्णय करना आसान न हो और हर वक्त प्रत्येक व्यवहार के बारे में सोचने बैठें, तो शायद समय ही न मिले। इसलिए आवश्यकता यह है कि हमारी वृत्ति ही दृढ़ अभ्यास से सत्यमय बन जाय, ताकि हमारा हर आचरण स्वभावतः सत्यमय हो और जहाँ भी असत्य हो, हमें वह तुरन्त दीख पड़े। किसी भी सद्गुण का सम्पादन तब ही ठीक-ठीक हुआ मानना चाहिए जब वह स्वभाव-सिद्ध हो जाय। जब तक उसके लिए प्रयास करना पड़ता है, तब तक वह अपूर्ण है और उसे पूर्ण करने की हमें कोशिश करते रहना चाहिए।

सत्य से व्यवहार न चल सकने की दलील

जब कभी सत्यासत्य के बारे में चर्चा होती है, तब यही कहा जाता है कि पूरी सचाई से व्यवहार चलाना मुश्किल होता है। कुछ अपवाद भले ही हों, लेकिन जनता में सामान्य विचार यही पाया जाता है। किसी धंधेवाले को यह विश्वास नहीं है कि उसका धंधा सचाई-पूर्वक किया जा सकेगा। इसमें गरीब-अमीर का भी भेद नहीं दीखता। जिसके पास विपुल धन है, उसे भी अपना कारोबार सचाई से चला सकने में विश्वास नहीं है। व्यापारी कहते हैं—माल के गुण-धर्म के वर्णन में बढ़ावा किये बिना तथा मोल-तोल जँचाने में अन्तर रखे बिना काम नहीं चलता। यही बात कारखानेवालों की और मजदूर-मालिकों की है। शिक्षा-संस्थाएँ, जो सरस्वती के मन्दिर हैं, वहाँ भी निर्मलता नहीं पायी जाती। राजनैतिक क्षेत्र में तो "नृपनीतिः अनेक-रूपा" प्रसिद्ध ही है। दूसरों की तो क्या, वैद्य लोग भी कहते हैं कि अगर मरीज को उसके स्वास्थ्य की सही हालत बता दी जाय तो वह हाय खाकर मर जायगा, इसलिए उसके समाधान के लिए असत्य बोलने में हर्ज नहीं है। असत्य के समर्थन में कुछ-न-कुछ दलीलें मिल ही जाती हैं, जैसे वकालत के धंधेवाले कहते हैं कि वे तो अपने मुवक्किल के मुखमात्र हैं। अगर वकील के मुख से जान-बूझकर भी असत्य निकलता है तो उसका दोष मुवक्किल को लगता है, वकील को नहीं। परन्तु ऐसे समर्थनों में यह भुला दिया जाता है कि ऐसे सारे प्रपंचों में हमारा खुद का भी कुछ-न-कुछ स्वार्थ रहता है। परन्तु चूँकि बहुत से लोग ऐसा करते हैं, बड़े-बड़े भी करते हैं जो समाज में प्रतिष्ठित माने जाते हैं और ऐसे व्यवहारों से उनकी

प्रतिष्ठा को कोई आँच नहीं लगती, तब उसके समर्थन में कुछ अच्छा-सा नाम भी दे दिया जाता है। 'व्यावसायिक ईमानदारी' (Professional Honesty) एक ऐसा ही शब्द-प्रयोग है।

आटे में नमक जितना असत्य

इस सारी परम्परा के कारण ऐसा कुछ खयाल हो गया है कि आटे में नमक की तरह कुछ असत्य कर लेने में दोष नहीं है। परन्तु किस मौके पर असत्य का आश्रय लिया जाय और किस मौके पर नहीं, इसका निर्णय कौन करे ? व्यक्ति खुद ही निर्णय करता है और उसमें अपना स्वार्थ होने के कारण वह अपने अनुकूल ही निर्णय कर लेता है। इस प्रकार दोष का समर्थन होने से दोष बढ़ता जाता है और व्यक्ति नीति से गिरता जाता है। अंत में आटे में नमक के बदले सारा द्रव्य ही नमकमय बन जाता है और हमारे सत्यासत्य का विवेक लुप्त हो जाता है।

हम अपनी दुर्बलता स्वीकार करें

दोष के समर्थन के बदले हमारी विचार-सरणी उससे उल्टी होनी चाहिए। अगर व्यवहार चलाने में दुस्तर कठिनाइयाँ आती हैं और हम अपने को उनका मुकाबला करने में असमर्थ पाते हैं, तो हमें यह मानना चाहिए कि सत्य का सिद्धान्त तो सही है, परन्तु उसका जो आचरण नहीं हो रहा है, वह हमारी दुर्बलता है। किसी भी परिस्थिति में उसका समर्थन करना हमारा ही दोष है। गलती होती है, पर वह फिर से न हो, ईश्वर बल दे कि हम सत्याचरण पर दृढ़ रहें, इस प्रकार कमजोरी कबूल करने में हमारे और समाज के सुधरने की आशा है। धीरे-धीरे बल बढ़ेगा और असत्य कम होता जायगा। अगर हम कमजोरी का समर्थन करते रहते हैं, तो

सुधरने की आशा नहीं रह जाती और आत्मवंचना इतनी बढ़ जाती है कि हम नीचे गिरते जाते हैं। इतना ही नहीं, समाज का अकल्याण कर पाप के भागी भी बनते हैं। हममें यह दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए कि तात्कालिक कुछ नुकसान भी होता दीखे, तो भी अन्त में सत्याचरण लाभदायक ही है। जो व्यक्ति सत्य का अनुसरण करने की कोशिश करता है, उस पर लोगों का विश्वास जमता है, और उससे अन्त में लाभ ही होता है। पारस्परिक सम्बन्धों में विश्वास का बड़ा मूल्य है। जिन्होंने दृढ़तापूर्वक ईमानदारी से अपना काम चलाया है, वे इस बात के साक्षी हैं कि व्यावसायिक कामों में ईमानदारी का फल मिलता ही है। सामाजिक कामों में तो इसमें कोई शंका होनी ही नहीं चाहिए। अगर सत्य में इतना बल न होता तो सत्य पर जोर दिया जाना कब का ही बन्द हो जाता। संकीर्ण दृष्टि से, हमारे अज्ञानवश उसका लाभ भले ही न दीखे, परन्तु अन्त में सत्य की विजय होती ही है। "सत्यमेव जयते।" जितनी हद तक हमारी कमजोरी हटेगी, उतना ही हम उसका महत्त्व अधिक पहचान सकेंगे।

'एकहिं साधै सब सधै'

शास्त्रों ने और संत-पुरुषों ने अनेक सद्‌गुण गिनाये हैं। श्रीमद्‌-भगवद्‌गीता में भी उनकी नामावली कई जगह आती है। दूसरे और भी अनेक सद्‌गुण उनमें जोड़े जा सकते हैं। समाज के कल्याण के लिए और व्यक्ति के भी हित में इन सद्‌गुणों का विकास आवश्यक है। परन्तु इनमें से हरएक का अलग-अलग विकास करना पड़ता हो, सो बात नहीं है। मनुष्य का अंतःकरण एक ही होता है। उसमें शुद्धि-अशुद्धि, सद्‌गुण-दुर्गुण दोनों का निवास एक साथ नहीं रह सकता। मनुष्य की चित्तवृत्ति में कभी-कभी कुछ फर्क जरूर होता है, परन्तु

साधारण प्रवाह एक-सा चलता है। सद्गुणों का विकास समझ-बूझकर प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए। अभ्यास के लिए किसी एक सद्गुण पर अगर जोर देंगे तो दूसरे भी उसके साथ अवश्य आवेंगे। उनकी मात्रा में भले ही फर्क रह जाय, परन्तु गुण की दृष्टि से फर्क नहीं रहेगा। ईश्वर की कृपा से अगर छुटपन में ही सत्संग मिल जाय, चाहे वह उत्तम पुरुषों का हो या सद्ग्रंथों का, तो सद्गुण का विकास आसानी से होता है। बुरी संगति के या बुरे संस्कारों के कारण जो कमजोरियाँ प्रवेश कर जाती हैं, उन्हें हटाना कुछ मुश्किल होता है। परन्तु पुरुषार्थ क्या नहीं कर सकता ? अगर श्रद्धा और दृढ़ संकल्प हो तो बुराई हटकर अच्छाई आती है। कभी-कभी विफलता दिखाई दे तो भी अंत में परिणाम अच्छा ही आयगा। आदमी का स्वभाव बुराईमय नहीं है और सुसंस्कार, सुसंगति तथा शुद्ध वातावरण पाकर बुराइयों का दूर होना कठिन नहीं होता। सद्गुणों में विकास के लिए अगर सत्य चुन लिया जाय, तो हमारी अनेक दिशाओं में प्रगति होगी और दूसरों से व्यवहार करने में भी शुद्धि आवेगी। सत्य की उपासना के अभाव में हमसे अनेक अशुद्ध-व्यवहार होते रहते हैं, जिनका कभी-कभी हमें पता भी नहीं चलता। सत्य के बारे में जाग्रति न रहने के कारण असत्य की आदत-सी पड़ जाती है। अगर हमारी वृत्ति सत्यमय हो जाय, तो ये सारे दोष अपने-आप हट जाते हैं।

धर्म-विचार और अशुद्ध व्यवहार

हम हिन्दू लोग ऐसा कुछ मानते हैं और कुछ अभिमान भी रखते हैं कि अन्य धर्मवालों की अपेक्षा हिन्दू-जाति कुछ अधिक धर्मपरायण है। हमारे शास्त्रों में धर्म और तत्त्वज्ञान के ऊँचे-से-ऊँचे

विचार हैं। ईश्वर-कृपा से अन्य देशों की अपेक्षा भारत में साधु-संतों की संख्या हजारों वर्षों में लगातार अधिक रही है। हमारी संस्कृति का जोर, भौतिक सुख-सुविधाओं की अपेक्षा आध्यात्मिकता पर और भोग की अपेक्षा त्याग पर ज्यादा है। सर्वसाधारण अपढ़ व्यक्ति की जबान पर भी इन गुणों के निर्देशक वाक्यों की छाप पायी जाती है। धर्म के नाम पर देह तक अर्पण करनेवाले तथा कठोर तपश्चर्या करनेवाले अनेक हो गये हैं और अब भी हैं। फिर भी यह प्रश्न रह जाता है कि क्या व्यवहार में दूसरे देशों की अपेक्षा सर्वसाधारण भारतीय जनता की नीति ऊँची है? इसका उत्तर "हाँ" में देना मुश्किल है। अगर हम अधिक धर्मपरायण हैं तो व्यवहार में वह धर्म प्रकट होना चाहिए। क्या धर्म केवल किताबों में या अपने दिमाग में रखने की चीज है? अगर सचमुच में धर्म के प्रति हममें श्रद्धा है तो वह प्रत्यक्ष करनी में उतरनी ही चाहिए। हमारे सब व्यवहारों में शुद्धि आनी चाहिए। क्या धर्म-विचार के साथ अशुद्ध व्यवहार रह सकता है?

धर्म और शुद्ध व्यवहार एक ही बात

हम अपने जीवन की ओर दो दृष्टियों से देख सकते हैं; हालाँकि वे दोनों परस्परावलंबी हैं। एक खुद के संबंध में और दूसरे अन्य लोगों के सम्बन्ध में, जिनके साथ हमारा संबंध आता है। खुद के संबंध को लेकर हमारे जीवन की सार्थकता किस बात में है? अन्य जीवों की अपेक्षा मनुष्य में बहुत कुछ विशेष है। वह अपने दोषों को कम करके अनेक गुण हासिल कर सकता है। इसे हम चित्त-शुद्धि कहते हैं। इसके लिए शास्त्रों में अनेक साधनाएँ बतायी गयी हैं। इन्द्रियाँ और मन काबू में रखकर मन में विकार

खड़े न होने दें तथा काम-क्रोधादि बुराइयों से बचें। शास्त्रों में यह भी बताया गया है कि साधना करके मनुष्य परमपद को पहुँचे। शायद ऐसा दिखाई दे कि आत्म-साधना की दृष्टि से मनुष्य का व्यवहार से संबंध नहीं आता। जो संसार छोड़कर एकांत में चले जाते हैं, उनकी बात अलग है। उनको भी अपने खाने-पीने की व्यवस्था तो करनी या करानी ही पड़ती है। इस कारण दूसरों से थोड़ा-बहुत संबंध आ ही जाता है। परन्तु सामान्यतः मनुष्य अकेला नहीं रहता। वह सामाजिक प्राणी है। उसका विकास समाज की मदद पर ही अवलंबित है। वह अपने शरीर-पोषण के साधन भी समाज से ही पाता है। विद्या, कला आदि समाज से ही सीखता है। उसे आध्यात्मिक साधन भी साधु-संतों से ही मिले हैं। इस तरह उसका दूसरों से व्यावहारिक संबंध कदापि टल नहीं सकता। अतः समाज के प्रति अपना कर्तव्य अदा करने के लिए उसे अपने अंतःकरण की शुद्धि के साथ-साथ समाजोपयोगी सद्गुणों का विकास भी करना चाहिए, जैसे प्रेम, सत्य, दया, सेवा-वृत्ति आदि। धर्म जैसे खुद के लिए है, वैसे वह सारे समाज की धारणा के लिए भी है। अपनी खुद की धार्मिक वृत्ति और दूसरों से व्यवहार, इनमें भेद हो ही नहीं सकता। जैसे कुछ लोग घर में उपयोग के लिए एक तरह की पोशाक रखते हैं और बाहर के लिए दूसरी तरह की। इस तरह का भेद खुद की धार्मिक वृत्ति में, और दूसरों के साथ किये जानेवाले व्यवहार में नहीं हो सकता। एक ही घर में शायद भले और बुरे, दोनों प्रकार के लोग रह लें। लेकिन एक ही दिल में खुद के लिए भलाई और दूसरों के लिए बुराई, अंतःकरण के लिए शुद्धि और बाहर के व्यवहार के

लिए अशुद्धि यानी द्वैतनीति कैसे रह सकती है ? जो भीतर होता है, वही बाहर प्रकट होना चाहिए । जो बाहर प्रकट होता है, उसका असर दिल पर होता ही है । धर्म कहता है कि एक ही ईश्वर ने सबको बनाया है । सब भाई-भाई हैं । आपस में प्रेम रखो । भूत-मात्र का हित साधो । स्वार्थी न बनो । दूसरों के सुख-दुख में अपना सुख-दुख मानो । "घट घट में वह साईं रमता ।" अपने जैसी ही आत्मा दूसरों में है । अगर इन बातों में हमें विश्वास है तो दूसरों के प्रति किये जानेवाले व्यवहार में अशुद्धि कैसे टिक सकती है और उसमें भ्रष्टाचार के लिए स्थान कहाँ ? हमें इस निर्णय पर आना चाहिए कि धर्म और शुद्ध-व्यवहार एक ही बात है । अगर व्यवहार में अशुद्धि है, तो हमारा धर्माचरण उतना ही कमजोर है और जितनी मात्रा में हममें अशुद्धि है, उतने ही हम अधार्मिक हैं ।

पाप-पुण्य का हिसाब

कुछ लोगों ने भोलेपन से ऐसा कुछ मान रखा है कि मंदिर, तीर्थ, देवदर्शन, पाठ-पूजा, भजन-कीर्तन, नाम-स्मरण, दान-धर्म आदि बाह्य उपचार कर लेने मात्र से धर्म की उपासना हो जाती है, सांसारिक व्यवहार में धर्म का संबंध लाने की जरूरत नहीं । एकाध घंटा ऐसे कामों में बिताने पर बाकी के तेईस घंटे चाहे जैसा करने में हर्ज नहीं । कहीं-कहीं तो यह भी समझ लिया गया है कि जिस प्रकार नफे में नुकसान या देने में लेना बाद किया जा सकता है, उसी प्रकार पाप-पुण्य का भी हिसाब हो सकता है, व्यवहार में किये हुए पाप दान-धर्म, पूजा-पाठ आदि से धुल सकते हैं । इस विचार में आत्म-वंचना और धर्म की प्रतारणा है । यह एक प्रकार से ईश्वर को ठगने जैसा ही है ।

'हरिनो मारग छे शूरानो'

हम ईश्वर का दर्शन करना चाहते हैं, पर वह कहाँ होगा ? यह तो सब शास्त्र कबूल करते हैं कि वह मन-बुद्धि-इन्द्रियों के परे है। हम उसका दर्शन उसके बनाये हुए विश्व में ही कर सकते हैं, विशेषकर अपने जैसे ही आकार-प्रकार, सुख-दुख की भावनावाली मनुष्य-जाति में।

"मूरति धोय अन्हवाय बिंजन लै भोग लगाई,
साच्छात भगवान द्वार से भूखा जाई,
पूजौ आतमदेव, खाय और बोलै भाई·····"

अगर हम दूसरे लोगों के साथ छल-कपट करते हैं, तो वह समाज-द्रोह के साथ-साथ मनुष्य में बसे हुए ईश्वर का भी द्रोह है। व्यवहार-शुद्धि का इतना महत्त्व होते हुए भी अगर भ्रष्टाचार चलता है और कायम रहता है तो हिन्दू जाति का दूसरों की अपेक्षा अधिक धर्मपरायण होने का दावा टिक नहीं सकता।

बहुत-कुछ संभव है कि धर्म-मार्ग से चलते हुए हमें अनेक कठिनाइयों का मुकाबला करना पड़े। पर सच्चा पुरुषार्थ उसीमें है और हमारी मानवता की कसौटी भी। यों ही हमें अपने जीवन-काल में अपने शरीर-सम्बन्धी तथा परिवार-सम्बन्धी अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं, तब हमारे कल्याण का एकमात्र आधार जो धर्म है, उसी पर हम दृढ़ क्यों न रहें ? "हरिनो मारग छे शूरानो।" ●●●

तीसरा अध्याय

सूक्ष्म असत्य

सेवाग्राम-आश्रम में महात्माजी की कुटी में दीवार पर एक तख्ती टँगी है, जिस पर रस्किन का यह वाक्य लिखा है:

"The essence of lying is in deception, not in words; a lie may be told by silence, by equivocation, by accent on a syllable, by a glance of the eye attaching a peculiar significance to a sentence; and all these lies are worse and baser by many degrees than a lie plainly worded."

—"असत्य बोलने का मर्म धोखा देने में है, न कि शब्दों में। असत्य बोला जा सकता है मौन से, कूट भाषा से, एक शब्द पर जोर देने से, वाक्य को विशेष अर्थ मिले, ऐसे आँख के इशारे से। ये सब असत्य स्पष्ट शब्दों में कहे गये असत्य की अपेक्षा कई गुना अधिक बुरे और हेय हैं।"

सत्य और अहिंसा का पालन

महात्मा गान्धीजी के नीचे लिखे विचारों का भी हमें ध्यानपूर्वक मनन करना चाहिए:

"जो बात अहिंसा की है, वही सत्य की समझिए। गाय को बचाने के लिए झूठ बोला जा सकता है या नहीं, इस उलझन में पड़कर अपनी नजर के नीचे जो रोज हो रहा है, उसको भूल जायँ, तो सत्य की साधना न हो सकेगी। यों गहरे पानी में पैठना सत्य को ढाँकने का रास्ता है। तत्काल जो समस्याएँ रोज हमारे सामने आकर खड़ी हो रही हैं, उनमें हम सत्य का पालन करें तो कठिन अवसरों पर क्या करना होगा, इसका ज्ञान हमें अपने आप हो जायगा।

"इस दृष्टि से हममें से हरएक को केवल अपने आपको ही देखना है। अपने विचार से मैं किसीको ठगता हूँ? अगर मैं 'ब' को खराब मानता हूँ

और उसको बताता हूँ कि वह अच्छा है, तो मैं उसे ठगता हूँ। बड़ा या भला कहलाने की इच्छा से जो गुण मुझमें नहीं हैं, उन्हें दिखाने की कोशिश करता हूँ? बोलने में अतिशयोक्ति करता हूँ? किये हुए दोष जिसको बता देने चाहिए, उससे छिपाता हूँ? मेरा साथी या अफसर कुछ पूछता है, तो उसके जवाब में बात को उड़ा देता हूँ? जो कहना चाहिए, उसे छिपाता हूँ? इनमें से कुछ भी करते हैं, तो हम असत्य का आचरण करते हैं। यों हरएक को रोज अपने आपसे हिसाब लेकर अपने आपको सुधारना चाहिए। जिसको सच बोलने की आदत पड़ गयी हो, ऐसी स्थिति हो गयी हो कि असत्य मुँह से निकल ही न सके, वह भले ही अपने आपसे हिसाब न माँगे; पर जिसमें लेशमात्र भी असत्य हो, या जो प्रयत्न करके ही सत्य का आचरण कर सकता हो, उसे तो ऊपर बतायी हुई रीति से यही या इस तरह के जितने सूझें, उतने सवालों का जवाब रोज अपने आपको देना चाहिए। यों जो एक महीना भी करेगा, उसे अपने आपमें हुआ परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देगा।"

इस अध्याय के शीर्षक के शब्द कुछ विलक्षण हैं। "सूक्ष्म असत्य"[१] शब्द मुझे महात्माजी से मिला। मैं चाहता हूँ कि यह 'सूक्ष्म असत्य' शब्द चल पड़े। एक भाई दूसरों से अपने हाथ-पैर दबवाया करते थे, जो उचित नहीं था। पूछने पर उन्होंने बताया कि मेरी इच्छा न होते हुए भी मेरे हाथ-पैर दबाये जाते हैं। महात्माजी ने कहा, "इन भाई के ध्यान में यह बात नहीं आयी कि यह बात कहते हुए सूक्ष्म असत्य हो रहा है। अगर इच्छा न हो तो रोज रोज हाथ-पैर कैसे दबाये जा सकते? दृढ़तापूर्वक एक बार मना करने पर दबाना बंद हो ही जाता।"

---

१. जैन-आचार में सत्यव्रत को अणुव्रत और महाव्रत के रूप में माना गया है। 'अणु' का अर्थ है, एकदेशीय पालन, स्थूल पालन। और 'महा' का अर्थ है, सर्वदेशीय पालन, सम्पूर्ण पालन। सुविधा के लिए हम कह सकते हैं कि जो 'स्थूल सत्य' गृहस्थों के लिए कहा गया है, उसमें 'सूक्ष्म असत्य' भी शामिल हो जाता है।

'सूक्ष्म असत्य' शब्द

असत्य के पीछे सूक्ष्म विशेषण लगने से यह खयाल होना स्वाभाविक है कि असत्य सूक्ष्म और स्थूल दो प्रकार का हो सकता है। क्या सचमुच असत्य के ऐसे कुछ भेद हैं या वे किये जा सकते हैं? असत्य व्यवहार करनेवाले की दृष्टि से तो कोई भेद नहीं दीखता, क्योंकि व्यक्ति स्वयं जान सकता है कि वह असत्य व्यवहार कर रहा है या नहीं, दूसरों के खयाल में वह असत्य आये या न आये, या देर से आये।

फिर भी ऐसे कुछ उदाहरण हो सकते हैं कि स्वयं व्यक्ति को भी पता नहीं चलता कि मैं असत्य कर रहा हूँ या नहीं। मनुष्य में अपूर्णता है, अज्ञान है, कई बातों में उसका ज्ञान अधूरा है, गलतफहमी भी रहती है और वह सदा सावधानीपूर्वक सोचता भी नहीं। हर बात में सूक्ष्मता और स्थूलता रहती ही है। विशेषकर मन की प्रक्रियाएँ सूक्ष्म होती हैं। जहाँ तक हमारी दृष्टि स्थूल है, हम मोटे-मोटे दोष ही देख सकते हैं और उन्हें मिटाने का प्रयत्न कर सकते हैं। उतना हो जाने पर भी बाद में दीखता है कि अन्दर छिपे हुए कितने ही सूक्ष्म दोष पड़े हैं। जब तक उन सबका निराकरण नहीं होता, तब तक पूरी शुद्धि नहीं हो पाती और हर व्यवहार की छानबीन किये बिना अशुद्ध व्यवहार टल नहीं सकता। इसलिए प्रत्येक बात के बारे में हमें सूक्ष्म दृष्टि से सोचते रहना चाहिए।

सूक्ष्म असत्य के प्रकार

मैं सूक्ष्म असत्य की व्याख्या नहीं कर रहा हूँ। वह काम मेरी शक्ति के बाहर है। हाँ, मैं यह जरूर चाहूँगा कि कोई विद्वान

वह काम करे। फिर भी मोटे रूप में इस निमित्त से इन बातों का विचार होना चाहिए। मैं जिसे सत्य समझता हूँ, हो सकता है कि वह असत्य ही हो; और दूसरे जिसे असत्य समझते हैं, मैं उसे असत्य न समझता होऊँ; सत्य और असत्य के विषय में शंका हो; मैं तो जानता हूँ कि असत्य है, लेकिन दूसरे नहीं जान सकते या दूसरों से छिपाने की कोशिश करता हूँ; सचमुच में असत्य है, परन्तु बहुत समय से करते आये, दूसरे लोग भी करते हैं, अर्थात् अब व्यावहारिक दृष्टि से वह असत्य माना ही नहीं जाता, इसलिए उसमें कोई दोष नहीं दीखता; किसीकी विशेष हानि नहीं है, ऐसा समझकर असत्य कर लिया जाता है, पैसे-टके का या व्यवहार का सम्बन्ध नहीं आता; केवल दिल-बहलाव के लिए किया जाता है; बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोग करते हैं, इसलिए उस असत्य को प्रतिष्ठा मिल गयी है। इस तरह सूक्ष्म असत्य के अनेक प्रकार हो सकते हैं। इस अध्याय में कुछ उदाहरण दिये गये हैं। इन उदाहरणों से सूक्ष्म असत्य सम्बन्धी आशय कुछ स्पष्ट होगा। किसी समाज या व्यक्ति को दोष देने का या किसीकी निन्दा करने का बिल्कुल इरादा नहीं है।

व्यक्ति का अनेक लोगों से संबंध आता है। लोगों की और पेशों की संख्या भी कम नहीं। व्यवहार भी असंख्य होते हैं। अशुद्धि के उदाहरण भी असंख्य और विविध हैं। उनकी कोई कल्पना देना भी असंभव है। इसलिए कुछ थोड़े-से ही उदाहरण, जो अपने-आप बिना विशेष सोचे-विचारे खयाल में आये, उनका ही उल्लेख यहाँ किया है। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि दोषों की तरह गुण भी अनंत हैं। अशुद्ध व्यवहार चल रहे हैं, तो शुद्ध

व्यवहार भी चल रहे हैं। इसलिए निराश होने या घबराने की बात नहीं है। प्रयत्नपूर्वक जितनी अशुद्धि कम की जा सके, करनी चाहिए।

बेमतलब का असत्य

कई बार हम बिना कारण ही असत्य करते रहते हैं, जिसका शायद हमें भान ही नहीं होता या जिसमें हमें दोष नहीं दीख पड़ता। दूसरों की नजर में हम जैसे हैं, उसकी अपेक्षा अधिक अच्छे दीखें, इस निमित्त से हमारी बोलचाल और अनेक काम ऐसे होते रहते हैं, जिसमें न्यूनाधिक असत्य और दिखावा रहता है। बहुत बार तो इसकी आवश्यकता भी नहीं रहती। जिनके सामने ये क्रियाएँ होती हैं, उनसे कुछ लाभ उठाने की मन्शा भी नहीं रहती। स्वभाव ही ऐसा कुछ बन जाता है कि हमारे व्यवहार में असलियत न रहकर कृत्रिमता आ जाती है। किसी बात के लिए हमारा मत जैसा अनुकूल या प्रतिकूल रहता है, वैसा उस बात के वर्णन में रंग चढ़ जाता है। जिस व्यक्ति से हम बोल रहे होंगे या जिससे हम व्यवहार कर रहे होंगे, उसको देखकर भी हमारे आचरण में फर्क पड़ जाता है। घर में व्यवहार एक प्रकार का, दूसरों के घर पर दूसरी तरह का; मेहमानों के सामने तीसरी तरह का, इस प्रकार जीवन स्वाभाविक न रहकर कृत्रिम बन जाता है। यह बात नहीं कि इसमें कोई विशेष हानि-लाभ है। फिर भी स्वाभाविकता और कृत्रिमता में जो फर्क है, वह तो है ही।

पू० विनोबाजी का बताया हुआ एक किस्सा ध्यान में रखने योग्य है। एक बार कवींद्र श्री रविबाबू साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम में आनेवाले थे। जब इतने बड़े मेहमान आते हैं, तो स्वाभाविक रूप से सब व्यवस्था ठीक-ठाक कर ली जाती है। बहु-

तेरों ने अपने रहने के स्थान आदि ठीक-ठाक कर लिये और सारी चीजें व्यवस्थित जमा लीं। परन्तु विनोबाजी ने कहा कि मैंने कुछ भी विशेष नहीं किया। सदा साफ, स्वच्छ, व्यवस्थित रहना अच्छा है और सदा वैसे ही रहना चाहिए। वैसा रहने की कोशिश तो चलती ही है। अगर उसमें कुछ त्रुटि रहती है, तो उसे मेहमान भी देख लें, उनको कोई चीज दूसरी तरह से बताने की क्या आवश्यकता है? यही अच्छा है कि हम जैसे हैं, वैसे ही हमको वे देखें।

हँसी-मजाक में असत्य

खेल-कूद, हँसी-मजाक में असत्य को स्थान देने में दोष नहीं माना जाता। इसमें शायद इस बात का आधार मान लिया गया है कि किसीको नुकसान पहुँचाने का इरादा नहीं रहता है या कोई हानि-लाभ नहीं है। शायद शुद्ध और अशुद्ध व्यवहार की कसौटी यह मान ली जाती है कि जिसमें खुद का कुछ गैरवाजिब लाभ हो या दूसरों की गैरवाजिब हानि हो, उसे ही अशुद्ध व्यवहार समझा जाय। जिसमें इस प्रकार का हानि-लाभ नहीं है, उसे अशुद्ध क्यों मानें? मोटे रूप में यह ठीक दीखता है। कानून की मर्यादा भी वहीं तक पहुँचती है। परन्तु कानून तो बाह्य आचरण का ही नियंत्रण कर सकता है। अंतःकरण की शुद्धि तक वह नहीं पहुँचता। हमें तो अंतःकरण की शुद्धि तक पहुँचना है। क्या हँसी-मजाक, खेल-कूद पूरी सचाई के साथ नहीं हो सकते? मन को पूरा आह्लाद देने लायक ऊँचे दर्जे का विनोद ठीक सचाई के साथ हो सकता है और वह हमारी सभ्यता और सुसंस्कृति की निशानी है। परन्तु किसीको ठगना नहीं है, इस बहाने हम असत्य आचरण में दोष नहीं समझते।

बच्चों के साथ असत्य

बच्चों के साथ तो हम बहुत कुछ असत्य-व्यवहार करते रहते हैं। एक प्रकार से हम ही उनको असत्य सिखाते रहते हैं। कभी-कभी बच्चा किसी चीज या बात का आग्रह कर लेता है। अगर उसे वह चीज न देनी हो या उसकी चाही बात न करनी हो, तो हम साफ-साफ कह सकते हैं कि ऐसा नहीं होगा। थोड़े ही समय में उसका आग्रह शांत हो जायगा। आग्रह को न निभते देख धीरे-धीरे उसका आग्रह करने का स्वभाव भी छूट जायगा या मंद पड़ेगा; परंतु अक्सर हम उसकी बात टालने के लिए, आगे कभी करेंगे आदि कहकर कोई बहाना बता देते हैं। कुछ समय तक बालक हमारी बात पर भरोसा करता है, क्योंकि उसका हम पर पूरा विश्वास होता है। परन्तु धीरे-धीरे बालक जब देखता है कि उसको दिये हुए वचनों का पालन नहीं होता है, तो वह हमारी बात पर विश्वास करना छोड़कर ज्यादा आग्रह करने लगता है। साथ-साथ वह यह भी सीख लेता है कि जब बुजुर्ग झूठी बात कहकर बहाना कर सकते हैं, तो मैं भी वैसा ही क्यों न करूँ ?

अगर हम इतना सा ही निश्चय कर लें कि कम से कम बिना कारण असत्य व्यवहार नहीं करेंगे, तो हम जितना भी असत्य व्यवहार करते हैं, उसका ५० प्रतिशत अंश अपने-आप घट जायेगा और इसी वृत्ति के कारण, सकारण असत्य की भी मात्रा कम से कम रह जायगी। पर यह तो तब होगा, जब हममें सत्य-निष्ठा हो।

स्कूल-कॉलेजों में

बालक बड़ा होने पर स्कूल-कॉलेज में पढ़ने के लिए जाता है। ये संस्थाएँ सरस्वती के मन्दिर हैं, उनमें अशुद्ध-व्यवहार के लिए स्थान

कहाँ ? वहाँ कोई सांसारिक व्यवहार नहीं चलता, केवल परमार्थ की बात है। फिर भी ऐसी बात तो नहीं है कि वहाँ गड़बड़ी चलती ही नहीं। परीक्षाएँ पास करने की दौड़ में कई लोग अनेक बेजा उपायों का अवलम्बन करते हैं। गैरहाजिरी के चाहे जैसे कारण बताये जा सकते हैं। जहाँ अमुक दिन की उपस्थिति लाजिमी है, वहाँ कभी-कभी बिना उपस्थित रहे भी दूसरों के द्वारा हाजिरी लग सकती है। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध व्यावहारिक-सा हो गया है, आध्यात्मिक तो शायद ही पाया जायगा। जहाँ छात्रों को प्रवेश देने की संख्या मर्यादित होती है, वहाँ किसको प्रवेश मिले और किसको नहीं, यह एक जटिल समस्या बन जाती है।

परोपकार के लिए अशुद्धि

सरकारी विद्यालयों के अलावा कई खानगी विद्यालय भी चलते हैं, जिन्हें सरकार आर्थिक मदद देती है। इन विद्यालयों के संचालक विद्यालय का काम, समाज में विद्या-प्रसार के हेतु सार्वजनिक सेवा समझकर करते हैं। शायद कीर्ति के अलावा उनका निजी कोई स्वार्थ नहीं होता। वे अपना समय देते हैं, खुद आर्थिक मदद करते हैं और दूसरों से भी मदद प्राप्त करने का कष्ट उठाते हैं। पर इस परोपकार के काम में भी अशुद्धि टलती नहीं। सरकारी मदद देने के कुछ नियम होते हैं। फिर भी इस बात पर जोर नहीं रहता कि नियमों के अनुसार ही न्याय्य हिस्सा प्राप्त करने की कोशिश हो। कई बार हिसाब इसलिए गलत रखे जाते हैं कि अधिक-से-अधिक ग्रांट मिले। सरकार भी इससे अनजान नहीं रहती। बेजा ग्रांट न जावे, इसलिए वह भी नाना प्रकार के कड़े नियम बनाती है। पर उनसे भी बचने का कोई-

न-कोई रास्ता निकाल लिया जाता है। इन संस्थाओं के संचालक बड़े प्रतिष्ठित और संस्थाओं की दृष्टि से निःस्वार्थी होते हैं। तब इसमें दोष मानने का साहस कौन करे ?

विद्यार्थी चुनाव के चक्कर में

आजकल कॉलेजों में विद्यार्थियों के संघ बनने लगे हैं। उनमें चुनाव-पद्धति दाखिल की गयी है। दूसरे चुनावों में जो दोष हैं, वे विद्यार्थियों के जीवन में भी प्रवेश पाने लगे हैं। किसी प्रकार चुनाव में जीतना, दल-बन्दी में फँसना, अधिकार के सदुपयोग या दुरुपयोग का खयाल न रखना, अपना पद कायम रखने के लिए तिकड़मबाजी आदि दोष दाखिल होते हैं। हम सोचें कि विद्यार्थी-दशा में ही ये बातें सीख लेने पर आगे चलकर इसका कितना अनिष्ट परिणाम हो सकता है ! परन्तु किया क्या जाय ? जो कुछ समाज में चलता है, उससे विद्यार्थी कैसे बच सकता है ?

डिबेट-पद्धति

जनतंत्र की राज्य-पद्धति में वक्तृत्व की आवश्यकता है। कुछ वर्षों पहले उसे उत्तेजन देने के लिए विद्यार्थियों के भाषण कराकर उनको इनाम बाँटे जाते थे। आजकल 'डिबेट' यानी वाद-विवाद की पद्धति शुरू हुई है। कोई एक विषय मुकर्रर किया जाता है। कुछ विद्यार्थी उसके पक्ष में और कुछ विपक्ष में बोलते हैं। यह डिबेट की पद्धति विद्यार्थियों के सिवा दूसरे क्षेत्रों में भी चलती है। ऐसे अनेक विषय सोचे जा सकते हैं, जिनमें सचमुच में पक्ष और विपक्ष, अर्थात् मतभेद हों, और जिसका जो सच्चा मत हो, उसीके अनुसार वक्ता समर्थन या विरोध करें। परन्तु विषय विवादास्पद है या नहीं, इसकी परवाह न कर कोई भी विषय रख दिया जाता है और वक्ताओं के

निजी मत का भी खयाल न कर कुछ को पक्ष में, कुछ को विपक्ष में बोलने को कह दिया जाता है। कुछ वक्ता तो अपना भाषण यह कहकर ही शुरू करते हैं कि मेरा निजी मत तो भिन्न ही है, परन्तु चूँकि मुझे एक पक्ष में बोलना है, इसलिए उसीका समर्थन करता हूँ, और जब वक्तृत्व 'कला' का प्रदर्शन करना है तो उसके समर्थन में गलत दलीलें देकर भी अपनी कला जोरों से प्रकट करनी पड़ती है। प्रायः सभी डिबेटों में बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोग भी ऐसा करते हैं। कौन किसको दोष दे ? इसमें सूक्ष्म असत्य है या नहीं, यह भी शंका हो सकती है। प्रायः यह प्रणाली पार्लमेंटरी-पद्धति के काम-काज के अनुरूप गुण का विकास करने के लिए अपनायी गयी दीखती है, या अभी जो पार्लमेंटरी तरीका चल रहा है, उसका यह अनुकरण है।

विधान-सभाओं में

विधान-सभाओं का काम बहुत गंभीर है। वहाँ जो कुछ होता है, उसका असर करोड़ों लोगों के जीवन पर पड़ता है। विधान-सभा में दो पक्ष रहते हैं, एक सरकारी और दूसरा विरोधी। वहाँ जो कुछ चलता है, उस पर से कभी-कभी ऐसा लगता है कि विरोधी पक्ष ऐसा मानता दीखता है कि अगर विरोध न हो तो वैसे पक्ष का अस्तित्व ही बेकार है। ऐसा कुछ मान लिया गया दीखता है कि सरकारी योजना का, चाहे वह भली हो या बुरी, विरोध न करना उचित नहीं है। ऐसी दशा में बहस में ऐसी अनेक बातें कही जाती हैं, जिनका विवेक की दृष्टि से या सचाई की दृष्टि से समर्थन नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर कभी-कभी सरकार भी अपनी प्रतिष्ठा में अड़ कर विरोधी पक्ष को उसी तरह का जवाब देती है। प्रत्यक्ष मत देने

में तो पक्ष का सदस्य बँधा ही रहता है। उसके खुद के विवेक के या सच्चे मत के लिए स्थान नहीं। यह सब ठीक होता है या नहीं, इसका यहाँ जिक्र करने की जरूरत नहीं है। सूक्ष्म असत्य अपना क्रिया-कांड किस तरह रचता है, इसका खुलासा करने की दृष्टि से इस बात का उल्लेख करना पड़ा। बड़ी गंभीर बात है। देश की अत्युच्च संस्था में, बहस के लिए ही क्यों न हो, सत्य का अपलाप होता है। यह बड़ी खतरनाक बात है। चुनावों में क्या होता है, इसके बारे में तो लिखना ही व्यर्थ है। कुछ अपवाद छोड़ दें तो सत्य, विवेक और न्यायनीति के लिए वहाँ कोई स्थान ही नहीं दीखता! आत्म-प्रशंसा और पर-निंदा, जो सामान्य-नीति में बड़े दोष माने जाते हैं, उनका वहाँ अतिरेक होता है। समाज की नीतिमत्ता गिराने में ये पद्धतियाँ कितने बड़े साधन बनती होंगी!

प्रमाण-पत्र और सिफारिश-पत्र

आजकल प्रमाण-पत्र और सिफारिश-पत्र का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। व्यवहार में बहुत से अपरिचित लोगों से काम लेना पड़ता है। प्रत्यक्ष परिचय का मौका बहुत थोड़ा मिलता है। इसलिए प्रतिष्ठित लोगों के प्रमाण-पत्रों की जरूरत मानी गयी है। प्रमाण-पत्र किसी विशेष हेतु से नहीं दिया जाता, वह केवल व्यक्ति के गुण-दोष का निदर्शक होता है। सिफारिश-पत्र किसी विशेष हेतु से दिया जाता है कि उम्मीदवार को उससे कुछ लाभ मिल सके। आजकल यह बड़ी शिकायत सुनने में आती है कि नौकरी या काम-काज केवल गुण के भरोसे ही मिलना मुश्किल है। प्रायः सिफारिशों का ही प्रभाव पड़ता है। सिफारिश करनेवाले या प्रमाण-पत्र देनेवाले और उनका विचार करनेवाले दोनों पर बड़ी जिम्मेवारी होती

है। जो वैसे प्रमाण-पत्र या सिफारिश-पत्र प्राप्त नहीं कर सकते, उनकी, गुणी होते हुए भी, कद्र नहीं होती। मनुष्य में गुण-दोष दोनों रहते हैं। परंतु प्रमाण-पत्र में कहीं दोष लिखे नहीं पाये जायँगे। प्रमाण-पत्र में अगर काफी गुणों का वर्णन हो और थोड़े दोष का भी उल्लेख हो, तो शायद उतना-सा उल्लेख व्यक्ति के गुणों पर पानी फेर दे, इस भय से भी दोष का उल्लेख करना खतरनाक माना जाता है। स्वयं सिफारिश में कुछ दोष हैं ही; क्योंकि जिस अधिकारी को निर्णय करना पड़ता है, उसके सामने अनेक उम्मीदवार रहते हैं। गुण देखकर न्याय करना उसका धर्म है। अगर वह सिफारिश से प्रभावित होता है तो किसी-न-किसी दूसरे के प्रति अन्याय होता है। कुछ तो खुद के परिचय के बिना ही केवल मित्रों के कहने से या उम्मीदवार की याचना पर प्रमाण-पत्र या सिफारिश-पत्र दे देते हैं। वे शायद सोचते होंगे कि बेचारा उम्मीदवार कोई पैसा-टका तो माँगता नहीं, केवल दो शब्द ही चाहता है। लिख देने में कंजूसी क्यों की जाय? अथवा केवल अपने शब्द मात्र से किसीका भला होता हो, तो वह क्यों न होने दिया जाय? प्रमाण-पत्रों और सिफारिश-पत्रों के बारे में इस प्रकार शिथिलता होने के कारण उनका महत्त्व ही घट गया है।

आलस और असत्य

आलस के कारण भी सत्य का अपलाप कम नहीं होता। जो काम जिस समय करना चाहिए, उसे उस समय न करने से बाद में उसके बारे में संयोग बदल जाते हैं। बदली हुई परिस्थिति में वह बात ठीक बैठती तो नहीं, पर बैठानी पड़ती है। अभी कोई काम अधूरा रह जाय तो बाधा नहीं, आगे चलकर पूरा कर लेंगे, इस

आशा में हम असावधान रह जाते हैं। बाद में जब झूठ किये बिना वह पार नहीं पड़ सकता, तब बिना कारण और लाचारी से झूठ कर लेते हैं और यह समझकर संतोष मान लेते हैं कि इसमें हमने सचमुच किसीको ठगा नहीं है या किसीको हानि नहीं पहुँचाई है। जो असत्य करना पड़ा, वह तो नाम-मात्र का था। एक उदाहरण से हम इसे स्पष्ट करें।

दस्तावेजों पर गवाहों की साक्ष डालनी पड़ती है। कभी-कभी दस्तावेज पर लिख देनेवाले के हस्ताक्षर हो जाते हैं। पहले साक्षदारों का स्मरण नहीं रहता। दस्तावेज का काम पूरा होने पर बाद में किन्हीं दो व्यक्तियों को लाने का प्रयत्न किया जाता है। वे मिल जाते हैं तब तो उनकी साक्ष डलवा ली जाती है और गवाह भी, बिना जाँच-पड़ताल किये सब कुछ ठीक हो गया होगा, मानकर अपने हस्ताक्षर कर देते हैं। कभी समय पर साक्ष के लिए ठीक व्यक्ति नहीं मिलते हैं तो बाद में लिख देनेवाले की गैरहाजिरी में भी किन्हींसे साक्ष डलवा ली जाती है। कई मामले आपस में निपट जाते हैं और दस्तावेज बिना साक्ष के पड़े रहते हैं। परन्तु जब कभी अदालत में जाने का मौका आता है, तब उस पर साक्ष डलवाने की जरूरत हो ही जाती है। उस समय किसीको मुरव्वत में डालकर साक्ष डलवानी पड़ती है। कुछ भाई ऐसे मिल जाते हैं, जो यह समझकर कि किसी तरह का छल-कपट नहीं है, साक्ष डाल देते हैं। आगे चलकर जब अदालत में गवाह देने का मौका आता है, तब वह "ईमान से सच कहूँगा", ऐसा हलफ करके साफ झूठ बोल देता है कि लिखनेवाले ने दस्तावेज मेरे सामने पढ़कर समझ-बूझकर उस पर हस्ताक्षर किये। अभी नहीं तो आगे

चलकर इस प्रकार काम पूरा कर लेने में बाधा नहीं है, अर्थात् उसमें कोई सचमुच में असत्य नहीं है, ऐसा समझने से यह गड़बड़ी होती है। इसमें आलस्य के साथ यह भी एक दोष है कि इस प्रकार के असत्य को हम बुरा नहीं मानते। अदालतों के बारे में अब यह आम खयाल हो गया है कि वहाँ झूठ बोलने में कोई दोष नहीं है। इतना ही नहीं, असत्य अदालती व्यवहार का एक अंग ही मान लिया गया है।

व्यावसायिक चालाकियाँ

अशुद्धि का बड़ा क्षेत्र व्यावसायिक व्यवहार है। उसमें भी हानि-लाभ की बात छोड़कर दूसरी अनेक बातें ऐसी हैं, जिनमें बिना कारण या केवल मोह-वश असत्य किया जाता है। हम अपनी होशियारी से चालाकी करते हैं, परन्तु दूसरे पक्षवाला भी हमारी चालाकी नहीं पहचान सकता, ऐसी बात नहीं है। फिर भी हम बुरी आदत नहीं छोड़ते। अपने माल की झूठी तारीफ करना तो क्षम्य ही माना जाता है। कम-ज्यादा मोल-तोल बताना मामूली बात हो गयी है। ग्राहक से भाव तय करने की झंझट में कितना समय बर-बाद होता है, इसका कोई हिसाब नहीं। अनुभव तो यह है कि जहाँ बिक्री-दर निश्चित रहती है, जहाँ भाव में कमी-बेशी नहीं होती, वहाँ खरीददार का विश्वास अधिक बढ़ता है। ऐसा न होने की दशा में दूकानदार और ग्राहक, दोनों एक-दूसरे को ठगने की कोशिश करते रहते हैं। दिन-दहाड़े दूकान के सामने परदे डालकर कृत्रिम अँधेरा बनाकर, अन्दर बिजली की रोशनी इसलिए की जाती है कि चीजों का रंग-रूप अधिक आकर्षक दिखाई दे। चीज की वास्तविक उपयुक्तता न बढ़ाते हुए केवल दिखावे के लिए उस पर

कुछ खर्चीली प्रक्रियाएँ करके ग्राहक को ठगने की दृष्टि से उसे आकर्षक बनाने का प्रयत्न होता रहता है। झूठी विज्ञापनबाजी तो प्रसिद्ध ही है। अब तो उसे एक बड़ी कला का रूप मिल गया है। वाणिज्य के विद्यार्थियों को वह बाकायदा सिखायी भी जाती है। जो बात वास्तव में अशुद्ध है, उसे सुन्दर नाम देकर उसका एक बड़ा भारी विज्ञान खड़ा कर लिया गया है और चूँकि आम तौर से बड़े-बड़े लोग भी उसका आश्रय लेते हैं, इसलिए उसमें दोष भी नहीं माना जाता।

टैक्स न देने की वृत्ति

अशुद्ध व्यवहार का एक बड़ा भारी अड्डा 'टैक्स' है। सरकारी टैक्स हो या स्थानिक स्वायत्त संस्थाओं का, सर्वसाधारण का कुछ ऐसा ही खयाल दीखता है कि टैक्स देना टालने में अनीति नहीं है, इतना ही नहीं, बल्कि वह कुशलता और चतुराई की बात है। इन्कमटैक्स जैसे बड़े टैक्सों की बात छोड़ भी दें, क्योंकि उनमें बड़े हानि-लाभ का प्रश्न रहता है, तो भी छोटे-छोटे टैक्सों के बारे में भी हमारी वृत्ति प्रायः टैक्स देना टालने की ही होती है। ऐसे बहुत थोड़े लोग मिलेंगे, जो अगर पकड़े न जायँ तो स्वयं जाकर टैक्स चुका दें। इसलिए जगह-जगह टैक्स-वसूली के लिए चौकी रखनी पड़ती है। फिर भी चौकी कब तक कामयाब हो सकती है? टैक्स की चोरी बहुत-कुछ होती ही रहती है। अगर टैक्स अन्याय का है तो उसके खिलाफ खुल्लमखुल्ला लड़ना चाहिए, अन्यथा राज्य की या स्थानिक स्वायत्त-संस्थाओं की ओर से चलनेवाली सुविधाओं का लाभ उठाते हुए टैक्स देना टालने में ईमानदारी कैसे? म्युनिसिपल कमेटी के चुंगी जैसे टैक्स प्रायः छोटे पैमाने के होते हैं। व्यक्तिगत

रूप से बहुतों को कुछ आने मात्र ही देने पड़ते हैं, परन्तु हमारी इच्छा यही रहती है कि उतने से भी पैसे बच जायँ।

रेल्वे-प्लेटफॉर्म का टिकट एक आने का होता है। पर श्रीमान लोग भी ये चार पैसे बचाने में संकोच नहीं करते। बहुत सी प्रदर्शनियाँ, खेल आदि की टिकटें आने दो आने की रहती हैं। परन्तु युवक लोग, उच्च शिक्षा पानेवाले विद्यार्थी भी बिना टिकट देखने की कुछ-न-कुछ हिकमत लड़ाते रहते हैं। यों तो व्यसनों में हम कितना ही पैसा खर्च करते रहते हैं, परन्तु ऐसी छोटी-छोटी बातों में असत्य करने में नहीं हिचकिचाते। यह मानना ठीक नहीं होगा कि ऐसे दोष गरीब लोग ही करते हैं। बेचारे गरीब तो भय के कारण दोष करने की हिम्मत ही कम करते हैं। बड़े लोग कुछ निडर होते हैं। रेल्वे का एक नियम है कि बालक तीन वर्ष का हो जाने पर उसके लिए आधी टिकट और बारह वर्ष का हो जाने पर पूरी टिकट लेनी चाहिए। पालक को तो मालूम रहता ही है कि बालक की ठीक उम्र क्या है। परन्तु ऐसे कितने लोग होंगे कि जो तीसरा या बारहवाँ वर्ष पूरा होते ही दूसरे रोज से नियम के अनुसार पूरा टिकट लेते हों ?

कुछ ऐसी अशुद्धियाँ होती हैं, जिनमें तुरन्त कोई कपट नहीं दिखाई देता, परन्तु आगे चलकर कपट करने में वे मदद कर सकती हैं। एक वकील साहब ने किसी दूसरे का मकान तीस रुपये मासिक किराये पर लिया था। मालिक की ओर से रसीद पचास रुपये की दी जाती थी और बीस रुपये कानूनी मशविरे के नाम पर कम कर दिये जाते थे। यह युक्ति इसलिए की गयी थी कि आगे चलकर अगर किसी दूसरे को मकान किराये से देना पड़े, तो मालूम पड़े कि

मकान ज्यादा किराये का है। दैवयोग से उनमें झगड़ा हो गया और मामला अदालत तक पहुँच गया। मालिक ने बकाया किराया पचास रुपये माहवार के हिसाब से माँगा। अदालत ने फैसला दिया कि वकील साहब का बचाव ठीक है। वह एक निष्कपट धोखा (Innocent fraud) था।

अखबारवाले अपने 'डाक-संस्करण' पर एक दो रोज बाद की तारीख डालते हैं। ऐसे अखबार कई बार अखबार की तारीख के एक रोज पहले ही पाठक के हाथ में पहुँच जाते हैं। एक साप्ताहिक अखबार मेरे हाथ उस पर छपी हुई तारीख के चार रोज पहले ही पड़ गया। एकाध तारीख का फर्क तो प्रायः सभी अखबारवाले रखते हैं। इसमें दोष देखने की हिम्मत किसे हो सकती है? यह सूक्ष्म असत्य है या नहीं, दोष है या नहीं, यह एक प्रश्न है। लेकिन अनुभव कई बार यह आया कि प्रवासी ने उस रोज की तारीख देखकर अखबार खरीदा और अगले दिन की ही खबर, जो उसने पहले ही दूसरे अखबार में पढ़ ली थी, पढ़कर उसे पछताना पड़ा।

धर्म के नाम पर

धर्म के नाम पर भी अशुद्धि कम नहीं चल रही है। धर्म का धंधा करनेवालों की तो बात ही छोड़ दें। उनमें दूसरे व्यावहारिक धंधेवालों से अशुद्धि कम नहीं है। दुख की बात यह है कि यह सब ईश्वर के नाम पर किया जाता है और भोले लोग खुद विवेक न रखकर अपनी खुशी से ठगी के शिकार बनते हैं। तीर्थ-स्थानों में एक ही बछिया की पूँछ पर अनेक लोग पानी छोड़-छोड़कर सवा-सवा रुपये में गोदान का पुण्य मिल जाने की आशा और विश्वास रखते हैं।

● ● ●

चौथा अध्याय

भ्रष्टाचार रोकने के सम्बन्ध में कुछ सुझाव

[इस पुस्तक के 'आमुख' में लिखा गया है कि जब वर्धा में शुद्ध-व्यवहार समिति का काम चलता था, तब बाहर से अनेक पत्र सलाह और मार्गदर्शन के लिए आते थे। उनमें से जो आम जनता के काम के होते थे, उनके कुछ अंश तथा उन पर दिये गये उत्तर तथा उस उस विषय पर जो विचार सूझते थे, वे 'हरिजन' में प्रकाशित किये जाते थे। उनमें से कुछ लेख श्री किशोरलालभाई मशरूवाला लिखते थे और कुछ मैं। इस अध्याय में उस पत्र-व्यवहार तथा उन लेखों में से कुछ अंश उद्धृत किये गये हैं। उस समय परिस्थिति कुछ भिन्न थी और लेख भी सामयिक थे, तथापि आज की दशा में और आगे भी उनके उपयोग की सम्भावना है। इन स्फुट लेखों और विषयों की विविधता के कारण, विषय के विवेचन में ठीक सिलसिला नहीं दीखेगा; समय की भिन्नता के कारण कुछ बातें शायद अनुपयुक्त भी दीखें। फिर भी पाठक उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तो उनका उपयोग वैसे ही दूसरे मामलों में अथवा दूसरी परिस्थिति मे जरूर हो सकेगा और जिज्ञासु को मार्गदर्शन मिलेगा। पत्रों और लेखों में जीवन-शुद्धि सम्बन्धी जो तथ्य और सत्य है, उसका मूल्य शाश्वत है। इसीलिए, मेरा खयाल है कि उनका भिन्न-भिन्न काल और परिस्थिति में खड़े होनेवाले प्रसंगों में भी विवेकपूर्वक उपयोग किया जा सकता है।]

सही प्रयत्न से सफलता

कंट्रोल की वजह से कई नयी-नयी अड़चनें आजकल उपस्थित होती हैं और ग्राहक बड़ी लाचारी महसूस करता है। गुजरात में एक भाई को, प्रयत्न करने पर भी, नियंत्रित दर पर गुड़ नहीं मिला, यद्यपि बाजार में अधिक भाव पर चाहे जितना गुड़ मिल सकता था। उन्होंने काफी समय तक बिना शक्कर और गुड़ से निभाया।

पर अन्त में उनके धीरज की सीमा आ गयी। खुद गुड़ के व्यापारियों को भी अधिक भाव से गुड़ खरीदना पड़ता था, तब वे उनको कम भाव से कैसे बेच सकते थे? अन्त में उन्होंने अपने जिले के कलक्टर को और उच्च अधिकारियों को भी लिखा कि अगर मुझे पन्द्रह दिनों में नियंत्रित भाव से गुड़ मिलने का प्रबन्ध न कर दिया जायगा, तो अधिक भाव से बाजार में गुड़ खरीद करूँगा और उसकी सूचना सरकार को दे दूँगा। अपने लिए आवश्यक गुड़ की मात्रा भी लिख दी। यह भी लिख दिया कि जिस व्यापारी से अधिक दर से गुड़ खरीदा जायगा, उसका नाम उसकी इजाजत के बिना नहीं बताया जायगा। परिणाम यह हुआ कि कलक्टर साहब ने उनको बता दिया कि अमुक जगह से उनको नियंत्रित भाव से गुड़ मिल जायगा। पाठक देखेंगे कि इन भाई ने व्यापारी के बजाय सारी जोखिम अपने सिर पर ओढ़ ली। हमें सोच-विचारकर ऐसे ही कुछ रास्ते ढूँढ़ते रहना चाहिए, जिससे विषम परिस्थिति में भी हम अपना निर्वाह निर्दोष रूप से चला सकें।

ता० ११-५-'५१.

पुरुषार्थ से रास्ता निकालें

शुद्ध व्यवहार आंदोलन के सिलसिले में एक भाई ने लिखा :

"इस वक्त हमारे यहाँ चार छटाँक का राशन मिल रहा है। मेरे कुटुंब में चार व्यक्ति हैं। मैं निम्न श्रेणी का व्यक्ति हूँ। कुटुम्ब सिर्फ अनाज के ही सहारे जीता है। ऐसी सूरत में अनाज भी बराबर न खाया जाय, तो कुटुम्ब में काम करने की ताकत नहीं रह पावेगी। अगर अनाज आज के समान सही मात्रा में खायँ तो छिपकर इधर-उधर से वह भी बड़ी दिक्कतों के साथ खरीदना पड़ता है। बड़ा धर्म-संकट है। शर्म आती है, पर क्या करूँ? मजदूरी करनेवालों को बहुत ज्यादा खुराक की जरूरत है, जब कि उन्हें छह छटाँक ही राशन मिलता है। मजबूरन उन्हें इधर-उधर से भारी-भारी कीमतें चुकाकर पेट

भरने के लिए अनाज लाना पड़ता है। कृपया सुझाइए कि इस बारे में क्या किया जाय ?"

और भी अनेक भाई ऐसा ही लिखते हैं। सवाल यह है कि यह कम पड़नेवाला अनाज सब लोग खरीदें तो वह कहाँ से मिलेगा ? अगर जरूरत का पूरा अनाज देश में है, तो उसकी कमी नहीं रहेगी। कुछ समय तक लोग संग्रह करके रखेंगे, पर अन्त में वह बाहर आवेगा ही। ज्यादा समय रख छोड़ने से अनाज बिगड़ता है। इधर कई वर्षों से अनाज की कमी रही है। अगर अब तक कुछ संग्रह रखा गया हो तो वह बाहर आ जाना चाहिए था। पर वैसा कुछ हुआ दीखता नहीं। सारी दिक्कतों का कारण तो यही हो सकता है कि अनाज की कमी है। इस हालत में अगर कुछ लोग पैसे के या अन्य बल से अधिक अनाज लेने की कोशिश करते हैं, तो दूसरों को मुकर्रर राशन से भी कम चीज मिलती है। यह मानना होगा कि जितना अनाज हो, उसे सबको बराबर बाँटकर लेना ही न्यायनीति है। इसलिए अभी जो संकट है, उससे कुछ व्यक्ति किसी तरह खुद ही मुक्त होने की कोशिश करते रहेंगे, तो काम नहीं चलेगा। हम सबको पुरुषार्थ करके ही कुछ रास्ता निकालना होगा। दालों और तिलहन पर नियन्त्रण नहीं है, इसलिए अनाज के राशन के अलावा इन चीजों का ज्यादा उपयोग करना होगा। जो चीज मिलती है, उसमें से जरा सा भी अंश बेकार न जाने देकर उसका पूरा-पूरा उपयोग करना होगा। आलू, शकरकंद आदि कई चीजें हैं, जो शरीर को पोषण देती हैं। शाकभाजी तो हैं ही। प्रयत्न करके उनकी पैदाइश बढ़ायी जा सकती है। हर कोशिश और यथासंभव राशन से अधिक अनाज न खरीदते हुए अपना काम चलाना चाहिए। हार-

कर आड़े-टेढ़े मार्ग से ज्यादा अनाज पाने की कोशिश करने से पहले कष्ट भोगकर भी पोषण के लिए दूसरे साधन जुटाने चाहिए। पुरुषार्थ के बल पर ही हम संकट से पार हो सकते हैं। अगर परिस्थिति बुरी है तो कष्ट टल भी कैसे सकता है ? कुछ लोग भले ही अपने लिए सुविधा कर सकें, पर अधिकांश लोगों का इस तरह से छुटकारा कैसे हो सकेगा ? जो धर्म की दृष्टि से सोचते हैं, उनकी जिम्मेवारी भी बहुत बड़ी है। मेरा यह लिखना कठोर जरूर है, पर संकट की अवस्था में सभी के लिए कष्ट भोगने के अलावा दूसरा मार्ग ही क्या हो सकता है ?

इस पर श्री किशोरलालभाई ने ये सुझाव और दिये :

"आरोग्य-शास्त्र के जानकारों की यह साधारण राय है कि हम यदि नीचे लिखी आदतें डाल लें, तो खुराक से बहुत ज्यादा कस निकाल सकते हैं और थोड़ी मात्रा से पूरा पोषण प्राप्त कर सकते हैं :

"१. रोटी न बहुत मोटी बनाना, न बहुत पतली। २. रोटी के बहुत मोटे कौर न भरना। ३. उसे दाल या पतली भाजी आदि में भिगोकर न खाना, सूखी ही खाना। ४. उसे इतना चबा-चबाकर खाना कि गले में उतारने के पहले ही वह पतली खड़ी-जैसी हो जाय। (इसके मानी यह नहीं कि रोटी के बदले खड़ी ही खाना। मुँह की लार में चबाकर बनी हुई खड़ी और आटे को पानी में उबालकर बनायी हुई खड़ी में आरोग्य की दृष्टि से बहुत अन्तर है।) ५. आटे से चोकर न निकालना। ६. पॉलिश किया हुआ चावल न खाना। ७. चावल का पानी उसीमें रख छोड़ना, बल्कि इतना पानी ही न डालना कि वह निकालना पड़े। यदि यह शुरू में न सधे और पानी ज्यादा पड़ने से निकालना ही पड़े, तो वह पानी कभी फेंका न जाय। चावल का बहुत-सा सत्त्व उसीमें आ जाता है। इसलिए उसकी पेज करके पी जाना या दाल, साग आदि में उसे डाल देना चाहिए। ८. चावल भी मुँह में डालकर गले से उतारने की चीज नहीं है। वह भी अच्छी तरह मुँह में पतला हो जाय, तब तक उसे चबाते रहना चाहिए। आरोग्य-शास्त्री बताते हैं कि इस तरह खुराक का

पूरा कस निकालने से ९ औंस खुराक जल्दी खायी हुई १४ औंस खुराक से ज्यादा शक्ति दे सकती है।"

ता० २-५-'५१.

व्यवहार में साधन-शुद्धि

राजस्थान से एक भाई ने लिखा :

"खनिज पदार्थों का काम करनेवालों के लिए यह नियम है कि पहले १०० रुपये फीस भरकर वे सरकार से सर्टिफिकेट ऑफ अप्रूवल (सम्मति-पत्र) हासिल करें। यह सम्मति-पत्र देने से पहले कुछ खानापूरी करनी पड़ती है। उसमें एक चीज यह भी है कि आर्थिक स्थिति के लिए बैंक से पूछताछ करते हैं और बैंकवाले, जिनका खाता होता है, उनके लिए लिख भी देते हैं। कानून की दृष्टि से इतना ही काफी होता है। पर सब कुछ सरकारी कर्मचारियों पर निर्भर है। असिस्टेंट डाइरेक्टर ऑफ माइन्स के यहाँ से कागज जयपुर के डाइरेक्टर ऑफ माइन्स के पास भेजा जाता है, जहाँ महीनों लग जाते हैं और फिर वहाँ से वह मन्त्री के दफ्तर में जाता है। इस तरह उस कागज को पहली सीढ़ी से आखिरी सीढ़ी तक निकलवाने में महीनों गुजर जाते हैं और कर्मचारियों को कुछ दिये-लिये बिना काम निकालना असंभव-सा होता है। प्रॉस्पेक्टिंग लाइसेन्स पाने के लिए भी काफी समय लग जाता है।

"सबसे बड़ी दिक्कत इस काम में सरकारी कर्मचारियों की है, जो कागज को दबाकर रख देते हैं। अतः काम करनेवालों को कुछ देना ही पड़ता है, अन्यथा काम नहीं होता।

"मेरी स्वयं की इस काम में काफी दिलचस्पी होने से मैंने यह जिम्मेवारी उठायी, पर लगातार आठ महीने के अनुभव से जो चीज मिली, वह यही कि बिना किसीको कुछ दिये-लिये काम

निकालना असंभव है। छह महीने का वक्त तो कानून से काम निकलवाने की सनक में बरबाद कर देना पड़ा। हजारों रुपये खर्च हुए। कमाई गयी, मजदूरों की रोजी भी गयी। आखिर जाकर कारकुनों से मिलकर कागज निकलवाने पड़े, जो अकारण ही रुके पड़े थे। मैं आपको बताऊँ कि यदि यही रास्ता मैं छह महीने पहले अख्तियार करता तो मेरे साथ के जो काम करनेवाले हैं, वे कम-से-कम दो लाख रुपये कमाते, हजारों रुपये मजदूरों को मजदूरी के रूप में बँटते, सरकार को रॉयल्टी के रूप में पैसा मिलता और राष्ट्र को डालर की प्राप्ति होती। वास्तविकता यह है कि मेरे कागजों में कोई ऐसी कमी नहीं थी, जिसको इस तरह का ढंग अपनाकर दूर करने की आवश्यकता पड़े। मैंने इसमें न तो कोई बेजा फायदा उठाया और न कोई गैरकानूनी चीज हुई—सिवा इसके कि जो कागज अकारण ही रुके पड़े थे, वे जल्दी निकल गये।

"मैं स्वयं महसूस करता हूँ कि इस तरह का ढंग अपनाकर काम निकलवाना अनीतिपूर्ण है। पर क्या थोड़ी सहूलियत पाने के लिए किसीको कुछ दिये बगैर काम नहीं चले तो कानून भंग किये बिना कुछ देकर काम जल्दी कराना, जिससे व्यक्ति, समाज व राष्ट्र सभी का हित हो, इष्ट नहीं हो सकता ?

"यह कोई ऐसा काम नहीं था, जिसे अन्न या वस्त्र की तरह चोर-बाजार में ले जाना पड़े। जनता के प्रति गैर-जिम्मेवारी का तो प्रश्न ही नहीं; तो फिर ऐसे मामलों में इस तरह पैसा देकर काम निकलवाने को रिश्वत के बजाय दूसरा नाम क्यों न दिया जाय ?

"मुझे तो ऐसा लगता है कि जो मामले साफ हैं, जिनमें चोरी, धोखाधड़ी या राष्ट्र के प्रति गद्दारी जैसी कोई चीज नहीं है

और जो स्वार्थ के साथ परमार्थ भी अच्छे ढंग से साधते हैं, ऐसे कामों को जल्दी करवाने का और कोई चारा न हो तो क्या ढंग अपनाया जाय, यह साफ होना चाहिए। अफसर लोग कोई सुनवाई नहीं करते। उल्टे, अफसरों से काम बिगड़ता ही है। पक्षपात का बोलबाला है।"

यह लंबा उद्धरण इसलिए दिया गया है कि लेखक का विचार उसके ही जोरदार शब्दों में पाठकों के सामने आवे। ऐसे सवाल व्यवहार के बहुत से क्षेत्रों में खड़े होते हैं, विशेषतः अदालती काम-काज, रेल्वे आदि में। जिनका अदालतों के काम से परिचय है, वे जानते हैं कि वहाँ के कारकुनों द्वारा गरीब देहाती कितने लूटे जाते हैं। इस दशा में थोड़ा-सा कुछ ले-देकर अपना काम निकाल लेने के आसान मार्ग का सहारा लेना लोग बेहतर मान लेते हैं, नहीं तो समय और शक्ति बरबाद होती है और पैसे की भी हानि उठानी पड़ती है।

पर लेखक ने तो यह प्रश्न खड़ा किया है कि जहाँ अपना बेजा स्वार्थ साधने की बात नहीं है, केवल हक की बात करा लेनी है, वहाँ कुछ दे देवें तो उसे रिश्वत क्यों कहें और अनीति क्यों समझें ?

इसमें साधन-शुद्धि का प्रश्न है। एक विचारधारा ऐसी है कि अगर हमारा उद्देश्य शुद्ध है तो किसी भी साधन से हम उसे सफल क्यों न करें ? आखिर हमारा प्रयास समाज की भलाई के लिए ही तो है न ? वे इसे व्यावहारिक सत्य और सयानापन मानते हैं। गांधीजी ने साधन-शुद्धि के बारे में काफी लिखा है। यहाँ अधिक लिखने की जरूरत नहीं है। जिनको तत्त्व के मूल तक पहुँचना है,

उन्हें बिला शक समझ लेना चाहिए कि अंत में बुराई का फल भला नहीं हो सकता, कुछ तात्कालिक लाभ भले ही दीख पड़े। व्यक्तियों द्वारा ऐसे अशुद्ध साधनों का प्रयोग होते रहने से ही सामुदायिक अशुद्धता बढ़ती है।

देनेवाले की दृष्टि से इस प्रकार पैसा देने को रिश्वत न मानें तो भी लेनेवाले की दृष्टि से वह रिश्वत के सिवा और क्या है? कर्मचारी का कर्तव्य है कि वह ऐसा काम समय पर दक्षता से कर दे, जिसके लिए वह वेतन पाता है। अगर उसमें वह इस तरह ज्यादा पैसा लेने की इच्छा रखता है तो वह अपने पद का बेजा फायदा उठाता है। इस तरह पैसा लेते रहने से रिश्वत लेने की आदत बढ़ती है और कर्मचारी के काम में ढील-ढाल होती है। वह समझ लेता है कि अगर मैं काम करने में देर करूँगा तो कुछ-न-कुछ अवश्य मिल जायगा और यह प्रथा ही बन जाती है कि काम में ढील करें। जिनका उनसे काम पड़ता है, वे भी सोच लेते हैं कि आखिर कुछ दिये बिना तो काम निपटेगा नहीं, फिर बिना राह देखे पहले से ही कुछ दक्षिणा क्यों न दे दी जाय, ताकि काम जल्दी बन जाय और आर्थिक हानि न हो। इस प्रकार यह मान्य रूढ़ि बन जाती है, जो बहुतों को अखरती नहीं और जिसे दुरुस्त करने की अधिकारियों को भी सख्त जरूरत नहीं दीखती। जिनके सामने केवल व्यक्तिगत स्वार्थ का प्रश्न है, उनके लिए भी यह बात दोषास्पद है। पर जो देश का यह कलंक दूर करना चाहते हैं, उनका तो फर्ज ही है कि वे कष्ट उठाकर और त्याग करके ऐसे दोषों को हटावें, न कि नीति के गलत अर्थ को अपनाकर अपना

काम निकाल लें तथा गलत दलीलों से अपनी गलती का समर्थन करने का प्रयास करें।

सब सरकारों को इस दोष की ओर गहरा ध्यान देना चाहिए। यह रोग बहुत फैला हुआ है। इससे सरकारों की बड़ी बदनामी होती है और समाज में अनाचार फैलता है। अगर अधिकारी लोग इस ओर ध्यान देवें, तो यह दोष बहुत कम हो सकता है। अधिकारी लोग प्रायः ऐसे दोषों की तरफ से आँख मूँद लेते हैं। अगर शिकायत होने पर दोष दीख पड़े और कर्मचारी को उपयुक्त सजा दी जाय, तो उसका दूसरों पर असर होता है। मुझे कुछ ऐसे अधिकारी मालूम हैं, जिनके द्वारा शुद्धि का प्रयत्न होने पर ऐसी रिश्वत बहुत घट गयी थी। खुद अधिकारी को चाहिए कि वह बिना शिकायत हुए भी इस विषय में सजग रहे। अगर उसके मातहतों को उसके रुख का पता चल जाय, तो वे खुद ही ऐसी रिश्वत लेने की हिम्मत नहीं करेंगे।

लेखक ने जो मामला पेश किया है उसमें, और ऐसे ही अन्य मामलों में एक कारगर उपाय यह है कि एक ऐसा नियम बनाकर, शायद नियम तो होगा भी, उसका अमल सख्ती से किया जाना चाहिए कि जो दरख्वास्त आवे, उसकी पेशी की तारीख बिना अपवाद मुकर्रर कर ही दी जाय। अगर पहली पेशी में काम न निपटे, तो दूसरी, तीसरी—इस प्रकार उसका निर्णय होने तक पेशी की तारीख बराबर दी जाती रहे और उस रोज मामला अधिकारी के सामने अवश्य रखा जाय, जैसा कि दीवानी मुकदमों में किया जाता है।

ता० ९-६-'५१.

प्रतिकार का अभाव

व्यवहार में शुद्धि रखने के प्रयत्न में आनेवाली अनेक दिक्कतों के बयानों से, जो दफ्तर में लगातार आ रहे हैं, पता चलता है कि परिस्थिति बड़ी विषम है और सचमुच दिक्कतें भी बहुत बड़ी हैं। फिर भी दिक्कतों के बारे में एक बात ध्यान में ला देना जरूरी है। दिक्कतें हैं, पर हमारी ऐसी कुछ आदत-सी हो गयी है कि हम उनका मुकाबला करने की बात सोचते ही नहीं। कहीं कुछ थोड़ी-सी अड़चन आयी कि झट आड़े-टेढ़े मार्ग से ही उसे रफा करने में लग जाते हैं। अगर उनका कुछ मुकाबला करने की सोचें तो मुझे विश्वास है कि बहुत-से मामलों में सही रास्ता निकल सकेगा, पर हम थोड़ी-सी भी तकलीफ सहन नहीं करना चाहते। यह भ्रष्टाचार बढ़ने का एक बड़ा कारण है। चीनी की कमी हो तो हम कुछ समय उसके बिना भी निभा सकते हैं। गुड़ से तो काम चला ही सकते हैं। रोजाना एक छटाँक चीनी खाने की आदत हो तो आधी छटाँक से भी काम चल सकता है। गेहूँ की कमी हो तो कुछ चावल से भी निभ सकता है। चावल की कमी गेहूँ से पूरी की जा सकती है। दोनों की कमी ज्वार आदि अन्य अनाजों से भी पूरी की जा सकती है। पर हम अपनी आदत में कुछ भी फर्क नहीं करना चाहेंगे और पास में पैसा है, इसलिए काले-बाजार से महँगी चीज खरीदकर अपने आराम में कमी नहीं होने देंगे। गरीब लोग अपना काम कैसे चलाते हैं, यह हम देखते ही नहीं। हम कुछ संयम से काम लें, तो इतनी अशुद्धता न करनी पड़े।

रिश्वत : एक सर्वसाधारण प्रथा

कहीं-कहीं रिश्वत एक सर्वसाधारण प्रथा बन गयी है, उसकी दरें

भी मुकर्रर हो गयी हैं। बिना माँगे ही कर्मचारी को रिश्वत दे दी जाती है। यह आदत यहाँ तक बढ़ चुकी है कि उसमें देनेवाले को कोई दोष दीखता ही नहीं। यह राजमार्ग या महाजनों का पंथ-सा बन गया है। अगर ऐसे दोष हमें सचमुच चुभें और हम उनका मुकाबला करने की कोशिश करते रहें, तो बहुत बार हानि हुए बिना ही हम उनसे बच सकते हैं।

शुद्धि के प्रयत्न में आफत

यह नहीं कि मुकाबला करने का मार्ग सदा सरल रहेगा। वह काँटों का मार्ग है और आज की विषम परिस्थिति में दुस्तर-सा है। जिन कर्मचारियों का हम मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ेंगे, वे अनेक प्रकार से हमें सता सकते हैं। पुलिस-विभाग का मुकाबला करना तो टेढ़ी खीर होगी। गुण्डों की मार्फत लोग सताये जा सकते हैं और झूठे मुकदमे भी चलाये जा सकते हैं। सरकारी सप्लाई-विभाग से व्यापारियों का रात-दिन काम पड़ता है। अगर कर्म-चारियों की शिकायत की जाय तो वे नाराज होकर लोगों को अनेक प्रकार से संकट में डाल सकते हैं। कुछ भाइयों की शिकायत है कि भ्रष्टाचार रोकने के प्रयास में उन पर अधिकारियों की नाराजी हुई और कुछ झूठे मुकदमे चलाये गये, जिनके फलस्वरूप उनके व्यव-साय को तो धक्का पहुँचा ही, साथ ही मुकदमों की पैरवी करने में, वकील, साक्ष आदि के खर्च में हजारों-लाखों की हानि भी उठानी पड़ी। ऐसे आघात कैसे सहन किये जायँ ? पहली बात तो यह है कि जो हिम्मत नहीं रखते, वे बिना सोचे-विचारे इस तरह आगे न बढ़ें। यह मानकर चलना चाहिए कि शुद्धिकरण में तकलीफ

भोगनी ही पड़ेगी। फिर भी मैं यही कहूँगा कि हिम्मत हारना अच्छा नहीं है। कष्ट सहन किये बिना भ्रष्टाचार कैसे मिटेगा? आफत झेलने को तैयार रहना पड़ेगा। झूठे मुकदमे चलें तो उनकी पैरवी सचाई से ही करनी है। यथासंभव मुकदमा लड़ने की झंझट से बचना श्रेयस्कर होगा। हमें समझ लेना चाहिए कि इस अखाड़े में हमारे प्रतिस्पर्धी बड़े प्रवीण होते हैं। इतने से ही संतोष कर लेना बेहतर होगा कि हम अपना सच्चा-सच्चा बयान दे दें और अधिकारियों या न्यायाधीशों को जो कुछ करना हो, करने दें। शायद नतीजा यह हो सकता है कि हमारा अपराध न होने हुए भी हमें सजा भुगतनी पड़े। वह सहन करने की तैयारी पहले से ही होनी चाहिए। कई भाइयों के मन में सार्वजनिक बेइज्जती का डर रहना स्वाभाविक है। तथापि अगर हम सच्चे हैं तो हमें इसमें निडर रहना चाहिए। आखिर न्यायाधीश का फैसला वेद-वाक्य तो है नहीं। न्यायाधीश कुछ नियमों से बँधा रहता है। उसके सामने जो सबूत आता है, उस पर से उसको निर्णय करना पड़ता है। अगर सबूत गलत रहा तो उसका निर्णय गलत होगा ही। अदालत का निर्णय कुछ भी हो, पर आस-पास के समाजवाले, जिनमें हमारी बेइज्जती का डर रहता है, अच्छी तरह से जान सकते हैं कि सत्य कहाँ है और हम सचमुच अपराधी हैं या नहीं? हमें विश्वास रखना चाहिए कि अन्त में सत्य के आग्रह का परिणाम बुरा नहीं हो सकता, तकलीफ भले ही भोगनी पड़े। बलिदान किये बिना कोई बड़ी बात सिद्ध नहीं होती। आज देश में जो भ्रष्टाचार चल रहा है, उसको घटाने के लिए अनेक व्यक्तियों को बलिदान करने के लिए तैयार होने की जरूरत है।

मेहमानरूपी दिक्कत

पहले ही राशन बहुत कम, फिर मेहमान आ जावे तो क्या किया जाय? खुद की जीवन-यात्रा किसी प्रकार सुखम्-दुःखम् चलायी जा सकती है, परन्तु अतिथि-धर्म कैसे पाला जाय? अतिथि का मतलब यही कि उसकी आने की तिथि नियत नहीं, संख्या भी नियत नहीं। आवागमन के साधनों की सुविधा के कारण इन दिनों उनका आना-जाना भी बढ़ गया है। राशन के नियम भी कुछ ऐसे हैं कि एक सप्ताह से कम रहनेवाला मेहमान नहीं गिना जा सकता। उसके लिए राशन-कार्ड बनाना हो तो मेहमान के आकर चले जाने के बाद ही सामान हाथ आता है। इस दशा में बेचारा यजमान भी क्या करे? पर यह स्थिति मेहमानों के लिए एक चेतावनी है। उनको चाहिए कि वे जहाँ कहीं जावें, वहाँ खुद अपने साथ अपने काम का आटा आदि कुछ सामान ले जावें। शायद यजमान को कुछ संकोच हो कि उनकी चीज का उपयोग कैसे करें? पर यह संकोच हटाना ही हो, तो वह मेहमान को पैसा देकर हटाया जा सकता है। यह सूचना है तो कुछ अजीब, पर शास्त्रों में आपद्धर्म जैसा शब्द है ही। जो चीज मिलती ही नहीं, उसके लिए ऐसा कुछ प्रबन्ध करना गैर वाजिब नहीं समझना चाहिए।

मालिकरूपी दिक्कत

कई भाई नौकरी-पेशा हैं। वे खुद के जीवन में शुद्ध व्यवहार रखने में विशेष दिक्कत महसूस नहीं करते, पर कहते हैं कि 'मालिक के, जो बहुत करके धनवान ही होते हैं, काम में उनकी इच्छानुसार कुछ गड़बड़ी करते रहना पड़ता है। अगर न करें तो नौकरी छोड़ देनी पड़ती है। इस दशा में क्या अपने निजी जीवन तक शुद्धि को

सीमित करके संतोष मान सकते हैं और शुद्ध व्यवहार-आन्दोलन में शरीक हो सकते हैं ?' मानव-हृदय के ऐसे टुकड़े नहीं किये जा सकते। जो दूसरों के नाम पर अशुद्धि करेगा, वह निजी काम में भी अशुद्धि करने को ललचायेगा ही। निजी काम में अशुद्धि के प्रति ग्लानि होगी, तो मालिक के अशुद्ध कामों में भी ग्लानि रहेगी ही। उसका धर्म है कि वह मालिक को समझावे और मालिक के काम में भी अपनी ओर से अशुद्धि में हिस्सेदार न बने।

ता० १४-६-'५१.

सरकारी कर्मचारी और व्यापारी वर्ग

श्री किशोरलालभाई मशरूवाला ने सरकारी अफसरों एवं व्यापारियों में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार के संबंध में उनको आगाह करते हुए लिखा :

"श्री जवाहरलाल नेहरू बड़ी दृढ़ता के साथ कहते हैं कि 'नियन्त्रण नहीं उठाये जा सकते, क्योंकि इनके उठते ही गरीबों को भूखे-नंगे रहने की नौबत आ जाती है, मध्यम वर्ग परेशानी में पड़ जाता है। जनता के सेवक के नाते वे इस स्थिति को हरगिज दावत नहीं दे सकते' फिर भले ही भ्रष्टाचार खुल बढ़े।

"मैं इस सिलसिले में सर्व-सेवा-संघ की ता० ७-७-'५१ की वर्धा की बैठक में जो प्रस्ताव इस बारे में स्वीकृत हुआ, उसकी ओर पाठकों का ध्यान खींचना चाहता हूँ।*

"भ्रष्टाचार की बात लें, तो अनियन्त्रित और नियन्त्रित, दोनों ही तरह के बाजारों में बेईमानी और भ्रष्टाचार चलता है। यहाँ दो में से किसी एक का चुनाव करना है। अनियन्त्रित बाजार में पैसा इकट्ठा करना ही जिनके जीवन का ध्येय हो गया है, ऐसे बेईमान और भावनाशून्य व्यापारी मुनाफाखोरी की

* देखिये, इसी पुस्तक में पृष्ठ २०-२१.

होड़ में जुट जाते हैं, तथा जिनके पास पैसे की कमी नहीं है, ऐसे स्वार्थी ग्राहक हर तरह के माल का अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह करते हैं। नतीजा यह होता है कि कीमतें चोटी पर चढ़ जाती हैं और दुर्भिक्ष की कोई बात न होते हुए भी गरीबों के लिए भयानक दुर्भिक्ष की स्थिति पैदा हो जाती है।

"नियन्त्रणों से होनेवाले भ्रष्टाचार की बात तो कई बार कही गयी है और मानी भी गयी है; लेकिन अनियन्त्रितता का भ्रष्टाचार और भी भयानक होता है और उसे रोकना भी ज्यादा कठिन है। इसके सिवा सरकार यह उम्मीद करती है कि अनुभव ज्यों-ज्यों बढ़ेगा, वह नियन्त्रणों की व्यवस्था के दोष दूर करेगी और भ्रष्टाचार कम होगा। श्री नेहरू ने इस प्रयत्न में जनता का सहयोग भी माँगा है।

"बहुत सोच-विचार के बाद शुद्ध व्यवहार-आन्दोलन के चालक इस निर्णय पर आये हैं कि सर्वोदय और समान सामाजिक न्याय की परिस्थितियाँ पैदा करने का एकमात्र उपाय यही है कि हर नागरिक शुद्ध व्यवहार का पालन करे। शुद्ध नैतिक जीवन का अर्थ ही है, संयमित जीवन। अगर हम अपने जीवन पर स्वेच्छा से संयम नहीं रखते, तो जो जनता के कल्याण का उद्योग करते हैं, जैसे गुरु, धर्म या संप्रदाय, समाज, सरकार आदि, वे बाहरी नियंत्रण लादेंगे। हरएक का अपना विशेष ढंग होगा, लेकिन वे बाहरी नियन्त्रण ही होंगे। बाहरी नियन्त्रण अनगढ़ और भौंड़े होते हैं और समाज के जैसी जटिल संघटना में उनका प्रयोग हर जगह नियम और न्याय का अनुवर्तन नहीं कर सकता। इसलिए जनता के किसी-न-किसी वर्ग को उनसे कुछ कठिनाई और असंतोष तो होता ही है। लेकिन लोग स्वेच्छा से यदि अपने नियन्त्रण आप ही करें तो व्रतधारी को धन न सही, संतोष तो अवश्य मिलेगा और समाज का भी हित होगा। शुद्ध व्यवहार ऐसे स्वेच्छा-स्वीकृत आत्म-संयम का ही दूसरा नाम है।

"इस प्रयत्न में सरकारी कर्मचारी और व्यापारी बहुत बड़ा काम कर सकते हैं। भ्रष्टाचार की परिस्थिति के निर्माण में इस जोड़ी का बड़ा हाथ है। एक तरफ यह शक्तिशाली जोड़ी है, दूसरी तरफ गरीब ग्राहक हैं और कुछ इने-गिने ईमानदार व्यापारी।

"सरकारी कर्मचारियों और व्यापारियों में से कौन किसके भ्रष्टाचार के लिए उत्तरदायी है, यह कोई नहीं कह सकता। इस परिस्थिति के निर्माण में दोनों का समान योग है। ताली जिस तरह दोनों हाथों से बजती है, उसी तरह दोनों के सहयोग से भ्रष्टाचार की उत्पत्ति हुई है। और यद्यपि व्यापारी के पास भ्रष्टाचार का साधन है, फिर भी उसे सीधा करने और राह पर लाने की शक्ति सरकारी अधिकारी के ही पास है, भले ही व्यापारी कितना ही पैसेवाला और प्रभावशाली क्यों न हो। अगर मन्त्री और सरकारी अधिकारी निर्भय हों, अपने मार्ग पर दृढ़ हों और परिचय, दोस्ती आदि के अनुचित प्रभावों से मुक्त रह सकें, तो व्यापारी करोड़पति ही क्यों न हो, उसका सारा पैसा भी उसे बचा नहीं सकता।

"मन्त्रियों को तो पैसे के लोभ में पड़कर उन्हें दण्ड से बचाने या विशेष सुविधाएँ देने का कोई कारण भी नहीं है। भ्रष्टाचार के लिए किसी भी तरह का कोई बहाना वे नहीं दे सकते। फिर रहे सरकारी कर्मचारी। उनमें निचली श्रेणी के नौकरों को भी जितना वेतन और स्थिरता होती है, उतनी उनके ही दर्जे के समान शिक्षा और योग्यतावाले गैर-सरकारी नौकरीवाले व्यक्तियों को नहीं मिलती। उन्हें जानना चाहिए कि उन्हें अपनी जगह रहकर देशवासियों की सेवा उसी वृत्ति से करनी है, जैसी कि रचनात्मक संस्थाओं के, भारत-सेवक-संघ तथा उसी किस्म की दूसरी संस्थाओं के सदस्य, जिन्हें हम 'राष्ट्र-सेवक' कहते हैं, करते हैं और सरकार उनके भरण-पोषण का बोझ इसीलिए उठाती है। सरकारी कर्मचारियों को अर्थ की कोई चिन्ता नहीं होती। अतः वे यदि

शुद्धता और कर्तव्यबुद्धि से काम करें तो सहज ही सेवा और सन्तोष का जीवन बिता सकते हैं और जनता के आदर-भाजन हो सकते हैं।

"विदेशी राज्य के कारण भारत की सरकारी नौकरियों का जो दुःखद पतन हुआ, अब उसके भी रहने का कोई कारण नहीं है। आजादी ने उन्हें दूसरे लोगों की अपेक्षा ज्यादा सुविधाएँ दी हैं। जनता के किसी और वर्ग को आजादी का ऐसा भौतिक लाभ नहीं मिला, जैसा उन्हें। जनता की दशा सुधारने या बिगाड़ने की कुंजी भी उनके ही हाथ में है। अगर वे लोग परिस्थिति की चुनौती स्वीकार करें और उसके मुकाबले के लिए कमर कसें, ईमानदारी का उदाहरण पेश करें; डर, मेहरबानी या अनुचित लोभ छोड़कर अपना कर्तव्य करें, तो व्यापारियों को तथा जनता के और सब वर्गों को भी सुधरना ही पड़ेगा। मैं तमाम सरकारी कर्मचारियों से इस विषय पर गहराई और संजीदगी से विचार करने का अनुरोध करता हूँ। शायद पैसा उन्हें किंचित् आराम दे सकता है, लेकिन जिन्दगी की सार्थकता और पूर्णता वह नहीं दे सकता।"

ता० १९-७-'५१.

रिश्वतखोरी

"अभी कुछ दिन हुए, एक चीफ मिनिस्टर साहब के एक भाषण की रिपोर्ट देखने में आयी। भाषण को पढ़कर ऐसा मालूम होता है, मानो वह सरकारी नौकरों की रिश्वतखोरी का बचाव करते हैं। वह लगभग ऐसा कहते दीखते हैं कि सरकारी नौकरों को उनकी इस कमजोरी के लिए दोष देने के बजाय हमें उन पर दया करनी चाहिए। उनकी दृष्टि में सारा दोष उस चरित्रहीन जनता का है, जो उनके सामने अपना स्वार्थ साधने के लिए

प्रलोभन रखती है। सरकारी नौकर दूसरे दुर्बल मनुष्य की तरह इन प्रलोभनों का शिकार हो जाते हैं; आखिर उन्हें जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ता है और इस मुश्किल दुनिया में अपना पेट भरना पड़ता है।

"निचली श्रेणी के सरकारी नौकरों की आर्थिक कठिनाइयों के लिए जिन्हें पर्याप्त वेतन नहीं मिलता, हरएक आदमी हमदर्दी महसूस करेगा। लेकिन किसी सरकारी आदमी के इनाम या रिश्वत लेने का बचाव कोई नहीं कर सकता, सरकार तो हरगिज नहीं कर सकती। उन्हें पर्याप्त वेतन मिलता है या नहीं, यह देखने का काम सरकार का है। और अगर वह इस बात की जाँच आँख खोलकर करे, तो उसे पता लगेगा कि महकमों में उसके बिल्कुल ऊपरी और निचली श्रेणी के नौकरों के वेतनों में १ से लगाकर ९० तक का अनुपात है। इस विषमता को जारी रखने में औचित्य नहीं है। दूसरे, अगर हम इस बात का खयाल करें, तो सरकार का कम-से-कम वेतन पानेवाला नौकर भी उसी श्रेणी के गैर सरकारी काम करनेवाले आदमी की बनिस्बत ज्यादा पैसा पाता है और उसकी नौकरी भी ज्यादा सुरक्षित होती है। इसलिए इससे तो यह सिद्ध होता है कि सरकारी नौकरियों में इनाम-रिश्वत का कोई औचित्य नहीं हो सकता।

"जनता के जो लोग सरकारी अधिकारियों को इसलिए रिश्वत देते हैं कि वे उन पर कुछ अनुचित मेहरबानी करें, उनका हमें बचाव नहीं करना है। यह सच है कि बेईमान लोगों का एक ऐसा वर्ग है, जो इतने बड़े प्रलोभन पेश करता है कि कभी-कभी मान-

नीय मंत्री को भी उनका तिरस्कार करना कठिन होता है। लेकिन इसे रिश्वत लेनेवाला अपने बचाव में पेश नहीं कर सकता।"

ता० १-९-'५१.

अशुद्धि मिटाने की कोशिश

सूरत जिले के एक भाई का पत्र आया है, जिसमें उन्होंने रेल्वे तथा अन्य सरकारी विभागों के भ्रष्टाचार के कई प्रमाण दिये हैं। उस पत्र का सारांश नीचे दिया जाता है :

"इस वर्ष सूरत जिले में आम की फसल बहुत हुई। उसका माल बहुत बड़ी तादाद में अहमदाबाद और बम्बई की ओर कुछ समय तक सवारी गाड़ी से जाता रहा। पर इतना माल चढ़ाने में गाड़ियाँ लेट होतीं। इसलिए रेल्वे-अधिकारियों ने सवारी गाड़ियों में आम के पार्सल लेना मना कर दिया। मालगाड़ी से माल भेजा जाय तो देर होती है और माल के दाम भी कम आते हैं। मनाही होते हुए भी कोई दिन ऐसा नहीं जाता था, जब कि सवारी गाड़ी से माल जाना बन्द रहा हो। उन हरएक तीन-चार स्टेशनों से ही रोजाना करीब ५०० टोकरी माल हरएक सवारी गाड़ी से जाता रहा। जाँचवाले इन्स्पेक्टर, स्टेशन मास्टर, गार्ड आदि सबके सामने ही यह चोरी होती रही। हरएक टोकरी के पीछे आठ आने तक रिश्वत दी जाती थी। माल ले जानेवाले को न अपने लिए गाड़ी का टिकट, न माल के लिए बिल्टी ही करानी पड़ती थी। गाड़ियाँ लेट तो पहले की तरह होती ही रहीं। जब मैंने यह सिलसिला देखा तो ऊपर के अधिकारियों को लिखा कि मैं ऐसा कदम उठा सकता हूँ, जिससे यह बन्द

हो सके। पर उसमें गाड़ी रुककर लेट होगी और मुसाफिरों को तकलीफ होगी। इसलिए अगर दो दिनों में यह बन्द नहीं हुआ, तो मैं अपनी कार्रवाई करूँगा। तुरन्त ही पुलिस पार्टी, वाचमेन, टिकट जाँचनेवाले आदि की एक टोली इस काम में लगी। पहले ही रोज बगैर रसीद की ८०० टोकरियाँ पकड़ी गयीं। बाद में भी कार्रवाई चालू रही। यह भ्रष्टाचार बिल्कुल बन्द तो नहीं हुआ, पर बहुत-कुछ कम हो गया। तथापि अब तक जो भ्रष्टाचार और चोरी करते थे, उनका कुछ बिगड़ा हो या उन पर मुकदमा चला हो या उनको सजा दी गयी हो, ऐसा नहीं दीखता। दूसरे भ्रष्टाचार के मामलों में भी अधिकारियों से लिखा-पढ़ी होती है, कभी-कभी उनसे कुछ चिकने-चुपड़े जवाब मिल जाते हैं। पर सुधार नाम-मात्र का ही हो पाता है। मैं अपना प्रयास चालू तो रखूँगा ही।"

ऐसे भ्रष्टाचारों के मामले रेलों में तथा अन्य सरकारी विभागों में सदा चलते रहते हैं। बहुत दफा तो वे छिपाकर नहीं किये जाते। आम लोगों के सामने होते हैं। पर हम पर ऐसी जड़ता छायी है कि पाप आँखों के सामने होते देखकर भी उसका प्रतिकार करने का प्रयत्न नहीं करते। केवल अपढ़ और अज्ञानी लोगों में ही यह बात नहीं है। खासे समझदार लोग भी आँख मूँद लेते हैं, और शायद यह सोचते होंगे कि अपना काम-काज छोड़कर हम दूसरों की झंझट में क्यों पड़ें! यह बात सही है कि विरोध करने के प्रयत्न में कुछ समय देना पड़ता है, तकलीफ उठानी पड़ती है और शायद कुछ त्याग भी करना पड़ता है। पर ऐसा ही 'सयानापन' अगर सब लोग धारण कर लें, तो यह भ्रष्टाचार कैसे कम होगा? ऊपर का पत्र लिखनेवाले भाई की तरह हरएक को

भ्रष्टाचार का प्रतिकार करने के लिए जरूर भरसक प्रयत्न करना चाहिए।

ज्यों-ज्यों इस विषय में ज्यादा सोचते हैं, कुछ ऐसा महसूस होने लगा है कि इस काम के लिए एक ऐसा अखबार हो, जो ऐसी घटनाओं को नाम, गाँव, ठाँव-ठिकाने सहित प्रकाशित करे, ताकि दुराचार सार्वजनिक उजाले में आवे, उसे दुरुस्त करने की ओर अधिकारियों का ध्यान खींचा जाय और कुछ कारगर कदम उठाने के लिए अधिकारी मजबूर भी किये जायँ। ऐसा अखबार चलाने में जोखिम तो है ही, पर सत्य की उपासना ठीक रही, तो तकलीफ भोगकर भी आखिर उसका परिणाम अच्छा ही निकलेगा। अखबारों का भी यह कर्तव्य है कि वे इस काम में मदद दें। हम भी उनसे मदद लें।

ता० ८-९-'५१.

नियंत्रण और शुद्ध व्यवहार

राँची के एक भाई श्री किशोरलालभाई मशरूवाला को लिखते हैं :

"आपने लिखा है कि जो लोग कंट्रोल का विरोध करते हैं, उन्हें भी यह तो मानना ही चाहिए कि कालाबाजार और रिश्वत-खोरी के लिए कंट्रोल के होने का बहाना नहीं लिया जा सकता। नागरिक धर्म और प्रामाणिक जीवन के लिए शुद्ध व्यवहार का और कितनी भी अड़चनों के बावजूद कानून के पालन का पूरा प्रयत्न तो हरएक नागरिक को करना ही चाहिए, यह सचमुच शब्दशः उचित

है। लेकिन कानून ही यदि इस तरह का बेढंगा और अव्यावहारिक हो, तो कोई किस प्रकार उसे माने ? सभी को अपनी जीविका उपार्जन करनी है, अपने परिवार के प्रति भी सबका कर्तव्य है। हमने इस क्षेत्र में लगभग दो वर्ष कार्य किया है और हम इस अनुभव पर पहुँचे हैं कि कंट्रोल ही एकमात्र कारण है, देश के लोगों के चरित्र को भ्रष्ट करने का, लोगों को पथ-भ्रष्ट करने का ।... दूसरा महायुद्ध छिड़ने के पूर्व इतना अधिक भ्रष्टाचार लोगों में नहीं था। उस समय चीजों का मूल्य भी कम था। किंतु दूसरे महायुद्ध के आरंभ होने के बाद, जब से इस देश में कंट्रोल का जन्म हुआ है, तब से कुछ लोगों ने अनुचित तरीके से, अधिकारियों से मिलकर अत्यधिक धन कमाया है, लेकिन अधिकांश लोग निराधार छोड़ दिये गये। उनके लिए ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गयी, जिसके द्वारा वे कानून का पालन करते हुए अपनी और अपने परिवार की रक्षा के लिए कुछ कमा सकें।

"राँची जिले में 'मॉनोपोली प्रोक्यूरमेंट आर्डर' एवं 'फुड-कंट्रोल-आर्डर' कानून १५ नवम्बर, १९४९ से लागू है। इस कानून के कारण कोई भी आदमी एक मन चावल या डेढ़ मन धान से अधिक सरकारी एजेंट के अलावा दूसरे को नहीं बेच सकता। राँची शहर में भी यह लागू है। यहाँ चावल नहीं होता। पहले लोग टोकरियों में देहात से चावल लाकर फड़ियों (छोटे व्यापारी) के द्वारा गाड़ीवानों के हाथ बेचा करते थे। गाड़ीवान आढ़तियों के द्वारा दूकानदारों को बेचते थे और खुदरा दूकानदार हर मुहल्ले में जाकर बेचा करते थे। लोगों को घरबैठे चावल मिल जाता था और देहाती

गाड़ीवान अपने चावल के बदले में दाल, नमक, तेल, मसाला देहात के बाजार में वापस पहुँचाकर जनता की सेवा करता था। अब गाड़ीवान, क्योंकि उसमें करीब २० मन चावल होता है, सरकारी एजेंट के सिवा किसीको नहीं बेच सकता। उसकी सारी व्यवस्था तहस-नहस हो गयी है। बेचारा गरीब न तो अपनी आवाज कहीं पहुँचा सकता है, न कोई उसकी सुननेवाला है। कुछ प्रतिकार भी होता है, तो हमारे नेता, सरकार और अधिकारी एकदम अनसुनी करते हैं। कुछ लोग इस कानून की अव्यावहारिकता के कारण उसके खिलाफ, सरकारी टैक्सों की रक्षा करते हुए, चावल का व्यापार खुले रूप से करना चाहते हैं। परंतु यहाँ के कर्मचारी रोड़ा अटकाते हैं, जिससे नाजायज व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है।"

इस पत्र का विषय महत्त्वपूर्ण है। उस पर गंभीरता से विचार करना जरूरी है। पहले तो हम यह सोचें कि सरकार को ऐसे अटपटे नियम क्यों बनाने पड़ते हैं, जिससे लाखों लोगों को तंग होना पड़े? सरकार जो व्यवस्था करती है, उसे अगर जनता ईमानदारी से निभाने को तैयार हो, तो ऐसे कड़े नियम बनाने की जरूरत ही न रहे। अगर हम उसे विश्वास दिला सकें कि उसकी व्यवस्था ठीक तरह से निभ जायगी, लोग उसमें ईमानदारी से सहयोग देंगे, तो मैं समझता हूँ कि सरकार ऐसे योग्य नियम बना सकेगी, जिनसे लोगों को कम-से-कम तकलीफ हो। हमारा कर्तव्य है कि सरकार को हम ऐसी मदद करते रहें।

जेल में हजारों कैदी रहते हैं और भागने का प्रयत्न कोई एकाध कभी ही करता है, तथापि नियम ऐसे बनाये गये हैं कि भले-बुरे सब कैदियों को तकलीफ भोगनी पड़ती है।

अंग्रेजी सल्तनत ने भारत की आजादी के प्रयत्न को कुचलने के लिए, लोगों को अपमानित करने और जेल भेजने के इरादे से ही पुलिस-चौकियों पर हाजिरी देना आदि दुष्ट नियम बनाकर नये-नये अपराध खड़े कर दिये थे। वैसे कानूनों को तोड़ना हमारा धर्म ही था। अब तो हमारी ही सरकार है। उसके और जनता के हित में विरोध नहीं है। सामान्यतः कानून सरकारी दृष्टि से जनता के हित में ही बनाये जाते हैं। इसलिए उन्हें तोड़ने का विचार हम सहसा कदापि नहीं कर सकते। फिर भी ऐसे कई उदाहरण हैं कि मन उद्विग्न हुए बिना नहीं रहता। लेकिन कानून तोड़ने की सलाह नहीं दी जा सकती और हम जानते हैं कि उसका पालन करना भी मुश्किल है। यह समस्या कैसे हल की जाय और उस दशा में, जब कि ऐसे नियम बनाने में ही, सरकार ने गलती की हो? कभी-कभी सरकार अपनी आर्थिक नीति की धुन में गरीबों का खयाल नहीं करती। कभी-कभी सरकारी कर्मचारी व्यवहार न जानने के कारण या स्वार्थी सलाहकारों के बहकावे में गलत नियम बना देते हैं या स्वार्थी कर्मचारी अच्छे नियमों का पालन करने की अवहेलना करते हैं। कभी-कभी सरकार ही ऐसी परिस्थिति खड़ी कर देती है कि उसका कानून तोड़े बिना चारा ही नहीं रहता। पिछले दिनों चने के भाव का नियंत्रण किया गया था। बहुत से लोग कहते हैं कि उसकी जरूरत ही नहीं थी। जरूरत मान भी लें, तो उसी समय चने की दाल का भाव भी नियंत्रित कर देना चाहिए था। पर ऐसा नहीं किया गया। चने का उपयोग प्रायः दाल के रूप में ही होता है और चने से दाल बनाना बिल्कुल आसान है। परिणाम यह हुआ कि चना कालेबाजार में अधिक भाव से बिकता रहा और चने की

दाल खुले बाजार में उसी ज्यादा भाव के आधार पर बिकती रही। व्यापारियों ने खुले आम, ऊँचे भाव से दाल खरीदी। उस दाल के, व्यापारियों के स्थान पर बेचने के लिए पहुँचते-पहुँचते तो दाल का भाव भी चने के नियंत्रित भाव के आधार पर ही सरकार द्वारा नियंत्रित कर दिया गया। इससे व्यापारियों को अपनी पूँजी का एक तिहाई हिस्सा खोने की नौबत आ गयी। दिवाला निकालने की अपेक्षा उन्होंने बेहतर समझा कि कालेबाजार में दाल बेचकर अपनी इज्जत बचा लें। इसी प्रकार कुछ चीजों के भाव ऐसे मुकर्रर किये गये हैं कि जहाँ वह चीज पैदा होती है और जहाँ उसे सैकड़ों मील किराया आदि खर्च करके बेचने के लिए ले जाना पड़ता है, इन दोनों जगह उनके भाव एक से हैं। सोचिये, ऐसी दशा में व्यापार कैसे चल सकता है ?

सामान्य लोग मानते हैं कि चीज सस्ती-महँगी बेचना व्यापार का एक मामूली सिलसिला है; माँग के अनुसार भाव कम-ज्यादा होते ही रहते हैं; जहाँ ज्यादा मुनाफा करने की दृष्टि हो, वहाँ तो उसे हम दोष दें, पर व्यापारी के केवल पेट भरने योग्य मुनाफे में दोष क्यों मानें ? लोग यह भी बहस करते हैं कि यह तो केवल नाममात्र का अर्थात् कानून का बनाया गुनाह है। वास्तव में इसमें नैतिक दोष है ही नहीं। हमें यह समझ लेना चाहिए कि ऐसे कानून के पीछे भी समाज़-हित की दृष्टि रहती है, इसलिए उन्हें तोड़ना योग्य नहीं है और ऐसा व्यवहार अशुद्ध है।

फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि ऊपर लिखी हुई समस्या का हल क्या है ? कानून तोड़ने पर भी सजा टालना चाहते हैं अर्थात् कानून का भंग छिपाना चाहते हैं, यह तो दोष ही है।

क्या अपनी सुविधा के लिए असत्य का पाप करके अपनी नैतिकता भी खो दें ? ऐसी दशा में सलाह तो यही हो सकती है कि अगर कानून तोड़ना ही पड़े तो उसे छिपावें नहीं, उसके लिए जो सजा भुगतनी पड़े, वह सहन करने के लिए तैयार रहें। मामूली आदमी तो यह सलाह नहीं पचा सकेगा। जिसे नैतिकता की विशेष लगन है, वही ऐसा कदम उठा सकेगा। उसके इस कदम का सरकारी कर्मचारियों पर यह असर होना सम्भव है कि उन्हें अपने अयोग्य नियम रद्द करने पड़ें। शुद्ध व्यवहार आन्दोलन के सिलसिले में जो कई पेचीदा प्रश्न खड़े होते हैं, उनमें ऐसा दीखता है कि अन्त में सत्याग्रह का आसरा लेना पड़े। सत्याग्रह करने की योग्यता किसकी मानें, किस विषय को लेकर करें, आदि प्रश्न अलग हैं। जो कोई ऐसा विचार करेगा, वह इसके जानकारों से भी सलाह कर लेगा। परन्तु नैतिकता बचाने की दृष्टि से यह आवश्यक दीखता है कि जिन्हें अशुद्धता चुभती है, उनको कानून तोड़ना ही पड़े, तो वे उसको प्रकट करके उसका प्रायश्चित करें।

इस पर श्री किशोरलालभाई ने यह टिप्पणी दी—

"श्री जाजूजी ने सत्याग्रह की संभावना का इशारा किया है और उसके लिए आवश्यक पूर्व शर्तें भी बतायी हैं। यह याद रखना चाहिए कि शुद्ध व्यवहार आन्दोलन उसकी एक जरूरी पूर्व-शर्त है। सत्याग्रही की प्रखर प्रामाणिकता और ध्येय की पवित्रता, दोनों के बल पर ही सफल सत्याग्रह चल सकता है। सत्याग्रह की कोटि का कोई कदम उठाया जाय, उसके पहले अपनी शिकायतों का निवारण कानूनी उपायों द्वारा करने की पूरी कोशिश करना जरूरी होगा। शिकायतों के निवारण की माँग तभी सफल हो सकती है, जब कि

वह ऐसे लोगों द्वारा पेश की गयी हो, जिनके चरित्र की समाज में साख है और जिनके बारे में यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वे प्रामाणिक हैं। इसीलिए यह आवश्यक है कि जो लोग प्रामाणिक जीवन जीना चाहते हैं, वे अपने स्थानीय मंडल बनायें, रोज के जीवन में एक-दूसरे की मदद करें और एक-दूसरे की धर्म-बुद्धि जाग्रत रखने में सहायता करें।"

ता० २२-९-'५१.

सजा से बचने के लिए रिश्वत

बम्बई के एक भाई लिखते हैं :

"मैं अपने एक मित्र से शुद्ध व्यवहार-मंडल में शामिल होने के लिए आग्रह कर रहा हूँ। उन्होंने नीचे लिखे दो किस्से बताकर मार्ग-दर्शन माँगा है :

(क) एक बार बोरीबंदर रेल्वे स्टेशन पर गाड़ी पकड़ने के लिए मुझे रेल्वे लाइन लाँघनी पड़ी। पुलिस ने पकड़ा। इसमें रेल्वे-कानून का भंग तो था ही, पर ऐसे वक्त मैं उसे एक रुपया दूँ तो छूट जाऊँ, नहीं तो दोपहर तक पुलिस-स्टेशन पर बैठकर बाद में मैजिस्ट्रेट के सामने पाँच-दस रुपयों का दण्ड देना पड़े। बेहतर यह है कि एकाध रुपया देकर छूट जाऊँ।

(ख) शहरों में पेशाबघर बहुत थोड़े होते हैं, लोग बार-बार गलियों में बैठ जाते हैं। एक बार मेरे लिए भी ऐसा मौका आया। पुलिस ने पकड़ा, मैं दो रुपये देकर छूटा। अगर कुछ नहीं देता, तो चौकी पर जाना पड़ता, जमानत देनी पड़ती और बाद में कोर्ट में दण्ड भुगतना पड़ता। व्यवहार में शुद्धि रखना अच्छा तो है, पर ऐसे संकट के समय अपना काम न निकालूँ, तो बड़ी अड़चन होती है।"

इस पर श्री किशोरलालभाई ने लिखा :

"यह लिखने की आवश्यकता नहीं है कि इस पत्र की बहस स्पष्टतः गलत है। लोगों की भलाई के लिए बनाये हुए कानून अगर हम तोड़ते हैं, तो सजा भुगतने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। उसे टालने के प्रयत्न में ही भ्रष्टाचार भरा पड़ा है।

"रेल की पटरी लाँघने की मनाही जनता की भलाई के लिए है। कभी-कभी बिना खतरे के वह लाँघी जा सकती है, इसलिए वैसा करना निर्दोष नहीं कहा जा सकता।

"इस पर से गांधीजी की एक सीख याद आती है। आश्रम के रसोड़े में एक पाटे का एक तरफ का कोना टूटा हुआ था। अगर बैठनेवाले को उसका खयाल हो और उठते वक्त उसका खयाल रखकर, सँभलकर वह उतर जाय तब तो ठीक था। परंतु मालूम न हो या स्मरण न रहे, तो फिसल जाने का डर था। गांधीजी की नजर में वह पाटा आ गया और उन्होंने उसका उपयोग न करने की रसोड़े के अधिकारी को सूचना दी। अधिकारी को उसकी गंभीरता महसूस नहीं हुई और सूचना पर अमल नहीं किया गया। गांधीजी ने जब दूसरी बार उसका उपयोग होते देखा, तब उन्होंने व्यवस्थापक से सफाई माँगी। उसने कुछ बहस की, इस पर गांधीजी बोले, 'दुर्घटनाएँ बार-बार नहीं घटतीं। अगर घटतीं तो शायद ही हम आज तक जिंदा रह पाते। लेकिन इस वजह से दुर्घटना के कारण की लापरवाही करना ठीक नहीं। क्योंकि जब वे होती हैं, अकल्पित रीति से होती हैं और बड़ी करुणाजनक स्थिति पैदा करती हैं।'

"उचित कारण हो, तो रेल के किसी अधिकारी की इजाजत

से लाइन लाँघी जा सकती है। वैसी इजाजत न मिले, तो लाइन लाँघने की अपेक्षा गाड़ी का छोड़ देना अच्छा है।

"पेशाबघरों के विषय में, अगर वे फासले-फासले पर नहीं हैं, तो योग्य अधिकारियों के पास शिकायत पहुँचाकर अड़चन दूर करनी चाहिए। दुर्भाग्य से हमारे म्युनिसिपल-प्रतिनिधि ऐसे सज्जन होते हैं, जिन्हें सालों से शहर में पैदल जाने की आदत नहीं होती और इसलिए उन्हें सामान्य जनता की तकलीफ का पता नहीं चलता। यदि शहर के लोग काफी संख्या में ऐसे प्रतिनिधि भेजने की फिक्र न करें, जो ट्रामों में भी बहुत कम बैठते हैं, तो उनकी अड़चनों का म्युनिसिपल महाजनों को दर्शन होना कठिन है।

"मेरे जीवन में ऐसे बहुत बार प्रसंग आये हैं। ऐसी परिस्थिति में राहत पाने के दूसरे भी तरीके हैं। अक्सर दो मकानों के बीच गटर की गली होती है। उसका उपयोग किया जा सकता है। फिर, बहुत से मकानों में तल-मंजले पर एकाध बाथरूम, पाखाना या पेशाबघर भी होता है। मकान में रहनेवाले किसी भाई की इजाजत से उसका उपयोग करना चाहिए। 'पेशाब की हाजत हुई है', ऐसा कहने में किसीको शर्माना क्यों चाहिए?

"कुछ भी हो, यदि नियम का भंग किया है, तो न्याय तो यह है कि उसका प्रायश्चित्त हम खुशी-खुशी करें। एक बार ऐसा दण्ड भुगत लेंगे, तो फिर से वह दोष सहसा कदापि नहीं होगा। शुद्ध बनने का मार्ग भी कुछ ऐसा ही होता है।"

ता० ६-१०-'५१.

हमारे प्रकाशन

(विनोबा)

- त्रिवेणी ।।)
- विनोबा प्रवचन ।।।)
- भगवान् के दरबार में =)
- साहित्यिकों से ।।)
- भूदान-यज्ञ (नवजीवन) १।)

(धीरेन्द्र मजूमदार)

- शासन-मुक्त समाज की ओर ।=)
- युग की महान् चुनौती ।)
- नयी तालीम ।।)
- ग्रामराज ।-)

(श्रीकृष्णदास जाजू)

- संपत्तिदान-यज्ञ ।)
- व्यवहार-शुद्धि ।=)
- चरखे की तात्त्विक मीमांसा (हिं० अं०) १)

(जे० सी० कुमारप्पा)

- गाँव-आन्दोलन क्यों ? ३।।)
- गांधी-अर्थ-विचार १)
- स्थायी समाज-व्यवस्था (भाग २ रा) २)
- श्रम मीमांसा और अन्य प्रबन्ध ।।।)
- यूरोप : गांधीवादी दृष्टि से ।।।)

(दादा धर्माधिकारी)

- मानवीय क्रान्ति ।)
- साम्ययोग की राह पर ।)
- क्रान्ति का अगला कदम ।)

(जयप्रकाश नारायण)

- अहिंसक क्रान्ति का सन्देश -)।।

(अन्य लेखक)

- सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र ।)
- श्रम-दान ।)
- विनोबा के साथ १)
- पावन-प्रसंग ।=)
- भूदान-आरोहण ।।)
- राज्य-व्यवस्था : सर्वोदय दृष्टि से १।।)
- गो सेवा की विचारधारा ।=)
- भूदान-यज्ञ १)
- सामाजिक क्रान्ति और भूदान (प्रेस में)
- महात्मा गांधी ।=)
- संत विनोबा की उत्तर भारत यात्रा १।)
- भूदान दीपिका =)
- साम्ययोग का रेखाचित्र =)
- पूर्व बुनियादी तालीम १)
- सामूहिक प्रार्थना ।)
- धरती के गीत -)

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन

राजघाट, काशी (उ० प्र०) :: मगनवाड़ी, वर्धा (म० प्र०)

भूदान-आरोहण

•

नारायण देसाई

अ० भा० सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशक
अ० वा० सहस्रबुद्धे, मंत्री
अखिल भारत सर्व सेवा-संघ
वर्धा (म० प्र०)

●

दूसरी बार : १५,०००
जुलाई १९५५
मूल्य : आठ आना

●

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

प्र स्ता व ना

इधर कई दिनों से एक ऐसी पुस्तिका की माँग थी, जिसमें भूदान-यज्ञ-आंदोलन की जानकारी सिलसिलेवार, प्रामाणिक रूप से दी गयी हो। इसके साथ यह भी आवश्यक था कि जानकारी संक्षिप्त होते हुए भी पर्याप्त हो और सरल तथा रोचक भाषा में लिखी गई हो। यह माँग इस पुस्तिका से बहुत बड़ी हद तक पूरी होती है। पिछले चार वर्षों का वृत्तांत प्रामाणिक और हृदयंगम रीति से इस पुस्तिका में लिखा गया है। वर्णन में सजीवता है; तथा आन्दोलन की सैद्धान्तिक और वैचारिक भूमिका का एवं साम्ययोगी क्रान्ति की प्रक्रिया का विवेचन सारगर्भित और मूलग्राही है।

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि वह जितनी कार्यकर्ताओं के लिए उपयोगी है, उतनी ही पढ़े-लिखे नगरवासियों के लिए तथा ग्रामीण जनता के लिए भी उपादेय है। कार्यकर्ताओं के शिविरों में तथा निर्माण के केन्द्रों में इसका पठन और अध्ययन विशेष रूप से होना चाहिए।

पुस्तिका के लेखक भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के एक होनहार तरुण, निष्ठावान् कार्यकर्ता और प्रतिभावान् प्रवक्ता हैं। देश के जिन युवक-युवतियों ने भूदान-यज्ञ-आन्दोलन को तरुणाई के उत्साह और तेज से समृद्ध किया है, उनमें उनका एक प्रमुख स्थान है। पुस्तिका में जो कुछ उन्होंने लिखा है, उसके पीछे जितनी उनकी निष्ठा है, उतना ही प्रत्यक्ष अनुभव भी है। जो कोई भूदान-यज्ञ-आन्दोलन की सांगोपांग जानकारी निरंतर अपने संग्रह में रखना चाहता हो, उसे यह पुस्तिका अवश्य रखनी चाहिए।

मुरारपुर, गया
९-३-१९५५

—दादा धर्माधिकारी

अध्ययन के सूत्र

सिंहावलोकन

[विनोबा]

अपना यह देश बहुत बड़ा है। यहाँ के किसी भी लड़के से पूछा जाय कि तुम कितने भाई हो, तुम्हारे देशवासी कितने हैं, तो वह छत्तीस करोड़ का आँकड़ा सुनायेगा। सिवा चीन के किसी भी देश के नागरिक की जबान पर इतना बड़ा आँकड़ा नहीं होगा। यूरोप के लोगों से पूछा जाये, तो कोई कहेगा एक करोड़, कोई कहेगा दो करोड़, कोई कहेगा चार करोड़। इस तरह छोटे-छोटे आँकड़े वहाँ पर सुनाये जाएंगे। पर, हम तो इतने भाई हैं, इतना विशाल हमारा वैभव है। यह सब क्या है? हमें इस पर सोचना चाहिए। यह इसलिए है कि जैसे असंख्य नदियाँ समुद्र में जाती हैं और समुद्र सब नदियों को प्रवेश देता है, किसी को इनकार नहीं करता, उसी तरह भरत-भूमि ने दुनिया की सब कौमों का प्रेम से स्वागत किया और सबको प्रवेश दिया। मैं एक मिसाल देता हूँ। पारसी लोग ईरान से आश्रय के लिए यहाँ आये। यहाँ के सहृदय लोगों ने उन्हें आश्रय दिया। उनके जो रीति-रिवाज थे, उनके अनुसार वे अपनी उपासना करते थे, अपना भक्ति-मार्ग चलाते थे। उसमें कोई बाधा हमने नहीं पहुँचायी। आज भी पारसी कौम इस देश को अपना देश समझती है और यहाँ पर अपने को सुरक्षित पाती है। मैं एक मजेदार बात सुनाऊँगा। यहाँ पर जो पारसी आये, वे देवों की निंदा और असुरों की प्रशंसा करते हुए

आये! फिर भी यहाँ के लोगों ने कोई गलतफहमी नहीं होने दी। यहाँ पर तो देवों की स्तुति और असुरों की निंदा की जाती है। पारसियों में असुरों की स्तुति और देवों की निंदा की जाती है। उनकी भाषा में असुर का अर्थ ही भगवान् है। शब्द उल्टा पड़ता है, परंतु अर्थ वही है। भगवान् को वे बड़ा भारी असुर अहुर-मज़्द, कहते हैं और देवों को कहते हैं भूत या पिशाच, जो भ्रान्त-मनुष्यों को तकलीफ दिया करते हैं। ऐसे देवों की उन्होंने निंदा की है। परन्तु यहाँ के लोगोंने अर्थ ग्रहण किया और शब्दों को सहन किया। यह बहुत बड़ी बात है। पारसी कौम, जो यहाँ पर आयी, वह आक्रमणकारी बन कर नहीं आयी। वे जब यहां आये, तो उनके पास कोई ताकत नहीं थी कि जिसके बल पर वे आश्रय माँगे। फिर भी वे आश्रय के लिए यहाँ आये और यहाँ के लोगों ने आश्रय दिया। भारत ने उनके भरण-पोषण का जिम्मा उठा लिया। यहाँ की जनता तो यहाँ के ज्ञानियों के विचारों पर ही चलती थी। इसीलिए हमारा विकास हुआ।

महा-मानवों का समुद्र : भारत

आजकल यहाँ पर कई 'वाद' चलते हैं। वाद तो कई प्रकार के हो सकते हैं। बिहार-बंगाल का वाद चल रहा है। परन्तु बिहार वाले यह माँग नहीं करते कि हम अपना राष्ट्र बनाना चाहते हैं और भारत से अलग होना चाहते हैं। न बंगाल वाले यह माँग करते हैं कि हम अपना अलग राष्ट्र बनाना चाहते हैं। हम सब भारतीय हैं, भारतवासी हैं और एक राज्य में रहना चाहते हैं। ये जो दूसरे विवाद होते हैं, वे मामूली फुटकर वाद हैं।

उनके पीछे अभिमान की वृत्ति नहीं है। यद्यपि आजकल कुछ अभिमान हो गया है और कुछ कटुता भी पैदा की गयी है, फिर भी वहाँ उनमें अभिमान की वह वृत्ति नहीं है, जो यूरोप के देशों में होती है। फ्राँस और जर्मनी के बीच कोई ऐसा पहाड़ नहीं है जो दोनों को अलग करे। परन्तु उनको ऐसे पहाड़ की आवश्यकता महसूस होती है। वे दोनों देश बिल्कुल नजदीक रहनेवाले हैं। उनकी लिपि एक है, धर्म एक है, भाषाएं भी काफी मिलती-जुलती हैं। उनके बीच शादियाँ भी हो सकती हैं। परंतु फ्राँस के लोगोंने तय किया कि हमारा एक छोटा-सा अलग देश है और जर्मनी के लोगों ने तय किया कि हमारा जर्मनी एक छोटा-सा देश है। फ्राँस, जर्मनी और इंग्लैण्ड के बीच जो लड़ाइयाँ हुईं, वे राष्ट्रीय लड़ाइयाँ हुईं। वे लड़ाइयाँ राष्ट्रीय मानी जाती हैं, 'सिविल-वार' या आपस की लड़ाइयाँ नहीं। लेकिन हिंदुस्तान में जो लड़ाइयाँ हुईं, मराठों की उड़ीसावालों के साथ या रजपूतों के साथ, ये 'सिविल वार्स' (अन्तर्गत लड़ाइयाँ) मानी जाती हैं। ऐसी ही हमारी लड़ाई है। यह कुछ अभिमान की चीज है कि यहाँ पर जो लड़ाइयाँ हुईं, ये आपस-आपस की लड़ाइयाँ मानीं गयीं। बाहर के लोगों ने भी वैसा ही माना और यहाँ के लोगों ने भी माना कि वे आपस-आपस की लड़ाइयाँ थीं। रूस को छोड़कर यूरोप के बराबर बड़ा हिंदुस्तान देश है। यूरोप से कुछ कम विविधता यहाँ पर नहीं है। यहाँ कई भाषाएँ हैं, जैसे यूरोप में हैं। वहाँ पर तो एक ही लिपि है, परंतु यहाँ अनेक लिपियाँ हैं। वहाँ पर एक ही धर्म है, लेकिन यहाँ अनेक धर्म हैं। इतना अधिक फर्क होते हुए भी हम अपने को एक देश के निवासी मानते हैं और वहाँ के लोग अपने को

एक खंड के निवासी मानते हैं। वहाँ के कुछ देश तो हमारे प्रांतों के एक हिस्से के जितने छोटे हैं, फिर भी वे अपने को अलग राष्ट्र मानते हैं, क्योंकि हरएक की अपनी एक अलग भाषा है। हिंदुस्तान में वैसी बात नहीं सुनी जाती। यहाँ के समाज-शास्त्र में एक व्यापक बुद्धि है। इसलिए रवीन्द्रनाथ ने गाया है कि यह—'महा-मानवों का समुद्र' है। इसमें अनेक लोग आये और अब भी आयेंगे। हमारे देश में विविधता होते हुए भी एकता है।

एकता अंग्रेजों की बदौलत नहीं

यह एकता अंग्रेजों ने नहीं बनायी है, जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं। अंग्रेज तो चाहते थे कि इस देश के अधिक-से-अधिक टुकड़े हो जायें और उन्होंने वैसी कोशिश भी की। वे लंका को अलग कर सके, तो उन्होंने अलग किया। ब्रह्मदेश को अलग कर सके, तो अलग किया। हमने भी इसका कोई विरोध नहीं किया, क्योंकि हम मानते थे कि अपने नजदीक वाले देश अगर अलग रहना चाहते हैं, तो रहने दो। अंग्रेजों ने तो और भी भेद बढ़ाये। जैसे हिंदू-मुसलमानों के। पहले से कुछ भेद तो था ही, परन्तु उन्होंने उसे बढ़ाया और उसके परिणामस्वरूप हिंदुस्तान के दो हिस्से बने। यह तो यहाँ की सभ्यता है, जिसके कारण हमने इसे एक देश माना है। अंग्रेजों ने तो हिंदुस्तान और पाकिस्तान बनाया। कुछ लोगों का यह खयाल है कि अंग्रेजों के कारण यहाँ पर अंग्रेजी भाषा चली और हिंदुस्तान के सब प्रान्तों के लोगों ने अंग्रेजी सीख ली, जिससे वे एक-दूसरे के साथ बातचीत कर सके और इसी से एकता पैदा हुई, परन्तु यह

विचार ही गलत है। हम तो वेदों के जमाने से एकता की भावना पाते हैं, जब कि आमदरफ़्त के कोई साधन मौजूद नहीं थे। उस समय के ऋषियों के अनुसार सिंधु से लेकर हिमालय की गुहा तक एक समूचा देश माना गया। यहाँ एक सभ्यता पली। असंख्य यात्री देश के इस सिरे से उस सिरे तक यात्रा करते थे। असंख्य सत्पुरुष हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सद्‌विचार का प्रचार करते रहते थे। इसीलिए हमारा एक देश बना है। यह विरासत हमें मिली है। इसलिए हम श्रीमान् हैं।

इतिहास की दी हुई जिम्मेवारी

पर बड़ी विरासत सँभालने के लिए अकल चाहिए। यदि यह अकल नहीं रही तो हमारी जो ताकत है, देश की जनसंख्या और विस्तार; वह ताकत नहीं, हमारी कमजोरी साबित होगी। इसलिए इस देश के इतिहास ने हम पर बड़ी भारी जिम्मेवारी डाली है कि यहाँ पर जो मसले पैदा होंगे, उनका हल हम प्रेम और शान्ति के तरीके से करें। अगर हम इस जिम्मेवारी को नहीं सँभाल सके, तो इस देश की विशालता हमारी कमजोरी साबित होगी और परिणामस्वरूप हमारी आजादी भी नहीं टिकेगी। इतिहास हमें सिखाता है कि इस देश पर दूसरों के जो आक्रमण हो सके, उसका कारण यही है कि यहां के लोगों को यहाँ की विविधता का जो अंदरूनी भान होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। इसके कारण भेद बढ़े, फिरका-परस्ती हुई और एक-दूसरे के साथ विरोध शुरू हुआ। इसीलिए हिंदुस्तान को वर्षों तक गुलाम रहना पड़ा।

शांति और प्रेम का ही एकमात्र तरीका

इसलिए हमारे देश के लिए शान्ति और प्रेम का तरीका अनिवार्य हो जाता है। मैं तो यह कहूँगा कि यह हमारा सद्-भाग्य है कि परमेश्वर ने ऐसी योजना कर रखी है कि हम शांति और प्रेम से ही अपने मसले हल करें। मैंने इसे 'सद-भाग्य' कहा है, क्योंकि अगर हम अपने मसले शांति और प्रेम से हल न कर सकें, तो हमारी ताकत और दौलत नहीं बढ़ सकती, ऐसी योजना परमेश्वर ने की है। अगर हिंदुस्तान फौजी ताकत बढ़ाने की सोचेगा, तो वह बिलकुल ही कमजोर हो जायगा; गुलाम हो जायगा। उसे अमेरिका की शरण में जाना पड़ेगा या रूस की शरण में जाना पड़ेगा। किसी-न-किसी की शरण में जाना पड़ेगा। फिर हम आजाद नहीं रह सकेंगे। इसलिए मैं इसे बड़ा भाग्य मानता हूँ कि इस देश के लिए यह अनिवार्य है कि सारे देश के मसले शांति और प्रेम के तरीके से हल किये जावें।

जैसे इस देश के लिए यह अनिवार्य है कि देश के मसले शांति के तरीके से हल किये जावें, वैसे ही विज्ञान के लिए भी यह अनिवार्य है कि दुनिया अपने मसलों को हल करने के लिए शांति और प्रेम का तरीका ढूँढ़े। आज तो जो शस्त्र हैं, वे मानव के हाथ में नहीं हैं। शस्त्र-शक्ति में चाहे जितनी बुराइयाँ हों, परन्तु यदि मानव के नियंत्रण में रहें, तो वे कुछ लाभदायी भी साबित हो सकती हैं। परंतु आज विज्ञान का इतना विकास हुआ है कि शस्त्र-शक्ति मानव के हाथ में रही ही नहीं है। मान लीजिये कि

यहाँ पर किसी ने बीड़ी पीकर बिना बुझाये फेंक दी, जिसके कारण घर को आग लग गयी, तो उसे बुझाने की शक्ति उस शख्स में नहीं होती। उसने जानबूझ कर तो आग लगायी नहीं, फिर भी आग तो लगायी ही। उसके हाथ में आग लगाने की शक्ति है और वह आसानी से घर को आग लगा सकता है, परंतु आग बुझाने की शक्ति उसके हाथ में नहीं है। विज्ञान के जमाने में जो आग लगती है, उस आग की लपटों से न सिर्फ कुछ घर, बल्कि देश के देश जल जाते हैं। मानवता का और मानव-जाति का समूल उच्छेद करने की शक्ति विज्ञान ने निर्माण की है। इसलिए दुनिया के लिए यह जरूरी है कि दुनिया के जो मसले हैं, वे शांति और प्रेम के तरीके से हल हों। ऐसा आग्रह न हो कि एक देश में जो रीति या तरीका चले, वही रीति या तरीका सब देशों में चले। आग्रह की हमारी वृत्ति नहीं है। हरएक देश के अपने भिन्न-भिन्न गुण होते हैं। इसलिए हर देश में एक ही प्रकार की राज्य-व्यवस्था और समाज-रचना चलनी चाहिए, ऐसा आग्रह हम न रखें। हरएक देश अपनी खास परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग समाज-रचना कर सकता है, ऐसी अनाग्रही वृत्ति हम रखेंगे, तो दुनिया में शांति रहेगी। नहीं तो सारी दुनिया के लिए अशांति की नौबत आयेगी। आज हिंदुस्तान का जो अंतर्राष्ट्रीय रूप आया है, हिंदुस्तान का जो स्वभाव है और हिंदुस्तान की जो ऐतिहासिक जिम्मेवारी है, उन सबके कारण हमारे लिए शांति का तरीका अनिवार्य है, और सारी दुनिया के लिए भी विज्ञान के कारण शांति का तरीका अनिवार्य है। हमारे लिए तो अपनी परिस्थिति के कारणों से, वही विज्ञान के

कारण सारी दुनिया के लिए अनिवार्य हो गया है। अपने मसले हल करने के लिए शांति का ही तरीका अब सबको अख्तियार करना पड़ेगा। हमें यह देखना होगा कि आग न लगने पाये और लगे तो बुझ सके।

लोहिया के भारतीय परंपरा के उद्गार

जब इंदौर में गोली चली, तब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने कहा कि स्वराज्य में इस तरह गोली नहीं चलनी चाहिए; और स्वराज्य में आंदोलन चलाने वालों पर भी यह जिम्मेवारी है कि वे अपने पर जब्त रखें, अंकुश रखें, हिंसा न होने दें। सरकार वालों को भी यह वृत्ति रखनी चाहिए कि गोली न चले। इसलिए हमें खुशी है कि जब त्रावणकोर-कोचीन में गोली चली, तब राम-मनोहर लोहिया की आत्मा पुकार उठी। यद्यपि वहाँ पर सोश-लिस्ट पार्टी की ही सरकार थी, फिर भी उनकी आत्मा की पुकार प्रकट हुई। उस पर फिर चर्चा हुई। उसके पक्ष में और विपक्ष में जो बातें की गयीं, उन सबमें मैं नहीं पड़ना चाहता। परंतु उनके हृदय से स्वयंस्फूर्ति से जो उद्गार निकला, यद्यपि वहाँ पर उन्हीं की सरकार थी, उस उद्गार को हम भारतीय उद्गार कहते हैं और उसके साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है।

हिंसा के बारे में एक ग़लत खयाल

आजकल यह जो खयाल हुआ है कि हिंसा से सारे मसले हल हो सकते हैं और जल्द हल हो सकते हैं, वह ग़लत है। हिंसा

से सारे मसले न तो हल हो सकते हैं और न जल्द ही हल हो सकते हैं। मसले हल हुए, ऐसा आभास होता है। अगर उस आभास से हमने मान लिया कि मसले हल हो गये, तो वह ग़लत होगा। मान लीजिए कि कहीं गंदगी पड़ी है और देर लगेगी, इस खयाल से झाड़ू नहीं लगायी गयी। उस पर जाजम बिछा दिया और मान लिया कि स्वच्छता हो गयी। लोग बैठ गये और सभा आरंभ हुई। फिर नीचे से एक बिच्छू निकला और उसने किसी को काटा, और सभा समाप्त! झाड़ू लगाने में देर होगी, यह सोच कर गंदगी को ऊपर से ढक देने से स्वच्छता नहीं हो जाती। स्वच्छता के लिए कुछ करना ही होता है। संस्कृत में एक कहावत है कि बच्चा गेहूँ बोने गया और उसने एक दाना बोया। एक दिन राह देखी, नहीं उगा, दूसरे दिन, तीसरे दिन, चौथे दिन राह देखी, फिर भी नहीं उगा। आखिर पाँचवें दिन बाहर जरा-सा अंकुर उठा तो बच्चे को लगा कि जरा-सा अंकुर फूटने में इतनी देर क्यों हुई? उसने उसे बढ़ाने के लिए ऊपर से खींच लिया। पर जब दूसरे दिन देखा तो वह अंकुर क्षीण हो गया था। ऊपर से खींचने से अंकुर नहीं बढ़ सकता। उसके लिए तो समय लगता है। वह लगना भी चाहिए। उसमें कम समय लगे ऐसी जो कोशिश चलती है, वह टेढ़ी कोशिश होती है। उससे तो सारा मामला ही टेढ़ा हो जाता है। इसलिए हिंसा से मसले जल्द हल होते हैं, यह खयाल भी ग़लत ही है।

देह-प्रधान तालीम के नतीजे

आजकल लोगों का हिंसा पर इतना विश्वास है कि वे

मानते हैं कि हिंसा से ही सारे मसले हल हो सकते हैं। यह खयाल ग़लत है। घर में भी माँ-बाप बच्चे को तमाचा लगाते हैं। इसका मतलब यह है कि उनका प्रेम पर, अपनी समझाने की शक्ति पर उतना विश्वास नहीं है, जितना कि तमाचे पर है। स्कूल में भी यही होता है। बच्चा देर से आता है, तो उसे नियमितता सिखाने के लिए गुरू छड़ी मारता है। फिर क्या होता है? बच्चा नियमित स्कूल में आने लगता है। तब वे कहते हैं कि देखो, काम हो गया। छड़ी का स्पर्श जहाँ उसकी देह को हुआ, वहाँ उसे सद्गुण की प्रेरणा हुई! अतः सद्गुण की प्रेरणा के लिए छड़ी का स्पर्श, डंडे का स्पर्श, कितना लाभदायी है! ऐसा ही कहा जाता है। परंतु व्याज के कारण मूल पूंजी गँवायी। छड़ी मारने से बच्चा स्कूल में नियमित तो जाने लगा, परंतु उसके साथ-साथ उसने डर भी सीखा। उसको यह तालीम मिली कि तुझे किसी ने मारा तो डरना चाहिए। इस तरह उसने निर्भयता छोड़ी। निर्भयता छोड़कर नियमितता हासिल हुई। निर्भयता की ज्यादा कीमत है या नियमितता की? आपने एक पैसा कमाया और रुपया गँवाया। इससे क्या होता है? बच्चा चंद दिनों के लिए नियमित स्कूल में जाने लगता है, परंतु बाद में दबाव न रहा, तो वह नियमितता भी भूल जायगा, यही संभव है। इसलिए नियमितता भी टिकने वाली नहीं है और साथ-साथ डर तो पैदा हुआ! इस तरह की तालीम खतरनाक है। आज तो यह बच्चा डर के मारे शिक्षक या मातापिता के वश में है, लेकिन कल किसी जालिम के भी वश हो जायेगा। यह जो तालीम है, वह बच्चे को देह-प्रधान बनानेवाली है! उसे सिखाया जाता है कि देह पर खतरा हो,

तो फौरन सामने वाले की शरण में जाना चाहिए। इस तालीम के माने यह हैं कि हम अपने सद्गुणों को खतरे में डालते हैं। आखिर जुल्मी लोगों के पास क्या सत्ता है? यही तो सत्ता है कि वे मार सकते हैं, पीट सकते हैं, धमका सकते हैं। तो फिर इस तालीम से सारा-का-सारा नागरिक-शास्त्र खतम हो जाता है। इसलिए जब हम देखते हैं कि हमारे मसलों के हल होने में देर है, और सोचते हैं कि हिंसा करने से मसले जल्द हल हो जायेंगे, तो यह एक भ्रम ही है। इस भ्रम में अनादि काल से लोग पड़े हैं। दस हजार साल से हिंसा के प्रयोग हुए हैं और एक हिंसा से दूसरी हिंसा की तैयारी होती है, हिंसा की प्रक्रिया होती है, ऐसा अनुभव आया है। लेकिन फिर भी मनुष्य मान लेता है कि हिंसा की लड़ाई में हम इसलिए नहीं हारें कि हिंसा के तरीके में ही दोष है, बल्कि इसलिए कि हममें हिंसा-शक्ति कम थी! मनुष्य इस तरह मान लेता है। शस्त्रास्त्र की लड़ाई में जो हारते हैं, वे यह नहीं समझते कि हिंसा में कोई शक्ति नहीं है, बल्कि वे तो यह समझते हैं कि हम काफी हिंसक नहीं थे; इसलिए ज्यादा शक्ति बढ़ाने की कोशश करनी चाहिए। फिर जो हारा हुआ होता है, वह शस्त्रास्त्र बढ़ाने की कोशिश करता है और फिर जीतता है। इसके बाद जो हारता है, वह भी शस्त्रास्त्र बढ़ाता है।

युद्ध की गंगोत्तरी हमारे ही घर में

इस तरह एक-दूसरे को देख कर हिंसा बढ़ाते-बढ़ाते हम आज 'टोटलवार' संकुल-युद्ध तक आये हैं। अब एक व्यक्ति की या

एक जमात की दूसरे व्यक्ति या जमात के साथ लड़ाई नहीं चलती। अब तो एक राष्ट्र-समूह की दूसरे राष्ट्र-समूह के साथ लड़ाई चलती है। लेकिन इस युद्ध का उद्गमस्थान, इस युद्ध की गंगोत्तरी कौन-सी है, जहाँ से यह गंगा बह निकली है? ऐटम बम या हायड्रोजन बम तक जो मामला बढ़ा है, उसका आरंभ कहाँ से हुआ? उसका आरंभ परमप्रिय माता-पिता और गुरू से हुआ है, जिन्होंने अपने बच्चों को सद्गुण सिखाने के वास्ते मारने-पीटने का तरीका अख्तियार किया। ऐटम और हायड्रोजन बम की गंगोत्तरी वे ही हैं। अगर माता-पिता और गुरू बच्चों को ऐसी तालीम दें कि यदि हमारी बात तुम्हें जंच जाय तभी उसे मानना, न जँचे तो न मानना, तब देश बचेगा। इसी तालीम से हम विचार-प्रधान बनेंगे। जो बात जँचती है, वही माननी चाहिए, जो नहीं जँचती है, उसको नहीं मानना चाहिए। लेकिन आजकल तो उलटा चलता है। बच्चों को सर्वत्र पीटा जाता है। बच्चों को सिखाना चाहिए कि जो बात तुमको नहीं जँचती उस पर अमल मत करो; फिर चाहे कोई तुम्हें मारे या पीटे, तो भी उसकी बात को कबूल मत करना और मार खाते रहना। यह जो मार खाने की शक्ति है, यह जो तितिक्षा, यानी शांति से मार खाने की शक्ति है, यही निर्भयता है। शस्त्रों पर विश्वास रखना निर्भयता का नहीं, डरपोक-पन का लक्षण है। इसीलिए यह जरूरी है कि हम शिक्षण में यह तत्त्व दाखिल करें कि भय के वश में नहीं होना चाहिए। हम बच्चों को दो बातें सिखायें: (१) हम किसी से डरेंगे नहीं; किसी को डरायेंगे नहीं। (२) हम किसी से दबेंगे

नहीं; हम किसी को दबायेंगे नहीं। यही बात गीता ने कही है:—

'नायम् हन्ति न हन्यते'

—यह न मारता है और न मरता है।

अभय की सबसे पहले आवश्यकता

इसलिए हम ऐसा तरीका अख्तियार करना चाहते हैं कि जिससे मसले हल हो जायँ और अशांति या मनक्षोभ पैदा न हो, वृत्ति में भय न हो। हमारे इतिहास-वेत्ताओं को यह बात मालूम थी। इसलिए हमारे समाज-शास्त्र में एक शब्द था "अभय"। लेकिन आज उसके बदले "लॉ अैंड ऑर्डर" (कानून और बन्दोबस्त) आया है। वे यह मानते हैं कि लोग भयभीत हो कर ही क्यों न हों, पर 'लॉ अैंड ऑर्डर' मानते हैं। इस तरह हमने व्यवस्था-देवी को परमदेवी माना है। हम उसे कहते हैं कि 'हे देवी, तू परमदेवी है। तू ही हमारा संरक्षण करती है। तू ही हमारा आधार है।' इस देवी पर इतना विश्वास हो गया है कि नास्तिक लोग भी इसे मानते हैं। कम्युनिस्ट लोग कहते हैं कि हम ईश्वर को नहीं मानते। तो हम उनसे कहते हैं कि आप ईश्वर को तो नहीं मानते, लेकिन उसके बाप को मानते हैं। प्रबन्ध-देवता को तो मानते हैं। कुछ लोग तो कहते हैं कि व्यवस्था करते-करते कुछ लोगों को सफा करना होगा। फिर इस तरह का सफाया करते-करते ऐसी व्यवस्था बनेगी कि जिसमें संघर्ष ही मिट जायगा। संघर्ष तो उनका परम सत्य है! जब हम पूछते हैं कि संघर्ष मिटेगा तो क्या होगा, तो वे कहते हैं कि फिर तो

सृष्टि के साथ संघर्ष आरंभ होगा। यह सारा विचार ही गलत है। हम भी व्यवस्था की कीमत मानते हैं। अभी हमने आप लोगों को समझाया कि शांत रहिए। परंतु अगर हम समझाने के बदले मार-पीट शुरू कर देते, तो आप शांत तो रहते, लेकिन मन नहीं पाते; ज्ञान हासिल नहीं कर पाते, क्योंकि वह तो बाहर की शांति हो जाती, अंदर भय रहता। इसलिए वह शांति नहीं कहलाती। क्योंकि अंदर जो उबलता रहता है, वह क्षोभ है। अगर क्षोभ प्रकट न हो और अंदर ही रहे, तो वह ज्यादा खतरनाक होता है। प्रकट हो जाये, तो कोई हर्ज नहीं है। पानी की भाफ अंदर दबी रहती है, तो उसकी शक्ति से ट्रेनें भक-भक चलती हैं। क्षोभ प्रकट हो जाये, तो उसमें उतनी ताकत नहीं होती। लेकिन हम उसे अंदर दबाये रखें, तो ज्यादा अनर्थ हो जाता है। आज आपने यहाँ पर शांति इसलिए रखी कि हमने समझाया था, धमकाया नहीं। लेकिन हम डर पैदा करके शांति स्थापित करें, तो व्यवस्था-देवी, देवी नहीं रहती है, वह तो व्यवस्था-राक्षसी बन जाती है। इस राक्षसी के पेट में इतनी अव्यवस्था होगी कि उसकी अपेक्षा बाहर की अव्यवस्था हमें मंजूर करनी पड़ेगी। इसलिए व्यवस्था से भी ज्यादा आवश्यक है, 'अभय'।

एक होने की अकल

आज हमने सुना कि झरिया एक बड़ा कुरुक्षेत्र है। यहाँ पर लड़ाइयाँ चलती हैं। दुर्योधन, दुःशासन और कितने कौरव पुत्र यहाँ हैं, हम नहीं जानते। लेकिन यहाँ पर मजदूर रहते हैं। उनसे काम लेना है, हर हालत में काम लेना है, ऐसा सोचा जाता

है। उनसे कोयला निकलवाना है। अगर जमीन से कोयला न निकला, तो देश का मुख काला हो जायगा। इसलिए उनसे काम करवाना है, ऐसा सोचा जाता है। लेकिन मजदूर का मतलब है, श्रमशील। जहाँ श्रमशील होते हैं वहाँ तो शांति होनी ही चाहिए। जहाँ आलसी लोग होते हैं, वहाँ अशांति होनी चाहिए। जहाँ श्रम करने वाले होते हैं, वहाँ तो लक्ष्मी पैदा होती है। परंतु आज तो इससे उलटी बात हो रही है। जहाँ श्रम करने वाले होते हैं, वहाँ पर दो पक्ष खड़े हो जाते हैं। यह माना जाता है कि उन दोनों के हित भिन्न-भिन्न हैं। एक के दो बनाना, दो के चार बनाना, इस तरह टुकड़े-टुकड़े करना, यह अकल तो दुनिया में सबको हासिल है। परन्तु चार के दो बनाना, दो का एक बनाना, यह अकल हासिल नहीं है। टुकड़े करने की अकल, जिसे गीता ने राजसी-बुद्धि कहा है, जिसके कारण कई शाखाएँ फूटती हैं, इसका उसके साथ मिलता नहीं, उसका इसके साथ मिलता नहीं, यह अकल तो सबको हासिल है। परंतु सबमें जो समान अंश है, उसको ग्रहण करके सबको उस पर एक करना, यह अकल सूझनी चाहिए।

गुंडों का राज्य क्यों है ?

मुझे बताया गया कि यहाँ पर गुंडों का राज्य चलता है। लेकिन जहाँ गुंडों का राज्य न हो, ऐसी जगह ढूँढ़ने पर भी कहीं नहीं मिलेगी। एक गुंडे वे होते हैं जो गुंडे कहलाते हैं और एक गुंडे वे होते हैं, जो सेनापति कहलाते हैं, कार्यकर्ता कहलाते हैं। सोचने की बात है कि हम सारे शिक्षित लोग अपनी रक्षा का

आधार पुलिस पर, सेना पर रखते हैं। इससे अधिक अनर्थ क्या हो सकता है? इससे अधिक पराधीन दशा कौन सी हो सकती है? और ये सिपाही भी कौन होते हैं? इनमें क्या गुण होते हैं? जिसकी छाती बत्तीस इंच की हो, वह सिपाही बनता है। बस यही है उनका गुण और ऐसों पर हम अपने देश का आधार रखते हैं! और फिर उसके लिए क्या-क्या करना पड़ता है? यह सब सोचना चाहिए। उधर बंबई में शराबबंदी हुई, तो वहाँ पर माँग की गयी कि सेना को उससे मुक्ति मिलनी चाहिए। सेना को शराब की सहूलियत होनी चाहिए। तब हमने सोचा कि रावण की सेना में तो सब लोग शराब पीते थे, परंतु रामजी की सेना में जो बंदर थे, उन्हें शराब की जरूरत नहीं महसूस होती थी। हनुमान को शराब की जरूरत नहीं थी। इसलिए वह सेना, जो राष्ट्र की रक्षक कहलाती है, वह राजसी है या सात्त्विक है, इस पर सोचना चाहिए। लेकिन हम तो गुंडों को हनुमान की पदवी देना चाहते हैं। हम सेना को अपनी रक्षा का आधार मानते हैं। तुलसीदासजी ने 'हनुमान चालीसा' लिखा। रावण भी तो ताकतवर था, पर उसने 'रावण-चालीसा' नहीं लिखा! क्योंकि हनुमान की ताकत हमें बचाने वाली ताकत है, रावण की ताकत नहीं। हनुमान की ताकत से ही देश बचेगा, रावण की ताकत से नहीं। जिन सिपाहियों को आपको शराब पिलानी पड़ती है, भोग के साधन देने पड़ते हैं और रणक्षेत्र में भेजने पर जिनके भोग-विलास के लिए कन्याएँ भेजनी पड़ती हैं, उनकी अनीति को भी नीति मानना पड़ता है। हमने सुना—'वॉर बेबीज' का यानी, युद्ध में पैदा हुए बच्चों का सवाल। हम ताज्जुब में रह गये कि युद्ध

से बच्चे कैसे पैदा होते हैं? वहाँ पर तो लोग मरते हैं। लेकिन आधुनिक युद्ध में बच्चे पैदा होते हैं। ये फौजें हमारा आधार हैं, ऐसा कहा जाता है! अगर हमारे पवनार-आश्रम की रक्षा करनी है, तो कौन करेगा? ध्यान-योगी सोचता है कि ऊपर से बम पड़ेगा, तो हमारा ध्यान कैसे होगा? क्या पुलिस हमारी रक्षा करेगी? इसी तरह जब तक हमारे देश की रक्षा गुंडों पर निर्भर है, जब तक यह स्थिति है, तब तक गुंडों का ही राज्य चलेगा। उसे आप चाहे जो नाम दें, पर राज्य गुंडों का ही चलेगा। कोई नाम देने से असलियत नहीं मिटेगी। इसलिए हम चाहते हैं कि हमारे मसले शांति के तरीके से हल हों।

कत्ल से, कानून से या हृदय से?

कुछ लोग कहते हैं कि आपका जो भूदान-यज्ञ का कार्य चल रहा है, उसमें देर लगेगी, इसलिए कानून से जल्द काम क्यों नहीं करवा लेते? ये सोचते हैं कि कानून से काम जल्द हो जाता है, कत्ल से और भी जल्द हो जाता है। मैं मानता हूँ कि कत्ल से काम जल्द होता है। मान लीजिए कि हमारे सारे मजदूर उठ खड़े हो जायें और एक तारीख मुकर्रर करें, जैसे कि २६ जनवरी; और उस दिन सब मालिकों को कत्ल कर दें, तो विनोबा जो काम दस साल में करता, वह एक दिन में होगा। मैं मानता हूँ कि यह हो सकता है। लेकिन क्या यह कोई हल है? लोग सोचते हैं कि कानून से क्या नहीं हो सकता? लेकिन क्या कानून से आप दयालु बन सकते हैं, धार्मिक बन सकते हैं? उधर बंबई में कानून बना कि स्कूल के बच्चों को फाउंटेनपेन इस्तेमाल नहीं करनी चाहिए,

क्योंकि उससे अक्षर बिगड़ते हैं। क्या वह काम भी हम बुद्धि से नहीं कर सकते? क्या शिक्षक विद्यार्थियों को इतना भी नहीं समझा सकता? आजकल तो यह बात चली है कि सब कुछ कानून से हो। ये जो सिनेमा चलते हैं, वे कितने गंदे होते हैं! वे हमारे बच्चों को बिगाड़ रहे हैं। लोग कहते हैं कि उनको रोकने के लिए कानून बनाना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि कानून न बने। कानून तो जरूर बनना चाहिए। अभी दिल्ली में माताओं ने सरकार से प्रार्थना की कि इन गंदे सिनेमाओं को रोको, नहीं तो हमारे लड़के गलत रास्ते पर जायेंगे। हम नहीं मानते कि हुकूमत इसमें कुछ नहीं कर सकती। हुकूमत बहुत-कुछ कर सकती है, बशर्ते कि वह हुकूमत हो, यानी उसमें बुद्धि का भी अंश हो। लेकिन यहाँ पर, जो इतने सारे शिक्षक और पालक बैठे हैं, जिनमें हिंदू, मुसलमान, ईसाई सब हैं, वे देख रहे हैं कि हमारे बच्चे गलत रास्ते पर जा रहे हैं, निर्वीर्य बन रहे हैं, तो क्या ये उन्हें रोक नहीं सकते? क्या वे नैतिक विचार का प्रचार नहीं कर सकते हैं? हमारे देश में प्राचीन काल से नैतिक विचार का कितना प्रचार हुआ। गाँव-गाँव के अशिक्षित लोगों से पूछा जाय कि परमेश्वर कहाँ है, तो वे जवाब देते हैं, वह घट-घटवासी है। यह सब कैसे हुआ? लाखों लोग धर्म के वास्ते तपस्या करके मरे। क्या यह कानून से हुआ है? लाखों लोग कुंभ-मेले में जाते हैं, क्या कानून से जाते हैं? हमारे जीवन की कई बातें कानून से नहीं हो सकतीं। हमारे हृदय के अंदर जो चीज है, उसी से यह सब होता है। क्या वह चीज खतम हो गयी है? क्या लोग सिनेमा देखना बंद करके रात को आसमान में जो सिनेमा चलता है, उसे नहीं

देख सकते? ऋषि कहता है कि पाप को मिटाना है, तो नक्षत्रों का दर्शन करो। उससे आँखों को ठंढक पहुँचती है और मन में उन्नत विचार आते हैं। क्या हम ऐसा सुंदर सिनेमा नहीं देख सकते? मैं मानता हूँ कि कानून का भी इस बारे में कुछ कर्तव्य है। इलाहाबाद में हमें मानपत्र दिया गया। उसमें लिखा गया था कि वहाँ की म्यूनिसिपैलटी ने रात के सिनेमा पर रोक लगा दी थी, पर प्रांतीय सरकार ने वह हटा दी। मैं मानता हूँ कि सरकार का इस मामले में बहुत बड़ा कर्तव्य है और अगर सरकार के लोग उस कर्तव्य का पालन नहीं करते हैं, तो दोष के पात्र हैं। लेकिन क्या हमारी भी कोई अपनी शक्ति नहीं है?

मसले भगवान् की कृपा हैं

भूमि का मसला कानून से हल नहीं हो सकता। कानून से जमीन बँट सकती है, पर कानून दिलों को जोड़ नहीं सकता। यह जो आन्दोलन चल रहा है, वह दिलों को जोड़ने वाला आंदोलन है। यह काम कानून नहीं कर सकता, चाहे कानून जमीन को बाँटने का स्वांग भले ही करे। इसलिए भूदान-यज्ञ की जो कीमत है, वह आप इस पर से न करें कि इसमें कितनी जमीन मिलती है और इस काम को पूरा करने में कितना समय लगता है। ऐसा गणित न कीजिए। हम मानते हैं कि छह महीनों में यह मसला हल हो सकता है, ऐसी हालत बिहार में पैदा हुई है। दान देने के लिए कोई 'ना' नहीं कह सकता, चाहे कोई छठे हिस्से से कम दे और छठा हिस्सा देने के लिए हमें बार-बार समझाना पड़े। परंतु दान न देने की बात करने वाला मनुष्य दुर्लभ है। इसलिए अगर

इसी काम पर जोर दिया जाये, तो छह महीनों में यह मसला हल हो सकता है, यह समझ लीजिए। इसकी कीमत तो, उसका जो नैतिक मूल्य है, उस पर से करनी होगी। इतना बड़ा मसला शांति से हल हो जावे, तो दूसरे मसले हल करने की भी शक्ति पैदा होगी। फिर हमारे हाथ में एक ऐसी कुंजी आ जाती है, जिससे पचासों ताले खुल जायेंगे। हमारे देश में परमेश्वर की कृपा से काफी मसले हैं। मैंने 'परमेश्वर की कृपा' शब्द जानबूझ कर कहा है, क्योंकि ईश्वर की अवकृपा होगी, तो देश में मसले ही नहीं रहेंगे। ईश्वर की कृपा है, इसलिए मसले हैं और मनुष्य की बुद्धि से उन्हें हल करना है। हम तो ऐसे जमाने में जीना ही नहीं चाहेंगे, जब मसले ही नहीं रहेंगे। हम तो प्रभु से कहेंगे कि हे प्रभु! ऐसे ही जमाने में हमें जन्म देना, जहाँ मसलों का सामना करना हो, कुछ पुरुषार्थ करना हो । इसलिए मसलों का हल होना जरूरी है। परंतु उन्हें कैसे हल किया जायेगा, इसका कारगर तरीका ढूँढ़ना चाहिए। अब एक ऐसा तरीका हाथ आ गया है।

युग को विचार की भूख है

जब जमीन गर्मी से तपती है, तब वह ऊपर की बारिश की राह देखती रहती है। जब बारिश आती है, तब मिट्टी उसे पी लेती है। उसी तरह आज हिंदुस्तान को इस विचार की भूख है। इतने सारे लोग शांति से विचार सुनते हैं, इसका क्या कारण है? यही कि हिंदुस्तान को आज इस विचार की अत्यन्त भूख है, नहीं तो बिनोबा की बात कौन सुनता? विनोबा के पास

कौनसी सत्ता है ? विनोबा के पास कोई सत्ता नहीं है । विनोबा सत्ता चाहता भी नहीं और विनोबा का सत्ता पर विश्वास भी नहीं है। इसलिए १९५७ में आप विनोबा को वोट मांगते हुए नहीं देखेंगे। पिछले चुनाव के दिनों में हम उत्तर-प्रदेश में घूमते थे, तो हमसे कई लोगों ने कहा कि अभी चुनाव के दिन हैं, इसलिए थोड़े दिनों के लिए अपनी यात्रा बंद रखिये, क्योंकि आपका भाषण सुनने ज्यादा लोग नहीं आयेंगे। हमने कहा कि जितने कम लोग आयेंगे, उतना ही हमें ज्यादा उत्साह मालूम होगा। हमने तो छह-सात बच्चों को ही दस-दस साल तक पढ़ाया है। हमारा संख्या पर विश्वास नहीं है। लेकिन हमने उत्तर-प्रदेश में देखा कि भूदान की मीटिंग में लोग जितनी तादाद में आते थे, उतनी तादाद में चुनाव की मीटिंग में भी नहीं जाते थे। जो चुनाव लड़ रहे थे, उन्होंने ही हमें यह बात सुनायी । चुनाव की मीटिंग में तो तालियाँ बजती थीं, शोरगुल होता था, लेकिन हमारी मीटिंग में लोग चित्रवत् बैठे रहते थे। परितृप्त होकर सुनते थे। दान भी देते थे। मैंने यह भी कहा कि क्या गंगा रुकती है ? हम भी क्यों रुकें ? जब लोग मुझे सुनाते थे कि चुनाव में फलाना जीता और फलाना हारा, तो हम अखबार में उसे पढ़ते भी नहीं थे। अगर किसी ने सुनाया कि फलाना मिनिस्टर क्या बोला, आपको मालूम है? तो मैं पूछता कि मैं क्या बोला, उसको मालूम है ? अगर मैं क्या बोला, यह उसे मालूम नहीं है, तो वह क्या बोला, यह जानने की जिम्मेवारी मुझ पर नहीं है।

सौ फ़ीसदी दान-पत्र चाहिए

हम गणित के प्रेमी हैं, इसलिए गणित करते हैं। अबतक साढ़े तीन लाख लोगों ने दान दिया। अगर एक मनुष्य दान देता है, तो कम-से-कम दस मनुष्य हमारा विचार सुनते हैं। जितने काश्तकार हैं, उतने दानपत्र हमको मिलने चाहिए। हमें तो सौ फीसदी दानपत्र चाहिए। अगर देश में छह करोड़ मनुष्य संपत्ति रखने वाले हैं, चाहे चार कौड़ी रखें, चाहे चार करोड़ रखें, तो हमें छह करोड़ संपत्ति-दानपत्र चाहिए। लोग हमसे पूछते हैं कि क्या किसी आंदोलन में इस तरह सौ फीसदी काम हो सकता है? अभी वैद्यनाथ बाबू ने कहा कि सौ फीसदी दानपत्र कैसे हासिल कर सकते हैं, कुछ 'परसेंटेज' (प्रतिशत) लगाइये। तो हमने उनसे कहा कि हाँ, आप यह कर सकते हैं, पर हमारी माँग तो १००% दानपत्रों की रहेगी। अभी यहाँ पर जो सारे लोग बैठे हैं, वे सब-के- सब मरने वाले हैं। मरने में शत-प्रतिशत की बात है, तो फिर जीवन में कम फीसदी क्यों? यह आंदोलन तो जीवन-निर्माण का आंदोलन है। सारे लोग मरने वाले हैं। उस चुनाव में सारे वोट देने वाले हैं। यमराज की पेटी में सब के वोट गिरने वाले हैं। जब मृत्यु के लिए इतना वोटिंग होता है, तो जीवन के लिए कम क्यों होना चाहिए? जो विचार हमें घुमा रहा है, हमारे पाँवों को प्रेरणा दे रहा है, वह विचार अगर आपको जँच जाये, तो आपसे भी रहा न जायगा। विचार पर हमारी इतनी श्रद्धा है कि हम मानते हैं कि दुनिया में विचार से बढ़कर कोई ताकत नहीं है।

आत्म-शक्ति का महत्त्व

एक दफा एक भाई ने हमसे कहा कि 'जरा आपकी कुंडली देखना चाहता हूँ। मंगल और शनि का आप पर क्या असर पड़ता है, यह देखना चाहता हूँ।' तो मैंने कहा कि 'मैं जरा मंगल की कुंडली देखना चाहता हूँ कि उस पर मेरा क्या असर पड़ता है, क्योंकि वह तो आखिर जड़ है और हम चेतन हैं।' हम ब्रह्म हैं। हमसे बढ़कर दुनिया में कोई ताकत नहीं है। हम द्रष्टा हैं और सारी सृष्टि दृश्य है। हम इसे रूप देने वाले हैं। जैसे कुम्हार मिट्टी को रूप दे सकता है, उसी तरह हम इस सृष्टि को चाहे जो. रूप दे सकते हैं। अगर यह विचार आपको जँच जावेगा तो आपमें ऐसी ताकत पैदा होगी, जो ऐटम बम में भी नहीं है। जब मुझे लोगों ने सुनाया कि ऐटम बम कितना बड़ा है, शक्तिशाली है, तो हमने कहा कि हमारे पास 'आत्म-बम' है, आत्मा की शक्ति। आखिर ऐटम बम मनुष्य ने ही बनाया। जो उसे बना सकते हैं, वे उसे खतम भी कर सकते हैं। हम आपको बताना चाहते हैं कि आप कमजोर नहीं हैं। आप अत्यन्त बलवान हैं। आपसे बढ़कर बलवान दुनिया में कोई नहीं है। परंतु वह शक्ति शस्त्रों में नहीं है, आत्मा में है, प्रेम में है। उस शक्ति को प्रकट करने के लिए ही यह आन्दोलन चल रहा है।

सर्वोदय का यही नियम है कि पहले हमारे भाई को मिले और बाद में हमें मिले। लेकिन जब लोग कहते हैं कि पहले मुझे मिले, तो वह सर्वनाश का तरीका है। इसलिए हम चाहते हैं कि सब लोग कहें कि पहले दूसरों को मिले। हम ऐसी सहज

व्यवस्था चाहते हैं। राक्षसी व्यवस्था हम नहीं चाहते। आप 'गीता-प्रवचन' का पठन करेंगे, तो आपको आत्मा की शक्ति का भान होगा।

गांधीजी का जन्म गुजरात में क्यों हुआ ?

अभी स्वामी आनंद ने कहा कि यहाँ पर गुजराती समाज ज्यादा है, उसके लिए कुछ कहिये। हमने कहा कि हाँ, होना ही चाहिए। जहाँ गुड़ होता है, वहाँ चींटी होनी ही चाहिए। लेकिन गुजराती भाइयों पर बड़ी भारी जिम्मेवारी है। गाँधीजी गुजरात में पैदा हुए। यह कोई नसीब की बात नहीं है। उसके पीछे एक तत्त्व है। गुजरात ही एक ऐसा प्रदेश है, जहाँ का किसान मांसाहार छोड़ बैठा है। सारी दुनिया में दूसरी जगह आम जनता में यह बात नहीं पायी जाती। यह जो अहिंसा है, उसके परिणामस्वरूप वहाँ पर गाँधीजी पैदा हुए, जो कि दुनिया के लिए बहुत बड़ा प्रकाश है। हजारों साल के बाद भी हिंदुस्तान और सारी दुनिया इस बात को महसूस करेगी और जैसे आज भी हम बुद्ध-जयंती मनाते हैं और मानते हैं कि उनसे कितना बड़ा प्रकाश मिल रहा है, उसी तरह गांधीजी के बारे में भी सोचा जायेगा। इसलिए हम गुजरातियों से आशा करते हैं कि गांधीजी के विचारों का दर्शन उनके जीवन के द्वारा प्रकट हो। वैसे, हम खास किसीके लिए कभी कुछ कहते नहीं। जैसे मेघ बरसता है, वैसे ही हम भी बरसते जाते हैं। पर आज स्वामी आनंद ने कहा, इसलिए गुजरातियों के लिए खास बातें कह दीं।

झरिया, (मानभूमि)
२७.१२.'५४

भूदान-आरोहण

: १ :

यज्ञ के अध्वर्यु

बिनोबा ने एक दिन एक सुशिक्षित आदमी से कहा—"कृपा कर मुझे स्टेशन तक जाने के लिए रास्ते का एक नक्शा खींच दीजिए!" उन सज्जन ने राह चलते उत्तर दिया—"मैं नक्शा नहीं खींच सकूँगा, क्योंकि मैं भूगोल का प्रोफेसर नहीं हूँ, मैं तो विज्ञान का प्रोफेसर हूँ।"

आज ज्ञान के इस कदर टुकड़े हो गये हैं कि विज्ञान सिखाने वाले आदमी को अपने घर से स्टेशन तक का नक्शा खींचने लायक भी भौगोलिक ज्ञान नहीं है। यह हुई ज्ञान के टुकड़े-फरोशी की बात। लेकिन आज तो मनुष्य के ही टुकड़े हो गये हैं। आदमी के दिल, दिमाग और हाथों का आज एक-दूसरे से सम्बन्ध नहीं रहा। जो हाथ का काम करता है, वह दिमाग का काम नहीं करता। जो दिमाग का काम करता है, वह हाथ का काम नहीं करता। हाथ या दिमाग का काम करने वाले का हृदय मानो उसके साथ ही नहीं रहता।

विनोबा जिस साम्ययोगी समाज के बारे में कहते हैं, उसमें दिल, दिमाग और हाथ का सम्बन्ध साबित रहेगा। उसमें ज्ञान,

कर्म और भक्ति का समन्वय होगा। उसमें आदमी के जीवन के टुकड़े नहीं होंगे।

विनोबा का जीवन ज्ञान, कर्म और भक्ति का त्रिवेणी-संगम है। इन तीनों के साम्य में से ही साम्ययोगी विनोबा ने हमें भूदान-यज्ञ का विचार दिया है। इसलिए इस यज्ञ की बुनियाद समझने के लिए हमें विनोबा के जीवन के आधारभूत मुख्य विचार और उनका आचरण, जो दुनिया के सामने हैं, उसे समझना जरूरी है।

विनोबा ने ज्ञानयोग की जो साधना की है, वह सिर्फ बुद्धि की दृष्टि से नहीं, धर्म को जीवन में बुद्धिपूर्वक उतारने की दृष्टि से की है। उन्होंने उतनी ही ज्ञान-साधना की है, जितनी धर्म को जीवन में लाने के लिए जरूरी है। मसलन, विनोबा इक्कीस भाषाएँ जानते हैं। लेकिन "मैं इतनी भाषाएँ सीखा हूँ"—ऐसी मुहर लगवाने के लिए उन्होंने ये सारी भाषाएँ नहीं सीखी हैं। दुनिया के सभी धर्मों के मूलग्रन्थ को पढ़ने के लिए उन्होंने संस्कृत, पालि, अर्धमागधी, अरबी, फारसी, लैटिन वगैरह भाषाएँ सीखी हैं। भारत के सब सन्तों की वाणी का प्रसाद उनकी मूल भाषा में ही चखने के लिए सारी भारतीय भाषाएँ सीखीं। दक्षिण की तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ लिपियाँ वे वर्णमाला के तख्ते देखकर नहीं सीखे। उन लिपियों में प्रकाशित गीता की प्रतियाँ सामने रखकर विनोबा ने अभ्यास किया। "धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे" किस प्रकार लिखा गया होगा? उस श्लोक के एक-एक वर्ण को पहचान कर लिपियों का ज्ञान प्राप्त किया।

विज्ञान और इतिहास विनोबा के प्रिय विषय हैं। वे मानते हैं कि ज्ञान के दो पंख हैं : एक आत्मज्ञान और दूसरा विज्ञान। इन दोनों के बिना ज्ञान सम्पूर्ण ही नहीं होता। "गीता के बाद गणित मुझे सबसे अधिक प्रिय है", ऐसा वे बार-बार कहते हैं। विनोबा को बचपन में जब सिरदर्द होता था, तब गणित में एकाग्रता सध जाने के कारण उनका यह गणित सिरदर्द की औषध बन जाता था। बड़ी उम्र में वही गणित आध्यात्मिक विचार समझाने का साधन बना। वे कहते हैं "काम कम होगा, फिर भी उसका अभिमान यदि नहीं होगा, तो कम काम भी ज्यादा हो जायगा। लेकिन यदि काम अधिक किया हो और थोड़ा भी अभिमान मन में आया, तो उसका मूल्य घट जायगा। चार सेर सेवा की हो और अभिमान चालीस हो, तो सेवा का मूल्य आठ तोले हो जायगा। लेकिन शून्य अभिमान से की गयी एक तोला सेवा भी भाग में शून्य होने के कारण अनंत तोले होगी, यानी सेवा की शक्ति अनन्त हो जायगी।" विनोबा की गणित-प्रियता आज इस यज्ञ में पूरी सहायक हुई है। देश के भूमिहीनों के लिए कितनी भूमि चाहिए, उतनी भूमि के लिए कितने दानपत्र चाहिए और इन दान-पत्रों के लाने के लिए कितने कार्यकर्ता चाहिए— यह सारा मंथन बराबर चलता रहता है। इस प्रकार विनोबा के ज्ञान-योग का वर्णन बहुत हो सकता है।

उन्हें संगीत और चित्रकला का भी शौक और परख है। यह सारा ज्ञान हासिल करने में विनोबा को एकाग्रता से बड़ी मदद मिली है। एकाग्रता के कारण वे घंटों तक अटूट कातते हैं। जब पढ़ते है तब बहुत देर तक उन्हें पता भी नहीं चलता

कि पास में कोई खड़ा है। एकाग्रता के समान ही उनकी मदद अविद्या* ने भी की है । वे मानते हैं कि ज्ञान के लिए जिस प्रकार स्मरणशक्ति की जरूरत है, उसी प्रकार उन चीजों को भूलने की कला की भी जरूरत है जो साधना के लिए निरुपयोगी हैं। उनका संग्रह क्यों ? इस कला पर भी उन्होंने अधिकार पाया है।

यह सब कहने का मतलब यह नहीं कि विनोबा निरे ज्ञानयोगी ही हैं। वे सतत कर्मयोगी भी हैं । उनके कर्मयोग का एक मूलसूत्र है—'तुम जिसकी सेवा करते हो, उसके जैसे बनो। माँ यदि बच्चे को उठाना चाहती है तो सीधी खड़ी रह कर नहीं उठा सकती । सेवक यदि जनता को ऊँचा उठाना चाहता है, तो जनता से—दरिद्रनारायण से—समरस हुए बगैर वैसा नहीं कर सकेगा' । इसी सूत्र में से विनोबा का ज्ञानयोग खड़ा हुआ है और इसी आधार पर जीवन के बत्तीस साल की ग्राम-सेवा खड़ी है। इसके माध्यम से ही स्वावलम्बन, ऋषिखेती और कांचन-मुक्ति के प्रयोग हुए हैं। उन्होंने सोचा—'मेरे इर्दगिर्द सबसे गरीब कौन है ?' चरखा चला कर उदरभरण करने वाली कुछ मुसलमान विधवाओं पर उनकी नजर गयी। उन्होंने तय किया, तकली चलाकर गुजारा क्यों न किया जाय ? सम्पूर्ण एकाग्रता से, आसन पर से जरा भी खिसके बिना, वे सुबह से शाम तक तकली चलाने लगे। तकली में छिपी सारी शक्तियों का उन्होंने आविष्कार किया। लेकिन उसके फलस्वरूप दिनभर

---

*अविद्या—'ईशावास्य वृत्ति' पुस्तक में विनोबा ने 'अविद्या' शब्द का अर्थ किया है : अनावश्यक ज्ञान का अज्ञान।

में उन्हें पाँच से सात पैसे रोजी मिलती थी। उन्होंने तय किया था कि यदि पाँच पैसे कमाऊँगा तो सवा पाँच पैसे खर्च नहीं करूँगा। रोटी और नमक ही खाया। सूखी रोटी और साग खाया, जिससे शरीर तो क्षीण हुआ; लेकिन प्रयोग नहीं क्षीण होने दिया।

तकली पर कातने में परिश्रम पूरा नहीं हो पाता था। तो फिर सबसे अधिक मेहनत करनेवालों के साथ तादात्म्य कैसे साधें, यह चिन्तन शुरू हुआ। जेल में उन्हें उसका मौका मिल गया। पत्थर फोड़ने का काम उन्होंने हाथ में छाले पड़ने और खून निकलने तक किया। एक घंटा नहीं, दो घंटे नहीं, कई घंटों तक और लगातार कई महीनों तक किया। उसी प्रकार सबसे नीच माने जानेवाले भंगियों के साथ वे स्वयं भंगी बने। वर्षों तक उन्होंने अकेले अपने हाथों पवनार-आश्रम के पड़ोस के गाँव, सुरगाँव, की सफाई की। काम को ही उन्होंने पूजा माना।

हाथ और मस्तिष्क के ऐसे अपूर्व संयोग के साथ हृदय भी भक्ति के रूप में उमड़कर आ मिला। भक्ति से मतलब तिलक, माला, आरती, धूप, दीप नहीं। भक्ति माने भूतमात्र के लिए सम्यक्दृष्टि। हरएक में अपना रूप देखना, सबमें अपना राम निहारना। फूल की गंध में तो ईश्वर हर किसी को दीख सकता है लेकिन जिसे काँटे के नुकीलेपन में भी ईश्वर दीखे वही सच्चा भक्त है। सज्जन की सज्जनता में तो ईश्वर सबको दीख सकता है, लेकिन दुर्जन की दुर्जनता में भी जिसे ईश्वर की इच्छा पूरी होती हुई दिखाई दे, उसकी ही सही भक्ति है।

—विनोबा की उत्तरप्रदेश यात्रा चालू थी। एकदिन

पास में कोई नहीं था। सब भोजन के लिए गये थे। उस समय एक नौजवान विनोबा के पास आया। त्योरियाँ चढ़ाकर बोला—"विनोबा! हिन्दुस्तान के टुकड़े होने देने के कारण गांधीजी का जो हाल हुआ, वही हाल आपका भी होनेवाला है। क्योंकि आप भी भूमि के टुकड़े करवा रहे हैं। आज तो मैं आपके पास पहली और आखिरी सूचना देने के लिए आया हूँ। लेकिन अब आपकी जान खतरें में है।"

विनोबा ने उस आदमी में भी अपने राम देखे और मन ही मन उसे प्रणाम किया। मौत की धमकी देने वाले आदमी में भी जिसे अपने राम के दर्शन हों, वह भक्तियोगी कैसा होगा? इस प्रकार विनोबा के जीवन में ज्ञान, कर्म और भक्ति का त्रिवेणी-संगम हुआ है। यहाँ जीवन-चरित्र की बातें नहीं कहनी हैं। क्योंकि चरित्र से चारित्र्य महान् है।

: २ :

आन्दोलन का क्रमिक विकास

भूमिदान-यज्ञ साम्ययोगी विनोबा की जीवन-तपस्या का फल है। उसके पीछे ज्ञान, कर्म और भक्ति की संस्कृति है, जमाने की माँग है। उसमें दुनिया ने मानव तथा मानव-समाज को साथ-साथ बदलने का प्रेममय मार्ग पाया है। आज जब कि बच्चा-बच्चा 'भूदान-यज्ञ सफल करेंगे' के उद्घोष से आसमान गुंजायमान कर देता है, जब कि भूदान-यज्ञ का अभिनव प्रकरण अपनी आँखों से देखने के लिए दुनिया के हर कोने से बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुषों का एक अखण्ड ताँता-सा लगा रहता है, तब भूदान-यज्ञ के विभिन्न पहलुओं का सम्यक् दर्शन कर लेना अत्यन्त आवश्यक है।

—स्वराज्य का उषःकाल भारतवर्ष के लिए अत्यन्त गंभीर पर्व था। हमारी लोकधानी दिल्ली में जब स्वतंत्रता समारोह की रोशनियाँ जल रही थीं, तब जिनकी तपस्या के कारण हमें आजादी हासिल हुई थी, वे राष्ट्रपिता नोआखाली में कौमी-झगड़ों की आग बुझाने के लिए अकेले पहुँच गये थे। देश के टुकड़े हुए थे, लाखों भारतवासी अपने परिवारों को साथ ले अत्यन्त दुःख के साथ स्थानान्तरित हो रहे थे। मतवाली धर्मान्धता ने नग्न नृत्य शुरू किया था। भाई-भाई एक-दूसरे का विनाश

करने में लगे थे। माँ-बहनों की लाज लूटी जा रही थी और इसी पागलपन की लहर ने हमारे राष्ट्रपिता को भी हमसे छीन लिया। मानवता का चिराग मानो बुझ गया। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा छा गया। बापू का समग्र जीवन एक प्रकार से अत्यन्त करुणान्त नाटक-सा दीख पड़ता है। उनकी प्रायः एकाकी तपस्या से हमें स्वराज्य तो मिला, लेकिन उसमें बापू की कल्पना का स्वराज्य नहीं दिखा। उस पर खून के दाग थे, अविश्वास की कालिख थी, और असमानता का कलंक था।

बापू के साथियों की हालत भी उस समय कुछ अजीब-सी थी। उनके कुछ अत्यन्त निकट के साथी सत्ता की बागडोर सँभालने की ओर मुड़े। लेकिन उनकी पूरी शक्ति देश के सामने खड़ी बड़ी-बड़ी समस्याओं को किसी कदर थोपकर रखने में ही खतम होने लगी। गांधीजी की तरह समस्याओं को सुलझाने के लिए उनके पास कोई नया अहिंसक मार्ग नहीं था। इसलिए उन्होंने उन्हीं पुराने तरीकों—लाठी, जेल, गोली, का इस्तेमाल चालू किया, जिनका प्रयोग अंगरेज सरकार उनके खिलाफ करती आयी थी।

गांधीजी के अन्य कुछ अनुयायी अपने सरकारी साथियों की नुक्ताचीनी करने लगे थे और इसीके स्वप्न देखते रहते थे कि सरकार में हम होते तो क्या करते? लेकिन उनके पास भी जनता के लिए विधायक पुरुषार्थ की प्रेरणा देनेवाला कोई कार्यक्रम नहीं था। गांधीजी के वे अनुयायी जो अपने आपको रचनात्मक कार्यकर्ता कहलाते थे, अपनी-अपनी संस्था खोले बैठे थे, उनमें से कुछ को अपने मौजूदा काम से असन्तोष

था, लेकिन उन्हें आगे का मार्ग सूझ नहीं रहा था। कुछ रचनात्मक कार्यकर्ताओं को अपने काम से सन्तोष भी था, किन्तु उससे देश की ताकत बढ़ती हुई नजर नहीं आती थी।

देश जब इस असमंजस की हालत में था, तब विनोबा अपने परंधाम के आश्रम में कांचनमुक्ति और ऋषिखेती के प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने इतना तो देख लिया था कि देश की सारी समस्याओं के मूल में असमानता है। असमानता की जड़ों को काटने के लिए अपनी छोटी-सी प्रयोगशाला में प्रयोग करना काफी नहीं था। उसे सामूहिक रूप से देशव्यापी प्रयोगशाला में चलाना जरूरी था। इतिहास की दृष्टि से देश के सामने मूल सवाल यह था कि गांधीजी के अहिंसा के जिस मंत्र ने देश को नवजीवन दिया, चेतना दी और स्वातंत्र्य-प्राप्ति में बहुत बड़ा हिस्सा लिया, वह अहिंसा का मंत्र क्या गांधीजी के शरीर के साथ ही लुप्त हो गया? जिस अहिंसा को बुद्ध, महावीर, ईसामसीह आदि सन्त-महात्माओं ने अपनी तपस्या से व्यक्तिगत जीवन में सफल किया, राजनीति के क्षेत्र में जिसका प्रवेश गांधीजी ने कराया, वह अहिंसा क्या इतनी दूर आकर रुक जायगी? समग्र मानव-जीवन को स्पर्श करनेवाले इस मूलभूत प्रश्न के उत्तर की खोज में विनोबा लगे हुए थे। भूदान-यज्ञ में उन्हें इस प्रश्न का उत्तर मिल गया। इसीलिए विनोबा ने तेलंगाना के उस प्रसंग को, जहाँ से भूदान-यज्ञ का आरंभ हुआ, "अहिंसा का साक्षात्कार" कहा।

पोचमपल्ली! हैदराबाद के तेलंगाना विभाग के इस छोटे-से गाँव को १८-४-१९५१ से पहले बाहर का कोई आदमी जानता

भी नहीं था। उस प्रदेश में चारों ओर आतंक छाया था, दिन में सरकारी अफसरों का, रात को साम्यवादियों का। विनोबा शिवरामपल्ली के सर्वोदय-सम्मेलन के बाद पैदल वर्धा लौटते हुए तेलंगाना पहुँचे। जहाँ पुलिस भी भरी बन्दूक के साथ जाती थी, वहाँ रामनाम के सिवा उनके पास कोई रक्षण नहीं था। घर-घर जाकर जनता को कायरता छोड़कर प्रेमभाव बढ़ाने की उन्होंने सीख दी।

—दोपहर को हरिजनों की एक सभा थी। विनोबा जिस गाँव में पहुँचते वहाँ ऐसी सभाएँ हुआ करतीं। उन्होंने गाँव के उन गरीबों से उनका सुख-दुःख पूछा और उनकी माँग पूछी। वे जमीन के भूखे थे। उन गरीबों ने ८० एकड़ जमीन की माँग रखते हुए कहा—हमें इतनी जमीन मिल जाय तो हमारी आवश्यकता पूरी हो सकती है। विनोबा ने कहा—"ठीक है, हम आपको जमीन दिलाने की कोशिश करेंगे।" यह कोशिश सरकार के पास जाकर ही करने की कल्पना पहले उनके मन में आई। लेकिन उन्होंने सोचा, यहाँ गाँववालों से भी पूछ लें; और उसी सभा में पूछा कि क्या इस गाँव में से कोई इन गरीबों को जमीन देगा? विनोबा का पूछना ही था कि एक भाई, रामचन्द्र रेड्डी, उठ खड़े हुए और उन्होंने कहा—"मेरे पिताजी ने कुछ जमीन दान करने के लिए अलग निकाली है। वह मैं देना चाहता हूँ।" उनके मुँह से ईश्वर बोल उठा। विनोबा ने यह चीज पकड़ ली। भगवान् को संकेत करना था, यह अपने मन में अनुभव किया। अगर वह संकेत विनोबा नहीं पकड़ते तो अहिंसक क्रान्ति के सामूहिक आविष्कार का यह

नया अध्याय शायद ही लिखा जाता। यही भूदान-यज्ञ की गंगोत्तरी है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कुछ निर्वासितों को सरकार से जमीन दिलाने में कितनी कठिनाई हुई है, इसका अनुभव खुद उन्हें था। इसलिए उन्होंने पोचमपल्ली में जनता से ही जमीन की माँग की।

घटना यों तो छोटी-सी थी। लेकिन विनोबा ने उसमें ईश्वर का संकेत देखा। आज तक देवालयों, विद्यालयों या अन्य सार्वजनिक उपयोग के लिए जमीनें माँगी गयी थीं। लेकिन दरिद्रनारायण के लिए जमीन माँगने का, देश की भूमि-समस्या दान माँगकर सुलझाने का, यह दुस्साहस विचित्र ही था। लेकिन भगवान् का संकेत मिल चुका था। विनोबा अगर माँगने से झिझकते, तो अपने आपको कायर समझते। उन्होंने माँगा और जमीनें मिलीं। मानो चमत्कार ही हुआ। वर्षों से लड़नेवाले भाई एक-दूसरे से गले मिले। धरती के लालों ने सदियों के बाद अपनी माँ वसुन्धरा को माँ कहने का अधिकार प्राप्त किया। पोचमपल्ली से सेवाग्राम पहुँचने तक, दो महीनों में, विनोबा को बारह हजार एकड़ भूमि दान में मिल चुकी थी।

लोगों ने कहा कि तेलंगाना में जमीन मिल सकती थी; क्योंकि वहाँ लोग हिंसक लोगों के आतंक से डर गये थे। जमीन अपने हाथ में रहेगी या नहीं, यह वे जानते ही नहीं थे; इसलिए उन्होंने विनोबा को जमीन दे दी। जलता घर कृष्णार्पण किया।

विनोबा ने इस आक्षेप का मौखिक उत्तर नहीं दिया। उनकी उत्तर-भारत यात्रा ने ही इसका उत्तर दे दिया। पंचवार्षिक

योजना के बारे में परामर्श के लिए पण्डित नेहरू ने विनोबा को दिल्ली बुलाया। १२ सितम्बर '५१ को पुनः पद-यात्रा में पवनार से निकल पड़े। जहाँ लोगों में साम्यवाद के आतंक का प्रश्न नहीं था, जहाँ असमानता थी, लेकिन हिंसा का नाम नहीं था, उन मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और दिल्ली के देहातों से विनोबा को दो महीनों में करीब अठारह हजार एकड़ जमीन मिली। देश ने यह सिद्ध कर दिया कि उन्हें "सर्वोदय से पहले सर्वनाश" का रास्ता नहीं चाहिए। बुद्ध, महावीर और गांधी ने जो अहिंसा का दीप भारतीय जनता के हृदय में जलाया था वह अभी बुझा नहीं था। उसे जरूरत थी अन्तस्तल में पैठकर हृदयशायी भगवान् को जगानेवाले भक्त की। विनोबा की पावन वाणी ने भारतीय आत्मा को जगा दिया।

२ अक्तूबर, '५१ के दिन विनोबा मध्यप्रदेश के सागर शहर में पहुँचे। वहाँ मध्यप्रदेश के कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन हुआ। भूदान-यज्ञ के इतिहास में इस सम्मेलन का एक खास स्थान है। इसी सम्मेलन में विनोबा ने देश के सामने पाँच करोड़ एकड़ भूमि-प्राप्ति का अपना विचार प्रकट किया। लोग हक्के-बक्के से रह गये। जिन्होंने यह आँकड़ा अखबारों में पढ़ा उनमें से कुछ ने तो यह समझा कि गलती से दो शून्य अधिक छप गये हैं। विनोबा को अभी तक पूरी पाँच हजार एकड़ जमीन भी नहीं मिल सकी थी। लेकिन उनकी माँग पाँच करोड़ एकड़ तक पहुँच गयी। गणिती विनोबा ने तो अपना गणित तेलंगाना में ही कर रखा था। देश के सात-आठ कोटि भूमिहीनों को काम देने के लिए कम से कम पाँच कोटि एकड़ भूमि तो चाहिए ही। भूदान-

यज्ञ कुछ लोगों के लिए भीख माँगने का काम नहीं है; बल्कि वह तो देश के सम्पूर्ण भूमिहीनों के लिए गुजारे के लिए काफी जमीन प्राप्त करने का क्रान्तिकारी आन्दोलन है, यह साबित करना था। इसलिए पाँच कोटि एकड़ से कम की माँग हो ही नहीं सकती थी। कोई कह सकता है कि अभी विनोबा को तो जमीन बहुत थोड़ी मिली थी, इतनी अधिक जमीन माँगने का साहस क्यों किया? बात यह है कि जिसने शुरू में ही ईश्वर का सहारा समझकर माँगा था, उसके लिए हिचकिचाहट का प्रश्न ही कहाँ उठता है? विनोबा तो कहते थे कि जो ईश्वर बालक को भूख देता है, वह माँ को दूध भी देता है; जिसने मुझे माँगने की प्रेरणा दी, वही लोगों को देने की प्रेरणा भी देगा। रविबाबू के साथ मानो उन्होंने यह गीत गा लिया था —

"तोमार पताका जारे दाओ
तारे बहि बारे दाओ शक्ति"

जिसे तुम अपनी पताका देते हो, उसे उसके उठाने की ताकत भी दो।

पोचमपल्ली से सागर तक भूदान-आन्दोलन का पहला कदम कहा जा सकता है। इसे हम सिद्धान्त-निरूपण का काल कह सकते हैं। यों तो विनोबा के चिन्तनशील और नित्य-विकासशील स्वभाव के कारण उनके व्याख्यानों में नित्य नया विचार मिल जाता है। फिर भी पोचमपल्ली से सागर तक के व्याख्यानों में भूदान-यज्ञ का विचार-निरूपण संक्षेप में, किन्तु प्रायः समग्र दृष्टि से, विनोबा ने किया है। भूदान-यज्ञ के शेष इतिहास को हम नीचे लिखे कालखण्डों में बाँट सकते हैं—

१. सागर से सेवापुरी तक—जनहृदय प्रवेश काल
२. सेवापुरी से बिहार तक—जन-आन्दोलन काल
३. बिहार यात्रा—एकाग्र प्रयोग काल
४. बिहार के बाद—भूमि-क्रान्ति के पथ पर

सन् '५२ के अप्रैल १३ से १६ तक काशी के पास सेवापुरी में सर्वोदय-सम्मेलन हुआ। सागर से सेवापुरी तक की विनोबा की यात्रा को हमने-जनहृदय प्रवेश काल-कहा है। इन छह महीनों में भूदान देते समय देनेवालों के तथा उसका स्मरण करनेवालों के जीवन को पावन करनेवाले जितने पवित्र प्रसंग हुए उतने शायद और किसी काल में नहीं हुए। छोटे-छोटे लोगों का हृदय उँड़ेलकर दान देना, अपनी सारी-की-सारी सम्पत्ति न्यौछावर कर देना, हृदय-परिवर्तन के अपूर्व नमूने पेश करते हैं। इन पावन प्रसंगों में से एक-एक का महत्त्व पुराणों के किसी प्रसंग से कम नहीं है। गोबरी से अन्न निकालनेवाला मंगरू हरिजन, जिसने अपनी पूरी-की-पूरी २१ डेसिमल जमीन दे दी, नैनीताल की वह बुढ़िया, जो अपनी थोड़ी-सी जमीन देने के लिए रात भर जाड़े में बैठी रही, वह बूढ़ा रामचरण जो आँखों से नहीं देखता था, लेकिन जिसे ज्ञानचक्षु थे, किसी से बैलगाड़ी चलवाकर आया और रात को अपनी जमीन दे गया। यह एक-एक प्रसंग हमें विदुर के शाक, शबरी के बेर और सुदामा के तण्डुलों का स्मरण करा देता है। उन दिनों विनोबा गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचते थे। इस समय उनके पीछे आज जैसी अपार भीड़ नहीं रहती थी। इसलिए वे लोगों के हृदय तक पहुँच कर व्यक्तिगत रूप से उनके हृदय में स्थित राम को जगा सकते थे।

जन-हृदय के साथ कवि-हृदय भी जाग उठा। झाँसी में हिन्दी के प्रमुख कवियों ने भूदान-यज्ञ में अपनी लेखनी द्वारा सहायता करने का वचन दिया। इस काल की दो प्रमुख घटनाओं की ओर संकेत करना जरूरी है। पहली विनोबा का देहली निवास और दूसरी घटना मथुरा का कार्यकर्ता सम्मेलन। दिल्ली में आयोजन-पंच के साथ विनोबा ने कई घंटों तक मंत्रणा की तथा अपने विचार साफ-साफ शब्दों में उनके सामने रखे। उस समय बे-रोजगारी के सवाल पर विनोबा ने जो सुझाव दिये थे, उन्हें केन्द्रीय सरकार ने आगामी पंचवर्षीय योजना में मद्दे-नजर रख-कर काम करने का सोचा है; ऐसा कहा जाता है।

मथुरा-सम्मेलन में उत्तर प्रदेश के कार्यकर्ताओं ने अपने प्रान्त में एक करोड़ एकड़ भूमि-प्राप्ति के अन्तिम लक्ष्य की पहली किस्त के तौर पर आगामी एक वर्ष में पाँच लाख एकड़ भूमि प्राप्त करना तय किया। एक निश्चित अवधि और निश्चित परिमाण में जमीन प्राप्त करने के संकल्प का यह प्रथम प्रसंग था।

सेवापुरी-सम्मेलन भूदान-यज्ञ की दृष्टि से बड़े महत्त्व का था। गांधीजी के निर्वाण के बाद सर्वोदय समाज की स्थापना की गयी थी। प्रति वर्ष एक बार सर्वोदय सेवक एकत्र होकर अपने काम के विषय में सह-विचार करते थे। इस प्रकार का यह तीसरा सम्मेलन था। लेकिन दूसरे सम्मेलनों से इस सम्मेलन में यह अन्तर था कि इस बार सह-विचार के साथ सह-कार्यक्रम भी निश्चित किया गया। सेवापुरी में सर्वोदय सम्मेलन के मंत्री श्री शंकरराव देव ने एक महत्त्वपूर्ण संकल्प प्रस्तुत किया, जिसमें देश के पाँच लाख गाँवों में से हर गाँव में एक भूमिहीन परिवार बसाने के

हिसाब से एक साल में पच्चीस लाख एकड़ जमीन भूदान-यज्ञ में प्राप्त करने की बात कही गयी थी। देश के अधिकांश प्रान्तों में अपने-अपने प्रदेशों के लिए भूमि-प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित किया। इस काम को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए कई प्रदेशों में भूदान समितियों की स्थापना हुई। विनोबा ने कहा—"अब मैं सहस्रबाहु बनता हूँ। जो काम विनोबा अकेला करता था, वह काम अब देश के कोने-कोने में हजारों लोग अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार करेंगे।"

भूदान-आन्दोलन में यह एक नया प्रवाह था। आन्दोलन अब हृदय-प्रवेश की अवस्था से निकलकर जन-आन्दोलन बन चुका था। देश भर में नयी हवा का संचार होने लगा। जहाँ विनोबा का नाम भी कोई नहीं जानता था, वहाँ से भूदान-यज्ञ में आहुतियाँ मिलने लगीं। शंकररावजी देव, श्रीकृष्णदासजी जाजू, धीरेन्द्र मजूमदार, दादा धर्माधिकारी जैसे विचारक और कर्मठ व्यक्तियों ने भूदान की आवाज देश के कोने-कोने तक पहुँचाई। देश ने पहली बार यह अनुभव किया कि गांधीजी की अहिंसा फिर एक बार सजीव और सक्रिय हो उठी।

उत्तर प्रदेश में विनोबा को कदम-कदम पर जमीन मिलने लगी। तेलंगाना में विनोबा को रोजाना दो सौ एकड़ जमीन मिलती थी। सेवापुरी तक यह औसत तीन सौ एकड़ प्रति दिन तक चला गया। फिर यह गति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। रोज का औसत चार-पाँच सौ एकड़ तक जब पहुँचा, तब लोगों को आश्चर्य होने लगा। फिर तो औसतन हजार एकड़ तक आँकड़ा

पहुँच गया। सुलतानपुर जिले में तो विनोबा को पाँच दिनों में सत्रह हजार एकड़ जमीन मिली। इस प्रकार विनोबा की उत्तर प्रदेश यात्रा में पहली बार कार्यकर्ताओं के दिमाग में इस बात की स्पष्टता हुई कि यदि पूरी मेहनत की जाय तो भूमि की समस्या भूदान-यज्ञ से हल हो सकती है। तुलसीदासजी के बाँदा जिले में और इलाहाबाद तथा मिर्जापुर में विनोबा पर मानो दानपत्रों की वर्षा ही हुई। कानपुर जिले में प्रवेश करते ही विनोबा को इतनी जमीन मिल गयी, जितनी पहली किस्त में माँगी थी। कानपुर शहर के नागरिकों ने उन्हें दो हजार जोड़ी बैल देने का भी वादा किया। यहीं पर विनोबा ने अपने हाथों प्रथम भूमि-वितरण भी किया।

किन्तु इस काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना—"सबै भूमि गोपाल की" चरितार्थ करनेवाली–मँगरौठ गाँव की है। यहाँ के सभी भूमिधारियों ने अपनी सारी जमीन भूदान-यज्ञ में समर्पण की। उस गाँव का जीवन अब नयी बुनियाद पर शुरू हुआ। कौन कितनी जमीन जोतेगा, किसे कितनी उपज मिलनी चाहिए, कौन-सा उद्योग कौन करेगा? ये सारे प्रश्न ग्रामदृष्टि से सोचे जाने लगे। गांधीजी ने कई बार कहा था कि भारतवर्ष तो उसके लाखों देहातों में फैला है। विनोबा ने उसी विचार को नयी भाषा दी। उन्होंने कहा—देश का आयोजन दिल्ली जैसे शहर में नहीं, मँगरौठ जैसे गाँव में होना चाहिए। इस कल्पना को अमली रूप देने के लिए अब योग्य भूमिका तैयार हो गयी है। भारत का किसान जागने लगा है, उसने अपनी पारिवारिक भावना व्यापक की है और सारे गाँव को अपना कुटुम्ब मानने

का नमूना मँगरौठ जैसे गाँव में उपस्थित किया है। सोचेंगे तो सारे गाँव के लिए, काम करेंगे तो सारे गाँव के लिए, इस प्रकार स्वार्थ व्यापक होने लगा। अभी तो मँगरौठ में नये जीवन का आरम्भ ही हुआ है। पानी की व्यवस्था, ग्रामोद्योगों को विकसित करने की योजना, बच्चे के जन्म से लेकर आजीवन नयी तालीम की समग्र कल्पना, ग्राम-आरोग्य और ग्राम-न्याय की पूरी व्यवस्था करना अभी बाकी है।

समग्र ग्रामदान तो सर्वोदय का पहला कदम ही है। फिर भी यह अनिवार्य कदम है। भूमिदान-यज्ञ आन्दोलन ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि हमारी सारी समस्याओं की जड़ में भूमि-समस्या है। उसे जब तक हम हल नहीं करते तब तक किसी रचनात्मक काम के लिए वातावरण नहीं बनता।

१४ सितम्बर '५२ के दिन विनोबा ने बिहार की भूमि में प्रवेश किया। ३१ दिसम्बर '५४ के दिन बिहार-यात्रा पूरी करके वे बंगाल की ओर रवाना हुए। बिहार-यात्रा के इस काल को हमने 'एकाग्र-प्रयोग का काल' कहा है।

बिहार की भूमि में पैर रखते ही विनोबा ने कहा—इस प्रान्त की पूरी भूमि समस्या का हल देखना चाहता हूँ। अभी उन्हें पूरी ४ एकड़ जमीन भी नहीं मिली थी, तभी उन्होंने कहा कि बिहार में मुझे ४० हजार एकड़ भूमि मिलनी चाहिए। विचार इस प्रकार था : उत्तर प्रदेश में विनोबा को ग्यारह महीनों के प्रवास में ३ लाख एकड़ से कुछ अधिक जमीन मिली थी। विनोबा ने सोचा, यदि इस प्रकार मैं एक प्रान्त से दूसरे

प्रान्त में जाता रहूँ तो मुझे हर साल दो-चार लाख एकड़ जमीन मिलती रहेगी। इस गति से यदि भारत की भूमि-समस्या हल होनेवाली हो तो पूरी समस्याएँ हल होने में सदियाँ लग जायँगी। भूदान के काम को हमने जो जमाने की माँग माना है, वह काम फिर जमाने से पिछड़ जायगा। इसलिए एक प्रान्त पर ही पूरी ताकत लगाकर उसकी पूरी भूमि-समस्या हल करने के बाद ही वहाँ से आगे चलने का उन्होंने तय किया। हिसाब लगाया गया। तय हुआ कि बिहार के सभी भूमिहीनों को बसाने के लिए बत्तीस लाख एकड़ भूमि चाहिए। चाण्डिल के सर्वोदय सम्मेलन में विनोबा ने अपना निश्चय फिर एक बार प्रकट किया।

यद्यपि चाण्डिल-सम्मेलन से बहुत पहले ही बिहार में भूदान-यज्ञ की काफी धूम मच गयी थी, फिर भी आरंभ के कई दिन बहुत कठिन गये। विनोबा ने कहा—जो कुएँ खोदता है उसे हमेशा मुलायम मिट्टी ही नहीं मिला करती। कभी-कभी कड़ी चट्टानें भी मिलती हैं और उन्हें तोड़ना पड़ता है। उन कड़ी चट्टानों के नीचे से जो जल निकलता है, वह उतना ही मृदु मधुर होता है, जितनी कि वे चट्टानें कठोर होती हैं। उन दिनों सभाएँ बड़ी-बड़ी होती थीं। दस हजार से तीस हजार तक लोगों की भीड़ अक्सर रहा करती थी। कोसों दूर से दर्शनार्थियों का ताँता लगा रहता था। लेकिन दान बहुत कम मिलते थे। कभी-कभी तो विनोबा को दिन भर में दो-चार एकड़ जमीन भी मुश्किल से मिलती थी। जमीन महँगी थी, नहर का किनारा था, बड़े-बड़े जमीन मालिक नहीं थे, जो थे वे भी विनोबा से दूर भागते थे। कार्यकर्ता

बाहर निकलना नहीं चाहते थे। स्थिति गंभीर होती जाती थी। लेकिन विनोवा घूमते ही रहे—और सतत घूमते रहे। समुद्र की लहरें चट्टानों से टकरातीं और टूट जातीं, फिर उठतीं और बार-बार टकरातीं और टूटती रहतीं। इस प्रकार सतत उठने, टकराने, टूटने और फिर उठने की क्रिया ने आखिर चट्टानों को टूक-टूक कर दिया। पहले छोटे किसानों ने दान दिया। किसीने एकड़ दिया, किसीने बीघा दिया, किसीने कुछ कट्ठे दिये और किसीने कुछ धूर ही दिये सही! लेकिन लोग सोचने लगे, इस कट्ठे-कट्ठे के दान का क्या होगा? छोटे लोगों से दान क्यों लिया जाता है? इस प्रश्न पर हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे। लेकिन यहाँ एक कारण का जिक्र कर लें। छोटों के दानों से बड़ों को प्रेरणा मिलती है। जैसा कि ऊपर कहा है—छोटे-छोटे किसानों ने हजारों की तादाद में जो दान दिये उन छोटे-छोटे दानों से जो वातावरण पैदा हुआ—उसके नैतिक दबाव से बड़े लोगों की आँखें भी खुलीं। जब यज्ञ किया तब लाख-लाख लोगों ने हविर्भाग दिया और जब दान मिले तब भी लाख-लाख एकड़ों के दान मिले।

'चाण्डिल-सम्मेलन' से पहले बिहार में दो बड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। पटना में विनोबा ने सम्पत्ति-दान-यज्ञ का आरम्भ किया। भूमि के साथ सम्पत्ति के बँटवारे की कल्पना तो पहले से थी, पर नये भूमिहीनों को बसाने की आवश्यकता सम्पत्ति-दान के आरम्भ का निमित्त बनी। इस यज्ञ का प्रारंभ भी बेजमीनों की समस्या से जुड़ा हुआ है। 'निधि' का नाम सुनते ही 'निधन' का स्मरण करनेवाले और 'ट्रस्ट' की बात सुनते ही

'डिस्ट्रस्ट' (अविश्वास) करनेवाले विनोबा ने यह कोई नया 'फण्ड' नहीं शुरू किया। बल्कि जिस प्रकार भूदान-यज्ञ में उत्पादकों की मालिकी का संकेत था, उसी प्रकार सम्पत्ति-दान-यज्ञ में अस्तेय और अपरिग्रह के समाजीकरण द्वारा अर्थ-शुचित्व का संकेत था। प्रत्येक दाता अपना हिसाब अपने आप रखेगा और अपनी कमाई में समाज का हिस्सा स्वीकार करते हुए एक निश्चित हिस्सा—निश्चित रकम नहीं—विनोबा की सूचना के अनुसार खुद खर्च करेगा, यह है उसकी प्रक्रिया। इसमें धन इकट्ठा करने की योजना नहीं है। यह थी पहली महत्त्वपूर्ण घटना।

दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना थी—श्री जयप्रकाश नारायण जी का इस आन्दोलन में प्रवेश। वर्षों से वे आत्म-परीक्षण कर रहे थे। गांधीजी का 'ट्रस्टी-शिप' का असली स्वरूप उन्हें इस काम में दीख पड़ा। चाण्डिल में जब विनोबा जी मलेरिया से पीड़ित थे, जीवन-मृत्यु के बीच उनकी नाव डोल रही थी, तब श्री जयप्रकाश नारायण का यह कहना कि—आप चिन्ता-मुक्त रहिए, हम लोग आपका काम उठा लेंगे, एक नयी आशा की किरण बन गया। गया जिले से विनोबा पहले एक लाख एकड़ की माँग कर चुके थे। वहाँ गाँव-गाँव में श्री जयप्रकाश नारायण संचार कर रहे थे। छोटे-छोटे किसानों ने सैकड़ों-हजारों की संख्या में दान दिया। बीसों ने अपना सर्वस्व समर्पण किया।

चाण्डिल का सर्वोदय-सम्मेलन भूदान-यज्ञ के इतिहास में संस्मरणीय रहेगा। अगले ही दिन रामगढ़ के राजा ने एक लाख एकड़ भूमि का दान दिया था। बड़े जमींदारों के सहयोग का यह नया युग आरंभ हुआ। इसी सम्मेलन में विनोबा के प्रवचन ने

रचनात्मक कार्यकर्ताओं की वैचारिक-भूमिका स्पष्ट कर दी। उनके एक भाषण को तो लोगों ने सर्वोदय का 'घोषणापत्र' कहा।

चाण्डिल के बाद भूदान की जैसी बाढ़ आयी, वैसी कभी पहले नहीं आयी थी। पलामू जिले में रंका के राजा विनोबा के साथ घूमे। उन्होंने पहले दो हजार पाँच सौ एकड़ का और फिर बारह हजार एकड़ का दान दिया था। यह दान कार्यकर्ताओं के माँगने पर दिया था। जब विनोबा ने पूछा—"आपने ऐसा क्यों किया?" उन्होंने कहा—"जिसने जितना माँगा उसे उतना दिया।" विनोबा ने फिर कहा—"अब मैं आपके पास आया हूँ, मुझे कितना देंगे?"

"मेरे पास जो जमीन है, उसमें से जितनी आप माँगें उतनी दूँगा।" विनोबा ने कहा—"आपके पास खुदकाश्त की जितनी जमीन है उसका छठा अंश और जितनी पड़ती जमीन है वह पूरी-की-पूरी दे दीजिए।" राजा साहब ने मंजूर कर लिया और एक लाख दो एकड़ जमीन दे दी। महात्मा बुद्ध की जयन्ती का वह पावन दिन था। विनोबा ने इस दान को पूर्ण दान माना और भगवान् बुद्ध के नाम पर उसे समर्पित किया। एक पखवारा और बीता। राँची जिले में पालकोट के राजा ने चौवालीस हजार पाँच सौ एकड़ जमीन दी।

एक दिन विनोबा ने कहा—"मुझे जो दान देता है, उसे मैं विष्णु समझता हूँ। लेकिन अब मुझे विष्णु सहस्रनाम सुनने की इच्छा है, इसलिए एक दिन में मुझे एक हजार दानपत्र चाहिए।" विनोबा को कई दफा विष्णु सहस्रनाम भी सुनाये गये। एक ओर गरीबों से हजारों दानपत्र मिलते थे और दूसरी ओर एक-एक जमींदार से हजारों एकड़ जमीन मिलती थी। इस प्रकार क्रान्ति ने

दोनों मोरचें सँभाल रखे थे। हजारीबाग जिले ने तो हद कर दी। वहाँ की कुल खेती-लायक जमीन करीब अठारह लाख एकड़ है। इसलिए पूरी भूमि-समस्या हल करने के लिए विनोबा ने तीन लाख एकड़ जमीन माँगी। मतलब यह था कि अगर उतनी जमीन पूरी हो जाय तो एक जिले में यह बात सिद्ध हो जायगी कि भूमि-समस्या प्रेम से हल हो सकती है। हजारीबाग जिले ने सात लाख एकड़ जमीन दान में दी। यहाँ केवल भूमि-समस्या ही हल होने की बात नहीं रही, बल्कि यह भी सिद्ध हुआ कि यहाँ अन्य भूमिहीनों को बसाने का काम भी हो सकता है। परन्तु हजारीबाग ज़िले में तो पड़ती जमीन अधिक है। इसलिए यहाँ अधिक जमीन मिली। ऐसे जिलों का क्या जहाँ जनसंख्या अधिक और जमीन कम है? इस प्रश्न का जवाब गया जिले में देने की चेष्टा की गयी। यहाँ जमीन महँगी है, मालिक छोटे-छोटे हैं और भूमि-समस्या भी कठिन रही। विनोबा ने गया जिले को अपना प्रयोग-क्षेत्र बनाया। तीन बार गया जिले में भ्रमण किया—यह स्वीकार करना होगा कि गया जिले का लक्ष्यांक अभी पूरा नहीं हुआ है। फिर भी समस्या हल होकर रहेगी, इसमें शंका नहीं। यह जरूर है कि कार्यकर्ताओं को सतत ज़ागरूक रहकर निष्ठापूर्वक काम में लगे रहना होगा।

बोधगया के सर्वोदय-सम्मेलन की केन्द्रवर्ती घटना जीवन-दान में कार्यकर्ता जुटाने की दिशा में एक बड़ा काम था। घटना जितनी विलक्षण उतनी ही स्फूर्त थी। श्री जयप्रकाश नारायण जब बोलने के लिए खड़े हुए तब शायद उन्हें भी पता नहीं था कि वे एक नये यज्ञ के अध्वर्यु बनने जा रहे हैं। इस काम के लिए पूरा जीवन समर्पण करनेवाले कार्यकर्ताओं की माँग करते हुए

सबसे पहले उन्होंने अपने आप को ही अर्पण कर दिया—यह एक बहुत बड़ी घटना थी। देश का एक समर्थ राजनीतिज्ञ राजनीति छोड़कर लोकनीति की ओर कदम बढ़ा रहा था। वातावरण में बिजली-सी दौड़ गयी। दूसरे दिन विनोबा ने एक पत्र द्वारा 'भूदान-यज्ञ-मूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसात्मक क्रान्ति' के लिए अपना जीवन समर्पण किया। जिनका पूरा जीवन सेवा के लिए ही था, उन्होंने भी अपने काम को 'भूदान-यज्ञ-मूलक' बनाने का निश्चय किया। अपनी सारी शक्ति इस काम पर केन्द्रित करने का संकल्प किया। इन बुजुर्गों के लिए जीवन-दान-यज्ञ की प्रतिज्ञा को दुहराना, शक्ति बढ़ाने का तथा चित्त-शुद्धि का एक साधन बना। नौजवानों ने नयी क्रान्ति के उत्साह से जीवन-दान किया।

मार्च १९५४ के बाद बिहार में सात लाख एकड़ जमीन मिली। भूमि-प्राप्ति के साथ भूमि-वितरण की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक था। देश भर में भूमि-वितरण के कार्यक्रम जगह-जगह आरंभ हुए। भूमि-प्राप्ति और वितरण के अब तक के आँकड़े इसी पुस्तक में अन्यत्र दिये गये हैं।*

बोधगया सम्मेलन से ही विनोबा ने तय कर लिया था कि वे बिहार छोड़कर कुछ दिन बंगाल में बितायेंगे और फिर उत्कल की ओर अग्रसर होंगे। उड़ीसा के लिए विनोबा ने भूमि-क्रान्ति का मंत्र दिया। अभी उस मंत्र का सगुण-साकार स्वरूप देश के सामने प्रकट होना बाकी है। लेकिन अब तक उड़ीसा ने जिस दिशा में

---

*परिशिष्ट १ देखिये।

कार्य आरंभ किया है, उससे भविष्य के कुछ आसार दिखाई देने लगे हैं। वहाँ का सबसे बड़ा काम है समग्र ग्राम-दान। जहाँ विनोबा गये भी नहीं थे और जहाँ शायद कोई लब्धप्रतिष्ठ कार्यकर्ता भी नहीं पहुँच सका हो, वहाँ के लोगों ने भी ऐसा काम कर दिखाया जैसा और कहीं नहीं हुआ था। उड़ीसा के कुछ हिस्सों में, विशेषकर कोरापुट जिले, में समग्र ग्राम-दान का सिलसिला शुरू हो गया। आज तक देश भर में जितने ग्रामदान हुए हैं, उनमें सबसे अधिक ग्राम-दान उड़ीसा में हुए हैं। तीन सौ ग्रामों के सबके सब भूमिवान् लोगों का अपनी चप्पा-चप्पा जमीन दे देना कोई साधारण बात नहीं है। उड़ीसा ने अब तक जितने ग्रामों का दान दिया है, उनसे एक तहसील तो आसानी से बन सकती है। यदि ऐसी पूरी तहसीलें या जिले के जिले अपनी पूरी की पूरी भूमि का पुनर्वितरण करने लगें तो हमें समझना चाहिए कि भूमि क्रान्ति की अवश्यम्भावी प्रक्रिया शुरू हुई है।

यहाँ हमने भूदान के इतिहास की सामान्य पृष्ठ भूमि आपके सामने रखी है। लेकिन उससे अधिक महत्त्व की चीज है, भूदान-यज्ञ की वैचारिक-भूमिका।

: ३ :

वैचारिक-भूमिका—१

वैदिक ऋषि ने पृथ्वी को प्रणाम करते हुए कहा—"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"—पृथ्वी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंच महाभूतों का बना हुआ यह शरीर उन्हींके आधार पर टिकता है। सृष्टि की रचना ही इस प्रकार की है कि मनुष्य को जिस चीज की जितनी अधिक जरूरत हो, उतनी ही विपुल परिमाण में वह प्रकृति में पायी जाती है। वायु और आकाश के बिना मनुष्य कुछ क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। प्रकृति ने उनकी देन भी इतनी विपुल की है कि किसीको उसकी कमी का अनुभव नहीं होता।

मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं में जल और अन्न ये दो वस्तुएँ और हैं। आम तौर से जल भी इतने परिमाण में है कि हर किसी को मनचाहा मिल जाता है। रहा प्रश्न अन्न का। जल, तेज, वायु और आकाश की तरह अन्न भी प्रत्येक व्यक्ति को यथेष्ट मिलना चाहिए। भोजन पर मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। लेकिन मनुष्य का यह अधिकार मनुष्य द्वारा ही छीना जा रहा है। वैज्ञानिकों का आज भी कहना है कि पृथ्वी पर इतनी खाद्य सामग्री है कि आज जितनी आबादी है उससे कई गुनी बढ़ जाने पर वह कम पड़नेवाली नहीं है। लेकिन फिर भी दुनिया

की कुल आबादी में से तीन चौथाई हिस्सा अधभूखा या दुर्भिक्ष की सीमा पर रहनेवाला बनता जा रहा है। इस वैषम्य के कई कारणों में से एक प्रमुख कारण यह भी है कि हमने जल, तेज, वायु और आकाश की तरह पृथ्वी को भी मुक्त नहीं रखा है। जिसे साँस लेनी है, वह हवा लेता है। जिसे प्यास लगी है, वह पानी पीता है। उसी प्रकार जिसे भूख लगे, उसे खाना मिलना चाहिए। यह तभी हो सकेगा जब धरती पर काम करने की इच्छा रखनेवाले हर व्यक्ति को काम करने का अवसर मिले। आज का जो असमान बँटवारा है उसे समान करें। जिस पृथ्वी को वेदकाल से हमने माँ कहा है, उसका आज मनुष्य स्वामी बनना चाहता है। माँ जब तक दासी रहेगी, पुत्र सुखी नहीं रहेगा। हवा कभी यह नहीं कहती कि मैं छोटे बच्चे के फेफड़े में नहीं जाऊँगी। नदी कभी यह नहीं कहती कि मैं शेर को ही पानी पिलाऊँगी, बकरी को नहीं। सूर्य-किरणें कभी यह नहीं कहतीं कि हम राजप्रासादों में ही प्रवेश करेंगी, झोपड़ियों में नहीं। चूँकि ये जल, वायु, तेज भगवान् की देन हैं, वे सबके लिए समान हैं। इसी प्रकार भूमि भी भगवान् की देन होने के कारण हर जोतनेवाले को मिलनी ही चाहिए। हरएक भूमिपुत्र का अपनी माँ पर समान अधिकार है। भूदान-यज्ञ में जो भूमि माँगने और बाँटने की प्रक्रिया है उसके पीछे यही मूलभूत विचार है। भूमिदान-यज्ञ भूमि के न्याय्य बँटवारे की माँग है। हर मनुष्य में छिपी हुई सज्जनता को जगाकर भूमि-न्याय की स्थापना करने का वह कार्यक्रम है।

यह तो हुई भूदान-यज्ञ की बाह्य प्रक्रिया। भूदान-यज्ञ का कार्यक्रम तो सागर जैसा है। वह सागर के समान विशाल और

सागर के समान गहरा भी है। हमें उसकी विशालता और गहराई में भी प्रवेश करना चाहिए।

विनोबा ने भूदान-यज्ञ को 'प्रजासूय-यज्ञ' कहा है। प्राचीन परम्परा को आधुनिक जरूरत के साथ जोड़ देना, विनोबा की एक खूबी है। उन्होंने जिस प्रकार अपने इस आन्दोलन में प्राचीन दान, यज्ञ और तप आदि की परम्परा को आधुनिक आवश्यकता–भूख की समस्या, के साथ जोड़ दिया है, उसी प्रकार इस प्रजासूय-यज्ञ में राजसूय-यज्ञ की प्राचीन परम्परा को प्रजातंत्र की आज की विचारधारा के साथ जोड़कर एक अनोखा समन्वय किया है। यह प्रजासूय-यज्ञ प्रजा के द्वारा किया जाता है, प्रजा के लिए किया जाता है और उससे प्रजा ही ऊपर उठती है। इसलिए भूदान-यज्ञ का प्रजासूय-यज्ञ नाम देना उपयुक्त भी है।

'प्रजासूय-यज्ञ' शब्द को अच्छी तरह समझने के लिए हमें 'गीता-प्रवचन' पढ़ना चाहिए। इस पुस्तक में विनोबा का सम्पूर्ण जीवन-दर्शन गीता के आधार पर दिये गये प्रवचनों के रूप में आ जाता है। यों तो भूदान-यज्ञ आरंभ होने से बीस वर्ष पहले ये प्रवचन दिये गये थे। लेकिन विनोबा मानते हैं कि जो इस पुस्तक का अध्ययन करेगा, उसकी समझ में भूदान-यज्ञ की सारी विचारधारा सरलता से आ जायगी और उसे इस यज्ञ में अपना हिस्सा देने की प्रेरणा भी अवश्य मिलेगी। 'गीता-प्रवचन' के १७वें .अध्याय में विनोबा ने 'यज्ञ' शब्द के उद्देश्य बताये हैं। सृष्टि में रहने के कारण सृष्टि का जो छीजन मनुष्य करता है, यानी सृष्टि की जो हानि करता है, उसे पूरा करना—यह यज्ञ का पहला उद्देश्य है। दूसरा हेतु है शुद्धीकरण—हम कुँए का

उपयोग करते हैं, उसके आसपास जो सृष्टि खराब हो जाती है उसे साफ करना—यह यज्ञ का दूसरा उद्देश्य है। क्षतिपूर्ति करने और सफाई करने के साथ ही कुछ प्रत्यक्ष निर्माण करना—यह यज्ञ का तीसरा उद्देश्य है।

अब हम यह देखें कि 'गीता-प्रवचन' की इस व्याख्या के अनुसार भूदान-यज्ञ में ये तीनों उद्देश्य किस प्रकार सधते हैं। अर्थात् इससे देश के कौन-से छीजन की पूर्ति होती है, कौन-सा शुद्धीकरण होता है और कौन-सा नवनिर्माण, यानी फल-प्राप्ति होती है?

आज हमारे ग्रामों का छीजन चल रहा है। हमारी ग्राम-लक्ष्मी आज क्षीण होती जाती है। आज से बीस साल पहले ग्रामों में जितने उद्योग-धन्धे थे, धीरे-धीरे वे मिटते जा रहे हैं। पुतली-घर की चिमनियाँ ज्यों-ज्यों ऊँची होती जा रही हैं, बुनकर की झोपड़ियाँ त्यों-त्यों नीचे धँसती जा रही हैं। देश का मुख्य सवाल बेरोजगारी का है। विषमता यह है कि जिसे भूख है, उसके पास अन्न नहीं है और जिसके पास अन्न है, उसके पास भूख नहीं है। तेल निकालने की मिलें खड़ी होती हैं, तो तेल-घानियाँ बन्द होती हैं। जूते बनाने के कारखाने खुलते हैं तो मोचियों का धन्धा जाता रहता है। यहाँ तक कि आजकल कुछ ऐसे कारखाने भी बन गये हैं, जिनमें एक साथ कई कुर्तों की सिलाई हो सकती है। यह स्वाभाविक है कि जहाँ एक साथ कई कुर्ते सिये जायेंगे, वहाँ एक साथ कई दर्जी भी बेकार बनेंगे। जहाँ एक तरफ से जन-संख्या की वृद्धि के कारण जमीन पर बोझ बढ़ रहा है, वहाँ दूसरी तरफ से अन्य धन्धों से बेकार हुए लोगों का बोझ भी बढ़ता

जा रहा है। चूँकि हमारे मुल्क के लोगों के लिए खेती का धन्धा एक प्रकार से सबसे सरल है, इसलिए जिसका धन्धा छूटा, वह भूमि पर मजदूरी करने की फिक्र करता है। इस प्रकार जिसे काम चाहिए, उसे काम न मिलने के कारण धरती माँ का पहला छीजन—हमारी ग्राम-लक्ष्मी का छीजन—होता है।

दूसरा छीजन उससे कुछ सूक्ष्म है। वह है विद्यादेवी का। हमारी शिक्षा आज नगराभिमुख बनी है। जिस भारत में राम-कृष्ण आदि राजवंशी बालकों को नगर छोड़कर वन-उपवन या ग्रामों में जीवन की प्रत्यक्ष शिक्षा लेने के लिए जाना पड़ता था, उसी भारतभूमि के ग्रामों में शिक्षा अब नामशेष-सी रह गयी है। ग्रामों में जो चतुर विद्यार्थी होते हैं, उनका या तो विकास ही रुक जाता है या फिर उन्हें शहरों में जाना पड़ता है। विश्व-विद्यालयों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में जो कमीशन नियुक्त किया गया था, उसकी रिपोर्ट के ग्राम-विद्यापीठवाले भाग में इस बात पर अच्छी तरह ध्यान आकर्षित किया गया है। उसमें अमरीकन शिक्षा-शास्त्री डॉ० मार्गन ने बताया है कि इतिहास की शिक्षा यह है कि जो देश अपनी ग्राम-शिक्षा और ग्राम-संस्कृति की चिन्ता नहीं करता, उसकी संस्कृति कुछ पीढ़ियों में खतम हो जाती है। इधर हमारी सारी शिक्षा ही मानो ग्रामों से विमुख हो गयी है। यह हमारे ग्रामों का दूसरे प्रकार से छीजन हो रहा है।

तीसरा छीजन राजलक्ष्मी का है। जनतंत्र और मजबूत मध्यवर्ती सरकार, ये दोनों चीजें सुसंगत नहीं हैं। सच्ची लोकशाही में तो सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए।

जनतंत्र की छोटी-छोटी इकाइयों में स्वतंत्र ताकत जब होगी, तभी वह जनतंत्र यथार्थ जनतंत्र कहा जा सकता है। आज हमारे देश में कम से कम सत्ता ग्रामों के पास है।

भूदान-यज्ञ हमारे ग्राम-जीवन के—उसी ग्राम-जीवन के जो भारत के ९/१० हिस्से का जीवन है—त्रिविध छीजन को रोकने के लिए है। जो बेजमीन हैं, उन्हें भूदान-यज्ञ में जमीन दी जाती है। इस प्रकार उन्हें काम करने के लिए सदा के लिए साधन मिल जाता है। आज जो सचमुच खेतिहर मज़दूर हैं, उन्हें काम करने का अवसर मिलता है। आज बेजमीन मजदूर ही हमारे देश के सबसे अधिक गरीब, सबसे अधिक शोषित और दलित मानव हैं। उन्हें स्वतंत्र काम मिल जाने के कारण उनमें नया जीवन और नयी ताकत पैदा होती है। जंजीर की मजबूती उतनी ही समझी जाती है जितनी उसकी सबसे कमजोर कड़ी की होती है। भूदान के जरिये हम देश की सबसे कमजोर कड़ी को ताकतवर बनाते हैं। इससे सारे देश की ताकत बढ़ती है। इस बढ़ती हुई ताकत में से जो वातावरण पैदा होता है, उससे ग्रामोद्योग, नयी तालीम आदि देश-निर्माण के कार्यों के लिए रास्ते खुलते हैं। भूदान-यज्ञ से विनोबा हमारी व्यक्तिगत परिवार की भावना को व्यापक बनाकर ग्राम-परिवार की भावना बढ़ाना चाहते हैं। "सबै भूमि गोपाल की" इसका प्रथम सोपान है। 'सभी भूमि गाँव की' यह मानकर तीन सौ से अधिक ग्रामों ने अपनी पूरी जमीन दान में देकर पहला कदम उठाया है। इसीमें से नये ग्राम-निर्माण की नींव पड़ेगी, नया मनुष्य बनेगा और फिर नया समाज बनेगा। अपने गाँव में क्या पैदा करना है, कितना

बाहर से लाना है, हम अपने बच्चों को शिक्षा किस प्रकार की दें, आरोग्य, न्याय आदि का आयोजन कैसा हो, सभी बातें इस बुनियाद के आधार पर सोचेंगे और उनका अमल और विकास करेंगे।

यज्ञ का दूसरा उद्देश्य होता है वातावरण की शुद्धि। आज भी भग्नावशेष के रूप में जो यज्ञहवनादि चलते हैं, उनके प्रति भी लोगों की यह श्रद्धा है कि उनसे पापमुक्ति तथा वायु-शुद्धि होती है। वनस्पति घी के डिब्बे जलाने से जो धुँआ पैदा होता है, उससे वायु-शुद्धि क्या होती होगी—यह हम नहीं बतला सकते। मगर भूदान-यज्ञ से वातावरण की शुद्धि की जो बात है—वह है अंतः-शुद्धि की बात। इस यज्ञ की खूबी यह है कि इसमें देनेवाले, लेने-वाले तथा दिलानेवाले तीनों की चित्त-शुद्धि की संभावना है। शुद्ध नीयत से देनेवाले की चित्त-शुद्धि तो जाहिर है। वह भोग की ओर से मुँह मोड़कर त्याग की ओर आगे बढ़ता है। वह जब देता है तब भूमि को माँ समझकर भूमिपुत्रों को उनका हक देता है। वह दूसरों को भिक्षा नहीं देता, स्वयम् प्रेम और श्रमनिष्ठा की दीक्षा लेता है। आज तक वह अपने लिए संग्रह करता था, आज वह दूसरों को अपना समझकर उनके लिए कुछ छोड़ता है। मोह में अशुद्धि है त्याग में शुद्धि। अपने हृदय के तारों को दरिद्रनारायण के हृदय के तारों से जोड़कर वह अपनी सर्वोत्तम अभिव्यंजना व्यक्त करता है।

"जो भूमि लेता है, उसकी चित्त-शुद्धि कैसे होती है? संतमेत में जमीन पाने से उसकी लोभवृत्ति बढ़ने की संभावना है न? नहीं तो वह दीन-भिखारी बनेगा।" भूदान-यज्ञ की प्रक्रिया

को केवल ऊपर-ऊपर से देखने के कारण कई बार इस प्रकार के आक्षेप उठते हैं। लेकिन वस्तुतः ऐसा नहीं है। भूमि-वितरण की प्रक्रिया को समझ लेने पर यह अच्छी तरह समझ में आ जायगा। यहाँ हम इतना समझ लें कि भूमिदान-यज्ञ से भूमि पानेवाले भूमिहीनों की चित्त-शुद्धि की क्या संभावना है। जो पराधीन हैं, उनकी चित्त-शुद्धि की गुंजाइश कहाँ? दूसरे की ज़मीन पर खटनेवाला अक्सर अत्यधिक काम के बोझ से चूर मन के भावों को दबाकर चुपचाप बैठ जाता है। पर चित्त-शुद्धि संयम में है; परवशता से मन को दबाने में नहीं। उपवास में जो शक्ति है, वह बिना अन्न के भूखे रहने में नहीं। भूमि-प्राप्ति तो बेजमीन को स्वाभिमान के साथ खड़ा होने की हिम्मत दिलाती है। स्वावलम्बन की इस निर्भयता में ही कायरों की चित्त-शुद्धि है। यदि बनी-बनायी, पकी-पकाई रोटी भूमिहीन को दी जाती तो वह जरूर दीन बनता। लेकिन भूमिदान-यज्ञ उसे रोटी नहीं देता, रोटी कमाने का साधन देता है। अपनी मेहनत का अन्न खाने का मौका देता है। जो भूमिहीन मजदूर दूसरे की जमीन पर मेहनत करने में जी चुराता है, उसे भूदान-यज्ञ श्रम-निष्ठा की दीक्षा देता है। उसकी मेहनत से जो अन्न पैदा होगा—वह संस्कृत कवि के "घर्मजानि कुसुमानि" (पसीने से पैदा हुए फूल) की तरह दस दिशाओं को सुगंधित करता है। चित्त-शुद्धि का सबसे रोमांचकारी दर्शन भूमि-वितरण के समय होता है। जब जमीन थोड़ी रहती है, तब भूमिहीनों से निर्णय करवाया जाता है कि कौन भूमि छोड़ेगा और कौन भूमि लेगा। जब भूमिहीन लोग पंच बनते हैं, तब उनके मुँह से परमेश्वर की वाणी

निकल आती है। पन्द्रह मिनट पहले जो आदमी यह कहता था कि हमें जमीन चाहिए, हम उस पर काश्त करेंगे—वही फिर कहता है कि हमें जमीन जरूर चाहिए, लेकिन मुझसे अधिक जरूरत उसकी है, पहले उसे दीजिए। जब सारी दुनिया में 'पहले मुझे, फिर उसे' की आवाज सुनाई देती है तब भूदान-यज्ञ में विनोबा भूमिहीनों के मुँह से भी 'पहले उसे, तब मुझे' की आवाज निकलवाते हैं। चित्त शुद्धि का इससे बढ़कर दूसरा उदाहरण कहाँ मिलेगा ?

जो सेवक भूमिदान-यज्ञ में जमीन दिलाने का काम करते हैं, उनके चित्त-शुद्धि की संभावना देनेवाले और लेनेवालों की चित्त-शुद्धि से कहीं अधिक है। भूमिदान-यज्ञ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें यात्री की नित्य प्रगति होती रहती है। यात्री से यहाँ मतलब विनोबा नहीं है। विनोबा तो भूमिदान-यज्ञ से पहले भी नित्य विकासशील रहे हैं। लेकिन हम तो उन सैकड़ों प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सेवकों का जिक्र कर रहे हैं, जो देश के कोने-कोने में विनोबा के कदम से कदम मिलाकर चल रहे हैं। यह सच है कि यात्रियों की इस यात्रा में नाजायज प्रसिद्धि, सफलता के कारण पैदा होनेवाला अहंभाव, पक्षों की दलदल में फँसने की संभावना, त्वरित परिणाम लाने की चेष्टा में सत्य से हटने की अधीरता आदि खतरे भी हैं। लेकिन इनसे सुरक्षा की ठोस दीवारें भी काफी हैं। इन सामान्य सेवकों के मार्ग में सर्वदा सफलता के फूल नहीं बिछे रहते। अक्सर उन्हें असफलता के काँटों को रौंदकर चलना पड़ता है। प्रसिद्धि की बात तो दूर रही, सेवक कभी-कभी हफ्तों तक चिट्ठी, अखबार, रेल, मोटर आदि तमाम चीजों से बिछुड़ा हुआ द्वार-द्वार भटकता फिरता

रहता है। उसका नाम भी कोई नहीं जानता, उसे खाना भी मुश्किल से मयस्सर होता है। पक्षातीत जनतंत्र के विचार का संदेश-वाहक होने के कारण उससे अक्सर विभिन्न पक्ष के बुद्धि-जीवी लोग भी खिंचे रहते हैं। भूमि के बँटवारे का मौका प्रत्यक्ष आ जाने के समय भूमि-प्राप्ति में उसने कितनी सत्यनिष्ठा रखी है, इसकी भी परीक्षा हो जाती है।

सेवक की चित्त-शुद्धि मुख्यतः उसने जिस वृत्ति से यह काम उठाया है, उस पर निर्भर है। विनोबा के कथनानुसार उसने यदि जन-जन के हृदय में सोये हुए राम को जगाने की वृत्ति रखी है तो उसकी चित्त-शुद्धि अवश्य होगी। वह इस श्रद्धा से चलता है कि हर मनुष्य में भलाई पड़ी हुई है। आज के सामाजिक वातावरण और वर्तमान विषम अर्थव्यवस्था के कारण वह प्रकट नहीं हो पाती—दबी पड़ी है। कारण ढूँढ़ने का काम सेवक का है। वह यदि नहीं ढूँढ़ सकता, तो पहले अन्यत्र नहीं, अपने में ही वह ढूँढ़ेगा। इसीसे उसकी चित्त-शुद्धि होगी। बिलकुल अनजाने कोने से अगर अचानक कहीं मानवता की थोड़ी-सी झाँकी मिली, तो सेवक के मन में ऐसा विश्वास पैदा होता है जो उसके जीवन पर गहरा असर करता है। मानवता का दर्शन, उसका स्पर्श, उसे मानव बनने और बनाने में बहुत बड़ा सहायक होता है। मनुष्य के अन्तर में उसके सद्गुणों की राह से प्रवेश करना सेवक को स्वयं सद्गुणों की ओर ले जाने वाला है। इसके अतिरिक्त भी सेवक की चित्त-शुद्धि के लिए इस यज्ञ में अनेक अवसर हैं। रोज अनेक प्रकार के लोगों से मिलते रहने के कारण सहज ही उसमें विनय, शील एवं धैर्य

के गुणों का विकास होता है। दरिद्रनारायण से सहानुभूति रखनेवाला कार्यक्रम उठाने के कारण उसे सादगी की सहज प्रेरणा होती है। पदयात्रा आदि साधनों के कारण उसकी परिश्रम-निष्ठा और चिन्तनशीलता भी बढ़ती है।

भूदान-यज्ञ में देनेवाले, लेनेवाले तथा दिलानेवाले की त्रिविध अन्तःशुद्धि होती है। इस अन्तःशुद्धि की छूत दूसरों को भी लगे बिना नहीं रहती। इस प्रकार यज्ञ का दूसरा हेतु, वातावरण-शुद्धि, भूमिदान-यज्ञ में उत्तम रीति से परिपूर्ण होता है।

यज्ञ का तीसरा हेतु है, फल-प्राप्ति। भूदान-यज्ञ से जो फल प्राप्त करना है उसका तात्कालिक स्वरूप तो जाहिर है—गाँव की सारी भूमि का ग्रामीकरण करना, देहातों में प्रेमभाव स्थापित करना, परिवार-भावना व्यापक करते हुए "वसुधैव कुटुम्बकम्" की ओर पहला कदम उठाना। लेकिन भूदान-यज्ञ से जो फल-प्राप्ति करनी है वह केवल भूमि के पुनर्वितरण से ही सम्पन्न नहीं हो जाती। भूदान-यज्ञ के पीछे मूल विचार साम्य-योग का है। साम्ययोग तथा भूदान-आन्दोलन के राजनैतिक, तथा सांस्कृतिक पहलुओं की आगे एक अध्याय में चर्चा होगी। यहाँ हम केवल एक ही शब्द की चर्चा कर लेंगे जिसे विनोबा बार-बार इस्तेमाल करते हैं, जिसे गांधीजी भी अक्सर अपने सपने के स्वराज का चित्र खींचने के लिए इस्तेमाल करते थे। वह शब्द है 'रामराज्य'। कुछ लोगों को रामराज्य शब्द में प्राचीनता की बू आती है, कुछ को साम्प्रदायिकता की। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारे भारत की आम जनता 'रामराज्य' शब्द को जनतंत्र, गणतंत्र, समाजवादी तंत्र आदि शब्दों की बनिस्बत

कहीं अधिक अच्छी तरह जानती है। गांधीजी देश की नब्ज (नाड़ी) पहचानते थे और जनता की समझ में आनेवाली भाषा में बोलते थे। भूदान-यज्ञ में जो फल प्राप्त करना है, उसे विनोबा ने 'रामराज्य' कहा है। तुलसीदासजी के शब्दों में हम उस राम-राज्य की व्याख्या देखें। उन्होंने "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं" का जो महामंत्र दिया, उसे देशवासियों ने कंठस्थ कर लिया। इस मंत्र में हमारे देश की पहली माँग, स्वतंत्रता, की आवाज गूँज उठी। उसी प्रकार गोस्वामीजी ने रामराज्य का वर्णन इन पंक्तियों में किया है :—

"बैर न करहि काहु सन कोई
राम प्रताप विषमता खोई"

इस पद के पूर्वार्द्ध का फ्रांसीसी क्रान्ति की भाषा में अनुवाद करें, तो 'बन्धुता' होगा और उत्तरार्द्ध का अर्थ होगा 'समानता'। इस प्रकार उस क्रान्ति की भाषा में रामराज्य का मतलब होता है स्वतंत्रता, समानता और बन्धुता। फ्रांस देश ने ये तीनों शब्द दिये। लेकिन उनकी क्रान्ति से सिर्फ एक ही चीज सिद्ध हुई, स्वतंत्रता। समानता और बन्धुता पीछे छूट गयी। इसके बाद दुनिया ने एक दूसरी क्रान्ति देखी—रूस की, जिसमें समानता कुछ हद तक सिद्ध हुई। लेकिन बन्धुता उससे दूर रही और स्वतंत्रता कुचली गयी। लेकिन आज हमारे देश में जो क्रान्ति हो रही है, उसका आरंभ ही बापू ने बन्धुता के द्वारा किया। बन्धुता के जरिये स्वतंत्रता की प्राप्ति उन्होंने की—विनोबा उन्हीं के कदमों पर चलकर बन्धुता के जरिये स्वतंत्रता को टिकाये रखना चाहते हैं तथा समता कायम करना चाहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं

कि भूदान-यज्ञ जगत् के इतिहास का एक अनोखा पृष्ठ बन जाता है। वास्तव में इस प्रेममयी क्रान्ति के जरिये विनोबा ने अहिंसा की दिशा में संसार को एक कदम आगे बढ़ाया है। बुद्ध, महावीर, ईसा ने जगत् को अहिंसा दिखाई, लेकिन वह अहिंसा व्यक्ति-गत क्षेत्र तक सीमित थी। गांधीजी ने एक कदम आगे उठाया, उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा का प्रवेश सत्याग्रह के अपने अमोघ अस्त्र के द्वारा कराया। विनोबा आज उसी अहिंसा का प्रवेश अर्थनीति के क्षेत्र में भूदान-यज्ञ के जरिये करा रहे हैं।

: ४ :

वैचारिक-भूमिका—२

कभी-कभी विनोबा ऐसी बात कह देते हैं कि लोगों को धक्का-सा लगता है। कुछ शिक्षित कहे जानेवाले लोग तो विनोबा के शब्दों में अभिमान की ध्वनि भी सुनते हैं। लेकिन उनके एक-एक वचन के पीछे दीर्घकालीन तपस्या तथा गहरे चिन्तन का बल रहता है। जब जड़ और चेतन शब्दों को समझाते हुए विनोबा ने यह कहा—जड़ चाहे जितना महान् हो और चेतन चाहे जितना छोटा हो, फिर भी चेतन का महत्त्व जड़ से अधिक है, हिमालय महान् है लेकिन जड़ है, विनोबा छोटा है लेकिन चेतन है, विनोबा चाहे तो हिमालय को उत्तर से दक्षिण में फेंक सकता है, तब यह सुनकर लोग हक्के-बक्के रह गये। लेकिन विनोबा के दूसरे वाक्य ने इस वाक्य का जब मर्म समझाया, तो लोगों में नयी चेतना पैदा हुई। तुलना हिमालय और विनोबा की नहीं, जड़ और चेतन की है। उन्होंने कहा—विनोबा चेतन है, कल वह तिब्बत में चला जाय तो हिमालय अपने आप दक्षिण में चला जायगा। मगर हिमालय चाहे भी तो वह टस से मस नहीं हो सकता। भाषा चमत्कारी थी, लेकिन उसके पीछे चिन्तन भी था।

अकबरपुर (उत्तरप्रदेश) से विनोबा ने भारतवासियों के नाम एक अपील लिखी थी। उस अपील में उन्होंने भूदान-यज्ञ

के लिए तीन दावे किये थे। ये तीनों दावे ऐसे हैं, जिन्हें पढ़ते ही पहली बार तो यह विचार आ जाता है कि भूमि के हस्तान्तरित करने के इस प्रयोग के बारे में इतने बड़े-बड़े दावे करने का क्या प्रयोजन ?

लेकिन गहराई से सोचने पर हमें पता चलेगा कि इन्हीं तीन दावों में भूदान-यज्ञ की वैचारिक-भूमिका स्पष्ट हो जाती है। आइए, हम इन दावों पर विचार करें। विनोबा अपनी अपील में कहते हैं कि—"मेरा इस काम के लिए तिहरा दावा है। एक तो यह कि यह भारतीय संस्कृति के अनुकूल है। दूसरा इसमें सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति के बीज हैं और तीसरा इससे दुनिया में शान्ति-स्थापना के लिए मदद मिल सकती है।"

क्या यह कार्यक्रम भारतीय संस्कृति के अनुकूल है? क्या वह उपनिषद्, गीता, वर्णाश्रम व्यवस्था, सन्तों की परम्परा के सानुकूल है? हाँ, वेद ने हमें सिखाया कि भूमि हमारी माँ है, उस माता का पुत्र आज उसका स्वामी बनना चाहता है। इस पाप को मिटाकर स्वामित्व-विसर्जन का कार्यक्रम भूदान-यज्ञ हमें देता है। उपनिषदों ने हमें सिखाया—

> ईश का आवास यह सारा जगत्
> जीवन यहाँ जो कुछ उसीसे व्याप्त है।
> अतएव करके त्याग उसके नाम-से।
> तू भोगता जा वह जो तुझे प्राप्त है।

ईशावास्योपनिषद् के इस मंत्र को आधुनिक जीवन में चरितार्थ करने का प्रयास ही भूमिदान-यज्ञ है, जिसमें सम्पत्ति को ईश्वर

की देन माना है तथा "त्यक्तेन भुञ्जीथाः"—त्याग कर भोगना जिसका नीति-सूत्र बन जाता है। गीता-तत्त्वज्ञान के आधार पर तो विनोबा का पूरा जीवन ही खड़ा है। उनकी तपस्या के परिपाक-स्वरूप सूझा हुआ यह यज्ञ हर अर्थ में गीता के आदेश से सुसंगत है। इसीलिए तो विनोबा अपनी श्रद्धा बार-बार प्रकट करते हैं कि जो "गीता-प्रवचन" पढ़ेगा और समझेगा, वह जरूर दान देगा। गीता की आदर्श मूर्ति स्थितप्रज्ञ के लक्षणों का आरम्भ "मनोगत सभी काम तज दे जब पार्थ जो" से होता है और उसका पूरा वर्णन करने के बाद भी "सर्व काम परित्यागी विचरे नर निःस्पृह" से भगवान् प्रकरण पूरा करते हैं। भूदान-यज्ञ कामना छोड़ने का कार्यक्रम नहीं तो और क्या है? अधिक क्या कहें?—भूदान-यज्ञ की सारी परिभाषा ही विनोबा ने गीता से ली है। दान, यज्ञ, तप, तीनों गीता के प्रिय शब्द हैं। साम्ययोग शब्द भी विनोबा ने गीता से बनाया है।* गीता के छठे अध्याय श्लोक २९ से ३२ में साम्ययोगी का समग्र दर्शन है और फिर ३३वें श्लोक में अर्जुन **साम्य** से सिद्ध होनेवाले **योग** के बारें में प्रश्न पूछता है।

आत्मा को सर्वभूतों में आत्मा में सर्वभूत भी
देखता योगयुक्तात्मा समदर्शी सभी कहीं ॥२९॥
मुझे जो सबमें देखे, सबको मुझ में तथा,
मुझे न वह अप्राप्त, मैं अप्राप्त नहीं उसे ॥३०॥
सर्वभूतस्थ मुझको जो योगी एक हो भजे,
मुझमें में बर्तता है सो सर्वथा बर्तता हुआ ॥३१॥

भारतीय संस्कृति में समाज-रचना के लिए जिस वर्णाश्रम व्यवस्था की कल्पना की गयी थी—भूदान-यज्ञ उस कल्पना के भी अनुकूल है। चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में वैश्य को छोड़कर शेष तीन के लिए सम्पत्ति-संग्रह की कल्पना ही नहीं है। वैश्यों के लिए भी ब्रह्मचर्याश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यास आश्रम में सम्पत्ति का संग्रह निषिद्ध है। गृहस्थाश्रम में भी सम्पत्ति-संग्रह की अनुज्ञा अन्य वर्णों के पोषण के लिए है। गृहस्थाश्रम का आदर्श तो शीघ्रता तथा सहजता से वानप्रस्थाश्रम तक जाने का ही है। भारतीय सन्तों ने भी यही त्याग की वाणी सदियों से कही है। सन्त शिरोमणि कबीर साहब कहते हैं—

"पानी बाढ़ो नाव में घर में बाढ़ो दाम,
दोनों हाथ उलीचिए यही सयानो काम।"

कबीर साहब की यह उपमा तो विनोबाजी को अत्यन्त प्रिय लगती है। बार-बार इस उपमा को विस्तार से समझाते हुए उन्हें आप पायेंगे। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास के "सबै भूमि गोपाल की" तथा "सम्पति सब रघुपति कै आही", भूदान-यज्ञ तथा सम्पत्तिदान-यज्ञ के मूलमंत्र बन गये हैं। तो क्या विनोबा इन सन्तों की वाणी की रट और एक बार लगा रहे हैं? यह सच है कि विनोबाजी सन्त-परम्परा के हैं, इसलिए कई बार उनकी वाणी में आप पुराने सन्तों की वाणी ही सुनेंगे।

आत्मोपम सभी को जो सर्वत्र समबुद्धि से,
सुख हो दुःख हो देखे, योगी परम है वही ॥३०॥

गीता संवाद अध्याय-६

लेकिन विनोबाजी की वाणी में एक विशेषता है, जो गांधीजी की वाणी में थी। सत्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह आदि इन सन्तों की वाणी में व्यक्तिगत गुण के रूप में दिखलायी पड़ते थे, उनका गांधीजी ने और विनोबा ने सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन किया। इस तरह जब व्यक्तिगत गुण सामाजिक मूल्य बन जाते हैं तब उनमें समाज-क्रान्ति की शक्ति आती है। सत्य-अहिंसा व्यक्तिगत गुण थे, लोग अपने निजी जीवन में उनका अमल करना जरूरी समझते थे। लेकिन राष्ट्र-राष्ट्र के बीच असत्याचरण राजनीतिक विशेषता समझी जाती थी और हिंसा को युद्ध के नाम से पूजकर कविगण उस पर महाकाव्य लिखते थे। लेकिन गांधीजी के सत्याग्रह ने सत्य-अहिंसा को सामाजिक मूल्य बनाया और उसमें महान् ब्रिटिश साम्राज्य से लोहा लेने की ताकत आयी। गांधीजी ने सत्याग्रह के द्वारा भय-निरसन कर जो सेवा की, वही सेवा विनोबा भूमिदान-यज्ञ के द्वारा लोभ-निरसन करके कर रहे हैं। अपरिग्रह और अस्तेय के गुणों के सामाजिक विनियोग का आशय यह है कि जिस प्रकार समाज में चोरी को सामाजिक गुनाह माना जाता है, उसी प्रकार नाजायज संग्रह को भी समाज गुनाह समझे। जो कांचनमुक्ति स्वामी रामकृष्ण ने अपने निजी जीवन में सफल की उसीको विनोबा के स्वप्नों का साम्ययोगी समाज सामाजिक जीवन में सफल करेगा।

क्या वेद, क्या उपनिषद्, क्या गीता, क्या सन्त, सभी के मुँह से जो अपरिग्रह का मंत्र निकला, उसका सामाजिक स्वरूप आज भूदान-यज्ञ के रूप में हम देख रहे हैं। वास्तव में विनोबा के

मुँह से आज भारतीय संस्कृति बुलन्द आवाज से बोल रही है।

भूदान-यज्ञ के बारे में विनोबा का दूसरा दावा यह है कि इसमें आर्थिक और सामाजिक क्रांति के बीज हैं। इस बात को समझने के पहले हमें यह देख लेना चाहिए कि हमारी आर्थिक समस्या क्या है? यही न, कि जिसे भूख है उसके पास अन्न नहीं और जिसके पास अन्न है उसे भूख नहीं। यह समस्या हमारे अर्थतंत्र ने खड़ी की है। हमारा अर्थतंत्र पूंजीवादी अर्थतंत्र है, जिसका सिद्धान्त है कि हरएक व्यक्ति अपना उत्कर्ष साधे तो समाज की उन्नति अपने आप हो जायगी। पूँजीवाद 'ज्यादा से ज्यादा काम और कम से कम दाम' के सिद्धान्त को चातुर्य समझता है। उपर्युक्त सूत्र का परिणाम यह आता है कि समाज का हरएक व्यक्ति अपनी-अपनी उन्नति, अपनी परिस्थिति, बुद्धि तथा शक्ति के अनुसार कम से कम काम करके अधिक से अधिक दाम पाने की दृष्टि से करता है। फलतः एक-दूसरे के स्वार्थ टकराते हैं। जिसमें मेरी उन्नति हो, संभव है उसमें आपकी अवनति हो। डाक्टर की उन्नति यदि पैसा कमाने से होती है और मरीजों की संख्या के अनुसार उसकी कमाई बढ़ती है तो उसका स्वार्थ इसीमें है कि लोग अधिक से अधिक बीमार हों। मरीज का स्वार्थ बीमार न पड़ने में है और डाक्टर का स्वार्थ दूसरों की बीमारी में है। अतः इन दोनों के स्वार्थ आपस में टकराते हैं, एक का अवसर दूसरे की आफत और एक की आफत दूसरे का अवसर है। यही है पूँजीवाद का अन्तर्गत विरोध, जो उसे खतम करेगा। पूँजीवाद को खतम करने के लिए बाहरी किसी कारण की जरूरत नहीं

रहेगी। वह अपने अन्तर्गत विरोध के कारण ही खतम होगा। हमारे सामने प्रश्न यह है कि जो पूँजीवादी समाज-रचना अपने अन्तर्गत विरोधों के कारण आत्महत्या करनेवाली है, उस आत्मघाती समाज-रचना से हम क्यों चिपके रहें? यदि हम इस सामाजिक आत्महत्या से बचना चाहते हैं तो हमें यह समाज-रचना ही बदलनी होगी। आज की समाज-रचना के मूल्यों में जड़मूल से परिवर्तन करने होंगे और ऐसे नये मूल्य कायम करने होंगे, जिससे कोई किसीका शोषण न करे, जहाँ व्यक्ति और समाज के स्वार्थ एक-दूसरे के विरोधी नहीं—पूरक हों। इसी मूल्य-परिवर्तन की प्रक्रिया को कहते हैं क्रांति। भूदान-यज्ञ में पूँजीवाद के दो मूलभूत मूल्यों के परिवर्तन का संकेत है। पूँजीवाद के दो मूल्य हैं—मुनाफा और मालिकी की भावना। इन्हीं मूल्यों के आधार पर यह खड़ा है। विनोबा ने हमें मुनाफे के स्थान पर एक नया मूल्य दिया, जिसका नाम है दान, और मालिकी के नाम पर दूसरा मूल्य दिया, जिसका नाम है यज्ञ। विनोबा के 'दान' और 'यज्ञ' में मुनाफे और मालिकी के विसर्जन का संकेत है। मेरे पास यदि पच्चीस रोटियाँ हों और पाँच से मेरा पेट भरता है, इसलिए मैं बाकी बीस रोटियाँ बाँट देता हूँ, तो मैंने अपना मुनाफा बाँटा। यह हुआ दान। अमीर जो देता है वह दान है। लेकिन मेरे पास यदि तीन रोटियाँ ही हैं और मेरी भूख पाँच रोटियों की है फिर भी यदि किसी भूखे के लिए मैं अपनी तीन रोटियों में से डेढ़ रोटी दे देता हूँ, तो मैंने अपने मालिकी के हक में से बँटवारा किया। यह हुआ यज्ञ। गरीब जो करता है वह यज्ञ करता है। क्रान्ति में तीन चीजें जरूरी हैं—क्रान्ति का मकसद, मूल्य-परिवर्तन तथा क्रान्ति का

प्रतीक। मूल्य-परिवर्तन का विचार हमने ऊपर संक्षेप में किया। अब कुछ विचार इस क्रान्ति के उद्देश्य, कार्यक्रम तथा प्रतीकों के बारे में करें।

हमारी क्रान्ति का मकसद साफ है। हम अमीरी-गरीबी को खतम कर अमीर-गरीब को बचा लेना चाहते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या अमीर को खतम किये बिना अमीरी खतम हो सकेगी? जमींदार को मारे बिना जमीन बँट जायगी? अंग्रेजों को मारे बिना अंग्रेजी हुकूमत जा चुकी है। राजाओं को मारे बिना रियासतें भी गयीं। फिर अमीर को खतम किये बिना अमीरी और जमींदार को मारे बिना जमींदारी नहीं जा सकती—यह विचार ही एक अपसिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को आप अपने जीवन के दो क्षेत्रों में लागू करके देखिये। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक से जाकर क्या यह कहेंगे कि अज्ञानी को खतम किये बिना अज्ञान खतम नहीं होगा? आरोग्य के क्षेत्र में डाक्टर से क्या यह कहेंगे कि रोगी को खतम किये बिना रोग खतम नहीं होगा? शिक्षा और आरोग्य के क्षेत्र में शिक्षक और डाक्टर का पुरुषार्थ अज्ञान और रोग को खतम कर अज्ञानी और रोगी को उबार लेने में है। ठीक इसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी का पुरुषार्थ गरीबी को खतम कर गरीब को बचा लेने और अमीरी को खतम कर अमीर को बचा लेने में है—यही उद्देश्य, शोषणहीन समाज-रचना, सर्वोदय या साम्ययोग का है।

साम्ययोगी समाज-रचना के लिए कार्यक्रम यह है कि जिसे भूख है उसके पास अन्न पैदा करने के साधन हों और जिसे भूख नहीं है उसके पास अन्न-उत्पादन के साधन न हों। अर्थात् उत्पा-

दन के साधन उत्पादकों के हाथ में पहुँचाना तथा अनुत्पादक की मालिकी खतम करना, यह क्रान्ति का कार्यक्रम है।

इस कार्यक्रम को अमल में लाने के लिए कौन-से साधन इस्तेमाल किये जायँ, इसकी चर्चा जब छिड़ती है तभी मतभेद की गुंजाइश रहती है। वरना यहाँ तक तो सभी विचारक सहमत हैं कि क्रान्ति जरूरी है और क्रान्ति का कार्यक्रम यही हो सकता है कि जरूरत की चीजें जरूरतमन्दों के पास हों, उत्पादन के साधन उत्पादकों के पास हों तथा अनुत्पादकों की मालिकी खतम हो।

साधनों की चर्चा करते हुए विनोबा ने अच्छा मार्ग-दर्शन किया है। वे कहते हैं कि आज तक क्रान्ति के लिए जो साधन इस्तेमाल किये गये हैं उन्हीं में मैं क्रान्ति कर रहा हूँ। आज तक दुनिया ने दो रास्ते आजमाये : एक कत्ल का, दूसरा कानून का। विनोबा आज तीसरा रास्ता आजमा रहे हैं—करुणा का, प्रेम का। कत्ल, कानून और करुणा के रास्ते क्रमशः तामसी, राजसी और सात्त्विक हैं। यहाँ पर इन तीनों की तुलना संक्षेप में कर लेना अप्रस्तुत नहीं होगा।

भूदान-यज्ञ कत्ल के रास्ते का निषेध करता है। सिर्फ इस-लिए नहीं कि बुद्ध, महावीर, ईसा और गाँधी ने हमें अहिंसा का उपदेश दिया था। क्रान्तिकारी कभी अंतिम पैगम्बरवादी नहीं होता। मुहम्मद साहब कह गये वह आखिरी शब्द—उसके बाद कुछ नये विचार नहीं उठ सकते; कार्ल मार्क्स ने जो बताया वही क्रान्ति का अन्तिम मार्ग, उसमें कोई संशोधन नहीं हो सकता; गाँधी कह गये वही शेष विचार, वह आगे नहीं बढ़ सकता;

ऐसा मानना दकियानूसी रूढ़िग्रस्त वृत्ति है। क्रान्तिकारी तो नित्य विकासशील जीवन के साथ अपने विचारों का भी विकास करता रहता है। क्रान्ति की इष्ट देवी सरस्वती है। क्रान्ति का विचार की शक्ति पर भरोसा है, किसी एक व्यक्ति के शब्द को क्रान्तिकारी अन्तिम नहीं मानता।

फिर भी भूदान-यज्ञ में कत्ल के रास्ते का निषेध है। क्यों? क्योंकि कत्ल के रास्ते से समस्या सुलझती नहीं, एक के बदले में दूसरी समस्या खड़ी हो जाती है। दिमाग बदलने की जगह सिर ही काट लेने का वह मार्ग है। कत्ल के रास्ते की दूसरी त्रुटि यह है कि कत्ल से शान्ति नहीं होती, हिंसा से हिंसा उत्तरोत्तर बढ़ती है। आग से आग नहीं बुझती। कत्ल के रास्ते की तीसरी त्रुटि यह है कि हिंसा से जो क्रान्ति होती है, उसमें प्रति-क्रान्ति की संभावना बनी रहती है। दुनिया भर की हिंसक क्रान्तियों का यही अनुभव है। हमारी क्रान्ति ऐसी होती है कि उसमें जिस वर्ग का परिवर्तन करना है उसका सहयोग हमें मिलता है। इसलिए उसमें प्रति-क्रान्ति की संभावना ही नहीं रह जाती है। कत्ल के रास्ते की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि वह जनतंत्र का मार्ग नहीं बन सकता। हिंसा कभी सभीका शस्त्र नहीं बन सकती। वह हमेशा कुछ चुने हुए सैनिकों का हथियार रहेगी। कत्ल के रास्ते से जो क्रान्ति होगी उसमें से आखिर लश्करशाही (मिलिटरिज्म) ही पैदा होती है—लोकशाही नहीं। कत्ल के रास्ते के खिलाफ इससे ज्यादा दलीलें पेश करने की जरूरत नहीं है। आजकल जो कत्ल के रास्ते की बात करते हैं वे भी शान्ति के नाम पर ही उसकी हिमायत करते हैं।

लेकिन कानून का रास्ता उससे कहीं अधिक लुभावना है। जो काम कानून की एक कलम से हो सकता है उसे करने के लिए विनोबा इस प्रकार दर-दर क्यों फिरते होंगे ? यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि विनोबा कत्ल के रास्ते का जैसा निषेध करते हैं, वैसा कानून के रास्ते का निषेध नहीं करेंगे। दिल्ली की पार्लियामेंट में यदि ऐसा कानून बने कि जमीन की मालिकी अब गाँव की होगी, तो उसके खिलाफ विनोबा भूख-हड़ताल या पिकेटिंग करने नहीं जायेंगे। वे उसका स्वागत ही करेंगे। लेकिन वे कानून के रास्ते की मर्यादाएँ जानते हैं। इसलिए उन्होंने ऐसा रास्ता लिया है जो सबसे अधिक कारगर है और सबसे अधिक गहराई में जानेवाला है।

कानून की मर्यादाएँ क्या हैं ? कानून अधिक से अधिक कुछ करे, तो बुरी प्रवृत्ति से आदमी को रोक सकता है। लेकिन वह उसे सत्प्रवृत्ति की प्रेरणा नहीं दे सकता। कानून बुराई से रोक सकता है, लेकिन भलाई की प्रेरणा वह नहीं दे सकता। कानून की दूसरी मर्यादा यह है कि वह अधिकार देता है, लेकिन उस अधिकार का उपयोग करने की ताकत नहीं दे सकता। कानून की और एक कमजोरी यह है कि जनमत के आधार के बिना चाहे जितना अच्छा कानून हो, तो भी वह कारगर नहीं होता। पूँजीवाद में कानून का अधिष्ठान (आधार) पैसा बनता है। लश्करशाही में कानून का अधिष्ठान शस्त्रबल बनता है। पर जब तक उसके पीछे जाग्रत जनमत का अधिष्ठान नहीं होता, तब तक कानून निष्फल होता है। यह जनमत जाग्रत कैसे हो ? भूदान-यज्ञ जैसे जन-आन्दोलन से ही वह जाग्रत होता है।

जब भारत का बच्चा-बच्चा यह कहने लग जायेगा कि जमीन पर मालिकी सिर्फ भगवान् की (या समाज की) है, तब व्यक्तिगत मालिकी के निरसन का कानून बनने में कोई देर नहीं लगेगी।

कानून के मार्ग में कानूनी दलदल में फँस जाने की भी संभावना है। कानूनबाजी का दलदल भूलभुलैया जैसा होता है। उसमें प्रवेश करने पर सामान्य मनुष्य उसमें से आसानी से नहीं निकल सकता। इस कानूनबाजी का दुरुपयोग होने की, एक के बाद एक मुकदमा दाखिल करने की, संविधान बदलने की चेष्टा होने की भी संभावना रहती है। इसी को कहते है कानूनी क्षेत्र में प्रतिक्रान्ति। (Counter revolution in the legal sphere)

हमारी सारी शक्ति उस हालत में ऐसी कानूनी प्रतिक्रान्ति का मुकाबला करने में खप जायगी। और भी एक कठिनाई कानून के रास्ते में है। कानून दोनों पक्षों में कलह पैदा करता है, प्रेम नहीं। हमें गरीबी-अमीरी खतम कर आदमी को आदमी के निकट लाना है, उन्हें दूर नहीं करना है। कानूनी मार्ग से हमारा यह मुख्य अभिप्राय ही नष्ट हो जाता है।

अमीरी-गरीबी को खतम कर वर्ग-निराकरण करने का जो रास्ता विनोबा ने लिया है, वह है करुणा का मार्ग। करुणा के माने सिर्फ दया के नहीं है। दया के साथ जब अनुरूप क्रिया मिलती है तब करुणा बनती है। करुणा की इस प्रक्रिया का आधार आदमी का मन बदलने पर है। इस क्रान्ति को केवल वस्तु-परिवर्तन से संतोष नहीं है, वह चाहती है, मन-परिवर्तन, वृत्ति परिवर्तन। इतिहास में आज तक दो प्रकार की चेष्टाएँ हुई हैं। केवल समाज

को बदलने की तथा केवल आदमी को बदलने की। केवल समाज के बदलने की कोशिश में आदमी तानाशाही (Dictatorship) तक पहुँच गया। केवल मनुष्य बदलने की कोशिश में वह समाज छोड़कर गिरि-कंदराओं तक पहुँच गया। दोनों एकांगी मार्ग हुए। भूमि-दान-यज्ञ आदमी और समाज को साथ-साथ बदलना चाहता है। इसीलिए उसकी क्रान्ति विचार-परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन तथा परिस्थिति-परिवर्तन के तिहरे कार्यक्रम पर निर्भर है। यह एक ऐसा त्रिकोण है जिसकी भुजाओं का असर एक-दूसरे पर होता है। विचार-परिवर्तन से परिस्थिति बदल सकती है और परिस्थिति बदलने से विचार बदल सकता है। भूमिदान-यज्ञ में कुछ लोग जमाने के प्रवाह को समझकर विचारपूर्वक दान देते हैं, कुछ लोग दरिद्रनारायण के प्रति प्रेम-भाव के कारण देते हैं। ऐसे अनेक लोगों के दान के कारण वातावरण पर एक ऐसा नैतिक प्रभाव पड़ता है कि दूसरे लोग भी उसमें देते हैं। हजारों किसानों के छोटे-छोटे दानों के कारण जो नैतिक प्रभाव पड़ा उसे देखते हुए कई बड़े जमींदारों ने जमीनें दी हैं। यह परिस्थिति-परिवर्तन के कारण हुए मन-परिवर्तन का उदाहरण है।

करुणा के मार्ग पर जानेवाला इस श्रद्धा से चलता है कि मनुष्यमात्र में कहीं न कहीं अच्छाई का अंश छिपा पड़ा है। उसे खोजने की वह अखंड कोशिश करता है। करुणा का मार्ग सफल होगा या नहीं यह अब तर्क का विषय नहीं रहा। उसकी सफलता अब सिद्ध हो चुकी है। लाखों लोगों के दान ने, तीन सौ से अधिक ग्रामों के ग्रामदान ने और अनेक पावन प्रसंगों ने इसे

सिद्ध कर दिया है। इस क्रान्ति का प्रतीक है जमीन, जिस पर परिश्रम कर परिश्रम करनेवालों के युग का आरम्भ होगा।

भूदान-यज्ञ के लिए विनोबा ने तीसरा दावा यह किया है कि इससे दुनिया में शान्ति-स्थापना के लिए मदद मिल सकती है। कितना बुलन्द दावा! मुट्ठी भर जमीन की लेन-देन के साथ कितनी बड़ी बात जोड़ दी है? इस दावे को समझने के लिए हमें जगत् के रंगमंच को संक्षेप में तथा नम्रता के साथ समझ लेना चाहिए। साम्यवादी और पूंजीवादी देश आज एक-दूसरे के डर के कारण उत्तरोत्तर अधिक संहारकारी शस्त्रास्त्रों की खोज करते रहे हैं। इन देशों में से पहला वर्ग तानाशाही (Dictatorship) में विश्वास रखता है और दूसरा वर्ग जनतंत्र में। तानाशाही शीघ्र परिणामदायिनी होती है, इसलिए वह आकर्षक भी मालूम होती है। लेकिन हम उसे स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि तानाशाही मानवता में विश्वास नहीं रखती। आधुनिक तानाशाही के जनक हिटलर ने अपनी आत्मकथा में अपने जीवन का मूलमंत्र बतलाया है—बीस गधे मिलकर एक आदमी नहीं बनता। यानी अपने इर्दगिर्द के बीस गधों पर शासन करने के लिए वह खुद पैदा हुआ है, ऐसा हिटलर मानता था। अपने इर्दगिर्द के देशों पर शासन करना जर्मनी का हक है, अपने इर्दगिर्द की जातियों पर शासन करने का आर्यजाति का जन्मसिद्ध अधिकार है, ये सारे सिद्धान्त मानव को मानवीय स्वतंत्रता न देने के उपर्युक्त सिद्धान्त में से फलित हुए हैं। जो सिद्धान्त मानव को मानव नहीं मानता वह चाहे जितना शीघ्र परिणाम देनेवाला क्यों न हो

हम उसको स्वीकार नहीं कर सकते। अब रह जाता है जनतंत्र। आज परिस्थिति यह है कि जो जनतंत्रवाले देश हैं उनमें क्रांति की शक्ति नहीं दीख पड़ती। गरीबी-अमीरी को खतम करने की ताकत जिस लोकशाही में नहीं, उस लोकशाही का मतलब भी क्या है? इसलिए आज दुनिया के तमाम जनतंत्रात्मक देशों के सामने प्रश्न यह है कि जनतंत्र में क्रांति की शक्ति कैसे आये? इसी प्रश्न का उत्तर भूदान-यज्ञ देता है। वह कहता है कि जब तक हमारी लोकशाही संख्या-बल पर (Quantative) निर्भर रहेगी—आकारात्मक रहेगी—तब तक उसमें क्रांति की शक्ति पैदा नहीं होगी। उसके लिए जनतंत्र की बुनियाद बदलकर हमें उसे गुणात्मक (Qualitative) बनाना होगा। जो जनतंत्र मानवीय गुणों पर खड़ा नहीं होगा, केवल संख्या-बल पर खड़ा होगा, उसमें क्रांति की ताकत पैदा नहीं होगी। आकारात्मक जनतंत्र में सत्ता केन्द्रवर्ती होगी, सेवा नहीं। तो मानवीय गुणों का बीजारोपण होगा कहाँ से? यहीं पर विनोबा का चाण्डील का वह भव्य प्रवचन हमें प्रकाश देता है, जिसमें उन्होंने हिंसा-शक्ति की विरोधी, दंडशक्ति से निरपेक्ष ऐसी स्वतंत्र जनशक्ति के निर्माण का आवाहन किया था*। जहाँ इस प्रकार की जनशक्ति विकसित होती है वहीं गुणात्मक जनतंत्र कायम हो सकता है। और ऐसी जनशक्ति पैदा करने का एकमात्र उपाय है त्याग-मूलक जन-आन्दोलन। इसीलिए भूदान-यज्ञ विश्वशान्ति की दिशा में मार्गदर्शक बनता है। भूदान-यज्ञ से भारतीय जनता की जन-

---

*** देखिये, 'सर्वोदय का घोषणा-पत्र'—विनोबा**

शक्ति बढ़ेगी, उसका गुण-विकास होगा, जिसके कारण हमारे देश में ऐसा जनतंत्र कायम होगा जिसने जनतंत्र के यक्ष-प्रश्न गरीबी-अमीरी के सवाल को हल किया होगा। यदि जनतंत्र में क्रांति की शक्ति आती है, तो जनतंत्र बच जाता है। और यदि जनतंत्र बच जाता है, तो मानवता बच जाती है।

एक दूसरे दृष्टिकोण से इसी मसले को देखें। आज रूस और अमेरिका दोनों शान्ति की बातें करते हैं। रूस शान्ति के लिए स्टेलिन इनाम निकालता है, शान्ति के लिए प्रतिनिधि-मंडलों को विदेश भेजता है। लेकिन देश के आन्तरिक मामले को सुलझाने में उसकी वर्गविग्रह की नीति जाहिर है। बाह्यशान्ति, अंतर् अशान्ति। अमेरिका देश के आन्तरिक मामलों में शान्ति को हिमायत करती है। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उसके ऐटम बम के प्रयोग जारी हैं। अन्तर् शान्ति, बाह्य अशान्ति। भारत की विदेश नीति इन दोनों विचारों से स्वतंत्र है। श्री जवाहरलाल नेहरू ने शान्ति की जो आवाज उठायी है उसकी ओर सारी दुनिया आशा से टकटकी लगाये देख रही है। लेकिन नेहरूजी की इस आवाज को ताकत कहाँ से मिलेगी? देश के प्रश्न यदि हम शान्ति से सुलझा सकेंगे तभी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हम शान्ति की बात कह सकेंगे। जिस पूँजीवाद और साम्यवाद से स्वतंत्र रहने का हम दावा करते हैं उसके दूत तो क्रमश: अमीरी और गरीबी के रूप में हमारे देश में मौजूद हैं। इन दोनों को जब तक हम हटाते नहीं तब तक हमारी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-नीति में कोई ताकत नहीं आती। भूदान-यज्ञ यही ताकत हमें देता है।

भारतवर्ष के इतिहास को देखने से पता चलता है कि हमारे देश की दो खूबियाँ हैं—भारत ने कभी किसी देश पर राजनैतिक आक्रमण नहीं किया है और भारत में बाहर से जितनी संस्कृतियाँ आती गयीं वे सारी की सारी इस देश ने अपने महान् हृदय-संपुट में समा ली हैं। भारत में उत्तर भारत की पहाड़ी आर्य संस्कृति तथा दक्षिण भारत की सामूहिक संस्कृति का समन्वय हुआ। उत्तर भारत के बुद्ध-महावीर की आत्मज्ञान की विचारधारा दक्षिण में रामेश्वर तक जा पहुँची। दक्षिण से शंकराचार्य, रामानुज, माधवाचार्य ने उत्तर भारत की आत्मज्ञान की विचार-धारा में दक्षिण भारत की भक्तिधारा मिला दी। भारत में राज्य तो अनेक थे, लेकिन सांस्कृतिक राज्य हमेशा आसेतु-हिमालय एक ही रहा। उसके बाद मुसलमान आये। उनमें से कुछ ने युद्ध का रास्ता लिया। कुछ ने प्रेम का। प्रेम के रास्ते-वालों का परिणाम हमारे देश पर काफी पड़ा। इस्लाम ने हमारी भेदमूलक जाति-व्यवस्था पर काफी आघात किये। अब तक भारत में जो संस्कृति का रसायन तैयार हो रहा था उसमें विज्ञान का अभाव था। योरप में उस समय विज्ञान की अनेक खोजें हुईं। इन वैज्ञानिक खोजों का लाभ उठाते हुए अंग्रेज भारत में आये और उन्होंने हमें पराधीन बनाया। संघर्ष शुरू हुआ। और संघर्ष के माध्यम से ही सम्मिश्रण पैदा हुआ। वह थी सामूहिक अहिंसा। विज्ञान की प्रगति के कारण आज दुनिया इतनी छोटी बन गयी है कि उसमें कोई आन्दोलन निरा एकान्तिक रह नहीं सकता। वह सामूहिक बन जाता है। वैसा ही हमारी अहिंसा का हुआ। जमाने की माँग स्वतंत्रता की थी। हम निः-

शस्त्र थे, अंग्रेज जबर्दस्त सेनावाले थे। परिस्थिति हर तरह से अहिंसा धर्म के अनुकूल थी। जमाने की माँग जब धर्म के साथ मिल जाती है तब धर्म-चक्र-प्रवर्तन होता है। युग की माँग जब एक महापुरुष के मुँह से निकलती है तब वह युग-पुरुष कहलाता है। गांधीजी हमारे बीच में युग-पुरुष के रूप में आये। उन्होंने जमाने की माँग, स्वतंत्रता, को अहिंसा के साथ जोड़कर धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया। जगत् को सामूहिक अहिंसा की महान् भेंट मिली। जगत् के इतिहास में अब भारत की बेला आयी है। जिस सामूहिक अहिंसा का प्रवेश राजनीति के क्षेत्र में कर उसने स्वतंत्रता पायी उसी सामूहिक अहिंसा का प्रयोग आर्थिक, सामाजिक क्षेत्र में कर वह जगत् के सामने सर्वोदय समाज का आदर्श रखने जा रहा है। मनु महाराज ने हजारों वर्ष पहले कहा था : "स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः"—पृथ्वी के सब लोग भारत के श्रेष्ठ व्यक्तियों से चरित्र की शिक्षा लेंगे। हमारा और आपका यह परम सौभाग्य है कि पृथ्वी को आत्मज्ञान और विज्ञान के संयोग से निष्पन्न सामूहिक अहिंसा की प्रत्यक्ष शिक्षा देनेवाले दो युग-पुरुष हमने देखे—एक महात्मा गांधी और दूसरे विनोबा।

: ५ :

थोड़ा-सा शंका-समाधान

भूदान-यज्ञ की वैचारिक भूमिका हमने देख ली है। देश तथा जगत् के इतिहास में भी वह किस प्रकार एक आवश्यक आन्दोलन बन गया है यह भी हमने देख लिया। भूदान-यज्ञ के व्यावहारिक पहलू पर हम आगे विचार करेंगे। यहाँ हम कुछ प्रश्नों को लेंगे जो कि अक्सर लोग इस आन्दोलन के विषय में पूछते हैं। यह स्वाभाविक है कि इतने बड़े आन्दोलन के विषय में नित्य नये प्रश्न उठते रहें। आज तक वैसे सैकड़ों प्रश्नों के उत्तर विनोबा अलग-अलग प्रसंगों पर दे चुके हैं। इस छोटी-सी पुस्तिका में उन सब प्रश्नों का समावेश करना शक्य भी नहीं है, जरूरी भी नहीं है। यहाँ तो उनमें से कुछ चुने हुए प्रश्नों को प्रश्नोत्तरी के रूप में ले लेते हैं।

प्रश्न : आप जमीन से आरम्भ क्यों करते हैं, कारखाने आदि से क्यों नहीं?

उत्तर : हमारे देश में जो विषमता है उसका स्वरूप शहरों में तीव्र रूप में दीखता है। कारखाने के मालिक और मजदूर के बीच का अन्तर साफ नजर आता है। इसलिए यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। लेकिन यह कार्यक्रम जमीन से आरम्भ करने के कई जोरदार कारण हैं। पहला कारण यह है कि हमारी

सबसे बड़ी समस्या भूख है। भूख का जवाब अन्न है और अन्न उपजाने का साधन जमीन है।

दूसरा कारण यह है कि हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या जमीन पर जीती है। इसलिए हमारे देश में वही क्रांति राष्ट्र-व्यापी हो सकती है, जिसका सम्बन्ध कृषकों से है भारत की क्रांति की विभूति किसान ही होगा।

तीसरा कारण यह है कि उत्पादन के सारे साधनों का कच्चा माल धरती से निकलता है। कपास, कोयला, तेल, लोहा आदि सारी उत्पादन की सामग्री वसुंधरा धरित्री से ही निकलती है। इसलिए उत्पादक की मालिकी का आरंभ हम जमीन से करते हैं।

जमीन हमारी प्राथमिक आवश्यकता पूरी करती है। दूसरी विषमता कुछ देर तक सही जा सकती है, लेकिन जमीन की नहीं।

भूमि का प्रश्न कारखानों, उद्योग आदि से एक और अर्थ में भिन्नत्व रखता है। ये सारे कारखाने, उद्योग आदि तभी चल सकते हैं, तथा कायम रह सकते हैं, जब किसान की खेती अच्छी चले। जमीन से जो उत्पादन होता है, उस पर शेष उत्पादन अवलंबित है। जमीन ही यदि न रहे, तो बाकी चीजें बहुत बढ़ीं या न बढ़ीं, तो भी उनका जीवन की आवश्यकताओं से बहुत अधिक सम्बन्ध नहीं रहता। अतः एक बार जमीन का विषम-विभाजन दूर हुआ, तो शेष विषमताओं को तोड़ने की चाबी हाथ में आ जाती है। क्या यह संभव है कि भूमि का तो समान वितरण हो जाय पर और संपत्ति का न हो? प्रश्न किसे पहला स्थान दें, इतना ही है।

प्रश्न : इस प्रकार माँगने से काम कब तक पूरा होगा ?

उत्तर : इसका जवाब हम और आप पर निर्भर है। यदि हम सब अपनी पूरी ताकत लगायें तो कोई कारण नहीं कि देश के भूमिहीनों को जमीन दिलाने में विशेष देर लगे। लेकिन यदि हम उदासीन रहें और पूछते रहें कि यह आन्दोलन कब सफल होगा तो देर भी लग सकती है। क्रान्ति के आन्दोलनों की गति अंकगणित से नहीं नापी जाती, बीजगणित से नापी जाती है क्या। हम यह हिसाब कर सकते हैं कि घास की गंजी का एक तिनका जलने में एक सेकेण्ड लगा तो पूरी गंजी जलने में कितना समय लगेगा ? आपका हिसाब पूरा भी नहीं होगा, तब तक गंजी भस्मीभूत हो जायगी। गांधीजी ने जब नमक बनाया था तब कुछ गणिती लोग यह हिसाब करने लगे थे कि इस तरह समुद्र कब खाली होगा और नमक का भण्डार कब भरेगा। लेकिन इधर वे हिसाब कर रहे थे, उधर दिल्ली की राजधानी का सिंहासन डोल उठा था। अंकगणित में आँकड़े होते हैं। बीजगणित में संकेत। संकेतों की कीमत उतनी बढ़ सकती है जितनी हम उनके पीछे भावना भरें। गांधीजी के नमक बनाने में संकेत था, अन्यायी कानून के भंग का। उसी प्रकार भूदान-यज्ञ में मुनाफे और मालिकी के विसर्जन का संकेत है। हम यह हिसाब नहीं करते कि एक साल में एक लाख एकड़ जमीन मिली तो पाँच करोड़ एकड़ जमीन प्राप्त करने में कितने साल लगेंगे। पहले साल एक लाख एकड़ जमीन मिली थी, दूसरे साल सात लाख एकड़ जमीन मिली, तीसरे साल बाईस लाख एकड़ जमीन मिली।

श्री राममनोहर लोहिया ने एक निवेदन में कहा था कि इस

मार्ग से जमीन का प्रश्न हल करने में तीन सौ साल लगेंगे। विनोबा ने उसके जवाब में कहा था कि मेरे हिसाब से तो पाँच सौ वर्ष लगने चाहिए, क्योंकि एक साल में एक ही लाख एकड़ जमीन मिली है। लेकिन लोहियाजी कहते हैं कि यह काम तीन सौ वर्ष में पूरा होगा। इसका मतलब यह है कि पाँच सौ के तीन सौ वर्ष करने में मुझे लोहियाजी की मदद मिलेगी। लोहियाजी की मदद से यदि पाँच सौ के तीन सौ साल हो सकते हैं, तो जयप्रकाशजी की मदद से तीन सौ के तीस क्यों नहीं हो सकते? और जयप्रकाशजी की मदद से यदि तीस हो सकते हैं तो जनता की मदद से तीस के तीन क्यों नहीं हो सकते? विनोबा ने तो इस काम के पूरे होने के लिए १९५७ के साल की ओर इशारा भी कर दिया है। असल में यह प्रश्न हमारे विधायक पुरुषार्थ का है—गणित और अनुमान का नहीं।

प्रश्न : बड़े जमींदारों से जमीन माँगना तो ठीक है, मगर जिनके पास थोड़ी सी जमीन हो, ऐसे लोगों से क्यों माँगते हैं?

उत्तर : विनोबा ने इसके चार कारण बताये हैं : (१) वे समाज में हर किसीको अपने से बुरी हालतवाले आदमी के लिए कुछ-न-कुछ त्याग करने की प्रेरणा देना चाहते हैं। गंगा का पानी भी ऊपर से नीचे जाता है। छोटी-सी कटोरी में से जो पानी गिरता है वह भी ऊपर से नीचे ही जाता है। जिस प्रकार पानी का धर्म ऊपर से नीचे जाना है उस प्रकार मनुष्य का धर्म अपने से नीचेवालों की ओर देखना है।

(२) हमें मालिकी की भावना ही खतम करनी है। मालिकी की भावना अमीर की तरह गरीब में भी रहती है। बाबाजी को

अपनी लंगोटी की आसक्ति हो सकती है। आसक्ति-निरसन का कार्यक्रम छोटे-बड़े सबके लिए समान रूप से लागू होता है।

(३) छोटे लोगों के दान से एक नैतिक वातावरण पैदा होता है। छोटे लोगों की झोंपड़ी में बड़े लोगों की तिजोरी की कुंजी होती है। झोंपड़ी का द्वार खुलने से तिजोरी खुल सकती है।

(४) गुलामी के खिलाफ गुलाम लोग लड़े थे, गरीबी के खिलाफ गरीब लोग लड़ेंगे। छोटे लोगों के दानपत्रों द्वारा गरीबों की सेना तैयार हो रही है। इसमें वर्ग-विग्रह की भावना नहीं है। क्योंकि दान देने वाले बड़े भी हमारी त्यागी सेना के सैनिक बन जायेंगे।

गरीब से दान लेने का एक कारण यह भी है कि हम गरीब को दीन नहीं बनने देना चाहते। वह थोड़ा-सा भी देगा तो बँटवारे के समय सिर ऊँचा रखकर भाग ले सकेगा।

और एक कारण यह भी है कि हम गरीब आदमी को दूसरे गरीबों से मिलाना चाहते हैं। आज तो दो बीघावाले का स्वार्थ, पाँच बीघावाले के स्वार्थ से टकराता है। गरीब भी गरीब का प्रतिस्पर्धी बनता है। यदि एक गरीब दूसरे गरीब के लिए कुछ-न-कुछ देने के लिए तैयार हो, तो गरीबों के बीच हृदय की एकता कायम होगी और गरीबों की ताकत पैदा होगी।

प्रश्न : गरीब अपने पूर्वजन्म के कर्मों के कारण गरीब है, उसके नसीब को आप कैसे बदल सकेंगे? क्या समानता की कल्पना ही कुदरत-विरोधी नहीं है?

उत्तर : पूर्वजन्म के पाप से जो अंधा पैदा हुआ है, उसे क्या आप लकड़ी नहीं देते? आप यदि पूर्वजन्म में विश्वास रखते हैं

तो इसके बाद पुनर्जन्म के लिए पुण्य भी करेंगे न? नसीबवाद के कारण हमें पुरुषार्थ-हीन तो नहीं बनना चाहिए न? असमानता दो प्रकार की होती है। एक ईश्वरकृत या कुदरती, दूसरी मनुष्य-कृत। एक माँ के दो बच्चे एक ही साथ पैदा हुए हों तो भी एक कमजोर और दूसरा सशक्त हो सकता है। इसे शायद हम कुदरती असमानता कह सकते हैं। लेकिन उस हालत में माँ क्या करती है? वह कमजोर बालक को अधिक पौष्टिक खूराक खिलाती है। हम ईश्वरकृत असमानता को कम करने का नम्र प्रयत्न करते हैं। लेकिन मनुष्यकृत असमानता को तो मिटा देने का हमारा संकल्प है। गरीबी-अमीरी आदमी ने अपनी गलत अर्थ-व्यवस्था के कारण या स्वार्थपरता के कारण बनायी है। उसे हम खतम करते हैं तो कुदरत के खिलाफ नहीं, कुदरत के अनुकूल ही काम करते हैं।

प्रश्न : भूदान-यज्ञ से जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हो जायेंगे। इससे खेती का उत्पादन घटेगा।

उत्तर : विनोबा ने जो महान् क्रान्ति का काम उठाया है उसकी तुलना में यह प्रश्न बहुत गौण है। विनोबा तो कहते हैं कि आज जो हृदय के टुकड़े हो गये हैं उन्हें मैं जोड़ना चाहता हूँ। जमीन के टुकड़ों से मुझे हृदय के टुकड़ों की अधिक चिन्ता है।

वस्तुतः भूदान-यज्ञ से, जितनी कल्पना है, उतने छोटे टुकड़े होते नहीं। कोई आदमी अपनी दस एकड़ जमीन में से सवा एकड़ देता है तो केवल कागज पर विचार करने वाला यह सोचता है कि उसकी जमीन के दो टुकड़े हो गये। लेकिन आम तौर पर दाता के पास जमीन एक ही चक में नहीं होती। अक्सर वह अपनी जमीन

का एक अलग टुकड़ा देखकर ही दान देता है। कई बार तो दो-चार दाता अपनी वह जमीन देते हैं जो एक-दूसरे से लगी हुई हो। ऐसे प्रसंगों पर तो जमीन के टुकड़े बनने के बजाय टुकड़े जुड़ जाते हैं। वितरण के समय जमीन के टुकड़ों की हेरफेर कर एक चक में जमीन देने की भी यथासंभव कोशिश की जाती है।

इतना करने पर भी जमीन के टुकड़े रह गये तो उससे घबराने की कोई जरूरत नहीं है। 'पोषणक्षम टुकड़ा' Economic holding आखिर एक सापेक्ष शब्द है। यदि कोई कुदाली से खेती करता है तो उसे कम जमीन पुसाती है, कोई ट्रेक्टर से खेती करता है तो उसके लिए बड़ा टुकड़ा लाभदायी होगा। अतएव पोषणक्षम टुकड़ा साधनों की दृष्टि से तय करने के बजाय परिवार की जरूरत के आधार पर तय करना चाहिए। भारत की भूमि और जनसंख्या को देखते हुए बहुत बड़े टुकड़े हम हरएक किसान को दे ही नहीं सकेंगे।

छोटे टुकड़ों के कारण उत्पादन कम ही होता है यह मानना भी गलत है। दुनिया भर में फी-एकड़ पैदावार चीन और जापान देशों में सब से अधिक होती है, जहाँ जमीन बड़े टुकड़ों में नहीं, छोटे टुकड़ों में जोती जाती है।

इतिहास का एक अनुभव भी इस प्रश्न के साथ ध्यान में रखना चाहिए। जहाँ छोटे टुकड़ों की खेती हुई है वहाँ मनुष्य सहकार की ओर मुड़ा है। जहाँ विशाल टुकड़ों में खेती (लैटिफंडिया) हुई है वहाँ तानाशाही राज्य-व्यवस्था के अनुकूल हवा बनी है।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भूमिदान की प्रक्रिया का

आखिरी कदम समग्र ग्राम-दान है। उस हालत में जमीन के टुकड़ों का सवाल इतना तीव्र नहीं रहेगा।

प्रश्न : क्या अनपढ़ भूमिहीनों को जमीन देने के कारण उत्पादन नहीं घटेगा ?

उत्तर : भूमिहीन अनपढ़ हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वे खेती करना नहीं जानते। आज भी सारी दुनिया की खेती तो ये अनपढ़ मजदूर ही करते हैं, और अच्छी तरह करते हैं। उनमें यदि कोई कमी है तो वह योजना-शक्ति की। किस समय क्या काम करना यह शायद उन्हें नहीं सूझेगा। इसका सबसे बड़ा कारण तो यह है कि आज तक उन्होंने कोई जिम्मेवारी नहीं संभाली। जमीन मिलते ही उन्हें जिम्मेवारी का भान होगा। आज जो वृत्ति है उसके बदले में काम को अपना समझकर नया उत्साह आयेगा। आज से पहले कई बार कुछ भूमिहीनों को राजा के द्वारा जमीन देने के कार्यक्रम हुए हैं और कभी-कभी वे निष्फल रहे हैं। शायद इसीके अनुभव पर से यह प्रश्न उठा हो। ऐसे प्रसंगों में अक्सर हुआ यह है कि जमीनें अपर्याप्त मात्रा में दी गयी हैं, तथा साधन भी नहीं दिये गये। इसलिए भूमिहीन अपनी रोजी की फिक्र में जमीन पर पूरा समय काम भी नहीं कर सकता, न पूरे साधन ही जुटा सकता है। लेकिन भूमिदान-यज्ञ में आप जिसे जमीन देंगे उसे तो आप भूखा रखना नहीं चाहेंगे न? आप शायद उसे साधन भी जुटा देंगे। आपसे यदि वह न हो सके तो, संपत्तिदान या साधन-दान में से उसे साधन मिल सकते हैं। और आपके पास योजना-शक्ति हो तो क्या उसका लाभ भूमिहीन को नहीं देंगे? वह तो आपके परिवार का एक सदस्य बन जायेगा

न? आपकी योजना-शक्ति और उसकी उत्साह-भरी कार्य-शक्ति मिलकर तो शायद आज तक उस जमीन पर जितना उत्पादन होता था, उससे अधिक ही होगा। लेकिन फिर भी मान लीजिये कि कुछ जगह अनुभवहीन भूमिहीनों को जमीन देने के कारण उत्पादन घटा। तो उतनी जोखिम उठाकर भी गैर जिम्मेदार और अनुत्साही काश्तकारों को—जिनका अस्तित्व समाज के लिए एक खतरा-सा है—जिम्मेदार तथा समाजोपयोगी बनाना चाहिए।

प्रश्न : सहकारी खेती की तरफ भूदान-यज्ञ का रुख कैसा है?

उत्तर : वह उसका विरोध नहीं करता, लेकिन उसे अनिवार्य शर्त के तौर पर नहीं रखता। अंत में गाँव में किस प्रकार की खेती हो, उसका निर्णय ग्रामजन ही करेंगे।

परिस्थिति के अनुसार-जगह जगह अलग-अलग तरह की खेती हो सकती है। सहकार करने में जहाँ ज्यादातर किसान अनपढ़ हों वहाँ मैनेजर के हाथ में सारा कारोबार चले जाने का संभव रहता है। लेकिन अगर भूमिहीन स्वयं सहकारी खेती करना चाहेंगे तो उनको कोई रोकेगा नहीं। बैल, सिंचाई आदि की व्यवस्था में तो शुरू से सहकार का प्रबंध सोचा जा सकता है।

प्रश्न : भूमि-वितरण के बाद जो आबादी बढ़ेगी उसका क्या ?

उत्तर : जनसंख्या का सवाल सिर्फ भूदान-यज्ञ के लिए ही नहीं लागू होता। वह हर प्रकार के आयोजन के लिए लागू है। एक बार भूमि का बटवारा कर दिया, इससे भूमि का प्रश्न सदा के

लिए हल हो गया, ऐसा मत मानिये। आज का भूमिदान-यज्ञ आज का सवाल हल करने के लिए है। इस संसार में सत्य के सिवा और कोई चीज शाश्वत नहीं है। इसलिए जब वह प्रश्न खड़ा होगा तब उस जमाने के लोग उसका उचित हल ढूंढेंगे। फिर भी आज की योजना में उसके उपाय के बीज मौजूद हैं। भूमिदान-यज्ञ की अंतिम कल्पना तो यह है न, कि जमीन गाँव की होगी। गाँव में हर पंद्रह-बीस साल में एक बार फिर जमीन का बँटवारा किया जायेगा। और जनसंख्या बढ़ेगी तो साथ ही काम करने-वालों की संख्या भी तो बढ़ेगी। कृषि-विज्ञान भी प्रगति करेगा। पानी तथा खाद की व्यवस्था भी बढ़ेगी। उस हालत में आनेवाले कई वर्षों तक तो उत्तम प्रकार की खेती के जरिये हम ज्यादा लोगों को काम और खाना दे सकेंगे। खेती के साथ ही ग्रामोद्योग के विकास की भी कल्पना है। उसके कारण खेती पर से काफी बोझ घट सकता है।

प्रश्न : दान में मिली जमीन में से अधिकांश जमीन खराब होती है। ऐसी जमीन भूमिहीनों को देने से क्या फायदा ?

उत्तर : दान में मिली जमीन किस प्रकार की है उसका पता बँटवारे के समय चलता है। आज तक जो जमीन बाँटी गयी है उस पर से यह नहीं कहा जा सकता कि अधिकांश जमीन खराब मिलती है। अक्सर बड़े जमींदार जब जमीन के बड़े चक देते हैं, तब उनमें अच्छी-बुरी दोनों प्रकार की जमीन मिलती है। छोटे जमीन मालिकों ने लाखों की संख्या में जो दानपत्र दिये हैं उनमें से अधिकांश ने उत्तम जमीन दी है। विनोबा जब सब की सब जमीनें माँगते हैं तब उसमें अच्छी-बुरी सब प्रकार की जमीन

का समावेश होता है। ऐसा पाया गया है कि जमीन खराब दी जाती है यह अफवाह अक्सर ऐसे लोग शुरू करते हैं, जिनके पास जमीन है, लेकिन जो स्वयं नहीं दे सके हैं। दूसरे का दान निम्न स्तर का है, ऐसा सिद्ध करने की उनकी चेष्टा होती है। हाँ, यह संभव है कि दाता वह जमीन देता है जो उसके रहने के स्थान से दूर हो या जो टुकड़ा उसकी अधिकांश जमीन से अलग दिशा में हो। यह जरूरी नहीं कि वह जमीन खराब ही हो। जो टुकड़ा देनेवाले के लिए आर्थिक दृष्टि से कम आमदनी का हो, संभव है कि लेनेवाला उसे खुशी से ले, क्योंकि उसके लिए तो वह जीवन-निर्वाह का आलम्बन बन जाता है।

अक्सर बड़े जमीन मालिक अपनी पूरी जमीन की सँभाल नहीं रख सकते। ऐसी हालत में जो टुकड़ा भूमिहीनों के पास जाता है उस पर पहले से अधिक उत्पादन होने की संभावना बढ़ती ही है।

इस विषय में और भी एक मुद्दे पर विचार करना चाहिए। भूमि यदि प्रेम से माँगने के बदले कानून से जबरदस्ती छीन ली जाती तो लोग अपने पास सबसे बढ़िया जमीन रखकर सबसे घटिया जमीन कानून के लिए अलग कर देते। आज भूदान-यज्ञ के जरिये उत्तमोत्तम जमीनें भी मिलती हैं। वह तो कानून के जरिये मिलती ही नहीं। और भूमिदान-यज्ञ जमीन के साथ जो सद्भावना ले आता है वह कानून के जरिये आती ही कहाँ से?

यह भी स्वीकार करना होगा कि कभी-कभी ऐसी जमीन भी मिलती है जिसे कोई भूमिहीन लेने के लिए तैयार नहीं होता। उस हालत में भूदान सेवक यह सोचता है कि दाता ने ऐसी जमीन

दी क्यों ? यह जाहिर है कि दाता ने प्रतिष्ठा की लालच से जमीन तो दी है। लेकिन उसके दिल में भूमिहीनों के प्रनि प्रेमभाव नहीं पैदा हुआ। ऐसी अवस्था में भूदान-सेवक वह जमीन दाता को उसकी प्रतिष्ठा के साथ प्रेमपूर्वक लौटा देता है। ऐसे प्रसंगों में यदि दाता को प्रतिष्ठा की कुछ परवाह होती है, तो वह खराब जमीन के बदले में अच्छी जमीन भी दे देता है।

कई जगह ऐसी जमीनें भी मिली हैं जिन पर खेती नहीं हो सकती। लेकिन इस पर पत्थर तोड़ने का कायमी धंधा भूमिहीनों को मिल जाता है। यह धंधा कई बार कृषि से भी अधिक अच्छे उपार्जन का साधन बन जाता है।

जहाँ जरूरत हो वहाँ कुछ जमीन का गोचर, खाद के गड्ढे बनाने में या अन्य कोई सामाजिक काम में भी उपयोग होता है।

प्रश्न : एक ओर से आप जमीन माँग रहे हैं, दूसरी ओर से जमींदार लोग किसानों को बेदखली कर रहे हैं। आप बेदखली का विरोध क्यों नहीं करते ?

उत्तर : हम बेदखली का विरोध करते ही हैं। उत्तर प्रदेश के किसानों को तो विनोबा ने यहाँ तक कह दिया था कि आपको कोई जबरदस्ती से बेदखल करना चाहे तो आप मार खाइये, लेकिन खेत पर से मत हटिये। विनोबा की इस सलाह का बहुत अच्छा परिणाम हुआ था। बिहार में भी विनोबा ने बेदखली का जाहिर विरोध किया है। विनोबा तो कहते हैं कि वे किसीके काजी बनने नहीं जायेंगे। कानून जिसे चाहे जमीन की मालिकी दे। हम तो जमींदार से इतना ही कहेंगे कि किसान को भूमिहीन मत बनाओ। आप यदि बेदखली में मिली हुई जमीन हमें देंगे तो

उसे भी दान के तौर पर स्वीकार करेंगे। देनेवाले का पापच्छेद होगा और जमीन हम उसी को लौटा देंगे जिससे वह छीनी गयी है। झगड़ा यदि मिट जाता है तो हमें जमीन-मालिक को दान की प्रतिष्ठा देने में कोई हर्ज नहीं है।

भूदान के कार्यकर्ताओं से विनोबा यही कहेंगे कि यदि उनके प्रदेश में बेदखलियाँ चल रही हैं तो उनका फर्ज है कि वे इस विषय में दिलचस्पी लें। कई बार मामला भूमिदाताओं को जाकर नम्रता से समझाने से हल हो जाता है।

प्रश्न : यदि भूदान-यज्ञ सफल नहीं हुआ तो विनोबा क्या करेंगे ?

भूदान-यज्ञ सफल नहीं होगा, ऐसा मानकर आगे का विचार करना भी अश्रद्धा का सूचक है। विनोबा इस प्रकार सोच ही नहीं सकते। वे तो कहते हैं कि मैं किसी आप्तजन की बीमारी में जब औषधोपचार करता हूँ तब साथ-साथ यह नहीं सोचता कि यदि यह प्रयोग सफल नहीं हुआ तो अन्त्येष्टि क्रिया के लिए लकड़ी का भी इन्तजाम कर रखूँ।

असल में भूदान-यज्ञ के आज तक जो परिणाम हुए हैं, उनको देखते हुए उसके सफल होने की आशा अधिक दीख पड़ती है। यदि कहीं असफलता हुई है तो वह कार्यकर्ताओं की कमी के कारण, इस तरीके की सदोषता के कारण नहीं। बिहार में विनोबा भूमि-समस्या हल करना चाहते थे। बिहार छोड़ने से पहले वे अपने लक्ष्यांक तक नहीं पहुँच सके। ३२ लाख एकड़ जमीन की माँग थी। उसके बदले में २२ लाख एकड़ से कुछ अधिक जमीन मिली है। इससे निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि बिहार में

भूदान-आंदोलन सफल नहीं हुआ। लेकिन हमें इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि बिहार के कुल देहातों में से केवल एक-तिहाई देहातों तक भूदान का संदेश पहुँच पाया है। फिर भी इतना बड़ा परिणाम आया है। इससे यही पता लगता है कि यदि त्रुटि है तो हमारे प्रयत्न में है, तरीके में नहीं।

फिर भी यदि सन् १९५७ तक भूमि-समस्या हल नहीं होती तो अहिंसा की मर्यादा में रहते हुए, जितने भी और उपाय किये जा सकते हैं, उनसे विनोबा हिचकिचायेंगे नहीं। लेकिन असहयोग, सत्याग्रह आदि साधन अंतिम हैं। उससे पहले समझाने के पूरे प्रयत्न तो हो जाने चाहिए न? और सत्याग्रह के लिए सत्याग्रही की अपनी भी तो कुछ तैयारी चाहिए? भूमिदान यज्ञ के लिए जो कोशिशें होती हैं, उनसे यह तैयारी भी सहज ही हो जाती है। लेकिन बहुत संभव है कि उसका मौका ही न आवे।

प्रश्न : भूमिदान तो आप माँग रहे हैं, परंतु कभी षष्ठांश की माँग करते हैं, कभी पूरे गाँव की, कभी कुछ। एक बार आप अपना भूमि-वितरण संबंधी स्पष्ट चित्र हमें बता दीजिये कि वह कैसा रहेगा?

उत्तर : विनोबा ने यह कहा है कि 'भूमि भगवान् की है, उसकी ओर से समाज की है और वह रहेगी जोतनेवाले के पास।' यानी भूमि का स्वामित्व हमने व्यक्तिगत नहीं माना है। भूमिदान-यज्ञ का भूमि संबंधी अंतिम ध्येय है, गाँव की सारी जमीन गाँव-समाज की मालकियत की बनाना। लेकिन यह कदम हम एकदम नहीं उठा रहे हैं। क्योंकि हमारी प्रक्रिया विचार-क्रान्ति की प्रक्रिया है। इसलिए पहला प्रश्न हमने हाथ में लिया, गाँव के

बेजमीन मजदूरों का, जिन्हें सर्वप्रथम आवश्यक जमीन मुहैया करानी है। सारे देश से औसतन छठा-हिस्सा प्राप्त हो जाने पर बेजमीनों का प्रश्न हल हो जाता है। यह हमने पीछे के प्रकरणों में देखा है। इस प्रश्न के हल करने में ही हमने यह भी भूमिका रखी है कि हर घर एक अधिक व्यापक परिवार का अंगरूप-में माना जाय, और व्यापक परिवार के लिए उसके हक का छठा हिस्सा प्राप्त हो।

इसके बाद की हमारी माँग है कि जितनी आप स्वयं जोत सकते हैं, उतनी ही जमीन रखें। बाकी जमीन गाँव-समाज को अर्पण हो, जिसमें से गाँव-समाज कम जमीनवालों को पर्याप्त जमीनें देगा और उन बेजमीनों को भी देगा, जिन्हें अब तक न मिली हो। यह माँग अर्थात् उन्हीं लोगों से ही है, जिनके पास षष्ठांश देने के बाद भी पर्याप्त जमीनें बच जाती हैं। परन्तु यह माँग भी हम विचार-परिवर्तन द्वारा ही उनके सामने रखते हैं और कहते हैं कि जहाँ आपने भूमि का निजी स्वामित्व तज दिया, वहाँ जरूरत के मुताबिक ही जमीन रखने की भी स्वीकृति दे दी। षष्ठांश के बाद की यह प्रक्रिया है। आज ही इसका भी आरंभ कई जगह हो चुका है।

हमारी अंतिम माँग है, सर्वप्रथम सारी की सारी जमीन गाँव की मालकियत की बनाकर गाँव-समाज को वह अर्पित कर दें। यह गाँव-समाज सारे गाँव का अविरोधी सर्वसम्मति से चुना हुआ प्रतिनिधि मंडल होगा। सबका प्रतिनिधित्व उसमें बराबर और अनिवार्यतः रहेगा।

फिर यह गाँव-समाज या सर्वोदय-मंडल प्रत्येक की आव-

श्यकता देखेगा कि उसके घर में कितने प्राणी हैं, कितने जोत सकते हैं, कितनी भूमि गाँव में है। फिर गाँव की भूमि के अनुपात में वह प्रत्येक खेतिहर को, जो खेती करना चाहेगा, जमीन बाँट देगा। यह जमीन प्रति व्यक्ति एक एकड़ होगी—ऐसा हमारा अंदाज है। कहीं दो एकड़ भी हो सकती है, कहीं अधिक भी। कहीं ज्यादा जमीन बचे, तो अन्यत्र के भूमिहीनों को भी आमंत्रित किया जायेगा, जहाँ उनके लिए जमीन बच ही न सकी हो।

इस प्रकार सबकी व्यक्तिगत आवश्यकता और जमीन का परिमाण देखकर जमीन बाँटी जायगी, परन्तु उसमें दो शर्तें रहेंगी। एक तो कुछ जमीन गाँव के सामूहिक उपयोग के लिए रख ली जायगी, जिसमें सबको अपना श्रमदान देना होगा और फलप्राप्ति भी सबके लिए होगी, जिसमें से गाँव के सामूहिक खर्च चलेंगे। दूसरे, चरागाह आदि के लिए भी कुछ जमीन छोड़ दी जायगी।

एक बात यहाँ स्पष्ट है कि जो जमीन दी जायगी, वह जोतने और खाने के लिए दी जायगी, जिसमें १५-२० साल के बाद कमी-बेशी भी हो सकेगी। किसी घर में प्राणी बढ़ेंगे, तो गाँव-वालों को सामूहिक जमीन में से देनी पड़ेगी। प्राणी घटेंगे, तो उनसे जमीन लेनी और दूसरों को देनी होगी या सामूहिक जमीन में मिला देनी होगी। यानी एक तरह से यह सामूहिक जमीन हमारी भूमि-बैंक होगी, जिसमें से आवश्यकतानुसार कोई जमीन ले-दे सकेगा—अर्थात् हर पंद्रह या बीस साल के बाद सबकी सम्मति से। इस भूमि में बहुत छोटे-छोटे टुकड़े न पड़ें, इसका ध्यान तो रखा जायेगा ही।

एक प्रश्न यह भी खड़ा होता है कि यदि जमीन अपर्याप्त हो, तो आप क्या करेंगे ? हमने ऊपर कहा है कि जहाँ बेजमीन ज्यादा हों और जमीन कम हो, वहाँ से बेजमीनवालों को अन्यत्र भी भेजना होगा, जहाँ बहुत जमीनें पड़ी हों। और पड़ती जमीनें भी तो हमें तोड़नी होंगी । कभी नये गाँव भी बसाने होंगे। पीलीभीत (उ० प्र०) में ७॥ हजार एकड़ का एक पूरा चक मिला है, वहाँ दूसरी जगह के भूमिहीनों को बसाने के सिवा कोई मार्ग ही नहीं है, क्योंकि वहाँ के भूमिहीनों की आवश्यकता से अधिक वहाँ जमीनें हैं ।

फिर इसके साथ हमने ग्रामोद्योगों को भी इस योजना का एक अनिवार्य अंग माना है, क्योंकि एक या आध-एकड़ जमीन प्रतिव्यक्ति देने से ही किसान का काम नहीं चलेगा, उसका जीवन स्वावलम्बी बनाने के लिए ग्रामोद्योग भी देने होंगे । ग्रामोद्योग क्या, कैसे होंगे आदि की चर्चा का यह स्थान नहीं है, परन्तु ग्रामोद्योग एक अनिवार्य आवश्यकता है, यह स्पष्ट है ।

इस प्रकार—

(१) षष्ठांश, प्रथम कदम,

(२) जो जोते वही जमीन रखे, यह दूसरा कदम और

(३) अंत में सारी जमीन गाँव-समाज़ को अर्पित करके, फिर उससे अपनी आवश्यकतानुसार लेना—गाँव की जमीन के अनुपात में—यह तीसरा कदम । अर्थात् यह सब अहिंसक प्रक्रिया द्वारा ही होगा ।

यह आवश्यक नहीं कि पहले के बाद दूसरा और फिर तीसरा, ऐसे क्रम से ही ये कदम उठें। कहीं तीसरा कदम ही सर्वप्रथम

उठ सकता है, जैसे उड़ीसा में अब तक ३०० के करीब पूरे गाँव के गाँव विनोवा को मिल चुके हैं। वहाँ तो तीसरे कदम के प्रकाश में ही जमीन का वितरण होगा।

हमने यह भी माना है कि प्रथम कदम में तो मजदूरों की गुंजाइश है, पर दूसरे और तीसरे कदम में मजदूर नाम का कोई प्राणी नहीं रहेगा और सहयोग तथा सहकार की भावना से आवश्यकतानुसार प्रत्येक को मदद मिलेगी। ग्राम-जीवन में मदद तो हर किसी को मिलेगी। अतः ग्राम-जीवन में सहकार और सहयोग हमें अनिवार्य रूप से दाखिल करना होगा।

: ६ :

भूमि सम्बन्धी कुछ आँकड़े

भूदान-आन्दोलन का आरंभ तेलंगाना की विषम अवस्था में हुआ। लेकिन तेलंगाना में भूमि के बँटवारे की जो विषमता थी, वही कमबेशी मात्रा में देश भर में मौजूद है। यह सच है कि तेलंगाना में जो स्फोटकता थी, वह सब जगह नहीं है, लेकिन जमीन का अन्यायपूर्ण वितरण तो हर जगह है। वैसे ही भारत में जनसंख्या के अनुपात से जमीन का परिमाण बहुत कम है। उसमें भी चंद लोगों के पास ज्यादा जमीन है, अधिकांश के पास कम। करोड़ों लोग ऐसे हैं, जो साल भर भूमि पर मेहनत करते हैं, लेकिन जो अन्न को खुद पकाते हैं उसके वे मालिक नहीं हैं। हजारों ऐसे भी हैं जो जमीन के मालिक तो हैं, लेकिन जिन्हें यह भी पता नहीं कि उनकी जमीन किस जगह है। आइये, हिन्दुस्तान की भूमि-समस्या के कुछ आँकड़ों का अध्ययन करें।

भारत का कुल क्षेत्रफल १२,६९,६४० वर्गमील है। लेकिन उसमें से २६,६३,७२,००० एकड़ भूमि पर आज खेती होती है। बंजर या पड़ती जमीन में से खेती के लायक जो जमीनें हैं उनको हम उसमें मिला लें, तो भारत के प्रत्येक नागरिक के लिये औसत ·७ एकड़, याने करीब पौन एकड़, जमीन आती है। लेकिन इस गणना में वे लोग भी शामिल हैं, जो खेती पर निर्भर नहीं हैं।

सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या ३५,६६,९४३,८९ है। इनमें से २४,९१,२३,४४९ लोग खेती पर निर्भर हैं। यानी कुल जन-संख्या के ६९.८ प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर हैं। खेती पर निर्भर लोगों की संख्या दूसरे उद्योगप्रधान देशों की तुलना में कहीं अधिक है। १९२१ में ग्रेट-ब्रिटेन में २०.७ प्रतिशत, जर्मनी में ३७.८ प्रतिशत और फ्रान्स में ५३.६ प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर थे। यह भी देखा गया है कि जब कि अन्य औद्योगिक राष्ट्रों में भूमि पर जनसंख्या का भार उत्तरोत्तर घटता जाता है, भारत में वह बढ़ रहा है। १८७० में ब्रिटेन में ३८.२ प्रतिशत, जर्मनी में ६१.० प्रतिशत, फ्रांस में ६७.६ प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर थे। १९२१ के बाद के वहाँ के आँकड़े अभी उपलब्ध नहीं हो सके हैं। उद्योगों के बढ़ने के कारण इन देशों में खेती पर जनसंख्या का भार घट रहा है। भारत में सन् १८८१ में ५८.० प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर थे, सन् १९५१ में ६९.८ प्रतिशत निर्भर थे। ये आँकड़े बताते हैं कि ग्रामोद्योगों के टूट जाने के कारण हमारे देश में खेती पर बोझ और भी बढ़ रहा है।

जो जनसंख्या खेती पर निर्भर है, उसका बँटवारा नीचे लिखे अनुसार है :

अपनी जमीन खुद जोतनेवाले	१६८० लाख, ४६.९ प्र० श०
दूसरों की जमीन जोतनेवाले	३१६ लाख, ८.९ प्र० श०
भूमिहीन मजदूर	४४८ लाख, १२.५ प्र० श०
जमीन-मालिक जो खुद काश्त नहीं करते	५३ लाख, १.५ प्र० श०

इन आँकड़ों से यह पता चलता है कि हर छह भूमिवानों के

पीछे एक भूमिहीन मजदूर है। इसीलिए विनोबा छठे भाग की माँग करते हैं। यह भी समझ लेना चाहिए कि दूसरे की जमीन पर काश्त करनेवाले ८·९ प्रतिशत किसान भी प्रायः भूमिहीन ही हैं। किसी भी समय उनकी जमीन छीनी जाने का भय उनके सिर पर सवार रहता है। जो भूमिवान् समझे जाते हैं, उनके पास भी जमीन समानता से नहीं बँटी है। अधिक लोगों के पास कम जमीन है। उदाहरणार्थ उत्कल में जमीन जोतनेवाले किसानों के २६·७ प्रतिशत परिवारों के पास तो १ एकड़ से कम जमीन है। कम-ज्यादा परिमाण में देश भर में परिस्थिति वैसी ही है। नीचे का तख्ता देखिये :

भारत के कुछ बड़े राज्यों में जमीन के विभाजन की वर्तमान स्थिति

राज्य	५ एकड़ से कम जमीन वाले किसान		५ से २० एकड़ जमीन वाले किसान		१० से ज्यादा एकड़ जमीनवाले	
	जनसंख्या %	जमीन %	जनसंख्या %	जमीन %	जनसंख्या %	जमीन %
आसाम	६६·०	२६·०	२५·५	३३	११·५	४१
उड़ीसा	७४·०	३०·०	२२·५	४३	३·५	२७
उत्तर प्रदेश	८१·०	३९·०	१६·५	३९	२·५	२२
बंबई	५२·०	१४·०	२९·०	४४	९	४२
मध्य प्रदेश	५१·०	१०·०	३५·०	३१	१४	५९
मद्रास	८२·०	४१·०	११·०	२७	७	३२
त्रावणकोरकोचीन	६४·०	४४·०	५·०	२२	१	३४
मैसूर	६६·०	२५·०	३३·०	५९	१	२६

हमें अफसोस है कि 'अ' वर्ग के राज्यों में बिहार, पंजाब, तथा पश्चिम बंगाल के पूरे आँकड़े हमें मिले नहीं हैं। लेकिन जो आँकड़े हैं वे भी वहाँ की भूमि-समस्या की कल्पना कराने के लिए काफी हैं; बिहार में ५ एकड़ से कम जमीन रखनेवाले किसान ८३% हैं, ५ से ५० एकड़ तक के १६% और ५० से ज्यादा-वाले सिर्फ ७% हैं। पश्चिम बंगाल में २ एकड़ से कम जमीनवाले किसान ३४% हैं, २ से ४ एकड़ वाले २८% हैं और ४ से अधिक एकड़वाले ३८% हैं। पंजाब में खेती पर निर्भर लोगों में से करीब ७० लाख भूमिहीन मजदूर हैं।

सारे देश की भूमि-समस्या का कुछ ख्याल नीचे दिये भूमि-हीन मजदूरों की संख्या के आँकड़ों पर से भी आ सकता है।

राज्य	खेती पर निर्भर जनसंख्या	खेती-मजदूरी पर निर्भर जनसंख्या
आसाम	७२,४१,१७२	१,५६ ०२३
बिहार	३,४६,११,२५४	८७,६५,२०२
उड़ीसा	१,१६,१२ ३६०	१८,०३,६६८
उत्तर प्रदेश	४,६८,६६,६७२	३६,१२,२०६
पश्चिमी बंगाल	१,४१,६५,१६१	३०,४१,८८१
पूर्वी पंजाब	८०,६८,५६७	१,६२,६७७
बंबई	२,२०,६८,२६३	३२,५२,५४६
मध्यप्रदेश	१,६१,४८,८७६	४३,३६,२८२
मद्रास	३,७०,२२,७६०	१,०३,६३,३६२
त्रावणकोर कोचीन	५०,६०,३०६	१८,७१,७६७
मैसूर	६३,४३,३६०	६,१५,८५३
हैदराबाद	१,२७,१४,८२४	३२,६६,७७३
मध्यभारत	५७,४४,४०६	८,८४,६१८
राजस्थान	१,०८,३६,६३६	८,७४,६६६
पेप्सू	३५,३४,६८४	३,५८,६७६
सौराष्ट्र	१६,२६,१२०	१,५५,५८५
विंध्यप्रदेश	३२,१४,३६४	६,२६,८१३
हिमाचल प्रदेश	६,१४,२३८	६२,०६८
दिल्ली	१,७२,१८६	२६,२७६
अजमेर	३,१४,६०५	१६,५६८
त्रिपुरा	४,८०,८६२	३०,८८६
कुर्ग	१,३२,३०३	२४,५३३
कच्छ	२,३८,५८१	१६,८६५
भोपाल	५,४८,३३०	१,६७,४२५
विलासपुर	१,१४,३६८	१,६८६

: ७ :

व्यावहारिक पहलू

पोचमपल्ली में भूदान-यज्ञ का जो बीज बोया गया उसका अब तो एक विशाल वृक्ष बन गया है। उस वृक्ष से अनेक शाखाएँ भी निकली हैं, तथा फूली-फली हैं। भूदान-यज्ञ के व्यावहारिक पहलू का अध्ययन हम इन्हीं शाखाओं के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करके करेंगे।

इस आंदोलन में जो भिन्न-भिन्न दान लिये जाते हैं वे निम्न प्रकार के हैं: भूमिदान, संपत्तिदान, श्रमदान, साधन-दान, कूप-दान, अलंकार-दान, बुद्धि-दान और जीवन-दान।

भूमिदान में उत्पादन के साधन की मालिकी उत्पादक के हाथ में देने की प्रक्रिया और अनुत्पादक की मालिकी खतम होने की प्रक्रिया है। जमीन-मालिक किसी भूदान-सेवक के पास, या आम सभा में या पत्र द्वारा जमीन का दान देने का अपना संकल्प जाहिर करता है। वहाँ से भूदान की प्रत्यक्ष प्रक्रिया शुरू होती है। आम तौर से जमीन मालिक उस समय एक दानपत्र पर अपने दस्तखत कर देता है। इस दानपत्र का एक नमूना इस पुस्तक में परिशिष्ट (२) के रूप में अंत में दिया गया है। संकल्प जाहिर करते समय दानपत्र की कुछ शर्तें छूट गयी हों, तो बाद में वे भरवा ली जाती हैं। दानपत्र भरने के बाद, जब तक उस भूमि का वितरण

न हो, तब तक दाता उस जमीन पर उसी प्रकार खेती करता है, जैसी वह पहले करता था। उस जमीन के वितरण से पहले यदि वह कोई फसल लेता है तो अपना खर्च निकालकर जो मुनाफा उसे उस खेत में से हुआ हो, उसे वह भूमिदान-समिति को दे सकता है। दानपत्र भरने के बाद दाता को विशेष कुछ करने को नहीं रहता। हाँ उससे यह अपेक्षा जरूर रखी जाती है, कि वह भूदान का साहित्य पढ़े और नये दान पाने में मदद भी करे। भूमि-वितरण की क्रिया का वर्णन इसी अध्याय में आगे दिया जायगा।

संपत्तिदान पैसे का दान नहीं है। उसमें दाता अपनी कमाई का एक निश्चित हिस्सा हर साल नियमित रूप से देने का संकल्प करता है। यह रकम भी वह भूदान-समिति को या विनोबा को दे नहीं देता। वह उसे अपने ही पास अलग रखता है और विनोबा की सूचना के अनुसार उसका उपयोग करता है। संपत्ति-दान की रकम का उपयोग फिलहाल तीन मदों में होता है:

(१) भूमिहीनों को बसाने के लिए जरूरी साधन आदि खरीदने में।

(२) त्यागी सेवकों के निर्वाह के लिए।

(३) सत्साहित्य-प्रचार में मदद के रूप में।

संपत्तिदान-यज्ञ में अपरिग्रह और अर्थ-शुचित्व का संकेत है। इस विषय में अधिक जानकारी श्री जाजूजी की "संपत्ति-दान-यज्ञ" नामक पुस्तिका में मिल सकती है। संपत्ति-दान-पत्र का नमूना परिशिष्ट (३) में दिया है।

जो लोग भूमि और संपत्ति नहीं दे सकते वे **श्रमदान** दे सकते हैं। भूमिहीनों को पड़ती जमीनें मिलती हैं, तब उन्हें तोड़कर

खेती के लायक बनाने के लिए श्रम की जरूरत होती है। कुएँ, तालाब आदि खोदने में भी श्रम की जरूरत होती है। आज तक कई भूमिहीनों ने, विद्यार्थियों तथा मध्यवित्त लोगों ने श्रमदान यज्ञ में प्रत्यक्ष हिस्सा लिया है। श्रमदान-यज्ञ में श्रम की, श्रमिक की प्रतिष्ठा का संकेत है। इसके बारे में अधिक जानकारी श्री शिवाजी भावे की "श्रम-दान" पुस्तिका से मिलेगी।

जिन भूमिहीनों को नयी जमीन दी जाती है उन्हें कार्य आरंभ करने के लिए हल, बैल और खेती के अन्य सारे साधन चाहिए। इसमें मदद करने के लिए **साधनदान** दिये जाते हैं। आम तौर पर ये साधनदान भी दानपत्र के रूप में ही लिये जाते हैं। वितरण के समय दाता से कहा जाता है कि आप अपने हल का दान इस भूमिहीन को दीजिये—आदि। कुछ भूमिदान समितियाँ साधनदान के लिए नकद रकमें भी स्वीकार करती हैं। लेकिन यह नियम नहीं, अपवाद है।

जिन भूमिहीनों को जमीन दी जाती है उनकी जमीन में कुएँ खुदवा देना भी भूदान-यज्ञ के नवनिर्माण का एक अंग है। कुओं के लिए लोगों से खास दान लिया जाता है, जिसे **कूपदान** कहा जाता है। वास्तव में यह दान साधनदान का ही एक अंग है। कुएँ के लिए दान तीन प्रकार से लिया जाता है—सीमेण्ट, लोहा आदि साधन के रूप में, अलंकारों के रूप में (जो बाद में बेचकर उस नकद रकम का उपयोग कुएं खुदवाने में होता है), और पैसे में।

कूपदान के लिए **अलंकार-दान** का उल्लेख अभी किया गया। इस यज्ञ में बहनें विशेष हिस्सा ले सकती हैं और लेती भी हैं। इस

आन्दोलन में स्वर्गीय जमनालाल जी बजाज की धर्मपत्नी जानकी-देवी बजाज बहुत दिलचस्पी ले रही हैं। विनोबा तो अपनी लाक्षणिकता से कहते ही हैं कि "गहनों ने बहनों को दबा दिया है। मैं उन्हें अलंकार-दान के द्वारा भयमुक्त करना चाहता हूँ।"

इतने विवरण से ही पाठकों को पता चला होगा कि भूमि-प्राप्ति से भी कहीं अधिक कठिन काम भूमि-वितरण का है तथा उससे भी अधिक धैर्य तथा सावधानी का काम नवनिर्माण का है। पाँच करोड़ एकड़ जमीन प्राप्त करना छोटा काम नहीं है। उसे भूमिहीनों में न्याय-पुरस्सर बाँटना भी कठिन काम है। और देश भर में जमीन के लिए साधन प्राप्त करने में सिंचाई का प्रबन्ध करना, जहाँ नये गाँव बसाने हों वहाँ ग्राम-रचना करना, ग्रामोद्योग नयी तालीम, ग्राम-आरोग्य, न्याय-व्यवस्था आदि का प्रबन्ध करना तो भगीरथ काम है। देश के सामने नवनिर्माण का यह एक अद्वितीय काम है। वह कठिन है, इसीलिए उत्साहवर्धक भी है।

यहीं पर **बुद्धिदान** और जीवनदान का महत्व समझ में आता है। बुद्धिदान के सिलसिले में विनोबा ने एक-दो जगह वकीलों से भूमिहीन लोगों के लिये मुफ्त में वकालत करने के लिए कहा था। बुद्धिदान का यह भी एक प्रकार है। यहाँ बुद्धिदान समाप्त नहीं हो जाता, न विनोबा वैसा कहते ही हैं। वास्तव में नव-निर्माण के महान् कार्य में देश के हरएक बुद्धिमान आदमी की बुद्धि लगने के लिए अवकाश है एवं वही व्यापक बुद्धिदान है। देहाती इन्जीनियर की जरूरत है, शिक्षक की जरूरत है, वैद्य की जरूरत है, कानून जाननेवाले की जरूरत है। इन सब लोगों की

बुद्धि का दान भी बुद्धिदान में आ जाता है। बुद्धिदान में बुद्धि-जीवी और श्रमजीवी के भेद-निराकरण का संकेत है।

इस महान् कार्य के लिए अपना पूरा जीवन लगाने को कहते हैं **जीवनदान** । इसकी विशेष जानकारी के लिए पाठक श्री जयप्रकाश नारायण की "जीवनदान" नाम की पुस्तिका अवश्य पढ़ें।

भूमि-वितरण

किसी प्रदेश में जब भूमिदान-यज्ञ में काफी मात्रा में जमीन मिल जाती है, तब उसके बँटवारे का काम हाथ में लिया जाता है। आम तौर पर जिस प्रदेश में एक ही स्थान पर ज्यादा जमीनें मिली हों, वहाँ बँटवारा पहले किया जाता है। आज तक भूदान-आन्दोलन में प्राप्ति की ओर अधिक ध्यान दिया गया था। अब बँटवारे की ओर भी उतना ही ध्यान दिया जायगा। जिस गाँव में जमीन बाँटनी होती है वहाँ पर वितरण से एक सप्ताह पहले वितरण की सूचना दी जाती है। वितरण से पहले प्राप्त जमीनें भी देख ली जाती हैं। वितरण के काम में भूदान समिति-सदस्य का काम मुख्यतः सारी विधि में साक्षी रहने का ही होता है। निर्णय लेने का सारा काम ग्रामजनों पर ही छोड़ा जाता है। पहले यह तय किया जाता है कि एक परिवार के लिए उस गाँव की कम से कम कितनी जमीन देना आवश्यक समझा जाय। उसके बाद भूमि-वितरण के नियमों के अनुसार (जो आगे दिये गये हैं) भूमिहीन लोग छाँटे जाते हैं। जमीन जहाँ कम हो और भूमिहीन अधिक हों वहाँ जमीन किसे दी जाय, इसका निर्णय भूमिहीन

लोग करते हैं। कभी निर्णय न किया जा सकता हो, तो चिट्ठी डालकर तय किया जाता है। भूमि-वितरण के समय सेवकों को अनेक पावनकारी प्रसंगों के अनुभव होते हैं। जमीन कम हो और भूमिहीन अधिक हों तो उनको देखकर लोग नयी जमीनें दान में देते हैं। भूमिहीन लोग स्वयंप्रेरणा से दूसरे भूमिहीन के लिए अपनी माँग वापस ले लेते हैं। प्रेम की मानों होड़-सी चलती है।

जो जमीनें दी जाती हैं उसे नया किसान बेच नहीं सकता, उसे रेहन नहीं रख सकता, उस पर किसी प्रकार का ऋण नहीं कर सकता और न उसे पड़ती रहने दे सकता है।

भूमि-वितरण के नियम नीचे लिखे अनुसार हैं :

(१) जिस गाँव में जमीन वितरण करना हो उस गाँव के लिए निश्चित तारीख मुकर्रर कर उस तारीख की सूचना एक सप्ताह पूर्व ही उस गाँव के लोगों को डुग्गी के जरिये और छपे परचे के जरिये कर देनी चाहिए। घर-घर इसकी खबर पहुँचे, ऐसा प्रबन्ध अवश्य हो।

(२) वितरण-दिवस के एक दिन पहले भी उस गाँव में सूचना कर देनी चाहिए। वितरण के कार्यक्रम की सूचना जिलाधीश तथा संबंधित अधिकारियों को भी दे दी जाय, ताकि उनके कर्मचारी वितरण के समय उपस्थित रह सकें।

(३) वितरण करनेवाले जमीन की पूरी जानकारी गाँव-सभा के सभापति तथा पटवारी के जरिये पहले ही प्राप्त कर लें। उस जमीन की स्थिति, किस्म और हैसियत भी मौके पर जाकर देख लें।

(४) भूमिहीन कौन-कौन लोग हैं, इसका पता सारे गाँव की सार्वजनिक सभा बुलाकर किया जाय।

(५) भूमि-वितरण भी गाँववालों की सार्वजनिक सभा में हो, तहसीलदार भी उपस्थित रहे। तहसीलदार की जगह जिलाधीश किसी और अधिकारी को मुकर्रर कर सकते हैं। उनके अलावा पटवारी और कानूनगो का रहना उपयोगी है।

(६) भूमि-वितरण, जहाँ तक हो, सर्वसम्मति से किया जाय। मतभेद की सूरत में किन बेजमीनों को जमीन मिले, इसका फैसला भी भूमिहीन लोग ही सर्वसम्मति से करें। अगर भूमिहीनों का एकमत न हो और हमारे प्रतिनिधि को अन्तिम निर्णय देना ही पड़े, तो वहाँ गोटी या पटका डालकर वह निर्णय करे।

(७) वितरण के काम में गाँव के सज्जनों और महाजनों का सहयोग लिया जाय, ताकि भविष्य में नयी जमीन प्राप्त करने तथा बेजमीनों को अन्य सुविधाएँ दिलाने में उनका पूरा सहयोग हो सके।

(८) जहाँ तक हो सके प्राप्त जमीन का एक-तिहाई हिस्सा हरिजनों में तक्सीम किया जाय।

(९) जमीन, जहाँ तक हो सके, उसी गाँव के भूमिहीनों को देनी है। अगर दान में बड़े-बड़े चक मिले हों और गाँव के भूमि-हीनों को देकर भी भूमि बचती हो तो आसपास के गाँवों के भूमिहीनों को वह दी जा सकती है। बड़े-बड़े चकों में बाहर के लोगों को बसाया जा सकता है।

(१०) नये लोगों को लाकर बसाना हो या बड़ी बस्ती

बसानी हो, तो समिति उसके लिए विशेष नियम बनाये। इसमें श्री पुरुषोत्तमदास टंडन की योजना, जो संक्षेप में यह है कि हर घर के इर्दगिर्द कुछ ऐसी जमीन रहे, जिसमें साग-सब्जी, फल-फूल पैदा कर सकें, घर के मल-मूत्र के लिए गढ़े आदि बना सकें, विशेष रूप से कार्यान्वित की जाय।

(११) साधारणतया खेती के लिए जमीन ऐसे भूमिहीन को दी जाय जिसके पास कोई दूसरा धंधा न हो, जो जमीन की काश्त स्वयं कर सकता हो और खेती करना चाहता हो। नये गाँव बसाने को जो भूमि दी जायगी, उसमें इस बात का ध्यान विशेष रूप से रखा जाय कि गाँव सुन्दर और स्वावलम्बी बने। ऐसी हालत में आवश्यकतानुसार नियमों में परिवर्तन किया जा सकेगा।

(१२) पाँच मनुष्य के परिवार के लिए अक्सर एक एकड़ तरी या ढाई से पाँच एकड़ तक खुश्क जमीन दी जाय। लेकिन जमीन की किस्म देखकर, विशेष परिस्थिति में, पाँच एकड़ से ज्यादा भी जमीन दी जा सकती है।

(१३) दान में मिले हुए छोटे टुकड़ों को अदल-बदलकर यथा संभव एक चक बनाने का प्रयत्न किया जाय। छोटे टुकड़े होने के कारण जहाँ भूमिहीनों को देना सम्भव न हो, या जहाँ भूमिहीन हों ही नहीं, वहाँ प्रथम अत्यन्त अल्प जमीनवालों को ये टुकड़े दिये जा सकते हैं। यदि यह भी संभव न हो, तो उन टुकड़ों का उपयोग ग्रामोपयोगी सार्वजनिक कार्य (जैसे कम्पोस्ट के गढ़े, शौचालय आदि) में किया जा सकता है।

(१४) जिन्हें जमीन दी गयी है, वे दस साल तक उसे बेच नहीं सकेंगे।

(१५) जमीन में अगर देते समय से ही काश्त हो सकती हो, तो जमीन लेनेवाले को नियमानुसार उसी समय से सरकारी लगान देना होगा।

(१६) अगर दान में मिली जमीन की जोत न हो सके और साधारणतया दो साल तक जमीन बिना काश्त की रह जाये, तो सरकार को अधिकार होगा कि वह इस जमीन को दूसरे बेजमीन किसान को नियमों के अनुसार बाँट दे।

(१७) जहाँ जमीन तकसीम की जायगी, वहाँ के शेष बेजमीनों के लिए और नयी जमीन उस वक्त और आगे भी हासिल करने का प्रयत्न किया जाय।

(१८) जो जमीन पहले न जोती गयी हो, जैसे नव-आबाद जमीन, पड़ती या ऊसर जमीन, उसको आबाद करने के लिए तीन साल तक का समय होगा।

भूदान-कानून

भूमि-वितरण के काम में सुविधा देने की दृष्टि से कई राज्यों में भूमिदान-यज्ञ कानून भी बने हैं। इन कानूनों में विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार थोड़ा-बहुत अन्तर है। लेकिन आम तौर से इन कानूनों के जरिये नये भूमिहीनों को नियंत्रित मालिकी हक की मान्यता दी जाती है। जमीन के हस्तान्तर में लगनेवाले सरकारी टिकट आदि के खर्च माफ किये जाते हैं। इसकी व्यवस्था करने के लिए भूदान-कानून में किसी बोर्ड की व्यवस्था होती है, जिसके सदस्य विनोबा नामजद करते हैं। आज तक हैदराबाद, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, विंध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा

और सौराष्ट्र में भूदान-कानून बन चुके हैं। अन्य राज्य ऐसे कानून बनाने की तैयारी कर रहे हैं।

देश में भूदान आन्दोलन

क्रांति अपने साथ ही कार्यकर्ताओं को खींच लाती है। जमाने की माँग जब पूरी होने लगती है, तब उसकी प्रतिध्वनि कोने-कोने में सुनाई देने लगती है। जिस विनोबा को आज से चार साल पहले इने-गिने लोग ही जानते थे, उसके साथ पदयात्रा करने के लिए आज देश-विदेशों से लोग आते हैं। हमारे देश के दुर्भाग्य से अभी उतने लोग इसमें कूद नहीं पड़े हैं, जितने कूदने चाहिए थे, लेकिन फिर भी प्रायः सारे राजनीतिक पक्षों ने प्रस्तावों के द्वारा भूदान-आन्दोलन का समर्थन किया है। जो लोग इस आन्दोलन में आये हैं उन्होंने तो जी-जान से इसे सफल बनाने की कोशिश की है। देश का कोई भी सूबा ऐसा नहीं है जहाँ भूदान-यज्ञ की हलचल न हो। आइये, देश के भूदान-आन्दोलन का सरसरी निगाह से अवलोकन कर लें।

भूदान-यज्ञ का तंत्र सँभालने की जिम्मेवारी अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ ने उठा ली है। उसके मार्गदर्शन में देश भर की प्रान्तीय भूदान-समितियाँ काम कर रही हैं, जिनकी नियुक्ति विनोबा ने स्थानीय कार्यकर्ताओं की सलाह से की है। इन भूदान-समितियों में से अधिकांश का खर्च सर्व-सेवा-संघ को गांधी स्मारक निधि से मिलता है। विनोबा के अतिरिक्त जिन लोगों ने अखिल भारतीय क्षेत्र में भूदान-यज्ञ का काम किया है उनमें से कुछ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री शंकरराव देव ने सर्व-

सेवा-संघ के मंत्री पद के दो वर्ष (१९५२ से '५४) तो अपनी पूरी ताकत भूमिदान-यज्ञ में लगा दी। देश के अधिकांश प्रान्तों का उन्होंने दौरा किया। अक्सर वे प्रान्त का दौरा पैदल ही करते थे। इनके प्रवास से कई प्रान्तों को, विशेषकर दक्षिण भारत के लोगों को, गांधी-विचार की नयी प्रेरणा मिली। श्री जयप्रकाश नारायण भूदान-आन्दोलन में कुछ देर से आये, लेकिन वे जहाँ गये उन्होंने नयी क्रान्ति का शंख फूंक दिया। राजनीति को छोड़कर सर्वोदय के काम के लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पण किया। यह घटना तो देश के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान लेगी।

देश के कोने-कोने में फैले हुए कार्यकर्ताओं को सर्वोदय-विचार की सैद्धान्तिक भूमिका समझाने का काम दादा धर्माधिकारी के दौरों ने किया। और विमला ताई ठकार की यात्राओं ने देश के कई प्रान्तों में और प्रमुख शहरों में नयी जान-सी ला दी। श्री श्रीकृष्णदास जाजू के दौरों ने यह सिद्ध किया कि भूदान-यज्ञ में बूढ़ों को भी जवान करने की कैसी संजीवनी-शक्ति है।

लेकिन इस पुस्तिका की मर्यादा में रहकर हम यहाँ उन सब प्रमुख व्यक्तियों के नाम का उल्लेख भी नहीं कर सकते, जो अपनी पूरी शक्ति इस काम में लगा रहे हैं। इन सबने अपने-अपने क्षेत्रों में भूदान यज्ञ का रंग लगा दिया है और साथ ही साथ भूदान के काम के जरिये अपनी शक्ति भी बढ़ा ली है।

यह बताने की जरूरत नहीं कि इस काम में सर्व-सेवा-संघ के अध्यक्ष श्री धीरेन्द्र मजूमदार तथा मंत्री श्री अण्णा सहस्रबुद्धे तथा वल्लभ स्वामी कार्यकर्ताओं के लिए अखंड प्रेरणा के स्थान रहे हैं।

भूदान आन्दोलन की जड़ें कम-अधिक परिमाण में हर प्रान्त

में जम चुकी हैं। एक भी प्रान्त ऐसा नहीं है, सिवा कश्मीर के, जिसने कुछ-न-कुछ भूमिदान या संपत्ति-दान न किया हो।

विनोबा ने सर्वप्रथम तेलंगाना में भूमि यज्ञ शुरू किया था। हैदराबाद की सीमा के पास मंचरियाल में पहला सम्मेलन हुआ एवं एक लाख एकड़ का संकल्प सबने मिलकर किया। आज वह संकल्प तो पूरा कर ही लिया गया है, और उसके बाद भी वहाँ के प्रमुख नेता और कार्यकर्ता भी इसमें तेजी से काम कर रहे हैं। हैदराबाद के तीन भाग हैं—मराठवाडा,कर्णाटक, तेलंगाना। तीनों में आज काम चल रहा है और साथ ही वितरण भी हो रहा है। तेलंगाना के पोचमपल्ली गाँव में जिनको जमीनें बाँटी गयीं; उनकी हालत अब बहुत अच्छी है। उन्हें साधन भी मुहैया करा दिये गये हैं। यहाँ श्री केशवराव, श्री स्वामी रामानन्द तीर्थ आदि इस काम में खूब जुट गये हैं।

विनोबा बाद में मध्य प्रदेश, राजस्थान, मध्य भारत और विंध्य प्रदेश में घूमते हुए देहली पहुँचे। इन सभी प्रान्तों में आज भूदान का काम चल रहा है। देहली राज्य में संपत्तिदान का काम जोर पकड़ रहा है। राजस्थान ने तो भूमि प्राप्ति का अपना कोटा भी पूरा कर लिया है। मध्य प्रदेश में तरुण संघटकों का दल अच्छी तरह काम कर रहा है। इन प्रान्तों में भूमिदान के साथ-साथ वितरण का कार्य भी तेजी से चल रहा है और कहीं-कहीं निर्माण का भी। सर्व श्री दादाभाई नाइक, गोकुल भाई भट्ट, सिद्धराज जी ढड्ढा, खोड़ेजी, चतुर्भुज पाठक आदि अनुभवी कार्यकर्ता इन प्रान्तों में जुटे हुए हैं।

दिल्ली के बाद विनोबा उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में

घूमे। हिमाचल प्रदेश में एक पूरी जागीर विनोबाजी को श्री धर्मदेवजी शास्त्री के प्रयत्नों से मिली और उत्तर प्रदेश में एक पूरा का पूरा गाँव ही श्री दीवान शत्रुघ्न सिंह जी के प्रयत्नों से मिला। उत्तर प्रदेश ने अपना पाँच लाख का कोटा पूरा किया और अब वह वितरण में लगा है। उत्तर प्रदेश के हर जिले में विनोबा घूमे, जगह-जगह भूदान संदेश सुनाया और लाखों एकड़ जमीन प्राप्त की। उत्तर प्रदेश के राजनीतिक नेताओं ने भी पूरा योग दिया। यहाँ की प्रसिद्ध रचनात्मक संस्था, गांधी आश्रम ने पूरे प्रान्त में जगह-जगह व्यवस्था में, प्राप्ति में मदद की और अपने कार्यकर्ता इसमें दिये। समाजवादी पक्ष ने भी मदद की। बाबा राघवदास और अक्षयकुमारजी करण जैसों की तपश्चर्या इस प्रान्त में चमक रही है। इस प्रान्त में साहित्यिकों ने भी काफी योग दिया। विनोबा के यहाँ से चलते समय प्रांत के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री पंतजी ने कहा था, "इस प्रांत की आबोहवा ही आपने बदल दी है।"

उत्तर प्रदेश से चलकर विनोबा बिहार में एकाग्र प्रयोग के लिए पहुँचे। बिहार ने विनोबा का हार्दिक स्वागत किया और रचनात्मक कार्यकर्ता इसमें जुट गये। बिहार में आज करीब २२ लाख एकड़ जमीन मिली है, सैकड़ों का संपत्तिदान मिला है, हजार के करीब जीवनदानी मिले हैं, कुछ गाँव पूरे-के-पूरे मिले हैं और अब वितरण भी हो रहा है। बिहार की भूमि-समस्या हल करने की चाभी लक्ष्मी बाबू जैसे सर्व संग परित्यागी के हाथों में देकर विनोबा ने बंगाल में प्रवेश किया।

बंगाल में वैसे भूमि प्राप्ति तो कम हुई, पर विचार बीज

अच्छी तरह बोया गया। वहाँ के निष्ठावान् सेवक लगन के साथ काम में लगे और किसी प्रकार से निरुत्साही न होकर सरकारी सहानुभूति के अभाव में भी उन्होंने अच्छी तरह काम शुरू किया है। चारु बाबू जैसों ने ३-३ हजार मील की यात्रा करके विचार-बीज बोया है। अब विनोबा उत्कल में घूम रहे हैं। उत्कल में नेता और कार्यकर्ता सबके सब जुट गये हैं। यहाँ भूमि-क्रान्ति का अलख विनोबा ने जगाया है। एक तीन सौ के करीब कार्यकर्ता पूरा समय देकर काम कर रहे हैं करीब तीन सौ गाँव तो मिल चुके हैं और दिन-पर-दिन मिलते ही जा रहे हैं। इसके पीछे कोरापुट के मूकसेवक श्री विश्वनाथ पटनायक की तपस्या है। भूमिदान के इतिहास में उत्कल क्रान्ति करके रहेगा, ऐसे आसार नजर आ रहे हैं। विनोबा ने कहा ही है कि यह वही वीर प्रदेश है, जिसने चंड-अशोक को धर्म-अशोक बना दिया था। प्रांत के तपे हुए नेता श्री गोप बाबू, श्री रमादेवी, श्री आचार्य हरिहरदास, श्री मालती देवी चौधरी अदि जी-जान से इस काम में मदद कर रहे हैं। शेष प्रांतों में से त्रावणकोरकोचीन प्रांत और गुजरात प्रांत गहरे काम की दृष्टि से काफी आगे बढ़ चुके हैं। दोनों जगह तरुण कार्यकर्ताओं का जो संघ है, वह अपने ढंग का अनोखा संघ है और पूरे जोर से प्रांतों में क्रान्ति का अलख जगा रहा है। श्री टामस चेरियन और राजम्मा बहन उधर त्रावणकोर-कोचीन में हैं। गुजरात का नाम तो रविशंकर महाराज जैसा उजागर कर रहे हैं,उसका सानी किसी प्रांत में नहीं है। प्रेममूर्ति महाराज इस वृद्धावस्था में जो कुछ पैदल घूम-घूम कर काम कर रहे हैं, उसके फल गुजरातवासियों को मिले बिना रह नहीं सकते।

पंजाब में भी भूदान का काम लाला अचिंतराम काफी लगन से कर रहे हैं। और बहन सत्यवाला भी देश की उन तरुणियों में से हैं जिनका कार्य विशेष उल्लेखनीय है। उनकी अपनी पदयात्राओं द्वारा विचार-बीज बोये जा रहे हैं। काम भले ही कम हुआ हो, क्रांति का अलख जगाने में पंजाब पीछे नहीं रह सकता, इसका हमें यकीन है।

महाराष्ट्र के बारे में इतना ही कहना काफी होगा कि जहाँ अप्पा साहब पटवर्धन जैसे अनन्य सेवक पड़े हैं, जहाँ शंकररावजी की तपस्या परिपक्व हुई है, जहाँ साने गुरुजी की भावना वातावरण में भरी हुई है, ऐसे प्रांत में विचार-प्रसार के द्वारा भूमि-क्रांति गहराई से जड़ पकड़ रही है। यह सही है कि भूमि-प्राप्ति अभी यहाँ कम हुई है। परंतु महाराष्ट्र के अनन्य सेवकों ने पीछे न रहने का संकल्प कर लिया है। असम और आंध्र-प्रांत में वैसे बहुत काम नहीं हुआ है। परंतु निष्ठावान् कार्यकर्ता अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार काम किये जा रहे हैं। कर्नाटक प्रांत में तरुण कार्यकर्ता बड़े उत्साह से काम कर रहे हैं। पद-यात्राएँ निकाल रहे हैं और वितरण भी साथ-साथ कर रहे हैं। मैसूर, कर्नाटक का ही एक भाग है, वहाँ भी अच्छा काम हो रहा है।

तमिलनाड के उत्साही जनसेवक श्री जगन्नाथन् ने एकाकी हालत में वहाँ काम शुरू किया और अब प्रांत के दो ज्येष्ठ नेता, श्री राजाजी के आशीर्वादपूर्ण प्रोत्साहन से एवं श्री कामराज नादर के सक्रिय सहयोग से तेजी से काम बढ़ाते जा रहे हैं। जिस निष्ठा और लगन से इस प्रांत में काम हो रहा है, कई प्रांतों के लिए वह एक मिसाल बन सकती है।

सौराष्ट्र यों तो गुजरात ही का अंग माना जायगा, लेकिन राजनैतिक दृष्टि से उसे अलग प्रांत माना है। बापू की पावन भूमि सौराष्ट्र और कच्छ ने अपना पहला लक्ष्यांक पूरा कर लिया है। आज तक भिन्न-भिन्न प्रांतों में मिली हुई जमीन के आँकड़े परिशिष्ट में दिये गये हैं।

यह स्वाभाविक है कि जहाँ-जहाँ विनोबा की पदयात्रा हुई है, वहाँ जमीन अधिक मिली, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि जहाँ विनोबा नहीं गये, वहाँ काम नहीं हुआ है। उत्कल, केरल, गुजरात आदि प्रांतों के काम से यह साफ दीखता है कि वहाँ जमीनें भले ही अपेक्षाकृत कम मिली हों, किन्तु विचार की नींव गहरी पैठ गई है।

: ८ :

सबको निमंत्रण

भारतमाता की आज बुलाहट है, हम सबको अपने ३६ कोटि भाई-बहनों की सेवा के लिए। भूदान-यज्ञ एक ऐसा आन्दोलन है जिसमें हर कोई अपना हाथ बंटा सकता है। यह एक ऐसी क्रान्ति है जिसमें अमीरी-गरीबी खतम करने के लिए अमीरों का सहयोग और गरीबों का पुरुषार्थ चाहिए। यह एक ऐसा आन्दोलन है जिसमें कूद पड़ने की प्रेरणा जो कोई भी विचारक है और जो कोई भी भावनावान है, उसे होनी चाहिए। भूदान-यज्ञ का आज हम सबको निमंत्रण है, इसमें जुट जाने का।

भूमिवानों से

देश के कई प्रदेशों में आज ऐसी परिस्थिति आ गयी है कि यह आन्दोलन अब भूमिवानों का आन्दोलन बन जाना चाहिए। याने, भूमिवान लोग स्वयं अपना हिस्सा तो दें ही और इसके अलावा दूसरों से दिलाने में भी वे मदद करें। भूमिवानों को यह समझ लेना चाहिए कि यह आन्दोलन उनके हित की चिन्ता करता है। जमाने की माँग को तो हममें से बहुतेरे समझ गये हैं, लेकिन फिर भी अक्सर हमसे जमीन दी नहीं जाती। हमें एक चीज समझ लेनी चाहिए कि इस आन्दोलन से मालिकी तो खतम

होती है, लेकिन इज्जत से बढ़कर बड़ी कौन सी चीज है जिसकी हम दुनिया में कदर कर सकते हैं? क्या हमारे कोटि-कोटि भूखे-नंगे भाइयों की आवाज हमारे कानों तक नहीं पहुँचेगी? एक बार जरा विश्वासपूर्वक देखिये तो सही कि त्याग में क्या लुत्फ है। शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र जैसों का खून आपकी रगों में बह रहा है। वह आपको इस आन्दोलन में कूदे बिना चैन नहीं लेने देगा। आप आइये बिहार, उत्तर प्रदेश तथा अन्य कई प्रदेशों के भूमिवानों की तरह भूदान की सेना में भरती हो जाइये। विनोबा तो कई दफा कहते हैं कि मैं उदार सज्जनों की सेना खड़ी कर रहा हूँ। मेरे यज्ञ के कारण दो तरह के लोग अलग-अलग दीख पड़ेंगे। एक उदार और दूसरे कंजूस। आप क्या सज्जनों की सेना में भरती होना नहीं चाहेंगे?

आप इस आन्दोलन में कई प्रकार से मदद कर सकते हैं:

(अ) अपनी जमीन का योग्य हिस्सा दान दें।

(आ) अपने मित्र, रिश्तेदार या संबंधी से जमीन दिलवाइये।

(इ) खुद यात्रा करें या अन्य भूदान-सेवकों की यात्रा में शामिल हों।

(ई) रोज एक आदमी को इतना समझा दीजिये कि आपने अपनी जमीन भूदान-यज्ञ में क्यों दी।

(उ) भूमि-वितरण के समय आपकी जमीन जिसे दी जाय उसे साधन-दान दें या दिलायें।

(ऊ) जिसे जमीन दी गयी हो उसे कृषि के बारे में योग्य

सलाह देते रहें। उसकी खेती न बिगड़े, यह आपका जिम्मा होना चाहिए।

जमीनवालों को संजीवन देने के आरोप का उत्तर देते हुए विनोबा ने एक बार कहा था कि मैं जमीनवालों को संजीवन दे रहा हूँ, न कि उनकी जमीन की मालकियत का। वास्तव में विधायक क्रांति का यही लक्ष्य होता है। रोग तो नेस्तनाबूद हो जाय पर रोगी बच जाय। विनोबा ने जमीनवालों से बार-बार कहा है कि अगर उन्हें इज्जत-पूर्वक जीवन जीना है तो वे इस आन्दोलन को अपना लें। कत्ल की क्रांति और कानून की क्रांति, दोनों में जमीनवालों की जमीनें छीनी जायँ या न छीनी जायँ, जमीन-वालों की तो बेइज्जती ही होती और फिर या तो वे प्रतिक्रियावादी बनकर बदला लेने का मौका ढूँढ़ते हैं या खतम हो जाते हैं। जनतंत्र में जमीनवालों की बात आखिर अधिक चलनेवाली नहीं है, परन्तु भूमिदान-यज्ञ उनसे जमीनें लेकर भी उन्हें बाइज्जत रखना चाहता है। उनके हृदय को, उनके मस्तिष्क को परिवर्तित करके वह भूदान लेता है, जिसमें उसकी निजी मालकियत तो छूटती है पर निजी इज्जत बढ़ती है, प्रतिष्ठा कायम रहती है। विधायक क्रांति का यह परिणाम अन्य किसी मार्ग से सम्भव नहीं है। इसलिए इस आन्दोलन को अब भूमिवान लोग पूरी तरह उठा लें तो उसमें देश का और उनका दोनों का लाभ है। आने-वाला जमाना निजी मालकियत के ही खिलाफ रहेगा। क्रांति की छाया जगत् पर तेजी से पड़ती जा रही है। ऐसी हालत में निजी स्वामित्व छोड़ने का कौन सा मार्ग श्रेयस्कर है, यह देखना जरूरी है और भूदान-यज्ञ भू-स्वामियों को इसके लिए आवाहन करता है

कि वे इसे परखें और इसमें कूद पड़ें। अपनी शक्ति, अकल और अपनी जमीन वे इसमें अर्पित कर दें और फिर नेतृत्व भी लें। व्यक्ति को हल्का या जलील बनाकर नहीं, उसे इज्जतदार बनाकर, उसे नेतृत्व देकर जो क्रांति उससे प्रेम से जमीन लेना चाहती है, वह कानून के बनिस्बत हर हालत में श्रेष्ठ क्रांति है। इसलिए युग-प्रवाह को पहचानकर छोटे-बड़े सब जमीनवाले, निजी मालकियत स्वेच्छा से छुड़ानेवाले इस आन्दोलन का नेतृत्व लें, ऐसी उनसे विनोबा की हार्दिक अपील है।

श्रमिकों से

इस क्रांति में आपको भी बड़ा हिस्सा लेना है। केवल निष्क्रिय प्रेक्षक बनकर बैठे नहीं रहना है। विनोबा जब जमीन माँगते हैं तब भूमिवानों से कहते हैं कि मैं भूमिहीनों के हक की माँग कर रहा हूँ। हमें अपने सात्विक आचरण से अपना यह हक व्यक्त करना होगा, तथा इसके लिए लायक बनना पड़ेगा। श्रमिकों के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम है:—

(अ) अपने बाजुओं के जोर से दूसरों को मदद दें अर्थात् श्रमदान करें। भूमिहीनों को जो भूमि दी जाय उसे तोड़ने या खेती के लिए तैयार करने में मदद करें। उनके लिए कुएँ खोदने में मदद करें।

(आ) अपना जीवन शुद्ध करने के लिये व्यसन त्याग की प्रतिज्ञा लें।

(इ) भूमिदान-साहित्य पढ़ें और अपने अनपढ़ भाई-बहनों को नियमित रूप से पढ़ सुनावें।

(ई) गाँव-गाँव भूमिहीनों के घर-घर में यह संवाद पहुँचा दें कि अब भूमि उसीकी होकर रहेगी जो उसे जोतेगा।

(उ) अपने गाँव के भूमिवानों के पास जाकर नम्रतापूर्वक प्रेम से पूछें कि आपने भूदान-यज्ञ में कितनी जमीन दी है। उन्हें यह भी कहें कि हमें विश्वास है कि भगवान् आपको जमीन देने की प्रेरणा देगा।

(ऊ) भूदान के गाने सीख लें। मौका पाने पर उन्हें गावें। अपने नृत्य आदि कार्यक्रमों में भी भूदान-गीत शामिल कर सकते हैं।

(ए) भूदान की जन्मतिथि (१८ अप्रैल), भूमि-जयन्ती (११ सितम्बर) आदि नये उत्सव मनावें।

(ऐ) गाँव के भूमिवानों की निन्दा न करने का निश्चय करें। मजदूरी के काम में तनिक भी आलस्य न करें।

(ओ) आपमें से किसीको यदि बेदखल किया जाता हो, तो वह अपनी जमीन पर डटा रहे।

(औ) जहाँ भूमि-वितरण हो वहाँ अपने में से योग्य से योग्य भूमिहीनों को स्वयम् एकमत से चुनें। 'पहले उसे, बाद में हमें' का सूत्र न भूलें।

विद्यार्थियों से

दुनिया भर में शायद ही कोई देश ऐसा होगा जिसमें शान्ति के आन्दोलनों में युवकों का बड़ा हिस्सा न रहा हो। हमारे देश के स्वातंत्र्य संग्राम में भी विद्यार्थियों ने उत्साह से भाग लिया है। किशोरों ने हँसते-हँसते गोलियाँ झेली हैं, लाठियाँ खायी हैं, सजाएँ

भुगती हैं। लेकिन क्रान्ति के अब तक के सारे आन्दोलनों में और इस आन्दोलन में एक अन्तर है। अब तक के सारे आन्दोलन मारने या मरने के आन्दोलन थे। यह आन्दोलन जीने और जिलाने का है। इसलिए इसमें जो छात्र हिस्सा लेना चाहेंगे, उन्हें केवल लड़ाई और प्रतिकार के कार्यक्रम नहीं मिलेंगे, उन्हें गहराई में जाना होगा। आज तक हजारों विद्यार्थियों ने इस आन्दोलन में जो हिस्सा लिया है, वह सभी भूदान-सेवकों को प्रेरणा देने वाला किस्सा बन सकता है। बिहार का वह दस साल का लड़का निकल पड़ा भूमि माँगने। पहले उसने अपने पिताजी के पास जाकर ज़िद्द पकड़ी कि आप छठा हिस्सा दीजिये, तब दूसरों से माँगूँगा। ऐसे पुत्र के पिता भला ऐसी माँग कैसे ठुकरा सकते थे? वह बच्चा कुछ ही दिनों में सैकड़ों एकड़ ज़मीन के दान-पत्र ले आया था। नन्हीं-सी संघमित्रा ने न सिर्फ अपने, लेकिन अपनी माँ और नानी के भी सोने के अलंकार इस यज्ञ में दिलवा दिये और इससे आगे खुद सोने के गहने न पहनने का संकल्प किया। उसे लिखना-पढ़ना नहीं आता था, लेकिन भूदान-साहित्य बेचते-बेचते उसने पैसे का हिसाब करना सीख लिया। गुजरात का वह किशोर हर सप्ताह एक भूमिवान के पास अदब से जाता था। पहले सप्ताह उसने सिर्फ गाली सुनी। दूसरे सप्ताह वह अपनी पत्रिका पढ़ने के लिए छोड़ आया। तीसरे सप्ताह उसने एक आने की पुस्तिका बेची। होते-होते उस भूमिवान ने २५ बीघे जमीन दी। इस आन्दोलन से बहुतेरे छात्रों के जीवन पर भी असर पड़ा। जब नन्हें-नन्हें वानरों में समुद्र लाँघने की ताकत आयी थी तब क्रांति हुई थी, जब नन्हें-नन्हें गोपों ने पर्वत उठाया तब क्रांति हुई

थी, जब वानर-सेना ने नमक पकाया था तब क्रांति हुई थी। जब नन्हें बालक ऐसे काम करने लगते हैं कि जो आम तौर पर बड़े भी नहीं कर सकते तब क्रान्ति होती है। आज छोटे-छोटे विद्यार्थी भी विचार-प्रवर्तन का काम कर रहे हैं, इसलिए आज क्रांति हो कर ही रहेगी।

विद्यार्थियों के लिए कार्यक्रम नीचे लिखा है :

(अ) स्वयं भूमिदान-साहित्य का अध्ययन करें।

(आ) भूदान-साहित्य बेचें तथा भूदान-समर्थकों को ग्राहक बनायें।

(इ) अपने जीवन में श्रमनिष्ठा लाने का ध्यान रखें। कपड़े धोना, बरतन साफ करना आदि बहुतेरे काम अपने हाथों से करने का आग्रह रखें।

(ई) बड़े विद्यार्थी १९५७ तक कालेज छोड़ कर इसी काम में पूर्ण रूप से जुट जायँ।

(उ) अन्य लोग छुट्टियों में भूदान-यात्रा में शामिल हों, जहाँ वे भूदान-गीत गाना, भूमिहीनों की फेहरिस्त बनाना आदि काम कर सकते हैं।

(ऊ) भूमिदान-कला-पथक बना कर गाँव-गाँव में प्रचार करें।

(ए) सर्वोदय-विचार-मंडलों की स्थापना कर सर्वोदय-विचार का अध्ययन करें।

(ऐ) भूदान से संबंध रखने वाले अन्य कार्यक्रमों में योग दें। जैसे—स्वच्छ भारत-आन्दोलन, खादी-ग्रामोद्योग आन्दोलन आदि।

बहनों से

हमारे देश के संविधान ने हमारी बहनों को भी नागरिकता के अधिकार दिये हैं। अब वे केवल पुरुषों की अर्धाङ्गना या वीर पुत्रों की माताएँ नहीं रहीं। वे स्वयम् भी यदि चाहें तो देश के निर्माण में उतना ही हिस्सा ले सकती हैं, जितना पुरुष लेते हैं। बापू ने भारतीय नारी को जागृत कर दिया है। विनोबा ने अब उसके लिए पराक्रम का क्षेत्र खोल दिया है। जो बहनें आज तक इस दुनिया में शामिल हुई हैं उनके काम को जब हम देखते हैं, तब दंग रह जाते हैं। हृदय परिवर्तन के प्रसंगों की उन्होंने मानों गंगा-सी बहाई है। समाज-जीवन में स्त्री का हिस्सा बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसलिए हम मानते हैं कि यह क्रान्ति तभी सफल होगी जब बहनें इसमें बड़ी संख्या में जुट जायेंगी।

बहनों के लिए कार्यक्रम निम्न प्रकार है :

(अ) अपनी जमीन दें, या अपने कुटुम्बियों या संबंधियों से दिलावें।

(आ) अलंकार दान दें।

(इ) भूदान यात्राएँ करें। विशेषतः घर-घर जा कर स्त्रियों को भूमिदान का विचार समझाने की कोशिश करें।

(ई) अपने घर में पुरुषों से कह दें कि हमारे लिए संग्रह मत बढ़ाइये, हमें कम खर्च का और श्रमनिष्ठ जीवन जीना है।

(उ) भूमिहीन-परिवारों में जा कर उनकी स्त्रियों से मिलें तथा स्नेह बढ़ावें।

(ऊ) भूदान-साहित्य का प्रचार करें। ऐसा पाया गया है कि इसमें वे अक्सर पुरुषों से अधिक सफल हो सकती हैं।

पक्षों और संस्थाओं से

भारत के राजनीतिक पक्ष के जो प्रमुख लोग हैं, उनमें कांग्रेस और समाजवादी पक्ष ऐसे हैं, जिन्हें बापू की कुछ-न-कुछ महान् परम्पराएँ विरासत में मिली हैं। उन पक्षों के लोगों ने बापू के नेतृत्व में कंधे से कंधा लगा कर आजादी के संग्राम में भाग भी लिया है। ऐसी महान् परम्पराओं के बीच पले इन राजनीतिक पक्षों से सहायता पाने का पूरा हक भूदान-आन्दोलन को है। क्योंकि इस आन्दोलन के नेता और कार्यकर्ता भी बापू की रहनुमाई में उसी ध्येय-पथ पर चल रहे हैं। वे भी अभी-अभी तक इन राजनीतिक पक्षों के नेताओं के साथ एक ही क्षेत्र में काम करते थे। ऐसे एक परिवार-भावना से जुड़े हुए बन्धुजन भूदान-यज्ञ के निमित्त फिर आज एक मंच पर आ रहे हैं। बीच का सत्ता-प्राप्ति के बाद का एक समय ऐसा गुजरा, जब हम सब लोग, विशेषतः ये दोनों पक्ष, एक-दूसरे से इतने विछुड़ गये थे और बीच में इतनी गहरी खाई पड़ चुकी थी कि कभी ये लोग साथ थे भी—ऐसा नहीं महसूस होता था। आज यह खाई पूरी तो नहीं पट सकी है, लेकिन स्वराज्य के बाद पहली बार भूदान के मंच पर सब एकत्र होने लगे। हर प्रदेश में अब ऐसे पावन दृश्य दिखायी देते हैं। लक्ष्य की समानता ने अब उन्हें और भी नजदीक ला दिया है। इन पक्षों ने जो क्रांतिकारी ध्येय समाजवादी रचना का प्रस्तुत किया है, उस ध्येय की ओर जनशक्ति द्वारा पहुँचने का अमली रास्ता भी भूदान-यज्ञ बता रहा है। इसलिए परस्पर मिलने, विचार-विनिमय करने और एक दूसरे के सहयोग की भूमिका तैयार होने लगी है।

बन्धुत्व और ध्येय-सिद्धि का सहपथ प्रस्तुत कर के भूदान-यज्ञ इन राजनीतिक पक्षों से प्रत्यक्ष सहयोग का हार्दिक आवाहन कर रहा है। कांग्रेस के महान् नेताओं ने इसमें हार्दिक सहानुभूति बतलायी है, सहयोग भी किया है। प्रजा-समाजवादी पक्ष के प्रमुख नेता तो इस काम को अपना ही काम मानते हैं।

अब इन पक्षों के अधिकाधिक सहयोग की आवश्यकता भूदान-यज्ञ-आन्दोलन महसूस कर रहा है। सन् '५७ का समय निकट आ रहा है। सारी शक्ति इसमें लगाने से इन पक्षों के आर्थिक क्रांति के ध्येय की पूर्ति भी हो सकती है। राजसत्ता द्वारा जो भी करना हो, उसमें किसी का प्रतिबन्ध नहीं है, परन्तु लोकशाही द्वारा जो करना है, उसके लिए यही एक ऐसा कार्यक्रम है जो स्वराज की लड़ाई के दिनों के समान कंधे से कंधा लगा कर कर सकते हैं। ऐसा करते-करते जो समान ध्येय वाले पक्ष हैं, वे अधिक निकट आवेंगे और पक्षातीत राजतंत्र की बुनियाद मजबूती से डाली जायगी।

आज हमारे देश की आन्तरिक स्थिति इतनी क्षोभजनक है कि यदि हम सब लोग कंधे से कंधा लगाकर देश-हित का कार्य नहीं करते हैं, तो भविष्य अंधकारमय दिखायी देता है। सब पक्ष इस दिशा में मार्ग खोज रहे हैं। परन्तु ध्येयमंत्र के साथ-साथ यदि हम शान्तिमय कार्यक्रम भी जनता को न दें, तो परिस्थिति में अधिक उलझनें पड़ सकती हैं। सत्ता द्वारा जो कार्यक्रम चल रहे हैं, वे जनशक्ति को विधायक क्रान्तिकारी रूप देने वाले नहीं हैं। भूदान-यज्ञ ने शुरू से यह दावा किया है और इसी आधार पर सबके सहयोग की माँग भी की है। विनोबा

ने इसीलिए काँग्रेस-अध्यक्ष से सत्याग्रही भाषा में मार्मिक अपील की है। हम आशा करते हैं कि य दोनों महान् पक्ष इस अपील का साथ देंगे।

उत्तर प्रदेश में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भी भूदान में मदद की है। भूदान-आन्दोलन भारत की संस्कृति के पुनरुत्थान का आन्दोलन है। इससे भारतीय संस्कृति की अस्मिता अधिकाधिक चमकेगी। इस हालत में भारतीय संस्कृति की उद्घोषक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसी संस्था को भी इसमें भाग लेने का आवाहन यह आन्दोलन कर सकता है।

कम्युनिस्ट पार्टी गरीबों के लिए काम करने का दावा करती है। गरीबी यदि बिना किसीको कत्ल किये मिट सकती है तो क्या उसे कम्युनिस्ट भाई नहीं चाहेंगे? भूदान-आन्दोलन अहिंसक ढंग से गरीबी मिटाने का दावा करता है। इसलिए गरीबों का हित चाहनेवाले कम्युनिस्ट भाइयों को भी यह आन्दोलन आवाहन करता है।

पक्षों तथा संस्थाओं के लिये कार्यक्रम निम्नलिखित हैं:

अ. अपने हरएक सदस्य से षष्ठांश भूमि का संपत्ति की मांग करें।

आ. हरएक सदस्य के लिए कुछ न कुछ समय भूमि दान में देना अनिवार्य करें।

इ. इर्द गिर्द जो भूमिदान सेवक हों उन्हें पूरी सहायता देने की सूचना अपने सदस्यों को दें।

ई. साल में कम-से-कम अमुक समय भूदान के काम में लगाने का तय करें।

उ. अपने कार्य-प्रदेश में भूमि प्राप्ति और वितरण की पूरी जिम्मेदारी उठा लें।

ऊ. निश्चित लक्ष्यांक तय कर उसे पूरा करने तक अपनी अधिकांश प्रवृत्तियाँ स्थगित कर दें।

ऋ. सन् '५७ तक अपनी संस्था को काम में लगा दें।

इन सारे राजनीतिक और सामाजिक पक्षों वाली संस्थाओं से सहयोग की अपील करते हुए भूदान-आन्दोलन यह माँग करता है कि वे इस आन्दोलन में कूदें, मदद करें। देश के हित में साथ दें, परन्तु पक्ष-दृष्टि रखकर नहीं। पक्ष-भावना से दूर रहकर ही वे इसमें भाग लें। क्योंकि गरीबों के हित के कार्य में, क्रान्ति के काम में जैसे जाति, वर्ण, धर्म नहीं देखा जाता वैसे ही पक्ष भी नहीं देखे जाते। गाँव में आग लगने पर जब सब लोग उसे बुझाने दौड़ते हैं,तो यह नहीं देखते कि हम अमुक पक्ष के बनकर आग बुझा रहे हैं। भूदान-यज्ञ देश में जो विधायक क्रान्ति लाना चाहता है, उसकी यही शर्त है कि सब बन्धुत्व में बँधकर इसमें भाग लें। भूदान-आन्दोलन सत्ताकांक्षी आन्दोलन नहीं है, अतः यह शर्त किसी पक्ष के लिए बाधक नहीं हो सकती। इसकी एक ही हार्दिक अपील है कि गरीबों के हित के काम में सब लोग पक्षभेद भूलकर पूर्ण सहयोग दें और जबतक लक्ष्य पूरा न हो, सहायता देते रहें। यह काम अब विनोबा का नहीं, सारे देश का है।

कार्यकर्ताओं से

किसी आन्दोलन को जीवित रखकर चलाने की शक्ति कार्यकर्ताओं में ही होती है। भूमि लेनेवाले और देनेवाले दोनों

तैयार हैं। पर कार्यकर्ता माँगने और बाँटने को तैयार नहीं, तो क्रान्ति फेल हो जायगी। कार्यकर्ता आन्दोलन की रीढ़ होता है। भूदान-आन्दोलन जब तक भूमि-प्राप्ति का आन्दोलन था, तब तक तो गनीमत थी, परन्तु जब वितरण और निर्माण का कार्य सिर पर आया है तब कार्यकर्ताओं की आवश्यकता भी तीव्र रूप से महसूस होने लगी है। जब तक प्राप्ति का काम था, कार्यकर्ताओं से एक वर्ष की माँग की गयी थी, फिर परंधाम आश्रम की संस्था को इस यज्ञ में अर्पित कर विनोबा ने रचनात्मक कार्य-कर्ताओं से ज्यादा वक्त की माँग की। कुछ ही दिनों बाद इस माँग को सर्व-सेवा संघ ने अपने ऊपर उठा लिया और सबका आवाहन किया। अन्त में बोधगया-सम्मेलन के अवसर पर श्री जयप्रकाश नारायण ने जीवनदान की प्रेरणा देकर पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ताओं का आवाहन किया। श्री जयप्रकाश नारायण की माँग पर श्रीयुत रविशंकर महाराज जैसे साधु-पुरुषों ने अपना जीवन-दान किया।

विनोबा ने तेलंगाना में कहा था—वामनावतार के तीन चरण हैं, जिसमें से एक भूदान-यज्ञ का है। दूसरा चरण सम्पत्ति-दान के रूप में शुरू हुआ और तीसरा चरण यह जीवनदान आरम्भ हुआ है। तीसरे चरण के रूप में "मैं सब को गरीबों की सेवा में लगानेवाला हूँ" ऐसी उनकी माँग थी जो जीवनदान के रूप में प्रकट हुई। बिहार में इस्लामपुर की सभा में विनोबा ने कहा: 'भूदान-यज्ञ-आन्दोलन अब उस दशा पर पहुँच गया है जो अभिमन्यु की हुई थी। इस चक्रव्यूह को या तो तोड़ना है या खत्म हो जाना है।' निःसन्देह अब तो कार्यकर्ताओं को इस

आन्दोलन में साल, छह मास के लिए नहीं आना है। साल-दो साल की अपील तो राजनीतिक पक्षों या विद्यार्थियों से है। इस काम में जीवन अर्पित कर देने की अपील तो वे कार्यकर्ताओं से ही कर रहे हैं, जो कि इसके आधार हैं। इसलिए वे अब इसे 'आन्दोलन' नहीं, 'आरोहण' कहते हैं।

जीवनदान नाम रहे या न रहे, इस काम में पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ताओं की जरूरत अब आ पड़ी है, यह स्पष्ट है। इसके लिए उन्होंने वानप्रस्थाश्रम की प्राचीन संस्था को भी पुनरुज्जीवित करने का सतत प्रयत्न किया और कर रहे हैं। यदि यह काम केवल भूमि-प्राप्ति और भूमि-वितरण का ही होता तो कोई बड़ी बात न थी, परन्तु सर्वोदय-समाज की रचनानुसार जगह-जगह जो रामराज के नमूने खड़े करने हैं, उनके लिए ही ऐसे कार्यकर्ताओं की जरूरत है, जो इसमें अपने को खपा दें।

इसलिए वे रचनात्मक कार्यकर्ताओं से, गांधी-सेवकों से विशेष अपेक्षा रखते हैं, क्योंकि गांधीजी की तालीम में तपे हुए महान् सेवक यदि इस काम को उठा लेते हैं तो आन्दोलन ऐसा प्राणवान् हो उठता है, जो गांधीजी के समय की याद दिला देगा। गांधीजी के मार्ग पर चलकर ही भूदान-यज्ञ अपने कदम आगे बढ़ा रहा है। ऐसी हालत में स्वभावतः रचनात्मक कार्यकर्ताओं से अपेक्षा की जाती है। सत्ता-जाल से दूर रहकर जो सैकड़ों गांधी-सेवक रचनात्मक काम में वर्षों से लगे हैं उनको अब यह आन्दोलन गांधीजी के नाम पर आवाहन कर रहा है। क्योंकि गांधीजी के सिद्धान्त आज युग की समस्या की कसौटी पर चढ़े

हुए हैं। अब राजनीतिक क्रान्ति के बाद आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति यदि हम गांधीजी के ही रास्ते पर चल कर जनशक्ति के द्वारा नहीं लाते हैं तो अहिंसा की विधायक शक्ति का आविष्कार हो नहीं सकता।

युग की आकांक्षा के साथ जब विधायक पुरुषार्थ जुटता है तब क्रान्ति होती है। इस क्रान्ति में युग की आकांक्षा साफ दीखती है। बाकी रहा, विधायक पुरुषार्थ। इसमें तीन कड़ियाँ चाहिए: योग्य नेतृत्व, कार्यकर्ता का सहयोग और जनता का साथ। भूदान-आरोहण में हमारे पास विनोबा का योग्य नेतृत्व है। लाखों किसानों ने अपने हृदय के टुकड़े जैसी जमीनें देकर यह भी सिद्ध कर दिया है कि इस क्रान्ति में जनता का साथ है। क्रान्ति की एक ही कड़ी बाकी है—कार्यकर्ता का सहयोग।

क्रान्ति की बाकी रही कड़ी को जोड़ने के लिए आप आइए! फसल तैयार है, काटने वाले की कमी है। आइए, भूदान-यज्ञ की फसल काटने के लिए हम अपनी पूरी शक्ति लगा दें।...

परिशिष्ट—१

भूदान प्राप्ति, वितरण, जीवनदानी तथा संपत्तिदान के
अखिल भारतीय आँकड़े
(अप्रैल, '५५ तक)

प्रदेश	एकड़ प्राप्त	दानपत्र संख्या	एकड़ वितरित	परिवार संख्या	जीवनदानी संख्या	सम्पत्तिदान दाता	सम्पत्तिदान रक़म
बिहार	२३२९३१६	२८८८८४	१५६८५	९३७७	१०६९	३२४	२४८३४॥-)
बंगाल	९४१९	४४४६	१०४७	८४८	२४	३५९	२४१६३॥)
पंजाब व पेप्सू	१२५१०	२९१०	३२५	६६	१२	२७७	७३६६४॥-)४
हैदराबाद	१०६८९८	४०१०	३२०१९	६८६२	१३	५	४२६६॥)
मैसूर	६३८७	२५५१	—	—	८	—	—
विन्ध्य प्रदेश	६१९८	१२०९	६५०	२५५	२९	७	३५०)
उत्तर प्रदेश	५३९४३४	१७९१७	९०४३९	२७८७०	१०२	५२	२७९८२।=)॥।
राजस्थान	३४५८१६	५७८१४	७७६२	१५११	४६	१८५	१६१३८।-)॥
उत्कल	१२८४६४	४०५८	९४५	१०५	११२	४	२१६३॥।)
मध्य प्रदेश	८५६६६	१७२६७	२७७२०	४००५	६१	३६५	१७९२४॥।)७

मध्य भारत	५१९८७	५०१४	३११	—	३२	५३	३०१२।।।=)।।।
सौराष्ट्र	४१०००	१५०००	१५००	—	६	—	—
गुजरात	३७५७८	८४२६	३२३५	१०११	१९	२७	७६८२)
तमिलनाड	३२४६७	५८६५	५३०	१६१	३७	११	३९७१)
आन्ध्र	२१४११	६६२	१६	३८	८	३	४१३)
केरल	२८११३	१२००	—	—	२४	१	१२०)
महाराष्ट्र	२८०००	४५००	१००१	—	१५	१०	४००५)
दिल्ली	९२४५	२४९	९०	२५	८	१९	१८२६५।।=)
कर्नाटक	२८०३	५३८	—	—	८	—	—
हिमाचल प्रदेश	२०२५	६६	—	—	३	—	—
असम	१९५०	—	—	—	६	—	—
बम्बई	१२३	६	—	—	४	८६	३७५९१≡)
मलाया (विदेश)	—	—	—	—	—	१	६००)
	३८२६८१०	४४२७२२	१९३२७५	५२१३४	१६४६	१७८९	२६७१४९।≡)

पावन प्रसंग

•

मृदुला मूंदड़ा

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

अनुक्रम

पावन-प्रसंग

: १ :

गंगोत्तरी

रामनवमी के दिन तेलंगाना की यात्रा प्रारम्भ हुई। तारीख थी, १३ अप्रैल। ता० १८ को पोचमपल्ली में पड़ाव था। नलगुंडा जिले का पहला स्थान। कम्युनिस्ट-आन्दोलन का अड्डा। हत्याएँ, लूट आदि से गाँव अछूता नहीं रहा था।

ग्रामवासियों ने विनोबाजी का बड़ा भाव-भरा स्वागत किया। चंदन-तिलक, पुष्प-मालाएँ, पुरुषसूक्त, श्रीफल-समर्पण आदि सब विधिवत् हुआ।

विनोबाजी ग्राम-प्रदक्षिणा के लिए निकले। शुरू में हरिजन-बस्ती में ही गये। मकानों के भीतर घुसे। नवजात शिशु को गोद ले लिया। मरीजों की हालत देखी। खाने-पीने का सामान देखा। सारी बस्ती साथ हो गयी थी।

जब लौटने लगे तो लोगों ने प्रार्थना की :

"आपने मकानों की हालत तो देखी। परिवार बहुत ज्यादा हैं। जगह बहुत कम है। मकानों के लिए थोड़ी और जगह पड़ोस में मिलनी चाहिए।"

पास में ही जमीन तो थी, मिलने की संभावना भी थी। विनोबा कुछ सोचने लगे और आगे बढ़े।

लोग आशा में पीछे-पीछे हो लिये।

विनोबाजी के साथ डेरे तक चले आये। डेरे पर और ग्रामवासी भी जुटे थे। विनोबाजी ने अपने आसन पर बैठते हुए हरिजन भाइयों से पूछा :

"क्यों, और कुछ कहना है ?"

"जी !"

"कहो ?"

"हम लोगों के पास सिंवा मजदूरी के कोई धंधा नहीं है। मजदूरी का मिलना मालिक की मर्जी पर रहता है। जिस दिन काम नहीं मिलता उस दिन फाका करना पड़ता है। हमें खेती के लिए भी अगर कुछ जमीन मिल सके तो ठीक होगा। इज्जत की रोटी कमा सकेंगे।"

"कितने परिवार हैं ?"

"तीस !"

"जमीन कितनी चाहिए ?"

लोग आपस में विचार करने लगे।

मुखिया ने कहा, "अस्सी एकड़ काफी होगी। फिर कुछ मजदूरी भी कर लेंगे।"

एक भाई ने बताया, "यहाँ सरकारी जमीन तो काफी है।"

"अच्छा, आप लोग एक दरख्वास्त तो लिख दीजिये। सरकार के पास भेजकर देखेंगे।"

शायद सोचने लगे, अरजी पर विचार कब होगा—इन लोगों को जमीन कब मिलेगी और तब तक इन लोगों का क्या होगा ?

सहसा उन्होंने पूछा, "क्या यहाँ कोई भूमिवान भाई नहीं है ?" और जवाब की राह देखे बिना आगे कहना जारी रखा, "आखिर ये लोग भी हमारे भाई ही हैं। आपमें से कोई इनकी माँग पूरी कर सकते हैं ?"

सभा में क्षण भर पूर्ण शान्ति छा गयी।

फिर एक भाई ने उठकर नम्रतापूर्वक निवेदन किया, "विनोबाजी, अपने पिताजी की स्मृति में मैं सौ एकड़ अर्पित करना चाहता हूँ। स्वीकार कीजिये।"

श्री रामचन्द्र रेड्डी ने सौ एकड़ के दान का संकल्प-पत्र विनोबाजी के नाम लिख दिया।

दो गवाहों ने गवाही भी कर दी।

पाँच आदमियों की एक कमेटी उस जमीन की व्यवस्था के लिए नियुक्त हो गयी।

इस प्रकार भूदान की गंगोत्तरी प्रकट हुई।

: २ :

भीम-जरासंध, राम-लक्ष्मण बन गये

तंगपल्ली गाँव तो छोटा-सा है, पर वहाँ झगड़ा मोटा था। मूल झगड़ा था दो भाइयों के बीच। इन दोनों का झगड़ा सारे गाँव में फैल गया और गाँव में दो दल बन गये। एक पक्षवाले दूसरे पक्षवालों का मुँह देखना भी पसन्द नहीं करते थे। कितनों को तो गाँव ही छोड़ जाना पड़ा। दो में से एक भाई यहीं रहते थे, पर दूसरे भाई गाँव छोड़कर चले गये थे। आज विनोबाजी के कारण ही आये, क्योंकि उन्हींके घर हमारा डेरा रखना तय हुआ था।

विनोबा ने गाँववालों से पूछा, "तुम्हारे गाँव की क्या कठिनाई है?"

गाँववालों ने कहा, "यह झगड़ा ही हमें खा रहा है। यह मिटे तो हम सुखी हों।"

विनोबा ने दोनों भाइयों को प्रेम से समझाया। दोनों अपनी भल समझ गये। वर्षों के बाद दोनों ने शाम को सहयात्रियों की पंक्ति में बैठकर एक साथ भोजन किया और प्रार्थना-सभा में दोनों भाई गले मिले। दोनों की आँखों में हर्ष और पश्चात्ताप के आँसू थे। भीम-जरासंध की तरह रहनेवाले दोनों भाई उस दिन से राम-लक्ष्मण बन गये।

दोनों ने पर्याप्त भूदान भी दिया।

: ३ :

छठा बेटा

भूदान की गंगा धीमे-धीमे आगे बढ़ती जा रही थी। एक छोटे देहात में बाबा किसान भाइयों से तेलुगु में ही चर्चा कर रहे थे। एक भाई से पूछा, "आपके पास कितनी जमीन है ?"

जवाब मिला, "केवल नौ बीघा।"

बाबा ने पूछा, "यज्ञ में आपने आहुति अर्पण की है या नहीं ?"

उसने हँसकर कहा, "महाराज, मेरे पाँच बेटे हैं, हर एक के हिस्से में मुश्किल से दो बीघा जमीन आती है। आपको क्या दूँ ?"

बाबा ने कहा, "भगवान् की कृपा है कि आपके पाँच बेटे हैं। अगर परमेश्वर की कृपा से छठा बेटा और पैदा हो जाय, तो क्या आप उससे कहेंगे, 'बेटा, तू देर से आया, अब तेरे लिए जमीन नहीं है, जमीन पहले ही बँट चुकी है, तू अब जा'।"

प्रश्न हृदय को छू गया। हाथ जोड़कर कहा, "नहीं महाराज, उसे तो देना ही होगा।"

तब बाबा ने कहा, "समझ लो, मैं ही तुम्हारा छठा बेटा पैदा हो गया हूँ। मुझे मेरा हिस्सा दो।"

उस किसान ने थोड़ी देर बाबा का चेहरा निहारा और उसमें उसने अपना बेटा पाया या साक्षात् परमेश्वर के दर्शन किये, पता नहीं; पर छठा हिस्सा लिख दिया।

: ४ :

मेरा दान-पत्र भी भर देना था

नलगुंडा जिले का अंतिम पड़ाव सूर्यपेठ। कार्य-कर्ताओं की सभा थी। जिले के काफी कार्यकर्ता आ पहुँचे थे।

भूदान की गंगा का प्रारम्भ ही था। अपना अनुभव बताते हुए विनोबाजी ने कहा, "मैं देखता हूँ कि जब तक कार्यकर्ता अपना हिस्सा नहीं देगा, वह जमीन माँग नहीं सकेगा।"

कार्यकर्ता सोचने लगे। जमीन तो बहुतों के पास थी। परन्तु कौन पहले उठे!

श्री कोदंडराम रेड्डी यात्रा के प्रारम्भ से हमारे सहयात्री थे। नलगुंडा जिले के ही रहनेवाले दो भाई, दोनों संयुक्त परिवार में एकत्र रहते थे। दोनों की मिलकर चार सौ बीघा जमीन थी। दूसरे भाई भी आज आनेवाले थे, परन्तु पहुँच नहीं पाये थे। वे ही बड़े थे।

कोदंड रेड्डी उठे।

"हम दो भाई हैं। मेरे हिस्से में दो सौ एकड़ जमीन आती है। पूज्य विनोबाजी को भूदान-यज्ञ में आधा हिस्सा—सौ एकड़ अर्पण करता हूँ।"

तालियों की वर्षा हुई।

एक-एक करके कार्यकर्ता उठने लगे। दान-पत्र भरे जाने लगे।

शाम को कोदंड रेड्डी के बड़े भाई भी आ पहुँचे। विनोबा के दरबार में शिकायत पेश हुई: "हम दोनों अब तक एक साथ रहे। कभी किसी बात में भेद नहीं किया। आज कोदंड रेड्डी ने भेद किया। भूदान-यज्ञ में केवल अपने ही हिस्से की जमीन दी। यदि पूरी जमीन में से आधी देता तो क्या मैं मना करता?" और यह कहते-कहते उनका कंठ भर आया। अपने हिस्से की सौ एकड़ भूमि का एक और दान-पत्र उन्होंने भर दिया।

श्री कोदंड रेड्डी, जो शुरू से बाबा के साथ हुए, अब तक बराबर साथ दे रहे हैं। उनकी पत्नी का स्वास्थ्य अत्यधिक खराब रहता है, परन्तु उन्हें भूदान की चिन्ता लगी है। हजारों एकड़ जमीन का उन्होंने बँटवारा किया और नयी जमीन भी बहुत प्राप्त की। हैदराबाद के कांग्रेसी मित्रों ने बहुत आग्रह किया फिर भी वे चुनाव में खड़े नहीं हुए।

: ५ :

एक बीघे की सीख

सूर्यपेठ की ही बात है। शाम की सभा खूब जमी थी। बहनें भी काफी संख्या में ग्रायी थीं। दोपहर में महिलाग्रों की ग्रलग सभा भी हुई थी। उसमें भूदान का विचार सरल भाषा में समझाया गया। एक बहन घर छोड़कर ग्रधिक समय नहीं रह सकती थी। बाबा का भाषण सुनने की उसकी इच्छा तो तीव्र थी, परन्तु घर पर छोटे बच्चे थे। वह बहन सभा पूरी होने के बाद घर चली गयी थी। सबेरे बाबा जब रवाना हो रहे थे, तो वह दौड़ी-दौड़ी ग्रायी ग्रौर बोली, "बाबाजी, मेरे पास केवल दो बीघा जमीन है। एक बीघा भू-दान में देने ग्रायी हूँ।" ग्रौर साथ में उसने एक गाय भी ग्रर्पण की।

बाबा कई बार इसका जिक्र करते हैं ग्रौर कहते हैं, "एक बहन दौड़कर ग्राती है। दो बीघे में से एक बीघा जमीन देकर चली जाती है। क्या ग्राप समझते हैं कि ग्रब बड़े लोग चुप रहेंगे? छोटों का त्याग उनसे भी दिलवायेगा ही।"

: ६ :

सुरगाँव की शुभकामना

प्रधान मंत्री के निमन्त्रण पर विनोबा ने दिल्ली जाना तय किया। जाने से एक दिन पूर्व वे सुरगाँव के लोगों से मिलने गये।

"मैं दिल्ली जा रहा हूँ। रास्ते में जमीन माँगता हुआ जाऊँगा। आप लोगों के बीच में इतने रोज रहा। लोग मुझसे पूछेंगे, सुरगाँव से कितनी जमीन मिली? क्या जवाब दूँगा? मेरी माँग छठे हिस्से की है।"

सुरगाँव की सारी जमीन बहुत उपजाऊ है। लोगों ने उस पर बड़ा परिश्रम किया है। केले तथा अन्य फलों के कितने ही बगीचे हैं। विनोबा की माँग पर ग्रामवासियों ने अपने गाँव का हिस्सा साठ एकड़ देकर बिदा किया। शुभास्ते पंथानः सन्तु!

: ७ :

मैं अधूरा प्रेम नहीं कर सकता

दिल्ली की यात्रा किसी महान् भावी क्रांति की सूचक थी। इसलिए वर्धा से चलते समय एक से एक पावन संकेत होते गये।

श्री दत्तोबा दास्ताने विनोबाजी के निकट के आश्रम-वासी हैं। कितने ही दिनों तक उन्होंने उनके सचिव का भी काम बहुत योग्यतापूर्वक सँभाला है। बड़ा परिवार है—पत्नी है, तीन बालक हैं और पिताजी बापू के पुराने सहकारी हैं। उनकी अपनी अठारह एकड़ भूमि थी। उसकी पैदावार से गृहस्थी को काफी सहारा मिल जाता था। विनोबाजी दिल्ली के लिए बिदा होने लगे तो दत्तोबाजी ने अपनी अठारह एकड़ भूमि का दान-पत्र विनोबा के चरणों पर धर दिया।

आश्रमवासियों में से एक बुजुर्ग अभिभावक ने कहा, "ये अपनी सारी-की-सारी जमीन दे रहे हैं। आप कुछ जमीन स्वीकार कर लें। शेष इनके लिए छोड़ना ठीक रहेगा।"

विनोबाजी ने तत्क्षण और सहज भाव से उत्तर दिया—"दत्तोबा छोटे से बड़े मेरे ही पास हुए हैं। मैं उन पर अधूरा प्रेम नहीं कर सकता।" और उस पूरी जमीन का दानपत्र उन्होंने स्वीकार कर लिया।

: ८ :

पठान की प्रतिज्ञा

नागपुर जाते हुए बीच में रास्ते से दूर गुमगाँव पड़ता है। मोहम्मद पठान गुमगाँव के पुराने कांग्रेसी कार्यकर्ता हैं। जेल में विनोबाजी के पास कुरानशरीफ भी पढ़ते थे। जब

सुना कि विनोबा की दिल्ली-यात्रा में गुमगाँव का नाम नहीं है तो पवनार आये और यात्रा में गुमगाँव को जोड़ने का आग्रह करने लगे ।

"दरिद्रनारायण की फीस दिलानी होगी, पठान साहब !" विनोबा ने विनोद किया ।

"सारे गाँव की तरफ से कुछ कहना मेरी ताकत के बाहर है । पर अगर गाँववालों ने अपना हिस्सा नहीं दिया तो मैं अपनी पूरी जमीन अर्पण कर दूँगा ।"

गुमगाँव की सभा में उस दिन पठान साहब ने ललकारा, "मैं तो विनोबा से वचन-बद्ध हूँ । दरिद्रनारायण की झोली में आप लोग अपना भभाग दें, न दें, मैं तो अपनी जमीन अर्पण करने का वादा कर चुका हूँ । मुझे आशा है कि सत्याग्रह आन्दोलन में जो गुमगाँव अग्रणी रहा, वह भूदान में भी नहीं पिछड़ेगा ।"

और, एक-डेढ़ घंटे तक भूदान की वर्षा होती रही । सैकड़ों ने दिया । वह सारा दृश्य बड़ा ही हृदयस्पर्शी था ।

: ६ :

बच्चों को आलसी नहीं बनाना चाहता

सागर जिले का आखिरी पड़ाव । रास्ते में एक गाँव में ग्रामवासियों ने रोका । सभा हुई । विनोबा ने भूदान का

विचार समझाया। कुछ दान-पत्र पहले से जमा थे। वे अर्पित किये गये।

एक वृद्ध सज्जन उठे, "अपनी छह एकड़ भूमि सारी-की-सारी अर्पण करना चाहता हूँ। स्वीकार हो।"

विनोबा ने कुछ जानकारी हासिल करना उचित समझा।

"फिर आप क्या करेंगे?"

"मैं राज हूँ। मजदूरी करके पेट भरता हूँ। उसीमें से बचाकर जमीन खरीदी थी।"

"लड़के-बच्चे होंगे न?"

"जी, तीन हैं।"

"उनके लिए कुछ नहीं रखियेगा।"

"मुझे उन्हें आलसी नहीं बनाना है। मैं सब सोच-समझकर दे रहा हूँ। स्वीकार किया जाय।"

इस स्वयं-स्फूर्त दान को और उसके दाता को लोग निहारते ही रह गये।

: १० :

बाबाजी ने भी

जिस दिन से विनोबाजी ने उत्तर प्रदेश में प्रवेश किया, बाबा राघवदासजी भी भूदान-आन्दोलन में तद्रूप हो गये हैं। मानो उनकी उसमें सहज समाधि लग गयी है।

उस समय वे उत्तर प्रदेश की विधान-सभा के सदस्य भी थे। लोगों के पास जमीन माँगने जाते तो झोली भर-भरकर ले आते। कोई बाबाजी से यह नहीं पूछता था कि आपने कितनी दी; क्योंकि सभी जानते थे कि बाबाजी के पास सिवा विभूति के और क्या हो सकता है!

परंतु बाबाजी को अखरने लगा। विधान-सभा से कुछ रकम मिलती थी। उसीमें से कुछ रुपया बचाकर उन्होंने जमीन खरीद ली और भूदान-यज्ञ में अपना हविर्भाग भी अर्पित किया।

उनके इस उदाहरण ने औरों को भी प्रेरणा दी। भूदान-आन्दोलन के बाबाजी प्रमुख स्तंभ हैं। पुरी-सम्मेलन के बाद भूमि-क्रान्ति को सफल बनाने के लिए वे १९५७ तक अखंड पद-यात्रा के संकल्प से निकल पड़े हैं।

: ११ :

चिरगाँव का सत्संग

आज चिरगाँव में डेरा था। दो मील दूर तक श्रद्धेय दद्दा* सैकड़ों पुरवासियों को साथ लिये बाबा को लिवा लेने आये थे। समूह में सुश्री महादेवी वर्मा तथा कविवर 'दिनकर' भी थे।

रास्ते भर कीर्तन-भजन का अद्भुत आनन्द रहा।

---

* श्री मथिलीशरणजी गुप्त

द्वार पर जलकलश, तिलक, आरती, श्रीफल आदि सभी विधिवत् हुआ। भूमि का षष्ठांश भी समर्पित किया गया। विनोबाजी ने ऊपर अपने कमरे में पहुँचते ही श्री सियारामशरणजी को भी अपने पास बुला लिया और फिर उनका हिंदी गीता-अनुवाद लेकर बैठ गये।

स्थितप्रज्ञ के श्लोक एक-एक करके बारीकी से देखने लगे। एक घंटे तक उन अठारह श्लोकों पर विचार-विनिमय हुआ।

सायंकाल प्रार्थना में नित्य की भाँति संस्कृत के ही श्लोक पढ़े गये। प्रार्थना समाप्त हुई।

विनोबा अब प्रवचन शुरू करेंगे, इस आशा से लोग ध्यानपूर्वक उनकी ओर निहारने लगे। किंतु प्रवचन शुरू करने से पहले विनोबा ने गीतानुवाद में से स्थितप्रज्ञ के उन अठारह श्लोकों का पाठ सुनाया और दूसरे रोज की प्रार्थना में भी वे हिंदी श्लोक ही गाये गये। तब से भारत भर में जहाँ हिंदी जाननेवाले होते हैं, अक्सर वे ही श्लोक गाये जाते हैं।

सभा शुरू होने के पहले दद्दा ने भूदान-यज्ञ के पुरोहित के स्वागत में लिखी गयी अपनी विशेष रचना भी पढ़ सुनायी, लेकिन इतने से दद्दा को संतोष कहाँ ?

भूदान-विषयक गीतों का एक नूतन संग्रह ही उन्होंने प्रकाशित करवा दिया और उसकी सारी आय भी उन्होंने संपत्तिदान में अर्पित कर दी।

: १२ :

गाँव की लाज

चिरगाँव से ६ मील !

गाँव का नाम था बड़ागाँव । पर यथार्थ में वह बड़ा नहीं था । सभा में पास-पड़ोस के देहातों से लोग आ गये थे । दान-पत्र भी मिला, पर इस गाँव के एक भी काश्तकार ने दान नहीं दिया । बाबा ने कहा, "मेरा पूरा दिन यहाँ बीत गया, पर इस गाँव से मुझे खाली हाथ लौटना पड़ रहा है । खैर ! मेरा विश्वास है कि आपने आज नहीं दिया, तो आप आगे जरूर देनेवाले हैं ।"

साँझ हो गयी थी । एक चमार दौड़ता हुआ आया और कहने लगा, "आज मेरे गाँव में ऋषि पधारे हैं । खाली हाथ लौटें, यह मैं नहीं देख सकता । मेरे पास जो भी थोड़ा-सा है, वह सब अर्पण करता हूँ ।" उसने नजराना भरकर अभी-अभी भूमिधर के अधिकार प्राप्त किये थे । अपना अधिकार-पत्र और दान-पत्र अर्पण करके वह चला गया । गाँव की लाज उसने रखी । ऋषि को खाली हाथ लौटने नहीं दिया ।

: १३ :

चौथे और बड़े भाई का भाग

आगरा में एक 'शिरोमणि' परिवार है। बाबा का प्रवचन जमुना के किनारे हुआ। बाबा ने कहा, "तीन भाई हैं, तो मुझे चौथा भाई मानिये। चार हैं, तो पाँचवाँ मानिये और मेरा हिस्सा दीजिये।"

शाम को तीनों भाई माँ के पास बैठे। विनोबा की बात सुनायी। उन्नीस सौ बीघा जमीन थी। माँ ने कहा, "बाबा ठीक तो कहते हैं बेटा! उन्हें चौथा और बड़े भाई का भाग मिलना चाहिए। तीनों भाई बाबा को पाँच सौ एकड़ का दान-पत्र दे आये और बाबा के स्नेह-बन्धन में बँध गये।

: १४ :

हमारा तो बिना जमीन के ही चल जाता है

दिल्ली के पहले गाजियाबाद में मुकाम था। यहाँ की सभा बड़ी अच्छी रही। दान भी ठीक-ठीक मिला। रात को बाबा अपने स्वाध्याय में लग गये थे कि एक बहन आयीं। बाबा का दरबार तो सबके लिए खुला रहता है। उस बहन ने बाबा को प्रणाम किया और कहा, "मेरे पति वकील हैं।

वकीली से हमारा निर्वाह अच्छी तरह चल जाता है। ग्यारह एकड़ जमीन हमारे पास है। कभी काम आवेगी, यह सोचकर इकट्ठी कर रखी थी, पर उसके बिना भी हमारा चल जाता है। हमारी आपसे प्रार्थना है कि आप हमारा यह ग्यारह एकड़ का दान स्वीकार करें।"

'गीता-प्रवचन' का प्रसाद लेकर वह बहन लौट गयीं।

: १५ :

राष्ट्रपति का आशीर्वाद

राजघाट पर विनोबाजी की वह पहली सभा थी। राष्ट्रपति ने विनोबाजी का स्वागत किया। मानो सारे राष्ट्र की ओर से ही था वह स्वागत! फिर अपनी ओर से राष्ट्रपति ने भी भूदान-यज्ञ में आहुति अर्पण की। उन्होंने नम्रतापूर्वक घोषणा की, "विनोबाजी, मेरी अपनी जमीन तो अब शायद ही हो, परन्तु लड़कों के पास है। आप उसमें से जितनी और जैसी जमीन आवश्यक समझें, स्वीकार करने की कृपा करें।"

क्या यह आशीर्वाद सारे राष्ट्र की ओर से नहीं था?

: १६ :

केवल चौथे भाग का स्वीकार

राजघाट पर विनोबाजी से मिलने के लिए मध्य-प्रदेश से एक गृहस्थ श्री पालीवालजी अपनी सहधर्मिणी के साथ आ पहुँचे।

अपनी सारी जमीन अड़तालीस एकड़ का दान-पत्र उन्होंने विनोबाजी को अर्पण कर दिया। संबंधित सारे कागजात, नक्शे वगैरह सब लेते आये थे।

विनोबाजी ने उनकी पत्नी को बुलाकर पूछा, तो उस देवी ने भी अपनी सहमति प्रकट की।

"आपके कितनी संतानें हैं?" विनोबाजी ने पूछा।

"तीन लड़के हैं।"

"निर्वाह का साधन जमीन के सिवा भी कुछ है?"

"जी नहीं।"

"तो मुझे चौथा हिस्सा, बारह एकड़ का दान-पत्र लिख दीजिये। बाकी का आप प्रसादरूप ले लीजिये।"

उस दंपति ने वह प्रसाद ग्रहण किया और बाबा के आशीर्वाद के साथ बिदा ली।

: १७ :

सर्वस्व समर्पण

करहल एक छोटा-सा गाँव है। यहाँ का कार्यक्रम एका-एक तय हो गया था। यहाँ एक भाई ने अपनी सारी जमीन याने चार एकड़ दे दी। उससे प्रेरणा पाकर एक ने, जो पाँच एकड़ का इरादा कर रहा था, दस एकड़ जमीन दे दी। दूसरे ने ग्यारह का इरादा किया था, किन्तु बीस एकड़ दे दी। शाम को भोजन से लौटते समय एक भाई मिले। वे प्रवचन में नहीं आ सके थे, परन्तु दान देने का इरादा था। अपनी दूकान बढ़ाकर (बन्द करके) घर लौट रहे थे। हम लोग उनकी दूकान पर पहुँचे। अत्यन्त श्रद्धापूर्वक बही-खाता निकालकर जमीन की विगतें बतायीं और अपनी सारी-की-सारी दस एकड़ जमीन का दान-पत्र भर दिया। इस छोटे से गाँव में ६०-६२ एकड़ जमीन मिल गयी।

: १८ :

दाता को 'प्रसाद'

इटावा जिला-बोर्ड के अध्यक्ष ठाकुर रघुनाथ सिंह सारे ज़िले में हमारे साथ रहे। गांधी-पुण्य-दिवस पर इटावा में विनोबा का प्रार्थना-प्रवचन जब समाप्त हुआ तो रघुनाथ

सिंह बोलने के लिए खड़े अवश्य हो गये, पर बोल बड़ी मुश्किल से पाये। आँखों से धारा बहने लगी, "विनोबा-जी ! हम दो भाई हैं। दस एकड़ जमीन है। वह सारी आपको अर्पित है। हमारे उदर-निर्वाह के लिए आप जितनी उचित समझें, हमें प्रसादस्वरूप दे दें।"

: १९ :

हृदय-परिवर्तन

धीरे-धीरे हर विचार के लोग भूदान के विचार को मानने लगे हैं। समाजवादी और कांग्रेसी भाई सहयोग दे रहे हैं। कुछ ने तो कहा भी कि विनोबाजी, आप तो हमारा ही काम कर रहे हैं।

बलिया जिले में कम्युनिस्ट मित्रों ने पू० विनोबाजी से सवाल-जवाब किये। आजमगढ़ में उन्होंने एक मानपत्र में कहा कि हम आपके मार्ग से सहमत तो नहीं हैं, परन्तु आप अपने प्रयोग को आजमा लें, हम रुकावट नहीं पैदा करेंगे।

मैनपुरी जिले में एक कदम आगे और बढ़ाया। कलेवा (जलपान) के लिए बाबा एक देहात में रुके थे। जिले के कम्युनिस्ट नेता बाबूलालजी पालीवाल अपने देहाती मित्रों के साथ बाबा के दर्शन के लिए पहुँच गये। बड़ी ही नम्रता-

पूर्वक उन्होंने अपना दो एकड़ का दानपत्र भरवाने की प्रार्थना की और आगे सहयोग देने का आश्वासन भी दिया।

इस तरह विरोध और मान-पत्र के बाद कम्युनिस्ट मित्रों ने दान-पत्र भी दिये।

: २० :

दक्षिण की पहली भेट

पत्र, तार आदि से भी अब दान-पत्र आने लगे हैं। बंगलोर के एक मुसलमान भाई जनाब सैयद हुसेन ने अपनी एक हजार एकड़ जमीन का दान-पत्र पूज्य राजेन्द्र बाबू के पास उनके जन्मदिन के अवसर पर यह कहकर भेज दिया कि विनोबाजी को उत्तर-भारत में ही जमीन मिल रही है, दक्षिण के भूदान का आरम्भ करने की दृष्टि से मेरी यह भेट विनोबाजी स्वीकार करें।

: २१ :

पंजाब का प्रायश्चित्त

एक रोज दोपहर के समय एक भाई को लेकर जलेश्वर-जी कमरे में आये। उस अत्यन्त नम्र व्यक्ति ने एक दस्तावेज

विनोबा के सामने रखा। दो सौ एकड़ भूमि का वह दान-पत्र था। ये भाई हिसार से यहाँ भूदान देने आये थे।

"मैं चाहता हूँ कि आप पंजाब आयें। दस हजार एकड़ भूमि आपकी सेवा में देना चाहता हूँ। परन्तु इसके पहले कि मैं किसीसे भूदान माँगने जाऊँ, मुझे अपनी ओर से भी कुछ हविर्भाग देना चाहिए। एक माह पूर्व ही यह जमीन मिली है। मैं इसे किसी अच्छे काम में लगाने की चिन्ता में था। बहुत सोचने पर मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि भू-दान के सिवा और अच्छा उपयोग कोई नहीं हो सकता, इसलिए यह सारी जमीन आपको देने आया हूँ।"

पंजाब-सरकार ने पश्चिमी पंजाब से पूर्वी पंजाब में आये हुए निर्वासित हरिजन भाइयों के लिए जमीन देने का वादा श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू के पास तथा पू० विनोबा-जी के पास किया था। फेहरिस्तें बनी थीं। राजघाट पर विनोबाजी ने पंजाब-सरकार का अभिनन्दन भी किया था। परन्तु, कारणवश पंजाब-सरकार उस वचन को पूरा नहीं कर सकी। वह घाव रामेश्वरीजी तथा विनोबाजी दोनों के हृदय में गहरा था; परन्तु, विनोबाजी की श्रद्धा थी कि भगवान् मार्ग निकालेगा।

पंजाब के इस भाई ने भले ही इसमें पंजाब-सरकार के उस वचन की पूर्ति का अंशमात्र ही क्यों न हो, आज मानो प्रायश्चित्त भी कर दिया।

: २२ :

दो बीघा दो लाख के समान

बरहज जाते हुए उस रोज विनोबा हमारे सहयात्री श्री हरीश भाई के गाँव में पाँच मिनट के लिए रुके। गाँव की स्त्रियों ने मंगलगीत गाये। आरती की। हरीश भाई की माताजी आगे आयीं। प्रणाम किया। कुछ कहना चाहती थीं, लेकिन उनका कंठ भर आया। बाबा ने पूछा, "क्यों, कुछ कहना है ?"

तब वे बोलीं, "कुल बारह बीघा जमीन है। घर में पाँच लोग हैं। आप छठे हुए, दो बीघा स्वीकार करने की कृपा करें।"

शाम को प्रार्थना-प्रवचन में विनोबा ने कहा, "मेरे लिए ये दो बीघे दो लाख बीघे के समान हैं। यह उस माता का आशीर्वाद है, मेरे इस काम के लिए।"

: २३ :

माँगत आवै लाज

गोरखपुर से आगे के पड़ाव पर जाते समय हमारी सामान की गाड़ी के साथ एक हरिजन भाई चल रहे थे। वे हमारी गाड़ी के पथ-प्रदर्शक थे। बहुत संकोच से उन्होंने एक भाई से पूछा, "क्या मैं भी कुछ भूमि-दान कर सकता

हूँ ? मेरे घर बारह आदमी हैं । पाँच बीघा जमीन है । बिना मजदूरी किये तो इतने लोगों का निर्वाह हो नहीं सकता । तो लगता है कि मैं भी दूँ । पर एक-दो बीघा देने में संकोच होता है कि इतना कम क्या दूँ ! कुछ सूझता नहीं । आप सलाह दीजिये ।"

वे क्या जवाब देते ? उनका मस्तक उसके चरणों में झुक गया । यह है उदार, सहज तपस्वी महान् भारत ! उस भाई के संतोष के लिए चन्द डिसमल जमीन विनोबाजी ने स्वीकार कर ली ।

और उस गाड़ीवान के साथ भोजन के समय जब उन भाई ने इस पथ-प्रदर्शक के महान् दान की बात की तो उन्होंने कहा, "मैं भी दान-पत्र लिखाऊँगा ।" उसने भी अपने प्रेम-प्रतीक के रूप में अपनी एक एकड़ में से एक डिसमल जमीन लिखा दी ।

:: २४ ::

तेरा तुझको सौंपता

फरैंदा में हमारे कुमार सहयात्री गौतम बजाज मंगरू नामक एक भाई को विनोबाजी के पास ले आये । विनोबा के कमरे में मिलनेवालों की भीड़ लगी थी । कोई जमींदार थे, कोई धनवान थे, कोई मिल-मालिक थे । गौतम भैया

ने शिकायत की, "बाबा, इस भाई के पास केवल इक्कीस डिसमल जमीन है। बहुत समझाने पर भी नहीं मानते और सब-की-सब देना चाहते हैं।" सर्वस्व-समर्पण करने-वाले अपने इस महान् दाता की ओर विनोबा ने कृतज्ञता-भरी प्रसाद-मुद्रा से देखा। उस भाई ने विनोबा के चरण पकड़ लिये। कहा, "महात्माजी, मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार कर लीजिये।"

बाबा ने कहा, "फिर तुम्हारे लिए तो कुछ भी नहीं रहेगा।"

उसने कहा, "आखिर मुझे कारखाने की नौकरी तो करनी ही पड़ती है। इतनी जमीन से मेरा निर्वाह नहीं होता। घर में पाँच-सात आदमी हैं।"

"तुम देना चाहते हो, यह तो बहुत अच्छी बात है, पर यह तुम्हारे पास ही रहने दो।" वह नहीं माना, विनोबा ने आग्रह किया तो रोने लगा। आखिर विनोबा ने दान स्वीकार किया और उस पर लिख दिया : "इस मनुष्य के घर की हालत देखते हुए यह जमीन इन्हें प्रसाद-रूप वापस देनी है। इनके आग्रह से इनके समाधानार्थ हमने ली है।"

मंगरू ने गद्गद हृदय से उस प्रसाद को ग्रहण किया। पुनः चरणों में माथा टेका। उसकी प्रसाद-मुद्रा से सारा वातावरण आलोकित हो गया।

: २५ :

सबै भूमि गोपाल की

मँगरौठ हमीरपुर जिले का एक पुरुषार्थी गाँव है। अब तक के किसी भी राष्ट्रीय आन्दोलन में यह गाँव पीछे नहीं रहा। फिर इस भूदान-आन्दोलन में वह भला कैसे पीछे रहता! विनोबा उस गाँव में पहुँच भी नहीं पाये थे, गाँव से दो मील दूर, जहाँ से मार्ग था, सब लोग दर्शन के लिए पहुँच गये थे। कलेवे के लिए जैसे भगवान् रामचन्द्र को कोल-किरातों ने अपना पत्रम्-पुष्पम् भेंट किया था, वैसे ही ये लोग भी अपनी श्रद्धांजलि ले आये थे—एक सौ एक एकड़ का दान! विनोबाजी ने उसे स्वीकारते हुए अपने छोटे-से प्रवचन में एक विचार इन लोगों के सामने रखा, "सबै भूमि गोपाल की। मुझे थोड़ा-थोड़ा क्यों देते हैं? सारी जमीन सारे गाँव की ही क्यों नहीं कर देते?" बस!

उस पहाड़ी रास्ते को लोगों ने काटकर फूल-पत्ती, झंडियों, रंगावली आदि से सजाया था। बाबा रास्ते का निरीक्षण करते हुए आगे बढ़ने लगे और ग्रामवासी अपने गाँव लौटकर सोचने लगे कि हमारा कर्तव्य क्या है? दीवान शत्रुघ्न सिंह ने इस गाँव की तन-मन से सेवा की है। दीवान साहब हमारे साथ ही आगे के पड़ाव पर आये थे। लोगों ने बुलावा भेजा—वे रात को ग्यारह बजे घर पहुँचे तो सारा गाँव उनकी

प्रतीक्षा में जाग रहा था। गाँववालों ने अपना विचार दीवान साहब से कहा। वे भी यही चाहते थे। दान-पत्र लिखे गये और सबकी ओर से एक अधिकार-पत्र दीवान साहब को दिया गया कि वे विनोबाजी के चरणों में जाकर सारी भूमि अर्पित कर आवें।

आज मँगरौठ में कोई भूमिहीन नहीं है। "जाचक सब अजाचक" जो हो गये हैं। गाँव को आदर्श बनाने के लिए विनोबाजी के मार्ग-दर्शन में काम शुरू हो गया है। दूर-दूर से, विदेशों से भी लोग मँगरौठवासियों को देखने के लिए आते हैं।

उस दिन के बाद, कोई गाँव, कोई सभा ऐसी नहीं जहाँ विनोबा जी ने मँगरौठ का स्मरण न किया हो। विनोबा लोगों से पूछते हैं, "क्या मँगरौठ किन्नर या गंधर्वों का गाँव है? क्या वहाँ किसी और प्रकार के लोग रहते हैं? वहाँ के लोग भी हम जैसे ही हैं। फर्क इतना ही है कि वहाँ एक सेवक काम कर रहा है, जिसका असर वहाँ के लोगों पर है।"

: २६ :

कोई बे-जमीन नहीं रहा

जौनपुर जिले में एक पड़ाव पर एक नया अनुभव हुआ। हमारे पड़ाव से चार मील दूर टिकारडी नामक एक गाँव था। विनोबाजी तो वहाँ गये नहीं थे, पर कार्यकर्ताओं ने विनोबाजी का विचार उन लोगों को समझाया था।

बत्तीस घरों के उस गाँव में बीस तो जमीनवाले थे और बारह बे-जमीन। अपने बे-जमीन भाइयों को जमीन देने की बात जब उन्हें समझायी गयी तो जमीनवालों ने मिलकर गाँव के बे-जमीनों के लिए सैंतीस एकड़ जमीन इकट्ठी कर दी। अब उस गाँव में कोई भी बे-जमीन नहीं है।

जुलूस बनाकर वे विनोबाजी से मिलने आये। विनोबाजी को उन लोगों से कुछ कहना नहीं पड़ा। कार्यकर्ता ठीक ढंग से विचार समझायें तो क्या हो सकता है, इसका यह एक उदाहरण है।

: २७ :

सुदामा के तंदुल

रात के साढ़े आठ बज गये थे। विश्राम की तैयारी थी कि इतने में एक किसान हाँफता हुआ विनोबा के पास पहुँचा।

सकुचाता हुआ वह झुक गया। विनोबा ने उसकी ओर देखा। तब दोनों हाथ जोड़कर उसने कहा, "महाराज, मैं आपकी सभा में नहीं आ सका।" आगे कुछ बोलना चाहता था, पर संकोच हो रहा था। विनोबा ने अत्यंत स्नेह-भाव से पूछा, "कहाँ रहते हो?"

"पाँच मील दूरी पर एक गाँव है।"

"क्या करते हो?"

"काश्तकार हूँ महाराज।"

"तो क्या कुछ गरीब के लिए लाये हो?"

"जी हाँ, महाराज, मेरे पास कुल सात बीघा जमीन है। दो बीघा देने आया हूँ।"

: २८ :

भूदान-यज्ञ से कोई गरीब नहीं बनेगा

अमेठी सुल्तानपुर जिले की एक रियासत है। इसके राणा रणंजय सिंह के पूर्वज एक हजार बरस पहले यहाँ आये थे। ये आमेर (जयपुर) के राजवंश के वंशज हैं। रियासत में पहले तीन सौ छब्बीस गाँव थे, जिनमें से छब्बीस गाँवों का राणा ने सार्वजनिक कार्य के लिए ट्रस्ट कर दिया है। अब उनके पास तीन सौ गाँव ही रह गये हैं। जिले में कुल

पच्चीस सौ गाँव हैं। विनोबाजी ने कहा, "मैं आपको तीन सौ गाँवों का राणा नहीं बनाना चाहता। चाहता हूँ कि आप अपने जिले के पच्चीस सौ गाँवों के राणा बनें।"

राणा स्वयं विद्वान् हैं, संस्कृत का अच्छा अध्ययन है। नित्य वेदों का स्वाध्याय करते हैं। निर्व्यसनी हैं। मांस-मदिरा का सेवन तो क्या, पान तक नहीं खाते। भावनाशील भक्त-हृदय हैं। विनोबाजी ने उन्हें सच में राणा बनने की तरकीब बताते हुए कहा, "आप अधिक से अधिक दान दीजिये और भिक्षापात्र लेकर निकल पड़िये। जिस कुल में जो गुण होते हैं, उनका असर उस कुल पर रहता है। इस बात का दु:ख नहीं होना चाहिए कि राज्य जा रहा है। बेटा कारोबार सम्हालने लायक होने पर पिता उसे सब सौंप देता ही है। लोकप्रिय राजाओं ने अपनी प्रजा को पुत्रवत् माना, अपने को 'लोक-सेवक' माना। आप भी सेवक के नाते काम करेंगे, तो प्रजा के हृदय में प्यार का स्थान पावेंगे। इस भू-दान यज्ञ के कारण कोई भी व्यक्ति गरीब नहीं रहेगा। चाहे गरीब हो या धनिक, जो श्रम करेंगे, वे सब श्रीमान् बनेंगे।"

राणाजी ने अपनी ओर से पहली किस्त के रूप में दो हजार एकड़ जमीन दान में दी। बनारस पहुँचने पर उनकी ओर से और एक हजार एकड़ भूमि का दान मिला।

: २६ :

सारी जागीर

हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध रचनात्मक सेवक पंडित धर्मदेव-जी शास्त्री के प्रयत्नों से विनोबाजी को पाँच हजार बीघा की जागीरदारी महंत श्री ऊधोदासजी (ग्राम दशालनी, तहसील रोहड़ू, जिला महासू, प्रदेश हिमाचल) ने दान कर दी, जिसमें दो तो पूरे गाँव ही हैं। इस दान से हिमाचल प्रदेश में एक नया ही वातावरण खड़ा हो गया है और भूदान-यज्ञ को खूब प्रगति मिली है।

प्रस्तुत दान के सिलसिले में शास्त्रीजी ने जो दो पत्र लिखे हैं, वे स्वयं इस पावन घटना को स्पष्ट कर रहे हैं।

— १ —

श्रद्धेय श्री विनोबाजी,

मैं कल शाम रोहड़ू से पैदल आश्रम आया हूँ। सौ मील के पैदल सफर से हमें कुछ भी थकान मालूम नहीं हुई, क्योंकि भूमि-दान-यज्ञ में नयी प्रेरणा सामने आयी है।....

ईश्वर कहाँ, किस प्रकार प्रेरणा देता है, वही जानता है। महन्त ऊधोदासजी को जो अंत:प्रेरणा हुई है और वह भी ११ सितम्बर को, यह ईश्वर पर अविश्वास करनेवालों के लिए चुनौती है। महन्तजी की आयु केवल २८ वर्ष की है। यह जागीर मन्दिर श्री रघुनाथजी के नाम है।

ये ही पूरे स्वामी हैं। इस जागीर में कुल पाँच हजार बीघा भूमि है, जिसमें करीब दो हजार बीघा बंजर है। सारी जागीर में दस से अधिक मौरूसी काश्तकार नहीं हैं। प्राय: काश्तकार गैर मौरूसी हैं, जो तीन साल के पट्टे पर रखे जाते हैं। जागीर की भूमि के अतिरिक्त एक लाख रुपयों से अधिक के पक्के मकान हैं। रोहड़ूवाला मकान इतना बड़ा है कि उसमें बढ़िया संस्था चल सकती है। रोहड़ू की ऊँचाई करीब पाँच हजार फुट है। यह स्थान पाव नदी के किनारे सुरम्य घाटी में है। सामने ही नहीं, चारों तरफ हिमालय का मनोरम दृश्य है।

रोहड़ू हिमाचल-प्रदेश के महासू जिले की तहसील है। यहाँ तहसीलदार, मैजिस्ट्रेट, थाना, डाकखाना तथा मिडिल स्कूल है। रोहड़ू ग्राम की आबादी पाँच सौ की है, परन्तु आसपास के ग्रामों की कुल आबादी पचास हजार से अधिक है, जो बीस मील चारों ओर फैले हुए छोटे-छोटे पहाड़ी ग्रामों में रहती है।

महन्त ऊधोदासजी ने आपको अपनी सारी जागीर दे दी है। महन्तजी केवल एकसठ बीघा एक बिस्वा भूमि और एक मकान ही चाहते हैं। यह भी वे आपके द्वारा ही लेना चाहते हैं। मैंने उन्हें कहा है कि ऐसा होना संभव है।

विनीत : **धर्मदेव शास्त्री**

— २ —

प्रिय श्री भारतीय जी[१],

अब तो दरिद्रनारायण के लिए सारी ज़मीन मिल गयी।
"सर्वस्वं ब्राह्मणस्येयं यत्किञ्च जगतीतले।"

इन जागीरों का ठीक से वितरण हो जायगा तो हिमाचल प्रदेश में ऐसी अनेक अन्य जागीरों का दान मिलने की पूरी आशा है। मैं दान-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हूँ।

मैं जब रोहड़ू गया तो महन्त ऊधोदास जी दान-पत्र पर हस्ताक्षर करके ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे कन्या को बिदा करके माता-पिता निश्चिन्त हो जाते हैं। कालिदास ने अभिज्ञान-शाकुंतल नाटक में कण्व ऋषि के मुँह से कहलवाया है:

> अर्थो हि कन्या परकीय एव,
> तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
> जातो ममायं विशदः प्रकामं
> प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ।। ४-२२ ।।

महन्त जी की ऐसी ही स्थिति थी। मुझे तो स्पष्ट दीखता है कि पू० विनोबा का कार्य साक्षात् नारायण का कार्य है। यह तो होकर रहेगा।

स्नेहाधीन
धर्मदेव शास्त्री

१—'भारतीय'=लक्ष्मीनारायण 'भारतीय'

: ३० :

वह अन्धा, अन्धा नहीं था

मुरादाबाद जिले में चौधरपुर नामक छोटा-सा देहात है। छोटा गाँव हो, बड़ा गाँव हो, विनोबा हर जगह एक रोज ठहरते हैं। यहाँ भी एक रोज मुकाम था। तम्बुओं में डेरा था। रसोई आदि भी साथियों ने ही बनायी थी। हमेशा की तरह शाम को प्रार्थना हुई, प्रवचन हुआ। आसपास के देहातों से भी काफी लोग आ गये थे, पर दान नहीं के बराबर मिला। बाबा ठीक समय पर सो गये, हम लोग भी १०-१०॥ बजे सो गये।

रात को १२ बजे बैलगाड़ी में बैठकर रामचरण नामक एक भाई आये। इनके गाँव से भी कुछ लोग सभा में आये थे। अपने गाँव लौटकर उन्होंने बताया था कि एक फकीर गरीबों के लिए ज़मीन माँगता घूम रहा है। तो रामचरण जी गाड़ी में बैठकर हम लोगों को खोजते-खोजते आये। भाग्य से हमारे यहाँ वही भाई जग रहे थे, जो दान-पत्रों का काम देखते हैं। रामचरण जी को दोनों आँखों से सूझता नहीं था। दान-पत्र लिखा कर वे चले गये।

सबेरे रास्ते में जब बाबा कलेवे के लिए रुके, तो उन्हें बताया गया कि कैसे रात को एक अन्धे ने आकर ज़मीन दी।

घटना को सुनकर बाबा थोड़ी देर स्तब्ध रहे। फिर उन्होंने कहा : "वह अन्धा नहीं था—स्वयं परमेश्वर हमें आशीर्वाद देने आये थे। उसे अन्धा समझने वाले हम ही अन्धे कहलायेंगे।" और उनकी आँखें छलछला आयीं।

: ३१ :

पुण्य-कार्य तो मुझे भी करना चाहिए

पीलीभीत जिले में माधवतांडा एक साधारण देहात है। वहाँ पर ज़मीन की तो मानो वर्षा ही हुई। एक भाई को खेत पर जरूरी काम से जाना था। वे सभा में नहीं आ सकते थे। उन्होंने अपने छोटे भाई से कहा कि तुम सभा में जाना और मेरी तरफ से दस एकड़ का दान-पत्र भर आना। भाई की आज्ञा शिरोधार्य कर वह आया, दान-पत्र भरवाया। फिर कहा, "भाई की तरफ से दान तो मैंने दिया, पर मैं यूँही लौट जाऊँ, यह अच्छा नहीं। भाई ने जितनी जमीन दी है, उतनी ही मैं भी दूँगा। पुण्य-कार्य तो मुझे भी करना चाहिए।

और उसने दूसरा दान-पत्र अपने नाम से दस एकड़ का भर दिया। करतल-ध्वनि से वातावरण गूँज उठा।

: ३२ :

बूढ़ी माँ का वरदान

विजयपुर नामक देहात की बात है। मंच सुन्दर बनाया गया था। पपीता, आलू, गुड़ आदि का फलाहार भी हुआ। काफी लोग इकट्ठे थे। लोगों ने बाबा को घेर लिया। रुकना ही पड़ा बाबा को। थोड़े में उन्होंने अपना विचार समझाया और कलेवे के लिए लाये गये पपीते की फाँक लेकर लोगों को देने लगे और जमीन माँगने लगे। बाबा बीच-बीच में कहते, "अरे चलो रे, यह सारा प्रसाद तुम्हारी राह देख रहा है। प्रसाद लो और गरीब के लिए जमीन दो।" एक बूढ़ी माँ भक्ति-भाव से प्रसाद लेने आयी। बाबा ने पूछा : "माता जी, आपके पास कुछ है?" "हाँ, है, छै बीघा।" उसने फिर कहा, "हर कोई प्रसाद लेकर भूदान का पुण्य प्राप्त कर रहा है, मैं भी करूँगी। मेरी एक बीघा ज़मीन लिख लीजिये।" उसकी आँखें डबडबा आयीं—उसने आदरपूर्वक बाबा के चरणों में सिर नवाया। बाबा ने शाम की सभा में इसका जिक्र करते हुए कहा, "मेरे लिए वह हरिदर्शन था। उस बुढ़िया माता ने तो भगवान् की कृपा समझी कि उसे इस यज्ञ में हिस्सा लेने का मौका मिला। परन्तु मुझे तो उस दान के रूप में उस बुढ़िया माता का आशीर्वाद ही दिखाई दिया।"

: ३३ :

वृद्धा की श्रद्धा

नैनीताल जिले की बात है। कालाढूँगी नामक छोटे देहात में उस दिन हमारा पड़ाव था। देहात से आये हुए लोग शाम को अपने-अपने गाँव लौट गये। ऐसे एक गाँव में एक वृद्धा ने सुना कि बाबा गरीबों के लिए जमीन माँगते हैं। उसकी कुछ ज़मीन पहाड़ पर थी, कुछ तराई में थी। वह चली और ग्यारह बजे पड़ाव पर पहुँची, तो सबको सोया हुआ पाया। सबेरे जागने पर हम लोगों ने बुढ़िया को दरवाजे पर बैठा पाया। पूछने पर मालूम हुआ कि तराई वाली अपनी ग्यारह नाली जमीन और एक मकान इस यज्ञ में अर्पण करने की भावना से वह रात से ही प्रतीक्षा करती बैठी है, मानो भगवान् के द्वार पर ही बैठी हो।

प्रातःकाल की वेला में, बिदाई के समय बूढ़ी माता का वह आशीर्वाद ही तो था इस आन्दोलन को।

: ३४ :

वीर बालक का दान

एक सभा में विनोबा ने अपील की कि "दरिद्रनारायण के लिए इस यज्ञ में आहुति अर्पण करनेवाले कोई हैं?" चार-पाँच मिनट सभा में स्तब्धता रही, सब कोई एक-दूसरे

के चेहरे ताक रहे थे। इतने में १०-१२ साल का एक बालक खड़ा हुआ। सबकी आँखें उसे कौतूहल से निहारने लगीं। अपने आप ही सबके कान यह सुनने के लिए आतुर हो उठे कि वह क्या कहता है। उसने कहा, "मेरे हिस्से में दस एकड़ भूमि आती है; मैं अपने हिस्से की पूरी ज़मीन अर्पण करता हूँ।" किन्तु दान की प्रक्रिया पूरी न हो पायी थी। बाबा ने पूछा, "क्या तुम्हारे पिताजी को मंजूर है?" उस बालक के पिताजी नहीं थे। माताजी घर पर थीं। सभा के बाद माताजी ने आकर अपने पुत्र के दान की तसदीक कर दी।

: ३५ :

गरीब ही गरीब का दुःख जानता है

विन्ध्यप्रदेश की बात है। दो भाइयों के पास तीन एकड़ ज़मीन थी। बाबा की अपील पर इन्होंने भी आध एकड़ ज़मीन दान में दी।

बाबा ने कहा: "गरीब गरीब का दुःख जानता है, इसलिए वह सहज और उदारता से त्याग करता है।"

: ३६ :

अव्यक्त का प्रभाव

सुरखी की सभा में ६ मील दूर के गाँव से एक भाई ज़मीन देने आये। वे न बाबा का भाषण सुन पाये थे, न

प्रार्थना में ही शरीक हो पाये थे। खेत में काम करते-करते ही उन्होंने सुना कि सुरखी में कोई बाबा ज़मीन दान लेने आये हैं। वे वैसे ही काम छोड़कर आये और छै एकड़ में से एक एकड़ ज़मीन दान देकर चले गये। इतने में एक दूसरा भाई आया और बाबा के चरणों में तैंतालीस एकड़ का दान देकर चला गया। जिन्होंने बाबा का प्रवचन सुना, उनसे इस गाँव में केवल चार एकड़ जमीन मिली। जिन्होंने बाबा का एक भी शब्द सुना नहीं, उनसे चौवालीस एकड़ मिली। इसीलिए विनोबा अक्सर कहते हैं—"व्यक्त से अव्यक्त का अधिक प्रभाव रहता है।"

: ३७ :

नेहरू चाचा की बरस-गाँठ के निमित्त

डाक से एक दान-पत्र आया। दस वर्ष का एक बालक चौथी कक्षा में पढ़ता है। भूमिदान की बातें उसने भी सुनी थीं। अपने पिताजी से उसने कहा, "हमें भी कुछ देना चाहिए।" पिताजी की भी इच्छा थी। बच्चे ने पंडित जवाहरलाल नेहरू के जन्मदिवस पर इकहत्तर एकड़ का दान-पत्र भेजा, जिसे पंडित जी ने डाक से विनोबा जी के पास भेज दिया।

: ३८ :

भगवान् विश्वनाथ का आशीर्वाद

सर्वोदय-सम्मेलन के लिए सेवापुरी पहुँचने के पहले बनारस में पड़ाव था। अब भूदान-यज्ञ को शुरू हुए एक वर्ष

होने आया था। विनोबा जी की शुरू से कल्पना थी कि एक वर्ष में एक लाख एकड़ तक भूमि संग्रह हो सकेगी।

बनारस पहुँचने तक भूदान का आँकड़ा नब्बे हज़ार के करीब पहुँच गया। इतने में काशी-नरेश का पत्र लेकर एक दूत आ पहुँचा। पत्र में लिखा था :

"जिस महान् भावना से प्रेरित होकर आपने यह कठिन व्रत लिया और अपने उद्देश्य की पूर्ति के हेतु समस्त भारतवर्ष की यात्रा गर्मी-सर्दी से तनिक भी विचलित न होते हुए पाँव-पयादे कर रहे हैं, उसको शब्दों द्वारा व्यक्त करना संभव नहीं। उसके तो आप मूर्तिमान स्वरूप हो गये हैं। अतः आपके दर्शन से ही लोगों को उसका वास्तविक परिचय मिलेगा। आपके शुभागमन से सभी का हृदय प्रफुल्लित हो रहा है। जन-समुदाय के सुख-सन्तोष के लिए भारतीय परंपरा के अनुकूल एक व्यवस्था की झलक लोगों को मिलने लगी है।

"बाबा विश्वनाथ के अनुग्रह से आपका यह भगीरथ प्रयत्न सफल हो तथा—

"सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्‌दुःखभाग् भवेत्॥"

और साथ में दस हजार एकड़ का दान-पत्र भी था।

उत्तर में विनोबा ने लिखा :

"प्रेम से अर्पित किया हुआ आपका भूमिदान मिल गया है। उसकी पूर्ति आप करने वाले हैं, यह भी संदेशा हमें मिला है। हम आपसे और एक बात चाहते हैं। आपने स्वयं इस यज्ञ में अपना जो हविर्भाग दिया है, वैसा अपने मित्रों से भी दिलायें। इस तरह यह कार्य सहज गति से उत्तरोत्तर बढ़ता रहेगा।

"आपने अपने पत्र में हमारा प्रयत्न सफल होने के लिए बाबा विश्वनाथ के अनुग्रह की याचना की है। यह आपकी मेरे लिए बहुत भारी मदद हुई। मेरे इस काम के पीछे उन्हींकी प्रेरणा है और वे ही इस महान् कार्य को संपन्न करने में समर्थ हैं। मैं हूँ उनकी चरणरज।"

: ३९ :

पूर्णाहुति का पावन दान

एक लाख एकड़ के करीब-करीब अंक पहुँच गया था। फिर भी पूर्णाहुति बाकी थी। इतने में डाक से एक पत्र मिला, जिसमें साठ एकड़ का दान-पत्र था।

गागोदा से विनोबा के चचेरे भाई ने तथा धूलिया से विनोबा जी के छोटे भाई श्री शिवाजी महाराज ने अपने परिवार की सारी ज़मीन, क़रीब साठ एकड़ का दान-पत्र भेजा था। इस तरह भूदान-यज्ञ के प्रथम वर्ष के एक लाख के मानसिक संकल्प की पूर्ति में यह अत्यन्त पावन पूर्णाहुति प्राप्त हुई।

: ४० :

वीर नारी

मुख्य मंत्री तथा प्रान्त के अन्य नेताओं द्वारा आग्रह किये जाने पर भी चुनाव में फिर से खड़े न होने का उन्होंने निश्चय कर लिया था। इसी बीच पद-यात्रा में तार मिला। किसी जरूरी काम के लिए घर बुलाया गया था। आकर देखा कि मित्रों की भीड़ घर पर लगी हुई है। सब आग्रहपूर्वक कह रहे हैं, 'आपको चुनाव में खड़ा होना ही पड़ेगा। आप सिर्फ फार्म भर दीजियेगा। बाकी सब हम लोग कर लेंगे।'

सबसे क्षमा माँगकर घर में अपने पिताजी से और सहधर्मिणी से मिलने के लिए वे भीतर गये। कुछ सज्जन फिर भी उनके साथ हो गये। एक मित्र ने दस हज़ार रुपये का एक चेक भेंट करते हुए कहा : "यदि पैसे की कठिनाई हो

तो यह तुच्छ भेंट स्वीकार की जाय। कहीं ऐसा न हो कि पैसे की असुविधा के कारण चुनाव में खड़े होने का विचार छोड़ दिया जा रहा हो। बाकी परिश्रम तो हम सब लोग करेंगे ही।" इतना कहकर वे लोग पिता जी की ओर इस आशा से देखने लगे कि कम-से-कम वे तो उनकी वकालत करेंगे।

चुनाव न लड़ने का अपना निश्चय प्रकट न करते हुए घर वालों की राय जानने की दृष्टि से उन्होंने पूछा, "मुन्नी की माँ क्या कहती है? बाबू जी की क्या राय है?" मित्रों की ओर से बाबू जी कुछ वकालत कर ही नहीं पाये कि इसके पहले पत्नी ने गरज कर कहा, "चुनाव में अगर खड़ा ही होना था, तो पहले क्यों नहीं सोच लिया? क्यों इतनी बड़ी जिम्मेवारी उठायी? क्या दोनों काम हो सकते हैं? प्रान्त भर की भूदान की जिम्मेवारी क्या कोई मामूली बात है? क्या दरिद्रनारायण के साथ इस तरह विश्वासघात किया जा सकता है? सबसे कह दीजिये कि अब चुनाव में नहीं खड़े हो सकते। आपको भूदान के सिवा दूसरी बात का विचार भी नहीं करना है।"

सेवापुरी-सम्मेलन के पहले की यह घटना है। तब तो १९५७ का आह्वान भी नहीं हो पाया था। भारतीय नारी के इस त्याग और तेज पर किसे गर्व नहीं होगा?

अपनी वीर सहधर्मिणी के प्रति करणभाई का हृदय कृतज्ञता के भावों से भर आया।

पिता जी ने पुत्र और पुत्रवधू, दोनों को आशीर्वाद दिया।

: ४१ :

दिया सो दिया

बाबा की यात्रा पहली बार गया जिले में हो रही थी। शेरघाटी थाने के एक गाँव में एक वृद्ध किसान बाबा से मिलने आये। वे भूदान के विचार से इतने प्रभावित हुए थे कि अपनी सारी ६० एकड़ अच्छी उपजाऊ जमीन, कुआँ, मकान, फलों से लदे वृक्ष, गाय-बैल आदि पशु-धन सबका सब अर्पण कर दिया। उस दिन से बराबर वे बाबा के साथ यात्रा में ही रहने लगे।

"साथ में कब तक रहना चाहेंगे? घर कब लौटना चाहेंगे?" हम लोगों ने उनसे सहज जानना चाहा। तो उन्होंने कहा, "मैं कभी भी लौट सकता हूँ, परन्तु मैं अब अपनी ज़मीन पर तो नहीं लौटूँगा। वह मैंने अर्पण कर दी, अतः निर्माल्य है। बाबा के साथ रहकर उनका काम कर सकता हूँ।"

"जब तक भूमि का वितरण नहीं होता, आप उसे बाबा की ओर से सँभालियेगा। ज़मीन की ठीक हिफाजत रखियेगा। वितरण होने पर फिर बाबा से मिलकर कार्यक्रम ठीक कीजियेगा।" लेकिन वृद्ध किसान उसके लिए तैयार नहीं हुए। "मैंने दे दिया, अब उस वस्तु को नहीं छू सकता।"

बहुत समझाने पर भी नहीं माने, आखिर उन्हें उस ज़मीन की जिम्मेवारी से मुक्त करना पड़ा।

: ४२ :

विष्णु-सहस्रनाम

पलामू जिले के कमलेश्वर सहाय सिंह (बच्चू बाबू) के घर बाबा का डेरा था। बच्चू बाबू बड़े असमंजस में थे कि स्वागत में बाबा के योग्य क्या प्रस्तुत किया जाय। उन्हें कुछ सूझता नहीं था। उन्होंने सुन रखा था कि बाबा "विष्णु-सहस्रनाम" सुनने की इच्छा रखते हैं, दो-चार सौ दाताओं के नाम से उन्हें संतोष नहीं होता। बच्चू बाबू को बात जँच गयी। उन्होंने प्रयत्न शुरू किया और पहली बार उनके पड़ाव पर 'विष्णु-सहस्रनाम' का पाठ बाबा को सुनाया गया। प्रार्थना-सभा में एक हजार दाताओं के नाम पढ़े गये।

बच्चू बाबू ने भी अपनी जमीन का षष्ठांश प्रदान किया। संपत्तिदान में भी षष्ठांश दिया। और तब से आज तक बराबर भूमिदान के काम में रमे हुए हैं। पलामू जिले का भार अब बाबा ने उन्हीं को सौंपा है।

: ४३ :

संपूर्ण दान

उन दिनों बाबा डाल्टनगंज जिले के नगरउँटारी गाँव में बीमार थे। बीच में कहीं रुके बिना डाल्टनगंज जाने की

बात सोची जा रही थी। बच्चू बाबू ने कहा : "रंका के महाराज आपकी प्रतीक्षा में हैं। उधर से नहीं जाइयेगा ?"

बच्चू बाबू का आग्रह देख बाबा रंका गये। महाराज ने स्वरचित संस्कृत-श्लोकों से बाबा का स्वागत किया। भूदान की बात चली। बाबा ने पूछा, "कितना दीजियेगा दरिद्र-नारायण के लिए ?" महाराज ने कहा, "अब तक जितने कार्यकर्ता आये, जिसने जितना माँगा, लिया। आप जितना चाहें ले लीजिये।"

"आप के पास कितनी है ?"

महाराज ने सारे कागजात बाबा को भेंट कर दिये।
एक लाख एकड़ परती थी, बारह हजार खुदकाश्त।
बाबा ने कहा, "परती सारी की सारी लिख दीजिये।"
महाराज ने लिख दी।

"खुदकाश्त का षष्ठांश लिख दीजिये।"

महाराज ने यह बात भी मान ली और दो हजार एकड़ का दान-पत्र लिख दिया।

बाबा ने कहा, "राजा साहब, आपका यह दान संपूर्ण दान है, फिर भी मेरी यह पहली किस्त है। आज तो मैं इतना लेकर जा रहा हूँ, लेकिन फिर आऊँगा और तब तक आता रहूँगा, जब तक एक भी भूमिहीन परिवार बचा रहेगा।"

: ४४ :

हृदय-परिवर्तन और किसे कहते हैं ?

राँची जिले में पालकोट रियासत है। रियासत के राजा लाल साहब ने अपनी जमीन का छठा हिस्सा बाबा को दान में दे दिया। परन्तु इतने से विनोबा जी का समाधान नहीं हुआ। "हमारा काम आपको भी करना होगा।"—उन्होंने कहा। राजा साहब ने मान लिया। जिला भूदान-समिति के संयोजक का भार भी सँभाल लिया और आज गाँव-गाँव घूमकर वे दरिद्रनारायण के लिए भूदान माँगने में जुट गये हैं।

हृदय-परिवर्तन के बारे में अब भी जो शंकाशील हैं, वे सोचें कि हृदय-परिवर्तन और कहते किसे हैं।

: ४५ :

इसे अपना ही काम समझें

दरभंगा के महाराजाधिराज गंगा किनारे कुरसैला नामक छोटे-से देहात में आये और एक लाख बीस हजार एकड़ जमीन का दान बाबा के चरणों में अर्पण कर दिया। बाबा ने कहा, "आपने दान दिया, यह तो ठीक किया, पर हम चाहते हैं इस काम को आप अपना ही काम समझें।"

राजा साहब ने नम्रतापूर्वक कहा, "मुझसे जो बन सकेगा, करने के लिए हाजिर हूँ।"

: ४६ :

दान की वर्षा

चांडिल में रामगढ़ के महाराज ने पहले एक लाख एकड़ का दान दिया। फिर अपनी यात्रा के दरमियान बाबा जब उनके गाँव गये,तो उन्होंने अपने सारे परिवार की ओर से अलग-अलग दान-पत्रों द्वारा ढाई लाख एकड़ का और दान दिया।

उन दिनों बाबा रोज़ श्रमदान करते थे। रानी साहबा ने अपने अलंकार भी भेंट किये। उस दिन वर्षा बहुत जोरों की थी। वैसी वर्षा में हजारों लोगों के साथ राजा साहब ने हाथ में कुदाली-फावड़ा लेकर घंटे भर का श्रमदान भी किया।

: ४७ :

त्याग की पराकाष्ठा

गया जिले का रेवई गाँव अपने सर्कल का राजा ही माना जाता है। हजारों की संख्या में लोग सभा में हाज़िर थे। 'जयप्रकाश जिन्दाबाद', 'भूदान-यज्ञ सफल करेंगे', 'संत विनोबा अमर हों' आदि नारों से आसमान गूँज उठा था। जयप्रकाश जी ने अपना हृदय निकालकर लोगों के सामने रख दिया और फिर वह सौजन्य की मूर्ति, दान माँगने खड़ी हो गयी। भूमि की वर्षा होने लगी। लिखने वाले थकने लगे। दशरथ नामक एक बेदार अपने साथ जमीन के सारे कागज़ात लेकर आये थे। अपना सब कुछ अर्पण कर

दिया उन्होंने—जमीन, घर-बार, बैल, भैंस, सब ! यह दान सुनकर सारी सभा चकित हो गयी। तालियों की गर्जना ने इसका स्वागत किया। जयप्रकाश जी खुद पुलकित हो गये। सारा-का-सारा स्वीकारें या नहीं ? क्षण-भर संकोच हुआ। परंतु बाबा के प्रतिनिधि बनकर आये थे। दान स्वीकार करना ही पड़ा। पर बैल, गाय, भैंस, घर आदि को छोड़कर केवल ज़मीन का दान स्वीकार किया।

दशरथ भाई ने यह सारी ज़मीन अपने पसीने से कमाई थी। एक ही जून और वह भी सत्तू खाकर ज़मीन जोड़ी थी।

: ४८ :

बेटे का पुण्य बेटे के साथ

महाकोशल में सेठ गोविन्ददास जी के नेतृत्व में एक यात्री-दल ने एक माह में छै जिलों का दौरा किया। पहले दिन अधिक ज़मीन नहीं मिली। वहाँ के प्रमुख कार्यकर्ता नाराज़ थे कि अन्य सब कामों के साथ यह भूदान की झंझट कहाँ से आ गयी। लेकिन यात्रा में रहते-रहते चार-पाँच दिनों में ही कार्यकर्ताओं का मानस पूर्णरूपेण बदल गया और बैतूल जिले के एक प्रमुख कार्यकर्ता ने सभा में स्वयं-

स्फूर्ति से घोषणा की कि अब वे भूदान के काम में जुटेंगे और उस जिले का कोटा छै माह में पूरा कर देंगे। छिंदवाड़ा जिले में गणेशगंज की प्राथमिक शाला के अध्यापक लखनादौन की सभा में उठ खड़े हुए और कहा, "सभा में आने के पूर्व भूदान में शरीक होने का मेरा बिल्कुल इरादा नहीं था, लेकिन अब मेरा मन बदल गया है और मैं अपनी सारी ज़मीन, जो छै एकड़ उन्नीस डिसमिल है, भूदान में देता हूँ। शाला के वेतन से मैं अपना काम चला लूँगा।"

होशंगाबाद जिले के बरमान गाँव में सभा समाप्त होने के बाद कुँवरबाई नामक एक बहन ने अपनी कुल दो एकड़ जमीन दान में दे दी। "अब कैसे गुजर होगी" पूछने पर उसने कहा, "मैं दूध-दही बेचकर अपनी जीविका चला लूंगी।"

सिवनी में दाऊ महेन्द्रनाथ सिंह से छै सौ एकड़ का छठा हिस्सा यानी एक सौ एकड़ की माँग की गयी थी। उन्होंने कहा, "सौ एकड़ मैं नहीं दूँगा।"

"अच्छा तो दो-चार एकड़ कम दीजिये।"

तो उन्होंने कहा, "मैंने दो सौ एकड़ देने का तय किया है।"

इसी तरह एक सभा में एक बालक ने दान दिया, तो पिता जी खड़े हो गये और कहा, "मेरा भी दान लिखिये— बेटे का पुण्य बेटे के साथ, मेरा मेरे साथ!"

शिवि और दधीचि का दान

गया जिले के अतरी थाने में जेठियन नामक गाँव में सभा थी। बोलते-बोलते जयप्रकाश जी हृदय की गहराई में उतर गये थे। बीस दाताओं द्वारा एक सौ पाँच एकड़ के दान-पत्र भरे गये। जयप्रकाश जी ने पूछा, "क्या भगवान् बुद्ध के इस क्षेत्र में बीस ही दानी हैं? ऐसा नहीं हो सकता।" उनकी उस महान्, किंतु नम्र मूर्ति को दान की याचना करते देखकर लोग रोमांचित हो गये। भूदान की वर्षा होने लगी। बाबू शिवधर सिंह खड़े हुए। कहा, "साढ़े छै बीघा।" जयप्रकाश जी ने जाहिर किया, "साढ़े छै बीघा।" एक कार्यकर्ता ने उनके कान में धीमे से कहा कि "इनके पास कुल साढ़े छै बीघा ही ज़मीन है। सब दे देने पर ये क्या खायेंगे?" जयप्रकाश जी ने जाहिर किया, "इन भाई के पास उपार्जन का दूसरा साधन नहीं है। इनकी दान-भावना की मैं कद्र करता हूँ। फिर भी सिर्फ एक बीघा रखकर साढ़े पाँच बीघा उन्हें वापिस करता हूँ।" बाबू शिवधर सिंह खड़े हुए और हाथ जोड़ कर बोले, "महाराज, वापस करेंगे तो मैं अनशन करूँगा। मेरे शरीर में ताकत है। कहीं भी कमाई करके मैं पेट भर सकूँगा। आज तक इस धरती से

मैंने सुख प्राप्त किया है। अब मेरे दूसरे गरीब भाइयों को वह सुख मिलने दीजिये।"

जयप्रकाश जी गद्गद हो गये। सभा भी मुग्ध हुई। जयप्रकाश जी ने उनसे कहा, "मैं आपके सामने नतमस्तक हूँ। आप शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र और कर्ण के वंशज हैं। शरीर का अंश काट देनेवाले, हड्डियाँ निकाल कर देनेवाले दानवीरों के वंशज हैं आप। उनका खून आपकी नस-नस में रम रहा है, इसका मुझे ध्यान नहीं था। दाता की जैसी इच्छा हो, मैं दान स्वीकार करता हूँ।"

: ५० :

संपूर्ण त्याग

गया जिले के वजीरगंज में पड़ाव था। जयप्रकाश जी ने कहा, "भारत की मानवता का साक्षात्कार हो रहा है। आध्यात्मिक शक्ति का आविष्कार अपनी आँखों के सामने सिद्ध होता हुआ हम देख रहे हैं। भाषण के बाद वे खड़े रहे, तो दान-गंगा का प्रवाह बहने लगा। शुरू में कार्यकर्ताओं ने अब तक के प्राप्त दान-पत्र अर्पण किये। बाद में भागवत पांडे खड़े हुए और उन्होंने तीन बीघा भूदान जाहिर किया। दूसरे एक सज्जन ने तुरन्त उठ कर कहा, "१६३० से पांडे जी

ने राष्ट्र के लिए असीम त्याग किया है। सिर्फ तीन बीघा ही ज़मीन उनकी संपत्ति है। वह भी अब भारतमाता के चरणों में उन्होंने अर्पण कर दी। इनके बाल-बच्चों की फिक्र इन्हें भले ही न हो, हमें जरूर है। मैं पांडे जी को अपनी जमीन में से पाँच बीघा देता हूँ।"

: ५१ :

एक बहन की प्रेरणा

नडियाद के पास बोरियावी गाँव है। उस गाँव की एक बहन श्री रविशंकर महाराज के पास पहुँची और कहने लगी, "आपको दान के काम के लिए नियुक्त किया है न ! फिर आप बाहर दान माँगने के लिए क्यों नहीं निकलते ? मुझे ज़मीन दान देनी है।" उसी के कहने के अनुसार सभा का आयोजन किया गया। भूदान-यज्ञ का पूरा विचार समझाया गया। उस बहन ने अपनी ग्यारह बीघा ज़मीन दान में दी। इस घटना का प्रभाव श्री रविशंकर महाराज के मन पर इतना गहरा हुआ कि वे उसी रोज से तन-मन से भू-दान के काम में जुट गये।

: ५२ :

बूढ़े की बीस बीघा जमीन

मुनि संतबाल जी सोरठ में घूमते-घूमते खाबोदर के पास एक देहात में गये। उनको लगा कि मेर-जाति के लोग क्या जमीन देंगे? परन्तु मेर लोगों ने कहा, "हमारे गाँव में पड़ाव रखो।"

गाँव में किसी ने एक बीघा दान लिखवाया, किसी ने दो बीघा। तीसरे ने तीन, तो चौथे ने चार। इस तरह मानो स्पर्धा ही शुरू हो गयी। एक वृद्ध वहाँ बैठा था। वह कहने लगा, "लिख डालो मेरी बीस बीघा जमीन।" पास ही में श्री रामभाई पाठक बैठे थे। उन्होंने कहा—"बाबा जी, आप इस बीस बीघा जमीन दान देने का अर्थ समझते हैं या आवेश में आकर लिखा रहे हैं?" बूढ़े बाबा ने कहा, "तुम मुझे क्या समझाते हो भाई! मैं खाने बैठा था। डेढ़ रोटी की भूख थी और मेरी थाली में सिर्फ एक ही रोटी थी। उसी समय घर के आँगन में एक भूखा आदमी आया, तो जो कुछ था, उसी में से आधी रोटी उसको दी, तो उसमें तुम मुझे क्या समझाओगे?"

: ५३ :

स्वामित्व का विसर्जन

श्री नारायण देसाई अपनी पंचमहाल जिले की यात्रा का वर्णन लिखते हैं :

रमणिया गाँव में श्री देसाई नामक एक सज्जन रहते हैं, सात्विक और सेवा-भावी। जब हम उनके यहाँ पहुँचे तो उन्होंने प्रेमपूर्वक हमारा स्वागत किया। उनकी भू-दान सम्बन्धी कुछ नयी शंकाएँ भी थीं, जो हमने दूर कीं। उन्होंने अपनी अट्ठाईस एकड़ जमीन में से आठ एकड़ पहले ही भूदान में दे दी थी। साठ एकड़ की एक जागीर भी उनकी थी। उस पर से भी स्वामित्व छोड़ देने का उनसे आग्रह किया गया। वे हिसाब-बही में से एक-एक खातेदार (रैयत) का नाम और विवरण सुनाने लगे।

मैंने पूछा, "फलाँ भाई की स्थिति कैसी है ?" "गरीब है।" "फिर आपको उसकी जमीन पर का हक छोड़ देना चाहिए।" इसपर उन्होंने कोई बहस नहीं की, दान-पत्र पर उस रैयत की जमीन का सर्वे नम्बर लिख दिया। फिर दूसरे भाई का नाम पढ़ा गया। पूछा, "इसकी स्थिति कैसी है ?" "वह मध्यम स्थिति का है।" "क्या उसकी भी जमीन छोड़ना आप पसन्द करेंगे ?" श्री देसाई कहने लगे, "जो जाने वाला है, उसे सम्मान से अर्पण करने में ही हमारी शोभा है।

उसकी भी जमीन लिख लीजिये।" इस तरह अलग-अलग खातेदारों की मिलकर कुल साढ़े उन्तीस एकड़ जमीन पर का अपना स्वामित्व उस दिन उन्होंने छोड़ दिया। उनकी जमीन का यह करीब आधा हिस्सा था। उनके बरामदे में बैठे हुए हिन्दोलिया वासी भील हमारी बातें बहुत ध्यान से सुन रहे थे। जैसे-जैसे श्री देसाई एक-एक की जमीन पर का स्वामित्व छोड़ते थे, वैसे-वैसे वे लोग अधिकाधिक प्रभावित होते जाते थे।

: ५४ :

नारी-चेतना का दृश्य

बड़ौदा जिले में श्री हरिवल्लभ परीख भूदान-यात्रा कर रहे थे। रंगपुर से २५ मील दूर, धारोली गाँव में सभा थी। दान-प्राप्ति के कार्यक्रम के बाद वहाँ के जमींदार श्री भीखूभाई शाह की पत्नी की बहन ने अपने सब गहने उतार कर दे दिये। उस बहन से उन्होंने पूछा, "अब फिर से तो नहीं बनवाओगी ?" उसने जवाब दिया, "न बनवाने के संकल्प के साथ ही यह विपत्ति रूप सम्पत्ति आप के हवाले कर रही हूँ। आज हम स्त्रियों की आँखें खुल गयी हैं।"

छोटों का दिल बड़ा होता है

एक दिन सबेरे राधनपुर में रविशंकर महाराज दातून करने बैठे थे। इतने में जेकड़ा गाँव के हीरजी भगत उनके पास आकर खड़े हो गये। महाराज ने पूछा, "कैसे आना हुआ ?"

"कुछ नहीं, यों ही पाँव छूने आया था।"

थोड़े समय बाद भी भगत को वहीं खड़ा देखकर महाराज ने पूछा, "क्या काम था ?"

"मुझे कुछ जमीन दान करनी है।"

"तुम्हारे पास कितनी जमीन है ? कितनी दान करना चाहते हो ?"

"बारह बीघा के खेत में से चार बीघा जमीन देनी है। पर क्या आप मेरे घर नहीं आयेंगे ? घर पर सब आपकी राह देख रहे हैं।"

महाराज के साथ बहुत-से साथी थे, इसलिए उस गरीब कुम्हार पर बहुत बोझ पड़ेगा, ऐसा विचार कर वे वहाँ भोजन के लिए नहीं गये।

कुछ ही महीनों बाद महाराज फिर राधनपुर गये। उस समय भी हीरजी भगत मिलने आये।

"महाराज, मैंने वह जमीन एक हरिजन को दे दी। उस खेत में बाजरे की इतनी अच्छी फसल हुई है कि उसे देखकर मैं बहुत खुश हूँ।" महाराज ने स्मित मुद्रा में इस भूदान और वितरण पर अपनी सम्मति प्रकट की। जाते-जाते उत्साह से हीरजी भाई कहने लगे, "आपको तो मैंने चार बीघा का वचन दिया था। किन्तु इतनी थोड़ी जमीन में उस गरीब का कैसे चलता, अतः मैंने उसे छै बीघा जमीन दे दी थी।"

विनोबा जी इसीलिए तो कहते हैं कि "छोटों का दिल बड़ा होता है।"

: ५६ :

भगवान् तो बैठे हैं न !

मढ़ी-आश्रम की छात्राएँ श्री गोमती बहन तथा जुगतराम भाई के साथ भूदान-यात्रा के सिलसिले में खोजपारडी गयी थीं। बहनें घर-घर जाकर भूदान का संदेश सुनाती थीं। एक सज्जन ने अपनी छै एकड़ ज़मीन भूदान में अर्पण की। गाँव के दूसरे लोग आश्चर्यचकित हो गये। जुगतराम भाई ने पूछा, "भाई, तुम्हारे पास कितनी ज़मीन है ?" कालिदास भाई ने कहा, "छै एकड़। तीन-चार दिन पहले ही हम सब भाइयों का बँटवारा हो गया और मेरे हिस्से में छै एकड़

जमीन आती है। आज मैं अपनी सारी ज़मीन अर्पण करना चाहता हूँ।"

पहले लगा कि अकेले ही होंगे, इसीसे हिम्मत की। पर बाद में मालूम हुआ कि परिवार में पत्नी है और चार लड़के हैं। "अब तुम्हारा गुजर कैसे होगा ?" पूछा, तो उसने कहा, "मेहनत-मज़दूरी करूँगा। भगवान् तो बैठा है न !" उसके चेहरे पर समाधान तथा प्रसन्नता के भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। दान ग्रहण करनेवाले भी गद्गद हो गये।

: ५७ :

गोवा की आहुति

गोवा के सावई गाँव में श्री म० ल० रानडे नाम के नवयुवक प्रायमरी शाला के शिक्षक हैं। खादीधारी हैं। गांधी-विचारों पर निष्ठा है। शुरू से ही भूदान-यज्ञ की ओर आकर्षित हुए हैं। उनका एक पत्र आया था। पत्र स्वयं आहुति का महत्त्व बताता है।

"....पत्र के साथ मनीआर्डर से ५७ रु० ८ आ० भेज रहा हूँ। कुछ रोज पहले आपके द्वारा भेजी गयी 'आन्दोलन' और 'भूमिका' नामक पुस्तकों के दाम में आठ आने जा रहे हैं, आपने ये किताबें बुकपोस्ट द्वारा भेजी थीं। किताबों की कीमत के चार आने पोस्ट के जरिये भेजने को

कहा था । लेकिन गोवा के डाक-टिकट भारत में चलते नहीं, इसलिए मैंने वह भेजा नहीं । आपको इसकी सूचना देना जरूरी था । लेकिन आजकल-आंजकल करने में काफी देर हो गयी, इस विलम्ब के लिए दंड-स्वरूप चार आने ज्यादह भेजे हैं । कृपया स्वीकार करें । ५७ रु० पूज्य विनोबा जी के भूदान-आन्दोलन के लिए हैं । मैं एक गरीब स्कूल-मास्टर हूँ । मेरे पास दान-यज्ञ में देने के लिए ज़मीन नहीं है । जो कुछ थोड़ी-सी तनख्वाह पाता हूँ, उसमें से पाई-पाई करके बचाई हुई यह पूँजी है । यह सुदामा के तंदुल स्वीकार करने के लिए प्रार्थना है ।"

: ५८ :

मुझे नाम की इच्छा नहीं थी

हमारी बहन सत्यबाला जी भू-दान-यात्रा करती हुई गाबड़ ग्राम पहुँची । गाबड़ ग्राम अधिकतर महाजनों की बस्ती का गाँव है । सभा में जमींदार और किसान भाइयों की अच्छी संख्या थी । सत्यबाला बहन ने भू-दान की बात समझाते हुए कहा, "प्रतिष्ठा और नाम के लिए जो दान किया जाता है, वह सात्विक नहीं होता, देनेवाले में अहंकार और लेनेवाले में दीनता न आये, वही दान उत्तम है ।"

सभा समाप्त हुई । कोई दाता आगे न बढ़े । आज नहीं

देते वे कल ज़रूर देंगे, इस विश्वास से हमारी बहन डेरे पर पहुँचीं। इतने में वहाँ एक वृद्ध आये और कहने लगे, "आप मेरी उनतालीस बीघा ज़मीन दान में लिख लीजिये। एक भाई ने कहा, "भइया, तुमने सभा में ही घोषणा क्यों न की ?" बाबा ने कहा, "मुझे नाम की इच्छा नहीं थी।"

: ५६ :

भलाई जाग उठी

विमला बहन ने गया जिले में कुछ रोज पैदल-यात्रा की थी। एक देहात का अनुभव वे सुना रही थीं:—

"एक रियासत से हम लोग गुजर रहे थे। बहुत छोटी रियासत थी। साथियों ने कहा कि इस गाँव में जाना बेकार है। राजा बड़े दुष्ट हैं, शराबी हैं, जुआरी हैं, इनका हृदय-परिवर्तन क्या हो सकता है ? मैंने कहा कि जनता में जनार्दन का दर्शन करने निकले हैं, बगैर दर्शन के मंदिर के बाहर से ही लौट जायँ ? विनोबा का आन्दोलन महज मज़ाक नहीं है, मखौल नहीं है। इसके पीछे गंभीर मानव-निष्ठा की बुनियाद है। मानव-निष्ठा का अधिष्ठान है। आज मानव-निष्ठ समाज-दर्शन की और मानव-निष्ठ क्रांति की प्रक्रिया की हमें आवश्यकता है।

साथी नहीं माने, दूसरे गाँव में चले गये। मैं अकेली

राजा साहब की ड्योढ़ी पर पहुँची। दोपहर का समय था। वे बरामदे में आराम से लेटे हुए थे। मैंने दरवाज़ा खटखटाया। पूछा गया, "कौन है ?" मैंने कहा, "आपकी बहन आयी है।" जब सुना कि बहन आयी है, तो चौंक पड़े। आगे बढ़कर इस तरह देखने लगे कि कोई पागल तो दरवाजे पर नहीं पहुँच गयी। पूछने लगे कि "यहाँ तक कैसे पहुँच पायीं ? गाँव वालों ने तुम्हें बताया नहीं कि मैं किस प्रकार का शैतान आदमी हूँ ? भला, मेरे पास किसी भले आदमी का कोई काम हो सकता है ? तुम एक नवजवान लड़की हो, तुम्हारी भलाई इसीमें है कि तुम लौट जाओ।" मैंने कहा, "भाई साहब, आप दुष्ट हैं या शराबी हैं, या जुआरी—इससे मुझे क्या मतलब ? एक बात का जवाब दीजिये। आपके कोई माँ, बहन हैं या नहीं ? एक संत का संदेश लेकर दरवाजे पर पहुँची हूँ। इस तरह लौटने वाली यह बहन नहीं है। भूमि-दान-यज्ञ आन्दोलन के विचार की राखी यह बहन अपने भाई की कलाई में बाँधकर लौटेगी, पहले नहीं।"

दुनिया ने उन्हें दुष्ट कहा था, दुर्जन कहा था, शैतान कहा था। लेकिन उनकी आँखों में आँसू छलक पड़े। वे आँसू क्या थे, उनकी सोयी हुई भलाई जाग उठी। हाथ जोड़कर बोले, "बहन अंदर पधारिये।" उन्होंने सभा का आयोजन किया, पाँच सौ एकड़ ज़ेरकाश्त ज़मीन में से सवासौ एकड़

ज़मीन दान में दी। गाँव वालों ने भी दी। चार घंटे के भीतर २१५ एकड़ ज़मीन का दान लेकर मैं उस गाँव से लौटी।"

: ६० :

विचार समझाना हमारा धर्म है

गया जिले की बात है। दिन भर में दो-तीन गाँव हो आये थे, रात बिलौटी नामक गाँव में पड़ाव डालना था। पिता जी और माता जी तथा साथ के कार्यकर्तागण पैदल निकले, हम पाँच भाई-बहन और श्री दिवाकर जी मोटर से जा रहे थे। रात का समय था, रास्ता ठीक से पूछ लिया था, फिर भी भटक गये।

पहाड़ी इलाका था, रास्ता खोजते-खोजते हम नदी के पास पहुँच गये—आसपास देखने पर एक छोटी-सी रोशनी दिखाई पड़ी। दिवाकर भाई और ड्राइवर साहब वहाँ गये। वहाँ एक छोटीसी झोपड़ी थी। एक नौजवान भाई से पूछा, तो उन्होंने झट से कह दिया कि "भाई, रास्ता-वास्ता दिखाने के लिए मुझे अभी फुरसत नहीं है।" अंदर वृद्ध पिता जी बैठे थे। आवाज़ सुनकर बाहर आये। जब उन्होंने सुना कि रास्ता भटक गये हैं, साथ में छोटे बच्चे भी हैं, तो बूढ़े बाबा ने तुरत कहा, "चलो-चलो, मैं रास्ता दिखाता हूँ।

बच्चे तो भगवान् हैं।" और वे दौड़े दौड़े मोटर के पास आये। साथ में ४–५ गन्ने भी लेते आये थे। बच्चों के प्रति कितना स्नेह! उन्होंने हमें ठीक से अपने मुकाम पर पहुँचा दिया।

हमने माँ से और पिता जी से उन्हें मिलाया। पिता जी ने अपने पास बिठाते हुए उनसे पूछा कि किस बस्ती में रहते हैं, क्या करते हैं, और धन्यवाद दिया कि बच्चों को पहुँचा दिया।

बूढ़े ने सरलता से कहा, "उसमें क्या हुआ, ये लोग रास्ता भूल गये थे, मैंने पहुँचा दिया।" फिर पिता जी ने पूछा, "पता है ये लोग क्यों घूमते हैं?" हाथ जोड़कर कहने लगे, "हम क्या जानें?" फिर उन्हें पिता जी ने बाबा का संदेश सुनाया। लोग कहने लगे कि उनके पास नहीं के बराबर ज़मीन है। आप क्यों अपना समय बेकार बर्बाद करते हैं? पिताजी ने कहा, "उन्होंने इतना कष्ट किया। हमारे विचार उन्हें मालूम होने चाहिए। वे हमारे कार्यकर्ता बन गये हैं।"

सारी बात सुन कर उस बूढ़े बाबा ने हाथ जोड़कर कहा, "दस कट्ठा मेरे पास है। एक धुर लिख लीजिये। ज़मीन भी नदी किनारे की है। भारी समझी जाती है।"

हम लोगों का हृदय यह त्याग देख कर भर आया।

हमें पहुँचाने आये और यह भेंट भी चढ़ा कर जा रहे हैं। ज़मीन कितनी दी, इसका महत्त्व नहीं, भावना का महत्त्व है। विनोबा के शब्द याद आये—"भगवान् की लीला अपार है। उसने छोटे का दिल बड़ा बनाया है।"

: ६१ :

मरने से नहीं डरता

गया जिले की बात है। हम लोग बाराचेट्टी थाने में सपरिवार यात्रा कर रहे थे। पड़ाव लहथुआ में था। नारायण जी नामक एक कार्यकर्ता को गया से भेजा था। नारायण जी लहथुआ के लिए गया से रवाना हुए। उनके साथ भू-दान-साहित्य, डाक और ज़रूरी सामान था। मोटर से उतरकर लहथुआ गाँव पहुँचना था। करीब दो मील का रास्ता पैदल तय करना था। रास्ता जंगल से होकर था। रात के करीब आठ बजे का समय था। थोड़ी दूर जाने पर दो आदमियों ने उनका पीछा किया और मुक्कों से उन्हें मार गिराया। गरदन के दोनों बाजू लाठी रखकर दबाने को तत्पर ही थे कि इतने में एक तीसरा आदमी झाड़ियों में से बाहर निकला। उसको कुछ पूछ-ताछ करने की प्रेरणा परमेश्वर ने दी। नारायण जी ने कहा, "मैं विनोबा जी का कार्यकर्ता हूँ। उनके मंत्री के पास डाक और साहित्य लेकर जा रहा हूँ।

मृत्यु स म घबराता नहीं । आप मेरी जान लेना चाहते हैं, तो ले सकते हैं । पर इससे गरीबों का और आपका ही नुकसान होगा ।" वाल्मीकि की कथा नारायण भाई ने उन्हें सुनायी । और आश्चर्य क्या कि वह वहाँ चरितार्थ भी हो गयी । उन लोगों ने आगे से ऐसा निकृष्ट कार्य न करने का संकल्प किया और नारायणजी को लहथुआ के नजदीक तक पहुँचाकर तथा क्षमा माँगकर लौट गये ।

: ६२ :

घर भूदान में

छोटे-छोटे दानों के समाचार अक्सर आते हैं । परिमाण में ये दान छोटे अवश्य होते हैं, पर परिणाम में महान् होते हैं, सुदामा के तंदुल और शबरी के बेर की तरह ।

गया जिले के घोषी थाने में गरीबों में दान देने के लिए होड़-सी लग गयी थी । छोटे-छोटे किसान जी खोलकर दान करते थे । पुराने जन-सेवक श्री रामभजन दत्त एक रोज पैदल-यात्रा से लौट रहे थे । घोषी थाने के सुकियामा ग्राम का एक गरीब माली दौड़कर उनके पास आया और बड़ी आरजू से कहने लगा, "जमीनवाले जमीन दे रहे हैं । मेरे पास तो सिवा घर के और कुछ नहीं है । मै उसीको

भू-दान में देना चाहता हूँ। कृपा कर इसे स्वीकार कर लीजिये।"

: ६३ :

पति से पत्नी ने अधिक दिया

बहनों ने भी भू-दान में काफी हिस्सा लिया है। मकियाहूँ गाँव में विनोबा के पहुँचने पर एक मुसलमान भाई ने ११ एकड़ जमीन का दान-पत्र अर्पण किया और कहा, "मेरी पत्नी बीमार है, आप वहाँ आयेंगे?" उस बहन के बदले उसकी छोटी-सी लड़की ने आकर ११।। एकड़ जमीन का दान दिया। विनोबा तो घर के दरवाजे में ही खड़े थे। उनको मालूम हुआ कि वह बहन सख्त बीमार है। इसलिए वे स्वयं ऊपर जाकर उससे मिल आये। विनोबा ने उस भाई से कहा—"तुम्हारी अपेक्षा तुम्हारी पत्नी ने अधिक जमीन दी। यह ठीक ही हुआ।"

: ६४ :

इक्यावनवाँ हिस्सा

८० वर्ष का एक बूढ़ा लकड़ी के सहारे चलकर बाबा राघवदासजी के पास पहुँचा। बोला, "भूमिवाला बाबा कहाँ है?"

"क्यों ? पास के गाँव में ही उनका पड़ाव है ।"

"मुझे उनका दर्शन करने चलना है ।"

"जरूर करना, जमीन-वमीन कुछ दोगे ?"

"मेरा तो क्या बूता है, पर अपनी शक्ति और बाबाजी की इच्छा के अनुसार कुछ तो दूँगा ही ।"

विनोबा ने इनके साथ हिसाब किया ।

"आपके पास कितनी जमीन है ?"

"दो एकड़ ।"

"घर में खानेवाले कितने हैं ?"

"छोटे-मोटे सब मिलाकर कोई पचास होंगे ।"

लोगों के मन में प्रश्न उठा कि इसके पास से भला क्या लेना है । इसको तो उल्टे देना ही चाहिए । विनोबा जमीन का वितरण शुरू करेंगे, तब जरूर ऐसे लोगों को जमीन देंगे ।

पर अभी तो वे गरीबों की सेना खड़ी कर रहे हैं । उसमें गरीब सैनिक को भरती न करें ?

वे बोले, "आपकी जमीन का इक्यावनवाँ हिस्सा मैं लूँगा ।"

: ६५ :

बेटी को खाली हाथ लौटाओगे?

सियाडीह गाँव के नजदीक ही एक छोटा-सा देहात था। साथियों ने कहा कि "बहन, इस गाँव में ठहरने से कुछ फायदा नहीं, कुछ खास मिलेगा नहीं।" मैंने कहा, "विचार समझाना हमारा धर्म है।" थोड़ी ही देर में लोग जमा हो गये। थोड़े में उन्हें अपना विचार समझाया। एक भाई ने अपना सातवाँ हिस्सा दान किया। सामने बैठे एक भाई से मैंने पूछा, "कहिये, आपकी ओर से कितनी लिखूँ?" कहने लगे, "एक बीघा लिख लो।" मैंने सहज पूछा, "आपकी कुल जमीन है कितनी?" "२४ बीघा।" मैंने कहा, "केवल १ बीघा बहुत कम है।" "अच्छा १।। लिख लीजिये।" मैंने कहा, "विनोबाजी का आदेश है, छठा हिस्सा लेना चाहिए।" बोले, "नहीं, मेरे लिए इतनी बहुत ज्यादह हो गयी, अब मैं एक धुर भी नहीं दे सकता।" मैंने कहा, "बाबाजी, आपकी बेटी बनकर आयी हूँ। क्या बेटी को खाली हाथ बिदा करेंगे?" "अच्छा, लिख लो ४ बीघा।" मैंने मन ही मन प्रणाम किया और बाबा का वाक्य याद आया—"श्रद्धा से माँगने जाओगे, तो जरूर मिलेगा।"

बाद में सभी को आश्चर्य हुआ कि उन भाई ने छठा

हिस्सा कैसे दे दिया, क्योंकि अपने इलाके में कंजूसी के लिए वे प्रसिद्ध थे !

: ६६ :

मैं इस गाँव में नहीं रहूँगा

गुरुवा थाने का आखिरी पड़ाव था । सबने अपना-अपना हिस्सा दिया । प्रजा-समाजवादी कार्यकर्ता श्री अम्बिका बाबू के पिताजी ने देने से इनकार कर दिया । पिताजी ने बहुत समझाया । अंत में सभा के बाद आगामी योजना बनी । अम्बिका बाबू ने कहा, "अब मैं इस गाँव में नहीं रहूँगा । मेरे पिताजी ने अपना हिस्सा नहीं दिया है, इसलिए मैं और मेरा बच्चा, हम सब आपके साथ चलते हैं ।" अम्बिका बाबू के भाई वहाँ बैठे यह सब सुन रहे थे । उठकर उन्होंने कहा कि "नहीं, ऐसा नहीं होगा । हम भी छठा हिस्सा देंगे ।"

: ६७ :

मैं सोच-समझकर दे रहा हूँ

गया जिले के मखदुमपुर थाने की बात है । मखदुमपुर से दो मील दूरी पर एक सभा हो रही थी । सभा के बाद भू-दान की घोषणा शुरू हुई । रामकृष्ण नामक एक किसान

ने कहा, "मेरी सारी जमीन लिख लीजिये ।"

"कितनी है आपकी जमीन ?"

"तीन एकड़ ।"

"फिर आप क्या करेंगे ?"

"मजदूरी ।"

"घर में कौन-कौन हैं ?"

"पत्नी और बच्चा ।"

"आप आध एकड़ दीजिये और ढाई एकड़ अपने लिए रख लीजिये ।"

"जी नहीं, मैं तो अच्छी तरह मजदूरी कर सकता हूँ । मैंने तय किया है, मैं सोच-समझकर सारी जमीन दे रहा हूँ ।"

बहुत समझाने पर भी वह नहीं माना । लोगों ने कहा, "ये तीन भाई हैं। छह बरस से कोर्ट में झगड़ा चल रहा था । अभी फैसला हुआ है । इसकी जमीन के दस हजार रुपये लग चुक हैं ।" जब बार-बार समझाने पर भी नहीं माना, तो बापूजी और विनोबाजी की जयजयकार के बीच वह दान स्वीकार कर लिया गया ।

: ६८ :

सद्भावना का साक्षात्कार

हमारी यात्रा बाराचेट्टी थाने में हो रही थी । पड़ोस में ही फतहपुर थाने की सीमा थी । चार मील पर छपरा

जिले के एक बड़े भूमिवान बबन बाबू की खुदकाश्त खेती थी। बबन बाबू अक्सर इधर रहते नहीं हैं, पर आज खबर मिली कि आये हुए हैं। उदार हैं। पहिले एक हजार एकड़ दे चुके हैं, पर और भी दे सकते हैं। देने की गुंजाइश है। हमें जाना था सीधे सात मील। अगर बबन बाबू से मिलकर जाते हैं, तो छह मील का और चक्कर पड़ता है। माला बीमार हो गयी थी। आनन्द बीमार था। वाहन का कोई प्रबंध नहीं हो सकता था। सबने सोचा कि दरिद्रनारायण की झोली लेकर निकले हैं, बबन बाबू से मिलकर ही जाना चाहिए। बच्चों का भी उत्साह देखा तो सबने "रमारमण गोविन्द हरे" का स्मरण करके फतहपुर की दिशा में कूच कर दिया।

हमारे साथियों ने कुछ ही समय पहले जाकर हमारी खबर उनके पास पहुँचा दी थी। बबन बाबू ने बहुत प्रेमपूर्वक स्वागत किया, फिर उन्होंने बातचीत शुरू की—

"मैं आज आप लोगों से बहुत नाराज हूँ!"

"ऐसा कोई अपराध तो हमसे हुआ स्मरण नहीं आ रहा है।"

"बीमार बच्चों को लेकर यहाँ तक आने का कष्ट आपने क्यों किया? मुझे बुला लेते। सिर्फ संदेशा देते, तो मैं उपस्थित हो जाता।"

"बहुत-बहुत क्षमा माँगते हैं आपसे" कहकर हम लोगों ने मन-ही-मन उनकी सद्भावना की सराहना की।

स्नान-भोजन आदि के बिना वहाँ से निकलना संभव नहीं दिखाई दिया। भोजन की तैयारी हुई। अब बैठना होगा भोजन को। अनुकूल समय देख कर भाऊ[1] ने दक्षिणा की बात छेड़ी।

"आपने तो पहले ही एक हजार एकड़ भूमि दी है। इसके लिए हम आपके बहुत आभारी हैं। फिर भी हमारी माँग तो रहेगी ही। आपकी भूमि का हम लोगों को कोई अन्दाज़ नहीं है। परन्तु कुछ मित्रों ने बताया कि अभी और थोड़ी गुंजाइश है, आपके पास देने की। अब आप ही सोचिये। भूमि की समस्या बिना षष्ठांश के हल नहीं होगी। बड़े भूमिवानों को तो अधिक-से-अधिक देना होगा। तो हम चाहते हैं कि फिलहाल आप षष्ठांश पूरा कर दें। फिर अधिक आप जितना भी चाहें। इससे अन्य भूमिवानों से माँगने में भी बड़ी सहायता होगी।"

बबन बाबू ने अपना हिसाब देखा। कागज़ात पूरे पास थे नहीं, फिर भी उन्होंने बताया कि मैं अन्दाज़ से उतना अंक लिख देता हूँ कि षष्ठांश से कम न हो। उन्होंने पाँच सौ एकड़ का नया दान-पत्र भर दिया। कुल पंद्रह सौ एकड़ हुई। वे कितने एकड़ का दान-पत्र भरते हैं, इसीकी ओर सब

१. लेखिका के पिता श्री दामोदरदास मूँदड़ा।

टकटकी लगाये बैठे थे। माला और भारती का बुखार तो न जाने कब का हवा हो चुका था। बबन बाबू ने आनन्द के हाथ से दान-पत्र लिखाया। उनके साथ सबको बड़ी आत्मीयता का अनुभव हुआ। बच्चों के लिए सवारियों का भी प्रबन्ध उन्होंने करा दिया।

चलते समय भाऊ ने एक और माँग की, "षष्ठांश आपने दिया, यह तो बहुत अच्छा हुआ। परन्तु विनोबाजी का समाधान इतने से नहीं होता। आप अपने बड़े भूमिवान मित्रों से भी भूमि दिलवाइयेगा। आप लोग ही तो विनोबा का काम करनेवाले हैं।"

कुछ सोचकर बबन बाबू ने कहा, "अभी फरवरी है। आप अप्रैल, मई में अपने कार्यकर्ता को भेजिये। मैं इधर आसपास के पचीस-तीस गाँवों में, जहाँ मेरा संबंध है, भूदान का काम करने को तैयार हूँ। प्रायः सभी देंगे।"

उस दिन के सत्संग को याद करते हैं, तो आज भी हम सब गद्गद हुए बिना नहीं रहते।

: ६९ :

अपूर्व प्रसंग

यों तो चांडिल-सम्मेलन के पहिले से ही जयप्रकाशजी अपनी पूरी शक्ति से भूदान-यज्ञ में कूद पड़े थे, परन्तु भीतर मंथन चलता ही था।

अपने अनुभव से उन्होंने देखा कि बिना जीवन-समर्पण किये भूदान-यज्ञ का यह देवता प्रसन्न होनेवाला नहीं है। बोधगया-सम्मेलन में उन्होंने अपने जीवन-दान की घोषणा कर दी तथा सबका आवाहन भी किया।

दूसरे रोज प्रातः प्रार्थना के बाद तुरन्त ही जयप्रकाशजी के हाथ में जीवन-दान का एक समर्पण-पत्र पहुँचा।

"श्री० ज० प्र०,

आपके आवाहन पर भूदान-मूलक ग्रामोद्योगप्रधान अहिंसक क्रान्ति के लिए मेरा जीवन-समर्पण।

२०-४-'५४ विनोबा के प्रणाम"

पत्र के मजमून ने धीर-गंभीर जयप्रकाशजी को हिला दिया। उनका विनम्र व्यक्तित्व इस गुरुतर भार को सहन करने में सकुचाने लगा। जैसे-जैसे उनका संकोच बढ़ने लगा, हिमालय की ऊँचाई की तरह समर्पण का गौरव बढ़ने लगा। और दो घंटे की अवधि में पाँच सौ से अधिक कार्यकर्ताओं ने, जिनमें सर्व-सेवा-संघ के अध्यक्ष तथा सम्मेलन की अध्यक्षा से लेकर छोटे-से-छोटे कार्यकर्ता भी शरीक हैं, अपना जीवन अर्पण कर दिया।

मानव-इतिहास में यह प्रसंग अपूर्व ही समझा जायगा।

: ७० :

प्रेम का आक्रमण

उस दिन एक सज्जन गया-जिला-भूदान-समिति के दफ्तर में आकर दो सौ एकड़ का दान-पत्र लिखा गये और इतनी नम्रता के साथ और भक्तिभाव से कि जैसे विशेष कुछ किया ही न हो। उन्हें विनोबाजी का पूरा साहित्य सौंपा गया। वह भी वे उत्साहपूर्वक ले गये।

अब तक गया शहर के काम में श्री डा० केशवप्रसाद सिंह विशेष उत्साह से योग देते थे, लेकिन उन्होंने गया से हमेशा के लिए पटना जाकर रहना तय किया। तब गया शहर की जिम्मेदारी किसे सौंपी जाय ? श्री भूप बाबू का नाम सुझाया गया। वे भाऊ को लेकर भूप बाबू से मिलने उनके घर गये। भूप बाबू को देखते ही भाऊ ने कहा, "आपने ही तो उस रोज कार्यालय में जाकर दो सौ एकड़ का दान लिखाया था ?"

भूप बाबू चुप रहे। उन्हें बड़ा संकोच हो रहा था। "अब आपको विनोबा का कार्यकर्ता भी बनना होगा।" और तब से भूप बाबू भूदान में अधिकाधिक दिलचस्पी लेने लगे।

इस बीच विनोबाजी की गया जिले की दूसरी यात्रा तय हुई। मित्रों ने स्वागताध्यक्ष का बोझ भूप बाबू पर

ही डाला। एक ओर भूप बाबू को उत्साह था कि विनोबा-जी की सेवा का मौका मिला, दूसरी ओर उनकी चिन्ता बढ़ रही थी कि विनोबा को भेट देने योग्य पत्रम् पुष्पम् क्या जुटाया जाय ? लोगों से दान माँगने में उन्हें संकोच होने लगा। बड़े-बड़े जमींदारों से मिलने जाना था। रात भर भूप बाबू का भक्त-हृदय कुछ बेचैन रहा। प्रातःकाल से वे उत्साहपूर्वक दान माँगने में जुट गये। उनकी वाणी में किसी विशेष संकल्प का बल प्रकट होने लगा। विनोबाजी का स्वागत करने के लिए वे मंच पर खड़े हुए और उन्होंने अपना हृदय विनोबाजी की सेवा में खोलकर रख दिया—

"विनोबाजी, मैं अपनी सारी जमीन, करीब तीन हजार बीघा, आपकी सेवा में अर्पण करता हूँ।"

"करीब" इसलिए कहा कि कागजात तैयार नहीं हो पाये थे। हिसाब तैयार हुआ तो जमीन का अंक दुगुना निकला।

गर्मी के दिन थे। एक दिन भूप बाबू ने भाऊ को बहुत चिंतित देखा।

"आपके मन पर किस बात का बोझ है ?" भूप बाबू ने पूछा। "दफ्तर के लिए ठीक मकान नहीं मिल रहा है। काम बढ़ता जा रहा है। दो-दो जगह दफ्तर है—डाक बँगले में भी और स्टेशन-धर्मशाला में भी। लोगों को आने-जाने में भी काफी दिक्कत होती है।"

"अभी आज ही दफ्तर अपने घर ले चलिये। वहाँ हम लोग भी कुछ अधिक समय दे सकेंगे। आश्रम का वातावरण रहेगा। बच्चों को भी संस्कार मिलेंगे।" भूप बाबू को असुविधा न हो, इस खयाल से स्थान-परिवर्तन नहीं किया गया।

परंतु बोधगया-सम्मेलन के बाद प्रांतीय भूदान का कार्यालय तो गया आना तय रहा ही—सर्व-सेवा-संघ का कार्यालय भी गया रखना तय हुआ।

इस बार भूप बाबू नहीं माने। उनकी ओर से मानो प्रेम का आक्रमण ही हुआ। सर्व-सेवा-संघ का कार्यालय अपने निवास में रखने के लिए उन्होंने श्री वल्लभस्वामी को राजी कर लिया। स्वामी ने भी भक्त-हृदय का आतिथ्य स्वीकारना ही उचित समझा।

आज भूप बाबू का निवास भूदान-कार्य का एक महत्त्वपूर्ण अखिल भारतीय केन्द्र बन गया है।

: ७१ :

दो के बदले पचास एकड़

गुजरात का एक पावन प्रसंग है।

एक भाई ने दो बीघा जमीन दी थी। उनका वह भूभाग चार बीघा था। वितरण के समय उन्होंने वह पूरा दे दिया।

अधिक देने के कारण जो उत्साह आया, उस उत्साह में वे यों बोल उठे कि "यदि मेरी भूमि हरिजनों को दी जावे, तो इस गाँव में मेरी जितनी जमीन है, सब देने के लिए तैयार हूँ।"

श्री नारायण देसाई ने वितरण स्थगित रखा और दाता को सोचने के लिए एक दिन का समय दिया। दूसरे दिन सबेरे उस जमीन के लिए कुछ ग्राहक भी मिल गये। प्राय: दस हजार रुपये की बोली बोली जाने लगी। ग्राहक खुद भूमिवान थे, परंतु दाता की जमीन को जोतते थे। इसलिए कानूनन वे जमीन खरीदने के हकदार थे और आग्रह रखते तो हम कुछ नहीं कर सकते थे। दाता और ग्राहक दोनों को समझाया गया। दोनों ने स्वीकार कर लिया।

दो बीघे के बदले पचास बीघा जमीन मिली। दूसरे एक भाई ने भी अपनी उस गाँव की बाकी बची हुई छह बीघा जमीन दे दी। पहले दाता की जमीन हरिजनों को दी गयी। बाकी जमीन गाँव के बाकी भूमि-हीनों को दी गयी। जोतने-वालों में जिनके पास कम जमीन थी, उन्हें भी दी गयी। जिन्होंने खरीदने का विचार बिना किसी शर्त के छोड़ दिया था, उन्हें भी दो-दो बीघा जमीन दी और गोचर के लिए भी कुछ जमीन रखी गयी।[१]

---

[१] श्री नारायण भाई देसाई के पत्र के आधार पर।

प्रेम के प्रभावकारी विद्युत् कण

उस दिन दो सर्वस्वदानी गाँवों का वितरण बाबा के हाथों हो रहा था। एक-एक भूमि-पुत्र आता और अपने हिस्से की भूमि का प्रमाण-पत्र और प्रसाद ग्रहण करता। हरएक नाम के साथ यह भी बताया जाता कि आदाता के पास पहले जमीन थी या नहीं, थी तो कितनी थी और अब आवश्यकता के अनुसार उसे कितनी मिल रही है।

एक भाई के नाम के साथ सबने सुना :

इनके पास पहले चौबीस एकड़ थी। अब इन्हें साढ़े तीन एकड़ मिल रही है।

मानो, सारी सृष्टि का आशीर्वाद उस समय लोगों की हर्षध्वनि में प्रकट हुआ। "आनंदे हरि बोल" के जयनाद से वातावरण गूँज उठा। लेकिन नामों का सिलसिला तो जारी ही था। "इनके पास पहले कोई भूमि नहीं थी। इन्हें पाँच एकड़ भूमि मिली।" आनंद और सद्भावनाओं का सागर उमड़ पड़ा। उत्कल में प्रायः रोज ऐसा दृश्य प्रकट हो रहा है।

बाबा पूछते हैं :

"ऐसी शक्ति किस कानून में है जो चौबीस एकड़वाले

को साढ़े तीन एकड़ स्वीकार करने के लिए राजी कर सके ?"

"सिवा प्रेम के कानून के ऐसा कोई कानून नहीं है, जिसम यह शक्ति हो ।"—विनोबा-वाणी !

बाबा आगे पूछते हैं :

"अगर हाइड्रोजन बम से दुनिया का वातावरण विषाक्त हो सकता है, तो इस प्रेम की विद्युत्-भरी लहरों से दुनिया का वातावरण सद्भावना से ओतप्रोत क्यों नहीं हो सकता ?"

इसी श्रद्धा पर तो बाबा के मुख से '५७ तक सर्वोदय की सार्वभौम संस्थापना की भविष्यवाणी प्रकट हुई है ।

: ७३ :

ग्रामदान की बाढ़

उत्कल के कोरापुट जिले की कहानी है ।

आज का पड़ाव कुटली नामक छोटे-से गाँव में था । रास्ते पर स्वागत के लिए एक गाँव के लोग कीर्तन करते हुए आये । बाबा ने नायक के कंधे पर हाथ रखकर पूछा—"क्या ग्रामदान नहीं करोगे ?"

नायक ने सोचने का समय माँगा ।

कुटली पर सभी ग्रामवासी भाई-बहन स्वागत के लिए आये थे ।

यहाँ भी बाबा न 'ग्राम-दान' की बात समझायी ।

लोगों से पूछा—"क्यों, विचार पसंद है ?"

"जी, परंतु हमारे नायक बीमार हैं ।"

"तो उन्हें हमारे प्रणाम कहना और हमारा संदेशा भी जाकर सुनाना कि बाबा ग्रामदान माँग रहा है ।"

दोपहर में कुटली के ग्रामवासी आकर ग्रामदान का निर्णय सुना गये ।

थोड़ी देर में उस रास्तेवाले गाँव के लोग भी आये और ग्रामदान का संकल्प सुनाया ।

थोड़ी देर में श्री गोपबाबू एक कार्यकर्ता को बाबा के निवास पर ले आये । ये भाई देहातों में काम करने गये थे । आठ जगह से 'ग्रामदान' ले आये हैं ।

"तो आज कुल दस हुए"—बाबा ने कहा ।

इतने में गोपबाबू ने दूसरे कार्यकर्ता का जिक्र किया, वह भाई दस ग्रामदान लेकर आये थे । तो कुल बीस हुए !

इतने में मनमोहन चौधरी आये । जिलों से आयी हुई बाबा के नाम की ओड़िया डाक पढ़ने लगे । कटक जिले के दो नये 'ग्रामदान' मिले थे ।

बालेश्वर में भी बीस नये ग्रामदान मिले थे । इस पावन कहानी को सुनते हुए करुणामय भगवान् के चमत्कार से सबका हृदय गद्गद हो गया ।

ईसा ने ठीक कहा था—

"फसल तैयार है। कार्यकर्ता चाहिए।"

[पदयात्रा से आये हुए पत्र के आधार पर।]

: ७४ :

गंगोत्तरी-प्रेरक स्मरण

प्रथम दिन १८ अप्रैल को विनोबाजी के आवाहन पर सौ एकड़ का दान देने पर अब तक जो-जो पोचमपल्ली गये, किसी को श्री रामचन्द्र रेड्डी ने खाली हाथ नहीं लौटाया।

श्री जयप्रकाशजी गये, तो उन्हें भी भूदान दिया।

श्री केशवरावजी गये तो उन्हें भी खाली हाथ नहीं लौटाया।

जो भी उस गंगोत्तरी के दर्शन को गया, कुछ-न-कुछ भूदान पाता रहा है।

करीब चार सौ एकड़ का दान रामचन्द्र रेड्डी ने कर दिया। अब उनके पास तरी की शायद पंद्रह एकड़ और खुश्की की चौंसठ एकड़ भूमि बच रही है। इसी बीच पोचमपल्ली के नाम एक संदेश लेकर विनोबाजी के मंत्री (लेखिका के पिता) वहाँ पहुँचे। अब सम्भव है उत्कल के बाद बाबा तेलंगाना जावें। इस खयाल से पत्र में कुछ विचार प्रकट किये गये थे।

नया संकल्प क्या किया जाय? रामचन्द्र रेड्डी सोचने

लगे। परन्तु विनोबा की ओर से संदेश आया है, तो कुछ संकल्प तो करना ही चाहिए।

उस दिन की सभा में उन्होंने घोषणा की :

"जिस दिन इस गाँव का ग्रामीकरण होगा, मैं उसके लिए सदा तैयार रहूँगा। तब तक आज से मैं अपने को अपने पास जो जमीन है, उसका ट्रस्टी मानता हूँ और उसकी आमदनी में से षष्ठांश सम्पत्ति-दान में देता रहूँगा।"

रामचन्द्र रेड्डी का निवेदन समाप्त नहीं हुआ था। क्षण भर रुककर उन्होंने फिर घोषणा की—"और आज से मैं अपना जीवन इस ग्राम की सेवा के लिए अर्पण करता हूँ।"

अपनी सहधर्मिणी की ओर उन्होंने देखा, तो उस देवी ने खड़ी होकर सबको प्रणाम किया।

रामचन्द्र रेड्डी ने उनसे पूछा कि आपकी तैयारी भी ग्राम-सेवा करने की है? तो उन्होंने भी अपनी स्वीकृति प्रकट की।

ग्रामवासियों में पुनः एक बार नव चेतन निर्माण हुआ। बड़े-बड़े जितने भूमिवान हैं, उनमें से अधिकांश ने अपना षष्ठांश लिख दिया और सारे गाँव का षष्ठांश जुटाने में बड़े भूमिवान प्रयत्नशील हो गये।

विनोबाजी को उनके स्वागत में पुरुषसूक्त सुनानेवाले शास्त्रीजी भी आये। उस बार उन्होंने केवल श्रीफल—नारियल ही विनोबाजी को अर्पण किया था।

इस बार उनके सेवक द्वारा उनके पास अपनी अड़ता-लीस एकड़ का षष्ठांश आठ एकड़ का दान-पत्र प्रेषित किया।

:o: :o: :o:

प्रथम दाता, अन्य ग्रामवासी भूमिवान, सबने अपना योग दिया। अब भूमिपुत्रों की बारी आयी। वे क्या देंगे?

उनसे भी भाऊ ने एक माँग की। "आप लोग भी मुझे दान दे सकते हैं। आपकी मर्यादा के भीतर है।"

"अगर हमारे वश की बात हो तो बताइये।"

"आपने अभी तक ताड़ी, शराब का व्यसन छोड़ा नहीं है। आज मुझे अपने व्यसन का दान दे दीजिये।"

भूमिपुत्रों ने प्रतिज्ञा की कि आज से ताड़ी-शराब नहीं पीयेंगे।

ठेकेदार ने अपनी दूकान वहाँ से उठा ली! सरकार ने भी उसे ठेके की शेष बची हुई रकम मुआफ कर दी। भूदान की गंगोत्तरी का स्मरण इस तरह अधिकाधिक प्रेरक होता जा रहा है।

: ७५ :

महाराज के तीन कदम

चांडिल

उनका सारा जीवन गुजरात के सर्वहाराओं की सेवा में बीता था। जिनको समाज ने चोर, डकैत आदि समझ-

कर तिरस्कृत कर रखा था, उनके हृदय में उन्होंने ऊँचा स्थान पा लिया था। उनके सेवा-सातत्य ने उन पीड़ित दुखी मानवों में जीवन क्रांति कर दी थी।

लेकिन भूदान की रणभेरी ने उन्हें अपनी उस सुदीर्घ साधना से विचलित किया।

विनोबाजी से आकर वे मिले और अपना सारा समय भूदान के काम में लगाने का निश्चय कर गये।

बोधगया

विनोबा अपने कमरे में एकाकी बैठे थे। महाराज भीतर आये और नम्रतापूर्वक निवेदन किया—"मैं सोचता था कि मुझे जीवनदान देना चाहिए या नहीं। क्योंकि अब नया संकल्प तो कुछ करना था ही नहीं। जीवन तो कब का दिया ही जा चुका है। फिर भी देखता हूँ कि इस कल्पना में बड़ा जीवन भरा हुआ है। जब से जीवन-दान का चिंतन मन में चल रहा है, वृद्धावस्था का विस्मरण हो गया है। तरुणाई का अनुभव कर रहा हूँ। जीवनदान का संकल्प बड़ा चैतन्य-दायी प्रतीत होता है। अतः मेरा भी जीवनदान स्वीकार कीजिए।"

विनोबाजी ने अनेक बार इस पावन और प्रेरक प्रसंग का जिक्र किया है।

पुरी

आवाहन का प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका था। सेवक लोग बिदा लेकर यथास्थान लौट रहे थे। एक वृद्ध तरुण विनोबा-जी से बिदा लेने आये। उनके मुखमंडल पर चिरहास्य झलक रहा था। सम्मेलन के सभापति का बोझ कंधे से उतर जाने के कारण वे और भी मुक्त-मन दिखाई दे रहे थे और किसी कृतविश्वास की झाँकी भी चेहरे पर साफ प्रकट हो रही थी। सदा की भाँति उन्होंने नम्र निवेदन शुरू किया :

"दो बरस तक अब पैदल ही घूमने की प्रेरणा होती है। १३ अप्रैल से प्रारंभ करना ठीक होगा। बोधगया में जीवनदान के कारण जिस तरुणाई का अनुभव हुआ, उसमें इस आवाहन के कारण और भी उत्साह भर गया है। आपका आशीर्वाद चाहिए।" हिमालय और सागर परस्पर मिल रहे थे।

: ७६ :

दो महान् समर्पण

डा० प्यारेलाल सिंह

उस दिन उनकी चार सौ मील की पदयात्रा समाप्त हुई थी। अपनी पैंसठ वर्ष की आयु में भी वे प्रतिदिन पंद्रह से बाईस मील तक चलते।

सबेरे उनकी छाती में थोड़ा दर्द होने लगा। दादाभाई ने उन्हें आगे चलने से रोका, परंतु ठाकुर साहब का मन माननेवाला नहीं था। दादाभाई ने आगे कूच किया। अनुष्ठान को बीच ही में कैसे छोड़ दिया जाय? साधना को खंडित कैसे किया जाय? वे पीछे नहीं रुक सके।

उस दिन जिला सम्मेलन का आयोजन भी था। भूदान-मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रांति पर वे डेढ़ घंटा बोलते रहे। सायंकाल कार्यकर्ताओं के साथ होनेवाली चर्चा में भी भाग लिया। परस्पर परिचय के कार्यक्रम में हिस्सा लेते हुए कहा : "देखिये, लोग मुझे व्यर्थ ही वृद्ध कहते हैं। कहते हैं कि इसे हृदय-रोग हो गया है। लेकिन मैं अभी भी बाईस मील चल सकता हूँ। नौजवान लोग थक रहे हैं, लेकिन मुझे कोई थकावट नहीं है।"

परंतु, भगवान तो उन्हें चिर-विश्राम देना चाहते थे।

रात के नौ बजे वे बिस्तर पर लेटे। पौने दस बजे हृदय में पीड़ा प्रारंभ हुई। डाक्टर के लिए फौरन मोटर भेजी गयी। परंतु सम्मेलन का स्थान पाँच मील दूर था। डाक्टर समय पर नहीं पहुँच सके। पहुँचते भी तो वे विधि-विधान को कैसे टाल सकते थे?

साढ़े दस बजे ठाकुर साहब की पदयात्रा की पूर्णाहुति उनकी देह-यात्रा की पूर्णाहुति से हुई। आखिरी क्षण तक

उनके मुख से रामनाम का उद्घोष जारी था । मृत्यु के समय भी उनका मुख अत्यंत शांत और प्रसन्न था । उन्होंने मृत्यु को भी वरदान में बदल दिया ।

ठाकुर साहब ने भूदान-यज्ञ में अपनी आहुति समर्पण करना पसंद किया, लेकिन जो कदम उठाया था, उसे पीछे हटाना पसंद नहीं किया ।

भूदान-यज्ञ-आंदोलन से वे दिन प्रतिदिन अधिकाधिक तद्रूप होते जा रहे थे ।

विरोधी दल के नेता होते हुए भी उन्होंने कांग्रेस के तथा अन्य पक्षों के नेताओं के साथ सच्चे हृदय से सहकार्य किया, जिसके लिए उनके पक्ष के मित्रों ने भी उनका विरोध किया । परंतु उन्होंने वह सब प्रेमपूर्वक बर्दाश्त किया । सबके साथ स्नेह-भरा व्यवहार किया । भूदान-यज्ञ-आंदोलन के कारण वे पक्षनिष्ठ और प्रतीकारात्मक प्रवृत्तियों से ऊपर उठकर लोक-निष्ठ और क्रांति के संदेश-वाहक बन गये थे । और इस तरह वे जनता के हृदयों में मानवता के महान् मूल्यों का बीजारोपण करते हुए आगे बढ़े जा रहे थे कि इसी बीच आत्मोत्सर्ग हो गया ।

सम्मेलन का उद्घाटन इस महान् समर्पण-योग से हुआ । भूदान-यज्ञ अमर हुआ ।

श्री शान्ता बहन डोंगरे

अपना अध्ययन समाप्त करने पर श्री शांता बहन ने फौरन सेवा के क्षेत्र में प्रवेश करने का संकल्प किया। अकोला के "महिला-मंडल" में वे काम भी करने लगीं। उन्हीं दिनों अकोला जिले में श्री शंकरराव देव की पदयात्रा का आरंभ हुआ था। 'महिला-मंडल' की उदासीनता ने शांता बहन को गहरा आघात पहुँचाया। उन्होंने स्वयं भूदान में कूद पड़ने का निश्चय किया। इस समय उनकी उम्र बाईस वर्ष की थी।

शांता बहन का स्वास्थ्य बचपन से ही काफी कमजोर था। बारह वर्ष की आयु तक तो वे केवल दुग्धाहार पर ही रहीं। चाँदी की सुन्दर झारी में उनके लिए स्कूल में ही दूध पहुँचाया जाता था। अध्ययन-काल में वे मोटर में या किसी-न-किसी वाहन में ही स्कूल-कॉलेज जातीं। ऐसी ये शान्ता बहन पद-यात्रा में कैसे टिकेगी? सबको बड़ा संदेह था। लेकिन उनका संकल्प दृढ़ था। भूदान-यज्ञ के आवाहन के सामने उन्होंने दूसरी सब बातों को गौण माना।

एक वर्ष उन्होंने बिहार में काम किया। दो माह हम दोनों ने गया में साथ-साथ पदयात्रा की। इस यात्रा में उनकी नम्रता, विद्वत्ता, परिश्रमशीलता और कार्यकुशलता ने मुझे उनकी ओर अधिकाधिक आकर्षित किया। उम्र में मैं उनसे

छह वर्ष छोटी थी। लेकिन वे मुझे अपनी बराबरी का मानती थीं। हम दोनों में बहनों का-सा स्नेह था। मित्र की तरह वे मुझसे सलाह-मशविरा करतीं। मुझसे बड़ी होने पर भी, क्योंकि भूदान-आरोहण के साथ प्रारंभकाल से ही मैं संबंधित थी, वे हर पहलू पर मेरे साथ काफी विचार-विनिमय करतीं। वे मेरे सुझावों की कद्र करतीं, उन्हें महत्त्व प्रदान करतीं। उनकी इस उदारता और महानता के कारण मैं संकोच से कुछ दब भी जाती, लेकिन प्रेम के सामने मैं हार जाती।

बोधगया-सम्मेलन के बाद वे कुछ दिन पूज्य विनोबाजी के सत्संग में भी रहीं। इस बीच उन्होंने कार्यभार भी काफी सँभाल लिया। प्रवचनों का लेखा, उनका प्रकाशन, पत्र-व्यवहार, मुलाकातें, कार्यकर्ताओं से चर्चा, स्त्रियों की सभाओं में तथा कभी-कभी प्रार्थना-सभाओं में भी, लोगों को विचार समझाना आदि काम वे आत्म-विश्वास के साथ करने लगीं। विनोबाजी के चरणों के पास बैठकर वे नित्य नूतन प्रेरणा पाने लगीं।

इसी बीच अपनी माताजी की बीमारी के कारण उन्हें कुछ दिनों के लिए घर आना पड़ा। सेवा की आवश्यकता समाप्त होते ही वे पुनः पदयात्रा में जुट गयीं। वे ठाकुर प्यारेलाल सिंह तथा दादाभाई नाइक के यात्री-दल के साथ हो गयीं। बहुत आग्रह करने पर भी वे कभी भाषण नहीं

करतीं। दादाभाई के काम में पूरी तरह मदद करना ही उन्होंने अपना कर्तव्य समझा। बहुत कहने पर भी वाहन का उपयोग कभी नहीं करतीं।

लेकिन ठाकुर साहब के आत्मोत्सर्ग के बाद उन्होंने फौरन अपनी जिम्मेदारी महसूस की। अब वे सभाओं में बोलने लगीं। कार्यकर्ताओं के साथ सम्पर्क कायम करने लगीं। योजनाएँ बनाने लगीं। बिलासपुर-सम्मेलन के लिए उन्होंने एक ठोस योजना भी बना ली थी। इस सम्मेलन के बाद यात्री-दल का संचालन अब वे ही करनेवाली थीं। अपनी हार्दिकता के कारण वह दिन प्रतिदिन सबको अधिकाधिक प्रिय होने लगीं।

लेकिन परमेश्वर को शायद वे बहुत अधिक प्रिय हो चुकी थीं और शायद इसीलिए केवल बारह घंटे की बीमारी के बाद वे प्रभु के पास पहुँच गयीं। अंत तक प्रसन्न-चित्त रहीं। एक ही भावना थी—भूदान-यज्ञ सफल बने।

अरपा नदी में शांता बहन का पार्थिव अर्पित हुआ। भूदान-यज्ञ के अनुष्ठान में एक महान् आहुति का समर्पण हुआ। शांता बहन अमर हुईं—भूदान अमर हुआ।

अमर पथिक

पू० विनोबाजी ने ठाकुर साहब और शांता बहन के संबंध में श्री दादाभाई को जो पत्र लिखा, वह इस प्रकार है :

"दादाभाई,

ठाकुर प्यारेलाल सिंह और शांता डोंगरे दोनों ने अपनी काया कृतार्थ की। परमेश्वरी पथ के पथिक रुग्ण शय्या में नहीं मरे। देह कैसी सहज ही छोड़ दी, मानो वृक्ष से फल टूट पड़ा हो। हमारे लिए परमेश्वर का यह बहुत बड़ा आश्वासन है। इन घटनाओं से हमारे हृदय की श्रद्धा और पाँवों का बल बढ़ा है। आपकी सहधर्मिणी ने भी आपको इस परिस्थिति में भी यात्रा जारी रखने की सलाह दी। परमेश्वरी प्रेरणा कैसे काम करती है, इसका यह संकेत है। हम अहंता त्यागकर निमित्तमात्र बनें।

अंतर का निर्मल, वाणी में मधुर, पाँवों से मजबूत, परमेश्वर का पथिक सतत घूमता रहे। उसके आगे-पीछे भगवान् खड़े हैं।

विनोबा के प्रणाम।

●

जीवन-दान

●

जयप्रकाश नारायण

१९५५

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

राजघाट, काशी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे
मंत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ
वर्धा (म० प्र०)

पहली बार : १५,०००
अक्तूबर, १९५५
मूल्य : चार आना

मुद्रक :
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

पुस्तक-परिचय

१८ अप्रैल, १९५१ के दिन पोचमपल्ली (तेलंगाना) में भूमिदान-यज्ञ की शुरुआत हुई। यज्ञ जब सफलता की ओर अग्रसर होता है, तब उसमें से यज्ञ-देवता प्रकट होता है। भूमिदान-यज्ञ की शुरुआत के ठीक तीन वर्ष बाद बोधगया में वार्षिक सर्वोदय सम्मेलन के मौके पर 'जीवन-दान' प्रकट हुआ। ता० १९ अप्रैल, १९५४ को तीसरे पहर सम्मेलन के अधिवेशन में विभिन्न प्रान्तों के भूदान कार्यकर्ता एक के बाद एक अपने विचार सम्मेलन के सामने रख रहे थे। इसी सिलसिले में पहले से निर्धारित कार्यक्रम के मुताबिक जब सम्मेलन की अध्यक्षा श्री आशा बहन आर्यनायकम् ने श्रद्धेय जयप्रकाशजी से अनुरोध किया कि वे कुछ कहें तथा जयप्रकाशजी ने बोलने की अनिच्छा और अपने हृदय का भारीपन व्यक्त करते हुए बोलना शुरू किया, तब किसीको—खुद जयप्रकाशजी को भी—इस बात का कोई आभास नहीं था कि उनके मुँह से अहिंसक क्रान्ति के इस यज्ञ के लिए 'जीवन समर्पण' की घोषणा होनेवाली है।

पर बोलते-बोलते उनकी वाणी में ओज बढ़ता गया और दृढ़ता आती गयी। शुरू की हिचकिचाहट और खिन्न मनःस्थिति की जगह भूदान-यज्ञ आन्दोलन से प्रकट हुई अहिंसात्मक क्रान्ति की प्रक्रिया में अटल विश्वास और निश्चयात्मक बुद्धि का दर्शन हुआ और अन्त में सम्मेलन-मंडप में एकत्रित विराट् जन-

समुदाय को स्तब्ध और अभिमंत्रित करनेवाला 'जीवन-दान' का वह मंगल संकल्प !

जयप्रकाशजी के खुद के शब्दों में संकल्प के वे शब्द 'अनायास ही' उनके मुँह से निकल पड़े थे, अर्थात् इसके लिए उन्हें उस समय विचारपूर्वक कोई प्रयत्न (Conscious Effort) नहीं करना पड़ा। पर मानस में तो उसकी तैयारी अन्दर ही अन्दर वर्षों से हो रही थी। फल धीरे-धीरे पेड़ पर पकता रहता है और फिर एक क्षण आता है, जब बिना किसी बाहरी प्रयत्न के वह पका हुआ फल अपने आप गिर पड़ता है। वही बात जयप्रकाशजी के 'जीवनदान' की हुई। जीवनदान की घोषणा की उस स्थूल घटना के पहले किस तरह वर्षों तक उनके मानस में इसकी तैयारी हो रही थी, जीवनदान की पार्श्वभूमि बन रही थी, इसका वर्णन खुद जयप्रकाशजी के शब्दों में पाठक पहली बार इस पुस्तिका में पढ़ेंगे। 'जीवनदान की भूमिका' में उन्होंने अपने क्रमिक मानस-परिवर्तन का चित्र प्रस्तुत किया है।

जयप्रकाशजी द्वारा जीवनदान की इस ऐतिहासिक घोषणा के बाद सम्मेलन का सारा रंग और रुख बदल गया। निर्धारित कार्यक्रम में और भी लोगों के नाम बोलनेवालों में थे, पर बदली हुई परिस्थिति में अब विनोबा ही कुछ कह सकते थे। विनोबा बोले, पर उनके मन में भी भावनाओं का प्रवाह बह रहा था। जयप्रकाशजी के जीवन-समर्पण की तुलना 'रुक्मिणी-पत्रक' के प्रसंग से करते हुए उनका गला रुँध गया—आँखें भर आयीं ! विनोबा के मनोमन्थन का परिणाम दूसरे दिन सबेरे के अधिवेशन में पढ़े गये उनके खुद के जीवन-समर्पण के पत्र के रूप में प्रकट हुआ।

इस प्रकार 'जीवनदान' की पावन गंगा किन परिस्थितियों में, किस तरह प्रकट हुई—इस घटना-चक्र का चित्र इस पुस्तक के पहले अध्याय में मिलेगा। इस अध्याय में स्वयं जयप्रकाशजी के शब्दों में दी हुई 'जीवनदान की भूमिका' के बाद बोध-गया-सम्मेलन का उनका वह भाषण दिया है, जिसके अन्त में उन्होंने जीवनदान की घोषणा की। उसके बाद विनोबाजी का वह भाषण, जिसका ऊपर जिक्र किया है, और अन्त में उनके द्वारा जयप्रकाशजी को दिया गया वह ऐति-हासिक पत्र, जिसमें वर्षों पहले से समर्पित जीवन के दुबारा सम-र्पण (Re-dedication) की घोषणा करके विनोबा ने सामाजिक मर्यादा-पालन का अनुपम उदाहरण पेश किया है। इस प्रकार पहला अध्याय जीवनदान यज्ञ की शुरुआत का इतिहास है।

दूसरे अध्याय में 'जीवनदान' के तात्त्विक तथा व्यावहारिक पहलुओं पर जयप्रकाशजी के विचार दिये गये हैं, जिससे पाठक समझ सकें कि जीवनदान का मतलब क्या है और जीवन-दान करनेवाले को क्या करना चाहिए। तीसरा अध्याय 'जीवन-दानियों से' है, जिसमें विनोबा, जयप्रकाशजी तथा धीरेन भाई के विचार मार्गदर्शन की दृष्टि से दिये गये हैं।

आशा है, इस पुस्तक के प्रकाशन से जीवनदान का स्वरूप लोगों के सामने स्पष्ट हो जायगा और 'भूदान-मूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रान्ति' के युग-धर्म के लिए संत विनोबा तथा श्रद्धेय जयप्रकाशजी के चरण-चिह्नों पर चलकर जीवन-समर्पण करने की प्रेरणा उन्हें मिलेगी।

गया (बिहार) **—सिद्धराज ढड्ढा**

२ अक्तूबर, १९५५ सहमंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ

अनुक्रम

जीवन-समर्पण   : १ :

जीवनदान की भूमिका

एक समाजवादी की हैसियत से देश की जमीन के सही बँटवारे का सवाल मेरे सामने शुरू से ही रहा है। समाजवादी पार्टी का आर्थिक कार्यक्रम बनाने का मुझे जब-जब मौका मिला, तब-तब भू-वितरण का विषय मैंने उसमें अवश्य रखा। पिछले आम चुनाव के अवसर पर समाजवादी पार्टी के घोषणा-पत्र में भी इस विषय को बड़े महत्त्व का स्थान दिया गया था।

भू-वितरण का तरीका हम लोगों के सामने कानून का ही तरीका था। भूमिहीनों का संगठन हो, वितरण का आन्दोलन चले, जगह-जगह जमीन के बारे में संघर्ष किया जाय और या तो चुनाव जीतकर शासन अपने हाथ में लिया जाय तथा जमीन का बँटवारा किया जाय अथवा ऐसी परिस्थिति पैदा की जाय कि चाहे जिस पक्ष का शासन हो, उसे भू-वितरण करना ही पड़े। कांग्रेस-सरकार ने अपने भू-सुधार के कार्यक्रम में वितरण को स्थान नहीं दिया था। इसलिए समाजवादी पार्टी को अपने प्रचार-कार्य के लिए यह एक बड़ा मुद्दा मिल गया था।

सन् '५२ में पचमढ़ी में समाजवादी पार्टी का सम्मेलन हुआ था, जिसके लिए भू-वितरण का प्रस्ताव मैंने लिखा था। मेरे मन में उस वक्त यह था कि सारे देश में भू-वितरण के लिए एक

जोरदार आन्दोलन चलाया जाय। इसके लिए पचमढ़ी में एक अखिल भारतीय कमेटी भी बना दी गयी थी। इधर उस समय तक भूदान-आन्दोलन शुरू हो चुका था। यद्यपि उसमें मैं प्रत्यक्ष भाग नहीं ले रहा था, फिर भी उस प्रस्ताव में भूदान-आन्दोलन का स्वागत किया गया था और उसके लिए पार्टी का समर्थन भी प्राप्त किया गया था। उस समय तक मेरे सामने यह स्पष्ट नहीं था कि समाजवादी पार्टी का भू-वितरण आन्दोलन और भूदान-आन्दोलन किस प्रकार साथ-साथ चलेंगे और उनमें परस्पर का संबंध क्या होगा; लेकिन इतना तो था ही कि समाजवादी आन्दोलन भी शान्तिमय तरीके से चलाया जानेवाला था। फिर भी उसके पीछे वर्ग-संघर्ष की भावना थी।

पचमढ़ी के बाद ही मैं विनोबाजी से मिलने के लिए बाँदा गया। उनसे बातचीत करके भूदान-आन्दोलन के दर्शन और कार्य-पद्धति को समझने की कोशिश की। उसके बाद गया जिले में मुझे भूदान का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। ज्यों-ज्यों इस आन्दोलन की गहराई में प्रवेश करता गया, मुझे यह प्रतीत होने लगा कि देश की भू-समस्या के हल करने का इससे बढ़कर कोई दूसरा तरीका हो नहीं सकता। किसी एक पक्ष द्वारा भू-वितरण का आन्दोलन चलाने की अपेक्षा विनोबाजी का पक्षातीत आन्दोलन चलाने का रास्ता मुझे ज्यादा सही लगा। धीरे-धीरे मुझे तो यहाँ तक प्रतीत होने लगा कि विनोबाजी ने न सिर्फ भू-समस्या का हल हमारे सामने रखा है, बल्कि भूदान-आन्दोलन अहिंसक तरीके से सामाजिक-क्रांति तथा समाज के नव-निर्माण का पहला कदम है। महात्माजी ने अहिंसक क्रांति और नव समाज-

निर्माण के सैद्धान्तिक विचार देश और दुनिया के सामने रखे थे, लेकिन उनके जाने के बाद धीरे-धीरे यह चीज आँखों से ओझल होने लगी थी और देखने में नहीं आ रहा था कि उन विचारों पर कहीं अमल हो रहा हो। बल्कि होने यह लगा था कि राजसत्ता हाथ में आने के बाद उनके अनुयायियों ने गांधीजी का रास्ता छोड़कर पाश्चात्य ढंग के राज्यतंत्र का रास्ता अख्तियार कर लिया। राज-शक्ति के द्वारा ही समाज-परिवर्तन का काम वे करना चाहते थे। यह भी दीख रहा था कि समाज-रचना का कोई स्पष्ट रूप भी उनके सामने नहीं था। ऐसा लगता था कि वे वर्तमान समाज में थोड़ा-बहुत फेर-बदल करके उसे कायम रखना चाहते हैं, जैसे किसी जर्जर मकान में इधर-उधर चिप्पी लगाकर उसे खड़ा रखा जाय।

इस समय मेरे मन में एक नया चिन्तन चल रहा था। मेरे विचारों का विकास एक और ही दिशा में हो रहा था। पहले मार्क्सवाद पर मेरी आस्था थी। लेकिन इधर कुछ दिनों से मुझे ऐसा विश्वास होने लगा था कि भौतिकवादी दर्शन के आधार पर समाजवादी समाज-रचना नहीं हो सकती। मुझे यह साफ दीखने लगा था कि गांधीजी का यह कहना बिल्कुल सही था कि मानव-निर्माण के बिना समाज-निर्माण असंभव है और मानव-निर्माण का आधार भौतिकवाद नहीं बन सकता। यहाँ तक तो मेरा विचार भूदान-आन्दोलन में प्रवेश करने के पहले पहुँच चुका था। आगे चलकर जब मुझे भूदान-आन्दोलन का अधिक परिचय हुआ, तो मैंने अनुभव किया कि मानव-निर्माण अथवा मानवीय क्रांति के लिए यह एक महान् प्रयास है। समाजवादी आन्दोलन में

मानव-निर्माण का कोई कार्यक्रम दीखता नहीं था। समाजवादी तंत्र के जो नमूने दुनिया में जहाँ-जहाँ दिखलाई पड़े या जिस तंत्र का स्वरूप समाजवादी विचारधारा में पाया जाता था, उससे मुझे संतोष नहीं था। समाजवादी समाज-रचना में राज्य-शक्ति का विस्तार होगा, ऐसा मुझे लगता था। समाजवाद को राज्यवाद से कैसे बचाया जाय, यह प्रश्न आज भी हर विचारवान समाजवादी के सामने है। इस प्रश्न का समाधानकारक उत्तर महात्माजी के विचारों और विनोबाजी के इस क्रांतिकारी आन्दोलन में मुझे मिला। धीरे-धीरे मुझे विश्वास हो गया कि समाजवाद के सही उद्देश्य और सही मूल्य महात्माजी के सर्वोदय में मिलेंगे। सर्वोदय की स्थापना राज-शक्ति के द्वारा नहीं हो सकती, बल्कि यह भूदान-आन्दोलन तथा उसी प्रकार दूसरी प्रक्रियाओं के द्वारा नैतिक, वैचारिक तथा जीवन-मूल्यों में क्रांति करके ही की जा सकती है। इतनी दूर चलकर अब मैं ऐसी जगह पहुँच गया था कि इस बात का संकल्प करूँ और अन्य सभी कामों से अपने को खींचकर सारा समय अहिंसक क्रांति द्वारा सर्वोदय-निर्माण में लगा दूँ। यह मेरी मनःस्थिति थी कि जब बोधगया-सम्मेलन के मंच पर बोलने के लिए खड़ा हुआ, तो अनायास ही संकल्प के वे शब्द मेरे मुँह से निकल पड़े। मुझे ऐसा कुछ नहीं लगा कि मैं कोई नया कदम उठा रहा हूँ।

उस समय अपने मन में एक और विचार मैं देख रहा था कि भूदान में काम करनेवाले इतने थोड़े हैं, और उनमें भी बहुत कम लोग हैं, जो पूरी श्रद्धा से अपना सारा समय दे रहे हों। मुझे लगता था कि जब तक नये कार्यकर्ता बड़ी तादाद में इस आन्दोलन

के विचारों और आदर्शों से प्रभावित होकर नहीं आते, तब तक यह आन्दोलन तेजी से नहीं बढ़ता।

कार्यकर्ताओं के शिविरों और सभाओं में यह प्रणाली चल पड़ी थी कि उनसे संकल्प कराया जाता था कि कौन कितना समय इस काम में देता है। कोई कहता था सन् '५७ तक, कोई दो साल, कोई एक साल और कोई-कोई साल में एक माह या माह में एक सप्ताह समय देने की बात करता था। मुझे लगता था कि ऐसे निर्बल संकल्प से हमारा काम पूरा होनेवाला नहीं है। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव से यह देख रहा था कि जो भी व्यक्ति भूदान-आन्दोलन के पीछे रहे हुए विचार को अच्छी तरह समझ लेगा, वह यह निश्चय किये बगैर नहीं रह सकता कि अपना सारा जीवन इसीमें खपा देना चाहिए। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि जो दो-चार वर्षों का या थोड़े समय के लिए अपना पूरा या आंशिक समय देते हैं, उनका कुछ मूल्य नहीं, अथवा उनसे आन्दोलन को शक्ति नहीं मिलती। लेकिन क्रांति के लिए जिस दृढ़ संकल्प, लगन और आग की जरूरत है, वह यहाँ नहीं है, यह मानना ही पड़ेगा। क्रांति-सेना की रीढ़ ऐसे ही लोगों से बन सकती है, जिन्होंने क्रांति-वेदी पर अपना जीवन-समर्पण कर दिया हो। मेरे जीवन-समर्पण के पीछे यह प्रेरणा भी थी कि इस प्रकार के जीवन-समर्पण को एक नया आह्वान किया जाय।

समाजवादी क्षेत्रों तथा देश के दूसरे क्षेत्रों में भी यह कहा जाता है कि राजनीति से मेरे हटने के कारण राजनीति को और खासकर समाजवादी आन्दोलन को बहुत क्षति पहुँची है।

लोग ऐसा इसलिए समझते हैं कि आज की प्रचलित राजनीति पर ही उनका सारा विश्वास टिका हुआ है। मैंने तो समझ लिया है कि जिस जगह हमें जाना है, जैसा समाज हमें बनाना है, वह आज की राजनीति से हो ही नहीं सकता। यह राजनीति इसमें सहायक हो सकती है, लेकिन इसका असली काम तो गांधी-विनोबा के ढंग से ही हो सकता है। ऐसी स्थिति में मेरे लिए राजनीति का स्थान गौण हो जाता है। यदि जनता भी इस विचार को समझ ले, तो उसकी दृष्टि भी आज जो राजनीतिक पक्षों और राज-केन्द्रों की ओर लगी है, वहाँ से हट जायगी और वह स्वयं पर भरोसा करने लगेगी। ऐसी हालत में राजनीति के पीछे जनता नहीं, बल्कि जनता के पीछे राजनीति भागेगी। जन-शक्ति का निर्माण होगा, जन-क्रांति जगेगी और नये समाज का निर्माण गाँव-गाँव, घर-घर से, बल्कि व्यक्ति-व्यक्ति से शुरू होगा।

कुछ लोग समझते हैं कि मेरे इस कदम से समाजवाद की शक्ति क्षीण होगी। लेकिन उसका तो सवाल ही नहीं उठता। सन् '५७ में अगले चुनाव होंगे। उस समय तक यदि भूदान क्रांति सफल हो जाती है, पाँच करोड़ एकड़ जमीन मिल जाती है, हजारों गाँवों में जमीन का ग्रामीकरण हो जाता है, नये समाज के नये विचार, नयी सभ्यता के नये मूल्य वातावरण में व्याप्त हो जाते हैं, तो अगले चुनाव में समाजवाद की बड़ी से बड़ी जीत इसके सामने फीकी पड़ जानेवाली है। चुनाव की जीत तो केवल राजनैतिक होगी, लेकिन भूदान-आन्दोलन की सफलता प्रत्यक्ष समाजवाद की क्रांति होगी। इस क्रांति से समाजवाद

की इतनी शक्ति बढ़ेगी कि जितनी समाजवादी पक्ष के दायरे में सीमित रहकर किसी प्रकार भी बढ़ना संभव नहीं है।

दु:ख का विषय है कि यह विचार अभी राजनीतिक पक्षों ने समझा नहीं है। चाहे वे समाजवादी पक्ष के हों, चाहे कांग्रेस पक्ष के हों अथवा किसी दूसरे पक्ष के ही क्यों न हों। उन्हें यह नया विचार, नयी क्रांति नजदीक से और गहराई से समझनी चाहिए, ऐसा मेरा नम्र निवेदन है।

—जयप्रकाश नारायण

जीवनदान की गंगोत्री

मैं आपके सामने कुछ अनिच्छा से बोलने आया हूँ। आना इसलिए पड़ा कि बोलने का हुक्म हुआ है; और मैंने सोचा कि न बोलने से कुछ भ्रम हो सकता है। अनिच्छा इसलिए थी कि कुछ बातों से मन जरा दुखी हुआ है।

बिहारवासी होने के नाते मैं अत्यन्त लज्जित होकर आपके सामने आया हूँ। बिहार ने बत्तीस लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का संकल्प किया था। हम लोगों ने बाबा को अठारह महीने तक कष्ट दिया, बिहार के गाँव-गाँव में उन्हें घुमाया, जब कि वे दूसरी जगह बड़े-बड़े काम कर सकते थे। यह हमारा सौभाग्य है कि उनके साथ रहने का हमें मौका मिला। परन्तु जिस कारण यह हुआ है, उस पर हम गौरव कदापि महसूस नहीं कर सकते। यह बत्तीस लाख एकड़ का जो संकल्प था, वह ऐसा कौन-सा

बड़ा संकल्प था, जो पूरा नहीं हो सकता था? यहाँ की प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी ने संकल्प करके उसे अपना लिया था और यहाँ की प्रजा-समाजवादी पार्टी ने भी इस आन्दोलन का समर्थन किया था। इन दोनों पक्षों के पास कार्यकर्ताओं का अपार बल है। कार्यकर्ताओं की कोई कमी नहीं है। पर इतना होने पर भी क्या कारण है कि हम यह संकल्प पूरा न कर सके? हजारीबाग जिले को छोड़कर दूसरे किसी भी जिले का कोटा पूरा नहीं हुआ है। वहाँ भी पड़ती जमीन अधिक है, इसलिए कुछ ज्यादा जमीन प्राप्त हुई है। इसके क्या कारण हैं, इस पर सोचना चाहिए। बिहार का ही नहीं, सारे देश का यह प्रश्न है।

कानून की असमर्थता

पिछले कुछ महीनों का इस आन्दोलन का मेरा जो अनुभव है, उससे मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि जिस श्रद्धा से मैं इस आन्दोलन में आया, वह श्रद्धा दिन-प्रतिदिन दृढ़ होती जा रही है। आज देश में विवाद चलता है कि इस आन्दोलन से समस्या हल होगी या नहीं, तो बाबा विनोद में कह देते हैं कि समस्या हल होने के पहले कहीं मेरी ही समस्या हल न हो जाय। लेकिन अपने प्रत्यक्ष अनुभव से मैं इस नतीजे पर आया हूँ कि केवल भूमि की ही नहीं, बल्कि जीवन और समाज की सारी समस्याएँ हल करने की शक्ति इस प्रक्रिया में है। हमारे कुछ मित्र-सुहृद्, जो यहाँ पर आये हैं, वे कहते हैं कि यह सवाल तो कानून से ही हल हो सकता है। इस मान्यता पर सब लोग एक ही स्थान पर खड़े हैं। काँग्रेसवाले, प्रजा-समाजवादी, कम्यूनिस्ट, सब कहते हैं

कि यह समस्या तो कानून से ही हल होगी, बाबा तो केवल हवा तैयार कर रहे हैं। लेकिन मेरा यह खयाल है कि कानून इस समस्या के सामने अपने को अशक्त पायेगा। कानून के जरिये यह समस्या हल नहीं हो सकती। जमीन के बँटवारे का सवाल तो कानून के जरिये हल हो सकता है, परन्तु इसमें कई जटिल प्रश्न ऐसे हैं, जिनका उत्तर कानून नहीं दे सकता। कानून से जमीन का बँटवारा भले ही हो जाय, परन्तु क्या जमीन के बँटवारे के लिए ही यह आन्दोलन हो रहा है? जो कार्यकर्ता हैं, वे जानते हैं कि यह आन्दोलन तो गहराई में जाने के लिए हो रहा है। सारे जीवन को पलटने के लिए यह आन्दोलन हो रहा है। क्या कानून कभी यह सिखा सकता है कि अमुक पर प्रेम करो? और कानून के कारण क्या कोई प्रेम करता है? क्या कानून कभी यह भी सिखा सकता है कि अच्छे बनो और क्या कोई कानून के कारण अच्छा बन भी सकता है? क्या कानून से छुआछूत की समस्या हल हुई है या आज छोटी-छोटी बच्चियों की जो शादियाँ हो रही हैं, उनको उससे हल किया जा सका है? यह तो सब जन-शक्ति से, जनता का विचार बदलने से ही हो सकता है। यदि उसके पीछे जनता की सम्मति न हो, तो कानून पंगु बन जाता है।

हमारा अन्तिम ध्येय यह है कि गाँव की सारी भूमि सबकी बने। उस पर सारे गाँव का स्वामित्व रहे। सारा गाँव उसका मालिक बने। क्या यह सारा कानून से हो सकता है? किस दल में यह शक्ति है कि वह कानून से यह सब करा ले?

कानून बनानेवाले में एक शक्ति तलवार की भी होती

है; परन्तु तलवार से एक समस्या हल होती हुई दिखाई देती हो, तो दूसरी दस समस्याएँ खड़ी होती हैं। अतः तलवार का भी काम यहाँ पर चलनेवाला नहीं है। उससे यह काम हर्गिज नहीं हो सकता है। यह काम तो उसी पद्धति से हो सकता है, जैसे आज हो रहा है। दूसरी किसी भी पद्धति से वह नहीं हो सकता।

मेरा दुःख

बहुत दुःख के साथ यह कहना पड़ता है कि हम एक पक्ष में हैं, इसलिए काँग्रेसवालों के और हमारे बीच एक दीवार खड़ी हुई है। इसमें मेरा दोष हो सकता है, परन्तु चाहे जितनी कोशिश करने पर भी मालूम होता है कि यह दीवार तो है ही। समाजवादियों ने भी इस आन्दोलन का समर्थन किया है। परन्तु मैं देखता हूँ कि जब मैं घूमता हूँ, तब तो हमारे साथी लोगों में जरा कुछ हलचल पैदा होती है और वे दौड़-धूप करने लग जाते हैं, लेकिन जहाँ मेरा दौरा खतम हो जाता है, वहाँ वे घर में चले जाते हैं और ठंढे पड़ जाते हैं। मैंने उनको यह कहते भी सुना है कि "जयप्रकाश तो अब गांधीवादी, सुधारवादी बन गया है। वह अब क्रान्तिकारी नहीं रहा है। क्या कभी दान माँगकर जमीन का मसला हल हो सकता है?" यह सुनकर दुःख होता है। बाबा ने भी कई दफा इस बारे में कहा है, पर अब तो उन्होंने वह कहना भी छोड़ दिया है। जब कोई देखता है कि उसके कहने से कोई परिणाम नहीं होता है, तो कहना छोड़ देता है। बाबा कहते थे कि "यह कैसी सेना

है कि जिसका सेनापति तो आगे बढ़े और सेना पीछे ही रहे!"

अगर दोनों पक्ष जुट जाते!

बिहार में काँग्रेस और समाजवादी, दोनों पक्षों में काफी कार्यकर्ता हैं। रचनात्मक कार्यकर्ताओं की बात तो मैं नहीं करता, क्योंकि वे लगन और सातत्य से यह कार्य कर रहे हैं। परन्तु यदि काँग्रेस और प्रजा-समाजवादी दल के कार्यकर्ता इस काम में जुट जाते, तो वे इतना काम कर पाते कि जो कानून से दस वर्षों में भी नहीं हो पाता। तब तो बत्तीस लाख एकड़ का कोटा जरूर पूरा हो जाता। लेकिन बाबा गया में एक बार, दो बार, तीन बार आये और अब चौथी बार आये हैं। मैं भी यहाँ तीन बार यात्रा कर चुका हूँ। तो हर बार यही अनुभव आता है कि हमारे दौरे के समय, या अनुग्रह बाबू, कृष्णवल्लभ बाबू, श्रीबाबू, इनमें से किसीका भी दौरा हो, तो लोग दौड़-धूप करते हैं, दानपत्र इकट्ठा करते हैं और दौरा खतम होने के बाद फिर से ठंढक हो जाती है। एक बार ज्वार उठे और गिर जाय, तो उसे फिर से ऊपर उठाना कठिन हो जाता है।

आत्मसंशोधन का क्षण

१९५२ के दिसम्बर महीने में मेरा गया में पहला दौरा हुआ था। उस समय जो छह हजार एकड़ के दान जाहिर हुए थे, उनमें से अभी तक तीन हजार एकड़ के दानपत्र भी प्राप्त नहीं

हुए हैं। जमीन माँगी हुई है, मिली हुई है, सिर्फ दान-पत्र भरवाना बाकी है। लेकिन यह भी अब तक नहीं हुआ है। इसका दोष किसे दें? दान देनेवाले का दोष नहीं है, दोष तो हमारा है। इसका मतलब यह नहीं कि दान माँगने पर हमेशा वह मिल ही जाता है। कभी-कभी हम छठा हिस्सा माँगते हैं, तो देनेवाला बीसवाँ हिस्सा देने के लिए तैयार होता है। और कभी-कभी मजबूर होकर हमारे कार्यकर्ता उसे स्वीकार भी कर लेते हैं। माँगने पर हर कोई छठा हिस्सा ही देता है, यह बात तो नहीं है। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि उसकी वजह से हमारा दिल ही टूट जाता है। इन सब बातों के होते हुए भी मैं ढिठाई से कहना चाहता हूँ कि अगर हम लोगों ने निरंतर काम किया होता, तो आज हम गौरव के साथ एलान कर सकते थे कि बत्तीस लाख अच्छी जमीन और बीस-पचीस लाख दूसरी जमीन प्राप्त हुई है। गया में काफी शक्ति लगी और यहाँ पर काफी जमीन मिली। क्या गया जिले के लोग अच्छे दानी हैं और पटना, शाहाबाद, मुँगेर आदि जिले के लोग कुछ कम दानी हैं? ऐसी बात नहीं, लोग तो हर जगह एक-से होते हैं। हर जगह कंजूस भी होते हैं और दानी भी होते हैं। तो भी गया जिले में ज्यादा काम हुआ और दूसरे जिलों में नहीं हुआ, इसका कारण यही है कि हमने काम नहीं किया। आप सब लोग हजारों की तादाद में यहाँ पर आये हुए हैं। आप अपनी छाती पर हाथ रखकर अपने मन से पूछिये कि चांडिल-सम्मेलन को कितने महीने बीते? इन दिनों में आपने भूदान के काम के लिए कितना समय दिया और कितनी लगन से आपने काम किया? अगर

आगे भी ऐसा ही काम करोगे, तो फिर काम पूरा होने की क्या आशा रखी जा सकती है?

पक्षवालों से

आज हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न यही है कि कार्यकर्ता उत्साह और लगन से काम कैसे करें? यहाँ पर जो भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्ष हैं, उनके पास कार्यकर्ता भी हैं। पर उनके अपने कार्य भी होते हैं और भूमिहीनों को सीधे भूमि देने का यह प्रत्यक्ष काम न करके असेम्बली और पार्लियामेंट में जाकर और वहाँ कानून बनाकर, द्राविड़ी प्राणायाम करके गरीबों को भूमि देने का काम करने का ही वे सोचते हैं। परन्तु हम तो आज प्रत्यक्षतः वही काम भूदान के द्वारा कर सकते हैं। जैसे तलवार से प्रत्यक्ष काम होता है, उसी तरह बिना तलवार के, बिना कानून के, जमीन माँगकर लाखों-करोड़ों भूमिहीनों को जमीन देना कम महत्त्व की बात नहीं है। परन्तु पक्षवाले लोग इस बात को नहीं समझते हैं और जो झगड़े चलते हैं, उन्हींको ये अधिक महत्त्व देते हैं। यह दुर्भाग्य की बात है। मैं आशा करता हूँ कि धीरे-धीरे हमारा दिमाग बदलेगा और राजनैतिक पक्षों के लोग इस आन्दोलन में आयँगे। जैसे-जैसे इसके क्रान्तिकारी और मंगल स्वरूप का दर्शन होता जायगा, वैसे-वैसे हम लोग आते जायँगे। परन्तु यहाँ से हम सब यह समझकर अपनी जगह जायँ कि जिन पक्षों के लोगों ने इसका समर्थन किया है, अगर लगन से काम नहीं करेंगे, तो वे अपने को ही धोखा देंगे।

पक्षों की दृष्टि छोड़ें

पक्षों के लोग भूदान का काम इस दृष्टि से न करें कि इससे उनके पक्ष की प्रतिष्ठा बढ़ती है; बल्कि इस दृष्टि से करें कि इससे प्रत्यक्ष रूप से गरीबों को भूमि मिलती है। प्रत्यक्ष गरीबों को भूमि मिल जाती है, इसीमें क्या सबकी प्रतिष्ठा नहीं आती है? हमें इस काम से कोई नेतागिरी तो नहीं करनी है। इससे कोई असेम्बली या पार्लियामेंट की सीट मिलेगी, अपने पक्ष का हित सधेगा, इस दृष्टि से भी काम नहीं करना चाहिए। बल्कि हमें तो इस आन्दोलन के ऊँचे आदर्शों को सामने रखकर, इसके बुनियादी उसूल ध्यान में रखते हुए पक्ष-रहित भाव से ही यह काम करना चाहिए।

युग का तकाजा

जब हम कहते हैं कि तेजी से काम करना चाहिए, तो कुछ लोग आक्षेप उठाते हैं कि इधर तो आप हृदय-परिवर्तन की बात करते हो और उधर कहते हो कि तेजी से काम करो, तो इन दो बातों में कैसे मेल बैठता है? लेकिन जमाना है, जो हमें आवाहन कर रहा है कि तेजी से काम करो, नहीं तो आपके पीछे जो लोग खड़े हैं, वे आपकी छाती पर चढ़कर आगे बढ़ेंगे। उनके हाथ में तलवार है। इसलिए अहिंसा के लिए बहुत कम समय बचा है। इतिहास यह राह नहीं देखेगा कि भारत में एक संत अहिंसा का प्रयोग कर रहा है, तो जल्दी नहीं करनी चाहिए।

जीवन-दान !

तो कार्यकर्ताओं की संख्या कैसे बढ़े, इस प्रश्न पर हमें सोचना है। किस तरीके से नये कार्यकर्ता इस तरफ खींचे जा सकते हैं, इस पर सोचना है। जिस आन्दोलन में नये कार्यकर्ता खींचने की शक्ति नहीं होती है, उसमें आन्तरिक शक्ति नहीं है, ऐसा कहना पड़ेगा। परन्तु हम कहते हैं कि इस आन्दोलन में तो बड़ी शक्ति है। पिछले साल चांडिल-सर्वोदय-सम्मेलन में जो प्रस्ताव पेश किया गया था, उसमें तरुणों से और खासकर विद्यार्थियों से अपील की गयी थी कि कम-से-कम एक साल का समय भूदान-यज्ञ के लिए दीजिये। अब हमें सोचना है कि क्या इस तरह एक साल या पाँच साल देने से काम चलेगा? इसमें तो **जीवन-दान** ही देना होगा। ऐसे जीवन-दानी कार्यकर्ताओं का आवाहन इस सम्मेलन से होना चाहिए। मैं ऐसे कार्यकर्ताओं को आवाहन करता हूँ; यद्यपि आज मेरी वाणी बहुत शिथिल है। चांडिल-सम्मेलन के बाद अखबारों में रिपोर्ट आयी थी कि जयप्रकाश ने पार्टी छोड़कर एक साल तक भूदान का काम करने का निश्चय किया है। उस समय मैंने वैसा कुछ नहीं कहा था। एक साल, दो साल देने की कोई बात मैंने नहीं कही थी। लेकिन आज मैं यह कह रहा हूँ कि मुझे भी यह सौभाग्य प्राप्त है कि मेरा नाम उन जीवन-दानी कार्यकर्ताओं में शामिल है।

—जयप्रकाश नारायण

आशीर्वाद

अभी हम लोगों ने एक व्याख्यान सुना, जिसमें हृदय बोल रहा था। मुझे रुक्मिणी की पत्रिका का स्मरण हुआ। रुक्मिणी ने भगवान् श्रीकृष्ण को एक पत्रिका लिखी थी। उसमें रुक्मिणी भगवान् को लिखती है: "चाहे मुझे सौ जन्म लेने पड़ें, तो भी मैं लूँगी और प्राणों का परित्याग करती रहूँगी, शरीर को कृश करती हुई; लेकिन तुझको ही वरूँगी।" हृदय को बहुत सुख होता है, ऐसे मंगल निश्चय का वाक्य सुनकर। मैंने तो माना है कि यह यज्ञ सफल होते-होते हमारे जीवनों को ही सफल बनायेगा।

आज की राजनीति की छोटी निगाह

आप लोग जानते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण एक बड़े राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने गीता में कह रखा है कि हममें सत्कार्य करते हुए अपने लिए उससे कोई लाभ पाने की या दूसरे किसी तरह से कोई स्वार्थ साधने की वृत्ति नहीं होनी चाहिए। पर इन दिनों के छोटे-छोटे राजनीतिज्ञ हमें सुनाते हैं कि राजनीति में यह विचार नहीं चलता है, राजनीति में तो जो भी कोई छोटा-मोटा सत्कार्य किया जाय, उससे पूरा फल पाने की कोशिश करनी चाहिए। जैसे कोई दुग्ध-प्रेमी गाय को दुहते हैं, तो आखिरी बूँद तक दुहते हैं, वैसे ही हमें भी करना चाहिए। हमारा जो भी सत्कार्य होगा, उसका हमें पूरा-पूरा लाभ उठाना है। आज के राजनीतिज्ञ ऐसी बातें कहते हैं, पर जिनकी वाणी से गीता निकली, वे भी तो बड़े राजनीतिज्ञ थे। मैंने भिन्न-भिन्न पक्षों के नेताओं को और

सेवकों को बहुत समझाने की कोशिश की है कि छोटी नजर से मत देखियेगा, कुछ दीर्घ दृष्टि से सोचियेगा और इस काम में अपने लिए या अपना जो माना हुआ पक्ष है, उसके लिए कोई लाभ उठाने की नीयत मत रखियेगा। इस तरह समझाने की मैंने बहुत कोशिश की है। कुछ नेताओं से मैंने एकांत में बात भी की है और मुझे कृतज्ञतापूर्वक कबूल करना चाहिए कि उन्होंने मेरी बात बहुत गौर से सुनी और वे कबूल भी करते हैं कि वह बात ठीक है। परन्तु वे कहते हैं कि हमें कुछ आदत हो गयी है और उस आदत के कारण पुराने ढंग से काम हो जाता है। ऐसे जो भी लोग हैं, मेरे मन में उनके लिए करुणा है। मैं उन्हें दोष नहीं देता।

रचनात्मक कार्यकर्ताओं से

पर जब मैं देखता हूँ कि हमारे जो रचनात्मक काम करने-वाले कार्यकर्ता हैं, उनके बीच भी छोटे-छोटे अहंकार काम करते हैं, एक-दूसरे के विषय में शंकाशीलता बनी रहती है, दूरी भाव होता है, तब मुझे उसका दुःख होता है। मैं मानता हूँ कि हम लोग, जो गांधीजी के नाम पर काम करते हैं, रचनात्मक काम को जिन्होंने अपना स्वधर्म माना है, वे अगर सब अहंकार छोड़कर परिशुद्ध भाव से काम करें, तो जिन्हें हर चीज में कोई-न-कोई लाभ उठाने की आदत हो गयी है, वे लोग भी धीरे-धीरे अपनी आदत को छोड़ेंगे और शुद्ध भावना से काम करेंगे। इसलिए इस विषय में मैं निराश नहीं हूँ। हमें शुभ संकल्प करना चाहिए।

जयप्रकाश का अनुकरण करें

दीख तो यह रहा है कि इस एक काम से बहुत से दूसरे काम करने का मौका सहज ही मिलनेवाला है। उस दिन मैंने कहा था कि मुझे मालूम नहीं कि भूदान-यज्ञ हमें कहाँ से कहाँ ले जायगा। किन-किन कामों की प्रेरणा देगा, कितना विशाल उद्योग यह हमसे करायेगा, इसकी कल्पना आज नहीं की जा सकती। परन्तु मैं फिर से परमेश्वर को साक्ष्य रखकर आप सब लोगों के सामने अपनी प्रतिज्ञा दुहराता हूँ। इस काम में हमें काया, वाचा, मन और बुद्धि, सब लगा देनी है। कार्यकर्ता भी हमें बहुत-बहुत मिलनेवाले हैं। आज एक संकल्प प्रकट हुआ है। उस कारण जो भान हुआ है—आत्मा की शक्ति का; वह हमारे लिए बड़ी भारी थाती है। एक बड़ी कमाई हासिल हुई है। दीख पड़ेगा कि जवानों को गये साल जो आवाहन किया गया था, उसका परिणाम इसके आगे बहुत वेग से सामने आयगा। वह परिणाम प्रत्यक्ष दिखेगा। मैं चाहता हूँ कि हम सब लोग ऐसे ही दृढ़-संकल्पी बनें, जैसे जयप्रकाश बाबू हुए हैं।

—विनोबा

जीवन-समर्पण

[दो ऐतिहासिक पत्र]

(१)

[सम्मेलन की अध्यक्षा श्री आशा बहन को लिखा हुआ पत्र]

प्रिय आशा बहन,

बाबा का एक पत्र आया है, जो साथ भेज रहा हूँ। जिन्होंने हम सबको प्रेरित किया है, वे ही मुझ जैसे नाचीज को जीवन-दान करें, इस पर कुछ कहा नहीं जाता। इतना ही कहूँगा कि इस अमूल्य दान को स्वीकार कर सकूँ, इसके लिए सर्वथा अयोग्य हूँ। हमें तो जीवन-दान, भगवान् के नाम पर, बाबा को ही करना है।

सर्वोदयपुरी, (बोधगया) आपका विनीत
२०-४-'५४ जयप्रकाश

(२)

[श्री विनोबा का पत्र]

श्री जयप्रकाश,

कल आपने जो आवाहन किया था, उसके जवाब में—

भूदान यज्ञ-मूलक, ग्रामोद्योग-प्रधान
अहिंसक क्रान्ति के लिए
मेरा जीवन समर्पण।

सर्वोदयपुरी, (बोधगया) —विनोबा
२० अप्रैल, १९५४

जीवनशुद्धि का संकल्प

(१)

जब जयप्रकाश बाबू ने बड़े प्रेम से, विनय से, सद्भाव से, हम लोगों के सामने जीवन-दान की बात रखी, तो मैं पिघल गया। सुबह उठते ही मैं सोचने लगा कि मुझे भी इसमें कुछ करना चाहिए। मैंने पत्र लिखा—'भूदानयज्ञ-मूलक, ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रान्ति के लिए मेरा जीवन समर्पण।'

इसमें कोई नयी बात तो मैंने नहीं की, पर अपना एक पूरा साध्य मैंने शब्दों में रख दिया—लिख दिया। केवल इन शब्दों में मैंने अपनी प्रतिज्ञा आप लोगों के सामने दुहरायी। जैसे दार्शनिकों को बिना शब्द-सिद्धि के समाधान नहीं होता, वैसी ही मेरी हालत है। इसलिए ठीक शब्द सोचने में कुछ समय लग गया। इसमें जो चन्द शब्द रखे हैं, उन पर भाष्य लिखा जा सकता है।

इस तरह एक प्रकार से कहा जा सकता है कि इस लिखने में मेरे लिए कोई नयी चीज नहीं। लेकिन खुद इसमें बहुत ही नयी चीज थी, जिसका इशारा हमारे मित्र आचार्य कृपालानी ने गत १९ अप्रैल, १९५४ को सर्वोदयपुरी के अपने सायंकालीन प्रवचन में किया। उन्होंने बड़े ही सूचक और अहिंसात्मक ढंग से सुझाया कि 'भाई, जीवन-दान तो करते हो, लेकिन इसका खयाल रखो कि गन्दी चीज तो अर्पण नहीं करते। अगर शुद्ध वस्तु अर्पण करनी है, तब तो जीवन-दान का विचार अच्छा है।' फिर भी ध्यान रहे कि जो जीवन-दान का विचार और संकल्प

करेगा, वह कचरे का दान तो नहीं कर सकता। इस वास्ते उस संकल्प का अर्थ भी जीवन-शुद्धि का ही संकल्प होता है।

कुछ लोगों को आचार्य कृपलानी का यह कहना मजाक ही लगा। पर बात ऐसी नहीं है। वह एक हृदय की और समझने की बात है। जो साहित्यिक और कला-रसिक होते हैं, वे अपनी बात ऐसे ढंग से रखते हैं कि उसमें कोई उपदेश दिया तो किसीको उसका आभास भी नहीं आ पाता, फिर भी उपदेश की पूर्ति हो जाती है।

हम-आपने परस्पर के समक्ष एक-दूसरों को साक्षी रखकर जीवन-अर्पण की जो प्रतिज्ञा की, वह जीवन-शुद्धि की भी प्रतिज्ञा है। और यही हमारे लिए विशेष बात हो जाती है। हमने अपना जीवन अब तक इस काम में और इसी तरह के दूसरे सार्वजनिक कामों में लगाया—ऐसा ही कहा जायगा। मेरे लिए तो जरूर ही कहा जायगा कि मैंने सिवा सार्वजनिक सेवा के कोई काम किया ही नहीं है। फिर भी भूदान-यज्ञ-आन्दोलन जैसे एक बिलकुल ही बुनियादी आन्दोलन के लिए, जिसमें काया पलटने का माद्दा है, जब हम जीवन-दान करते हैं, तो अभी तक चित्त-शुद्धि का जितना खयाल हमने रखा, उससे बहुत ज्यादा चित्त-शुद्धि का खयाल रखने की जरूरत है। इसीलिए इसमें हमारे लिए नयी चीज है।

भगवान् शंकराचार्य ने लिखा है कि 'भिक्षा में जो मिले, वही खाना चाहिए।' वे उसकी खूबी बताते थे कि 'भिक्षा एक बड़ी साधना है, कारण कोई भिक्षा न दे तो उससे सुख होता है या दुख? और अगर कोई भिक्षा दे तो उसका चित्त

पर क्या असर होता है ?—यह भिक्षा माँगनेवाले को रोज देखने को मिलता है।' अच्छी भिक्षा मिली, तो क्या भावना हुई और रद्दी मिली या कुछ भी न मिली तो क्या भावना हुई ? आदर के साथ मिली तो क्या और अनादर के साथ मिली तो क्या भावना हुई ? मानो रोज का खाना—वह भिक्षा माँगना, लेबोरेटरी (प्रयोगशाला) का एक प्रयोग ही हुआ। भिक्षा से यह देखने का मौका मिलता है कि उससे चित्त पर कैसा असर होता है ? इस तरह विश्लेषण कर उन्होंने कहा है कि संन्यासी के लिए बड़ा ही शुभप्रद कार्य-क्रम है।

इसी भिक्षा का कार्य-क्रम हमारे पास है। हम जमीन माँगने जाते हैं तो कोई उसे देता है, तो कोई गाली भी सुनाता है, कोई आदर करता है तो कोई अनादर भी, कोई कम देता है, कोई ज्यादा तो कोई ठगने की भी नीयत रखता है। प्रकृति में ऐसी पचासों प्रकार की वासनाएँ, भावनाएँ पायी जाती हैं। लेकिन हमारे मन में यह दृढ़ निश्चय रहा कि 'ये सारी भावनाएँ आत्मा में क़तई नहीं' तो हम बावजूद ऐसे अनुभवों के शान्त, अविचल ही रहेंगे। हमारी वाणी से कोई बेजा बात नहीं निकलेगी, अविनय का शब्द नहीं निकलेगा।

रोज भिक्षा माँगने का यह धंधा जिन्होंने शुरू कर दिया, उन्हें अगर हर्ष, शोक आदि प्रसंगों का रोज अनुभव आयगा, तो स्पष्ट है कि आत्म-परीक्षण के लिए भी उन्हें रोज मौका मिलेगा। यह हमारे लिए बड़ा उपयोगी कार्यक्रम है और इसमें ऐसे आत्म-शोधन की बहुत जरूरत है। इस दृष्टि से जिन्होंने जीवन-

दान दिया—यद्यपि उनमें कुछ लोग ऐसे जरूर हैं जो पहले से ही काम करते और बरसों से काम करते हैं, और कुछ नये भी हैं, फिर भी—उनमें जो पुराने हैं, उनके लिए भी यह प्रतिज्ञा नयी प्रतिज्ञा हो जाती है।

सर्वोदय सम्मेलन, बोधगया —विनोबा
२० अप्रैल, १९५४

(२)

जीवन-दान का आन्दोलन उठाकर हमने अभी जीवन-शुद्धि की साधना में पहला ही कदम बढाया है। अभी तो हमें बहुत दूर जाना है। हमें अहंकारशून्य होकर काम करना होगा। जीवन-दान देकर भी जो अपने को किसी विशिष्ट जाति के समझें और कहें कि 'हम तो जीवन-दानी हैं, तो उनका यह कहना अहंकार ही होगा। जीवन-दान का गर्व भी नहीं होना चाहिए। पहले भी ऐसे लोग थे, जिन्होंने अपना सारा जीवन भूदान-यज्ञ के कार्य में देने का संकल्प किया था। इसलिए अब हम लोगों ने जो जीवन-दान दिया, उस पर अहंकार करने का हमें कोई अधिकार नहीं है। अहंकार-रहित होकर हम इस बात को समझें कि हम जो कर रहे हैं, ईश्वर को अर्पित कर रहे हैं। वास्तव में हम उसकी वस्तु उसीको सौंप रहे हैं। उसीकी पूजा में जीवन लगाने का हमने निश्चय किया है, इस वृत्ति से कार्य करना होगा। रास्ते में बाधाएँ आयँगी, तकलीफें आयँगी, प्रलोभन भी आयँगे, पर उनसे हमारी परीक्षा ही होगी।

एक बात मैं आपसे अवश्य निवेदन करना चाहता हूँ। आपने जब अपना सारा जीवन इस पुण्य-कार्य में लगाने का निश्चय

किया है, तो उसके फलस्वरूप कोई ज्यादा या कोई बड़ी वस्तु आपको मिल सकती है, ऐसी धारणा या विचार आपके मन में नहीं उठना चाहिए। जिन्होंने जीवन-दान दिया है, उनका किसी चुनाव में भाग लेना, किसी पद की लालसा रखना या पैसे कमाने की इच्छा रखना कोई अर्थ नहीं रखता। जीवन-दानियों में ऐसे जो लोग हैं, जिनका राजनीति से सम्बन्ध है, और जो किसी पक्ष के सदस्य हैं, उनके बारे में मेरा तो विचार है कि वे सदस्यमात्र ही रहें, और अपने पक्ष के चुनाव में भी वे भाग न लें। उन्हें जीवन भर के लिए हर प्रकार के चुनाव से अलग रहना चाहिए और यह सब भी हमें इस भाव से नहीं करना चाहिए कि हम कोई त्याग कर रहे हैं। बल्कि इस भाव से करना चाहिए कि जो काम हम कर रहे हैं, वह एक महान् काम है और ऐसा काम करने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसलिए हम इसीमें आत्म-सन्तोष मानें।

सर्वोदय सम्मेलन, बोधगया —जयप्रकाश नारायण
२० अप्रैल, '५४

जीवनदान क्यों ? : २ :

बोधगया-सर्वोदय-सम्मेलन एक नये आन्दोलन के आरंभ के कारण उल्लेखनीय हुआ। वह आन्दोलन है—'जीवन-दान'। जब से विनोबाजी ने भूदान-आन्दोलन शुरू किया, तब से उसमें से साधन-दान, सम्पत्ति-दान, बुद्धि-दान, श्रम-दान, प्रेम-दान आदि अनेक शाखा-प्रशाखाएँ निकलीं। मूल आन्दोलन के ये सब स्वाभाविक विकास ही थे। बल्कि यह कहना चाहिए कि ये सब आरम्भ ही से भूदान-आन्दोलन में निहित और अन्तर्भूत थे। इसी प्रकार जीवन-दान भी उसीमें निहित था और जब कि परिस्थिति परिपक्व हुई और उसकी आकांक्षा पैदा हुई, तब वह अंकुरित हुआ। सच तो यह है कि ऐसी स्थिति पैदा हो गयी थी कि आन्दोलन को अनुप्राणित करने के लिए जीवन-दान का उदय न होता तो शायद, वह आन्दोलन उन्नत भूमिका पर नहीं पहुँचता।

आन्दोलन की इस प्रगति में थोड़ा हाथ मेरा भी रहा है। इसलिए मैं संक्षेप में उसे समझाना चाहता हूँ। इधर जो आलोचनाएँ निकली हैं, उनसे मालूम होता है कि जीवन-दान आन्दोलन को लोगों ने भलीभाँति समझा नहीं है। मेरे अपने विषय में व्यक्तिगत सफाई देने की बहुत कोई बात नहीं है और न उसकी जरूरत ही है। इतना कह देना काफी होगा कि मैंने जो निर्णय

किया वह उस क्षण के आवेश में नहीं किया। महीनों पहले से धीरे-धीरे मैं उसकी तरफ प्रेरित हो रहा था। और न यही समझना चाहिए कि उस कदम को उठाकर मैंने उन सब आदर्शों को तिलांजलि दे दी, जिन पर मैं चिरकाल से स्थिर था। बल्कि इस कदम का मतलब यह है कि मुझे यह महसूस हो गया कि मेरे आदर्शों की सिद्धि और संरक्षण भूदान अथवा गांधीजी के मार्ग से अधिक अच्छी तरह हो सकता है।

जीवन-दान का आशय

जीवन-दान का सम्पूर्ण आशय क्या है? किसी एक महान् कार्य के लिए अपना जीवन समर्पित कर देना कोई नयी बात नहीं है। बोधगया में जिन्होंने जीवन-दान की घोषणा की, उनमें से भी कई ऐसे हैं, जिनका जीवन पहले से ही समर्पित है। क्या उनके लिए पुनः समर्पण की आवश्यकता थी? और फिर इस तरह जीवन-समर्पण करनेवाले के लिए राजनीति से अलग रहना क्यों जरूरी समझा गया? ये और इस तरह के और भी सवाल उठते रहते हैं। मैं उनका जवाब देने की कोशिश करूँगा।

सबसे पहली बात यह है कि किसी सत्कार्य के लिए जीवन उत्सर्ग करने से 'जीवन-दान' करना कोई भिन्न वस्तु नहीं है। किन्तु यहाँ जीवन-दान शब्द का प्रयोग एक कार्यविशेष को जीवन अर्पित करने के अर्थ में किया गया है। पर यह समर्पण सिर्फ भूदान के लिए नहीं, जैसा कि अक्सर बतलाया जाता है, बल्कि भूदान में जिन-जिन बातों का समावेश होता है, उन सब

बातों के लिए है। बोधगया में जो लोग इकट्ठे हुए थे, उनमें से करीब-करीब सभी किसी-न-किसी अर्थ में जीवन-दानी थे। याने राजनीति, खादी-ग्रामोद्योग, नयी तालीम, अछूतोद्धार, धर्म या अन्य किसी कार्य को अपना जीवन दे चुके थे। जब उनमें से कुछ लोगों ने मेरे आवाहन के उत्तर में अपना नाम जीवनदानियों में लिखाया, तो उसका यह मतलब नहीं था कि फिर उसी काम को करते रहने का संकल्प वे दुहरा रहे थे और इस तरह वे अनावश्यक एवं निरर्थक प्रदर्शन कर रहे थे। इसके विपरीत उनके जीवन-दान का यह अर्थ था कि भूदान-आन्दोलन का अब उन्हें इतना स्पष्ट और समग्र दर्शन हुआ है कि वे दूसरे सारे काम, यहाँ तक कि राजनीतिको भी छोड़कर भूदान को अपना जीवन समर्पित करने के लिए प्रेरित हुए।

अहिंसक क्रान्ति का अग्र-चरण—भूदान

इस तरह प्रोत्साहित होने के लायक हम भूदान में क्या देखते हैं ? ऊपर-ऊपर से देखनेवालों के लिए तो यह महज भूमि-सुधार का एक आन्दोलन है, जो अधिक से अधिक कानून के लिए जमीन तैयार कर रहा है। पर जिन्होंने गहराई में उतरने की कोशिश की है, उनके लिए यह आन्दोलन बड़ा आशय रखता है। वह एक चौमुखी सामाजिक और मानवीय क्रान्ति का उपक्रम है—मानवीय इस अर्थ में भी कि समाज के साथ-साथ आदमी को बदल देने का इरादा वह रखता है। महात्मा गांधी की अहिंसक क्रान्ति-प्रक्रिया का वह सार्वजनिक रूप से प्रयोग करता है। प्यारेलालजी के शब्दों में 'वह अहिंसक क्रान्ति के लिए व्यूह भेद

करनेवाला अग्रचरण है। और उसके परिणाम बहुत व्यापक होंगे।'

जैसा कि विदित है, गांधीजी की प्रक्रिया मत-परिवर्तन की प्रक्रिया थी। वे न केवल नयी सभ्यता के निर्माण में हिंसा को वर्जित करना चाहते थे, वरन् प्राथमिक साधन के रूप में कानून का भरोसा भी नहीं करना चाहते थे। 'आगा खाँ महल' में उन्होंने प्यारेलालजी से कहा—'जब तक हमारे हाथों में सत्ता नहीं है, तब तक तो विवशता के कारण मत-परिवर्तन हमारा साधन है। लेकिन जब हमें सत्ता प्राप्त हो जायगी, तब मैं चाहूँगा कि मत-परिवर्तन हमारा स्वेच्छा से स्वीकृत साधन हो। कानून से पहले मत-परिवर्तन, यह क्रम होना चाहिए।' अनुनय से हृदय-परिवर्तन, मन:परिवर्तन, नवीन सामाजिक मूल्यों का निर्माण और उनके अनुरूप लोकमत के वातावरण का निर्माण; जहाँ अनुनय-विनय पर्याप्त साबित न हों, वहाँ अन्याय के साथ असहयोग—ये गांधीजी के अस्त्र थे। उनसे द्विविध प्रयोजन सिद्ध होता था—वे समाज-परिवर्तन करते थे और व्यक्ति-परिवर्तन भी। कानून पहली बात कर सकता है, दूसरी नहीं। कानून से किसी हृदय या मन का परिवर्तन नहीं हुआ है। जबर्दस्ती से कोई व्यक्ति सद्‌गुणी नहीं हुआ है। गांधीजी की मत-परिवर्तन की प्रक्रिया का आधार उनकी यह श्रद्धा थी कि मनुष्य की उन्नति हो सकती है। इस श्रद्धा का आधार दूसरी एक श्रद्धा थी और वह यह कि सभी मनुष्य, चाहे उनमें बाहरी भेद कितना ही क्यों न हो, बुनियादी तौर से अपने में अच्छे हैं। क्या सबके सब ईश्वर के उसी तेजोमय और दिव्यलोक से नहीं आये हैं, जो कि हमारा परम निधान है?

गांधी-विचार का पुनर्जीवन

आज के समाज को सुधारने के लिए गांधीजी अपनी प्रक्रिया का प्रयोग कैसे करते, यह कौन कह सकता है। किन्तु जैसा कि प्यारेलालजी ने कहा है, 'गांधीजी का विचार आज पुनर्जीवित हुआ है। विनोबा उसका अनुवर्तन कर रहे हैं और उसमें उन्हें आश्चर्यजनक सफलता मिली है। बापू भविष्यवाणी की तरह जिस मूलगामी सामाजिक जाग्रति की चर्चा किया करते थे, उसीका आरंभ आज हम देख रहे हैं।'

इस प्रकार भूदान-यज्ञ व्यापक रूप से मत-परिवर्तन और नये मूल्यों तथा नये वैचारिक वातावरण के निर्माण का एक जन-आन्दोलन है। वह लोगों के चित्त और उनके पारस्परिक व्यवहार में जीवित और तत्काल क्रान्ति पैदा करता है। शोषण और असमानता की पद्धति में वह अभी का अभी परिवर्तन करने के लिए उस पर प्रहार करता है। अपने पास जो है, उसमें दूसरों को शामिल करने की शिक्षा वह मनुष्यों को देता है।

आरंभ भूमि से क्यों ?

इस क्रान्तिकारी प्रक्रिया का आरंभ भूमि के क्षेत्र के बदले दूसरे किसी क्षेत्र में भी हो सकता था। किन्तु यह क्षेत्र सबसे पहले इसलिए लिया गया कि—

(अ) भूमि उत्पादन का एक मूलभूत साधन है।

(आ) जमीन की समस्या का हल सबसे जरूरी है।

(इ) हमारे कृषि-प्रधान देश में अधिकांश जनता का उसके साथ सीधा सम्बन्ध है। किन्तु सबसे बड़ा कारण यह है कि

भूमि के द्वारा इस नयी सामाजिक नीति और आर्थिक विचार का प्रवेश कराना दूसरी किसी भी सम्पत्ति के माध्यम की अपेक्षा कहीं अधिक आसान था।

भूदान-यज्ञ जमीन के बारे में जो कहता है, वह गांधीजी के मत से हमारी सभी प्रकार की सम्पत्तियों के लिए लागू है, जिसमें हमारा ज्ञान और कला-कौशल भी शामिल है।

सारी सम्पत्ति समाज की ही उपज है और समाज के सहयोग के बिना किसी भी तरह का उपार्जन असंभव है। इसलिए हमारे पास जो कुछ है, वह समाज का है। जो कुछ हमारे पास है, उसके हम केवल 'थातीदार' हैं। समाज ने मानो अव्यक्त रूप से हम पर यह जिम्मेदारी सौंपी है कि हम अपनी धरोहर की मुस्तैदी के साथ हिफाजत करें और उसका उपयोग अपने लिए नहीं, बल्कि मनुष्य मात्र के लिए करें। किन्तु जमीन समाज की है, यह बात आसानी से मान ली जाती है, क्योंकि जमीन कुदरत की देन है। परन्तु व्यापार, उद्योग-धन्धों और अन्य व्यवसायों के क्षेत्र में इस तरह का सिद्धान्त सर्वमान्य होना कुछ मुश्किल होता है। लेकिन जब भूदान हमारे पाँच लाख गाँवों में इस विचार का बीजारोपण कर देगा और एक हद तक ही क्यों न हो, जब जमीन के मालिक उस विचार को स्वीकार कर लेंगे, तब दूसरे क्षेत्रों में भी उस विचार के अंकुरित होने और पनपने के लिए वातावरण बन जायगा।

वास्तव में भूदान-यज्ञ-आन्दोलन अब इतनी प्रगति कर चुका है कि बोधगया में सम्पत्ति-दान की तरफ भूदान जितना ही ध्यान देने का जो संकल्प किया गया, वह उचित ही है। इस आर्थिक

क्रान्ति के साथ-साथ पुनर्निर्माण का काम भी हाथ में लेना पड़ेगा।

रचनात्मक काम और कार्यकर्ता

आज भी खादी, ग्रामोद्योग आदि के समान बहुत से रच-नात्मक काम हो रहे हैं। किन्तु वर्तमान सामाजिक स्थिति में इन प्रवृत्तियों के कारण कोई रद्दोबदल पैदा नहीं होता। उदाहरण के लिए किसी गाँव में खादी का काम दस-बीस साल से चल रहा होगा और फिर भी ग्रामीण समाज के ढाँचे पर उसका जरा भी असर नहीं पड़ा होगा। इस तरह का रचनात्मक कार्य निष्फल है या अधिक से अधिक कष्ट-निवारण करनेवाला है। गांधीजी की रचनात्मक कार्य की कल्पना ऐसी नहीं थी। वे जो कुछ भी थे, पर सबसे पहले वे क्रान्तिकारी थे। उन्होंने खुद लिखा है—'कुछ लोगों ने मुझे अपने जमाने का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी कहा है। यह गलत हो सकता है, लेकिन मैं अपने आपको एक क्रान्तिकारी मानता हूँ—एक अहिंसक क्रान्तिकारी।' विनोबा की प्रतिभा ने उस क्रान्तिकारी मार्ग का आविष्कार किया है।

बहुत से रचनात्मक कार्यकर्ता आज भी भूमिदान को एक ऐसा काम समझते हैं, जो समय बचने पर किया जा सकता है या दूसरे कामों के साथ-साथ आनुषंगिक रूप से किया जा सकता है। किन्तु एक गांधीनिष्ठ के लिए, यानी अहिंसक क्रान्तिकारी के लिए, भूदान केवल अनेक रचनात्मक कार्यों में से एक कार्य नहीं है। वह सारे रचनात्मक कार्यों का अधिष्ठान है। भूदान के संदर्भ में रचनात्मक कार्य सृजनात्मक बन जाता है, भूदान के अभाव में

वह एक निर्जीव चेष्टा मात्र रह जाता है। भूदान नित्य-प्रवाहिनी नदी के समान है और रचनात्मक प्रवृत्तियाँ नौकाएँ हैं। पानी की धारा न हो, तो ये किश्तियाँ कीचड़ में फँसकर रुक जाती हैं। नदी उन्हें जिन्दगी और रफ्तार देती है और तब वे यात्रियों को पार लगाती हैं।

राजनीतिज्ञों का रुख

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अगर बहुत से रचनात्मक कार्यकर्ता भूदान को सिर्फ कई प्रवृत्तियों में से एक समझते हैं, तो अधिकांश राजनीतिज्ञ, बराये मेहरबानी उसे सिर्फ एक ऐसा सदुद्देश्यपूर्ण आन्दोलन समझते हैं, जो यथासमय कानून से अपने उद्देश्यों को पूरा करने में मदद पहुँचा सकता है। वे अपने ज्यादा महत्त्वपूर्ण कामों में से जितना वक्त बच सके, उतना वक्त और यथावकाश सहयोग देने का आश्वासन दे देते हैं। उनके मन में यह पक्का निश्चय होता है कि इसमें आखिरी बात तो हमारी ही मानी जायगी, क्योंकि इतना गहरा और इतने बड़े पैमाने पर परिणाम करनेवाले सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन भला राज्य के सिवा और कौन कर सकता है? आम तौर पर राजनीतिज्ञों का यही रुख है, चाहे आज राज्यसत्ता के सूत्र जिनके हाथों में हैं वे हों या जो उन्हें अपने हाथों में लेने की आकांक्षा रखते हों, वे राज्य और राजनीतिज्ञ भूदान-आन्दोलन की जो कुछ सहायता कर सकते हैं, उनके लिए यह आन्दोलन कृतज्ञता जरूर है, बशर्ते कि वह सहायता ठीक ढंग की हो।

किन्तु अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह राज्यसत्ता के

प्रयोग पर निर्भर नहीं है। बल्कि वह दण्ड-शक्ति के बदले जन-शक्ति पर आधार रखता है। गांधीजी ने जो कहा था, उसे जरा हम स्मरण करें—'हमारे हाथों में सत्ता आ जाने के बाद भी मत-परिवर्तन हमारा अपनी मर्जी से अपनाया हुआ हथियार होगा।' इसीलिए विनोबाजी जनता के पुरुषार्थ पर इतना जोर देते रहे हैं। क्रान्ति चाहे हिंसक हो या अहिंसक, जनता ही करती है, सरकारें कभी नहीं करतीं। जनता जब क्रान्ति कर लेती है, तब सरकारें उसका अनुसरण करती और अपनी सम्मति की मुहर लगा देती हैं। जैसा कि गांधीजी ने कहा है—'मत-परिवर्तन के पीछे कानून आता है।' इसीलिए विनोबाजी कानून के लिए दूसरे कई लोगों की तरह पुकार नहीं मचाते। वे जानते हैं कि जिस दिन लोग अपना काम कर चुके होंगे, उस दिन कानून बनकर रहेगा, चाहे हुकूमत किसी भी पार्टी के हाथ में क्यों न हो।

भूदान और राजनीति

यहाँ हमें भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के राजनैतिक दर्शन का परिज्ञान होता है। अपना उद्देश्य सिद्ध करने के लिए सत्ता हाथ में ले लेने की उसकी मंशा नहीं है। अपनी इस नीति के अनुसार वह राज्य पर कब्जा करने के लिए स्वयं एक पार्टी बनाना या बनना नहीं चाहता। इसके बदले उसका यह इरादा है कि सरकार चाहे कुछ करे या न करे, लोग स्वतंत्र रूप से अपने व्यक्तिगत जीवन में क्रान्ति करने के लिए प्रवृत्त हों और उसके द्वारा समाज में क्रान्ति करें। इसके अलावा वह ऐसी परिस्थितियाँ प्रस्तुत करना चाहता है, जिसमें लोग खुद सीधे तौर से अपना इन्तजाम

आप कर लें और उसमें पार्टियों अथवा पार्लमेण्टों का किसी तरह का दखल न हो। अराज्यवाद और कम्यूनिज्म की तरह गांधी-दर्शन में भी अन्त में एक राज्य-विहीन समाज की कल्पना है। आज के संसार में राज्य-संस्था अपने सर्वसत्ताधारी रूप में ही नहीं, बल्कि लोक-कल्याणकारी रूप में भी उत्तरोत्तर अधिक सत्ता और अधिक जिम्मेवारी दखल करती जा रही है। लोक-कल्याणकारी राज्य जनता की भलाई के नाम पर मनुष्य को उतना ही गुलाम बनाने पर आमादा है, जितना कि सर्वाधिकारी राज्य। इस बढ़ते हुए लकवे को रोकना लोगों का कर्तव्य है। लोक-कल्याणकारी राज्य लोगों का बनाया हुआ होता है, क्योंकि वे ही उसे खड़ा करते हैं; पर इतने से वस्तुस्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता। लोकतन्त्रात्मक चुनाव की तरकीब से पाँच सौ[१] प्रतिनिधि अठारह करोड़[२] लोगों की बराबरी, सिर्फ प्रौढ़ों को ही गिना जाय, तो कभी नहीं कर सकते। जिस हद तक ये अठारह करोड़ लोग अपना कामकाज प्रत्यक्ष रूप में खुद सँभाल लेंगे, उस हद तक राज्य-संस्था की सत्ता तथा कार्य सीमित होते चले जायँगे और वास्तविक लोकतन्त्र चरितार्थ होगा।

अहिंसक लोकतंत्र की ओर

कम्युनिस्ट देशों का अनुभव यह बतलाता है कि हम तुरन्त जो कदम उठाते हैं, उनका हमारे अन्तिम ध्येय के साथ मेल न

---

१. भारत की 'लोकसभा' (पार्लियामेंट) की लगभग सदस्य संख्या

२. भारत की आबादी का बालिग हिस्सा।

रहा, तो हम ऐसे मुकामों पर पहुँच सकते हैं जो हमारे लक्ष्य से बिलकुल दूसरी तरफ हों। अपने सामने राज्यविहीन समाज का उत्कृष्ट आदर्श रखकर कम्यूनिस्ट लोग राज्यसत्ता की मार्फत हरएक बात करने के लिए तत्पर हुए। नतीजा यह हुआ कि राज्य-संस्था हर दिन अधिकाधिक सत्ता हड़पती गयी और राज्य विलीन होने के बदले सर्व-व्यापी राज्य-संस्था अवतीर्ण हुई।

इसी कारण भूदान अथवा सर्वोदय-आन्दोलन का यह आग्रह है कि यदि हमारा अन्तिम लक्ष्य 'राज्य-निरपेक्ष समाज की स्थापना' है, तो आज और इसी समय हमें ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित करनी चाहिए, जिनमें लोग अपने ऊपर अधिक निर्भर रहते चलें और सरकार पर कम निर्भर रहते जायँ। राज्य-संस्था कभी सम्पूर्ण विलीन होगी या नहीं, यह कोई कह नहीं सकता। किन्तु यदि हम अहिंसक लोकतन्त्र के आदर्शों को स्वीकार करते हैं, तो उनके लिए प्रयत्न करना हमें आज से ही शुरू कर देना चाहिए। कहना न होगा कि जो लोग राज्य के बिना काम चलाना चाहते हैं, या राज्य पर कम-से-कम निर्भर रहना चाहते हैं, वे आत्म-नियंत्रित लोग होंगे—संयमी, न्यायी और अन्योन्य-सहयोगी होंगे।

आखिर में यह भी कह दूँ कि जब संसार के लोग ऐसे बन जायँगे और सरकारें विलीन हो जायँगी या बहुत-कुछ बिखर गयी होंगी, तभी दुनिया में शान्ति होगी। यह संभव नहीं है कि सरकारें लड़ाइयाँ बन्द करेंगी। जो जनता सरकारों से छुटकारा पायेंगी, वही यह कर सकेंगी। लेकिन यह विषयान्तर हुआ।

यह हुआ, भूदान-आन्दोलन का राजनीति के प्रति जो रुख है, उसके बारे में। इतना और कह देना बाकी है कि एक अर्थ में भूदान ही अपने में एक उत्कट और गहरा राजनीतिक आन्दोलन है। जो आन्दोलन मनुष्य और समाज में इतनी आमूलाग्र क्रान्ति करने का इरादा रखता है, वह राजनीति-निरपेक्ष नहीं रह सकता। किन्तु उस राजनीति का स्वरूप वैसा है, जैसा कि मैंने ऊपर बताया है। वह राजनीति पार्टियों, चुनावों, पार्लमेण्टों और सरकारों की राजनीति नहीं है। वह लोगों की राजनीति है। इसीलिए वह राजनीति नहीं, बल्कि जैसा कि विनोबा कहते हैं, 'लोकनीति' है।

जीवनदान की विशेषता

आन्दोलन की इस सर्वस्पर्शी व्यापक भूमिका, उसके क्रान्तिकारी और निर्माणकारी स्वरूप तथा उसकी नैतिक और मानवीय वृत्ति के सन्दर्भ में हमें अपने जीवनदान का अर्थ समझना है। मैंने जीवन-दान की कुछ ऐसे आदमियों द्वारा की गयी व्याख्याएँ देखी हैं, जिनसे हमें अधिक बुद्धिमत्ता की अपेक्षा थी। उन लोगों ने दूसरे किसी भी प्रकार के स्वार्थरहित जीवन-समर्पण से जीवन-दान को समकक्ष बतलाकर उसकी सारी विशेषताओं से उसे वंचित कर दिया है। जीवनदान का विशेष आशय यह है कि भूदान अपने सर्वस्पर्शी व्यापक अर्थ में जितने महत्त्व का काम है, उतने महत्त्व का और दूसरा कोई काम नहीं है। इसलिए उसके सामने दूसरी सारी प्रवृत्तियाँ गौण मानी जानी चाहिए। जीवन-दान का आवाहन ठीक इसीलिए हुआ कि कुछ इने-गिने लोगों के सिवा भूदान के काम में जो लोग इकट्ठा हो गये थे, उनमें यह

निष्ठा नहीं थी और इसीलिए इसी एक काम पर सारी शक्ति केन्द्रित करने की वृत्ति भी नहीं थी। पिछले तीन वर्षों के अनुभव ने गांधीजी के क्रान्तिकारी दर्शन और प्रक्रिया की कार्य-क्षमता निःसन्दिग्ध रूप से प्रमाणित कर दी है। ३० अप्रैल, १९५४ तक का पच्चीस लाख का अखिल भारतीय लक्ष्यांक पूरा हुआ और उसके उपरान्त आठ लाख एकड़ अतिरिक्त जमीन मिली। यह सफलता अपूर्व थी। किन्तु यदि गांधीजी और विनोबा का सन्देश हर गाँव और हरएक घर तक पहुँचाने के लिए काफी संख्या में कार्यकर्ता होते और जिन कार्यकर्ताओं ने प्रत्यक्ष समय दिया, वे अगर उपयुक्त कार्यकर्ता होते तथा वे निष्ठा एवं एकाग्रता से काम करते, तो तैंतीस लाख का अंक आसानी से एक करोड़ तक पहुँच सकता था।

वस्तुस्थिति तो यह थी कि भूदान-कार्यकर्ताओं में से ज्यादातर लोग उमंग और आवेश की घड़ी में काम करते थे। उनमें से बहुतेरे आन्दोलन के मूलभूत सिद्धान्त भी नहीं समझते थे। कई कार्यकर्ताओं ने अपनी जमीन या अन्य सम्पत्ति का उचित हिस्सा तक दान नहीं किया था। बहुत से अपनी पार्टी का फायदा सामने रखकर या आगे कभी अपनी पार्टी के या अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए फायदा उठाने के इरादे से काम करते थे। इस परिस्थिति के रहते हुए भी इतने थोड़े समय में इतना काम हो सका, यह घटना-चमत्कार से कम नहीं है।

युग की चुनौती

किन्तु यदि अहिंसा को हिंसा पर विजय पानी है, तो उसे

तीव्र गति से काम करना होगा। अन्यथा घटना-चक्र आगे बढ़ता चला जायगा और हिंसा की बाढ़ में अहिंसा डूब जायगी। लोगों के सामने निहायत जरूरी समस्याएँ पेश हैं। उन्हें अगर अहिंसा जल्दी हल न करेगी, तो अहिंसक कार्यकर्ता के लिए इतिहास की गति रुकनेवाली नहीं है। वर्तमान समाज-रचना अपने सारे लोभ, लालच, स्वार्थ, मानव-विमुखता, अन्याय, शोषण और विषमता के साथ जानी ही चाहिए। यदि अहिंसा शीघ्र ही उसे नहीं बदलेगी, तो हिंसा कदम बढ़ायेगी। यह दूसरी बात है कि हिंसा कोई भी समस्या हल नहीं कर सकती और एक तरह के अन्याय, शोषण, लोभ और स्वार्थ की जगह दूसरी तरह का अन्याय, लोभ, शोषण और स्वार्थ ले लेगा। पर लोगों के ध्यान में यह बात जब तक आयगी, तब तक समय चूक गया होगा। उस बीच अन्धकार की शक्तियों ने अपना आसन जमा लिया होगा।

इसलिए बोधगया में हम लोगों में से कुछ को यह अनुभूति हुई कि अब परिस्थिति की गंभीरता और तेजी से कदम बढ़ाने की जरूरत हरएक के चित्त पर अंकित करने का समय आ गया है। सारी बातें अनुकूल थीं। युगात्मा हमारे साथ थी। अब तक थोड़ी-बहुत निराशा भले ही हुई हो, फिर भी लोगों का सहयोग उत्कृष्ट था। कमी अगर किसी बात की थी, तो ऐसे एकनिष्ठ और सुयोग्य कार्यकर्ताओं की सेना की थी, जो दूसरे सारे कामों को छोड़कर अपना जीवन अन्त तक इसी महान् आन्दोलन को समर्पित कर दें। इसलिए जीवन-दान का आवाहन हुआ।

एकमात्र रास्ता

बोधगया में और उसके बाद लोगों की तरफ से जो प्रत्युत्तर मिला, वह आश्चर्यजनक है। किन्तु वह काफी नहीं है। जो काम हमें करना है, वह प्रचण्ड है। पाँच करोड़ एकड़ जमीन हस्तान्तरित होनी चाहिए, कम नहीं। जो जमीन मिली है, उसे बाँटना है। भूमिहीनों को खेती के साधन दिलाने हैं। जिन गाँवों में भूदान सफल हुआ हो, वहाँ नयी रचना कायम करनी है—पाँच लाख गाँवों में ग्रामराज्य, शहरों और पाट नगरों में सम्पत्ति-दान, अन्त में पूँजीवाद का विलय और कितनी ही दूसरी बातें।

मनुष्य आज आत्म-विनाश की तरफ बेतहाशा बढ़ रहा है। सारी दुनिया एक खतरनाक चट्टान के कगारे पर डावाँडोल हो रही है। अगर उसे बचाना और सँवारना है, तो एक ही रास्ता है—भूदान या सर्वोदय का। अत्यन्त व्यापक अर्थ में अन्तर्राष्ट्रीय भूदान की आवश्यकता है।

क्रान्ति का मुहूर्त

यह सारा महान् और उदात्त कार्य हमें पुकार रहा है। मैं दूसरी किसी चीज की कल्पना भी नहीं कर सकता, जो हमारी निष्ठा और पुरुषार्थ के लिए इससे अधिक उपयुक्त हो। इस देश में हम करोड़ों हैं। क्या इन करोड़ों में से कुछ हजार भी ऐसे स्त्री-पुरुष नहीं निकलेंगे, जो इतने स्वार्थ-त्यागी, इतने साहसी और इतने दूरदर्शी होंगे कि अपने आपको इस ऐतिहासिक आन्दोलन में खपा देंगे? इस प्रश्न के उत्तर पर भविष्य का इतिहास, कम-से-कम भारत का इतिहास निर्भर रहेगा।

अंग्रेजी राज्य के जमाने में जोशीले नवयुवक सरकारी नौकरियों में जाने से इनकार कर देते थे। बड़ी-बड़ी तनखाहों और ऊँचे-ऊँचे अधिकार-पदों का मोह उन्हें नहीं होता था। अब तो हमारे होनहार नवयुवकों के लिए नौकरी ही मुख्य आकर्षण है। इसमें कोई हर्ज भी नहीं है। किन्तु इनमें से जो अधिक भावना-सम्पन्न और कम स्वयं-केन्द्रित हैं, उन्हें यह समझना चाहिए कि नित्य के शासन-कार्य आवश्यक होने पर भी, राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते। जिन लोगों के मन में राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाएँ हैं उन्हें यह समझना चाहिए कि विधान सभाएँ और सरकारें भी राष्ट्रनिर्माण नहीं कर सकतीं। यदि वे उचित रूप से काम करें, तो इस काम में मदद भर कर सकती हैं। लेकिन वे नुकसान आसानी से पहुँचा सकती हैं। जनता ही स्वयं अपना निर्माण कर सकती है। इसलिए लोगों के पास पहुँचना, उनके साथ रहना और स्वावलम्बी बनने में उनकी सहायता करना सबसे अधिक महत्त्व का काम है।

नवयुवक अपना हृदय टटोलें। क्या वे आसान जिन्दगी चाहते हैं? क्या वे सामाजिक और राजनैतिक चढ़ा-ऊपरी की दौड़ में शामिल होना चाहते हैं? जो इस दौड़ में शामिल होते हैं, वे आखिर जनता की पीठ पर ही सवार होते हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि इस देश में ऐसे काफी तरुण-तरुणियाँ हैं, जो एक उदात्त ध्येय के लिए कष्टमय और संकटमय जीवन का आलिंगन करेंगे। अब खोने के लिए समय नहीं है। मुहूर्त टल रहा है। कल, बहुत देर हो सकती है।

—जयप्रकाश नारायण

जीवनदानियों से : ३ :

एकाकी पुरुषार्थ

मैं जीवन-दानियों से कुछ कहना चाहता हूँ। लोग पूछते हैं कि 'जीवन-दानियों को क्या मदद मिलेगी?' मैं कहता हूँ कि 'लोगों में उनकी हँसी होगी, यह पहली मदद उनको मिलेगी। भाइयो! पहले आपको उपहास मिलेगा और उसे आपको स्वीकार करना होगा। दूसरी देन यह होगी कि मारे-मारे घूमना होगा। ये दोनों काम आप जब करेंगे, तब आपकी इज्जत होगी।'

एकाकी काम करने की आपको तैयारी रखनी होगी। दूसरा कोई न आये, तो भी 'हमें काम करना है' इस खयाल से आप काम करने निकलें। मैं चाहता हूँ, संकट में आप लोग एक-दूसरे को मदद दें, राहत दें, कंधे से कंधा भिड़ाकर काम करें और आपका एक 'बन्धु-मण्डल' बने। लेकिन उसके साथ आपको यह खयाल रखना है—'एकाकी पौरुषं कुर्यात्'—पराक्रम, परिश्रम अकेले करना चाहिए। उसके लिए दूसरे की बाट जोहना ठीक नहीं।

बाबा जब भू-दान माँगने निकला, तो एकाकी ही निकला—किसीकी सलाह तक न ली। अगर वह नजदीक के लोगों से

पूछता तो वे कहते—'पाँच करोड़ एकड़ जमीन गरीबों के लिए, और वह भी हिन्दुस्तान में, नहीं मिल सकती। अगर किसी खास गाँव से मन्दिर या आश्रम के लिए वह लेनी हो, तो मिल जायगी।' इस तरह उसे अनुकूल सलाह नहीं मिलती। फिर भी परमेश्वर पर विश्वास रखकर वह निकल पड़ा और उसने काम शुरू कर दिया।

पहले तो बाबा अकेला था। साथ में दस-पाँच लोगों की जमात थी। अब आप देखते हैं कि काम बढ़ रहा है। प्रान्त-प्रान्त में काम चल रहा है, जिले-जिले में समितियाँ बनी हैं और बन रही हैं। लोगों की काफी सहानुभूति मिल रही है। तो, इस पर से आपको समझना चाहिए कि पहले तो आपको एकाकी पुरुषार्थ करना है।

इसके लिए आपको अपने जीवन की शुद्धि करनी चाहिए। काम-क्रोध से बचना चाहिए; कारण यह शुद्धि का काम है।

—विनोबा

निरन्तर तपना है

हम जीवन-दान देते हैं, तो यह सोचना चाहिए कि देश के काम में हमारा उपयोग हो और हमसे देश को लाभ हो। इसलिए अपनी शुद्धि भी होनी चाहिए। शुद्धि में कई प्रकार की दीक्षाएँ और शिक्षाएँ आती हैं, खासकर चित्त पर अंकुश रहना चाहिए। जितने भी लोग इसमें आते हैं, उनकी जिम्मेदारी है कि वे अपनी वासनाओं पर काबू रखें। अगर हम विषय-वासना में फँसते

चले जायँगे, तो हमारा काम नहीं चलेगा। अतः विषय-वासना से अधिक-से-अधिक मुक्त रहना चाहिए, हमेशा इन्द्रिय-संयम करना चाहिए ।

इसके साथ ही जीवन-दानियों में सबके साथ सहयोग और काम करने की तैयारी होनी चाहिए। निरन्तर काम करते रहना चाहिए। अरविन्द घोष जैसे पाण्डिचेरी में गये और चालीस वर्ष तक ध्यान में मग्न रहे, गांधीजी जैसे स्वराज्य के काम में लगातार लगे रहे, वैसे ही हमें भी लगातार काम करना है। हमें 'रामराज्य' का नमूना बनाना है। अतः हम जिस क्षेत्र में भी जाकर काम करें, समर्पित होकर करें। अहंकार छोड़कर और अपने ऊपर अंकुश रखकर लगातार काम करें। इसमें एक दिन की भी ढिलाई न होनी चाहिए । रोज रात में सोचना चाहिए कि आज दिन भर क्या काम हुआ ? जिन पर घर का भी भार है, उन्हें थोड़ा समय घर के काम के लिए भी देना पड़ेगा। लेकिन घर का काम करते हुए भी इस काम का चिन्तन करना चाहिए।

यह समझना चाहिए कि जिसने जीवन-दान दिया है, वह उसने किसीके भरोसे नहीं दिया है। दूसरे लोग नहीं करेंगे, तो भी हमें वह करना ही है । हमने भगवान् को साक्षी रखकर जीवन-दान दिया है। हो सकता है कि मालकियत को पकड़े रखनेवाले लोग प्रहार करें, तब अकेले भी काम करते रहना होगा। इस तरह लगातार काम करने से ही क्रान्ति होती है। अगर क्रान्ति का काम उठाया तो उसमें मर-मिटना पड़ता है। आखिर सोने की शुद्धि कैसे होती है ? जैसे-जैसे वह तपता

है, वैसे-वैसे ही उसकी शुद्धि होती है। इस तरह लगातार काम करनेवाले लोग हमें चाहिए। जहाँ निरन्तर काम करनेवाले लोग हों, वहाँ दो-चार दिन काम करनेवाले लोगों को भी अगर आप ले जाते हैं, तो काम हो जाता है। अखण्ड सेवक और बीच-बीच में काम करनेवाले लोग, इस तरह साथ-साथ मिलकर काम करें, तो काम अच्छा होता है। किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि हमारा जीवन सतत साधनाशील हो। हमें सोने के समान निरन्तर तपना होगा।

जगदीशपुर (बिहार) —विनोबा
२७ मई, १९५४

आचरण के सूत्र

जीवन-दान में घबड़ाने जैसी कोई बात नहीं है। यह भी मानने की जरूरत नहीं कि 'जब तक हम शुद्ध नहीं हुए, तब तक हमारा जीवन-दान हो ही नहीं सकता।' क्योंकि हृदय की एक बार की शुद्धि कोई पूर्ण क्रिया नहीं, वह तो सतत जारी रहनेवाली क्रिया है। इसलिए उसकी तरफ हमारा पूरा ध्यान रहे, और हम सावधान रहें, तो हृदय-शुद्धि की क्रिया सतत होती रहेगी, जो होनी भी चाहिए।

ऐसा कहकर सन्तोष कर लेने का अवसर नहीं आयगा, जब मानव कह सकेगा कि 'अब तो मेरे हृदय की शुद्धि हो चुकी और इस विषय में करने को कुछ बाकी नहीं रहा।' सच तो यह है कि आत्म-संशोधन के परिणामस्वरूप उसे अपने कुछ-न-कुछ

दोष हमेशा दीखते ही रहेंगे। हम उन दोषों से अपने को भिन्न समझकर उन्हें सतत दुरुस्त करने की कोशिश करते रहें, इतना ही जरूरी है। अगर कोई इसका यह अर्थ कर बैठे कि जिनके हृदय की शुद्धि नहीं हुई है, उनके जीवन का दान हो ही नहीं सकता, तो वह ठीक नहीं होगा। कहा गया है कि कचरे का दान नहीं हो सकता। उसका सार ग्रहण करना चाहिए। वह यह कि अगर हम अपने जीवन की शुद्धि की कोशिश न करेंगे, तो जीवन-दान हो ही नहीं सकेगा। याने मानव बाहर से कह दे कि 'मैं अपना जीवन अमुक काम के लिए समर्पित करता हूँ' और उसके अन्दर जो नाना तरह के विकार हैं, उस तरफ ध्यान ही न दे और ऐसा ही जीवन चलता रहे, तो वह उसका सही दान न होगा। वह चल भी न सकेगा।

अकेले जूझने का मौका

इसके अलावा, जब हम किसी एक काम के लिए अपने को समर्पित करते हैं, तो दूसरों से बहुत ज्यादा मार्गदर्शन की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। जीवनदान का अर्थ अगर कोई यह समझता हो कि 'अमुक के चरणों में, अमुक के हाथों में हमने अपना जीवन सौंप दिया', तो वह ठीक नहीं है। जीवन जब एक कार्य के लिए अर्पण हो जाता है, तो परमेश्वर के नाम पर उस कार्य के विषय में सतत चिन्तन करने, रास्ता ढूँढ़ने और काम करने की, चाहे दूसरों से कोई मदद मिले या न मिले, जिम्मेदारी आ जाती है। और ऐसे प्रसंग खासकर क्रान्तिकारी आन्दोलनों में बहुत दफा आते हैं, जब कि बहुत सारी जमात किसी समय विरुद्ध

हो जाती है। किन्तु चूँकि अब तक सारा रास्ता बिलकुल सीधा, सुरक्षित और खतरे से खाली रहा, इसलिए वह हमेशा ऐसा ही रहेगा—ऐसा मानने का कोई कारण नहीं। क्योंकि आगे कदम उठाने पड़ते हैं, तब कुछ लोगों को थकान भी आती है और कुछ साथी उस समय तक काम करने के बाद ऊबकर वापस भी चले जाते हैं। ऐसी हालत में अकेले जूझने का समय आ सकता है। राणा प्रताप की कहानी तो आपने सुनी ही होगी। वे हिंसक हथियार लेकर लड़ते थे, इस वास्ते उनको जंगलों और पहाड़ों में मारा-मारा घूमना पड़ता था। हम अहिंसा से काम करनेवाले हैं, इसलिए हम पर कोई खतरा या संकट आयगा ही नहीं, ऐसी बात नहीं है। हमारी बात जब तक चुभती नहीं, तब तक तो लोग उसे स्वीकार करते हैं, लेकिन जब वह चुभेगी और ऐसी हालत पैदा होगी, जिसके कारण राजनीति पर दबाव पड़े, तो उस वक्त यह संभव मान लेना चाहिए कि हमें शायद अकेले ही काम करना पड़े और विरोध के बीच करना पड़े।

लेकिन इससे हमें घबड़ाना नहीं है। जैसे कुँआ खोदते-खोदते जब पहले मिट्टी निकलती है, तब तो जल्दी-जल्दी खुदता है। किन्तु आगे खोदने लगते हैं, तो अचानक पत्थर सामने आता है। जिस तरह कुँआ खोदने में पत्थर आने पर मुश्किल से काम होता है, उसी तरह आन्दोलन में भी आगे कुछ कठिनाइयाँ आना संभव है। अतः जीवन-दानियों को ध्यान रखना चाहिए कि उन्हें गंभीरता और शान्ति से काम करना है—समझ-बूझकर, मन को हर स्थिति के लिए तैयार रखकर काम करना है।

अति सर्वत्र वर्जयेत्

बहुत ज्यादा काम कर डालें और उससे महीने दो महीने में ही शरीर बहुत थक जाय और फिर उसकी प्रतिक्रिया हो, तो यह भी नहीं होना चाहिए। एकबारगी सारी शक्ति खर्च नहीं कर डालनी चाहिए, बल्कि शान्ति से सब काम सतत चलना चाहिए। जो पैदल यात्रा करनेवाले साथी होंगे, उनकी तो सेहत सुधरनी ही चाहिए। तभी हम कहेंगे कि वे यशस्वी (सफल) हैं। अगर प्रवास के कारण किसीकी तन्दुरुस्ती बिगड़ती है, तो यही कहा जायगा कि उसके जीवन में योग नहीं सधा। जीवन-दान करनेवाले का जीवन तो योगयुक्त होना चाहिए। जैसे आज हम काफी देरी से सोने जा रहे हैं, पर यह जीवन-दान में सदा नहीं चल सकता। उसमें तो नौ बजे सोने और बहुत सुबह उठने की तैयारी होनी चाहिए, तभी वह योगयुक्त जीवन होगा। जब कि शरीर द्वारा काम लेना है, तब तो उसे भी औजार समझकर काम करना होगा, किसी प्रकार का अतिरेक न होना चाहिए। गांधीजी के उदाहरण से हमें यह बहुत अच्छी तरह समझ में आ सकता है। उन्होंने अपना जीवन बहुत ही समत्व-युक्त किया था। खान-पान, आहार-विहार सभी में उनका समत्व रहा। राजनीति और विभिन्न सामाजिक कार्यों में सतत काम करते रहनेवालों में इस तरह का उदाहरण शायद ही दीख पड़ेगा। कुछ लोग होंगे, जो एकान्तप्रिय हों, ध्यानयोगी हों, उनके जीवन में ये बातें होती हैं। परन्तु समाज में सतत काम करनेवाले मनुष्य का ऐसा उदाहरण बहुत कम देखने में आता है। गांधीजी अस्सी

वर्ष तक सतत काम करते रहे, तब भी उनका दिमाग तेजस्वी ही बनता गया। जैसै-जैसे बुढ़ापा आया, वैसे-वैसे उनकी प्रज्ञा तेजोहीन नहीं, तेजस्वी ही होती गयी। इसलिए जिन्हें सतत काम करना है, जिन्होंने जीवन-दान दिया है, उनके जीवन में योगयुक्त आचरण होना चाहिए। ये जो तीन बातें जीवन-दानियों के आचरण के बारे में सहज कह सकता था, मैंने कह दीं।

आजीविका का प्रश्न

फिर सवाल यह आयगा कि जिन्होंने जीवन-दान दिया है, उनकी आजीविका का क्या हाल होगा? हमारे खयाल से यह कोई कठिन सवाल नहीं होना चाहिए। वास्तव में ऐसा सवाल उठना भी नहीं चाहिए, क्योंकि जिन्होंने जीवन-दान किया है, वे अपने पाँवों पर खड़े रहने में समर्थ हो सकते हैं। किन्तु जहाँ एक जमात काम करने जाती है, वहाँ ऐसों के लिए कुछ विचार या कुछ उपाय-चिन्तन करना गलत नहीं होगा; बल्कि उचित होगा और वह हो भी सकेगा। वह 'संपत्तिदान-यज्ञ' के जरिये होना चाहिए, ऐसा हमारा आग्रह है। अभी तो गांधी-निधि से 'सर्व-सेवा-संघ' की मार्फत पैसा मिलता है, जो आगे भी मिलेगा, पर उस पैसे को हम महत्त्व नहीं देते। जरूरी काम तो यह होना चाहिए कि सम्पत्तिदान का प्रवाह बढ़ते रहना चाहिए ताकि उसमें से कार्यकर्ताओं का कुछ-न-कुछ पोषण होता रहे। अब कार्यकर्ताओं को जो दिया जायगा, वह आकर्षक जैसा नहीं होगा। ऐसा आकर्षक वेतन इसमें मिलनेवाला भी नहीं है। वह तो केवल जिन्दगी बिताने के लिए होगा। प्राण कायम रहे

और शरीर का सन्तुलन बना रहे, इस वास्ते जो चाहिए उतना ही मिल सकेगा। बहुत ज्यादा तो उनको मिलनेवाला नहीं है। इस तरह सम्पत्तिदान के जरिये ऐसे लोगों को कुछ जरूर दिया जा सकता है और इसका आयोजन होना चाहिए।

इनकी ट्रेनिंग (प्रशिक्षा) का भी काम होना चाहिए। आपको मालूम ही है कि जिन्होंने अपना समय देना तय किया है, वे अगर कुशल न रहें, शक्तिशाली न रहें तो उनका समय लेकर भी उसका समुचित उपयोग नहीं होगा। इसलिए उन्हें तालीम देने की योजना भी चाहिए। पर यह तो साधारणतया शिविरों द्वारा हो ही सकती है। और कुछ ऐसे आश्रम भी हमें स्थान-स्थान पर कायम करने पड़ेंगे, जहाँ ऐसा काम करने वाला जीवनदानी बीमार पड़ जाय, तो वह वहाँ आकर महीना-पन्द्रह रोज रहे एवं उसकी सेवा वहाँ हो। इस तरह सेवा करने-वालों का भी स्थान, जिसे हम गृह कहते हैं, हरएक जिले में हो तो अच्छा है। लेकिन कम-से-कम एक-एक प्रान्त में एक-दो जगहें ऐसी हों ही, जहाँ पाँच-दस दिन किसीको कुछ आराम करने को मिले। कुछ ज्ञान भी विश्राम के साथ-साथ प्राप्त हो और उसे कोई बीमारी हो, तो उसका भी इलाज वहाँ हो। इस तरह उस मनुष्य को राहत मिलने की योजना भी करनी पड़ेगी। ट्रेनिंग के साथ-साथ यह भी करना पड़ेगा।

हँसते हुए चेहरे

जीवन-दान में क्या-क्या चीजें आती हैं ? यह जब पूछा जाता है, तब मैं कहता हूँ—यह सब उसमें आता है। उसमें जमीन

की सेवा भी आती है और सेवा करते-करते सोचना भी। हममें सहनशीलता भी होनी चाहिए और हमारा चेहरा सदा प्रफुल्लित (प्रसन्न) रहना चाहिए। जिन्होंने जीवन-दान किया, उनके चेहरे सदा खुश ही दीखने चाहिए। क्राइस्ट (ईसा) ने अपने शिष्यों से कहा था कि 'उपवास न करो और अगर करते ही हो तो आपका चेहरा प्रफुल्लित रहे, अन्यथा लोग कहेंगे कि उपवास करनेवालों का चेहरा ऐसा होता है!' जेल में हम लोगों की दाढ़ी अक्सर बढ़ जाती थी। जमनालालजी हमारे बीच थे। मिलने के लिए कोई मुलाकाती आया तो उससे मिलने जाने के पहले वे हमसे कहते—'विनोबाजी, आपको हजामत करा लेनी चाहिए।' मैं पूछता—'क्यों?' तो वे कहते—'हम मुलाकात के लिए आनेवालों को यह जानने देना नहीं चाहते कि यहाँ हमारा चेहरा कैसा रूखा-सूखा है। किसी भी तरह हमारा चेहरा उन्हें दया का पात्र न दीखे।' अतः हमारे जितने कार्यकर्ता हैं, उन सबके चेहरे हँसते हुए, दूसरों से प्रेम पूर्वक मिलने के लिए उत्सुक और शान्त होने चाहिए।

—विनोबा

जीवनदानी से अपेक्षाएँ

(१)

हमारी क्रांति अहिंसक है, भूदान-मूलक है और ग्रामोद्योग प्रधान है। इसलिए जो पेशे हिंसा-मूलक हैं, शोषण पर आधार रखते हैं और ग्राम-उद्योगों के खिलाफ हैं, ऐसे कोई पेशे या रोजगार जीवनदानी नहीं करेंगे। आज कोई जीवनदानी अगर इस तरह का पेशा या धन्धा करता हो, तो वह उसमें से जल्द-से-जल्द मुक्त होने की कोशिश ईमानदारी से करेगा। अगर वह खेती या दूसरे किसी उत्पादक परिश्रम से गुजर करता है, तो जितनी जमीन उसके और उसके परिवार के निर्वाह के लिए जरूरी है, उतनी रखकर बाकी भूदान में दे देगा। जो खेती के सिवा दूसरी तरह का परिश्रम करता हो, वह अपनी कमाई में से गुजर के लायक रखकर शेष सम्पत्ति-दान में देगा। जीवनदानी पारिवारिक कामों के लिए कम-से-कम आवश्यक वक्त देगा, ज्यादा वक्त भूदान-यज्ञ के काम के लिए देगा।

इसके अलावा जीवनदानी नीचे लिखी बातों पर अमल करेगा :

१—जीवनदानी का जीवन जहाँ तक सम्भव हो सके, सादा हो। वह खादी नियमित रूप से पहने। खाद्य-वस्तुओं में भी यथासम्भव ग्रामोद्योगी वस्तुओं का ही इस्तेमाल करे। अपनी पत्नी तथा बच्चों को भी खादी, नयी तालीम इत्यादि की ओर प्रवृत्त करे।

२—जहाँ तक हो सके, जीवनदानी को नियमित रूप से शरीर-श्रम करना चाहिए।

३—कोई भी व्यक्ति यह सोचकर जीवनदान न करे कि कोई व्यक्ति या संस्था उसके निर्वाह-व्यय का प्रबन्ध करेगी। उसे यह विश्वास होना चाहिए कि जब वह अपना जीवन समाज की सेवा में अर्पण करने जा रहा है, तो समाज उसे भूलेगा नहीं। इस विश्वास से अधिक और किसी प्रकार के आश्वासन की अपेक्षा उसे नहीं करनी चाहिए। जीवनदान किसी भी प्रकार की नौकरी नहीं है। जीवनदानी की जीविका का जिम्मा न किसी व्यक्ति ने लिया है और न किसी संस्था ने। हजारों नहीं, लाखों जीवनदानियों की आवश्यकता है। हर गाँव में दो-चार जीवन-दानी होने चाहिए। इतने लोगों का जिम्मा कौन-सा व्यक्ति या संस्था ले सकती है? सारा समाज या राष्ट्र ही यह कर सकता है।

४—भूदान-आंदोलन एक क्रांति का रूप तभी लेगा, जब कि आम जनता उसे अपने जीवन में उतार लेगी। इसके लिए असंख्य कार्यकर्ताओं तथा जीवन-दानियों की आवश्यकता है। उनका संगठन भी मुक्त तथा व्यापक होना चाहिए। इसलिए यह वांछनीय है कि हर छोटे-छोटे हलके में स्थानीय जीवनदानी तथा अन्य भूदान-कार्यकर्ता मिलकर एक-एक आश्रम की स्थापना करें। यह आश्रम अपने हलके की भूदान-प्राप्ति, वितरण, निर्माण तथा अन्य सभी सर्वोदय-प्रवृत्तियों का केन्द्र बने। पूरा समय देनेवालों का वही घर हो, जहाँ उनके बच्चे तालीम पावें। जहाँ काम से थककर वे विश्राम के लिए आ सकें और जहाँ उन्हें परिवार का-सा स्नेह मिले। आश्रम की अपनी खेती के लिए थोड़ी-सी जमीन हो और साथ-साथ कुछ उद्योग भी चलें,

जिनमें सभी श्रम करें और अपनी आवश्यकता की कुछ वस्तुएँ पैदा करें। हर आश्रम स्वावलम्बी हो और अपने हलके की जनता के सहयोग से उसका निर्वाह चले।

यह योजना वर्तमान प्रारम्भिक काल के लिए है। कार्य का विस्तार होने पर गाँव-गाँव में जीवनदानी होंगे और उनके घर ही गाँव की सर्वोदय-प्रवृत्तियों के केन्द्र बनेंगे।*

(२)

[श्री धीरेन भाई ने अपना जीवनदान करते समय जो निवेदन किया था, वह यहाँ दिया जा रहा है।]

ईश्वर की प्रेरणा से भाई जयप्रकाश ने जीवनदान का जो आवाहन किया, उसके जवाब में मैं भी अपना नाम लिखा रहा हूँ।

मैंने काफी घबड़ाहट के साथ अपना नाम लिखाया है, क्योंकि इस आवाहन की जो मूल प्रेरणा है और उस प्रेरणा के पीछे नाम देनेवालों की जो जिम्मेवारी है, उसका मुझे भान है। भाई जयप्रकाश ने सहज ही यह आवाहन किया है। जैसा मैंने समझा है, आज की भूदान-प्राप्ति और वितरण के लिए ही उन्होंने हमारा जीवन नहीं माँगा है। भूमिदान के मूल में जो विभिन्न मन्त्र हैं, उनकी दीक्षा के लिए ही हमारा आवाहन किया गया है। भूमिदान-यज्ञ में जो जीवन-क्रान्ति और समाज-क्रान्ति है, उसे दृष्टि में रखकर यज्ञ की आहुति देने के लिए उन्होंने हमें बुलवाया है। जयप्रकाश बाबू ने केवल कार्यकर्ता बटोरने के लिए यह सामान्य आवाहन नहीं किया है। वैसा होता तो विनोबा को, भगवान् प्रेरणा

* श्री जयप्रकाश नारायण तथा दादा धर्माधिकारी के लेखों के आधार पर।

नहीं देते कि तुम भी अपना नाम लिखाओ। यह एक पवित्र आरंभ है। उसके लिए हम अपने को तैयार करते हैं। हमारी तैयारी आजीवन चलेगी। जीवन-दान का यही मतलब है।

क्या तैयारी चाहिए ?

इसके लिए हमें क्या-क्या तैयारी करनी होगी, सो थोड़े में बतलाता हूँ। यह एक क्रान्ति है। समाज में साम्ययोग की स्थापना के लिए शोषण-हीन समाज की पूर्णता के लिए शासन-विहीनता तक जानेवाली यह क्रान्ति है। साध्य और साधन की दृष्टि से इस क्रान्ति का आवाहन ऐसा होना चाहिए, जो अपने में क्रान्ति-कारक हो। जिन जीवन-मूल्यों को हम बदलना और नये मूल्य कायम करना चाहते हैं, वे नये मूल्य हमारे जीवन में दाखिल होने चाहिए और पुराने मूल्य निकल जाने चाहिए। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का, कलाकार की कुशलता से एक सुन्दर चित्र बनाना है। हमें जीवन-क्रान्ति का औजार अपने आपको बनाना है। क्रान्ति का चित्रकार अपनी तूलिका को अच्छी तरह धोकर साफ करेगा। जब वह देख लेगा कि उसमें पुराना रंग लेशमात्र भी नहीं रह गया है, तब नया चित्र बनायेगा, नहीं तो चित्र बदरंग हो जायगा। हम सब समझ लें कि हमें अपने आपको किस रंग में रँगाना है। जो भाई-बहन जीवन-दान का संकल्प करते हैं, वे खूब समझ लें कि पुराना जीवन-दर्शन अब न चलेगा। उसका कुछ अवशेष रह गया हो, तो अब उसे धो डालना चाहिए।

भारत की परिपाटी यह रही है कि यहाँ सारे यज्ञ सपत्नीक होते हैं। स्वयं श्री रामचन्द्रजी भी एकाकी यज्ञ नहीं कर सके, उन्हें भी सोने की सीता को बगल में लेकर बैठना पड़ा। अतः

नाम देने से पहले इस बात का विचार कर लेना चाहिए। अपने परिवार के साथ सलाह कर लेनी चाहिए और क्रान्ति के सभी मूल्यों का ध्यान रखना चाहिए। यह कोई जरूरी बात नहीं कि काफी तादाद में नाम आयें। लेकिन जो आयें, वे खूब सोच-समझकर आयें।

क्रान्ति की सौगात

कुछ लोग तो यह भी पूछते हैं कि इस यज्ञ में शामिल होने से हमें क्या मिलेगा ? मैं पूछता हूँ, इतिहास में क्रान्तिकारी को क्या मिला है? समाज की उपेक्षा, उपहास, विरोध और शासन की ओर से दण्ड और दमन ! यही क्रान्तिकारियों को नसीब हुआ है। वही सब आपको भी नसीब होगा। अब तक की क्रान्तियों में तो दो पक्ष होते थे। इसलिए एक वर्ग की सहायता मिलती थी। किन्तु हमारी क्रान्ति वर्ग-निराकरण के लिए है। इसलिए इसकी प्रक्रिया में ही वर्ग-निराकरण शुरू हो जाता है। हमें शोषित और शोषक—दोनों में क्रान्ति करनी है। इसलिए दोनों ओर से विरोध और दमन होगा। हम स्वयं शोषक वर्ग में आये हैं। हमारे वर्ग ने शोषितों को पहले कई बार धोखा दिया है। इसलिए वे अज्ञान और अविश्वास के कारण हमें सतायेंगे। शोषक भी हमें अपना विरोधी मानेंगे। इस तरह हमारी किस्मत में दोनों तरफ से विरोध लिखा है। पुरानी क्रान्तियों से यह क्रान्ति कहीं अधिक क्रान्तिकारी है। इसलिए क्या मिलेगा, मत पूछिये। यहाँ तो सिर में कफन बाँधकर आना है।

—धीरेन्द्र भाई मजूमदार

हमारे प्रकाशन

(विनोबा)

गीता प्रवचन १)
त्रिवेणी ।।)
विनोबा-प्रवचन (संकलन) ।।।)
भगवान् के दरबार में =)
साहित्यिकों से ।।)
गाँव-गाँव में स्वराज्य ।)

(धीरेन्द्र मजूमदार)

शासन-मुक्त समाज की ओर ।=)
आजादी का खतरा ।-)
बापू की खादी ।।)
क्रान्तिकारी चरखा ।-)
युग की महान् चुनौती ।)
नयी तालीम ।।)
स्वराज्य की समस्या ।।)
चरखा-आन्दोलन की दृष्टि और योजना ≡)
ग्रामराज ।-)

(श्रीकृष्णदास जाजू)

संपत्तिदान-यज्ञ ।)
व्यवहार-शुद्धि ।=)
अ० भा० चरखा संघ का इतिहास ३।।)
चरखा-संघ का नव-संस्करण १।।)
चरखे की तात्त्विक मीमांसा—हिं०अं० १)

(जे० सी० कुमारप्पा)

गाँव-आन्दोलन क्यों? ३।।)
गांधी अर्थ-विचार १)
स्थायी समाज-व्यवस्था (भाग २रा) २)
श्रम-मीमांसा और अन्य प्रबन्ध ।।।)
खून से सना पैसा ।।।)
जनता की आजादी १।।)
यूरोप : गांधीवादी दृष्टि से ।।।)
वर्तमान आर्थिक परिस्थिति १।।)
ग्रामों के सुधार की योजना १।।)
स्त्रियाँ और ग्रामोद्योग ।)
राजस्व और हमारी दरिद्रता २।।)
हिन्दुस्तान और ब्रिटेन का आर्थिक लेन-देन (हिं० गु०) ।।)

(दादा धर्माधिकारी)

मानवीय क्रान्ति ।)
साम्ययोग की राह पर ।)
क्रान्ति का अगला कदम ।)

(जयप्रकाश नारायण)

जीवनदान ।)

(अन्य लेखक)

सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र—शंकरराव देव	।)
श्रम-दान—शिवाजी भावे	।)
विनोबा के साथ—निर्मला देशपाण्डे	१)
पावन प्रसंग—मृदुला मूँदड़ा	।=)
भूदान आरोहण—नारायण देसाई	॥)
राज्यव्यवस्था : सर्वोदय दृष्टि से—भगवानदास केला	१॥)
गो-सेवा की विचारधारा—राधाकृष्ण बजाज	॥)
भूदान-यज्ञ (नाटक)—गोविन्ददास	१)
सन्त विनोबा की उत्तर भारत यात्रा—दामोदरदास मूँदड़ा	१।)
भूदान दीपिका—विमला बहन	=)
साम्ययोग का रेखाचित्र—विमला बहन	=)
पूर्व बुनियादी तालीम—शान्ताबाई नारुलकर	१)
नवभारत—रामकृष्ण शर्मा	७)
गाँव का गोकुल—अप्पासाहेब पटवर्धन	।)

आगामी प्रकाशन

विनोबा की आनन्द-यात्रा—सुरेश रामभाई
वितरण—सर्व सेवा संघ, गया
सुन्दरपुर की शाला का पहला घंटा—जुगतराम भाई दवे
अहिंसक अर्थ-शास्त्र और विश्व-शान्ति—जे० सी० कुमारप्पा
सफाई-शास्त्र—वल्लभस्वामी
शिक्षण विचार—विनोबा
कार्यकर्ता-वर्ग—विनोबा
ज्ञानदेव चिन्तनिका—विनोबा

(उर्दू-साहित्य)

भूदान	=)	विनोबा का पैगाम	=)
विनोबा की झाँकी	=)	भूदान लहरी	-)
भूदान : सवाल-जवाब	=)	भूदान तहरीक क्या है ?	=)
भूदान की तमहीद	-)		

[ENGLISH PUBLICATIONS]

Vinoba & His Mission 3–0
Bhoodan-Yajna : The Great Challenge of the Age 0–4
Bhoodan-Yajna 1–8
Revolutionary Bhoodan Yajna 0–4
Principles and Philosophy of Bhoodan 0–5
Swaraj-Shastra 1–0
Sarvodaya & World peace 0–2
Lessons from Europe 0–8
Non-Violent Economy and world Peace 1–0
Banishing War 0–8
Currency Inflation—Its Cause and cure 0–12
Economy of Permanence (2 vols) Each 2–0
Gandhian Economy and Other Essays 2–0
Our Food Problem 1–8
Overall plan for Rural Development 1–8
Organisation and Accounts of Relief work 1–0
Philosophy of Work and other Essays 0–12
Peace and Prosperity 1–0
Present Economic Situation 2–0
Peoples China–What I saw and Learnt there ? 0–12
Plan for Economic Development of N. W. F. 0–13
Science and progress 1–0
Stonewalls and Iron Bars 0–8
Unitary Basis for a Non-Violent Democracy 0–10
Why the Village Movement 3–8
Women and Village Industries 0–4
Demand of the Times 0–12
Elements of Village Administration and Law 1–0
Whither Constructive work 0–10
Economics of Peace : The Cause and the Man 100

ईसा ने अपने साथियों से कहा था, 'तुम इस बहु-रत्ना वसुन्धरा के नमक हो।' तब उसका अभिप्राय यह था कि तुम्हारी निष्ठा और तुम्हारी कार्यकुशलता से इस मृत्युलोक के जीवन में भी लुत्फ और लज्जत आयगी। लेनिन ने अपने साथियों से कहा था कि हमें ऐसे क्रान्तियोगी चाहिए जो क्रान्ति के लिए केवल अपनी फुरसत की साँझ ही नहीं, वरन् अपनी सारी जिन्दगी न्यौछावर कर देंगे। किसीने शंका उठायी, 'कितने आदमी मिलेंगे जो अपनी जिन्दगी कुरबान कर देंगे?' लेनिन ने कहा, 'मुझे कितने की फिक्र नहीं है, थोड़े ही हों, लेकिन अच्छे हों; इने-गिने ही हों, लेकिन पक्के हों; अपनी बात के धनी और क्रान्ति के मतवाले।' सवाल यह नहीं है कि जीवनदानी कितने हैं और वे समाज के किस स्तर से आये हैं। सवाल यह है कि क्या वे धुन के पक्के हैं? क्या उन्हें इन्कलाब की लगन लगी हुई है?

—दादा धर्माधिकारी
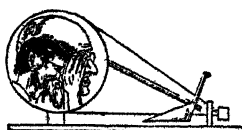
मूल्य
चार आना

त्रि वे णी

•

वि नो बा

निर्मला देशपांडे
द्वारा
संपादित और संकलित

•

१९५५
अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्र स्ता व ना

•

कुमारी निर्मला देशपांडे एक ऐसी सेविका हैं, जिनका हृदय निर्मल है, जो विद्वान्, नम्र एवं ज्ञानजिज्ञासु हैं। भूदान-यज्ञके विश्वव्यापी कार्यमें अपनी सेवा समर्पितकर उन्होंने पू० विनोबाजीके साथ एक सालतक यात्रा की है। इस बीच पू० विनोबाजीके भाषाणोंमें जो वेदोपनिषद्, रामायण, महा-भारत, गीता, भागवत आदि ग्रंथोंके भारतीय संस्कृतिके वचन आते रहे तथा विनोबाजी उनपर उस-उस समय जो विवरण करते रहे, वह सब उन्होंने अपने लिए बड़ी निष्ठासे संक्षेपमें लिख लिया। उन सब छोटे-बड़े संस्कृत-वचनोंका स्वाभाविक रूपसे एक 'शतक' बन गया है। कहीं १०८ का, कहीं १२० का तो कहीं १२५ का 'शतक' होता है। उसी प्रकार यह भी शतक कुछ बड़ा-सा है।

इस 'वचन-शतक' का उस-उस समय जो कुछ विवरण किया गया था, उसको उन्होंने स्मरणकर लिख रखा था। इसलिए इसे पू० विनोबाजी-का प्रामाणिक विवरण तो नहीं कहा जा सकता। 'स्मरण' के साथ-साथ विस्मरण, अर्धस्मरण, अन्यस्मरण आदि बातें भी आ ही जाती हैं और शायद इसीलिए उसमें एक प्रकारका माधुर्य निर्माण होता है। नदी बहती है तो जगह-जगहपर कई पत्थर होते हैं, जिनके कारण उसका स्वरूप कुछ भिन्न-भिन्न-सा दिखाई देता है। परन्तु उन पत्थरोंके हृदयमें करुणा, जीवन भर देनेके लिए ही उसमें पृथक्त्व पैदा होता है। उसी तरह यह वचन-विवरण स्वाभाविकतया विभक्त-सा है, फिर भी उसमें जो भक्तिकी माधुरता है, वह अनमोल है।

एक तो यज्ञकी महान् भूमिका, फिर उसके साथ गंगा-यमुनाके प्रदेशकी पवित्र यात्रा और फिर पू० विनोबाजीके सहज विवरणमेंसे निर्माण हुए ये वचन—इस तरह वास्तवमें यह एक 'त्रिवेणी-संगम' ही है। इसलिए इस वचन-शतकका शीर्षक 'त्रिवेणी' अनुरूप ही है। इसको प्रकाशित करनेमें कु० निर्मला देशपांडे का यही एक अत्यंत निर्मल उद्देश्य है कि इससे अपने साथी कार्यकर्ताओंको कुछ सहायता हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि वह उद्देश्य तो सफल होगा ही, पर साथ ही इसमें 'मज्जन' करनेवालोंको उसी समय तुलसीदासजीका बताया फल भी प्राप्त होगा :

मज्जन फलु पखिय ततकाला।
काक होहि पिक बकउ मराला ॥

परंधाम-आश्रम
पवनार, २५-२-'५५

—शिवाजी न० भावे

त्रिवेणी

साम्ययोगका आधार

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

आत्माको सर्वभूतोंमें, आत्मामें सर्वभूत भी ।
देखता योगयुक्तात्मा समदर्शी सभी कहीं ॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

मुझे जो सबमें देखे, सबको मुझमें तथा ।
मुझे न वह अप्राप्त, मैं अप्राप्त नहीं उसे ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥

सर्वभूतस्थ मुझको जो योगी एक हो भजे ।
मुझीमें बर्तता है सो सर्वथा बर्तता हुआ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

आत्मोपम सभीको जो सर्वत्र समबुद्धिसे ।
सुख हो दुःख हो देखे, योगी परम है वही ॥

—गीता, अध्याय ६, श्लोक २९ से ३२.

: १ :

साम्ययोगका तत्त्वज्ञान

गीताके छठे अध्यायके २९ से ३२ तकके 'श्लोक-चतुष्टय' में 'साम्य-योगी समाज' का तत्त्वज्ञान संक्षेपमें आ गया है। उन श्लोकोंमेंसे मैं निम्नलिखित निष्कर्षपर पहुँचता हूँ :

(१) समाजमें किसी भी सत्ताका शासन न हो। सद्विचारका अनुशासन हो।

(२) व्यक्तिकी सब शक्तियाँ समाजको समर्पित हों। समाजकी ओर-से व्यक्तिको विकासके अवसर प्राप्त हों।

(३) ईमानदारीसे, शक्तिके अनुरूप की गयी सब तरहकी सेवाओंका नैतिक, सामाजिक और आर्थिक मूल्य समान माना जाय।

इतनेमें ही मैं सन्तोष कर लेना चाहता हूँ।

: २ :

धनकी तीन गतियाँ होती हैं : पहली दान, दूसरी भोग और तीसरी नाश—'दानं भोगो नाशः।' तुलसीदासने कहा है—'सो धन धन्य प्रथम गति जाकी।' संपत्तिके ये तीन मार्ग हैं : या तो आप खाएँ, भोगें या दान करें, या फिर वह नष्ट हो जायगी। किसीके पास हजारों एकड़ जमीन है, तो वह इतना तो खा नहीं सकता। उसका पेट कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसमें चार हजार एकड़ जमीनकी फसल समा नहीं सकती। मैं तो कहता हूँ कि जितना खा सकते हैं, उतना जरूर खाना चाहिए। पेटभर खाएँ, लेकिन पेटीभर रखनेकी आशा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि बाकीका जो रख लोगे, उसपर मेरा हक होगा, या कम्युनिस्टोंका, या डाका डालनेवालोंका।

'दानं भोगो नाशः तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।'

यह भर्तृहरिका वाक्य है। तो, जितना खुद खा सकते हो, उतना खाओ, जितना मुझे दे सकते हो, दो और इसपर भी आप कुछ बचाकर रखेंगे तो डाका

डालनेवाले ले जायँगे। पैसेके लिए चौथा प्रकार हो ही नहीं सकता। इसलिए श्रीमान् लोगोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे दयालु बनें और देते ही जाएँ।
२२-४-'५१ —सिवन्नागुड़ा (तेलंगाना)

: ३ :

मैंने जो 'दान' शब्द चलाया है, उसपर कई लोग (शिक्षित) आक्षेप करते हैं। लेकिन वे उस शब्दका सही मतलब नहीं जानते। शंकराचार्यने लिखा है:

'दानं संविभागः।'

दान यानी सम-विभाजन। दान मनुष्यका नित्य-कर्तव्य है। नित्य-दानमेंसे सम्यक् विभाजन होता है। यदि हम अपनी संस्कृतिके शब्दोंसे विहीन हो जायेंगे और पश्चिमके लोगोंकी टीका मंजूर करेंगे तो हम अपनी बहुतसी शक्ति खो देंगे। यज्ञ, दान और तप मनुष्यके त्रिविध कर्तव्य हैं। यदि हम ये शब्द छोड़ेंगे तो भारतका जीवन शुष्क हो जायगा। यहाँ जिन्होंने काम किया है, वे सब हमारी संस्कृतिमें पले हुए थे। गीतासे सबको बल मिला है। पुराने शब्द छोड़नेसे अहिंसक क्रान्ति नहीं होती।
१४-४-'५१ —सेवापुरी

: ४ :

आप लोग जमीन कितनी देते हैं, इसकी मुझे फिक्र नहीं है। जमीन तो जहाँ थी वहीं पड़ी है और वह जिनकी है, उनके पास पहुँच चुकी है। जैसा कि भगवान्ने गीतामें कहा था:

'तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥'

'अर्जुन, ये सब मर चुके हैं। तुम सिर्फ निमित्तमात्र हो।' वही भगवान् आज कह रहे हैं कि जमीन तो गरीबोंको मिल चुकी है। श्रीमान् लोग सिर्फ निमित्तमात्र बनें। बेजमीनोंके पास जमीन पहुँचानेमें वह मुझे भी

निमित्तमात्र बनाना चाहता है—श्रीमानों और जमीनवालोंको प्रेरणा देनेके लिए। लोग कहते हैं कि आज दो सौ एकड़ जमीन यहाँ मिली है। लेकिन मैं इतना भोला नहीं हूँ कि यह सच मान बैठूँ। क्योंकि जैसा कि मैंने अभी कहा है, जमीन तो सबकी सब गरीबोंकी हो चुकी है। लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि गरीबोंके पास सिर्फ जमीन पहुँचे; बल्कि यह भी चाहता हूँ कि वह यज्ञके रूपमें पहुँचे। इसलिए जमीनका हस्तान्तरण मुख्य प्रश्न नहीं, वह ठीक ढंगसे हस्तान्तरित हो, यही मुख्य प्रश्न है। और यही कार्य भगवान् मेरे जरिये कराना चाहते हैं। इसलिए भाइयो, मेरा विचार आप समझ लीजिए ताकि जो विचार मुझे प्रेरणा दे रहा है, वह आपको भी प्रेरणा दे सके।

१८-३-'५२ —गोरखपुर

: ५ :

मैंने तेलंगानामें देखा कि जमीनका मसला अहम मसला है। उसे हल करनेके लिए कई जगह खेतिहर-मजदूरोंके आन्दोलन चले। तेलंगानामें कम्युनिस्टोंने भी एक आन्दोलन चलाया। लेकिन उनका तो तरीका ही बेढंगा है। मैं नहीं मानता कि इस तरीकेसे दुनियाका भला हुआ है और होगा भी नहीं। भारतको यह तरीका नुकसान पहुँचायेगा। भारतकी एक विशेषता है, हमारा अपना एक विशेष तरीका है। अगर कोई कहे कि जबर्दस्तीसे जल्दी जमीन मिलेगी, तो मैं कहूँगा कि मैं आहिस्ता-आहिस्ता ही जमीन प्राप्त करना चाहूँगा और अपने ही तरीकेसे प्राप्त करना चाहूँगा, हिंसक तरीकेसे नहीं। अहिंसाका यानी सर्वोदयका तरीका ही भारतीय संस्कृतिका तरीका है।

घीके डिब्बेको आग लगाना और वेदमंत्रोंके साथ यज्ञमें घीकी आहुति देना, इन दोनों प्रक्रियाओंमें घी तो जलेगा ही; पर एकसे भावना जलेगी, दुनिया खत्म होगी और दूसरेसे वह पुनीत होगी। हिंसक तरीकेसे एक मसला हल करने जाते हैं तो दूसरे कई मसले निर्माण होते हैं। जहाँ हिंसक तरीका आया, वहाँ तकलीफ आयेगी ही। हमने आजादीके लिए जो तरीका अप-नाया, वह यहींपर अपनाया गया, क्योंकि वह इस देशकी सभ्यताके अनुकूल

था। हमें वैसे नेता भी मिले। उसी तरह दूसरे मसले शुद्ध तरीकेसे हल करने चाहिए।

उपनिषदोंमें ऋषि कहता है:

'अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।'

'हे अग्निदेव, हमें सरल पंथसे ले जाओ, बुरे रास्तेसे नहीं। केवल लक्ष्मी नहीं चाहिए, सुपंथ चाहिए।' कुरानने कहा है कि हमें केवल सीधी राह चाहिए। गलत राहसे हम अपने मुकामपर नहीं पहुँचेंगे। ऐसा भास होगा कि हम जन्नतमें पहुँचे हैं, लेकिन असलमें तो हम जहन्नुममें ही जायंगे। इसीलिए हम सीधी राह—सुपंथ—लेकर ही आदर्शकी तरफ पहुँचें।

१-५-'५२ —फैजाबाद

: ६ :

अगर हमने कहा कि गरीबोंको समता चाहिए, तो दूसरे कहते हैं कि न्याय करना गलत नहीं है, लेकिन इससे जमीनके छोटे-छोटे टुकड़े बन जायेंगे और यह ठीक नहीं होगा। याने जहाँ हम 'समता' की बात करते हैं, वहाँ वे 'विषमता' की बात तो नहीं करते, परन्तु 'क्षमता' की बात खड़ी कर देते हैं। क्योंकि विषमताको माननेवाला टिक नहीं सकता। प्रकाशके सामने अंधकार टिक नहीं सकता। रामके खिलाफ रावण टिक नहीं सकता। परन्तु अर्जुनके खिलाफ भीष्मका नाम लेकर खड़े हो जानेसे युद्ध हो सकता है। एक अच्छे शब्दके विरोधमें दूसरा अच्छा शब्द लानेसे दोनोंमें युद्ध हो सकता है। राम-रावणकी लड़ाई अजीब थी, जैसे सूर्य और अंधकारकी। अंधकारके समूह सूर्यपर टूट पड़े हैं और फिर सूर्य-किरणोंने उनको नष्ट किया, यह कहना केवल वर्णन ही है। वास्तवमें सूर्यके सामन अंधकार टिक ही नहीं सकता। इसी तरह समताके सामने विषमता टिक ही नहीं सकती। इसीलिए ये लोग 'क्षमता' खड़ी करते हैं। कहते हैं कि 'क्षमताके लिए जमीनके बड़े-बड़े टुकड़े ही चाहिए।' इस तरह भिन्न-भिन्न विचारवाले अपना-अपना विचार प्रकट करते हैं। परन्तु हम ऐसी कुशलतासे समता लायेंगे

कि उसके साथ क्षमता भी होगी। वास्तवमें जहाँ समता है, वहाँ क्षमता भी आयेगी।

'यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥'

मजदूरोंके सवाल एकांगी ढंगसे, हिंसक तरीकेसे हल नहीं होंगे। अगर उससे कुछ कामयाबी नजर आती हो, तो भी बहुतसी हानियाँ होंगी। परन्तु मेरा काम कुशलतासे होगा। समता तो स्थापित करनी है, परन्तु ऐसे ढंगसे कि उससे मजदूरोंका दुःख नष्ट हो, उसी ढंगसे क्षमता भी स्थापित हो और दूसरे भी गुण निर्माण हों।

१-५-'५२ **—फैजाबाद**

: ७ :

आज सारा भारत मजदूर बन गया है। लाखों लोग अपनी बुद्धिका उपयोग नहीं कर सकते। वे शिक्षासे वंचित हैं—धन, मान और ज्ञानसे विहीन हैं। फिर उनमें क्षमता कैसे आयेगी? अगर चर्खेका कोई नया मॉडेल बनाना हो, तो आज गाँवमें उसके लिए अच्छा बढ़ई नहीं मिलता। उसके लिए उनको पाँच-पाँच साल तालीम देनी पड़ती है। हमारा कारीगर मजदूर-वर्ग अनिपुण (Unskilled) है—जिसमें कोई ज्ञान नहीं, प्रतिष्ठा नहीं, ध्येय नहीं—ऐसा वह वर्ग है। पूँजीवादी समाजमें कुछ तो ऐसे होते हैं जो दिमागका ही काम करते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो यंत्रके समान काम करते रहते हैं। उन्हें अक्लका काम नहीं दिया जाता। कुछ ऐसे होते हैं जो चाकूके कारखानेमें चाकूमें छेद करनेमें ही सारी जिन्दगी बिता देते हैं। हर रोज पाँच हजार चाकुओंमें छेद करते हैं। पूँजीवादी कहते हैं कि इस तरीकेसे क्षमता, कुशलता पैदा होती है। लेकिन इसमें मनुष्यके जीवनको सर्वांगीण नहीं बनाया जाता। इसमें मनुष्य केवल हाथ (Hand) ही बनता है। पूँजीवादी समाजमें कुछ हाथ (Hands) होते हैं और कुछ सिर (Heads) होते हैं। सारे धड़ इधर और सारे सिर उधर; जो सिरजोर बन

जाते हैं। और कहते हैं कि उससे क्षमता आती है। वे कहते हैं कि सर्वांग-पूर्ण मनुष्यकी बात छोड़ देनी चाहिए।

चातुर्वर्ण्यमें भी कुछ लोगोंने ऐसी ही कल्पना की थी। परन्तु उसमें ऐसी बात नहीं है। हरएक वर्णमें चारों वर्ण होते हैं—एक वर्णकी प्रधानता होती है और बाकीके वर्ण गौण होते हैं। युद्धके समय भगवान् कृष्ण केवल लड़ते ही नहीं थे, घोड़ोंको धोनेका काम भी करते थे। मोह-निरास के लिए ब्राह्मणका काम भी करते थे। उन्हें मौके-मौकेपर ग्वाल, ब्राह्मण, शूद्र, क्षत्रिय आदि सब बनना पड़ा। इस रचनामें तो ऐसा है कि जिसके लिए जो प्रधान काम है, उसे वह करना चाहिए; लेकिन बाकीके काम भी करने चाहिए। गणितका प्रोफेसर यदि यह कहे कि फैजाबाद स्टेशन कहाँ है, यह मैं नहीं जानता, क्योंकि यह तो भूगोल का विषय है, तो वह अच्छा नागरिक नहीं कहा जायेगा।

'धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः'

सबके लिए समान गुण, फिर भी सबके लिए अलग-अलग गुण। सबको परिपूर्ण मानव बनाया जाय, फिर भी हरएककी विशेषता कायम रखी जाय। सबको दिमाग, मन और हाथ हैं; इन सबके लिए काम दिया जाय, फिर प्रधानता चाहे किसी एकको दी जाय।

हम ऐसी समाज-रचना चाहते हैं कि इसमें जो मालिक होगा वह मजदूर भी होगा और जो मजदूर होगा वह मालिक भी। दोनों मालिक भी होंगे और मजदूर भी। कुछ मालिक-प्रधान मजदूर होंगे और कुछ मजदूर-प्रधान मालिक होंगे। कुछ बुद्धि-प्रधान शरीर-श्रम करनेवाले होंगे और कुछ श्रम-प्रधान बुद्धिका काम करनेवाले। अगर भगवान् यह नहीं चाहता तो वह कुछ लोगोंको हाथ ही हाथ देता और कुछको सिर्फ बुद्धि ही देता। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। उसने सबको पूर्ण बनाया है।

हम 'मालिक-मजदूर' भेद ही मिटाना चाहते हैं। इसका मतलब यह है कि हम दोनोंकी अक्ल और श्रम-शक्ति, दोनोंका उपयोग करना चाहते हैं। समता लाना चाहते हैं और क्षमताको भी खोना नहीं चाहते।

१-५-'५२ —फैजाबाद

: ८ :

आज भगवान् बुद्धका जन्मदिन है। उनकी ख्याति सारे विश्वमें फैली हुई है। दुनियामें बहुतसे लोगोंका उनके जीवन, तत्त्वज्ञान और पद्धतिकी तरफ आकर्षण है। बीचके जमानेमें बुद्धका नाम नहीं लिया गया, परन्तु उनकी जयन्ती मनायी जाती थी। जिस शख्सकी जयन्ती ढाई हजार वर्ष बाद भी मनायी जा रही है, जिसका जन्म ढाई हजार साल बाद हो रहा है, उसकी जिन्दगी कितनी बड़ी होगी! आज भी हिन्दू लोगोंके जो धार्मिक सत्कार्य होते हैं, उनमें कहा जाता है:—

'वैवस्वते मन्वंतरे, बुद्धावतारे'

'यह कलियुग है, बुद्धावतारका समय है।' याने आज हम बुद्धावतारमें यह कार्य कर रहे हैं। यह बुद्धावतारका आरंभ है।

ढाई हजार साल पहले भगवान् बुद्धकी शिक्षाका बीज बोया गया था, वह मिट्टीसे ढाँका गया था। अब उसमें अंकुर फूट रहा है। बुद्ध भगवान्‌ने सबसे श्रेष्ठ बात स्पष्ट शब्दों में यह कही थी :

'न हि वेरेण वेराणि समन्तीध कुदाचन।
अवेरेण च समन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥'

'भाइयो, यह अनुभवका सार है कि वैरसे वैरका कभी शमन नहीं होता, निर्वैरतासे ही वह मिट सकता है। आगको बुझानेके लिए अग्नि, तेल या घी काम नहीं देता, उसके लिए तो पानी ही चाहिए। वैरको मिटाना है, तो वैर या दुश्मनीसे वह नहीं मिटेगा, अवैरसे ही मिटेगा।' यह बात उन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दोंमें कही थी। उसमें क्या ताकत थी, इसका भान लोगोंको आज हो रहा है। आज दुनियामें चारों ओर असंतोषका धुआँ फैला हुआ है, कशमकश और लड़ाई-झगड़े चल रहे हैं। तब इन सवालोंको कैसे हल किया जाय, इसपर विचार करते समय ऐसा लगता है कि शायद बुद्ध भगवान्‌की शिक्षासे काम होगा, ऐटमबम और उद्‌जन बमसे मसले हल करनेकी कोशिश करोगे तो जो आज चल रहा

है, उससे शांति नहीं स्थापित हो सकती, मसले हल नहीं हो सकते, उससे तो शक्तिका क्षय ही होगा। उससे हम आगे नहीं बढ़ेंगे, जहाँके तहाँ ही रह जायेंगे। इसका कुछ-कुछ भान आज दुनियाको हो रहा है। बापूने तो यही कहा था। नास्तिक लोग भी भगवान् बुद्धको मानते हैं, उनकी सिखावनको मानते हैं। आज उनकी अहमियत मनुष्यको महसूस हो रही है। आज उनका जन्म हो रहा है। ढाई हजार सालतक वे गर्भावस्थामें थे। उनके विचारोंका बीज बोया गया था, जमीनके अंदर। वहाँ उसे पोषण मिल रहा था। आज उनके विचारोंका अंकुर फूट रहा है।

९-५-'५२ —लखनऊ

: ६ :

बुद्ध भगवान्‌ने दुनियाको निर्वैरताकी शिक्षा दी। उन्होंने कहा कि वैरसे वैरका कभी शमन नहीं होता। उन्होंने यह जो तालीम दी, जो तत्त्व सिखाया, वह उनके जमानेमें भी नया नहीं था। आज तो वह नया है ही नहीं, परंतु जब उन्होंने इसका उच्चारण किया, तब भी वह नया नहीं था। उनके पहले भारतमें सैकड़ों वर्षोंका अनुभव था, तत्त्वज्ञान, आत्मा-अनात्माका विवेक था। वेद, उपनिषद्, सांख्य, गीता—यह सब उनके पहले हो चुका था। वेदोंने हमें निर्वैरताकी ही शिक्षा दी थी।

'मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥'

'अगर मैं चाहता हूँ कि सारी दुनिया मेरी तरफ मित्रकी निगाहसे देखे, तो मैं भी सारी दुनियाकी तरफ मित्रकी निगाहसे देखूँगा।' दुनियाको शत्रु या मित्र बनाना मेरे हाथकी बात है।' मैं चाहूँ तो दुनियाको अपना मित्र बना सकता हूँ और चाहूँ तो शत्रु बना सकता हूँ। यह सारा अभिक्रम (Initiative) मेरे हाथमें है, दूसरोंके हाथोंमें नहीं। मैं जैसा चाहूँगा वैसी दुनिया नाचेगी। वह बंदर है, मैं उसे नचानेवाला हूँ। हम दुनियाको वही रूप देंगे जो हम चाहेंगे। मैं मित्रकी निगाहसे देखूँ तो आईनेमें यह

ताकत नहीं है कि वह दूसरी निगाहसे मेरी तरफ देखे। मेरी आँखें निर्मल हैं तो आईना मलिन नहीं हो सकता। वह मेरी इच्छाके विरुद्ध दर्शन नहीं दे सकता। जैसे आईना मेरा प्रतिबिंबरूप है, वही हालत जड़ दुनियाकी है। किसी भी तरफ देखो, सृष्टि अपार, अनंत और असीम है। परन्तु चेतनके सामने विशाल दुनिया कुछ नहीं है, जैसे अग्निके सामने लकड़ीका असीम ढेर कुछ नहीं होता, क्योंकि वह जड़ है। मैं दुनियाको जैसी शक्ल दूँगा, वैसी ही वह बनेगी। सारी दुनिया मेरे हुक्मसे चल रही है। यह हिमालय मेरी ही आज्ञासे उत्तरकी तरफ है। अगर मैं चाहूँ तो उसे दक्षिणकी तरफ फेंक सकता हूँ। जब मैंने यह कहा तो एक लड़केने मुझसे पूछा कि यह कैसे संभव हो सकता है? मैंने जवाब दिया कि मैं अगर हिमालयके उत्तरकी तरफ जाऊँ तो वह दक्षिणमें फेंका जायगा। तब उसकी हिम्मत नहीं होगी कि वह दक्षिणमें न जाय। इसी तरह मैं उसे सब दिशाओंमें फेंक सकता हूँ। वह बड़ा है, परन्तु जड़ है और मैं चेतन हूँ। वह कपासके बहुत बड़े ढेरके समान है, लेकिन मैं अग्निकी चिनगारी हूँ। मैं उसे खाक कर दूँगा, वह मुझे जला नहीं सकता। इसीलिए कहता हूँ कि मैं चाहूँ तो दुनियाको मित्र या शत्रु बना सकता हूँ। यह मेरे हाथकी बात है, यह वेदोंने समझाया है। वेदोंसे लेकर बुद्धतक हजार सालतक उसे दुहराया गया है। उसकी कसौटी की गयी है। बुद्धका अनुभव पक्का है। बुद्धने कोई नयी बात नहीं कही। परन्तु उन्होंने वह बात जितने निश्चयसे सामने रखी, उतने निश्चयसे शायद ही किसीने पहले रखी ेगी। 'वैरसे वैर मिटता नहीं, क्रोधको अक्रोधसे जीतो' यह बात बुद्धके अनुभवसे स्थिर हो गयी।

'यह बात एक विचारके तौरपर मानी गयी, परन्तु सारे समाजमें उसका प्रयोग कैसे किया जाय—हमारी सारी समस्याएँ जो राजनैतिक, सामाजिक, कौटुंबिक हैं, उस तरीकेसे कैसे हल की जायँ, यह अब सोचना है। निर्वैरताको अमलमें कैसे लाया जाय, यह हमें देखना है। बीचके जमानेमें पानीसे अग्निको नष्ट करनेके, शांतिसे क्रोधको, निर्वैरतासे वैरको मिटानेके प्रयोग हुए हैं। फिर भी वे सारे व्यक्तिगत अनुभव थे। उसका समाजमें कैसे अमल

किया जाय—यह मालूम नहीं था। विज्ञानके प्रयोग पहले छोटे पैमानेपर प्रयोगशाला (Laboratory) में होते हैं, और वहाँ जब एक सिद्धान्त सिद्ध होता है, तो फिर व्यापक पैमानेपर उसे कैसे अमलमें लाया जाय, यह देखा जाता है। इसी तरह जो निर्वैरताका, अहिंसाका प्रयोग बुद्ध वगैरहके जीवनकी छोटी-छोटी प्रयोगशालामें सिद्ध हो चुका था, वही अब राजकीय क्षेत्रमें हुआ। गांधीजीने अहिंसक तरीकेसे स्वराज्य प्राप्त करनेका प्रयोग किया और उसमें हम सफल हुए। अब, स्वराज्यके बाद, हमें जो नयी समाज-रचना करनी है, वह किस तरीकेसे की जाय, इसपर सोचना चाहिए।

९-५-'५२ —लखनऊ

: १० :

मानवकी शक्ति मर्यादित है, क्योंकि उसका शरीर मर्यादित शक्तिवाला है। इसलिए उससे सेवा भी मर्यादित ही होगी; परन्तु वृत्ति मर्यादित नहीं रखनी चाहिए। कोई मेरे कार्यक्षेत्रके बाहर हों तो हर्ज नहीं; परन्तु सहानुभूतिके विचारके क्षेत्रसे बाहर हो जाते हैं तो मैं अपनी शक्ति खोता हूँ, मेरी शक्ति मर्यादित हो जाती है। इसलिए चाहे सेवाका क्षेत्र मर्यादित हो, पर भावना और सहानुभूतिका क्षेत्र अमर्याद रहे। मनुष्यको मनुष्यके नाते ही देखो; नहीं तो हिंदू-धर्मकी आत्माको हम खो देंगे। हिंदू-धर्म कहता है कि सबमें एक ही आत्मा है। यह एक ऐसा विशाल धर्म है जिसमें किसी भी तरहका संकुचित भाव नहीं रह सकता। यदि हम यह बात ध्यानमें नहीं रखते हैं, तो धर्मकी बुनियाद ही खोते हैं।

'एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति।'

'सत्य एक ही है। उसे बुद्धिमान लोग कई नामोंसे पुकारते हैं।' इसमें 'विप्राः बहुधा वदन्ति' कहा गया है, 'मूर्खाः बहुधा वदन्ति' नहीं कहा गया। हिंदू-धर्म कहता है कि सत्य एक है, परन्तु उपासनाके लिए वह अलग-अलग हो सकता है। ऐसी व्यापक वृत्ति रखोगे तो हिन्दुओंकी सेवा कर सकोगे।

९-५-'५२ —लखनऊ

: ११ :

हमने आजादी अहिंसक तरीकेसे हासिल की। अब एक बड़ा भारी सवाल हमारे सामने यह है कि आर्थिक तथा सामाजिक रचना करनेमें कौनसे तरीके इस्तेमाल किये जायँ। गांधीजीके जमानेमें अहिंसात्मक तरीका इस्तेमाल किया गया। इसमें कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि उस समय हम लाचार थे, हिंसा नहीं कर सकते थे। इसलिए उस समयकी हमारी अहिंसा अशरणकी शरण थी, अगतिकताकी गति थी और अनाथका आश्रय था। उस समय हमारे सामने एक ही रास्ता था। लेकिन अब दूसरी बात है। म चाहें तो सेना बढ़ा सकते हैं, चाहें तो हिंसाकी राह ले सकते हैं और चाहें तो अहिंसाकी राह ले सकते हैं। उस समय चुनावकी सत्ता हमारे हाथमें नहीं थी; लेकिन आज है। भगवान्ने बापूको देहसे मुक्त कर दिया और हमारे सामने सवाल रख दिया है। हम खुले तौरपर, बिना किसीके दबावके चुनाव कर सकें, इसीलिए भगवान् बापूको ले गया। अब उनका दबाव हमारे सिरपर नहीं है। वे रहते तो शायद हम बिना सोचे उनके पीछे-पीछे अहिंसाकी राहपर जाते। लेकिन भगवान् चाहता है, हम खुद सोचकर अपना रास्ता तय करें।

आप चाहें तो रूस या अमेरिकाको अपना गुरु बनायें और अपनी खुदकी स्वतंत्र इच्छासे उनके गुलाम बनें। हम किसीको गुरु बनाते हैं तो अपनी स्वतंत्र इच्छासे ही बनाते हैं। तो क्या हम उनके शागिर्द (Camp-Follower) बनना चाहते हैं? क्या हमारा यही नसीब है? वे तो हमसे काफी आगे बढ़े हुए हैं। हम उनकी ताकत लेकर चलें तो उनके जैसा बननेमें हमें अभी ५० साल लगेंगे और भी फिर शायद हम उनके पीछे ही रहेंगे। या तो भारत उनमेंसे किसी एकका गुलाम बनेगा या उनसे ताकतवर बनेगा। अगर ताकतवर हुआ तो दुनियाके लिए वह खतरनाक बनेगा। तो क्या उनको गुरु बनाकर गुलाम या दुनियाके लिए खतरनाक बनना चाहते हो?

भगवान्ने भारतको नसीब ही ऐसा दिया है कि या तो अहिंसामें

श्रद्धा रखें या हिंसाके पंडितोंके अनुयायी बनें। हमारा देश खण्डप्राय है। यहाँपर अनेक भाषाएँ, जातियाँ, धर्म और पंथ हैं। ऐसी हालतमें क्या इस देशको हिंसाके आधारपर एक बनाया जा सकता है? आज आंध्रवाले स्वतंत्र आंध्रप्रान्त चाहते हैं, तो क्या उनका अपने मकसदके लिए हिंसात्मक तरीके इस्तेमाल करना मंजूर करोगे? अगर आप हिंसाको मानते हैं, तो बापूका खून करनेवाला पुण्यवान था, ऐसा कहना होगा। चाहे उसका विचार गलत था, परंतु वह प्रामाणिक था, ऐसा कहना होगा। अगर अच्छे और सच्चे विचारके लिए हिंसात्मक तरीकोंको मानते हैं, तो गांधीजीकी हत्या करनेवालेने त्याग किया, उसने प्रामाणिकतासे अपने विचारका आग्रह रखा, ऐसा कहना पड़ेगा। इसलिए हिंसाको छोड़ना ही होगा। उससे भारतके टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।

जमीनकी समस्या तो सारी दुनियामें है। पर हम किस तरीकेसे उसे हल करते हैं—यही सवाल है। दुनियामें हिंसाके तरीके आजमाये गये हैं। अगर हम अपना तरीका नहीं चलाते हैं, तो बाहरका तरीका यहाँपर आनेवाला है। सारी दुनियामें विचारका प्रवाह इधरसे उधर और उधरसे इधर बहता रहता है। मानसूनकी तरह क्रान्तिकारक विचार भी बाहरसे यहाँ आयेंगे और यहाँसे बाहर जायेंगे। हवाकी तरह विचारको भी किसी 'पासपोर्ट' की जरूरत नहीं होती। विचारको कोई भी दीवाल नहीं रोक सकती। इसलिए तय करो कि भूमिकी समस्या शान्तिसे हल करनी है या नहीं? जैसे बाहरके विचारोंका यहाँपर आक्रमण हो सकता है, वैसे ही हमारे विचार भी बाहर जा सकते हैं। इसलिए हिम्मत रखो कि हम यहाँ-का विचार बाहर भेजेंगे। जैसे भगवान् बुद्धके अनुयायियोंने बाहर जाकर प्रेमसे विचारका प्रचार किया, उसी निष्ठासे काम करो और यह विश्वास रखो कि हम भूदान-यज्ञका विचार सर्वत्र फैलायेंगे। उसी निष्ठासे यह नये धर्म-चक्र-प्रवर्त्तनका काम करो तो हम दुनियाको आकार दे सकते हैं।

जैसे प्रलयमें सर्वत्र पानी ही पानी हो जाता है, तो भी मार्कंडेय ऋषि अकेला तैरता रहता है और दुनियाको बचाता है; वैसे ही आज जहाँ अणुबम, वाग्युद्ध, चिन्तनके प्रवाह चल रहे हैं; विचार, वचन, शस्त्र, व्यापार

आदिसे दुनियाको जीतनेकी जितनी कोशिश चल रही हैं; वहाँ इन सारे प्रलयके पानीमें जो देश मार्कंडेय ऋषिके समान तैरेगा, वह दुनियाका नेता बनेगा। उसके हाथमें दुनियाका नेतृत्व आना लाजमी है। मैं यह अभिमानसे नहीं, नम्रतासे कह रहा हूँ। जो नम्र बनता है, वह ऊपर चढ़ता है। मनु महाराजने भविष्य लिखा था :

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।'

'इस देशमें जो महान् विचारक पैदा हुए या होंगे, उनके द्वारा दुनियाके लोग अपने-अपने चरित्रकी शिक्षा लेंगे।' भाइयो, ऐसा नेता हमें मिला था जब हमारा देश अहिंसाके जरिये स्वराज्य हासिल कर रहा था। आज भी हमारे देशमें ऐसे लोग हैं, जिनके हृदयमें सद्भाव है। थोड़ी हिम्मत और कल्पना-शक्ति रखो, तो आपके हाथोंमें दुनियाको आकार देनेकी शक्ति आ जायगी। यह कोई आक्रमण नहीं है, यह तो दुनियाको बचाना है। यह एक ऐसी महत्त्वाकांक्षा है जो रखने लायक है। इसलिए यदि हम भूमिका मसला अहिंसक तरीकेसे हल कर सकेंगे तो दुनियाको रास्ता दिखा सकेंगे।

९-५-'५२ —लखनऊ

: १२ :

तत्त्वज्ञानियोंने भारतको आत्माका दर्शन करानेके लिए अनेक प्रकारके विचार दिये। अंतमें एक सिद्धान्त स्थिर हुआ कि मनुष्य-जीवनका चरम आदर्श है, मुक्ति। मुक्ति याने हम अपनेको भूल जायँ, हमारा अहंकार शून्य हो जाय, हम मिट जायँ। जब बिंदु सिंधुमें विलीन हो जाता है तब वह छोटा नहीं, बड़ा बन जाता है। इसी तरह हम भी विश्वरूप, समाजरूप बनें। मक्तिका अर्थ यह है कि मानव अपने निजके जीवनको शून्य बनाये और विश्वके—समाजके जीवनमें विलीन हो जाय। काम-क्रोध छोड़े। जिस तरह नदी समुद्रमें लीन हो जाती है, उसी तरह मानव अपनी सारी शक्ति परमेश्वरमें लीन करे। हजार मस्तकों, हजार हाथों, हजार नेत्रोंसे हम विश्वरूप भगवान्‌की सेवामें लग जायँ जो हमारे सामने खड़ा है।

जब भगवान् नरसिंह ने हिरण्यकशिपुका विदारण किया तब प्रह्लादने उसकी स्तुति की : 'आपके इस भयंकर रूपसे मुझे डर नहीं लगता, क्योंकि यह रूप बुराइयोंको मिटानेवाला है'—**'नाहं बिभेमि ।'**

फिर उसने भगवान्की प्रार्थना की :

'नैतां विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एकः ।'

'मैं अकेला मुक्त नहीं होना चाहता'—यह कहकर उसने मुक्तिकी गलत राहपर प्रहार किया। जंगलमें जाकर, तपस्या करके, विकारोंको छोड़नेसे मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। परन्तु प्रह्लादने कहा कि जंगल कहाँ जाते हो? एक छोड़ते हो और एक पकड़ते हो तो मुक्ति कैसे पाओगे ? परमेश्वर तो सर्वत्र है। सारे समाजके लिए अपना अहंकार छोड़ना ही मुक्ति है, संन्यास है, भक्ति है, त्याग है। तभीसे सन्तोंने बार-बार यही दुहराया कि हम व्यक्तिगत मुक्ति, स्वर्ग या राज्य नहीं चाहते। जबतक तू आनन्द भोगनेकी इच्छा करता है और मुक्तिको आनन्द मानता है तबतक वासना मिटी नहीं, अहंकार मिटा नहीं। मुक्तिका मतलब है–हम मिट जायँ। हजारों वर्षोंकी तपस्या और आध्यात्मिक प्रयोगोंके बाद यह बात संतोंने हमें सिखायी है।

१३-५-'५२ —कानपुर

: १३ :

आज हिंदुस्तानकी शक्ति जाग्रत हो रही है। अंधोंने भी दान दिया है। यह प्रेरणा कहाँसे आयी? एक छोटे-से गाँवमें मैंने भूदानका विचार समझाया। रातको मैं सो गया तो चार मीलकी दूरीसे रामचरण अंधा आया और दान देकर चला गया। उसने मुझे रामके चरणोंका दर्शन कराया। वह रातको ११ बजे आया और दान देकर चला गया। उस अंधेको क्या दर्शन हुआ? वह आपको बता रहा है कि हिंदुस्तान जाग रहा है। नया विचार, नयी भावना आ रही है। मैं गरीबोंका प्रतिनिधि बन[illegible]या हूँ। उनका हक माँग रहा हूँ। मैं सबको समझाता हूँ कि हवा, पानी और

सूरजकी रोशनीकी तरह जमीन भी भगवान्‌की देन है; इसलिए उसपर सबका समान अधिकार है। आजतक मुझे ऐसा कोई भी शख्स नहीं मिला जिसने यह कहा हो कि 'भूदान नहीं देना चाहिए।' किसीने मोहवश नहीं दिया हो सो बात अलग है, परन्तु सबने यह बात मानी है कि भू-दान देना चाहिए। इसलिए मेरा विश्वास है कि भारतमें एक नयी क्रान्ति हो रही है। देखते-देखते सारे लोग उठ जायँगे।

उपनिषदोंमें एक कहानी है। बीज छोटा होता है। गुरु शिष्यसे कहता है कि उस बीजके टुकड़े करो। फिर पूछता है कि 'अब क्या देखते हो?' शिष्य कहता है कि 'कुछ नहीं।' तो गुरु कहता है कि जो अत्यंत सूक्ष्म है, जो तुम नहीं देख सकते हो, वह परमेश्वरका स्वरूप है—**'स य एषोऽणिमा।'** वह तेरा स्वरूप है—**'तत्त्वमसि।'** यह जो नहीं दीखता उसीसे विशाल सृष्टि पैदा होती है। वट-वृक्षके अति सूक्ष्म बीजसे विशाल वटवृक्ष पैदा होता है।

इसी तरह आज हर हृदयमें बीज बोया जा रहा है। उसे पानी मिल रहा है। फिर आगे चलकर उसका महान् वृक्ष होगा। मैं दुबला-पतला आदमी भी विचारकी शक्तिसे ताकत पाता हूँ। मुझमें कोई ताकत नहीं है, कल भी खत्म हो सकता हूँ। हर रोज १०-१५ मील चलता हूँ, फिर भी थकता नहीं। यह स्फूर्ति कैसे आती है? वह इसलिए आती है कि परमेश्वर इस कामको चाहता है। जब वह चाहता है तो बंदरों और ग्वाल-बालोंसे भी महान् काम करवा लेता है। इसी तरह हम-जैसे कमजोरों-से वह यह महान् कार्य करवा रहा है। परमेश्वर चाहता है तो यह काम होकर ही रहेगा।

१३-५-'५२ —कानपुर

: १४ :

मैं आपको समझाने आया हूँ कि आप तुच्छ नहीं हैं, महान् हैं। मैं किसीकी भी इज्जत कम नहीं करना चाहता। सबकी इज्जत बढ़ाना चाहता हूँ। भारतवर्ष दस हजार वर्ष पुराना देश है, जहाँपर तपस्या हो चुकी है, सामाजिक परिवर्तन हो चुके हैं, असंख्य महापुरुष पैदा हुए हैं। इसलिए भूलो मत कि तुम महान्

हो, तुम्हारी तरफ सारी दुनियाकी आँखें लगी हुई हैं। बच्चेको बचपनसे यह समझाते रहो कि 'तू देह नहीं, तू ब्रह्म है—**'तत्त्वमसि'**।' तू चोला नहीं; तू देहसे भिन्न है। तेरी देहको कोई धमकाये तो डरना नहीं। जुल्मी लोग शरीरको डराकर अपनी सत्ता कायम करते हैं। परन्तु कोई तेरे शरीरको मार-पीटकर तुझसे अच्छी भी चीज करानेकी कोशिश करे, तो न करना। हम इस शरीरसे भिन्न हैं, यह पहचानना।' बच्चोंको इस तरहसे समझाते रहना चाहिए, न कि उन्हें डराना-धमकाना। उनसे यह कहना चाहिए कि तुम तुच्छ नहीं हो। बच्चे पूर्ण होते हैं, अपूर्ण नहीं। उनको प्रतिष्ठा देनी चाहिए, निर्भय बनाना चाहिए, तब देश आगे बढ़ेगा। यह तभी हो सकता है जब 'हम सब परिपूर्ण हैं', यह सबको समझायेंगे। एक छोटी-सी मिसाल देता हूँ। बापको पूरा लड्डू दिया जाय और बच्चेको आधा, तो बच्चा नहीं मानेगा। वह पूरा लड्डू चाहेगा, आधा नहीं। वह समझ सकता है कि बाप बड़ा है इसलिए उसे बड़ा लड्डू मिल रहा है और मैं छोटा हूँ इस-लिए मुझे छोटा लड्डू मिल रहा है, परन्तु उसे चाहिए पूर्ण ही। वह कहता है कि मैं पूरा हूँ, अधूरा नहीं हूँ। वह अपूर्णताको सहन नहीं कर सकता; वह भी पूर्ण है—**'पूर्णमदः पूर्णमिदम्'**।'

इसी तरह छोटे-बड़े सब काश्तकार एक-दूसरेको अपना ही अंग समझें। सब आत्मरूप हैं—यह बात समझानेसे आप जो भी माँगेंगे उसे वह देना पड़ेगा। जब देनेवालेको लगता है कि मैं अलग हूँ और यह अलग, तब उसे देनेमें संकोच होता है। पर दोनों एकरूप हैं—यह मानो तो जो माँगो वह दिये बगैर नहीं रहेगा। हम सब पूर्ण हैं—यह मानोगे तो हिंदुस्तान प्राचीनकालसे भी अधिक गौरवशाली बनेगा।

१३-५-'५२ —कानपुर

: १५ :

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।'

'ज्ञानके समान पवित्र वस्तु कोई नहीं है।' उसके सामन कोई अमंगल विचार टिक नहीं सकता। 'मैं जमीनका मालिक हूँ'—यह अमंगल विचार है।

'मैं जमीनका सेवक हूँ'—यह मंगल विचार, सद्विचार है। दुनियाको यह स्वीकार करना ही होगा, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं। इसलिए हम अपने कार्यकर्ताओंसे कहते हैं कि सतत काम करो। हम तो अपना विचार समझाते जायँगे, क्योंकि ज्ञानसे बढ़कर और कोई शक्ति है ही नहीं। अगर मनुष्यके हृदयमें ज्ञान पहुँच जाय तो उसका सारा हृदय पवित्र हो जाता है। इसलिए हमें ज्ञान देनेमें ही दिलचस्पी है। फिर इसमें चाहे जितना समय लग जाय। किसीको बार-बार समझाना पड़े, तो भी हमें दुःख नहीं होता, बल्कि उत्साह अधिक बढ़ता है, क्योंकि हम शिक्षक हैं। हम मानते हैं कि मंदबुद्धि विद्यार्थीको समझानेमें हमारी बुद्धिकी कसौटी होती है।

२०-५-'५२ —आटा (हमीरपुर)

: १६ :

हर देशकी अपनी सभ्यता होती है। उसके आधारपर हर देशकी क्रान्तिका अपना एक ढंग होता है। वेदोंसे लेकर गांधीतक, सारे विचारोंका मैंने अध्ययन किया है, सारे विचारोंको मैं घोलकर पी गया हूँ। और इसीलिए मैं कहता हूँ कि भारतका अपना एक मिशन है, अपना एक धर्म है। यहाँ कई त्यागी हुए हैं। यहाँपर त्यागका नाम सुनते ही लोगोंके दिलोंमें उत्साह पैदा होता है।

'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।'

'न कर्मसे मोक्ष मिलता है, न प्रजासे, न धनसे; बल्कि त्यागसे मिलता है।' यहाँपर जो क्रान्ति होगी वह त्यागसे होगी, त्यागकी पृष्ठभूमिपर होगी।

१४-९-'५२ **—दुर्गावती (आरा)**

: १७ :

जो भूमिहीन काश्त करनेके लिए भूमि माँगते हैं, उन्हें भूमि देना हमारा कर्तव्य है। यह एक बुनियादी उसूल है, मानवका हक है, ऐसा मैं मानता हूँ। वेदोंमें कहा है, **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'**—जमीन हमारी

माता है और सब मानव उसके पुत्र हैं। इस तरह हरएक पुत्रका हक है कि माँके पास पहुँचे और हरएक पुत्रका यह कर्तव्य है कि वह माँकी सेवा करे।

१४-९-'५२ —दुर्गावती (आरा)

: १८ :

ऋषिने कहा है:

'यावान् वा अयमाकाशः, तावान् एषोऽन्तर्हृदय आकाशः।'

'जितना व्यापक आकाश बाहर है, उतना ही भीतर है।' दिलके आकाशको बाहरके आकाशके समान उदार बनाओ।

१७-९-'५२ —सासाराम (आरा)

: १९ :

यह किसानोंका देश है। हमारा आदर्श 'कृष्ण' है। कृष्ण यानी किसान। पर आज हालत यह है कि बाहरसे अनाज मँगाना पड़ता है। यह क्यों हो रहा है? इसीलिए कि जो चीज जिसकी है, उसे हम उससे वंचित रखते हैं। उसके लिए कमसे कम अपनी भूमिका छठा हिस्सा देना हमारा कर्तव्य है। शास्त्रोंमें कहा गया है—**'षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः'** भूमिका रक्षण करनेवाले राजाको छठा हिस्सा देना लाजमी है। आज हिंदुस्तानका राजा कौन है? सबको मतदान (Vote) का हक मिला है। अब किसान राजा बन गया है, इसलिए उसे उसका हक देना चाहिए।

१७-९-'५२ —सासाराम (आरा)

: २० :

मनु महाराजने कहा है कि **'सदा शुचिः कारुहस्तः'।** 'काम करनेवालेके हाथ सदैव पवित्र रहते हैं।' किसी मजदूरके हाथमें काम करते-करते मिट्टी लग जाती है और वह उन्हीं हाथोंसे रोटी खा लेता है तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि उसके हाथ पवित्र हैं। मेहनतसे हाथ मैले नहीं, पवित्र होते हैं। अपवित्र कामसे ही हाथ अपवित्र होते हैं। पवित्र और

उत्पादक श्रमसे हाथ पवित्र ही होते हैं। मनु महाराजके इस सन्देशको हमने ठीकसे नहीं समझा और मेहनत करनेवाले मजदूरको नीच माना। मजदूरको कम मजदूरी दी जाती है और प्रोफेसरको ज्यादा तनख्वाह। ऐसा क्यों ? शारीरिक-परिश्रमको, उत्पादक कामको तो श्रेष्ठ मानना चाहिए। प्रोफेसरको बेशुमार छुट्टियाँ मिल जाती हैं और भंगी, बुनकर, चमारको बीमारीके वक्त भी तनख्वाह नहीं मिलती ! यह गलत समाज-रचना है, हमें इसे एक क्षणके लिए भी बर्दाश्त नहीं करना चाहिए। हम समानता प्रस्थापित करना चाहते हैं। लेकिन जबतक हम यह व्रत नहीं लेते कि कुछ-न-कुछ उत्पादक परिश्रम किये बगैर नहीं खायेंगे, तबतक समानता प्रस्थापित नहीं हो सकती।

१९-९-'५२ —नासिरगंज (आरा)

: २१ :

खाना, पीना और बाल-बच्चे पैदा करना तो जानवरोंमें भी होता है। अगर हम इतना ही करते रहें तो जानवरोंमें और हममें क्या फर्क रह जायगा ? लेकिन मानवका उतने-भरसे समाधान नहीं होता, केवल भोग-परायण होनेसे मनुष्यका समाधान नहीं होता। महाभारतमें ययाति की कहानी है। उसके पाँच बेटे थे। उसने जवानीमें बहुत सुख भोगा, पर बूढ़ा होनेपर भी उसकी वासना नहीं गयी। उसने परमेश्वरसे जवानीकी प्रार्थना की। परमेश्वरने कहा कि 'अगर तेरे लड़कोंमेंसे कोई तेरा बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी तुझे देनेको राजी हो, तो मुझे मंजूर है। फिर वह लड़कोंके पास गया और उनसे कहने लगा कि 'मेरी भोग-वासना अभी तृप्त नहीं हुई है, क्या तुममेंसे कोई अपना यौवन देनेको तैयार है ?' चार लड़कोंने तो इनकार कर दियां, परन्तु पाँचवेंने कहा, 'जी, मैं राजी हूँ।' उसने ययातिको अपना यौवन देकर उसका बुढ़ापा ले लिया। फिर क्या हुआ ? भोग भोगनेके बाद वह फिरसे बूढ़ा हो गया। तब उसने देखा कि भोगवासना तो वैसी ही है। अतः उसने महसूस किया कि भोग भोगनेसे कभी तृप्ति नहीं होती। उसने दो बार अनुभव करके देख लिया और उसे एक श्लोकमें कह डाला :

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।।'

'भोग भोगनेसे काम-वासना शांत नहीं होती, बल्कि बढ़ती ही है। जैसे अग्निमें घी डालनेसे अग्नि शान्त नहीं होती, बल्कि प्रज्ज्वलित ही होती है।' इसलिए भोग भोगनेसे कभी भी समाधान नहीं हो सकता। मनुष्यको संतोष तो तब मिलता है, जब उसकी आत्माका समाधान होता है। और आत्माका समाधान तब होता है, जब मनुष्य दूसरोंके लिए त्याग करता है।

२६-६-'५२ —ब्रह्मपुर (आरा)

: २२ :

हम देख रहे हैं कि आज दुनियामें कोई भी देश सुखी नहीं है, यद्यपि सुखके साधन बहुत बढ़ गये हैं। इसका मतलब यह है कि कहीं-न-कहीं गलती हो रही है। आज तो जितने सुखके साधन बढ़ते जा रहे हैं उतने ही दुःख भी बढ़ते जा रहे हैं। दुनियामें चारों ओर दुःख, अशांति और डर फैला हुआ नजर आ रहा है।

महाभारतकी एक कहानी है। सत्यभामाने द्रौपदीसे पूछा कि 'जंगलमें रहकर भी तुम सुखी कैसे रह सकती हो, हम तो द्वारिकामें भी सुखी नहीं हैं। सुखकी कुंजी क्या है, वह हमें बता दो।' द्रौपदीने कहा—**'दुःखेन साध्वो लभते सुखानि'** अर्थात् 'दुःखसे ही सुख हासिल हो सकता है।' याने जो दूसरोंके लिए तकलीफ उठानेको तैयार हैं, वे ही सुखी हो सकते हैं। सुखसे सुख नहीं प्राप्त हो सकता। सुख चाहते हो तो दूसरोंको सुखी बनानेकी कोशिश करो। अपने भूखे पड़ोसीकी पर्वाह किये बगैर हम कभी भी सुखी नहीं हो सकते। दूसरोंको लूटकर हम कभी भी सुखी नहीं हो सकते। हम दूसरोंकी चिंता करेंगे तो वे भी हमारी चिंता करेंगे। जैसा बीज बोयेंगे, वैसा ही फल पायेंगे।

२६-६-'५२ —ब्रह्मपुर (आरा)

: २३ :

दुनियामें चारों ओर दुःख ही दुःख दिखाई पड़ रहा है। हम एक-दूसरे-की पर्वाह नहीं करते। संसारमें सुख और शान्ति तभी निर्माण होगी जब हम एक-दूसरेकी पर्वाह करेंगे और इस विचारको समझेंगे कि 'भगवान्-की देन सबके लिए है।' हवा, पानी, सूरजकी रोशनीकी तरह जमीन भी भगवान्की देन है, इसीलिए वह सबके लिए है—उसपर सबका समान अधिकार है। हमें इस तरह सोचना चाहिए कि 'पहले मैं दूसरोंको दूँगा और फिर स्वयं खाऊँगा।' गीतामें कहा है:

'यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ।।'

'जो यज्ञशेष खायेगा वह पुण्यवान है, नहीं तो वह चोर है।' यज्ञशेष खाना याने सबको खिलाकर बादमें बचा हुआ खुद खाना। घरमें माता सबको खिलाकर बादमें बचा हुआ खाती है। अगर वह कोई चीज बनाती है तो पहले सबको देती है। फिर उसके लिए कुछ नहीं बचता तो कुछ न खाकर भी संतोष मानती है। दुबारा अपने लिए नहीं बनाती। इसीमें उसको आनंद मिलता है। माँ अगर बच्चोंसे यह कहे कि 'मैंने खाना बनाया है, मैंने मेहनत की है, तो मैं ही पहले खाऊँगी', तो ऐसी माता-का उसके बच्चे क्या आदर करेंगे? क्या इससे माताके दिलको कभी समा-धान हो सकता है? जैसे माताको सबको देनेसे समाधान होता है, वैसे ही आपको भी होना चाहिए। माताका हृदय हासिल करो। सबको देकर बची हुई चीज स्वयं खाओ। पहले अपने गरीब भाइयोंको खिलाओ और फिर खाओ। वह दरिद्रनारायण, छठा भाई बनकर आपके घरमें पैदा हुआ है, उसे उसका हिस्सा दे दो। हम दरिद्रनारायणके प्रतिनिधि बनकर आपसे जमीनका छठा हिस्सा माँग रहे हैं। हम लड़के बनकर आपके घरमें प्रवेश कर रहे हैं। हमें बंजर-गड़ती जमीन नहीं चाहिए, हमें तो अच्छी जमीन मिलनी चाहिए, जो आप अपने लड़कोंको देंगे।

२६-६-'५२ —ब्रह्मपुर (आरा)

: २४ :

भगवान्‌ने अर्जुनसे गीता सुनानेके बाद पूछा—"तूने एकाग्र बनकर सारा सुना, तो अब क्या तेरा मोह नष्ट हो गया?" अर्जुनने कहा:

'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव॥'

'मेरा मोह नष्ट हो गया है और अब मैं आपके विचारके अनुसार काम करनेको तैयार हूँ।' वैसे ही मैं भी आपको विचार समझा रहा हूँ। हवा, पानी और सूरजकी रोशनीकी तरह जमीन भी भगवान्‌की देन है और इसीलिए वह सबके लिए है, उसपर सबका समान अधिकार है। अगर आप इस विचारको समझेंगे तो आपका मोह नष्ट होगा और फिर आप अपना सब कुछ दानमें दे सकेंगे।

२६-९-'५२ —ब्रह्मपुर (आरा)

: २५ :

आपके इस प्रदेशमें एक महापुरुष हो गये हैं। उनका नाम भगवान् बुद्ध था। उन्होंने हमें विश्वविजयका एक मंत्र दिया था। वे इसी बिहारकी भूमिपर अपना प्रेम, करुणा और निर्वैरताका संदेश सुनाते रहे। हमने देखा कि उनके इस उपदेशका परिणाम हिंदुस्तानपर तो हुआ ही, दुनियाके दूसरे देशोंपर भी हुआ। आज जब कि दुनियामें अशांति और हिंसाका वातावरण फैला हुआ है, उनके विचारोंका स्मरण दुनियाको अधिक हो रहा है। दुनियाके सारे विचारक उसी नतीजेपर पहुँच रहे हैं, जिसपर भगवान् बुद्ध ढाई हजार साल पहले पहुँचे थे। भगवान्‌ने कहा था:

'अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन, सच्चेनालिकवादिनम्॥'

'अक्रोधसे क्रोधपर विजय हासिल की जा सकती है। साधुत्वसे असाधुत्वपर विजय हासिल की जा सकती है। कंजूसपर दानसे विजय हासिल

की जा सकती है । झूठ बोलनेवालोंपर सत्यसे विजय हासिल की जा सकती है।'

सामनेके व्यक्तिमें अगर गुस्सा नजर आता है और उसे हम जीतना चाहते हैं, तो हममें परम शान्ति होनी चाहिए। उसमें जितनी मात्रामें क्रोध हो, उतनी ही मात्रामें हममें शान्ति होनी चाहिए। शान्तिसे ही हम क्रोधको जीत सकते हैं। भगवान्‌ने किसीको क्रोधके वश होनेकी बात नहीं कही थी, जैसा कि दुर्बल लोग समझते हैं। तलवार देखकर भाग जाना कायरतासे तलवारके वश होना है । उन्होंने हमें एक विजयमंत्र दिया था कि अक्रोधसे क्रोधको जीतना चाहिए। सामनेवालेका शस्त्र लेकर हम उसपर हमला करना चाहते हैं तो इससे दुनियामें शान्ति निर्माण नहीं हो सकती। परशुरामने यही प्रयोग किया था। उन्मत्त क्षत्रियोंको सबक सिखानेके वास्ते, खुद ब्राह्मण होते हुए भी, उसने हाथमें शस्त्र लिया, और पृथ्वीको निःक्षत्रिय बनानेका प्रयत्न किया। एक बार पृथ्वी निःक्षत्रिय बना दी, फिर भी क्षत्रिय बचे ही रहे तो दुबारा वही किया। इस तरह इक्कीस मर्तबा उन्होंने यही प्रयोग किया। फिर भी क्षत्रिय नामशेष नहीं हुए; क्योंकि वह खुद हाथमें शस्त्र लेकर क्षत्रिय जो बन गये थे। जब उन्होंने खुद क्षत्रियोंकी संख्यामें वृद्धि की, तो क्षत्रिय कैसे नष्ट हो सकते थे ? जब उन्होंने क्षत्रियत्वका बीज बोया तो उसमेंसे अनंतगुने क्षत्रिय पैदा होना सिद्ध ही रहा।

पूर्वजोंके ये सारे अनुभव भगवान् बुद्धके सामने थे। इसीलिए उन्होंने मानव-समाजको संदेश दिया कि दुर्जनताके वश मत होना, न भागना। अगर दुर्जनतापर सत्ता चलानी है तो हमें अपनेमें दुर्जनताका प्रवेश नहीं होने देना चाहिए। अगर दुर्जनताने हमारे हृदयमें प्रवेश पाया तो वह हमारे हृदयको जीत लेगी। असाधुत्व साधुत्वसे ही पराजित हो सकता है। कंजूसपन उदारतासे ही दूर किया जा सकता है। सत्यसे ही मिथ्याका लोप करना चाहिए। अंधकारसे अंधकार मिट नहीं सकता, बल्कि वह अधिक गहरा होगा। उसके विरुद्ध तो प्रकाशकी ही शक्ति चाहिए। बच्चेके अज्ञानको मिटानेके लिए उस्तादमें ज्ञान होना चाहिए। अज्ञानके सामने अज्ञान खड़ा करके हम उसे नहीं मिटा सकते। इस तरह-

की कई मिसालें हम जीवनमें देखते हैं। फिर भी जहाँ समाजव्यापी कार्य करना होता है, राष्ट्रीय दृष्टिसे काम करना होता है वहाँ मनुष्य अभी इस निर्णयतक नहीं आया है कि **'अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्।'** अभी भी प्रयोग चल रहे हैं। ये लोग अभी भी संहारक शस्त्र बढ़ाकर शांति प्रस्थापित करनेके प्रयोग कर रहे हैं।

२६-६-'५२ —आरा

: २६ :

मनुष्य स्वभावतः सज्जन है। इसीलिए वह साधुको नमस्कार करता है, चोर-डाकूको नहीं। क्योंकि उसका हृदय अंदरसे पावन है, निर्मल है। गीता कहती है:

'अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥'

'कोई अत्यंत दुराचारी भी अगर मेरी भक्ति करे, तो फौरन अनन्य भक्त बन सकता है।' मानव परिस्थितिवश दुराचारी बनता है, दुराचारके प्रवाहमें बह जाता है। लेकिन जिस क्षण उसे वस्तुका स्वच्छ दर्शन हो जायगा, तब वह किसी भी निमित्तसे क्यों न हो, फौरन बदल जायगा। दुनियामें जो पाप होते हैं, वे अज्ञानके कारण ही होते हैं। सच्चे दुराचारियोंकी एक खूबी यह होती है कि उनमें भगवान्‌के प्रति अधिक श्रद्धा होती है। जो सच्चे दुराचारी होते हैं वे सच्चे सदाचारीके अत्यंत नजदीक होते हैं, जैसे वर्तुलके दो सिरे। इसलिए दुराचारियोंमें परिवर्तन लाना बिल्कुल आसान है। दुर्जन अत्यंत सज्जन बन सकते हैं। मनुष्यकी मानवतामें और मानव-हृदयकी सज्जनतामें अगर हमारी श्रद्धा नहीं, तो यह मानवका जीवन जीने लायक नहीं रहेगा, फिर तो हमें गंगाजीमें जाकर डूब मरना होगा। ...... लेकिन सत्यका कभी नाश नहीं हो सकता। असत्यकी कोई हस्ती नहीं है। प्रकाशके सामने अन्धकार टिकता नहीं। अंधकार अभावरूप है और प्रकाश भावरूप। दुर्गुण

शरीरके होते हैं और सद्‌गुण आत्माके। शरीर बदलता है तो दुर्गुण भी बदलते हैं। आत्मा स्थिर है, इसीलिए उसके गुण भी स्थिर रहते हैं। जैसे हंस दूध और पानीको अलग-अलग कर लेता है, वैसे ही हमें सद्‌गुण और दुर्गुणोंको पृथक् करना चाहिए।

२६-६-'५२ —आरा

: २७ :

'नयी तालीम' यों तो ऊपर-ऊपरसे निर्दोष, गरीब दीखेगी, लेकिन वह एक महान् परिवर्तन करनेवाली है। अगर 'नयी तालीम' चलेगी तो आजके सामाजिक मूल्य टिक नहीं सकते। 'नयी तालीम' में आजके जैसा श्रीमान् और गरीबका फर्क नहीं किया जायगा। दोनोंको लाजिमी तौरपर, ज्ञानकी दृष्टिसे, कुछ-न-कुछ दस्तकारी सिखायी जायगी। फिर आपके आजके ऊँच-नीचके भेद नहीं रहेंगे। वहाँ तो श्रीमान्‌का लड़का भी गोबरमें हाथ डालेगा और ब्राह्मणका लड़का भी मेहतरका काम करेगा। पुरुष-जन्म प्राप्त हुआ लड़का रसोई बनायेगा, जो स्त्रियोंका काम माना जाता है। उससे तो सारे समाजमें उथल-पुथल होगी। आज तो समाजमें दर्जे बने हैं। जो समाजके लिए अत्यंत उपयोगी काम है, जिसके बिना समाज टिक नहीं सकता, उसे नीच माना जाता है। लेकिन ये दर्जे टूटनेवाले हैं और जैसा वेदोंने कहा है:

'समानो मंत्रः समितिः समानी।'

'सबकी समिति बैठकर सारा काम होगा। सब समान होंगे, दर्जे नहीं रहेंगे'—यह हालत होनेवाली है। इसीलिए अगर आप 'नयी तालीम' को कबूल करते हैं तो समझ-बूझकर कीजिये।

३-१०-'५२ —विक्रम (पटना)

: २८ :

भूदानके पीछे जो विचार है, वह मैं न रूससे लाया हूँ न चीनसे। वह इसी आर्यभूमिका विचार है, एक धर्मविचार है। इसीलिए मैंने इस कामको 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' कहा है।

भगवान्ने गीतामें कहा है—'हरएकका यह कर्तव्य है कि कुछ-न-कुछ काम करे, उत्पादन करे। परिश्रमरूपी 'यज्ञ' सव देवताओंको प्रसन्न करता है। जो इस तरह शरीरपरिश्रमरूपी उत्पादक-यज्ञ नहीं करेगा वह चोर, पापी होगा।' यह जो शाप भगवान्ने दिया है, वह आर्य-संस्कृतिकी ही बात है।

'एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥'

उपनिषदोंमें ऋषि कहता है :

'मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः। सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य॥
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं। केवलाघो भवति केवलादि॥'

'मूर्ख नाहक अन्नका ढेर जमा करता है। वेद कहता है कि मैं सत्य बोल रहा हूँ कि वह अन्न नहीं इकट्ठा कर रहा है, अपना वध इकट्ठा कर रहा है। जो अन्नका संग्रह करता है, वह मृत्युका संग्रह कर रहा है। जो अकेला खाता है (अपने भाइयोंको देनेके बज़ाय) वह पुण्य नहीं, पाप खाता है।' इससे कठिन शाप कौन दे सकता है? क्या चीन और रूसके विचारोंमें ऐसा शाप दिया गया था? जो अपने वृद्धों और अपने समानवय-वालोंकी सेवा नहीं करता और अकेले खाता है वह पापी है, यह वेद, मनुस्मृति और गीताका उद्गार मैं गाँव-गाँव जाकर सुना रहा हूँ। 'परिश्रम न करनेवाला खानेका अधिकारी नहीं', यह भरतभूमिका ही विचार मैं लोगोंको सुना रहा हूँ।

मैं मानता हूँ कि कुछ लोग अधिक मानसिक परिश्रम करेंगे और कुछ अधिक शारीरिक परिश्रम, परन्तु सभीको श्रमनिष्ठ होना चाहिए। कुछ लोग सिर्फ मानसिक काम करेंगे और कुछ सिर्फ शारीरिक काम—इस तरह-

का विभाग हम हर्गिज नहीं चाहते। सबको दोनों काम करने होंगे। भगवान्ने हरएकको हाथ-पाँव दिये हैं और दिमाग भी । इसलिए हरएकको दोनों काम करना चाहिए। लेकिन आज तो पश्चिमसे जो विचार आया है, उसके अनुसार कुछ लोग केवल 'श्रमजीवी' (Hands) ही रह जाते हैं और कुछ केवल 'बुद्धिजीवी' (Heads) । इस तरहका विभाग करना अत्यंत खतरनाक है। हम चाहते हैं कि ऐसी समाज-रचना एक क्षणके लिए भी न टिके। 'धन हमें बचानेवाली चीज है', यह मानना गलत है। बचानेवाली चीज तो गुण है। इसलिए गुणोंको बढ़ाओ। परन्तु आज हम गुणोंको नहीं बढ़ाते और धनका संग्रह करते जाते हैं । लेकिन यह धन नहीं, आपका निधन है। जो धन बाँटेगा, वही सुखी होगा।

३-१०-'५३ —विक्रम (पटना)

२३-४-'५३ —ओढ़नपुर (गया)

: २९ :

इस दुनियामें जबसे इन्सानकी बस्ती हुई है, तबसे धर्मभावना निर्माण हुई है। मनुष्यों और जानवरोंमें यही फर्क है कि जानवरोंमें ऐसी कोई धर्मभावना नहीं होती।... हमारे सामने जो अनंत सृष्टि दिखाई पड़ रही है, वह परमात्मा ही है। परमात्मा अनंत रूप और अनंत नाम लेकर हमारे सामने लीला कर रहा है। इसलिए हमारा यह धर्म हो जाता है कि यह जो अनंतरूपी प्रभु हमें दर्शन दे रहा है, उसकी हम सेवा करें। अपने शरीरसे मेहनत करके, दूसरोंको सुख पहुँचाएँ। इसीको 'धर्म' कहते हैं। व्यास मुनिने बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे हैं। एक दफा किसीने उनसे पूछा कि 'आपके इतने सारे ग्रंथ हम कब पढ़ेंगे ? यह सारा समुद्र कौन पार करेगा ? इसलिए इसका सार बताइये ।' उन्होंने एक श्लोकमें सार बताया :

'अष्टादशपुराणानां सारं सारं समुद्धृतम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥'

अठारह पुराणोंका सार यही है कि दूसरेकी सेवा करना पुण्यमार्ग है और दूसरोंको अपनी देहके वास्ते तकलीफ देना पापमार्ग है।'

शेर अपनी देहके वास्ते जो भी प्राणी सामने आ जाय, उसे खा जाता है। वह यह नहीं सोचता कि इसमें उस प्राणीको कितनी तकलीफ होती है; क्योंकि वह अज्ञानी है। वह अपनेको देहसे भिन्न नहीं पहचान सकता। लेकिन हमारी हालत वैसी नहीं है। सोचनेसे हमें मालूम हो जाता है कि हम देहसे भिन्न हैं। इसीलिए हम समझ सकते हैं कि निष्काम-भावना, और निरहंकार बुद्धिसे सेवा करना ही पुण्यमार्ग है।

१६-१०-'५२ —बसन्तपुर (सारन)

: ३० :

पिछले जन्मके पाप-पुण्यके कारण इस जन्ममें गरीबी या अमीरी प्राप्त होती है, यह खयाल गलत है। पिछले जन्मके पुण्यसे अच्छी बुद्धि तथा निर-हंकारिता प्राप्त होती है और पापसे बुरी भावना पैदा होती तथा बुरे कामकी इच्छा होती है। हमें अच्छी बुद्धि प्राप्त हो तो समझना चाहिए कि हमने पिछले जन्ममें पुण्य-कर्म किये थे और अगर हमें बुरे काम करने-की इच्छा होती है, तो समझना चाहिए कि पिछले जन्ममें हमने पापकर्म किये थे। शंकराचार्यने कहा है:

'अथवा योगिनामेव कुले धीमतां दरिद्राणाम् इत्यर्थः।'

'जो बड़ा भाग्यवान् पुरुष होता है, जिसने पिछले जन्ममें पुण्यकर्म किये हैं, वेदाध्ययन किया है, वह योगियोंके कुलमें पैदा होता है, जो दरिद्री कुल होते हैं।' शंकराचार्य खुद गरीब घरमें पैदा हुए थे। पुण्यवान् व्यक्ति श्रीमान्के घरमें भी जन्म पा सकता है। चाहे श्रीमान्के घरमें पैदा हो या गरीबके घरमें, दोनों जगह बुद्धि अच्छी होनी चाहिए।

जो सोचते हैं कि आज जो गरीब हैं, वे अपने पूर्वजन्मके पापोंके कारण गरीब बने हैं; इसलिए उनकी परवाह नहीं करनी चाहिए, उन्हें उनके नसीबपर छोड़ देना चाहिए, क्योंकि पिछले जन्मके पाप-पुण्यको हम

नहीं मिटा सकते, वे गलती करते हैं। इस तरह सोचनेवाले खुद पापी हैं। इसीलिए जो श्रीमान् हैं, उन्हें अपने गरीब भाइयोंके प्रति अपना फर्ज अदा करना चाहिए। भगवान्ने उन्हें संपत्ति इसीलिए दी है कि वे उसका उपयोग दूसरोंकी सेवाके लिए करें।

१६-१०-'५२　　　　　　　　　　　　—बसन्तपुर (सारन)

: ३१ :

अगर हम इस चीजको ठीक तरहसे समझ लें, तो गरीबीमें भी अमीरीसे बढ़कर आनंद पा सकते है। अमीरीमें आत्मसमाधान नहीं होता, इसलिए हम अमीरी नहीं चाहते। कबीरदासने कहा है—'**मन लागो मोरा यार फकीरीमें। जो सुख पायो गरीबीमें, वह सुख नाहीं अमीरीमें**॥' गरीबीमें भी अगर प्रेम और सद्भावना रही तो वह अमीरीसे भी बढ़कर हो जाती है। कुंतीने भगवान्से वर माँगा था:

'विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत् स्यात् अपुनर्भवदर्शनम्॥'

'भगवन्, मुझे हमेशा विपत्ति और गरीबी दो।' जब भगवान्ने उससे पूछा कि 'ऐसा वर क्यों माँगा' तो उसने जवाब दिया—'आपत्ति रही तो आपका स्मरण होगा और आपके दर्शनका भी मौका मिलेगा।'

हम यह नहीं चाहते कि आजके जैसी अमीरी-गरीबी रहे, हम तो कबीरदास जैसे गरीब बनना चाहते हैं। कबीर श्रीमान् नहीं था, गरीब था। बुनाईका काम करता था और मजदूरी लेता था, जो उसके लिए अमृतपान बन जाता था।

१६-१०-'५२　　　　　　　　　　　　—बसंतपुर (सारन)

: ३२ :

स्वराज्यके बाद इस देशमें हवा चली कि 'आजतक बहुत त्याग किया, अब भोग भोगना चाहिए।' लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए। जहाँ त्यागके

साथ भोग भी होता है, वहाँ वह त्याग जीर्णवीर्य बन जाता है। जो चाहते हैं कि अपना त्याग वीर्यवान रहे, वे नयी-नयी तपस्या करते हैं। तपस्वी पुरुष क्लेश और तपकी सफलता देखते ही फौरन नये क्लेश और तपका आरंभ कर देता है।

'क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।'

इसलिए स्वराज्यकी तपस्याका फल मिलते ही फौरन हमें नये तपका आरंभ करना चाहिए। उसीसे हमारा तेज बढ़ेगा। राजनैतिक आजादीके बाद आर्थिक आजादीका ही कार्यक्रम उठाना होता है। इसलिए स्वराज्य-प्राप्तिके बाद हमें अब भूदानके ही काममें लग जाना चाहिए, जिससे आर्थिक आजादी प्राप्त होनेवाली है।

१९-१०-'५२ —अमनौर (सारन)

: ३३ :

गीतामें भक्तके प्रतिपादित लक्षण ये हैं:

'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च'

यहाँ भक्तके तीन लक्षण बताये गये हैं—(१) किसीसे द्वेष, मत्सर या वैर न करना, (२) सबके साथ मैत्री करना और (३) सबपर करुणा और दया रखना। भक्तकी पहचान बाह्य लक्षणोंसे—जैसे गाने, नाचने आदिसे नहीं, बल्कि ऊपर बताये हुए तीन लक्षणोंसे होती है। नाचने, गाने, दाढ़ी बढ़ाने, बदनपर भभूत लगाने या दूध पीनेसे कोई भक्त नहीं बन जाता। दूध तो गायका बछड़ा भी पीता है, लेकिन वह भक्त नहीं है। पैदल घूमनेवाले भी भक्त नहीं होते। कई मुसाफिर, व्यापारी, भिखारी और ठग पैदल घूमते हैं, लेकिन इनमेंसे कोई भक्त नहीं कहलाता। लोग अक्सर समझते हैं कि भक्त तो नाचनेवाला, गानेवाला, बजानेवाला होता है। लेकिन भक्तके ये लक्षण नहीं हैं। हाँ, भक्त नाच सकता है, गा सकता है और दूसरे काम भी कर सकता है। जिसमें प्रेम, करुणा और द्वेष-का अभाव दीखे, तुरंत पहचान लो कि वह भक्त है।

भक्त ष नहीं करता। हम किससे द्वेष करते हैं ? जो हमसे आगे बढ़े हुए हैं, हमसे ज्यादा ज्ञानी हैं, ज्यादा ताकतवर हैं, ज्यादा पैसेवाले हैं, ज्यादा सुखी हैं। परन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए।

समाजमें कुछ हमसे बड़े होते हैं, कुछ हमारी बराबरीके होते हैं और कुछ हमसे छोटे होते हैं। (१) जो हमसे बड़े होते हैं, उनको लोग प्रायः नीचे गिरानेकी कोशिश करते हैं। हम चाहते हैं कि वे हमसे आगे न जायँ। लेकिन आगे जानेवालोंको गिराना नहीं चाहिए। समाज-रचना ऐसी ही होनी चाहिए कि जो आगे जाते हैं, उनको देखनेसे सबको संतोष हो। (२) कुछ लोग हमारी बराबरीके होते हैं। उनके साथ सहयोगसे काम करना चाहिए। उनके लिए मनमें मैत्रीकी भावना होनी चाहिए, सख्यभाव होना चाहिए। लेकिन आज तो हालत यह है कि जो बराबरीके होते हैं, उनकी आपसमें बनती नहीं है। वे मिल-जुलकर काम नहीं करते। एक ही पक्षम दो गुट हो जाते हैं, जिनकी आपसमें नहीं बनती। भाई-भाईकी नहीं बनती ओर पड़ोसी-पड़ोसीके बीच भी अनबन हो जाती है। सहयोगसे, मिल-जुलकर, कंधेसे कंधा लगाकर काम करना चाहिए। (३) समाजमें कुछ हमसे छोटे होते हैं। जो छोटे हैं, दुखी हैं, उनके लिए मनमें करुणा और दया होनी चाहिए।

भक्तके ये तीन लक्षण हैं। हम चाहते हैं कि सारे समाजमें भक्तके ये लक्षण प्रकट हों। सब भक्त बनें। बड़ोंके लिए आदर, बराबरीवालोंके प्रति मैत्रीकी भावना और छोटोंके प्रति करुणा, ये तीनों लक्षण प्रकट हों। हमें ऐसी समाज-रचना करनी है जिसमें आदर, प्रेम और करुणा आदि भावनाएँ स्वाभाविक हो जायँ। ऐसी समाज-रचनाके लिए अनुकूल वातावरण पैदा करना चाहिए। भूदान-यज्ञके द्वारा वैसा वातावरण पैदा हो रहा है।

२१-१०-'५२ —सीतलपुर (छपरा)

: ३४ :

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।'

'सोनेके ढक्कनसे सत्यका मुख ढँका हुआ है।' हर कोई समझ सकता है कि अगर हम गरीबोंकी कद्र नहीं करते तो कोई भी सुखी नहीं हो

सकता। यह बात समझना कोई मुश्किल नहीं है, परन्तु सत्यका मुख सुवर्णसे ढँका रहता है। सत्यदर्शनमें मोह बाधा डाल रहा है। हमारी कोशिश इस मोहसे मुक्त होनेकी है।

वस्तुके स्वरूपको समझना या पहचानना कठिन नहीं है, उसे ग्रहण करना ही कठिन है। मोहके कारण लोग इस चीजको नहीं समझ रहे हैं, परन्तु उन्हें समझाना कठिन नहीं है। सूर्यके उग जानेपर जागना कठिन नहीं होता। आज हिन्दुस्तानकी संपत्ति जिस तरह बँटी हुई है, उससे दुःख ही पैदा होता है, संपत्तिका पूरा उपयोग नहीं हो पाता—यह बात समझना कठिन नहीं है; परन्तु हमें मोहके कांचनके आकर्षणसे मुक्ति पाना है। लेकिन यह जो मोहमाया है, उससे हम कैसे मुक्त हो सकेंगे? सत्य कैसे स्पष्ट होगा? हमें भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिए कि 'भगवन्, हमें इस मोहसे मुक्त करो।' मोहसे मुक्ति पाना ही मुख्य बात है, जिसके लिए हमें सब कुछ करना है।...... ['मैं न सिर्फ जमीनका, बल्कि संपत्तिका भी छठा हिस्सा माँग रहा हूँ। बेजमीन किसानको सिर्फ जमीन देनेसे काम नहीं चलेगा। उसे तो हल, बैल आदि अन्य साधन भी देने होंगे, तभी वह काश्त कर सकेगा। इसलिए भूमिके साथ संपत्तिका भी मैं दान माँग रहा हूँ। हर मनुष्यपर हमारी माँग लागू होगी। हमारे पास भूमि, संपत्ति, श्रमशक्ति, बुद्धि, जो भी कुछ है, उसका एक हिस्सा दरिद्रनारायणके लिए अर्पण करना है।']

२३-१०-'५२ —पटना

: ३५ :

हमें भगवान्ने बुद्धि, शक्ति, संपत्ति या जो कुछ भी दिया है, उसका उपयोग समाजकी सेवाके लिए करना चाहिए। हमें वह सब समाजको अर्पित कर देना चाहिए। जितना अपने लिए आवश्यक है, उतना ही लेना चाहिए। जिस तरह यज्ञमें आहुति देते समय कहते हैं—**'इन्द्राय इदम्, न मम,' 'अग्नय इदम्, न मम'**—यह इंद्रके लिए है, मेरे लिए नहीं, यह अग्निके लिए है, मेरे लिए नहीं; उसी तरह अब हमें कहना चाहिए—**'समाजाय**

इदन् न मम', 'राष्ट्राय इदम्, न मम' अर्थात् यह सब समाजके लिए है, मेरे लिए नहीं, यह सब राष्ट्रके लिए है, मेरे लिए नहीं। तू जो पैदा करता है, वह सब समाजको अपण कर दे, फिर समाजकी तरफसे तुझे जो मिलेगा, वह अमृत होगा।

मैं चाहता हूँ कि जमीन सबकी हो जाय। मैं चाहता हूँ कि कार-खानोंमें मजदूर और मालिकका भेद न रहे। सब सेवक बनें और अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार काम करके सव कुछ समाजको अर्पण करें। फिर समाजसे अपने जीवन-निर्वाहके लिए जो मिले उसीमें संतुष्ट रहें। इतना ही नहीं, बल्कि हरएक व्यक्तिको यह सोचना चाहिए कि मेरी संतान मेरे लिए नहीं, समाजके लिए है। जो अक्ल मुझे मिली है, वह स्वयंभोग्य नहीं, समाजके लिए है। ऐसा अपरिग्रह मैं समाजमें लाना चाहता हूँ। वैभव और संपत्ति बढ़ाना चाहता हूँ, पर समाजकी। समाज नारायणस्वरूप है, तो लक्ष्मी उसके पास जाने ही वाली है। इसमें किसी-को डरनेकी जरूरत नहीं। हम एक सुंदर समाज बनानेवाले हैं और इसीकी बुनियाद जमीनका मसला है। मैं यही समझा रहा हूँ कि जमीन सबके लिए है।

आज हिंदुस्तानमें सब उद्योग टूट गये हैं और जमीनकी माँग बढ़ रही है। इसीलिए अगर जमीनका मसला लेकर अपरिग्रहकी तालीमका आरंभ करते हैं तो उस विचारका समाजके मनमें अच्छी तरह प्रवेश ोगा। विष्णुके पास लक्ष्मी पड़ी हुई है, परन्तु वह उसके प्रति अत्यन्त उदासीन है। समाजमें सब पड़ा होना चाहिए। परन्तु व्यक्तिको उसमेंसे उतना ही लेना चाहिए जितना आजके लिए जरूरी है। कलकी चिंता भी नहीं करनी चाहिए।

यह मत समझिये कि जो बड़े-बड़े परिग्रही हैं, उन्हींको समझाना है। जो कम परिग्रही हैं उनको भी समझाना आवश्यक है। एक छोटी-सी लंगोटीमें भी आसक्ति रह सकती है। इसलिए सबको समझाना है कि जिसके पास जो कुछ है और वह उसके घरमें है तो भी समाजके लिए

है। जितने घर है, वे सब भारत-सरकारकी बैंक होने चाहिए। आज तो सरकारको लोन (कर्ज) लेना पड़ता है, टैक्स लगाना पड़ता है, अमेरिकाका सहारा लेना पड़ता है या नासिकके छापाखानेकी शरण लेनी पड़ती है। लेकिन मैं इन सबसे भिन्न, एक पाँचवाँ प्रकार बता रहा हूँ। सरकारकी माँग होते ही सारे देने लग जायँगे, अगर वैसी लोकप्रिय सरकार बने। वह बन भी सकती है। हर घरवाला सरकारसे कहेगा कि 'यह तो आपकी चीज है चाहे जितना लो। मुझे चिंता नहीं कि मैं कल क्या खाऊँगा। आप जो खिलाओगे, वह खाऊँगा।' ऐसी सरकार और ऐसा समाज बन सकता है—यह महान् विचार हमें दुनियामें फैलाना है। इसीलिए श्रीमानोंसे ही नहीं, बल्कि गरीबोंसे भी जमीन माँगनी है। हरएकसे कहना है कि तुमसे भी नीचे कोई है, जिसकी ओर देखो। तुम्हारे पास शामकी रोटी नहीं है, पर दुनियामें ऐसा भी कोई है जिसके पास अभीके लिए भी रोटी नहीं है; तो उसके लिए एक टुकड़ा निकालना तुम्हारा धर्म है। होना तो यह चाहिए कि साराका सारा समाजको अर्पित कर दिया जाय। परन्तु आज वह बन नहीं सकता और समाज भी उसके लिए तैयार नहीं। फिर भी आज कमसे कम एक टुकड़ा यानी छठा हिस्सा तो देना ही चाहिए।

३१-१०-'५२ —टिकारी (गया)

: ३६ :

'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यः......।'

उपनिषद्में एक राजा कहता है कि 'मेरे राज्यमें कोई चोर न हो।' वह यह भी कहता है कि 'मेरे राज्यमें कोई कंजूस न हो।' क्योंकि जहाँ कंजूस होते हैं वहाँ चोरोंका होना लाजिमी है। कंजूस चोरोंको पैदा करते हैं। कंजूसको 'चोरका बाप' कहना चाहिए। चोर उसके औरस पुत्र हैं। हम औरस पुत्रोंको तो जेल भेजते हैं और पिताको खुला छोड़ देते हैं। पिता शिष्ट बनकर समाजमें घूमता है, गद्दीपर बैठता है—यह कहाँका न्याय है? [गीतामें कहा गया है कि **'स्तेन एव सः'**—वह चोर ही है। हम उसे पहचानते नहीं कि वह चोर है, परन्तु है वह चोर ही। आज तो हम

मानते हैं कि गीता तो संन्यासियोंकी पोथी है। वह गृहस्थोंके कामकी नहीं। इस तरह हमने गीताको भी संन्यास दे दिया है।]

आज दुनिया परिग्रहको चोरी नहीं मानती। आज तो परिग्रहका राज्य चल रहा है। परिग्रहके लिए ऐसे कानून खड़े किये गये कि वह गलत नहीं, बल्कि कानूनी माना गया। कानून चोरीको गुनाह मानता है, परन्तु जिस किसीने संग्रह करके उस चोरको चोरीकी प्रेरणा दी उसको आजका समाज चोर नहीं मानता और वह कोई गैर-कानूनी बात कर रहा है, यह भी नहीं माना जाता। परन्तु संग्रह करनेवाला भी चोर ही है, यह हमें भली भाँति समझ लेना चाहिए।

३१-१०-'५२ —टिकारी (गया)

: ३७ :

हमारे पास जितनी भी जमीन, संपत्ति, बुद्धि और शरीर-शक्ति है—सबके लिए है, आम जनताके लिए हमें प्राप्त हुई है। ये अपनी निजी संपत्तियाँ नहीं, बल्कि दैवी-संपत्तियाँ हैं। भूमि, संपत्ति, बद्धि और शक्ति परमेश्वरकी दी हुई हैं और उसीके उपयोगके लिए हैं। इसलिए उनको सबकी सेवामें लगाना चाहिए। सबका एक सामूहिक कुटुंब बनना चाहिए। जिस तरह कुटुंबमें हम मिल-जुलकर सब काम करते हैं, उसी तरह समाजमें भी करें—सब मिलकर सृष्टिकी उपासना करें।

'ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यम् करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।'

—'हम सब मिलकर काम करें और उसका जो परिणाम निकले, उसे सब मिलकर भोगें।' अपने सुखमें दूसरोंको हिस्सा दें और दूसरोंके दुःखमें स्वयं हिस्सा लें, यह एक महान् विचार भू-दान-यज्ञके पीछे है।

अभी हमने जो संकल्प किया है, वह तो केवल आरंभमात्र है। हमें सारी समाज-रचना ही बदलनी है। यह तो उसका श्रीगणेश ही है। आगे उसका विस्तार होगा। अभी तो हम बुनियादका काम करने जा रहे

हैं। फिर उसपर एक सुंदर मकान खड़ा करेंगे, जिसकी छायामें हम सब सुखी होंगे।

'समानीव आकूतिः। समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनः यथा वः सुसहासति ॥'

—'हम सबका मन समान हो। हम सबका हृदय समान हो। यही हम सबका मंत्र हो।' इस तरह हमें साम्ययोगकी सिद्धि करनी है। उसीकी साधनाके लिए पहला कदम भूदान-यज्ञका है। भूमि सब तरहकी संपत्तियोंके उत्पादनका सबसे बड़ा साधन है, सबके कामके लिए उसका सम्मिलित और सम्यक् उपयोग होना चाहिए, उसमें किसीका न्यूनाधिक अधिकार न होना चाहिए।

२-११-'५२ —गया

: ३८ :

मेरा काम तबतक पूरा नहीं होगा, जबतक हरएक भूमिपुत्रका भमिपर अधिकार नहीं हो जाता। मुझसे पूछा जाता है कि 'जो काश्त नहीं करते, क्या उन्हें भी जमीन दी जायगी?' मेरा जवाब है—'जी नहीं, उन्हें जमीन नहीं दी जायगी। जमीन तो उन्हींको दी जायगी जो काश्त करते हैं।' परन्तु जमीनपर हक सबका माना जायगा। जिनको खेतीका ज्ञान नहीं, उन्हें मैं अशिक्षित समझूँगा। अगर पढ़ने-लिखने को ही शिक्षणकी कसौटी माना जाय तो मुहम्मद पैंगंबर, शिवाजी महाराज, रामकृष्ण परमहंस, हैदरअली—ये सब अशिक्षित माने जायँगे। मैं मानता हूँ कि हरएकको पढ़ना-लिखना आना चाहिए, परन्तु वह कोई तालीमकी कसौटी नहीं बन सकती। उससे बेहतर कसौटी तो यह होगी कि जो खेतीका काम नहीं जानता, उसे अशिक्षित समझा जाय। हिन्दुस्तानके हर बच्चेको खेतीका काम सिखाया जाय। अगर वह नगरका बच्चा है तो उसे सब्जी—तरकारी पैदा करना सिखाया जाय। खेतीके जरिये किसानके जीवनके साथ एकरूप बननेकी कोशिश करना ही सच्ची तालीम है। यह तो

आगेकी बात है, परन्तु आज जो काश्त करना जानते हैं उन्हींको हम जमीन देना चाहते हैं। हरएकका जमीनपर हक है—यह विचार हम समझा रहे हैं। यह क्रान्तिकारी बात है, पर नयी नहीं है। वेदोंमें कहा गया है कि समाजमें पाँच प्रकारके किसान होते हैं—ब्राह्मण-किसान, क्षत्रिय-किसान, वैश्य-किसान, शूद्र-किसान और वन्य जातिके किसान :

'पंचविशः पंचआरीः पंचकृष्टयः ।'

उन्होंने मनुष्यके लिए ही 'किसान' शब्द गढ़ा था। इसीलिए कहता हूँ कि पाँच प्रकारके किसान होते हैं। इसका मतलब यह है कि जो खाना चाहता है, उसपर अन्न-निर्माण करनेकी जिम्मेदारी है। फिर भी हम समाजमें कामोंका बँटवारा तो करेंगे ही। लेकिन अन्न पैदा करना हरएकका धर्म माना जायगा। जिसे इस धर्मसे मुक्ति मिलेगी, उसे अधिक कठिन काम करना पड़ेगा। परन्तु उत्पादनका काम करना हरएकके लिए अत्यंत लाजिमी माना जायगा।

२-११-'५२ —गया

: ३९ :

हम हर रोज सुबह-शाम भगवान्‌की प्रार्थना करते हैं। यह बहुत अच्छा रिवाज है। हम चाहते हैं कि हर घरमें सुबह-शाम इसी तरह ईश्वर-स्मरण हुआ करे। हम जो प्रार्थना करते हैं, उसकी एक किताब भी है। उसके अनुसार आप प्रार्थना कर सकते हैं। परन्तु हमारा यह आग्रह नहीं कि आप वही प्रार्थना करें। हम चाहते हैं कि जिसको जिस तरहकी रुचि हो, उसीके अनुसार वह प्रार्थना करे। हमने अपना चुनाव उस प्रार्थनामें रखा है। वह सब धर्मोंके अनुकूल है। **'ओम् तत् सत् श्री नारायण तू'** इस षट्पदीमें भगवान्‌के सारे नाम आ गये हैं। सब नाम लेनेसे बहुत आनंद होता है और हृदयकी एकता भी सधती है। हम रामधुन गाते हैं, उसमें राम और सीता, दोनोंके नामोंका उच्चारण करते हैं। राम परमेश्वर है और सीता भक्त—इसी निगाहसे उस तरफ देखना चाहिए। वैसे तो यह प्रार्थना सबको पसंद है; फिर भी आपके मनको जो अनुकूल मालूम

पड़े, उसीके मुताबिक प्रार्थना करें, परंतु भगवान्‌का स्मरण हर रोज करें। वैसे मनमें तो स्मरण कर लेते हैं, फिर भी सब मिलकर स्मरण करनेमें अधिक आनंद मालूम होता है। भगवान्‌ने कहा है :

'नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥'

—'मैं चाहे वैकुंठमें या एकांतमें ध्यान करनेवाले योगियोंके हृदयोंमें भी गैरहाजिर रहूँ, परन्तु जहाँ मेरे सब भक्त मिलकर भक्तिगान करते हैं, वहाँ मैं हाजिर रहता ही हूँ।' सब मिलकर एक साथ की गयी प्रार्थना भगवान्‌को पसंद आती है। हम तो चाहते हैं कि सारे गाँववाले मिलकर प्रार्थना करें। परन्तु कमसे कम कुटुम्बभरके तो साथ मिलकर प्रार्थना अवश्य करें।

८-११-'५२ —रानीगंज (गया)

: ४० :

यह मत कहिये कि हम तो कलियुगमें हैं। जिस युगमें आप रहना चाहते हैं वही आपके लिए है। युग हमें स्वरूप नहीं देता, हम उसे स्वरूप देनेवाले हैं। हम 'कालपुरुष' हैं। यह सारी सृष्टि हमारे हाथमें पड़ी हुई है। गीतामें कहा है :

'गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥'

—'यह जो सारी जड़ सृष्टि है, उसका धारण हम जीव कर रहे हैं।' सारी सृष्टि हमारे हाथमें है। हम चेतन हैं, हम उसको आकार देनेवाले हैं। मिट्टीका घड़ा बनाना है तो मिट्टी शिकायत नहीं करती कि मुझे अमुक आकार दो। आप चाहे जो आकार उसे दे सकते हैं। इसी तरह आप युगको चाहे जो आकार दे सकते हैं। यह युग आपका है।

आजके इस युगमें भी चर्खा चल सकता है। मैंने दिल्लीमें चक्की पीसी और उससे आटा निकला, बावजूद इसके कि यह यंत्र-युग है और वह दिल्ली थी ! इसलिए युग तो आपके हाथोंमें है।

१०-११-'५२ —औरंगाबाद (गया)

: ४१ :

जबतक सबको संपत्तिका हक नहीं मिलता तबतक संपत्तिकी वृद्धि नहीं हो सकती। जो मजदूर दूसरोंके खेतोंपर मजदूरी करते हैं, उन्हें अपने काममें उत्साह नहीं मालूम पड़ता। वे उस काममें अपना तन लगा सकते हैं, मन नहीं। उत्पादन सिर्फ शरीर लगानेसे नहीं होता। उसमें मन, प्राण और प्रेम लगाना होता है, तभी लक्ष्मी प्रसन्न होती है। इसलिए हम भूमिदानके जरिये काश्त करनेवालोंको जमीनके मालिक बनाना चाहते हैं। लक्ष्मी तब बढ़ती है, जब मनुष्य जी-जानसे उद्योग करता है। लूटनेसे लक्ष्मी बढ़ती नहीं, बटोरी जाती है। अगर मैंने किसीको लूटा, तो मेरी जेबें भर जायँगी, परन्तु उससे संपत्तिमें वृद्धि नहीं हो जाती। सिर्फ जो संपत्ति पैदा हो चुकी थी, वही मैंने बटोर ली। मैं धनी हो गया, परन्तु लक्ष्मी बढ़ी नहीं। लक्ष्मी तो मेहनतसे ही बढ़ती है।

'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।'

—'उद्योग करनेवाले सिंहके जैसे पुरुषके पास लक्ष्मी आती है।' दूसरोंके खेतोंपर काम करनेवाले मजदूर दिल लगाकर काम नहीं करते। वे काममें चोरी करते हैं और उनके मालिक पूरी मजदूरी न देकर, दाममें चोरी करते हैं। मजदूर काममें चोरी करते हैं, तो मालिक दाममें। हरएक एक-दूसरेको ठगानेकी कोशिश करता है। इस तरह देशका नुकसान होता है। संपत्ति तभी बढ़ सकती है, जब संपत्ति पैदा करनेवालोंको उसमें उत्साह मालूम हो। इसीलिए मेरा मानना है कि भूमिदान-यज्ञसे देशकी संपत्ति बढ़ेगी।

२८-११-'५२ —रातू (राँची)

: ४२ :

मैं जो काम कर रहा हूँ वह मेरा नहीं, ईश्वरका काम है। मैं तो उसका औजार बनकर काम कर रहा हूँ।...... मैं तो जप कर रहा हूँ और निरंतर करूँगा। मनु महाराजने मुझे आज्ञा दी है—'ब्राह्मणको

निरंतर जप ही करना चाहिए। वह और कोई काम करे या न करे, उसके जपसे ही दुनियामें मैत्रीकी भावना बढ़ेगी।'—

'जप्येनैव तु संसिद्धेत् ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यत् न वा कुर्यात्......॥'

मैं तो निरंतर तप भी करता आया हूँ, लेकिन अब तपका भार मुझपर मत सौंपिये। आप तप कीजिये और मैं जप करूँगा। तो फिर जिन ऋषियोंका हम स्मरण करते हैं, उनका अनुभव हम ले सकते हैं। और भरतभूमिको फिरसे ऋषियोंकी भूमि बना सकते हैं।

२८-११-'५२ —रातू (राँची)

: ४३ :

एक जमाना था जब समाज बाल्यावस्थामें था, इसलिए राजाकी आवश्यकता महसूस होती थी। उस समय राजाका अनुशासन मानना, उसकी आज्ञाका पालन करना प्रजाका धर्म माना जाता था। लेकिन अब समाज बाल्यावस्थामें नहीं रहा, जवान हो गया है। विज्ञानके कारण आज सामान्य लोगोंको भी वह ज्ञान हासिल है, जो प्राचीन जमानेमें बड़े लोगोंको भी न था। अकबर बादशाहको मालूम न था कि मास्को अमेरिकामें है या रूसमें, पर आज तो स्कूलके बच्चेको भी यह बात मालूम है। उस समय राजाकी बात मानना जरूरी था, पर अब जरूरी नहीं रहा; बल्कि अब तो लोग ही अपने प्रतिनिधि चुनते और वे लोगोंकी हिदायतोंपर अमल करते हैं। इसलिए अब सारे समाजकी रचना उसीके अनुसार बनानी है। उस जमानेमें **'राजा कालस्य कारणम्'** कहा जाता था, पर अब राजा नहीं, **'प्रजा कालस्य कारणम्'** कहना होगा।

राजनैतिक क्षेत्रमें इस तरह जैसा परिवर्तन हुआ है, वैसा ही आर्थिक क्षेत्रमें भी करना है। आर्थिक क्षेत्रमें भी समता प्रस्थापित करनी है। समताके लिए यह जरूरी है कि जो चीज सबके लिए अत्यंत जरूरी

मानी जाती है, वह सबके लिए सुलभ हो जाय। जैसे—हवा, पानी, सूरजकी रोशनी और भूमि। ...... किसी जमानेमें समानताके लिए जमीनके बँटवारेकी जरूरत नहीं थी, क्योंकि उस समय जमीन काफी पड़ी थी और जनसंख्या कम थी। लेकिन आज जमीनके बँटवारेकी जरूरत है। किसी जमानेमें सबको वोटके हककी जरूरत नहीं थी, लेकिन आज है।

२४-११-'५२ —लोहरदगा (राँची)

: ४४ :

अस्तेय और अपरिग्रह, दोनों मिलकर अर्थशुचित्व पूर्ण होता है, जिसके बगैर व्यक्ति और समाजके जीवनमें धर्मकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। सत्य और अहिंसा तो मूल हैं, लेकिन आर्थिक क्षेत्रमें दोनोंका आविर्भाव अस्तेय और अपरिग्रहसे ही हो सकता है। और आर्थिक क्षेत्र जीवनका बहुत ही बड़ा अंग है, इसलिए धर्मशास्त्र उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता; बल्कि उसका नियमन और नियोजन करनेकी जिम्मेवारी धर्म-विचारपर आती है। इसलिए मनुने विशद रूपसे कहा है:

'यः अर्थशुचिः सः शुचिः।'

—'जिसके जीवनमें आर्थिक शुचिता है, उसका जीवन शुचि है।'

२५-११-'५२ —कुरु (राँची)

: ४५ :

विज्ञान और आत्मज्ञान—इन दो पंखोंपर मानव-पक्षी गगन-विहार कर सकता है। विज्ञान हमारे लिए सब तरहकी सहूलियतें पैदा करता है, लेकिन आत्मज्ञानके अंकुशके बिना विज्ञानका उपयोग भी गलत हो सकता है। इसीलिए हमने इस बातपर जोर दिया कि विज्ञानके साथ-साथ अहिंसा आनी चाहिए। अहिंसा आत्माका गुण है। गीता कहती है:

'य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥'

—'आत्मा न किसीका नाश करता है और न उसका नाश होता है।' अहिंसा आत्माका मूल गुण है। विज्ञान और अहिंसाके योगसे हम इस धरतीपर

स्वर्ग ला सकते हैं। परन्तु अगर हिंसा चलाओगे याने आत्माके गुणोंकी ओर ध्यान नहीं दोगे, तो यही विज्ञान मानवके घातका कारण बन जायगा।

२९-११-'५२ —राँची

: ४६ :

आज जो भिन्न-भिन्न देशोंके नेता हैं, वे कितने बच्चे हैं। सारे मनुष्यों-पर काबू करनेका दावा करते हैं, पर अपने ऊपर काबू नहीं पा सकते—अपने मन और इंद्रियों आदिपर क़ाबू नहीं पा सकते, क्रोधादि-से मुक्त नहीं हो सकते। जिनका अपने ऊपर काबू नहीं, वे दूसरोंको मार्ग दिखानेका दावा करते हैं! वे एक प्रवाहमें बह रहे हैं। लोग कहते हैं कि विश्वयुद्ध होगा तो? मैं कहता हूँ, होने दो। विश्वयुद्ध तो ईश्वर-कृत होता है। उसमें सारे नेता बह जाते हैं। क्या विश्वयुद्ध-का नेतृत्व मनुष्य करते हैं? चर्चिलसे जब लड़ाईके उद्देश्य पूछे गये, तो उसने जवाब दिया कि 'विश्वयुद्धका उद्देश्य है जीत हासिल करना।' सका मतलब यह है कि लड़ाई लड़ी जाती है तो उसमें उद्देश्य कुछ नहीं होते, वे सारे लाचार होकर लड़ते हैं—यंत्रवत् बनकर, प्रवाहमें बहकर। प्रवाहसे कैसे बचना, यह वे नहीं जानते। आज हिंदुस्तानकी आवाज दुनियाभरमें पहुँच रही है। यद्यपि हिंदुस्तानके पास भौतिक शक्ति कम है, फिर भी दूसरी एक अपूर्व शक्ति है। यहाँपर एक एसा नेता निकला जिसने राजनैतिक आजादी हासिल करनेका एक अजीब शस्त्र देशको दिया। हिंदुस्तानकी आजादीकी लड़ाई अजीब किस्मसे लड़ी गयी। दुनियाके इतिहासमें वह एक विशेष प्रकारकी लड़ाई मानी जायगी। उसका परिणाम दुनियापर हो रहा है। हिंदुस्तानकी प्राचीन सभ्यतापर, जिसने मानवका आवाहन किया, दुनियाकी आशा लगी हुई है। इसीलिए हमारी आवाज दुनियाभरमें पहुँचती है। परन्तु वह दुर्बल आवाज है, उसका दुनिया-पर प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि हमारी बाकीकी सारी समस्याएँ वैसी ही पड़ी हुई हैं। हिंदुस्तान उनको किस ढंगसे हल करता है, इसपर सारा

निर्भर है। हिंसासे हल करो तो दुनिया समझेगी कि ये भी हमारे जैसे ही बहावमें बह रहे हैं। लेकिन अगर हम अपने मसले आत्माके, अहिंसाके तरीकेसे हल करनेकी सोचेंगे तो हिंदुस्तान बचेगा और दुनियाको तारनेवाला वन जायगा। मनु महाराजने कहा है :

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥'

—'इस भूमिमें जो ज्ञानी पैदा होंगे, उनसे सारी दुनियाके लोग सबक सीखेंगे।' मनु महाराजका यह भविष्य तब सही होगा, जब हिंदुस्तान आत्माके, अहिंसाके तरीकेसे अपने मसले हल करेगा।

भूमिका मसला तो हल होकर ही रहेगा। दूसरे देशोंमें यह दूसरे तरीकोंसे हल हुआ है, परन्तु उनसे कोई लाभ नहीं हुआ। इसलिए अगर हम भी वे ही तरीके आजमायेंगे, तो उसमें हमारी कोई विशेषता नहीं है और न उससे हम सुखी ही होंगे। परन्तु अगर यह मसला अपने ढंगसे हल करेंगे, तो हम दुनियाको बचा सकेंगे। इसलिए मेरी सारी कोशिश यही है कि हमारे सारे मसले आत्माके तरीकेसे हल हों।

२६-११-'५२ —रांची

: ४७ :

एक बार एक आदमी परमेश्वरके पास पहुँचा। परमेश्वरने उसे डाँटा कि 'मैं जब भूखा था तब तूने मुझे खिलाया नहीं, मैं जब प्यासा था तब तूने पानी पिलाया नहीं और मैं जब ठंढमें ठिठुर रहा था तब तूने मुझे कपड़ा दिया नहीं।' यह सुनकर वह ताज्जुबमें पड़ गया। उसने कहा कि 'मेरी समझमें नहीं आ रहा है कि तू कब भूखा-प्यासा था?' तब परमेश्वरने उससे कहा कि 'ठीकसे सोच, तेरे इर्द-गिर्द कितने भूखे थे, जिन्हें तूने नहीं खिलाया। इसका मतलब है कि तूने मुझे ही नहीं खिलाया। तेरे इर्द-गिर्द कितने प्यासे थे, जिन्हें तूने पानी नहीं पिलाया, तो मुझे ही नहीं पिलाया। तेरे इर्द-गिर्द कितने लोग ठंढमें ठिठुर रहे थे,

जिन्हें तूने कपड़ा नहीं दिया। इसका मतलब है कि तूने मेरी ही फिक्र नहीं की।'

इसका मतलब यह है कि इस दुनियामें जो लोग दीखते हैं, वे सबके सब हमारे भाई हैं, क्योंकि वे सारे मेरे ही रूप हैं। उनकी सेवामें जुट जाना हमारा कर्तव्य है। सब धर्मोंने यही बात कही है। वेदोंमें कहा गया है—

'ब्रह्मदाशा, ब्रह्मदासा, ब्रह्मैवेमे कितवाः।'

—'ब्रह्म कहाँ है? गुलाम, दुःखी, मच्छीमार और पापियोंमें परमेश्वरको देखो।'

३-१२-'५२ —मुरहु (राँची)

: ४८ :

आज हम मेहनत करनेवालोंको नीच मानते हैं। यह बिल्कुल गलत विचार है। जो खाता है, उसे मेहनत करनी ही चाहिए। उत्पादक-परिश्रम किये बगैर कोई भी खानेका हकदार नहीं हो सकता। गिबनने अपने 'रोमन-साम्राज्यके इतिहास' में लिखा है कि 'रोमके लोग जबतक मेहनत करनेमें प्रतिष्ठा मानते थे, तबतक रोमका उत्थान हुआ। पर जब वे फैशनमें पड़े, नाजुक बने, तभी रोमका पतन हुआ।' आज हमारी भी यही हालत है। आज भी लड़कोंको ऐसी तालीम दी जा रही है जिससे वे नाजुक बनते हैं, काम करनेके लिए नाकाबिल होते हैं। अगर ऐसी ही तालीम चले तो गिरावटके सिवा कुछ नहीं होगा। यही बात महाभारतमें व्यासने लिखी है, 'अगर उन्नति करना चाहते हो तो मेहनत करो।' भगवान् कृष्णने भी मेहनत की। उन्होंने गीतामें कहा है:

'यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥'

—'मैं एक क्षणके लिए भी आलसी रहूँ तो ये सारे लोग खत्म हो जायँगे, इसीलिए मैं निरंतर मेहनत करता हूँ।' परन्तु आज हम इस बातको भूल गये हैं। जो जमीनपर मजदूरी करते हैं, वे जबतक जमीनके

मालिक नहीं बनते—जबतक उन्हें प्रतिष्ठा नहीं दी जाती तबतक देशका उत्थान नहीं होगा।

८-१२-'५२ —चक्रधरपुर (सिंहभूम)

:४९:

हमारे पास शक्ति कम नहीं है, परन्तु हमारे बहुत सारे कार्यकर्ता आज संस्थाओंमें फँसे हुए हैं। वे बहुत काम कर सकते हैं, परन्तु इसके लिए संस्थाको फेंकनेकी, तोड़नेकी शक्ति होनी चाहिए। गांधीजीमें वह शक्ति थी। वे बड़ी-बड़ी संस्थाएँ खड़ी करते और तोड़ देते थे। उन्होंने साबरमती-आश्रम खड़ा किया, गांधी-सेवा-संघ जैसी बड़ी संस्था खड़ी की, लेकिन एक क्षणमें सब तोड़ डाला और वहाँके सब आश्रमवासी आन्दोलनके समय कामके लिए बाहर निकल पड़े। गांधी-सेवा-संघ तो इतनी बड़ी संस्था बन गयी थी कि लोगोंका यह ख्याल हो गया कि वह कांग्रेससे स्पर्धा करने लगी है। पर उन्होंने उसे भी खत्म कर दिया। जब वे वर्धा छोड़कर गये तो हमेशाके लिए चले गये। अगर वे रहते तो भी वहाँ वापस आनेवाले नहीं थे। वेदोंमें सूर्यकी महिमा बतायी गयी है:

'तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं।
मध्या कर्तो विततं संजभार संजभार ॥'

—'अपनी सारी किरणें फैली हुई होनेपर भी वह एक क्षणमें सबको खींच लेता है।' खींचनेकी यह कितनी महान् शक्ति उसमें है। ऐसी ही शक्ति गांधीजीमें थी। बारडोलीका महान् आन्दोलन एक क्षणमें उन्होंने बंद कर दिया। हिंदुस्तानभरमें उसपर टीका-टिप्पणी हुई, पर उन्होंने उसकी पर्वाह नहीं की।

भूदान-यज्ञका काम ऐसा क्रान्तिकारी काम है कि इसके आधारसे और सब कार्य फलेंगे और यदि यह काम नहीं हुआ तो दूसरे काम टिकनेवाले नहीं हैं। भूदान-यज्ञ सफल न हुआ तो न खादी टिकेगी, न ग्रामोद्योग। इसीलिए ऐसे मौकेपर हमारे कार्यकर्ताओंमें परित्यागकी भावना होनी

चाहिए। हमें संस्थाओंकी आसक्ति छोड़कर इस काममें कूद पड़ना चाहिए। संध्याके समय जिस प्रकार सूर्य अपनी सब किरणोंको खींच लेता है, उसी प्रकार हममें भी अपने सभी कामोंको समेट लेनेकी शक्ति होनी चाहिए।

४-३-'५३ —चाण्डिल

: ५० :

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

मैं चाहता हूँ कि आप कार्यकर्ता लोग अपने सारे काम छोड़कर भू-दानके काममें ही सारा समय दें। बाकीकी सब बातें छोड़कर—अच्छी-अच्छी बातें भी छोड़कर—इसमें आयें। यह मैं कोई नयी बात नहीं बता रहा हूँ। भक्तिमार्गमें यह आदेश है कि अधर्मको तो छोड़ना ही पड़ता है, बल्कि धर्मको भी छोड़ना पड़ता है। **'सर्वधर्मान्......'** भगवान्ने कहा है, 'सब धर्मोंको छोड़कर मेरी शरणमें आ जाओ।' यह है भक्तिमार्ग! जहाँ हम भक्तिकी बात करते हैं, वहाँ अगर छोटे-छोटे धर्मोंकी गुंजाइश रखते हैं तो हम निष्ठावान् नहीं कहे जा सकते और हमारी भक्ति सफल नहीं हो सकती। यह भक्तिमार्गकी विशेषता है कि उसमें सब धर्मोंका त्याग करना पड़ता है। और यह जो अपना मार्ग है वह भक्तिमार्ग ही है, क्योंकि हम सारे समाजको एकरस बनाना चाहते हैं तो भक्तिके सिवा यह बात होनेकी नहीं। हम प्रेमभाव पैदा करना चाहते हैं तो वही हमारा मुख्य धर्म है। बाकीके छोटे-छोटे काम और छोटे-छोटे धर्म, जो हमने मान रखे हैं, वे इस भक्तिके लिए छोड़ देने पड़ते हैं। तो आप लोग सब धर्मोंका त्याग करें और इस काममें लग जायँ, यह मेरी माँग है।

६-३-'५३ —चांडिल

: ५१ :

ऐसे आश्रमोंकी बहुत आवश्यकता है जहाँ साधक, शोधक और सेवक रहते हों। आश्रमों द्वारा आसपासके ग्रामोंकी सेवा होनी चाहिए।

ग्रामोंसे दूर, पर बहुत दूर भी नहीं, ऐसे स्थानोंपर आश्रम होने चाहिए। **'तद् दूरे तद्वन्तिके'**—'वह दूर है, फिर भी निरंतर पास है।' सेवा करनेके लिए ग्रामोंके पास रहना जरूरी है और ध्यान-चिंतनके लिए भी कुछ दूर रहना जरूरी है। साधकोंको कुछ एकांत और थोड़ा जन-संपर्क दोनों चाहिए। अत्यंत एकांतमें रहें तो उनकी ध्यान-साधना कुंठित हो जाती है। क्योंकि ध्यानमें जो दर्शन होगा, उसको सचाई प्रत्यक्ष व्यवहारकी कसौटीपर कसनेका मौका नहीं मिलेगा। इसलिए अखंड एकांत अच्छा नहीं। वैसे ही साधक २४ घंटे केवल जनसमुदायमें ही रहेगा तो जिस सेवाके लिए वह रहता है, वह सेवा अच्छी नहीं होगी। अच्छी सेवाके लिए भी यह जरूरी है कि हम कुछ देरतक अपनेको सेवासे अलग रखें, ताकि उस सेवामें क्या कमी है, किस प्रकारकी वृद्धिकी आवश्यकता है —इसका भान हो जाय। जो खेल खेलते रहते हैं, उन्हें भान नहीं होता कि खेल कैसे हो रहा है। परन्तु तटस्थ रहनेवाले जान सकते हैं कि हमारी सेवाका स्वरूप ठीक है या नहीं। इसमें कुछ कसर है या यह परिपूर्ण है, इसके निरीक्षणका मौका तब मिलता है, जब हम सेवासे थोड़े अलग हो जाते हैं। इसलिए हमारे आश्रम ऐसे स्थानोंपर होने चाहिए जो दूर हों, फिर भी ज्यादा दूर न हों।

१२-३-'५३ —निमड़ी (मानभूम)

: ५२ :

'भूदान-यज्ञ सफल नहीं होगा तो फिर क्या करना होगा?'—यह शंका मत उठाओ। यही कहो कि 'हम उसे सफल करेंगे ही।'

'आत्मा सत्यकामः सत्यसंकल्पः।'

—'आत्मामें सत्यसिद्धिकी शक्ति है। इसलिए अगर हम इस तरहका सत्यसंकल्प करें तो वह सिद्ध होगा ही।'

४-४-'५३ —गिरीडीह (हजारीबाग)

: ५३ :

हम ऐसा समाज बनाना चाहते हैं, जिसमें गाँव स्वावलंबी होंगे। जो रोजमर्राकी चीजें हैं—जैसे खाना, कपड़ा—वे गाँवमें ही छोटे-छोटे उद्योगों द्वारा निर्माण होंगी। जो बड़े-बड़े धंधे हैं—जिनका संबंध सारे देशके ही साथ नहीं, दुनियाके भी साथ आता है—वे किसी खानगी व्यक्तिकी मालकियतके नहीं, समाजके होंगे। इसके बगैर सर्वोदय नहीं होगा। बड़े-बड़े धंधोंको—जिनका सारे देशके साथ संबंध आता है, जिनमें लाखों मजदूर काम करते हैं—चन्द लोगोंके हाथमें सौंपना खतरनाक है। इसपर ऐसा आक्षेप किया जाता है कि 'खानगी मालकियत न रही तो लोग पूरी अक्ल नहीं लगायेंगे। आज वे स्वार्थभावसे उसमें अक्ल लगाते हैं, इसलिए वे धंधे किफायतसे चलते हैं। अगर वे धंधे सरकारके हो जायँ तो देशको उद्योगपतियोंकी अक्लका लाभ नहीं मिलेगा।' अगर यह सही है तो हम सारे धर्महीन बन जायँगे। फिर हम सच्चे हिंदू, मुसलमान या ईसाई हैं, हमारा यह दावा गलत साबित होगा। जो काम समाजके लिए करना है, वह पूरी निष्ठासे करना है—इसीको धर्म कहते हैं। आज जिनके हाथोंमे बड़े-बड़े धंधे हैं, वे अपनी-अपनी अक्ल भी देशको समर्पित करें। मनुष्य खुदके लिए काम करता है तो उसे प्रेरणा मिलती है और देशके लिए करता है तो प्रेरणा नहीं मिलती—यह मानना एक अत्यंत अधर्मविचार है। पर दुनियामें आज यही विचार चल रहा है, क्योंकि दुनियामें अधर्म चलता है। हमारे शास्त्रोंमें चार वर्ण बताये गये हैं। उनमें हरएक वर्णका अपना-अपना धर्म होता है। वाणिज्य भी एक धर्म है। ब्राह्मणका धर्म है, ज्ञान देना। परन्तु वह उसे स्वार्थके लिए नहीं कर सकता, धर्म मानकर ही कर सकता है। क्षत्रियका धर्म है, राष्ट्रपर मर मिटना। इसी तरह वैश्यका धर्म है, व्यापार। उनके लिए व्यापार एक कर्तव्य हैं, सेवाका साधन है। किसान, क्षत्रिय और ब्राह्मणोंकी तरह वैश्य भी सेवा करेंगे और सेवकके नाते जो पायेंगे, उसीके वे हकदार होंगे। शरीरके लिए वे कुछ-न-कुछ पायेंगे, लेकिन सेवकके नाते ही। स्वार्थके लिए किया गया धंधा धर्म नहीं होता। हमने तो व्यापारको धर्म ही बनाया है। अगर लोहा, अभ्रक

आदिके कारखाने सरकारने अपने हाथमें लिये तो आज वे जिनके हाथोंमें हैं, वे अपनी अक्ल उसमें दें। वे पूछेंगे कि 'इसमें हमें क्या नफा मिलेगा ?' तो हम उनसे कहेंगे—'आपके द्वारा धर्मका आचरण होगा, यही नफा है।' अगर वे कहेंगे कि 'हमें यह नफा नहीं चाहिए, करोड़ों रुपये चाहिए', तो ऐसा कहनेवाला धार्मिक नहीं, अधार्मिक कहा जायगा।

जमीन गाँवकी मालकियतकी हो और जो काश्त करना चाहता हो, उसको वह दी जाय, छोटे-छोटे धंधे चलें और जो बड़े धंधे हैं, उनपर देशकी मालकियत हो—इसीको हम धर्म-व्यवस्था मानते हैं। आजतकके अध्ययनसे मुझे लगता है कि आज समाजमें जो कुछ चल रहा है, वह अधर्म है।

गीता कहती है कि 'तेरा काम है अपना कर्तव्य करना। फलकी आशा मत रखना।'

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥'

अपना कर्तव्य करनेका आनंद लो, वही आपके हाथमें है। यह करोगे तो आपसे धर्मका आचरण हुआ ऐसा माना जायगा। फल भगवान्‌को अर्पण करना याने फलत्याग करना ही धर्म है। जिन्होंने फल भगवान्‌को अर्पण करना छोड़ा, उन्होंने धर्म भी छोड़ा। समाजके लिए यह खतरेकी बात होगी।

११-४-'५३ —डोमचांच (हजारीबाग)

: ५४ :

मैं सब पार्टीवालोंसे कहता हूँ कि एक साथ भूदानके काममें जुट जाइये। सोशलिस्टोंसे कहता हूँ कि 'अपने-अपने अलग विचार रखो, पर गरीबोंकी भलाईके काममें कांग्रेसवालोंके साथ कंधेसे कंधा लगाकर काम करो।' कांग्रेसवालोंसे कहता हूँ कि 'दूसरे पक्षोंको उदारतासे अपने साथ लाओ। हमने कितना किया और दूसरेने कितना किया, यह न सोचो

हवा तैयार होती है तो काम हो जाता है। किसने कितना किया, कौन जानता है।' गीतामें भगवान्‌ने कहा है:

'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।'

—'मैं तो सब कुछ कर सकता हूँ, परन्तु अर्जुन, तू निमित्त बन।' ...... इस तरह यशका विभाजन नहीं हो सकता, हवासे ही सारा काम होता है। यह कोई नहीं कह सकता कि उसके कारण इतनी एकड़ जमीन मिली। मैं भी ऐसा नहीं कह सकता कि मेरे कारण जमीन मिली। यह काम तो परमेश्वरकी इच्छासे होता है। जब हवा बन जाती है तो परमेश्वर-की इच्छासे कोई निमित्त बन जाता है। जैसा जिसका परिचय है वैसा उसको यश मिलता है या नहीं भी मिलता। झाँसीकी रानीको यश नहीं मिला और शिवाजी महाराजको मिला, तो झाँसीकी रानीका गौरव न करना और शिवाजी महाराजका करना—यह गलत होगा। इस काममें जो यश मिलेगा, वह सबका होगा।

१२-४-'५३ —कोडरमा (हजारीबाग)

: ५५ :

यहाँपर कांग्रेसकी बड़ी दुर्दशा है। उसमें दो दल हैं। सारे दलदलमें फँसे हैं, जिससे उनकी ताकत कम होती है। एक पक्षके पास १० सेर ताकत हो और दूसरे पक्षके पास ८ सेर, तो लड़ाईमें १० सेरवाला जीतेगा; परन्तु देशको तो १०–८=२ याने २ सेरका ही लाभ होगा। याने उसमें जीत किसीकी भी हो, देशने तो हार खायी—यही कहना होगा। अगर दोनों साथ मिलकर काम करें तो १०+८=१८ सेर ताकतका देशको लाभ होगा। लेकिन उसके लिए आपसी भेद मिटाने होंगे। उसके लिए पुराना सब कुछ भूलनकी शक्ति चाहिए। पुराना कैसे भूला जाय—यह भी एक बड़ी शक्ति है। ईशावास्य-उपनिषद्‌में कहा गया है:

'विद्यां च अविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥'

साधकके लिए दो साधन हैं : (१) विद्या याने जानना और (२) अविद्या याने भूल जाना। जो बातें भूलने लायक होती हैं, उन्हें भूलनेकी शक्ति होनी चाहिए। हम पूर्वजन्मकी बात करते हैं, तो कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि 'आप तो पूर्वजन्मकी बात करते हैं, परन्तु पूर्वजन्मकी याद क्यों नहीं आती ?' तो मैं जवाब देता हूँ कि 'अगर पूर्वजन्मका सारा याद रहता तो अपनी आजकी यह मीटिंग कैसे बनती ? तब तो मैं आपको लात मारता, यह कहकर कि 'उस जन्ममें तुम कुत्ते थे और मैं गधा, तुमने मुझे काटा था और मुझे तुम्हें लात मारनी थी, पर वह रह गयी तो अब मारता हूँ।' अगर मैं ऐसा करता तो क्या यह मीटिंग हो पाती ? परन्तु मैं भूल गया कि मैं गधा था और तुम भूल गये कि तुम कुत्ते थे, इसलिए यह मीटिंग चल रही है। यह परमेश्वरकी कृपा है कि जहाँ मृत्युकी छाया आती है वहाँ भूलनेकी शक्ति भी आती है। नये जन्ममें मनुष्य सारा भूल जाता है और सिर्फ वही याद करता है जो याद करने लायक है। यह परमेश्वरकी कीमिया है और उसीके कारण हम जिन्दगी जीते हैं। इसी तरह हमें पुराने झगड़े, द्वेष आदि सब भुलाकर इस काममें लग जाना चाहिए।

१२-४-'५३ —कोडरमा (हजारीबाग)

: ५६ :

आजतक हजारों गरीबोंने दान दिया है, तो अब उसका असर श्रीमानोंपर भी हो रहा है। अब श्रीमान् लोग आगे आयेंगे और देखते-देखते इस आन्दोलनको अपना आन्दोलन मानकर चलायेंगे, ऐसे चिह्न दिखाई दे रहे हैं। जिनकी नजर संकुचित है, उन्हें लगता है कि लोग कंजूसीसे दान देते हैं। परन्तु व्यापक दृष्टिसे देखें तो भव्य दृष्टि आती है। आज जो कंजूस दीख रहे हैं, वे ही आगे चलकर हमारा काम उठायेंगे। ऋषिने प्रार्थना की है :

'अदित्सन्तं चित् आघृणे ।
पूषन् दानाय चोदय ।
पणेश् चित् विम्रदा मनः ।'

—'तपा-तपाकर शुद्ध करनेवाले देव ! जो आज देना नहीं चाहता, उसका मन भी देनेकी ओर प्रेरित करो। कृपणका मन भी मृदु बनाओ। उसके मनको दानकी प्रेरणा दो।' ऋषिकी यह प्रार्थना निकम्मी नहीं है, कामकी है, सफल है। आज वह प्रार्थना फल रही है। आज लोगोंके हृदयकी गाँठें खुल रही हैं। परिस्थिति उन्हें दानकी प्रेरणा दे रही है। परिस्थितिका मतलब है कि गरीब हजारोंकी तादादमें दान दे रहे हैं, जिससे श्रीमानोंको भी दानकी प्रेरणा मिल रही है। गरीबोंका दान पुण्य असर किये बगैर रह नहीं सकता। इसलिए जब कोई हमें सुनाता है कि कोई श्रीमान् दान नहीं दे रहा है, तो कुछ लोगोंको गुस्सा आ जाता है। परन्तु गुस्सा नहीं करना चाहिए। विश्वास रखो कि, जो आज नहीं देता, वह इसीलिए नहीं देता कि वह कल देनेवाला है।

१५-४-'५३ —अकबरपुर (गया)

: ५७ :

कम्युनिस्ट लोग मुझसे पूछते हैं कि 'आप गरीबोंसे दान क्यों लेते हैं ?' गरीबोंसे दान लेना तो अहिंसाकी एक प्रक्रिया है। अगर आप अहिंसाको समझते हैं तब ही यह आपकी समझमें आ सकता है। हम श्रीमानोंसे दान लेते हैं, परन्तु उन्हें दान देनेको प्रवृत्त करनेके लिए नैतिक दबावकी जरूरत होती है। हम हिंसाको नहीं मानते। अगर अहिंसक या नैतिक दबावको भी नहीं मानेंगे तो हम निष्क्रिय बन जायँगे—हिंसा या अहिंसा कुछ भी नहीं करेंगे। नैतिक दबाव धार्मिक ही है। उपनिषदोंमें कहा गया है:

'श्रिया देयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्,
संविदा देयम्, श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया अदेयम्।'

—'लज्जासे दो, भयसे दो, विचारसे दो, श्रद्धासे दो, लेकिन अश्रद्धासे मत दो।'

शर्म या लज्जासे भी दान दिया जाता है, तो वह भी अच्छा ही है। छोटा बच्चा नंगा घूमता है, उसे शर्म नहीं मालूम पड़ती। परन्तु उसे निजका ज्ञान हुआ तो शर्म, लज्जा आती है और वह कपड़ा पहन लेता है।

जिसने शर्म या लोकलज्जासे दान दिया, वह विचारको समझता है, इसीलिए देता है। कोई लज्जासे दान देता है तो वह ज्ञानसे देता है। हजारों गरीब लोग दान देते हैं, उसका असर श्रीमानोंपर भी होता है, उनमें लज्जा पैदा होती है और वे भी दान देने लगते हैं। इसलिए लज्जा-से देते हैं तो कोई हर्ज नहीं। इस तरहकी लज्जा, पापभीरुता, धर्मभीरुता होनी ही चाहिए—**'ह्रिया देयम् ।'**

कोई भयसे दान देता है तो भी कोई हर्ज नहीं। भयका मतलब यह नहीं कि 'दान दो, नहीं तो कत्ल करेंगे'—ऐसा भय दिखाकर दान लिया जाय। वह गलत ही है। परन्तु अगर हम किसीसे कहें कि 'तुम्हारे बिछौनेपर साँप है, इसलिए बिछौना छोड़ो', तो ऐसा कहनेमें जो भय है, वह ठीक ही है। जो भय है, उसे हमने दिखाया तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि सच्चा डर जो है उसे जानना ही चाहिए। मनुष्यको जिन चीजोंसे डरना चाहिए, उन चीजोंसे डरना धर्म है और जिन चीजोंसे नहीं डरना चाहिए, उन चीजोंसे न डरना धर्म है। भय भी अच्छी बात है। भयके कारण हम बुरा काम न करें, तो ठीक ही है। 'झूठ बोलोगे तो नुकसान होगा, हिंसा करोगे तो दुनियाका विनाश होगा'—यह कहना डर नहीं, यह तो एक विचार है। बुरा काम करनेसे बुरा फल प्राप्त होता है, इसलिए 'बुरा काम मत करो', यह हम समझते हैं तो वह डर और भय धार्मिक ही है। समाजको इस तरह समझाना कि 'जमानेको न पहचानोगे और उदार दिलसे भूमिदान नहीं दोगे तो आपके लिए खतरा है', डराना नहीं, बल्कि विचार समझाना ही है। 'बुराईका फल बुरा होता है और भलाईका फल भला', यह कहना डर दिखाना नहीं है। यह 'कर्मविपाक' है—कर्मका परिणाम क्या होता है, यही बताया गया है। इसीलिए हम गरीबोंसे दान लेते हैं, ताकि उसका नैतिक दबाव श्रीमानोंपर पड़े।

अपनी संपत्ति देखकर अपनी 'श्री' के अनुकूल दान देना चाहिए, नहीं तो 'इतिश्री' हो जायगी। कान्ति खत्म हो जायगी, तेजोहीन बनोगे,

चेहरेकी प्रभा नष्ट हो जायगी। इसीलिए जो दान देना है, वह ऐसा होना चाहिए कि जिससे चेहरेकी कांति बढ़े। याने **'श्रिया देयम्।'** फिर दूसरी बात है—**'ह्रिया देयम्'**—लज्जासे दो। अपनी हैसियतसे कम नहीं देना चाहिए। इज्जतके लिए मनुष्य सब कुछ त्याग कर सकता है। इसलिए ऐसा दान देना चाहिए जिससे इज्ज्जत बढ़े। अगर कोई दस हजार एकड़वाला सौ एकड़ देता है तो उसमें न लज्जा है, न श्री। इसलिए कम दान देने से देनेवाले और लेनेवाले—दोनोंकी इज्जत घटती है। जो शोभादायक हो, वही करना चाहिए। जो कुछ देना हो, वह श्रद्धासे देना चाहिए, अश्रद्धासे कभी न देना चाहिए। और जो देना है, वह ज्ञानपूर्वक देना चाहिए।

१६-४-'५३ —नवादा (गया)

१४-१०-'५२ —बरौली (सारन)

: ५८ :

कुछ लोग कहते हैं कि 'इस कलियुगमें आपको दान कौन देगा ?' लेकिन द्वापर और त्रेतायुगमें भी रावण और कंस हुए और इस कलियुगमें भी गांधीजी, रामकृष्ण परमहंस जैसे महापुरुष हो गये। इसलिए युगकी बात करना गलत है। हर युगमें सद्भावना होती है। युग बनानेवाले तो मनुष्य ही होते हैं। हमें हजारों लोग भूमिदान दे रहे हैं। इसका मतलब है कि कलियुगमें भी सद्भावना होती है। शास्त्रोंने तो कहा है कि कलियुगमें धर्म आसान है:

'कलौ दानं च नाम च।'

—'कलियुगमें दान दो और परमेश्वरका नाम लो तो परमेश्वरकी प्राप्ति हो जाती है।' यह कितना आसान है! पुराने युगोंमें तो कितनी तपस्या करनी पड़ती थी। जंतर-मंतर, जप-तप, यज्ञ-याग—सब करना पड़ता था, तब भगवान् दर्शन देते थे। भगवान्‌का दर्शन इतना दुर्लभ था। लेकिन इस युगमें तो दान और नाम—दो ही बातें करनी होती हैं। इस वचनपर

विश्वास रखकर हमने माँगना शुरू किया और हमें लाखों एकड़ जमीन मिली।

२०-४-'५३ —गुल्ली (गया)

: ५९ :

आज हजारों लोग दान दे रहे हैं, यह युगके बदलनेकी निशानी है। अब अच्छाईकी हवा बहने लगी है। स्वराज्य हासिल होनेके बाद हिंदू-मुसलमानोंके कितने झगड़े चले, लेकिन ४-६ महीनोंमें वे खत्म हो गये। बुरी हवा फैली थी, पर खत्म हो गयी। अच्छाई और बुराईकी टक्कर हमेशा होती है, पर आखिर विजय तो अच्छाईकी ही होती है। शास्त्र कहते हैं कि **'सत्यमेव जयते नानृतम्'**—सत्यकी ही विजय होती है, सिर्फ सत्ययुगमें ही नहीं, बल्कि हर युगमें। हर युगमें कशमकश होती है, लड़ाई-झगड़े चलते हैं, परन्तु आखिर विजय सत्यकी ही होती है। हिंदू-मुसलमान सब भूमिदान दे रहे हैं। बच्चा-बच्चा बोल रहा है कि 'भूमि-दान दो', 'धन और धरती बँटकर रहेगी।' सत्यका, परोपकारका, प्रेमका विचार बलवान् है और लूटनेका, हिंसाका, झगड़ेका विचार कमजोर है। इसलिए आखिर सत्य और प्रेमके विचारकी ही विजय होनेवाली है।

२०-४-'५३ —गुल्ली (गया)

: ६० :

आज जो लोग अपने बच्चोंके लिए जायदाद (इस्टेट) छोड़ते हैं, उनके बच्चे आलस्य, व्यसन और बुराईमें सब बर्बाद कर देते हैं। हम तीन भाई हैं। हमारे पिताजीने हमें अच्छी तालीम दी, परन्तु कोई इस्टेट नहीं दी। इसलिए तीनों भाई पराक्रमी और सुखी हुए। अगर पिताजी हमें बेवकूफ रखते और हमारे लिए पैसा रखते तो विद्या, चारित्र्य, अक्ल आदि गुणोंके बदलेमें हम पैसा लेते और नालायक बन जाते। इसलिए हम अपने पिता-जीका उपकार मानते हैं कि उन्होंने हमें तालीम दी, पैसा नहीं दिया।

वह पिता अपने पुत्रका दुश्मन है जो पुत्रके लिए बनी-बनायी इस्टेट छोड़ जाता है।

'पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुः ।'

—'पिता पुत्रको अच्छी तालीम दे तो उसे सद्गति मिलती है।' पुत्रको शिक्षण, मेहनत, उद्योग और नीति सिखानेके बदलेमें इस्टेट दोगे तो आपको परलोकमें और पुत्रको इस लोकमें दुर्गति प्राप्त होगी।

२३-४-'५३ —ओटनपुर (गया)

: ६१ :

अब गरीब जाग रहे हैं। हवामें बात फैल गयी है कि जमीन सबकी हो चुकी है। हवा, पानी और सूरजकी रोशनीके समान जमीन भी परमेश्वरकी देन है, इसलिए उसपर सबका समान अधिकार है। मैं चाहता हूँ कि श्रीमान्, जमींदार भी जाग जायँ और भूदानके कामको अपना काम मानकर उठा लें। वे फौरन यह काम करेंगे तो शोभादायक होगा। आखिर लाचारीसे देना ही पड़ेगा। उस दानम रुचि नहीं रहती। गीतामें लिखा है :

'अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत् तामसमुदाहृतम् ।।'

—'तामस-दानका लक्षण यह है कि दाता दान तो देता है, परन्तु दुःखके साथ देता है, मुँह टेढ़ा करके देता है, खुशीसे नहीं देता।' खुशीसे दिया जाय तो थोड़ा-सा देनेपर भी बहुत मिला, ऐसा माना जायगा। इसलिए मैं चाहता हूँ कि जमींदार समय रहते ही खुशीसे दान दें। प्रेमसे दान नहीं दोगे तो उसका परिणाम ठीक नहीं होगा। देना है तो ठीक मौकेपर देना चाहिए और प्रेमसे देना चाहिए। गीतामें लिखा है :

'दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ।।'

तो क्या अब काल नहीं आया है? और जरा मेरे चेहरेकी तरफ देखो तो, क्या मैं पात्र नहीं हूँ? देश भी है, काल भी है और पात्र भी

मौजूद है। तो, ठीक समयपर दान दो तो अच्छा होगा। डॉक्टरको देरीसे बुलानेपर फीस भी देनी पड़ती है और रोगी भी चल बसता है। इसलिए डॉक्टरको बुलाना हो तो मौकेपर बुलाना चाहिए। ठीक मौकेपर ठीक काम करनेसे उत्तम परिणाम निकलता है।

२५-४-'५३ —हसुआ (गया)

: ६२ :

बड़े लोगोंके दिल अभीतक पूरे नहीं खुल पाये हैं। वे दान नहीं दे रहे ह। सोच रहे हैं कि लाचारीसे देना पड़ेगा, तब देंगे।

'धर्मस्य त्वरिता गतिः।'

--'धर्म तब सफल होता है, जब उसका तुरन्त आचरण किया जाता है।' किसी बीमारको बचाना है तो समय रहते ही डॉक्टरको बुलाना चाहिए, तभी वह बच सकता है। ठीक मौकेपर बोओ तो अच्छी फसल उगती है। आज अपने देशके लिए यह मौका आया है कि प्रेम और शान्तिसे नये समाजका निर्माण करें। अगर हमने यह मौका खो दिया तो समाज-रचना तो बदलेगी ही, परन्तु उथल-पुथल होगी—बुरे तरीकेसे बदलेगी, जिससे लोग दुखी होंगे। उससे कोई लाभ नहीं होगा। परन्तु समाज-रचनामें शान्तिसे परिवर्तन होता है तो स्थिर लाभ होता है। चीन और रूसमें क्या हुआ, यह सब देख लीजिये, समझ लीजिये। भारतका अपना अस्तित्व है, सभ्यता है, तरीका है, जीवनका प्रकार है—ऐसा हम अभिमान रखते हैं। तो उस सभ्यताके अनुकूल समाज-परिवर्तनका कोई तरीका हमें ढूँढ़ना चाहिए। भूदान-यज्ञ एक ऐसा ही तरीका हमें मिला है। आखिर हम आपकी ज़मीनका छठा हिस्सा ही तो माँग रहे हैं।

'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पंडितः।'

—'सब कुछ खोनेका मौका आया है तो आधा छोड़ना चाहिए।' परन्तु हमने आधे हिस्सेकी नहीं, सिर्फ छठे हिस्सेकी माँग की है। इसीलिए जमानेको पहचानकर छठा हिस्सा दानमें दीजिये।

[illegible] —रसलपुर (गया)

: ६३ :

उपनिषदोंमें ऋषि कहता है, 'तत्त्वमसि'—तू ब्रह्म है। आकारमें इससे छोटा और अर्थमें इससे बड़ा वाक्य मैंने दुनियाकी किसी भी भाषामें नहीं देखा। इतना व्यापक अर्थ इस वाक्यमें है कि सारा ब्रह्मांड भी उसमें नहीं समा पाता। हम तो दुर्बल हैं, पामर हैं, परन्तु ऋषि हमें समझाता है कि 'तू शव नहीं, शिव है। देह ऊपरका छिलका है। उसे निकालकर फेंक दो तो अंदरका अमृत दीख पड़ेगा।' कुछ फलोंके ऊपरी छिलके आकर्षक होते हैं और कुछके नहीं होते। ऊपरके छिलके आकर्षक हों या न हों, ऋषि कहता है कि अंदरकी आत्मा अमृत है, मधुर है। किसीका बाहरका आकार, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि खराब हो तो भी यदि उसकी आत्मा जागरित हो जाय, तो ऊपरका छिलका फेंककर, सहज ही वह अमृतमय बन सकता है।

'तत्त्वमसि' वाक्यने मुझे बल दिया है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं कमजोर हूँ। अपनेसे कमजोर आदमी मैंने अभीतक दूसरा नहीं देखा। बहुत लोगोंमें बहुत-सी शक्तियाँ देखता हूँ। उन सबकी मुझमें कमी है। परन्तु मुझमें एक शक्ति है और वह शक्ति मेरी नहीं है, वह हर हृदयमें है और वह आत्माकी शक्ति है। उस शक्तिने मुझे जगाया है। उसके परिणामस्वरूप छोटे-छोटे लोग भी बड़े संकल्प करते हैं। हम संकल्प पूरा करेंगे तो देखेंगे कि ये ऊपरके छिलके फेंक दिये जायँगे और अन्दरका स्वरूप प्रकट होगा। जब मनुष्य अपनेको छोटा मानता है तब उसका सारा विचार सीमित बन जाता है, उसका मन छोटा बनता है। परन्तु जब वह अपनेको विशाल मानता है तब विशाल बन जाता है। उपनिषदोंमें ऋषि कहता है कि तू ब्रह्म है। तू इंद्रिय, शरीर, मन, बुद्धि नहीं है। तू ब्रह्म है, शुद्ध, पावन, मंगल, ज्ञानमय है।' जहाँ ऋषि ऐसा कहता है, वहाँ मैं फौरन वैसा हो जाता हूँ।

२९-३-'५३ —बेरमो (हजारीबाग)

३-५-'५३ —गया

: ६४ :

ठंढ, गर्मी और बारिशको सहन करनेवाला ही सच्चा भक्त होता है। भगवान्के भक्त हर हालतमें काम करते हैं। जो कहता है कि मैं ठंढमें ठिठुर रहा हूँ, इसलिए भक्ति नहीं कर सकता, गर्मीकी तकलीफ हो रही है, इसलिए भक्ति नहीं कर सकता, वह भक्त नहीं है। मॅजिनीने कहा है कि 'ये लोग क्रान्तिका नाम लेते हैं, परन्तु कहते हैं कि गर्मीमें काम नहीं करेंगे, क्योंकि तकलीफ होती है। फिर कहते हैं कि इस साल बारिश ज्यादा हुई है, इसलिए बारिशमें काम नहीं करेंगे। फिर उसके बाद कहते हैं कि अब ठंढ ज्यादा है, इसलिए काम नहीं करेंगे, क्योंकि ठंढमें दिमाग ठंढा पड़ जाता है। लेकिन जो काम करनेवाले होते हैं, उनको हर ऋतु अनुकूल होती है, उनके लिए बाधक ऋतु कोई नहीं है। सामवेदमें ऐसा ही वर्णन है:

'वसंत इन्नु रंत्यो। ग्रीष्म इन्नु रंत्यः।
वर्षाण्यनु शरदो हेमंतः शिशिर इन्नुरंत्यः॥'

—'सारी ऋतुएँ अनुकूल हैं', ऐसा कहनेवाले को भक्त समझना चाहिए। मेरे लिए कोई ऋतु प्रतिकूल नहीं हो सकती। मुझे ऋतुके अनुकूल बनना होगा। .. दिलमें आग हो तो हर ऋतुमें काम होगा।

३-५-'५३　　—गया

: ६५ :

विचार भी एक शक्ति है। हम तो समझते हैं कि विचार-शक्तिकी बराबरी करनेवाली दुनियामें दूसरी कोई शक्ति नहीं है। आज मुझसे एक सवाल पूछा गया कि 'इधर तो आप विचार-प्रचार करते चले जा रहे हैं, सद्-विचारका प्रचार करते चले जा रहे हैं, और उधर अणुबमकी तैयारी है और उसके भी आगे उद्जन बम आनेवाला है, तो आपका यह विचार और उपदेश उसके सामने कहाँतक टिक सकता है?' जब ऐसा सवाल उठाया जाता है तब तो हम सोचते हैं कि अणुबममें जो शक्ति आयी है वह विचारसे ही आयी है। वह सद्विचार हो या न हो, परन्तु एक

विचार जरूर है। विचारसे ही मनुष्य प्रेरित हुआ है और उसीसे दुनियाको वशमें करनेके लिए उसने सारा शस्त्रास्त्र-संभार-इकट्ठा किया है। परन्तु वे सारे अस्त्र-शस्त्र स्वयमेव, खुद उठकर, कोई काम नहीं कर सकते। उनको बनानेवालेने भी विचारका ही आश्रय लिया था। उनकी कल्पना करनेवालेके मनमें भी एक विचार आया था और उनका उपयोग करने-वाला भी एक विचारवान् मनुष्य ही होता है। इस तरह उसके आदि, अंत और मध्य—तीनोंमें विचार ही विचार है, ऐसा दीखता है। उसका बाह्य रूप अणुबम भी हो सकता है और दान-पत्र भी। दान-पत्र एक कागज नहीं है और न अणु-बम ही दुनियाका एक मसाला है। दोनोंके पीछे विचारकी प्रेरणा है।

मुझे तो अणु-बमकी शक्ति ही बता रही है कि विचारमें क्या ताकत होती है। जो सद्विचार होता है वह टिकता है और असद्विचार एक क्षणके लिए दर्शन तो देता है, लेकिन दूसरे ही क्षण उसका लय हो जाता है। एक शाश्वत विचार है और दूसरा अशाश्वत। कौन-सा विचार-शाश्वत है और कौन-सा अशाश्वत, इसका निर्णय और सत्य-असत्य विचारका निर्णय मनुष्य हमेशा ठीक नहीं कर पाता। इसीलिए कोई भी विचार वह झटसे ग्रहण कर लेता है। लेकिन जहाँ उसने असद्-विचार ग्रहण किया वहाँ वह उसके पीछे नाना कर्म करता है। वह नाना यंत्र, तंत्र, मंत्र, अनेकविध योजना-कल्पना खड़ी कर लेता है। परन्तु जब वह पहचान लेता है कि यह विचार गलत था, तब वह सारा तंत्र-मंत्र, सारी योजना-कल्पना, एक क्षणमें खत्म हो जाती है। मनुष्य उसे सहन नहीं कर सकता, सारी रचनाको तोड़-फोड़ डालता है। तोड़नेमें उसे जरा भी देर नहीं लगती।

जहाँ वह सद्विचार जान जाता है, वहाँ असद्विचार तोड़ देनेमें उसे देर नहीं लगती। जहाँ ठीक दर्शन नहीं होता—यह ज्ञान नहीं होता कि सद्विचार क्या है, वहाँ मनष्य-समाज गलत रास्तेपर जा सकता है। परन्तु हम तो उसे प्रयोग कहते हैं। जैसे ज्ञान-विज्ञानके प्रयोग होते हैं, वैसे ही समाज-शास्त्रके भी प्रयोग अनादिकालसे होते आ रहे हैं।

एक विचारके असद्‌विचार साबित हो जानेपर मानव उसको छोड़ हमेशा नया विचार ग्रहण करता गया। समाज-शास्त्र, अध्यात्म-शास्त्र, राज्य-शास्त्र—सबमें यही हुआ है। जीवनके अंग-उपांगोंमें ऐसा ही होता है। एक नया विचार आता है—पहलेके विचारको तोड़कर दूसरा विचार आता है, लेकिन जब उसमें भी दोष दीखने लगता है तब उसके संशोधनके लिए तीसरा विचार आता है, जो अति परिशुद्ध होता और पुराने विचारको तोड़ता है। तब उसका राज चलता है। आजतक दुनियामें विचारोंके ही राज चले हैं। एक-एक विचार आता गया और टूटता गया, परन्तु सत्ता चली विचारकी ही। जहाँतक मनुष्यका ताल्लुक है, विचारकी ही प्रेरणा उसे मिली है और दुनियामें जो सारा तंत्र-मंत्र चला, वह उसीके कारण। दुनियामें राज्य विचारका ही चला।

भगवान्‌ने गीतामें एक रूपक बताया है—

'ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चाऽऽदिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥'

—रूपक पेड़का है। एक ऐसा पेड़ है जिसकी जड़ ऊपर है और शाखाएँ नीचे फैली हुई हैं। यह पेड़ मनुष्याकृतिका रूपक है। मनुष्यका मस्तिष्क ऊपर है, इसलिए वह ऊर्ध्वमूल है। वहींसे सारे विचार प्रकट होते हैं। और 'हस्तपादाः' ये जो शाखाएँ हैं जिनसे सारा काम होता है, वे नीचे फैली हुई हैं। इसलिए मनुष्यका वर्णन 'ऊर्ध्व-मूलः अधः-शाखः' किया गया है। वह पेड़ अव्यक्त है, याने टिकता है और अव्यय है, याने टिकता नहीं है। वह ऐसा अजीब वृक्ष है जो टिकता भी है और नहीं भी टिकता। इसकी जड़ ऊपर है—इसका मतलब यह है कि विचारका मूल ऊपर है। विचारके अनुसार अनेक शाखाएँ पल्लवित और पुष्पित होती हैं। वह पेड़ टिकता भी है और नहीं भी टिकता—

इसका मतलब यह है कि जब एक विचार सही मालूम होता है तो उसके अनुसार मनुष्य अपने जीवनकी रचना आरंभ करता है। तब जिधर देखो उधर वही विचार चलता है, उसीके अनुसार राज्य नि णि होता और जीवन बनता है। मकान, रास्ते आदि सारा सरंजाम उस विचारके अनुसार, उस विचारके पोषणके लिए मनुष्य बनाता है। उसीको सिविलीजेशन, संस्कृति या सभ्यता कहते हैं। यह सारी विचारकी कीमिया है। परन्तु जहाँ उस विचारमें असद्विचारका अंश मालूम होता है, वहाँ वह सारा ढाँचा बदलता है और उस दृष्टिसे यह वृक्ष टिकता नहीं है। जहाँ उस विचारमें कसर मालूम होती है, वहाँ वह विचार खत्म हो जाता और दूसरा आता है। परन्तु यह वृक्ष टिकता है। याने मनुष्य सारा कार्य उस विचारके अनुसार चलाता है। जहानमें जो विचार सही मालूम होता है उसके अनुसार सारा जीवन चलता है। विचार बदलता जाता है, परन्तु जीवन चलता है विचारके ही अनुसार। याने विचार-शासन स्थिर है। किसी एक विचारका शासन स्थिर नहीं हो सकता, क्योंकि विचारके झगड़े नित्य-निरंतर चलते रहते हैं। समाज-शास्त्रमें इन झगड़ोंको 'संघर्ष' कहा जाता है, परन्तु अध्यात्मशास्त्रमें इसे विचार-मंथन, विचार-शोधन या संशोधन कहते हैं। नाम कुछ भी दें, उसका मूल स्वरूप तो विचारमें ही होता है।

इसलिए विचारक और चिंतक, जिन्होंने दुनियाकी असलियतको पहचान लिया है, उसके असली मूल स्रोतको पहचान लिया है, विचारको हाथसे नहीं जाने देते, उसका निरंतर प्रचार करते रहते हैं। एक बार समझानेसे किसीकी समझमें विचार नहीं आता तो सब्र रखते हैं और दुबारा समझाते हैं। दूसरी युक्तियोंसे काम लेते हैं। जैसे शिक्षक विद्यार्थीको समझाते समय एक पद्धतिसे उसकी समझमें न आये तो 'विचार समझानेका मौका मिला है'—यह मानकर उत्साहित होता और बार-बार समझाता है, उसी तरह समाजको भी हम निरन्तर विचार समझाते हैं। जब उसकी समझमें यह विचार आ जायगा तब सारा समाज खुद-ब-खुद अपना ढाँचा बदलेगा। एक बार विचार समझमें आ जाय तो जिन हाथोंने ये सारे शस्त्रास्त्र निर्माण किये हैं, वे ही हाथ उन्हें खत्म भी कर देंगे—जिन हाथोंने यह सारा

मायाका संसार निर्माण किया है, वे ही हाथ उसका संहार कर देंगे। इसलिए विचारकी सत्ता चलती है। जो विचारमें श्रद्धा रखते हैं, वे जानते हैं कि यह सारा मृग-जल है। सूर्यकी किरणोंसे मृग-जल लहरें मारता है, लेकिन चन्द्रमाका प्रकाश फैलते ही मालूम हो जाता है कि यह सारा मृग-जल था।

मैं अपनी आँखोंके सामने देख रहा हूँ और लोग मुझ सुना रहे हैं कि तुम्हारी तूतीकी आवाज कौन सुननेवाला है, जब कि दुनिया चारों ओर 'शस्त्र बढ़ाओ' कह रही है—सब कहते हैं कि देशकी रक्षाके लिए शस्त्र बढ़ाना चाहिए और हरएक देश अपनी आमदनीका बहुत-सा हिस्सा राष्ट्रसंरक्षणके नामपर पशुशक्तिमें खर्च कर रहा है, तब आपका क्या चलेगा? फिर भी हम कहते हैं कि आपके पास चाहे जितने शस्त्र हों, पर हम भी अनन्त शस्त्रधारी हैं। आपके पास तो इने-गिने शस्त्र हैं, परन्तु हमारे पास अनन्त शस्त्र हैं। विचारके जो अनन्त पहलू हैं, उनका पता ही नहीं चलता। परन्तु जहाँ विचाररूपी सूर्यनारायण अपने अनन्त पहलुओंसे—किरणोंसे—प्रकाशित होता है, वहाँ अन्धकार टिक नहीं सकता। इसलिए हम श्रद्धासे दो सालसे वही राम-नाम लेते चले जा रहे हैं। मुझे विश्वास था कि विचार-बीज बोया जा रहा है, उसका मजबूत वृक्ष होगा। मैं यह देख रहा था और मेरी आपसे प्रार्थना है कि आपकी विचारकी श्रद्धा कभी ढीली नहीं होनी चाहिए। वह हमेशा मजबूत रहनी चाहिए।

२-५-'५३ —गया

: ६६ :

हमें दुःख इसलिए मिला है कि दूसरोंके दुःखके प्रति हमारे मनमें सहानुभूति पैदा हो सके—करुणा निर्माण हो सके। यह परमेश्वरकी कृपा है कि वह हरएकको दुःख देता है। परमेश्वरने दो आँखें इसीलिए दी हैं कि एक आँखसे गरीबोंके लिए रोयें और दूसरीसे अपने दुःखके लिए। तो फिर दूसरे भी एक आँखसे हमारे लिए रोयेंगे। इससे रोना ही खत्म

हो जायगा और सब हँसने लगेंगे। गीता कहती है कि एक दूसरेपर प्यार करते हुए चलते चलो:

'देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥'

हम श्रद्धासे गरीबोंकी मदद करें। शर्तीली मदद नहीं, बल्कि फलकी आशा छोड़कर काम करें तो फल मिलेगा। फलकी आशा रखकर काम करनेसे छोटा ही फल मिलता है, परन्तु फलकी आशा छोड़कर काम करेंगे तो अनंत फल मिलेगा।

४-५-'५३ —चेरकी (गया)

: ६७ :

मैंने सुना है कि कुछ कार्यकर्ता जमीन इकट्ठा करके रख लेते हैं और जब उनका नेता आता है तो उसे देते हैं, तबतक राह देखते रहते हैं जिससे कि उस नेताको यश मिले। यह स्वाभाविक है। परंतु धर्मकार्यमें तीव्रता, त्वरितता होनी चाहिए। इसलिए जो भी पहले आये, उसे दान दे देना चाहिए। शास्त्रोंने कहा है:

'गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।'

—'मृत्युने अपनी चोटी पकड़ ली है, यह याद रखते हुए धर्मकार्य करो।' मैं अभी मर रहा हूँ, यह याद रखते हुए धर्मका आचरण करना चाहिए। भूदान-यज्ञ धर्मकार्य है, इसलिए हमारा नेता पंद्रह दिन बाद आनेवाला है तो उसको देनेके लिए जमीन रखना धर्मकी दृष्टिसे ठीक नहीं है।

१०-५-'५३ —कोठी (गया)

: ६८ :

हमारे किसान अपढ़ हैं, किन्तु अशिक्षित अथवा मूर्ख नहीं हैं। देहातके लोग समझदार होते हैं। हजारों बरसोंका अनुभव उनके साथ है। हजारों बरसोंसे वे खेती करते आये हैं। पुराने औजारोंसे अपनी जीविका-संपादन करते हैं।

उनका जीविका-संपादन करना एक प्रकारकी लड़ाई ही है। वे कुदरतके साथ लड़ते हैं। वे बहादुर, अनुभवी और समझदार हैं; इसीलिए समाजकी हालतको समझते हैं। उन्हें अगर थोड़ा-सा समझा दिया जाय तो 'भूमिदान' के लिए राजी हो जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि गाँवके लोग भोले होते हैं, सलिए भू-दान देते हैं। पर हम इससे उल्टा समझते हैं। हम मानते हैं कि गाँवके लोग लंबा सोचनेवाले हैं—दूरदर्शी हैं, इसीलिए दान देते हैं।

'दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वम्। परं पश्यत माऽपरम्।'

—'दूरका देखो, नजदीकका नहीं।' हमारा किसान न सिर्फ दस-बीस सालका देखता है, बल्कि परलोकका भी देखता है। इतनी दूरदृष्टि उसमें है। यह भोलापन नहीं है। अपढ़ होते हुए भी हजारों बरसोंका अनुभव उसके खूनमें बहता है, इसीलिए वह दान देता है।

१६-५-'५३ —किशनपुर (पलामू)

: ६९ :

हमें यह दिखाई दे रहा है कि लोग भूमिदान देनेके लिए उत्सुक हैं। हमारे कार्यकर्ता जहाँ कहीं पहुँचते हैं, विमुख नहीं लौटते। इसका कारण यह है कि जो देना है वह जरूरी है, ऐसा लोग मानते हैं। भूमिका जो बँटवारा अबतक हुआ है, वह गलत है, उससे सारे समाजकी संपत्तिका मूल स्रोत सूख रहा है और उससे हिंदुस्तान खतरेमें है—यह हर व्यक्ति समझता है। इसे समझानेके लिए कोई बड़ा इतिहास नहीं बताना पड़ता। सारे लोग देनेके लिए राजी हैं। और हमने माँगा भी कितना? 'धम्म-पद' में कहा गया है :

'यथापि भमरो, पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयम्।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनिचरे॥'

—'जिस तरह भ्रमर फूलोंको तकलीफ दिये बगैर उसका रस चूस लेता है उसी तरह भिक्षु गाँव-गाँव घूमे।' हमारी पद्धति भी वैसी ही है। हमने सिर्फ छठा हिस्सा ही तो माँगा है। साधारण गृहस्थको उसका कोई बोझ

नहीं महसूस होता। सब लोग आसानीसे समझ लेते हैं कि हमारे घरमें छठा भाई है, जो अव्यक्त है। उस छठेके लिए, दरिद्रनारायणके लिए, उसका हिस्सा देना चाहिए, यह तो हमारी प्राचीन परंपरा है। यह कोई बाहरसे लायी हुई चीज नहीं है। हमारे संतोंने सिखाया है कि खिलाकर खाना चाहिए, पिलाकर पीना चाहिए, और सुलाकर सोना चाहिए।

जैसे मधुमक्खी बिना तकलीफ दिये पुष्पोंमेंसे रस लेती है, वैसे ही हम बिना तकलीफ दिये श्रीमानोंसे जमीन लेना चाहते हैं। और अब तो विज्ञानने यह साबित कर दिया है कि मधुमक्खी पुष्पोंमेंसे रस लेकर फूलोंपर उपकार ही करती है। जैसे वह रस लेती है वैसे ही अपना रस देती भी है। वैसे ही हम धनिकोंसे छठा हिस्सा लेते हैं तो बदलेमें उन्हें बहुत इज्जत भी देते हैं।

१६-११-'५२ —शेरमारी बाजार (भागलपुर)

१६-५-'५३ —किशनपुर (पलामू)

: ७० :

भूदान-यज्ञ एक धर्मकार्य है और धर्मकार्यमें जो शरीक होना चाहते हैं उन्हें चित्तशुद्धिपूर्वक शरीक होना चाहिए। इस काममें किसी भी प्रकारके पक्षभेदकी गुंजाइश नहीं है। इस यज्ञके काममें कांग्रेसके बड़े-बड़े नेताओंकी सहानुभूति है और वे मदद देते हैं। प्रजासमाजवादी पक्षके बड़े नता इसमें लगातार जुटे हुए हैं और दूसरे भी अनेक लोगोंका सहयोग प्राप्त हुआ है और वह इसीलिए कि यह एक निर्विकार कार्य है। धर्मकार्य निर्विकार ही हो सकता है। शास्त्रोंमें कहा गया है :

'सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे।'

—'धर्मकार्य 'सर्वेषाम् अविरोधेन' होता है। धर्मकार्यका किसीके साथ विरोध नहीं होता।' हाँ, उसका अधर्मके साथ विरोध होता है, घोर विरोध होता है और वह मिट ही नहीं सकता। राम-रावण-युद्ध कैसा हुआ, इस प्रश्नका जवाब दिया गया है :

'गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः ।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥'

—'राम-रावण-युद्ध राम-रावणके युद्धके समान ही हुआ।' इसका मतलब यह है कि राम-रावण-युद्ध उसीके जैसा हो सकता है, उसके लिए दूसरी मिसाल नहीं है। उस युद्धमें किसी भी तरहके बीच-बचावकी गुंजाइश नहीं। धर्मका अधर्मके साथ घोर विरोध होता है। ...... परन्तु बाकी सारे काम करनेवाले, जो अधमके साथ नहीं हैं, भूदान-यज्ञमें सहयोग दे सकते हैं।

२८-५-'५३ —रंका (पलामू)

: ७१ :

'शतहस्त समाहर। सहस्रहस्त संकिर।'

—'सौ हाथोंसे कमाओ और हजार हाथोंसे दो।' समाज-सेवाका यही न्याय है। जितना लेना है, उससे दसगुना देना है। इसी न्यायसे समाजको दो। उसका हिसाब मत पूछो। उससे आपको अनमोल चीज मिलेगी और वह है चित्तका समाधान। गजनीके मुहम्मद और बड़े-बड़े सम्राटोंको भी यह समाधान नहीं मिल पाया था।

परमेश्वर भी हमें इसी तरह देता है। वह बनिया नहीं है, जो हिसाब करके दे। परमेश्वरकी देनेकी तरकीब किसानसे पूछो। किसान कहेगा कि 'मैं एक बीज बोता हूँ तो परमेश्वर मुझे उसका सौगुना देता है।' समाजरूपी परमेश्वर भी इसी तरह एकका सौ बनाता है। इसीलिए हमें भी इसी न्यायसे समाजको देना है। फिर हम भर-भरके पायेंगे।

५-६-'५३ —छिपादोहर (पलामू)

: ७२ :

अहिंसा आत्माकी शक्ति है। **'नायं हन्ति न हन्यते'**—आत्मा न मारती है, न मारी जाती है। यही उसकी शक्ति है। हिंसा दैहिक शक्ति है। देह मारी जाती है। देहसे आत्माकी शक्ति बड़ी है, परन्तु हम देह-बुद्धि

से देखते हैं। जिस किसीकी ओर हम देखते हैं, उसे देह ही मानते हैं। इसलिए यदि देहको छोड़कर मनुष्यको देखेंगे, देहका आवरण छोड़कर अंदर-की वस्तुकी तरफ, जो देहके परे है, देखेंगे तो हमारा सारा व्यवहार—बोलने-चालने और सोचनेका ढंग—ही बदल जायगा। सारी दुनिया दूसरे ही रंगसे रँगी हुई दिखाई पड़ेगी। ऐसा जिसके साथ होगा, उस मनुष्यके संपर्कमें जो भी आयेगा, उसपर यही रंग चढ़ेगा। उसपर दूसरेका रंग नहीं चढ़ेगा। यह बात हमारे ध्यानमें आ जाय तो हम जो अहिंसामें विश्वास करते हैं, उसका सामूहिक प्रयोग करना चाहते हैं, उनकी मुख्य चिंता यह होगी कि अपने निजी जीवनमें अहिंसाको कहाँतक उतार सके हैं, उसकी उपासना कहाँतक और कितनी एकाग्रतासे करते हैं। अहिंसा-शक्तिको प्रकट करनेके लिए हमें अपना अंतःशोधन, अंतःशुद्धि और तपस्या करनी चाहिए।

८-६-'५३ —मारोमार (पलामू)

: ७३ :

गाँववालोंको अपने पैरोंपर खड़ा होना चाहिए। यही सच्चा स्वराज्य है। गाँवमें ग्रामशक्ति है। उसीसे वहाँ पैसेका निर्माण होता है। गाँवकी ज़रूरतकी सारी चीजें गाँवमें पैदा हो सकती हैं। गाँवमें कपड़ा बन सकता है, मकान बन सकते हैं। जो थोड़ी-सी मदद बाहरसे चाहिए, वह भी मिल सकती है। इस तरह बहुत सारा काम गाँवकी अपनी शक्तिसे होना चाहिए। हम खाते हैं तो खुद अपने हाथोंसे खाते हैं; दूसरोंके हाथोंसे नहीं खा सकते। खाया हुआ अपनी ही पचनेन्द्रियोंसे पचाते हैं, हमारा भोजन दूसरा कोई नहीं पचा सकता। गाँवकी खुदकी ताकत जब बढ़ेगी, तभी गाँवमें स्वराज्य आयेगा। नहीं तो हर बातके लिए सरकारकी तरफ देखना शुरू करें तो पुराने राजाओंके जमानेमें जैसा होता था, वैसा ही होगा। उस समय राजा अच्छा निकला तो प्रजाकी हालत ठीक रहती थी। राजापर ही सारा दारोमदार था। इस गुलामीकी हालतको खतम करनेके लिए ही तो हरएकको वोटका हक दिया गया है। लेकिन पेटीमें वोट डालनेसे ही स्वराज्य नहीं हो जाता। जबतक हम अपने परिश्रम-

से अपने गाँवको सजाते नहीं, तबतक सिर्फ वोट देनेसे हम जैसेके तैसे रह जानेवाले हैं। गीता कहती है:

'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥'

—'अपना उद्धार खुद करना होता है।' जो मरेगा वही स्वर्ग देखेगा। स्वर्ग देखना चाहते हो तो मरनेकी तैयारी करो। गाँव सुखी हो, गाँव आजाद हो, यह चाहते हो तो अपनी ताकतसे काम करो।

१२-६-'५३ —बराही (पलामू)

: ७४ :

नैतिक दबाव और हृदय-परिवर्तनमें फर्क करना ही गलत है। बिहार-में अबतक चालीस हजार लोगोंने दान दिया है। जमीन तो ज्यादा नहीं मिली, क्योंकि देनेवालोंमें बहुत से गरीब थे। परन्तु उसका प्रभाव अब बड़े लोगोंपर हो रहा है। उनके दिल अब पसीज रहे हैं। एक प्रेरणा उनमें हो रही है जिसको वे टाल नहीं सकते। राँची जिलेमें तो राजा साहब हमारे एजेण्ट बनकर घूम रहे हैं। क्या यह हृदय-परिवर्तन नहीं है? परंतु हृदय-परिवर्तन हिसाबसे नहीं होता, एक मनुष्यका हृदय-परिवर्तन हुआ तो आसपासके पचासों लोगोंपर उसका असर हो जाता है। यहाँपर एक दाना भगत पैदा हुए हैं, जिन्होंने हजारोंको भक्त बना दिया। इसीको मनुष्यके विचारका दबाव कहते हैं, इसीको लोक-लज्जा कहते हैं। यह हिंसा-शक्तिसे सर्वथा भिन्न है। वेदमें कहा है:

'अवद्य भिया बहवः प्रणन्ति।'

—'जो दान दिया जाता है, वह लोकलज्जासे दिया जाता है।' इसीलिए लोकलज्जा एक बड़ी बात है। सारा समाज क्या कहता है—यह देखकर कुछ करना हृदय-परिवर्तन ही है। लेकिन हृदय-परिवर्तनकी डिग्री नापना ठीक नहीं है।

जून, १९५३ —सिसई (राँची)

: ७५ :

'अन्ने समस्य यदसन् मनीषाः ।'

—'हमें ध्यानमें रखना चाहिए कि हम अन्नका एक कौर भी खाते हैं तो उसके साथ सबकी वासना चिपकी रहती है ।' इसीलिए सबको खिलाकर खाओगे तो वह हजम होगा, अन्यथा नहीं । अक्सर श्रीमानोंको खाना हजम नहीं होता, वे बीमार रहते हैं, क्योंकि वे जो खाते हैं, उसपर सबकी भावना चिपकी रहती है। अगर वे सबको खिलाकर खाया करें तो बीमार ही न पड़ें ।

१४-६-'५३ —नेतरहाट (राँची)

: ७६ :

'अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते । सं भ्रातरो वावृधुः ।'

वेदमें कहा गया है कि 'हम इस तरह रहें कि भाइयोंमें भी कोई छोटा-बड़ा न रहे।' हम तो यहाँतक मानते हैं कि समाजमें भाइयोंके समान समता हो, चाहे छोटे-बड़े भाई रहें; परन्तु वेदको तो इतना भी बर्दाश्त नहीं है। आखिर यह देह हवा, मिट्टी, पानी, आकाश आदि पंचमहाभूतोंसे ही तो बनी हुई है। हमारा बाह्यरूप (शरीर) भी एक-सा ही है और अन्दरकी ज्योति (नूर) भी वही है। जब हमारे शरीर भी एक-से हैं और अन्दर भी एक ही आत्मा है तो फिर ये सारे भेद क्यों ? हरएकको भूखके जितना मिलना चाहिए और हरएकको जितना हो सके दुनियाकी सेवा करनी चाहिए। किसीको भी कम-ज्यादा क्यों मिलना चाहिए ? अफसरोंको बुढ़ापेमें पेन्शन दी जाती है तो फिर मजदूरोंको क्यों नहीं दी जाती ? बढ़ई तीस सालतक काम करता है, फिर भी उसे पेन्शन नहीं दी जाती। ऑफिसमें काम करनवालेको बीमारीके समय छुट्टी मिलती है, तो फिर बढ़ई या चमारको क्यों नहीं मिलती ? जो इन्तजाम करना है, सबके लिए करना है, सबको बराबर करना है।

लेकिन आज तो दुनियामें दर्जे बने हुए हैं। वेतन कम-ज्यादा मिलता है। यह सब देखकर हमें शर्म आती है कि भगवान्‌ने हम सबको समान पदा किया है और मरते समय भी सबकी मिट्टी ही बननेवाली है, तो फिर चन्द दिनोंके लिए यह छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, ब्राह्मण-हरिजन आदिके भेद—यह सब क्या हैं ? क्या यह हमें शोभा देता है ? आखिर दुनियामें बड़ा तो एक परमेश्वर ही है। हम, जो मरनेवाले हैं, वे क्या बड़े हैं ?...... हम इस भेदको मिटाना चाहते हैं। हम समता चाहते हैं। समता याने बराबरीका नाता। सब भाई-भाई बनें, मित्र बनें—यही हम चाहते हैं।

१५-६-'५३ —सालम नवाटोली (राँची)

: ७७ :

'अत्युत्कटैः पापपुण्यैः इहैव फलमश्नुते।'

—[हमारे हाथमें भगवान्‌ने वह ताकत दी है, जिससे हम चाहें तो यहाँ-पर स्वर्ग ला सकते हैं और नरक भी ला सकते हैं। गायको घास खाना लाजिमी है, वह गोश्त खा ही नहीं सकती। याने वह पुण्य ही कर सकती है, पाप नहीं। शेरको गोश्त खाना ही लाजिमी है, वह चाहे तो भी घास नहीं खा सकता। याने उसे पाप करना लाजिमी है, वह पुण्य नहीं कर सकता। लेकिन मनुष्य पाप और पुण्य दोनों कर सकता है। वह आजाद है और पशु आजाद नहीं। मनुष्य जानवरमे भी नीचे उतर सकता है और परमेश्वरके करीब भी पहुँच सकता है। भगवान्‌ने मनुष्यको यह ताकत दी है कि वह चाहे जैसा बने।]

—'हम जो पाप-पुण्य करते हैं उसका फल मरनेके बाद मिलता है। परंतु अत्युत्कट पुण्य या पाप करें तो यहींपर फल मिलता है।' यह बात ठीकसे समझ लीजिये कि भगवान्‌ने आपके हाथोंमें कितनी सत्ता दी है। आपके हाथमें भगवान् हैं, आप उसकी मददसे चाहे जो बन सकते हैं।

इसलिए गाँववालोंको समझना चाहिए कि वे अपनी ही ताकतसे गाँवमें स्वर्ग ला सकते हैं, किसी बाहरवालेकी मददसे नहीं।

१९-६-'५३ —टोटो (राँची)

: ७८ :

'दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम् ।'

हमारे ऋषियोंने गाया है कि 'भारतमें जन्म पाना दुर्लभ है और उसमें भी मनुष्य-जन्म तो और भी दुर्लभ है।' हमारे इस देशके प्रति उनके मनमें कितनी पवित्र भावना थी! 'बहुत पुण्य करनेपर ही भारतभूमिमें जन्म होता है'—इसका क्या अर्थ है? आप जो समझे हैं उससे अधिक इसके मानी हैं। भारतभूमिमें जन्म पाना दुर्लभ है और मनुष्यका जन्म पाना तो और भी दुर्लभ। याने इस भूमिमें कीड़े-मकोड़ेका जन्म पाना भी दुर्लभ है। यह ऐसी पुण्यभूमि है कि यहाँकी धूलिमें जन्तुका जन्म लेना भी भाग्यकी बात है, क्योंकि सत्पुरुषोंके पाँव इस भूमिपर पड़े हैं।

ऐसा वाक्य मैंने दुनियाकी दूसरी किसी भी भाषामें नहीं पढ़ा। हरएक देशमें मातृभूमिके लिए प्रेम होता है। मातृभूमिके प्यारका ठेका हिंदुस्तानने ही नहीं लिया है। परन्तु 'इस भूमिमें जन्तुका जन्म भी पाना दुर्लभ है' ऐसा हमने और कहीं भी नहीं पढ़ा।

भाइयो, ऐसी पुण्यभूमिमें जन्म पाया है तो वैसे ही पुण्यके काम किया करो। छोड़ो ये मालकियतकी बातें। हमारा घर, हमारा परिवार, हमारी संपत्ति, हमारी जमीन—ये सब चीजें हमारी नहीं हैं। ये सबकी सेवाके लिए हमारे पास आयी हैं। हम तो सँभालनेवाले हैं, ट्रस्टी हैं—ऐसी भावना रखो। जहाँ माँगनेवाला पात्र आयेगा वहाँ फौरन उसे दे देनेके लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

२२-६-'५३ —पालकोट (राँची)

: ७९ :

गाँववालोंको अपना भार दूसरोंपर नहीं लादना चाहिए, खुद ही उठाना चाहिए। यही स्वावलंबन है। यहाँपर जो सब लोग बैठे हैं वे सब कपड़ा पहने हैं, परन्तु यह सारा कपड़ा बाहरसे आया हुआ है। आप बाहरसे कपड़ा क्यों लाते हैं ? क्या आपके पास समय नहीं है ? गांधीजी प्रतिदिन कातते थे। परमेश्वरकी भी क्या योजना है कि आखिरी दिन भी उनका कातना हो चुका था। कई काम होते हुए भी वे प्रतिदिन कातते थे, क्योंकि वे हिंदुस्तानके लोगोंको समझाना चाहते थे कि अपना कपड़ा खद बनाओ। बच्चे बोलनेसे नहीं, कृतिसे समझते हैं। इसलिए गांधीजी, जो हम सबके पिता थे, हमें अपनी कृतिसे शिक्षा देते थे।

कपड़ेके बिना हमारा एक दिन भी नहीं चलता। कई लोग कई उपवास रख सकते हैं, परंतु एक क्षणके लिए भी नंगे नहीं रह सकते। वेदोंमें कहा गया है :

'युवा सुवासाः परिवीत आगात्,
स उ श्रेयान् भवति जायमानः।'

—'बच्चा जब वस्त्र पहन लेता है तब सभ्य बन जाता है, उसे संस्कार मिलते हैं। कपड़ा सभ्यताकी निशानी है।' अक्सर कहा जाता है कि अन्न पहली वस्तु है और कपड़ा दूसरी। लेकिन बात ऐसी नहीं है, कपड़ा पहली वस्तु है। मैं चार दिन भूखा रह सकता हूँ, पर मुझे कपड़ा चाहिए ही—कमसे कम लँगोटी तो चाहिए ही।

जनता तो कामधेनु है। उससे जो माँगो वह मिल सकता है। हमें लाखों एकड़ जमीन मिली है। पहले कौन विश्वास करता था कि इस तरह जमीन मिलेगी ? गांधीजीने लोगोंको खादीकी बात समझायी और लोगोंने सुनी। सारे लोग कात सकते हैं। सूत कातना इतना सरल है कि बाहर बारिश होते रहनेपर भी घरमें बैठे-बैठे कात सकते हैं। कपड़ेकी जरूरत सबको है। अक्सर किसानपर या पैदा करनेवालेपर टैक्स लगाया जाता है।

परन्तु जो कपड़ा पहनता है उसपर टैक्स लग जाता है, यह पूरा टैक्स है। इसलिए हम चाहते हैं कि गाँववाले बाहरसे कपड़ा खरीदकर गाँवका पैसा बाहर न जाने दें, बल्कि अपने हाथोंसे कपड़ा बनायें। जितनी चीजें गाँवमें बना सकते हों, बनायें।

२२-६-'५३ —पालकोट (राँची)

: ८० :

'अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥'

—'जो अविद्याके पीछे लगे हुए हैं वे अन्धकारमें पैठते हैं। जो विद्यामें मग्न हैं वे और भी (घोर) अंधकारमें पैठते हैं।'

ईशावास्योपनिषद्के अनुसार विद्या और अविद्या दोनों शक्तियाँ हैं। कुछ चीजोंको जानना चाहिए और कुछ चीजोंको नहीं जानना चाहिए। जिन चीजोंको जानना जरूरी है, उनको जानना चाहिए—इसे विद्या कहते हैं। जिन चीजोंको नहीं जानना चाहिए, उन चीजोंसे बचना चाहिए—इसे अविद्या कहते हैं। ऐसी चीजोंका अपने चित्तपर नाहक बोझ पड़ता है। मनुष्यकी कर्मशक्ति क्षीण हो जाती है। वह एक किस्मकी विद्या तो है, परंतु उसमें नाहक समय नहीं लगाना चाहिए। आसपासके लोगोंकी सेवा करनेके बजाय अगर कोई नाहक जर्मनभाषा सीखने लग जाय तो उसका उपयोग नहीं होगा। ऐसे कई विषय हैं, जिनका जीवनके साथ कोई संबंध नहीं है। उनमें हमें नहीं पड़ना चाहिए। ऐसी चीजोंका अज्ञान ही अच्छा। अज्ञानकी भी उपासना रहती है। आज कई तरहका निकम्मा ज्ञान हमारे कानोंमें तरह-तरहसे ठूँसा जाता है, जैसे रेडियो और सिनेमाके जरिये। ऐसी निकम्मी बातोंसे बचना पुरुषार्थका काम है। उन्हें भूलना बहुत बड़ा काम है। निकम्मे ज्ञानसे, जो नाहक हमारे कानोंमें ठूँसा जाता है, अलग रहना एक प्रकारकी साधना ही है। इसीलिए ज्ञान और अज्ञान—ये दोनों शक्तियाँ हैं,-दोनों कामकी चीजें हैं। आजतक हमें लगता था कि सिर्फ

ज्ञान ही कामकी चीज है, परन्तु ईशावास्योपनिषद् कहती है कि ज्ञान और अज्ञान दोनों कामकी चीजें हैं।

हिंदुस्तानका किसान केवल काम ही करता है। वह अज्ञानमें मग्न है। उसके पास रेडियो, सिनेमा, अखबार आदिके जरिये गलत खबरें नहीं पहुँचतीं, यह अच्छा है। परन्तु उसके पास तो पूर्ण अज्ञान है। वह अज्ञानकी ही उपासना करता है, इसलिए अंधकारमें पैठता है। दूसरा कोई शहरका आदमी सिर्फ ज्ञानमें ही पड़ा रहता है, काम नहीं करता, तो वह उससे भी अधिक घोर अंधकारमें पैठता है। क्योंकि किसान अज्ञान-की उपासना करते हुए भी कुछ तो काम करता ही है। परन्तु केवल ज्ञान-की उपासना करनेवाला शहरका मनुष्य दूसरोंके कन्धोंपर बैठता है, बोझ साबित होता है। इसलिए वह भारभूत, पापी बन जाता है। किसानका उपयोग सीमित है, परन्तु वह भारभूत नहीं है। उपनिषद्की यह एक विशेष बात है कि केवल ज्ञानकी उपासना करनेवाला केवल अज्ञानकी उपासना करनेवालेसे बदतर है। शहरवालोंको यह बात सीखनी चाहिए और निकम्मे ज्ञानसे बचना चाहिए। इसीलिए ज्ञान और अज्ञान दोनोंका योग करके समन्वय साधकर अपनी जीवनयात्रा चलानी चाहिए।

१-७-'५३ —राँची

: ८१ :

'कृषिमित् कृषस्व। वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।'

—'हमें किसानोंके नैतिक बलका संगठन करना है। आखिर किसान ही तो दुनियामें अन्न पैदा करते हैं, फिर भी वे दबे हुए-से हैं। क्योंकि उनकी नैतिक शक्ति जागरित नहीं हुई है। नैतिक जागृति जितनी उनमें हो सकती है उतनी और किसीमें नहीं। नीतिका अधिष्ठान खेती है। खेती सबसे उत्तम उद्योग है। खेती करनेवाला नीतिमान् और परमेश्वरका उपासक होता है, क्योंकि वह ब्रह्मदेवका काम करता है। इसीलिए वेदोंने आज्ञा दी है कि खेती करो, उसमें कम मिलेगा तो भी उसे बहुत मानो।

जैसे व्यापारमें ज्यादा पैसा मिलता है, वैसे खेतीमें नहीं मिलेगा; परन्तु खेतीमें जो पैसा मिलता है, उसे बहुत मानो। व्यापारका पैसा निकम्मा होता है। खेतीमें जो फसल पैदा होती है, वह बहुत है, चाहे वह ऐशो-आरामके लिए काफी न हो। खेतीमेंसे लक्ष्मी पैदा होती है और दूसरे उद्योगोंसे तो सिर्फ धन पैदा होता है, लक्ष्मी नहीं। धनपति कुबेर है तो लक्ष्मीपति भगवान् हैं। यह जो सारी सृष्टि दीखती है, यह जो वनश्री सस्यश्री है, यह जो तरकारी, अनाज और फल पैदा होते हैं, सृष्टिमें मनुष्यके प्रयत्नसे जो सारी सुंदरता निर्माण होती है, वह लक्ष्मी है।

लक्ष्मी प्रसन्न होकर किसानके पास जाती है। ऐसे किसानसे संपर्क रखनेका भूदान-यज्ञसे बेहतर दूसरा कोई तरीका नहीं है।

१-७-'५३ —राँची

: ८२ :

शास्त्रोंमें लिखा है कि '**साप्तपदीनसख्यम्**।' अर्थात् संतोंके साथ सात कदम चलनेपर उनसे सख्य हो जाता है। हम तो इस शहरमें सात कदम नहीं, सात दिन रहे हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमने परमेश्वरकी एक साथ सात प्रार्थनाएँ कीं। इसलिए आपमें और हममें गाढ़ मैत्री हो जाती है। इस हालतमें मनुष्य अपने हृदयकी खास चीज खोलकर रख देता है।

हमने भूदानका जो काम शुरू किया है, उसका सबसे बड़ा महत्त्व का हिस्सा हमारी यह सामूहिक प्रार्थना है। हम उसकी जितनी कीमत करते हैं उतनी न तो अपने व्याख्यानकी, न पैदल-यात्राकी और न लोगोंसे मिलनेकी। ईसा मसीहने कहा है कि 'अगर आप परमेश्वरकी सच्ची प्रार्थना करना चाहते हैं तो जिस किसीके साथ आपका झगड़ा, वैर, द्वेष या मनमुटाव हो उस शख्ससे पहले मिल लीजिये, उसका प्रेम हासिल कीजिये।' अगर आपने किसीके ऊपर गुस्सा किया हो तो प्रार्थनाके पहले उससे क्षमा माँग लीजिये। अपना दिल निर्विकार और पाक बनाकर प्रार्थना-में बैठिये। हम हर दिन प्रार्थना करते जाते हैं और हमारे दिलसे मनो-

मालिन्य, वैषम्य, मनमुटाव कम होते जा रहे हैं—ऐसा अनुभव हो तो समझना चाहिए कि प्रार्थना सफल हुई। एकसाथ भोजन करने, एक साथ खेलने और मिल-जुलकर काम करनेसे प्रेमभाव बढ़ता है। परन्तु प्रेम बढ़ानेकी शक्ति इन सबसे अधिक एकसाथ प्रार्थना करनेमें है। भगवान् के सामने 'वही सब कुछ है और हम कुछ भी नहीं हैं' यह सोचकर खाली हृदयसे—शून्य हृदयसे—हम प्रार्थनामें बैठें तो उस खाली हृदयमें वह आता और हमारे वैरभाव मिट जाते हैं। सहभोजन, सहकार्य आदिमें जो शक्ति है, उससे बहुत अधिक शक्ति एकसाथ बैठकर भगवान्का नाम लेनेमें है। इसीलिए तो गीतामें कहा गया है :

'नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये नहि ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥'

६-७-'५३ —राँची

: ८३ :

आप सब लोग काम करनेवाले हैं। किसने कितना काम किया, इसका पृथक्करण मत करो। अगर रामजी बंदरोंसे यह कहते कि 'तुमने क्या किया ? हमने ही तो सब काम किया' तो क्या होता ? परन्तु उन्होंने बंदरोंको यश दिया। रामने बंदरोंका यश गाया और बंदरोंने रामका—इसीलिए रामायण हुई। इसी तरह हम एक-दूसरेका यश गाते जायँगे तो सबका यश बढ़ता जायगा। समुद्रमें क्या पता चलता है कि किस नदीका कितना पानी आया। भूदानका काम भी समुद्रके जैसा है। किसने कितना काम किया, यह कहना तो बच्चोंका काम है। भर्तृहरिने लिखा है :

'परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम् ...... ।'

—'दूसरोंके गुणों और अपने दोषोंको बढ़ाकर बताना ही सज्जनताका लक्षण है। तभी गुणोंका विकास होता और दोष कम होते हैं। इसलिए आप भी दूसरेके कामोंका गौरव कीजिये और अपने कामको कम समझिये।

१०-७-'५३ —ओरमाँझी (राँची)

: ८४ :

भू-दानका काम शुद्ध धर्मका काम है, जो सब मानवोंको समान रूपसे लागू होता है। इसीलिए वह सबको प्रिय हो गया है। लेकिन यह काम बहुत त्याग माँगता है। जमीन देनेवालोंको तो थोड़ा-सा ही त्याग करना पड़ता है, क्योंकि वे समझ गये हैं कि अब जमीन देनी ही पड़ेगी। इसलिए मुझे उसकी कोई चिंता नहीं है।

मुझे मुख्य चिंता यह है कि इस धर्मविचारसे अपने दिलको ओतप्रोत—परिपूर्ण—करके इसके सामूहिक प्रचारके लिए कुछ लोग निकल पड़ें। इसलिए मेरी हमेशा यही कोशिश रहती है कि धर्म समझनेवाले व्यक्तियोंके संपर्कमें आऊँ। शंकराचार्यने लिखा है :

'गुणाधिकैर्हि गृहीतः अनुष्ठीयमानश्च धर्मः प्रचयं गमिष्यति।'

—'जब गुणवान् मनुष्य धर्मको ग्रहण करते हैं तब उनके जरिये धर्म जल्दी फैलता है।' भगवान्ने भी गुणवान् और पात्र समझकर अर्जुनको धर्मकी दीक्षा दी। इसलिए हमारी यात्रामें हमें कुछ गुणवान् मनुष्य मिलें तो हम समझते हैं कि हमारी यात्रा सफल होगी। ऐसे मनुष्योंसे हम व्यक्तिगत संपर्क रखना चाहते हैं। ऐसे लोगोंने हमारी दृष्टि ग्रहण की, जो कि उसके प्रचारमें समर्थ हैं, तो फिर आगे जनताके सामने विचार ले जाना आसान है। जनता बोलनेसे नहीं, आचरणसे समझती है। इसलिए करनेकी मुख्य बात तो यह है कि जहाँ मैंने धर्मविचारका संकल्प किया वहाँ धर्म क्या है, इसका चिन्तन-मनन करनेवाले और उसमेंसे जो विचार जँचें, उसपर फौरन अमल करनेवाले और उसके अनुसार अपना जीवन बदलनेवाले कार्यकर्ता चाहिए।

११-७'-५३ —चट्टपालु (राँची)

: ८५ :

आज समाजमें ऊँच-नीचके खयालमें दर्जे बने हुए हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि पुराने जमानेमें जो वर्ण थे, वे भी दर्जे थे। परन्तु जहाँतक मैंने

वर्णाश्रम धर्मको समझा है---हिन्दू धर्मका अध्ययन किया है, मैं नहीं मानता कि वर्ण दर्जे थे। गीताने तो कहा है :

'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥'

--'हर कोई, चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र, अगर अपना काम सद्बुद्धिसे करता है तो उसे मोक्ष ही मिलेगा।' उसमें यह नहीं कहा है कि, शूद्र अपना काम अच्छी तरहसे करता है तो उसे अगला जन्म ब्राह्मणका मिलेगा और फिर मुक्ति मिलेगी; बल्कि यह कहा है कि शूद्रको इसी जन्ममें मोक्ष मिल सकता है यदि वह अपना काम प्रामाणिक भावसे और परमेश्वर-समर्पणकी बुद्धिसे करे। ब्राह्मणको वेदाध्ययनसे जो मुक्ति प्राप्त होगी, शूद्रको ी जन-सेवासे वही मिलेगी। इसलिए जो वर्ण थे, वे कर्मविभाजनके लिए बने थे, दर्जे नहीं थे।

'समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।'

---'सबमें परमेश्वर समान रूपसे रहता है।' उस परमेश्वरका ग्रहण करना चाहिए। जो ऊपरके चोलेको भूल जायगा, वही मोक्ष पायेगा।

इस तरह उस समय दर्जे नहीं थे। लेकिन आज तो दर्जे बने हैं। हमने दिल्लीमें देखा कि तनख्वाहके मुताबिक ए०, बी०, सी०, डी० टाइपके मकान बन गये हैं। मैं तो यह देखकर ताज्जुबमें रह गया। क्या मजदूरको कम हवा की जरूरत है और अफसरको अधिक हवाकी? क्या एक को स्नान करनेके लिए पानी चाहिए और दूसरेको नहीं? हाँ, अन्नके मामलेमें थोड़ा-सा फर्क हो सकता है। लेकिन हवा, पानी और सूरजकी रोशनीके मामलेमें फर्क क्यों?

......लेकिन इन लोगोंने आज समाजमें दर्जे बनाये और उसीके अनुसार घर बनाये हैं। यह जो सारा इन्तजाम है, वह बिलकुल गलत है। समाजके जितने भी काम हैं, उन्हें करनेवालोंकी सामाजिक प्रतिष्ठा समान होनी चाहिए, उनका आध्यात्मिक मूल्य समान होना चाहिए। सर्वोदय-समाजका यह एक बुनियादी उसूल है।

१३-७-'५३　　　　　　　　--रामगढ़ (हजारीबाग)

: ८६ :

मैं चाहता हूँ कि हर पक्षवाले अपना-अपना विचार जनताके सामने रखते हुए एक-दूसरेसे प्यार करें। फिर जनता जिसे चुनेगी वे सरकारमें जाकर उसकी सेवा करेंगे, और जिन्हें नहीं चुनेगी वे बाहर मुक्त रहकर जनता-की सेवा करेंगे। दोनों सेवा ही करेंगे और एक-दूसरेसे प्यार करेंगे। जो सीधे जनतामें जाकर सेवा करेंगे, वे शंकर भगवान्के समान होंगे और जो सत्तामें जायँगे, वे विष्णु भगवान्के समान होंगे। विष्णु भगवान् सत्ता और संपत्तिमें भी विरक्त—अनासक्त—थे। वे लक्ष्मीसे भी अलिप्त थे। इसी तरह सत्तामें जानेवाले राजा जनक जैसे होंगे और जो सत्तामें नहीं जायँगे वे शुकदेव जैसे होंगे। जनकको देखकर लोग कहते थे:

'जनको जनक इति वै जना धावन्तीति।'

—'यह जनक आ रहा है, मेरा बाप आ रहा है, ऐसा कहकर लोग दौड़कर उसके पास आते थे।' जनकके बारेमें कहा जाता है कि वे जब सोते थे तो नजदीक यज्ञकी अग्नि होती थी।.......अगर सोतेमें कहीं उसपर पाँव पड़ा तो जाग नहीं जाते थे। इसका मतलब यह है कि वे भोगमें भी अनासक्त थे। और शुकदेव तो विरक्त थे ही। इसी तरह जिन्हें सत्तामें जाना है, उन्हें जनक महाराजकी तरह अलिप्त रहना होगा। और जिन्हें सत्तामें नहीं जाना है उन्हें शुकदेव जैसे विरक्त रहना होगा।

१८-७-'५३ **—हजारीबाग**

: ८७ :

हमारे बोलनेमें अत्यन्त मृदुता, नम्रता और मधुरता हो तो ही हम प्रतिस्पर्धीको जीत सकते हैं। क्योंकि आखिर हम जो कर रहे हैं वह एक धर्मकार्य है। मनु महाराजने कहा है कि धर्मकार्यमें मधुर और प्रिय वाणीका ही प्रयोग करना चाहिये:

'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥'

१८-७-'५३ **—हजारीबाग**

: ८८ :

गांधीजीकी यह खूबी थी कि जिसे मददकी सबसे अधिक ज़रूरत है, उसकी सर्वप्रथम मदद करते थे। अभी कवि दुखायलने मुझे सुनाया कि 'मदद देनेका क्रम है—'पहले भुखिया,—फिर दुखिया और बादमें सुखिया।' गांधीजी तो हमेशा इसी तरह सोचते थे कि जिन्हें मददकी सबसे प्रथम आवश्यकता है, उन्हें मदद देनेका तरीका ढूँढ़ा जाय। इसीमेंसे चरखा निकला। यह उनकी अद्‌भुत प्रतिभा थी, काव्यशक्ति थी। सिर्फ कुछ सतरें लिख डालनेसे कोई कवि नहीं बन जाता। यास्काचार्यने कहा है कि **'कविः क्रान्तदर्शीः।'** जिसे क्रान्त दर्शन होता है, जिसे दूरका दर्शन होता है, जिसे सूक्ष्म दर्शन होता है वह कवि है। इसी अर्थमें गांधीजी कवि थे। उन्होंने कई साल पहले कह दिया था कि हिंदुस्तानके लिए ग्रामोद्योग ज़रूरी है। नयी तालीम, राष्ट्रभाषा, जमीनका बँटवारा आदिके संबंधमें भी उन्होंने कई साल पहलेसे कह रखा था।

१८-७-'५३ —हजारीबाग

: ८९ :

इस देशमें जो समाज-व्यवस्था बनी थी, उसकी वुनियादमें दो विचार थे। उसमें ऊँच-नीचका खयाल नहीं था। हर कोई अपना-अपना काम निरहंकारभाव और निष्काम बुद्धिसे करके मोक्षका अधिकारी बन सकता है—यह एक बुनियादी विचार था।

दूसरा बुनियादी विचार यह था कि सबको समान वेतन, खाना-पीना मिलना चाहिए। ब्राह्मणको खाना मिल गया, सालभरमें एकआध कपड़ा मिल गया तो वह घंटों पढ़ाता था। लेकिन आजकल कालेजमें प्रोफेसर सिर्फ तीन-चार घंटे काम करते और पाँच सौ रुपये तनख्वाह लेते हैं। आज विद्या बाजारमें आ गयी है, पर पहले ऐसा नहीं था। ब्राह्मणने विद्या हासिल की तो दूसरोंको विद्या देना उसने अपना कर्तव्य माना था। लेकिन आजकल विद्या बेची जाती है। पेटीकी यह चिन्ता क्यों? यह बात समझ

में नहीं आती। भगवान्‌ने तो हमें पेट ही दिया है, पेटी नहीं दी, इसलिए सिर्फ पेटकी ही चिन्ता होनी चाहिए, पेटीकी नहीं।

'अद्य अद्य श्वः श्वः।'

—'आजका आज और कलका कल।' कलके लिए आज संग्रह करनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए।

२१-७-'५३ —दाऊजीनगर (हजारीबाग)

: ९० :

हमारी जो प्राचीन वर्णव्यवस्था बनी थी, उसमें क्षत्रियको सेवक माना गया था। हिंदुस्तानमें जो तीन-चार बड़े सम्राट् हो गये हैं, उनमें हर्षका नाम आता है। हर्षके कपड़ेका वर्णन आया है। वह मेरे समान एक नीचे और एक ऊपर धोती पहनता था, किसानकी तरह सादगीसे रहता था। राजाकी यही खूबी थी कि संपत्तिका सर्वस्व दान देते जाना, फिरसे कमाना और फिरसे दान देना—यह क्रिया चलती थी। सूर्यनारायण समुद्रसे पानी खींच ले जाते हैं और जितना ले जाते हैं उतना बादमें लौटा देते हैं। खारा पानी ले जाते हैं और मीठा पानी दे जाते हैं। इसी प्रकार राजाको होना चाहिए। समाजसे पैसा कमाकर समाजको ही लौटाकर आखिरमें उसे वनमें जाना चाहिए, नहीं तो वह नरकमें जाता है। **'राज्यांते नरकप्राप्तिः'** —इससे बढ़कर शाप क्या हो सकता है? इसीलिए शासकका काम केवल सेवा करना है।

२१-७-'५३ —दाऊजीनगर (हजारीबाग)

: ९१ :

हम मानते हैं कि शंकराचार्यने भगवान् बुद्धका ही काम आगे बढ़ाया। इसीलिए उनको 'प्रच्छन्न बुद्ध' कहा जाता है।

बुद्ध-धर्मका उज्ज्वल आचरण हिंदुस्तानमें बहुत हुआ है। हमारा दावा नहीं है कि हमने बहुत अच्छी तरह आचरण किया, परन्तु जो भी किया

उसपरसे कहा जा सकता है कि भगवान् बुद्धका संदेश हमारे जीवनमें उतर गया है। उनका मुख्य संदेश अहिंसाका था। अहिंसा जितनी यहाँपर फली-फूली, उतनी दूसरे देशोंमें फूली-फली या नहीं, हम नहीं जानते। बुद्ध-धर्मकी दया, करुणा और हमारा आत्मज्ञान दोनोंके मेलसे आजका हिन्दू-धर्म बना है। बाकीके धर्म पचास तरीके बताते हैं, लेकिन हिन्दू-धर्म-में सिर्फ दो बातें हैं: एक है ब्रह्मविज्ञान, जिसे 'वेदान्त' कहते हैं और दूसरी है 'भूतदया।' इनमेंसे एक भी न हो तो वह हिन्दू-धर्म नहीं हो सकता। बुद्धधर्मकी भूतदया, करुणा और हमारा आत्मज्ञान, तीनोंको मिलाकर शंकराचार्यने स्तोत्र बनाया है जो उनके मठोंमें रोज बोला जाता है। वह षट्पदी इस प्रकार है:

'अविनयमपनय विष्णो, दमय मनः, शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय, तारय संसारसागरतः ।।'

—'भगवन्, तू ही मेरी भूतदयाका विस्तार कर।' भगवान् बुद्धने भी भूत-दयाकी ही बात कही थी। इसीलिए हिंदूधर्म दो शब्दोंसे मालूम हो सकता है: (१) ब्रह्मविज्ञान और (२) भूतदया। इसीमें हिंदूधर्म और बुद्ध-धर्मका सार है।

२-८-'५३ **—बोधगया**

: ९२ :

भगवान् शंकराचार्यने कहा है कि मनुष्यके तीन परम भाग्य होते हैं:

'मनुष्यत्वम्, मुमुक्षुत्वम्, महापुरुषसंश्रयः ।'

—'एक है 'मनुष्यत्वम्', दूसरा 'मुमुक्षुत्वम्' और तीसरा 'सत्संगत्वम्'। भगवान् शंकराचार्यने इन तीनों भाग्योंका वर्णन किया है। हममें ये तीनों मौजूद हैं। परमेश्वरने हमें मनुष्यत्व दिया है, मुक्तिकी इच्छा दी है और महापुरुषोंका सत्संग दिया है। .... शास्त्रकारोंने लिखा है कि 'जिनके मन-में शत्रु-मित्रका भाव नहीं होता वे महापुरुष हैं।' शास्त्रोंमें महापुरुषोंका वर्णन है, लेकिन हमें तो ऐसा पुरुष अपनी आँखों देखनेका परम सौभाग्य

मला है। गांधीजी जैसा महापुरुष हमारी आँखोंके सामने हो गया है। हमें उनके साथ बरसोंतक रहने और उनके साथ कार्य करनेका मौका मिला है—यह हमारा परम सौभाग्य है।

गांधीजीके मनमें किसीके प्रति भी वैरकी भावना नहीं थी। सत्याग्रहीके लिए निर्वैरता अत्यंत आवश्यक है। अक्सर लोग समझते हैं कि सत्याग्रह सिर्फ दुश्मनोंके खिलाफ किया जाता है। पर जिसके मनमें किसी भी तरहकी दुश्मनीका भाव होता है, वह सत्याग्रही हो ही नहीं सकता। गांधीजी अंग्रेजोंसे कहते थे कि 'आप यहाँ मालिक बनकर मत रहिये। सेवाके लिए रहना चाहते हों तो रहिये। हम आपसे मित्रके नाते कहते हैं कि 'भारत छोड़ दो, इसीमें आपका भला है।' कोई शाब्दिक या बोलनेकी बात नहीं है, यह तो सज्जनके हृदयकी अनुभूति है। गांधीजीके दिलमें अत्यंत निर्वैरता थी।

३-८-'५२ —गया

: ९३ :

साहित्यिकोंमें एक मूलभूत गुण होना चाहिए। उसके बिना कोई साहित्यिक नहीं हो सकता। वह है—'सेन्सेरिटी' यानी सचाई। और कुछ गुण हों या न हों, साहित्यिकको सच्चा होना ही चाहिए—वह सच्चा सत्पुरुष हो या सच्चा दुर्जन। सच्चा सत्पुरुष हो तो सोनेमें सुगन्ध आ जायगी। लेकिन दुर्जन हो तो भी सच्चा दुर्जन ही हो। कूटनीतिज्ञ अक्सर अंदरसे एक रहते और बाहरसे दूसरे दिखाई देते हैं। वे चाहे दुनियाको ठग लें, परन्तु अपने आपको ठग नहीं सकते। इसीलिए वे अपनेको प्रकट भी नहीं कर सकते।

कुछ लोग मनके भाव प्रकट नहीं करते। जहाँ यह होता है, वहाँ 'वाणीकी चोरी' होती है। मनु महाराजने कहा है कि 'जो दस चोरियाँ करते हैं, वे उतने दोषी नहीं जितने वाणीकी चोरी करनेवाले दोषी हैं।' सारे अर्थ वाणीमें निहित हैं—भरे हैं :

'वाच्यर्था निहिताः सर्वे, वाङ्मूला वाग्-विनिःसृताः।
तां तु यः स्तेनयेद् वाचं, स सर्वस्तेयकृत् नरः॥'

—'सारे अर्थ वाणीमेंसे निकलते हैं, इसलिए जिसने वाणीकी चोरी की, उसने दुनियाभरकी सब चोरियाँ कर डालीं।' मनुमहाराजके इस वचनका मूल वेदोंमें है। 'जो वाणीका चोर यानी 'वाच-स्तेन' है, भगवन्! उसके मर्मपर प्रहार करो'—वेदोंमें भगवान्से ऐसी प्रार्थना की गयी है।

डाक्टरके पास जानेपर अपना सारा दुःख बताना पड़ता है, नहीं तो डाक्टर इलाज नहीं कर सकता; वैसे ही परमेश्वरके सामने सब खोलकर रखना पड़ता है। परमेश्वर और कौन है? परमेश्वर तो यह सारी जनता है। उसके सामने सब कुछ खोलकर रख देनेकी हिम्मत चाहिए। पाप, पुण्य जो कुछ हो, वह सब खोलकर रखना होगा।

४-८-'५३ —गया

: ९४ :

गांधीजीने स्वराज्यके बाद हमें एक नया मंत्र दिया। उस नये मंत्रका नाम है—'सर्वोदय'। यह कोई नयी चीज नहीं और न नया मंत्र ही है, यह तो पुराना ही मंत्र है। ऋषियोंने कहा था—'**सर्वभूतहिते रताः**।' हम सबका उदय चाहते हैं। हमें सबके लिए काम करना चाहिए।

अब इस वैज्ञानिक युगमें लोग नये ढंग से सोचने लगे हैं। नये-नये विचार सामने रखते हैं। पुराने शब्दोंका नया अर्थ देते हैं, जिससे कभी-कभी अनर्थ हो जाता है, क्योंकि विज्ञान अभी अपूर्ण है। अपूर्ण विज्ञान से अपूर्ण मंत्र दुनियाके सामने रखे गये हैं। पाश्चात्योंका जो विज्ञान चल रहा है, वह अधूरा है। उसने एक नया विचार दिया है और वह है—'अधिक-से-अधिक लोगोंका अधिक-से-अधिक भला' ('ग्रेटेस्ट गुड आफ दि ग्रेटेस्ट नम्बर')। यह एक खतरनाक शब्द निकला है। विज्ञानके युगमें यह जो शब्द मिला, उसकी चमक-दमकमें आकर हमने उसे अपने हितका मान लिया। लेकिन उसमेंसे भेदासुरका निर्माण हुआ। कम संख्या और अधिक संख्यामेंसे संख्यासुर भी निकला। जबसे हम इस 'मेजारिटी, माइनॉरिटी' (बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक) की बहसमें पड़े, तभीसे इस

अधूरे मंत्रके कारण दुनियाके हर देशमें झगड़े चले। लेकिन इस अधूरे मंत्रके कारण ये विचार भी एकांगी हो गये। इसकी पूर्ति तो आत्मज्ञानके दर्शनसे ही हो सकती है। पूर्ण विचार तो यह है कि सबका भला होना चाहिए, अधिक-से-अधिक लोगोंका नहीं। क्योंकि इसमें जो संख्यामें कम हैं, उनपर अन्याय होता है। हम परिवारमें ऐसा कभी नहीं सोचते कि परिवारके नौ मनुष्योंका भला हो और एकका न हो। पर समाजका सवाल आते ही विज्ञानने कहा कि 'अधिक-से-अधिक लोगोंका अधिक-से-अधिक भला होना चाहिए।' पर हम तो सबका भला चाहते हैं। विज्ञान अपूर्ण मंत्र है और सर्वोदय पूर्ण मंत्र। सर्वोदयमें आत्माका विचार है। उसका अभ्युदय आत्माके ज्ञानमें है। सर्वोदयने पूरा विचार किया है। यह पूर्ण, सही और शुद्ध है। 'बीसके विरुद्ध पचीस' ऐसी रायको हम गलत मानते हैं। आत्माके टुकड़े नहीं हो सकते। लेकिन हमने तो आज आत्माके टुकड़े कर ही डाले हैं। वास्तवमें आत्मा एक, अविभाज्य, पूर्ण, समान, निर्दोष और हरएक प्राणीमें समान रूपसे विद्यमान है। 'हम पूर्ण हैं, यह भी पूर्ण है, वह भी पूर्ण है, पूर्णसे निष्पन्न होता पूर्ण है।' उपनिषदोंमें गाया गया है:

'पूर्णमदः पूर्णमिदं, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।'

आत्मज्ञान पूर्ण है, इसलिए उसमेंसे पूर्ण ही विचार निकलते हैं। उसमें 'बहुसंख्यक, अल्पसंख्यक' (मेजारिटी, माइनॉरिटी) की गुंजाइश नहीं है।

९-८-'५३ **—हुल्लासगंज (गया)**

: ९५ :

हिन्दुस्तानमें भिन्न-भिन्न पक्ष हैं और उनमें आपसमें मतभेद हैं; परन्तु वे सब पक्ष भूदानका काम कर रहे हैं। उन्होंने इसे मान लिया है। अभीतक तो हमें इस कामके विरोधी नहीं मिले। एक-दूसरेके विरोधी विचार होते हुए भी भूदानके लिए वे एक ही प्लेटफार्मपर आकर, कंधेसे-कंधा लगाकर काम कर रहे हैं। ऐसे दृश्य अधिकाधिक दिखाई दे रहे हैं। आगे चलकर दिखाई देगा

कि सारे पक्ष इस काममें लगे हुए हैं। सारे समाजको एकरस बनानेका हमारा प्रयत्न सफल होनेवाला है और इसीसे एक महान् शक्ति प्रकट होनेवाली है। शंकराचार्यके गुरु आचार्य गौडपाद कहते हैं :

'स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु, द्वैतिनो निश्चिता दृढम् ।
परस्परं विरुद्ध्यन्ते, तैरयं न विरुद्ध्यते ॥'

—'मैं सबका हूँ और सब मेरे हैं, चाहे आपका आपसमें कोई मतभेद हो, परन्तु मेरे साथ आपका कोई मतभेद नहीं हो सकता। आप द्वैतियोंमें परस्पर विरोध हो, पर मैं अद्वैती हूँ। इसलिए मेरे साथ आपका कोई विरोध नहीं हो सकता।' यही मेरा भी कहना है—महान् कार्य तो **'सर्वेषाम-विरोधेन'** करने होते हैं।

जो द्वैती होते हैं, वे आपसमें झगड़ा करते—पक्षभेद निर्माण करते हैं। जो समग्रको नहीं मानते वे अंशको मानते हैं। वह अंश चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, वे अंशवादी ही होते हैं। उन्हींको द्वैतवादी कहा जाता है। वे पक्के निश्चयवाले होते हैं। अपने-अपने विचार अपनी पार्टी (पक्ष) को देते और उसी विचारको श्रेष्ठ मानते हैं। इसीलिए वे एक-दूसरेके विरोधमें खड़े होते हैं। वे अपने-अपने धर्म, पंथ और पक्षको बढ़ावा देनेको ही श्रेष्ठ कर्म समझते और आपसमें झगड़े पैदा करते हैं। लेकिन उन सब पक्षोंका समावेश सर्वोदयके पेटमें होता है। सर्वोदयका किसीने विरोध नहीं किया, क्योंकि वह सबको पेटमें समा लेनेवाला है—वह अद्वैतवादी है।

जो भूदानमें आते हैं, वे सब एकसाथ काम करते हैं। उनके मनमें मतभेद रहता है, लेकिन जैसे-जैसे वे काम करते जायँगे, वैसे ही वैसे भेद मिटेंगे और मनमें एक-दूसरेके प्रति द्वेषभावना नहीं रहेगी। यह दृश्य अब दिखाई दे रहा है। जो आजतक एक-दूसरेसे बात तक नहीं करते थे, वे आज मिलकर काम कर रहे हैं। हाँ, अभी भी उनके दिलोंमें कुछ हिचकिचाहट जरूर है, लेकिन अब विरोधी विचार नहीं रहेंगे और

सारा समाज एकरस बनेगा, ऐसी हम अपेक्षा रखते हैं। सर्वोदय-विचारकी यह खूबी है कि वह परस्पर-विरोधी सारे पक्षोंको अपने पेटमें समा लेता है।

९-८-'५३ —हुल्लासगंज (गया)

: ९६ :

धर्म अनेक हैं, लेकिन सब धर्मोंका मूलतत्त्व एक ही है। मुक्तिके लिए एक ही मार्ग है:

'असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय।'

—'हमें असत्यमेंसे सत्यमें जाना है। अंधरेमेंसे प्रकाशमें जाना है। विकार-मेंसे निर्विकार की तरफ जाना है।' सब धर्मोंने अलग-अलग तरीकोंसे यही समझाया है। हम सब ऋषियोंको मानते हैं, चाहे वे किसी भी धर्मके हों। उन्हींकी प्रेरणा और आशीर्वादसे हमारा यह कार्य चल रहा है।

१७-८-'५३ —नालन्दा (गया)

: ९७ :

हमारे ग्रंथ बताते हैं कि यहाँ विद्याका अध्ययन प्राचीन कालसे चल रहा है। विद्यार्थी उषःकालमें अपने गुरुके पास विद्याध्ययन करते थे। वे बड़े तड़के उठते और कुछ चिंतन-मनन भी करते थे। प्रातःकालके समय जो सोता रहता है, वह अपना अमूल्य समय खोता है। वेदोंमें कहा गया है:

'यो जागार तं ऋचः कामयन्ते।'

—'जो जागते हैं, उनको भगवान् स्मरण करते हैं। ऋचाएँ उन्हें स्फूर्ति देती हैं।' सुबह जागनेसे बुद्धि जागरित रहती है, तेज रहती है। इसलिए सुबह उठकर अध्ययन करना चाहिए।

१७-८-'५३ —नालन्दा (गया)

: ६८ :

उपनिषद्में एक राजा अपने राज्यका वर्णन करता है :

'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यः, न मद्यपः ।
न अनाहिताग्निः, न अविद्वान्...... ।।'

—'मेरे राज्यमें न कोई चोर है और न कोई कंजूस।' जहाँ कंजूस होते हैं, वहाँ चोर होते हैं।' हमने कई दफ़ा कहा है कि कंजूस चोरके बाप हैं—कंजूस चोरीको बढ़ावा देते हैं। उसने यह भी कहा कि 'मेरे राज्यमें कोई भी मद्य नहीं पीता ।' हिंदुस्तानमें उस समय कोई मद्य नहीं पीता था, लेकिन अंग्रेजोंने शराबको फैशनेबुल बनाया। आज तो बड़े-बड़े शहरोंमें शराब खुलेआम चलती और बिकती है । उसे रोकनेमें हमें डर लगता है। उस राजाने यह भी कहा कि 'मेरे राज्यमें कोई अविद्वान् नहीं है, ऐसा कोई नहीं है, जो पढ़ना-लिखना नहीं जानता। 'मेरे राज्यमें ऐसा कोई नहीं जो भगवान्की पूजा नहीं करता।' याने बहुत प्राचीन कालसे यहाँपर विद्याका प्रसार था।

लेकिन आज हमें विद्या बढ़ानेकी जरूरत है। बहुत अध्ययन करना है—आत्मज्ञान हासिल करना है और विज्ञान भी हासिल करना है। दोनोंमें ताकत है। पक्षी दो पंखोंसे उड़ता है। आत्मज्ञान और विज्ञान, ये मानवके दो पंख हैं। हमें दोनोंका अध्ययन करना है। प्राचीन कालसे चला आया आत्मज्ञान हासिल करना है और पश्चिमसे विज्ञान लेना है।

अगस्त '५३

: ६९ :

'अखिल जागतिक डॉक्टर परिषद्'ने कहा है कि 'जैसे-जैसे हम नये-नये उपचार खोज रहे हैं वैसे-वसे नयी-नयी बीमारियाँ भी निकल रही हैं।' यह क्या तमाशा है? बीमारी और वैद्य साथ-साथ ही बढ़ रहे हैं! सूर्य-किरण और अंधकार हाथमें हाथ मिला, गलेसे गला लगाकर आगे

बढ़ रहे हैं—इसका कारण क्या है ? इसका कारण यह है कि खाया हुआ हजम नहीं हो रहा है। व्यासने कहा है :

'प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः ॥'

—'श्रीमानोंमें हजम करनेकी शक्ति नहीं होती। हाँ, खानेकी इच्छा बहुत होती है। और दरिद्र मनुष्य लकड़ी भी पचा सकता है।' जिसमें शक्ति नहीं है, उसे ज्यादा खानेको मिलता है और जिसे भूख अधिक है उसे कम मिलता है। ऐसे श्रीमानोंपर तो दया आनी चाहिए। श्रीमान् दुनियाको लूटकर पैसे जमा करता और फिर डाक्टर उसे लूटता है। जब वह बीमार होता है तो डाक्टर बिना पैसे उसकी नाड़ी भी नहीं देखते। यह कितनी क्रूरता है उस बेचारेपर ! इस तरह सबका प्यार खोकर, दुनियाका विरोधकर, पाचनशक्ति घटाकर पैसे कमानेवाला कैसे सुखी होगा ?

श्रीमानोंके पास मत्सर लायक कोई चीज है ही नहीं। उनको खुली हवा, सूरजकी किरणें नहीं मिलतीं, क्योंकि वे महलोंमें दीवालोंके अंदर बंद रहते हैं। इसलिए अमीरोंपर तो दया आनी चाहिए, उनका मत्सर नहीं होना चाहिए।

सितम्बर '५३ **—चकाई (मुंगेर)**

: १०० :

'संपत्ति-दान-यज्ञमें' एक दफा दान देनेकी बात नहीं है, जिंदगीभर देनेकी बात है। दरिद्रनारायणके लिए छठा हिस्सा आजीवन देना है। लोग हमसे पूछते हैं कि आजीवन दान कैसे दिया जा सकता है ? हमारा उनसे कहना है कि आप आजीवन खा कैसे सकते हैं ? यह कितना कठिन व्रत आप निभा रहे हैं कि जन्मसे लेकर मृत्युतक खाना खायेंगे। और एकादशीके दिन उपवास करेंगे तो उस दिन भी कुछ-न-कुछ खा ही जायँगे। आजीवन व्रत लेना बहुत आसान चीज है। वेदमें कहा गया है :

'प्राण्याच्चैव अपान्याच्च ।'

—'मरनेतक प्रतिज्ञापूर्वक साँस लो।' श्वासोच्छ्वास कितना कठिन व्रत है। व्रत लेनेको तो उन्होंने इसलिए कहा कि वे चाहते थे कि 'श्वास-श्वाससे राम कहें, वृथा श्वास न लें।' प्रतिक्षण रामके कामके लिए देना चाहिए, यह उस प्रतिज्ञाका अर्थ था। हमारी आँखोंने आजीवन देखनेका व्रत लिया है। हमारे पैरोंने आजीवन चलनेका व्रत लिया है। उनको यह कठिन नहीं मालूम होता, क्योंकि यह सब नैसर्गिक—स्वाभाविक—हो गया है। उसी प्रकार त्यागका व्रत भी नैसर्गिक और स्वाभाविक ही है, जिसका पालन माताएँ घर-घर कर रही हैं। माता अपने बच्चेसे कितना प्यार करती है, उसके लिए कितना त्याग करती है? लेकिन यह जो धर्मभाव उसमें है, उसको घरके दायरेमें सीमित न रखकर हम बढ़ाना चाहते हैं—उसे समाजमें लाना चाहते हैं।

१८-९-'५३ —संथाल परगना

: १०१ :

हमारा देश बहुत प्राचीन और विशाल है। बहुत प्राचीन कालसे यहाँपर खेती हो रही है और लोग देहातोंमें रहते हैं। वैसे हिंदुस्तानमें शहर भी हैं और छोटे-छोटे गाँव भी। पर शहरोंकी संख्या बहुत थोड़ी है, और ये बहुत सारे शहर नये हैं। हाँ, काशी जैसा कोई पुराना शहर भी है, पर बाकी सारे दो सौ, तीन सौ और चार सौ सालके हैं। लेकिन गाँव तो हजारों सालसे बसे हैं। एक-एक गाँवका इतिहास किसीने लिख तो नहीं रखा, पर अगर लिखा जाय तो मालूम होगा कि कुछ गाँव तो हजार, दो हजार साल पुराने भी हैं। आज हिंदुस्तान और पाकिस्तानमें कुल सात लाख गाँव हैं। पुराने जमानेमें भी गाँवोंकी संख्या इतनी ही थी। हाँ, अब जनसंख्या कुछ बढ़ गयी है। पहलेके गाँव और भी छोटे थे। पर सारा देश जैसे आज गाँवोंसे भरा है, वैसे ही पुराने जमानेमें भी जिधर देखो उधर गाँव ही गाँव थे, नगर बहुत कम थे। अपने यहाँ मनुष्य हमेशा देहातमें रहा है और सारी प्रतिष्ठा गाँवकी रही है। वेदोंमें प्रार्थना है:

'विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्।'

—'हमारे गाँवमें वृद्धि हो, हमारे गाँवमें सुख-समृद्धि हो, हमारे गाँवमें पुष्टि हो।' इस तरह ग्रामधर्मकी बात प्राचीन कालसे चली आयी है। प्राचीन कालमें हरएक गाँवमें अपना-अपना राज था। पाँच वर्णोंके प्रतिनिधियोंकी पंचायत बनती थी। जैसे पाँच अँगुलियाँ होती हैं, वैसी ही पंचायत होती थी और जैसे पाँचों अँगुलियाँ मिलकर काम करती हैं, वैसे ही वे मिलकर काम करते थे। 'पाँच बोले परमेश्वर' कहा जाता था।

अक्तूबर, '५३ —भेड़ियानाथ (भागलपुर)

: १०२ :

आज हम शरीर-श्रम करनेवालोंको नीच समझते हैं। इतना ही नहीं, आज हमने माताको भी नीच माना है। शास्त्र कहते हैं :

'उपाध्यायान् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते ॥'

—'दस उपाध्यायोंकी बराबरीमें एक शिक्षक और सौ शिक्षकोंकी बराबरीमें एक पिता और हजार पिताओंसे भी बढ़कर है, एक माता।' माताका ऐसा गौरव है। यह शास्त्रोंकी बात है, पर आज तो हम स्त्रियोंको हीन मानते हैं। स्त्रियाँ खेतपर मजदूरीके लिए जाती हैं तो उन्हें कम मजदूरी दी जाती है। स्त्रियोंको तो ज्यादा देनी चाहिए, क्योंकि उन्हें घरका भी सब काम देखना होता है, बच्चोंका लालन-पालन करना होता है। पर, ज्यादा तो देते ही नहीं, बराबरीका भी नहीं देते। हर जगह स्त्रियोंको कम मजदूरी दी जाती है और उनको भार समझते हैं। 'स्त्रियाँ तो रात-दिन काम करती हैं, फिर भी उनका भार मालूम होता है, क्योंकि काम-की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। कहते हैं कि 'स्त्रियाँ उत्पादनका काम नहीं करतीं, सिर्फ रसोई करती हैं।' पर रसोई उत्पादनका काम नहीं तो क्या बढ़ईका काम उत्पादनका काम है? बढ़ई क्या करता है? काठ लेता और उससे नयी चीज बनाता है। वैसे ही स्त्री भी आटा लेकर रोटी बनाती है। अगर नयी चीज पैदा करनेको ही उत्पादन कहें तो ब्रह्मदेवके सिवा और किसी उत्पादक का हमें पता नहीं है। किसान क्या

करता है ? परमेश्वरकी पैदा की हुई चीज खेतमें बीजा और उससे हजार गुना पाता है, तो वह भी तो परमेश्वर ही करता है। काठकी कुर्सी और चमड़ेका जूता बनाना एक चीज़का दूसरी चीजमें रूपान्तर करना ही तो है। हम कोई नयी चीज नहीं बना सकते, खुद ही बनाये गये हैं। हम 'कृति' हैं, 'कर्ता' नहीं हैं। जैसे काठकी कुर्सी बनाना काठका रूपान्तर करना है वैसे ही गेहूँका आटा बनाना, रोटी बनाना रूपान्तर ही है। क्या हम इसे उत्पादन तब समझेंगे जब हमारी माताएँ और बहनें कहेंगी कि 'हम रोटी बनायेंगे बशर्ते कि हमें अठारह आने रोज मिलें।'

नवम्बर, '५३ —जमालपुर (मुंगेर)

: १०३ :

हमारे समाजमें आलस्य और वैमनस्य—ये दो रिपु हैं, जिनसे छुटकारा पाना चाहिए।

'आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।'

—'मनुष्यके शरीरमें पड़ा हुआ सबसे बड़ा शत्रु आलस्य है।' हमने सबसे बड़े रोगको 'महारोग' कहा है, परन्तु वह भी उतना बड़ा रोग नहीं जितना बड़ा आलस्य है। हमारे यहाँके आलस्यने तो तत्त्वज्ञानका रूप ले लिया है। आलसी लोग हमें लिखकर पूछते हैं कि 'बाबाजी, आपको आत्मज्ञान हुआ नहीं दीखता, नहीं तो आप क्यों घूमते ?' हम कहते हैं : 'हाँ, हमें आत्मज्ञान नहीं हुआ है, यह ठीक है। अगर आत्मज्ञान हुआ होता तो हमारा शरीर टिकता नहीं, वह तो कभीका भगवान्‌के पास पहुँच जाता।' परंतु लिखनेवाला समझता है कि उसे आत्मज्ञान हो गया है। जो कुछ भी काम नहीं करता और घरमें बैठा रहता है, सबेरे-शाम थोड़ा-सा ध्यान कर लेता और समझता है कि हमें मुक्ति मिल गयी है—ऐसे लोगोंको क्या समझाया जाय ? आलस्यका भी एक तत्त्वज्ञान बना है। आलसी लोग शंकराचार्यका सहारा लेते और कहते हैं कि 'शंकराचार्यने हमें निवृत्ति सिखलायी है।' निवृत्ति क्या है, यह

समझनेकी बात है। इन लोगोंने मानसिक शांतिको निवृत्ति नहीं माना, शारीरिक शांतिको ही निवृत्ति माना है। तो फिर लाशको भी निवृत्त मानना होगा ? और ये जो पेड़, पत्थर हैं इनको तो सबसे अधिक निवृत्त मानना होगा। इस तरह हमने तमोगुणको निवृत्ति मान लिया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि हम सत्वगुणको नहीं देखते।

१६-११-'५३ —शेरमारी बाजार (भागलपुर)

: १०४ :

भूदानका काम करते हुए हमें अपने दो मुख्य विचारोंकी ओर हमेशा ध्यान देना चाहिए। पहला विचार, सीलिंग नहीं, फ्लोअरिंगका होना चाहिए। और दूसरा विचार यह है कि नैतिक परिवर्तन होना चाहिए। अगर कानून बना तो हम समाजको उसे स्वीकार करनेके लिए ही कहेंगे, लेकिन जिसपर हमारा विश्वास है उसी विचारका अनुसरण करेंगे। हमारा विचार चाहे छोटा ही क्यों न हो, पर जो हमें जँचता है वही हमारे लिए स्वधर्म हो जाता है। गीतामें कहा गया है :

'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥'

—'स्वधर्म विगुण हो तो भी उसका पालन श्रेय है।' परन्तु समझनेकी बात है कि वास्तवमें हमारा ही विचार श्रेष्ठ है, उसका स्वतंत्र मूल्य है। तथापि कम मूल्य हो तो भी स्वधर्मके नाते हम उसे छोड़ नहीं सकते. और न छोड़ना ही चाहिए।

२८-११-'५३ —पूर्णियाँ

: १०५ :

मिलका कपड़ा लोग इसलिए खरीदते हैं कि वह आँखोंको अच्छा लगता है। लेकिन जिस कपड़ेसे लोगोंकी बेकारी बढ़ती है, जिन कपड़ोंसे बहनें भूखों मरती हैं, वह कपड़ा क्या अच्छा है? मैं समझता हूँ कि वह मुर्दोंका कपड़ा है। मुर्देपर कितना ही सुंदर कपड़ा क्यों न हो, वह मुर्देका होता है। हम समझते हैं कि मिलका कपड़ा मुर्दोंका कपड़ा है। कुछ लोग

कहते हैं कि खद्दरका कपड़ा महँगा होता है। लेकिन वह इसलिए महँगा होता है कि वह बेकारोंको खिलाता है। मिल केवल कपड़ा देता है, बेकारोंको खिलाता नहीं। अगर बेकारोंको खिलानेका सारा खर्च मिलपर पड़े तो खादीसे वह कपड़ा बहुत महँगा पड़ेगा, यह हिसाब लगानेपर मालूम हुआ है। लोगोंका कहना है कि खादी खरीदेंगे तो महँगी पड़ेगी। हम पूछते हैं कि आप कोई दान-धर्म करते हैं या नहीं? हम आपसे सिफारिश करते हैं कि आप वह सारा बन्द करके खादी पहन सकते हैं। शास्त्रोंने कहा है कि 'गुप्तदान श्रेष्ठ दान है।' खादी खरीदोगे तो वह दान तो नहीं दीखेगा, लेकिन वह गुप्तदान होगा और सरल दान भी होगा। हमारा आग्रहपूर्वक कहना है कि जो पूरी तौरपर खादी पहन सकते हों वे पूरी पहनें, लेकिन जो नहीं पहन सकते वे सोचें कि हम सालभर गरीबके नामपर कितना रुपया दे सकते हैं? दो रुपया दे सकते हैं, तो मैं कहूँगा—'ठीक है, आप दूसरा दानधर्म बन्द करें और चार रुपयेकी खादी पहनें, क्योंकि दो रुपया मिलके कपड़ेपर खर्च होता है और दो रुपया दानधर्ममें। अगर खाता-बही लिखते हैं तो उसमें लिखिये कि 'दो रुपये का कपड़ा लिया और दो रुपये का दानधर्म किया।' आपको अगर देशकी माँ-बहनोंको जिन्दा रखना है, तो कुछ-न-कुछ धर्म करना ही होगा। अगर हम इस तरह धर्म करते हैं तो गरीब बेकार नहीं बनेंगे। अगर हम किसीको दो रुपये उठाकर दे देते हैं तो वह आलसी बन जाता है। भीष्म पितामह समझा रहे हैं—

'दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरं धनम्।'

—'गरीबके पास पैसा पहुँचा दो, अमीरके पास नहीं।' ये कम्युनिस्ट और प्रजासमाजवादी हमसे कहते हैं कि 'हम संघर्ष करना चाहते हैं, अमीरोंसे हमारा विरोध है।' हम उनसे कहते हैं—'काहेका संघर्ष चला रहे हो? अमीरोंको तो आपकी मदद हो रही है, क्योंकि आप मिलका कपड़ा पहनते हैं।' शास्त्रोंने कहा है कि अमीरके पास पैसा मत पहुँचाओ और गरीबके पास पहुँचाओ। लेकिन ये लोग तो आज इन दोनों आज्ञाओंको

भंग कर रहे हैं, जिसका नतीजा यह होता है कि कि गरीब प्रतिदिन अधिक गरीब बनते जा रहे हैं और अमीर प्रतिदिन अधिक अमीर। खादी पहनोगे तो गरीब के पास पैसा पहुँचेगा और हिंदुस्तान सुखी होगा।

२२-१२-'५३ —मेघपुर (दरभंगा)

: १०६ :

सरकारके पास मालकियतके हकके कागजोंका ढेर है। लेकिन समाजको ऐसी हिम्मत आ जाय कि यह जो सारा पुराने कागजोंका ढेर है, उसे जलाया जाय। अब होली आ रही है। उस होलीमें अगर यह ढेर जलाया जायगा तो हिंदुस्तानमें धर्मका प्रकाश फैलेगा। लकड़ी जलाकर क्या होली करते हो? होलीमें हृदयके मोह, लोभको जलाओ। शास्त्रोंने कहा है कि 'हर वसंत ऋतुमें होली करो और उसमें अपने हृदयके मोहको जलाओ'—

'वसंते वसंते ज्योतिषा यजेत।'

इस तरह होली होती है तो उसमेंसे यज्ञपुरुष पैदा होता है, तब धर्मका प्रकाश फैलता है। हम तो आग लगानेवाले हैं। हम पहले आग लगाना चाहते हैं, उसके बाद निर्माणका काम होगा। निर्माणका काम पहले नहीं हो सकता। जहाँ अग्निनारायण प्रकट हो वहीं नवनिर्माणका आरंभ होता है।

इसलिए हम तो पहले आग लगायेंगे और बादमें निर्माण करेंगे। सरकारके पास जो रेकार्ड पड़े हैं, वे सारे खत्म होनेवाले हैं। जहाँ क्रान्ति होती है वहाँ पुराने रेकार्डोंको बचाकर नहीं होती। क्रान्ति आती है तो रेकार्ड बचते नहीं, सब खत्म हो जाते हैं। तो फिर ऐसी क्रान्ति के समय कौन-सी चीज बचानी है? शास्त्रोंने कहा है:

'वेदान् उद्धरेत।'

—'वेदोंको बचाओ, बाकी सब डूबने दो।' एक कहानी है कि प्रलयके समय मत्स्यावतार हुआ, जिसके द्वारा वेदोंको बचाया गया। वेदोंको बचानेका मतलब क्या है? उसका मतलब यही है कि अन्तर्ज्ञानको बचाना और बाकी सब पुरानी चीजोंको डुबाना।

१८-१२-'५४ —जामताड़ा (संथाल परगना)

: १०७ :

हमारे पास जो कुछ संपत्ति, बुद्धि और शक्ति है, वह सब समाजके लिए है। हमें अपने पास कोई चीज रखनेका अधिकार नहीं है, समाजके पास रखनेका अधिकार है। समाजको सब कुछ अर्पणकर फिर समाजसे प्रसादरूपमें लेनेका ही अधिकार है। हमने जो कुछ कमाया, वह भगवान्की शक्तिसे ही कमाया। इसलिए सब कुछ उसीका है। अबतक हम लोग पत्थरकी मूर्तिके सामने भोग चढ़ाते थे और फिर प्रसाद ग्रहण करते थे। वह भगवान् तो खाता नहीं था। पर अब भगवान्को भूख लगी है तो भक्त बनकर उसे खिलाना चाहिए। अब मूर्तिके सामने थाली रखनेका नाटक क्यों करते हो? भगवान् बोलते हैं—'जिसने भूखोंको खिलाया उसने मुझे खिलाया, जिसने प्यासेको पानी पिलाया; उसने मुझे पानी पिलाया और जिसने ठंढमें ठिठुरनेवालेको कपड़ा पहनाया, उसने मुझे कपड़ा पहनाया।'

भक्तका हृदय ऐसा होता है कि वह सिर्फ प्रसाद ही ग्रहण कर सकता है। तो अब आप भगवान्को खिलाते जाइये और फिर खाते जाइये—देते रहिये और खाते रहिये।

'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।'

इस तरह भोग करोगे, तो भगवान् उस भोगसे प्रसन्न होगा। जंगलमें जाकर तपस्या करनेकी कोई जरूरत नहीं है। भगवान्को अर्पण करके खाओ तो वह खाना भी भक्ति बन जायगा। इस तरह जो खाता है, उसका खाना यज्ञकी अहुति बन जाता है। वह मामूली खाना नहीं रहेगा, बल्कि प्रसाद-सेवन होगा।

१८-१२-'५४ —जामताड़ा (संथाल परगना)

: १०८ :

जिस तरह पुराने जमानेमें एक लोकभ्रम था कि 'यह कलियुग है और इसमें पाप करना लाजिमी है', उसी तरह आज भी एक लोक-भ्रम फैला हुआ

है कि 'यह तो यंत्रयुग है।' लेकिन हमें इन भ्रमोंसे मुक्त होना चाहिए और भूदानमूलक, ग्रामोद्योगप्रधान अहिंसक क्रान्तिके विचारको समझ लेना चाहिए। हिंदुस्तानका उद्धार ग्रामोद्योगसे ही हो सकता है। लेकिन एक भ्रम फैला है कि 'इस यंत्रयुगमें ग्रामोद्योग कैसे चलेंगे। सारी दुनिया एक ओर जा रही है, तो हम दूसरी ओर कैसे जा सकते हैं? हम मानते ही नहीं कि दुनियामें हमारी भी कोई हस्ती है। लेकिन जिस तरह बाहरके विचार यहाँ आ सकते हैं उसी तरह हम यहाँके विचार भी बाहर भेज सकते हैं। यह हिम्मत हममें होनी चाहिए कि हम अपने विचार बाहर भेजेंगे। कविने कहा है:

'प्रथम सामरव तव तपोवने।'

—'जब सारी दुनिया अंधकारमें थी, तब यहाँ ज्ञानका प्रकाश फैला था, यहाँके तपोवनोंमें अध्ययन चल रहा था, तत्त्वज्ञानका निर्माण हो रहा था।' इसलिए हमें ऐसे लोकभ्रमोंको खत्म करना चाहिए, क्योंकि उनसे मनुष्यकी सारी शक्ति खत्म हो जाती है। इसलिए वेदांतने कहा है कि 'सबसे श्रेष्ठ शक्ति कोई है, तो वह है—'**सम्यक् ज्ञानम्**'। इसलिए हम हिम्मत न हारें और ज्ञान हासिल करें। दुनियामें जो दूसरे-दूसरे विचार चलते हैं, उनके भ्रममें न उलझें और अपना विचार कायम रखें, अपनी बुद्धि कायम रखें। इसीलिए आचार्य चाणक्यने कहा था—

'बुद्धिस्तु मा गान् मम।'

—'मेरी बुद्धि न जाय।' और सब जाय, पर बुद्धि न जाय। यही बात भगवान्ने गीतामें कही है:

'बुद्धौ शरणम् अन्विच्छ।'

—'बुद्धिकी शरण जाओ। दुनियामें यह जो सारी अबुद्धियाँ चलती हैं, उनमें हम न पड़ें और अपनी बुद्धि कायम रखें।'

१९-१२-'५४ —गेड़िया (संथाल परगना)

: १०९ :

आज जो समाज-व्यवस्था बनी है, उसमें सत्तावाद चलता है। पतिको लगता है कि पत्नीपर मेरी सत्ता चले। माता-पिताको लगता है कि बच्चोंपर हमारी सत्ता चले। गुरु चाहता है कि शिष्योंपर उसकी सत्ता चले। इस तरह सत्ताकी, आज्ञाकी बात चलती है। पर यह क्यों नहीं होता कि माता-पिता बच्चोंको सलाह दें, आज्ञा न दें? गुरुको ऐसा क्यों लगता है कि शिष्यको उसकी आज्ञा माननी चाहिए?

हिंदुस्तानमें ही ऐसे अजीब गुरु हो गये हैं, जो अपने शिष्योंसे कहते थे कि हमारी आज्ञा ठीक हो, तभी मानो। हिंदुस्तान का गुरु अपने शिष्यसे कहता है:

'यानि अस्माकं सुचरितानि, तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि।'

—'हमारे जीवनमें जो अच्छाई हो, वही ग्रहण करो। और जो अच्छाई नहीं है, उसे मत ग्रहण करो। हमने जो बुरे काम किये होंगे, उनको नहीं लेना।' यह है, निरहंकार सेवा। गुरुको यह अहंकार नहीं होना चाहिए कि शिष्यको मेरी बात माननी चाहिए।

२०-१२-'५४ —केवटजाली (संथाल परगना)

: ११० :

भूदान-यज्ञमें काम करनेवाले एक भाईने हमसे कहा कि "हम एक राजनैतिक पक्षके नामसे जमीन माँगते हैं तो दूसरे पक्षवाले नाराज हो जाते हैं।'....क्या आपने रामजीका नाम नहीं सुना? उन्हींके नामसे माँगो, किसी पक्षके नामसे माँगनेकी क्या जरूरत है? परंतु आजकल रामजीका नाम तो गायब ही रहता है। हर कोई अपनी-अपनी सत्ता चलाना चाहता है। कहीं-कहीं तो लोगोंने चाहा कि हमारी संस्थाके जरिये इतने दानपत्र मिले, यह जाहिर हो जाय।....बिल्कुल बच्चोंकी-सी हालत है यह! ऐसी हालतमें समाजकी सच्ची सेवा नहीं हो सकती। सेवाका केवल नाम

होता है और अपना अहंकार, भोगवासना—यह सब तो रहता ही है। उससे पुण्यकी सुगंध नहीं फैलती। शास्त्रोंने कहा है :

'पुण्यस्य कर्मणः दूरात् गंधो वाति।'

—'पुण्यकी सुगंध दूरसे फैलती है।' वास्तवमें सुगंध हो तो वह दूरसे ही फैलती है। इसीलिए संतोंने कहा है कि निरहंकार भावसे नम्र होकर सेवा करनी चाहिए।

अहंकार छोड़कर काम करना चाहिए, तभी भूदान-यज्ञ बहुत जोर करेगा। हम भगवान्‌से यही वरदान चाहते हैं कि हमारे भाई निरहंकार भावसे काम करें। अगर यह होगा तो जितनी जमीन मिलेगी उतना हृदयपरिवर्तन होगा। वह सारा दान पावनताका प्रतीक होगा और 'इतना समाज बदला' यह कहा जा सकेगा। आज हम यह नहीं कह सकते कि 'साराका सारा दान हृदय-परिवर्तनसे प्राप्त हुआ है।' परंतु परमेश्वरकी कृपासे कुछ तो दान हृदय-परिवर्तनका प्रतीक जरूर है। अगर सारा इसी तरहसे हो जाय तो भूदान-यज्ञ बहुत जल्दी सफल होगा। मेरी भगवान्‌से यही प्रार्थना है कि 'तू हमें ऐसी बुद्धि दे कि इस कार्यके निमित्तसे सारे समाजकी शुद्धि हो। शुद्धि होगी तो फिर सारे मसले हल हो जायँगे।

२०-१२-'५४ **—केवटजाली (संथाल परगना)**

: १११ :

शास्त्रकारोंने कहा है :

'धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः।'

—'धर्म, अर्थ, काम-सेवन सबको एकसाथ मिलकर समान भावसे करना चाहिए।' यह नहीं हो सकता कि चंद लोगोंको धर्मकी तालीम मिले और चंद लोगोंको न मिले। सबको धर्मकी तालीम मिलनी ही चाहिए। धर्मरत्नकी प्राप्ति हरएकको होनी चाहिए। गुणविकासका मौका हर एकको मिलना चाहिए। धर्मका समान भावसे सेवन करनेका यही मतलब है। अर्थका समान भावसे सेवन करनेका मतलब है कि हरएकको जीवन-

की आवश्यकताएँ समान रूपसे पूरी होनी चाहिए। कामका समान भावसे सेवन करनेका मतलब है कि हरएकको कामवासनाका उचित और मर्यादित भोग करनेका अवसर प्राप्त होना चाहिए।

'धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः'—यह सामाजिक जीवनका सूत्र है। इस तरहसे धर्मशिक्षण, अर्थलाभ और कामतृप्तिकी योजना हो तो समाजकी बहुत सारी समस्याएँ हल हो जायँगी। इसके अलावा यह योजना करनेके बाद समाजको यह तालीम देनी चाहिए कि काम और अर्थ तुच्छ वस्तु हैं। मुख्य वस्तु तो यह है कि 'हरएक को आत्माका दर्शन हो।' जिसे हम 'मोक्ष' कहते हैं वह सबको प्राप्त हो सके, सब उसके लिए कोशिश करें। इस तरह समाजमें धर्म, अर्थ, कामके समान सेवनकी योजना करनेके बाद सारे समाजको मोक्षपरायण बनाना चाहिए।

६-२-'५५ —बालेश्वर (उत्कल)

श्लोक और सूत्र

(पुस्तकमें आये हुए श्लोकों और सूत्रोंकी सूची)

विनोबा-साहित्य

सर्वोदयकी ओर—अहिंसक समाज-निर्माण तथा समन्वय संबंधी भाषण	।)
भूदान-प्रश्नोत्तरी—भूदान संबंधी प्रश्नोत्तर	≡)
धर्म-चक्र-प्रवर्तन—भूदान-आंदोलन संबंधी प्रवचन	।)
भगवान्‌के दरबारमें—जगन्नाथ पुरीमें मंदिर-प्रवेश संबंधी दिये गये प्रवचन	=)
साहित्यिकोंसे—साहित्यिकोंके बीच दिये गये प्रवचनों, प्रश्नोत्तरोंका संकलन	।।)
विनोबा-प्रवचन—पूर्णियाँ (बिहार) जिलेमें किये गये प्रवचनोंका संकलन	।।।)
भूदान-यज्ञ (हिंदी-अंग्रेजी)—भूदान-यज्ञके उद्‌भव और विकास संबंधी महत्त्वपूर्ण प्रवचनोंका संकलन हिंदी १।) अंग्रेजी	१।।)
Swarajya-Shastra (English)	१)

(सस्ता-साहित्य-मंडल द्वारा प्रकाशित)

गीता-प्रवचन—प्रत्येक अध्यायका सरल, सुबोध शैलीमें विवेचन	१)
स्थितप्रज्ञ-दर्शन—स्थितप्रज्ञके लक्षणोंकी व्याख्या	१।।)
ईशावास्यवृत्ति—ईशोपनिषद्‌की विस्तृत टीका	।।।)
ईशावास्योपनिषद्—मूल श्लोकों सहित ईशोपनिषद्‌का सरल अनुवाद	=)
शांति-यात्रा—गांधीजीके देहावसानके बाद अनेक स्थानोंपर दिये गये प्रवचन	१।।)
जीवन और शिक्षण—युवकोपयोगी लेखों तथा भाषणोंका संग्रह	२)
विचार-पोथी—विनोबाजीके चुने हुए मूल्यवान् विचार	१)
स्वराज्य-शास्त्र—स्वराज्यकी परिभाषा, अहिंसात्मक राज्य-पद्धति एवं आदर्श राज्यव्यवस्थाका विवेचन	।।।)
गाँव सुखी, हम सुखी—ग्राम स्वावलंबन और समाज-दर्शन संबंधी प्रवचन	=)

विनोबाजीकी ग्राम सेवामंडल, गोपुरी वर्धा द्वारा प्रकाशित ये पुस्तकें मराठीमें भी हमारे यहाँसे उपलब्ध हैं।

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

राजघाट, काशी • मगनवाड़ी, वर्धा

गो-सेवा की विचारधारा

●

संपादक
राधाकृष्ण बजाज

●

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

निवेदन

"गाय को बचाना बड़ी भारी समस्या है। कत्ल से बचाना मेरे खयाल से आसान है, लेकिन कत्ल का कारण हटाना और गाय को सब तरह से समर्थ बनाना बड़ा मुश्किल है।"

—*विनोबा*

पू० विनोबाजी ने ऊपर के वाक्य में गाय के कत्ल के कारण को हटाने और उसे सब तरह से समर्थ बनाने का विचार रखा है। उनके इस विचार को इस किताब में विशद किया गया है, और इस मुश्किल कार्य को आसानी से करने के उपाय को ढूँढ़ने की कोशिश की गयी है। स्वावलंबी अर्थव्यवस्था का आधार गाय है। आज हमारे पास बैल-शक्ति ही एकमात्र विकेंद्रित शक्ति है। विकेंद्रित अर्थ-व्यवस्था के बिना शोषणहीन समाज-रचना संभव नहीं। आज की तेल-केंद्रित अर्थव्यवस्था में दुनिया को शान्ति कैसे मिल सकती है? तेल पर्याप्त न होने के कारण संघर्ष बना ही रहेगा। पशु-शक्ति जरूरत के अनुसार बिना किसी दूसरे का हिस्सा कम किये घटाई-बढ़ाई जा सकती है। इसलिए वह विश्वशांति की पोषक है। मनुष्य जाति को मांसाहार से मुक्त करने के लिए दूध बड़ा सहारा है। मनुष्य-शरीर के लिए अधिक-से-अधिक अनुकूल एकमात्र गो-दुग्ध ही है। रद्दी-से-रद्दी जमीन को उपजाऊ बनाने की सामर्थ्य गाय में है। आज के भारत के उत्थान के लिए गाय सही माने में कामधेनु है।

अब सवाल गाय को समर्थ बनाने का है। गाय समर्थ तभी बन सकती है, जब उसे पर्याप्त चारा-दाना मिले, उसकी नस्ल सुधरे और वह स्वावलम्बी बने, अर्थात् जितना खाये उससे अधिक लौटावे। शास्त्रीय प्रयोगों के आधार पर चारे की खेती या अनाज की फसलों के साथ चारा

बढ़ाया जाना चाहिए। बुरे सांडों को बधियाकर अच्छे सांडों का निर्माण एवं नस्ल-सुधार का प्रयत्न होना चाहिए। गोरस अर्थात् गाय के दूध, दही, घी आदि पदार्थों की वाजिब कीमत मिलनी चाहिए अर्थात् उनकी माँग—उनका बाजार बना रहना चाहिए। बाजार के कायम रहने के लिए आवश्यक है कि हमारे जीवन में उनकी माँग रहे। गोसेवा को माननेवाले सब लोग अपने घरों में केवल गोरस का ही उपयोग करने का संकल्प करें, तो गोरस का बाजार टिक सकता है। जब घर-घर में गोरस का इस्तेमाल होने लगेगा, तब समझना चाहिए कि गोसेवा का श्रीगणेश हुआ।

"गो-सेवा की विचारधारा" के तृतीय संस्करण के लिए पू० विनोबाजी ने खास तौर से नयी दृष्टि (दो शब्द) लिख भेजी है। "एक ग्रामीण किसान के जीवन में आज की परिस्थिति के अनुसार गाय-बैलों की उन्नति किस तरह हो सकती है, इसका प्रयोग करना चाहिए।" उन्होंने अपने पिछले लेख में यह भी लिखा था कि मुख्य जरूरत है लगन से और ढंग से काम करनेवाले सेवकों की। यदि उनकी इन सूचनाओं पर अमल करें तो हम अपने निश्चित उद्दिष्ट की ओर तेजी से बढ़ सकेंगे। अर्थात् गो-सेवा और उसके द्वारा मनुष्य-सेवा कर सकेंगे। हमारे उद्दिष्ट का बाह्य स्वरूप इस प्रकार माना गया है :

१. गाय का शास्त्रीय पालन हो तथा गोवध कतई बन्द हो।

२. अन्न-वस्त्र की दृष्टि से हर देहात या कुछ देहातों का समूह स्वावलंबी बने।

३. कृषि के साथ गाय का मेल हो और दोनों की वृद्धि हो।

४. हरएक गाय सर्वांगी बने। वह खेती के लायक अच्छे बैल दे और रोजाना कम-से-कम १० सेर दूध दे।

५. देश के हरएक छोटे-बड़े व्यक्ति को रोजाना कम-से-कम ४० तोला दूध मिले।

मैं आशा करता हूँ कि लोग गो-सेवा को केवल पुरातन-पंथियों की रूढ़िवादिता नहीं समझेंगे, बल्कि भारत के नवनिर्माण में सबसे बड़े साधन रूप में इस प्रश्न की ओर नयी दृष्टि से देखेंगे।

इस पुस्तक के साथ नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद से प्रकाशित 'गो-सेवा' पुस्तक भी पढ़नी चाहिए, क्योंकि उसमें पूज्य बापूजी व विनोबाजी के विचार संकलित हैं।

गोपुरी, वर्धा
कृष्णाष्टमी २१-८-'५४

—राधाकृष्ण बजाज

चतुर्थ संस्करण के संबंध में

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसने अपने समाज में एक पशु भी शामिल किया है और वह है गाय। गाय की सेवाओं से सन्तुष्ट होकर मनुष्य गाय को पशु न कहकर कृतज्ञतापूर्वक 'गोमाता' कहता है।

गोवध-बन्दी के प्रश्न को लेकर आज अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क चल रहे हैं। गो-सेवा संबंधी सही मार्गदर्शन की दृष्टि से पू० बापूजी और पू० विनोबाजी के कई विचार-अंश इस संस्करण में और जोड़े गये हैं। उत्तरप्रदेश की गो-संवर्धन जाँच कमेटी के सामने गोवध-बन्दी के संबंध में सर्व-सेवा-संघ की जो दृष्टि रखी गयी थी, वह भी परिशिष्ट संख्या २ में जोड़ दी गयी है। जो कुछ जानकारी पुरानी पड़ गयी थी, उसे निकाल भी दिया गया है। कोशिश यह रही कि पुस्तक सब प्रकार से उपयोगी और सस्ती हो।

मुझे विश्वास है कि इस पश्चिमी सभ्यता के दबाव के जमाने में गाय की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका को समझने में यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

जयपुर
भू-जयन्ती, ११-९-'५५

—राधाकृष्ण बजाज

दो शब्द

[तीसरे संस्करण से]

"गो-सेवा की विचारधारा" की तीसरी आवृत्ति प्रकाशित हो रही है। उसके लिए दो शब्दों की माँग मुझसे की गयी है, तदनुसार लिख रहा हूँ।

सर्वोदय की आर्थिक योजना में गाय का क्या स्थान है, इसका अन्दाजा इस पुस्तक से पाठकों को हो जायगा। पुस्तक के दूसरे प्रकरण में (अब परिशिष्ट में) सर्व-सेवा-संघ की तरफ से गो-सेवा संबंधी जो कार्य चल रहे हैं, उनका कुछ जिक्र है। उसमें पहला कार्य है, वर्धा शहर को गोपुरी बनाने का प्रयत्न। इसमें अब तक १२ साल बीत गये हैं। अगर इस कार्य को एक निश्चित मुद्दत के अन्दर हम पूरा कर सकें, तो गो-सेवा का प्रचार-कार्य अनेक व्याख्यानों और पुस्तकों से जितना नहीं हो सकेगा, उतना उस एक प्रात्यक्षिक से होगा।

स्थानीय नस्ल-सुधार का जो कार्य किया गया है, वह निःसंशय देश में सर्वत्र अनुकरणीय है। जगह-जगह जो नस्लें हैं, उनका परित्याग करके हमारा काम नहीं हो सकता। इसलिए उनको अच्छी नस्ल में परिवर्तित करना ही हमारे लिए उपाय हो सकता है। वर्धा के इस प्रयोग को हम काफी सफल प्रयोग कह सकते हैं।

लेकिन अब एक कदम आगे जाकर नयी दिशा में काम करने की जरूरत है। एक ग्रामीण किसान के जीवन में आज की परिस्थिति के अनुसार गाय-बैलों की उन्नति किस तरह हो सकती है, इसका प्रयोग करना चाहिए। घर में जितना तेल खाया जायगा, उतनी ही खली का अंश गाय-बैल को मिलेगा। कपड़े के लिए जितना कपास बोया जायगा, उतने का ही बिनौला गाय के लिए मिल सकेगा। अनाज आदि जितना बोया

जायगा, उसीके डंठल, कड़बी वगैरह जानवरों को मिलेंगे। हरएक किसान-कुटुंब के हिस्से में अच्छी, पड़ती और बंजर जितनी जमीन जायगी उसमें से जितना हिस्सा गाय-बैलों के लिए रखना शक्य हो, उतने पर संतुष्ट रहना होगा और उसका पूर्ण लाभ उठाना होगा। यह एक सूचन मात्र किया है।

मेरा विश्वास है कि इस नयी दिशा में हम चिन्तनपूर्वक प्रयोग करेंगे, तो हमें उसमें भी सफलता हासिल होगी और उससे गाय की घर-घर में प्रतिष्ठा होगी।

मधुवन (चंपारन)
११-७-१९५४

—विनोबा

अ नु क्र म

गो-सेवा की विचारधारा

मानव के विकास-क्रम में अलौकिक : १ :

हिन्दूधर्म की मुख्य वस्तु है गोरक्षा। गोरक्षा मुझे मनुष्य के सारे विकास-क्रम में सबसे अलौकिक चीज मालूम हुई है। गाय का अर्थ मैं इन्सान से नीचे की सारी गूँगी दुनिया करता हूँ। इसमें गाय के बहाने इस तत्त्व द्वारा मनुष्य को सभी चेतन-सृष्टि के साथ आत्मीयता अनुभव कराने का प्रयत्न है। मुझे तो यह भी स्पष्ट दीखता है कि गाय को ही यह देवभाव क्यों प्रदान किया गया होगा। हिन्दुस्तान में गाय ही मनुष्य का सबसे सच्चा साथी, सबसे बड़ा आधार थी। यही हिन्दुस्तान की एक कामधेनु थी। यह सिर्फ दूध ही देनेवाली न थी, बल्कि सारी खेती का आधार-स्तंभ थी।

गाय दयाधर्म की मूर्तिमंत कविता है। इस गरीब और शरीफ जानवर में हम केवल दया ही उमड़ती देखते हैं। यह लाखों-करोड़ों हिन्दुस्तानियों को पालनेवाली माता है। इस गाय की रक्षा करना, ईश्वर की सारी मूकसृष्टि की रक्षा करना है। जिस अज्ञात ऋषि या द्रष्टा ने गोपूजा चलायी, उसने गाय से शुरुआत की। इसके सिवा और कोई ध्येय नहीं हो सकता। इस पशु-सृष्टि की अर्ज बे-जबान होने से और भी कारगर है। गोरक्षा हिन्दूधर्म की दुनिया के लिए दी हुई बख्शीश है। और हिन्दूधर्म भी तभी तक रहेगा, जब तक गाय की रक्षा करनेवाले हिन्दू हैं।

इस गाय की रक्षा किस तरह हो ? रास्ता यही है कि गाय को बचाने के लिए हम खुद मरें। गाय को बचाने के लिए मनुष्य को मारना तो हिन्दूधर्म और अहिंसा-धर्म, दोनों से इनकार करने के बराबर है।

हिन्दुओं से तो अपनी तपस्या, अपनी आत्म-शुद्धि और आत्मत्याग के बल से गाय की रक्षा करने को कहा गया है। आजकल की गोरक्षा तो मुसलमानों के साथ आये दिन लड़ाई-झगड़ा करने और जहर पैदा करने में ही रह गयी है, हालाँकि असल में गोरक्षा का अर्थ यह है कि हम अपनी प्रेम-सेवा से मुसलमानों का हृदय जीत लें।

परन्तु हिन्दू खुद आज गोरक्षा कितनी समझते हैं ? कुछ समय हुआ, एक मुसलमान मित्र ने मुझे एक पुस्तक भेजी थी। उसमें गाय और उसकी संतान पर हम जो निर्दयता का बर्ताव करते हैं, उसका विस्तार से वर्णन किया गया था। उसका एक-एक बूँद दूध खींच लेने के लिए हम किस तरह उसका खून लेते हैं, भूखों मारकर हम कैसे उसे हाड़-पिंजर बना देते हैं, उसके बछड़ों की हम कैसी दुर्दशा करते हैं, किस तरह हम उसे पूरा खाने को भी नहीं देते, बैल पर हम कैसे-कैसे जुल्म ढाते हैं, हम किस तरह उसे खस्सी करते हैं, हम उसे चाबुक, आर और लकड़ी की मार मारते हैं और उस पर कितना बेहद भार लादते हैं, इन सब बातों का उस पुस्तक में वर्णन था। अगर गाय के जबान होती, तो वह हमारे अपराधों की ऐसी गवाही देती कि सारी दुनिया काँप उठती।

इन गूँगे जानवरों के साथ किये जानेवाले हर निर्दय व्यवहार से हम हिन्दूधर्म और ईश्वर का इनकार करते हैं। मैं नहीं मानता कि दुनिया के और किसी देश में पशुओं की हालत हिन्दुस्तान से

ज्यादा खराब होगी। इसमें हम अंग्रेज को दोष नहीं दे सकते। हमारे ढोरों की दुर्दशा के लिए अपनी गरीबी का राग भी हम नहीं गा सकते। यह तो हमारी निर्दय लापरवाही के सिवा और किसी भी बात की सूचक नहीं है। हालाँकि हमारे पिंजरा-पोल हमारी दया-वृत्ति पर खड़ी हुई संस्थाएँ हैं, तो भी ये उस वृत्ति पर निहायत बेहूदा तरीके पर अमल करनेवाली संस्थाएँ मात्र हैं। वे नमूने की गोशालाओं या डेरियों और ज्वलंत राष्ट्रीय संस्थाओं के रूप में चलने के बजाय केवल लूले-लंगड़े ढोर रखने के धर्मादा खाते बन गये हैं।

हिन्दुओं की परीक्षा तिलक करने, स्वरशुद्ध मंत्र पढ़ने, तीर्थ-यात्राएँ करने या जात-बिरादरी के छोटे-से-छोटे नियमों को कट्टरता से पालने से नहीं होगी, बल्कि गाय को बचाने की शक्ति से ही होगी। आज तो गोरक्षा धर्म का दावा करनेवाले हम गाय और उसके वंश को गुलाम बनाकर खुद गुलाम बने हैं।

ता० ६-१०-'२१. —मो० क० गांधी

गोरक्षा का धर्म : २ :

मैं जैसे-जैसे गोरक्षा के प्रश्न का अध्ययन करता हूँ, वैसे-वैसे उसका महत्त्व मेरी समझ में आ रहा है। हिन्दुस्तान में गोरक्षा का प्रश्न दिन-दिन गंभीर होता जायगा, क्योंकि इसमें देश की आर्थिक स्थिति का सवाल छिपा हुआ है। मैं मानता हूँ कि हर धर्म में आर्थिक और राजनैतिक विषय रहते हैं। जो धर्म शुद्ध अर्थ (धन) का विरोधी है, वह धर्म नहीं। जो धर्म शुद्ध राजनीति का विरोधी है, वह धर्म नहीं। धर्मरहित धन त्याज्य है। धर्म के बिना राजसत्ता राक्षसी है। अर्थादि से अलग धर्म

नाम की कोई चीज नहीं। व्यक्ति या समष्टि, सब धर्म से जीते हैं, अधर्म से नष्ट होते हैं। सत्य के सहारे किया हुआ अर्थसंग्रह यानी व्यापार जनता का पोषण करता है। सत्यासत्य के विचार से रहित व्यापार उसका नाश करता है। झूठ और छल-कपट से होनेवाला लाभ क्षणिक है। अनेक दृष्टांतों से बताया जा सकता है कि उससे अन्त में हानि ही हुई है।

गोरक्षा के धर्म की जाँच करते समय हमें अर्थ (धन) का विचार करना ही पड़ेगा। अगर गोरक्षा शुद्ध धन की विरोधी हो, तो उसे छोड़े बिना काम नहीं चलेगा। इतना ही नहीं, हम रक्षा करना चाहेंगे, तो भी रक्षा नहीं हो सकेगी।

हमने गोरक्षा में छिपे हुए अर्थ-लाभ का विचार ही नहीं किया। इससे जिस देश के असंख्य लोग गोरक्षा को अपना धर्म मानते हैं, उसी देश में गाय और उसका वंश भूखों मरता है, उसकी हड्डियाँ इस तरह निकली होती हैं कि सबकी सब गिनी जा सकती हैं; और वह केवल हिन्दुओं की लापरवाही से कत्ल होती हैं। गोरक्षा में हिन्दुस्तान की खेती की हस्ती का समावेश होता है। अगर हिन्दू मात्र गोरक्षा का अर्थशास्त्र समझ लें, तो गोहत्या बंद हो जाय। धर्म के नाम पर होनेवाली हत्या से हिन्दुओं की सिर्फ मूर्खता के कारण होनेवाली हत्या सौगुनी ज्यादा होगी। जब तक हिन्दू खुद गाय की रक्षा करने का शास्त्र नहीं सीखेंगे, तब तक करोड़ों रुपया देकर भी गाय बचेगी नहीं।

गुजरात के वैश्य, भाटिया और मारवाड़ी गोरक्षा का काम करने का प्रयत्न करते हैं। वे इसके पीछे अपार धन खर्च करते हैं। उनमें भी सबसे अधिक साहस करनेवाले मारवाड़ी हैं। हिन्दुस्तान में अधिक-से-अधिक गोशालाएँ चलानेवाले मारवाड़ी व्यापारी हैं। इसमें वे खुशी से लाखों रुपया देते हैं। इसीलिए

मैंने कहा है कि मारवाड़ियों के बिना गोरक्षा का प्रश्न हल नहीं हो सकता। मैंने बहुत-सी गोशालाएँ देखी हैं, मगर एक के विषय में भी मैं यह नहीं कह सकता कि वह आदर्श गोशाला है।

ये विचार कलकत्ता में लिलुआ की गोशाला देखकर पैदा हुए हैं। इस गोशाला पर हर साल ढाई लाख रुपये खर्च होते हैं। मगर इसकी आमदनी नहीं के बराबर है। जिस गोशाला को दान में ढाई लाख रुपये प्रतिवर्ष मिलते हों, उसके द्वारा कम-से-कम १०,००० नये जानवर हर साल बचने चाहिए। इस संस्था में तो इतने जानवर पलते भी नहीं हैं। इसमें संचालकों का दोष या दगा नहीं। मुझे जो मंत्री यह संस्था दिखाने ले गये, वे यथाशक्ति सेवा कर रहे हैं। दोष पद्धति का है। ऐसी संस्थाएँ चलाने के ज्ञान का अभाव है। इससे इन संस्थाओं का पूरा लाभ जनता को नहीं मिलता।

धर्म के महकमे में व्यवहार-कुशलता की जरूरत नहीं मानी जाती। इस काम में संचालक खुद रुपया न चुराये, तो काम ठीक चलता हुआ मान लिया जाता है। जिस व्यापारी-काम में ढाई लाख रुपया सालाना पूँजी आती हो, उसमें अच्छे-से-अच्छे वैतनिक कर्मचारी रखे जाते हैं। और यहाँ घर के धंधे में डूबे हुए व्यापारी सेवाभाव से थोड़ा-सा समय दे देते हैं। समय देनेवालों को धन्यवाद ही मिलना चाहिए, मगर उससे गोमाता की रक्षा नहीं होती। गोमाता की रक्षा के लिए तो कार्यदक्ष आदमियों का एक-एक क्षण इसी काम में लगना चाहिए। यह या तो केवल ज्ञानवान, तपस्वी और त्यागी कर सकता है या कार्यकुशल भोगी अच्छी तनख्वाह लेकर कर सकता है। धर्मादा करनेवाले भले ही व्यवहार-कुशल न हों, परन्तु धर्मादे का काम चलानेवालों में तो व्यापारी से भी अधिक कुशलता, उद्यम वगैरह होने

चाहिए। जो नियम व्यापारी पर लागू होते हैं, वे सब नीति-नियम धर्मादे के काम पर लागू होने चाहिए। गोशालाएँ व्यापार के लिए चलती हों, तो उनमें तत्संबंधी शास्त्रीय ज्ञानवाले आदमी काम करनेवाले होने चाहिए, जो नित नये प्रयोग करके अधिक-से-अधिक गायों को बचायें, गोशाला में नस्ल-सुधार, दूध की शुद्धता और दूध की वृद्धि आदि के अनेक प्रयोग करें। यह स्पष्ट है कि नस्ल-सुधार का ज्ञान जैसा गोशाला द्वारा मिल सकता है, वैसा और कहीं नहीं मिल सकता। लेकिन गोशाला धर्मादे का काम है, इस कारण वह किसी भी तरह चल सकती है; उसके बारे में कोई फिक्र नहीं करता। जैसे वेद की पाठशाला में वेद का कम-से-कम ज्ञान मिले तो वेद की अवज्ञा होती है, वैसा ही हाल आज गोशालाओं का है।

ता० ६-६-'२५ —मो० क० गांधी

गोरक्षा की शर्तें : ३ :

मुझे इस बात का रह-रहकर अफसोस होता है कि मैंने गोरक्षा का काम अपने जीवन के आखिरी वर्षों में हाथ में लिया। लेकिन जहाँ-जहाँ भार माँगकर न लिये गये हों, बल्कि अपने-आप सामने आकर इस तरह खड़े हो जाते हों कि उन्हें लौटाया नहीं जा सके और सिर पर ही रखना पड़े, वहाँ दुःख भी क्या माना जाय? गोरक्षा के बारे में मेरा यही हाल हुआ है।

कुछ दिन पहले घाटकोपर में भाई नगीनदासजी की कर्तव्य-परायण व्यवस्था में चलनेवाले जीवदया-खाते को देखने का मुझे अवसर मिला। बम्बई में इस वक्त आवारा फिरनेवाले और अनेक रोग पैदा करनेवाले दुधारू ढोरों के खानगी तबेले बीच बस्ती

में हैं, जहाँ ढोरों को फिरने-डोलने की भी जगह नहीं होती और जहाँ से अच्छे-से-अच्छे पशु असमय ही कसाईखाने चले जाते हैं। ऐसी स्थिति में अन्त में सम्पूर्ण परिवर्तन कर डालने के प्रशंसनीय हेतु से यह खाता दुग्धालय का प्रयोग कर रहा है। परन्तु इस खाते के अच्छी तरह चलते हुए भी उसमें कितने ही मूलभूत दोष हैं, जिनकी तरफ मुझे खाते का ध्यान खींचना पड़ा। ऐसा करते हुए मुझे गोरक्षा कार्य की कितनी ही शर्तें अंकित करनी पड़ीं। इन्हें फिर एक बार यहाँ रख देना अप्रासंगिक न होगा :

(१) ऐसी हर संस्था बस्ती से खूब दूर खुले में होनी चाहिए, जहाँ घास हो और पशुओं को घूमने के लिए बहुत यानी हजारों एकड़ जमीन हो। अगर सारी गोशालाएँ मेरे हाथ में हों, तो गायों की आयात के काम के लिए जितनी उपयोगी हों उतनी रहने देकर बाकी सभी गोशालाएँ अच्छी कीमत पर बेच डालूँ और पड़ोस में ऊपर कहे अनुसार खुली जमीनें लूँ।

(२) हर गोशाला को नमूने का दुग्धालय और नमूने का चर्मालय बना डालना चाहिए। एक-एक मरे हुए ढोर को फेंक देने के बजाय रखना चाहिए और उस पर सभी शास्त्रीय क्रियाएँ करके उसके चमड़े, हड्डियों और अँतड़ियों वगैरह सब चीजों का अधिक-से-अधिक उपयोग कर लेना चाहिए। मैं तो कत्ल होनेवाले जानवरों के चमड़े या दूसरी चीजों के मुकाबले में मरे हुए जानवरों के चमड़े को पवित्र और खास तौर पर काम में लेने लायक समझता हूँ। कत्ल होनेवाले जानवरों के हाड़-चाम से बनी हुई चीजें मनुष्य को, कम-से-कम हिन्दुओं को तो अग्राह्य ही माननी चाहिए।

(३) बहुत-सी गोशालाओं में गोबर, मूत्र वगैरह फेंक दिया जाता है। इस बिगाड़ को मैं निरा अपराध ही मानता हूँ।

(४) हर गोशाला की व्यवस्था इस विषय का शास्त्रीय ज्ञान रखनेवाले आदमियों की देखरेख में और उनकी सलाह से होनी चाहिए।

(५) हर गोशाला स्वावलम्बी होनी चाहिए और उपयुक्त व्यवस्था रहे तो ऐसा होगा ही। दानधर्मादि का उपयोग गोशालाओं के विकास में होना चाहिए। इन संस्थाओं को कमाई करनेवाले विभाग न बनने देना चाहिए। लेकिन कमाई होती हो, तो उसे लूले-लंगड़े, कमजोर और बूढ़े ढोरों को खरीद लेने में और कसाईखाने जानेवाले सारे पशुओं को खुले बाजार में खरीद लेने में खर्च कर डालना चाहिए। यह योजना गोरक्षा के मूल में है।

(६) अब अगर हमारी गोशालाएँ भैंस, बकरियाँ वगैरह पालने लगें, तो ऊपर का हेतु पूरा होना मुश्किल हो जाय। मैं तो बहुत चाहता हूँ कि स्थिति दूसरी हो, मगर जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, वहाँ तक तो सारे हिन्दुस्तान के शाकाहारी बने बिना बकरों और मेढ़ों को कसाई की छुरी से बचाया नहीं जा सकता। और भैंस तो आसानी से बच जाय, अगर हम भैंस के दूध का स्वाद भूलकर धर्मबुद्धि के साथ उसे पीना छोड़ दें और गाय का ही दूध पीना पसन्द करें।

परन्तु दुःख की बात है कि आज तो गाय का दूध छोड़कर भैंस का दूध पीने की प्रथा सर्वमान्य हो चली है। वैद्य-डॉक्टर तो एक स्वर से घोषणा करते हैं कि गाय के दूध में भैंस के दूध से ज्यादा गुण हैं और दुग्धालय-शास्त्रियों का कहना है कि गाय का दूध उपयुक्त व्यवस्था करने से आज से ज्यादा कसदार बनाया जा सकता है। मैं मानता हूँ कि भैंस और गाय, दोनों को हम नहीं बचा सकते। भैंस पालना छोड़ देंगे, तभी गाय बच सकेगी। खेतीबारी के काम में किसी बड़े पैमाने पर भैंसा उपयोगी नहीं।

और भैंस को आगे से आश्रय देना छोड़ दें, तो भी आज उसकी जितनी संतान है वह सहज में बच सकती है। भैंस रखना—बल्कि गाय रखना भी—कोई धर्म-ऋण नहीं है। हम तो अपने उपयोग के लिए पालते हैं। लेकिन आज तो भैंस को पालने से गाय और भैंस, दोनों का श्राप लेना है। दयाधर्मियों को जानना चाहिए कि हिन्दू ग्वाला दूध पीते पाड़े को निष्ठुरता से मार डालता है, क्योंकि उसे पालना भारी पड़ता है। गाय और उसकी सन्तान को बचाने की खातिर इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं कि हिन्दू गाय और उससे पैदा होनेवाली चीजों के व्यापार का मुनाफा छोड़ दें। दयाधर्मी अर्थशास्त्र अर्थात् जिसमें आमद-खर्च बराबर रहते हों, ऐसे अर्थशास्त्र के साथ धर्म मेल खाता हो, तो ही वह धर्म सच्चा गिना जायगा। ऐसा अर्थशास्त्र गाय के और सिर्फ गाय के ही साथ निभ सकता है, जिसमें कुछ वर्षों तक धर्मपरायण हिन्दुओं की दान-धर्म की रकमें मदद देंगी।

हमें नहीं भूलना चाहिए कि गोरक्षा की हमारी यह हलचल सारी गोमांसभक्षक दुनिया के सामने दयाधर्म की दिशा में एक महान् प्रयत्न है। इसलिए जब तक सारी दुनिया अधिकांश में शाकाहारी न बने, तब तक तो मुझे लगता है कि अपनी इस हलचल के लिए जो मर्यादाएँ मैंने ऊपर बताने का प्रयत्न किया है, उनसे अधिक हम कुछ नहीं कर सकेंगे। हम इतना कर सकें, तो भावी सन्तान के लिए एक बहुत बड़े प्रयत्न का मार्ग खोल देंगे। इन मर्यादाओं को न मानना तो भैंस और दूसरे जानवरों के साथ-साथ गाय को भी सदा के लिए कसाई के हाथों सौंप देने के बराबर है। ● ● ●

ता० ३–४–'२७ —मो० क० गांधी

गाय : हमारा सांस्कृतिक प्रतीक   : ४ :

आजकल जिस तरह गोसेवा का कार्य हो रहा है, दूसरी संस्थाएँ जो कुछ कर रही हैं, उसमें और गोसेवा के काम में बड़ा अंतर है। वह काम जनता के सामने नहीं आ रहा था। जमनालालजी के इसमें पड़ जाने से वह सबकी नजर में आ गया है। कल जब मैंने पेरिन बहन से सम्मेलन में आने को कहा तो वह राजी न हुई। वह बम्बई की एक बड़ी काम करनेवाली बहन है। बोली, 'मैं तो हिन्दुओं की गोसेवा का दृश्य भूलेश्वर में रोज देखती हूँ। वह गोसेवा नहीं, वहम है। मैं तो तब चलूँगी, जब हिन्दू बुद्धि से काम लेंगे और सचमुच गाय के लिए कुछ करके दिखावेंगे।' उसके कथन में बहुत सत्य है। गोरक्षा का दावा करनेवालों को गोशाला और गोवंश की हालत का ज्ञान नहीं है। अपने को परम्परा से गोभक्त माननेवाले लोग एक तरफ गोसेवा के नाम पर पैसा देते हैं और दूसरी तरफ व्यापार में बैलों के साथ निर्दयता करते हैं। ये हमारे चौंडे महाराज हैं। बरसों से गोसेवा का काम करते हैं। हमारे विचार अलग-अलग हैं। लेकिन समझाने पर वे कुछ मान भी लेते हैं, फिर भी वे कहते हैं कि जनता नहीं मानती। वे गायों को कसाई से छुड़ाते हैं। लेकिन इन तरीकों से काम नहीं चलेगा। मैं किसीकी टीका नहीं करता। सिर्फ यह बताना चाहता हूँ कि हममें असली उपाय के प्रति अज्ञान भरा पड़ा है। यही बात मैंने पिंजरापोलों में भी देखी। वहाँ भी विवेक, मर्यादा और ज्ञान की कमी पायी।

मुसलमानों से गोकुशी छुड़ाने के लिए उनका विरोध किया

जाता है और गाय को बचाने में इन्सानों का खून तक हो जाता है। लेकिन मैं बार-बार कहता हूँ कि मुसलमानों से लड़कर गाय नहीं बच सकती। इसमें तो और भी ज्यादा गाय मारी जावेगी।

असली दोष तो हिंदुओं का है। घी का सारा व्यापार हिंदुओं के हाथ में है। लेकिन क्या घी, दूध शुद्ध मिलता है? दूध में मिलावट की जाती है और जो पानी मिलाया जाता है, वह भी स्वच्छ नहीं होता। घी में दूसरे पशुओं का घी और वेजीटेबल घी मिलाया जाता है। फूँके से दूध निकाला जाता है। बाजार में जो घी बेचा जाता है, उसे एक तरह से जहर कहें तो ज्यादा सही है। न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया या डैनमार्क से विश्वस्त रूप से गाय का शुद्ध मक्खन मिल सकता है। लेकिन हिन्दुस्तान में जो भी मिलता है, उसकी शुद्धता की कोई गारंटी नहीं। वर्धा में भी जहाँ जमनालालजी और हम इतने सालों से पड़े हैं, एक भी दूकान ऐसी नहीं है, जहाँ गाय का सेर भर भी घी शुद्ध मिल सकता हो।

हमारे लिए तो प्राणीमात्र की रक्षा करना धर्म है। लेकिन जब तक सबसे उपयोगी पशु को हम सच्चे अर्थ में नहीं बचा लेते, तब तक दूसरे जानवरों की रक्षा नहीं हो सकती। हमने तो गाय की उपेक्षा करके गाय और भैंस, दोनों को मौत के दरवाजे पहुँचा दिया। इसलिए मैं कहता हूँ कि उपयुक्त उपाय करके हम सचमुच गाय को बचा लेंगे व दूसरे जानवर भी बच जायँगे। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब हमें इसका सच्चा विज्ञान और अर्थशास्त्र मालूम होगा। तभी हम पेरिन बहन जैसों की इस काम में दिलचस्पी पैदा कर सकेंगे। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि हम भैंस के घी-दूध का कितना पक्षपात करते हैं! असल में हम निकट का स्वार्थ

देखते हैं, दूर का लाभ नहीं सोचते। नहीं तो यह साफ है कि अन्त में तो गाय ही ज्यादा उपयोगी है। गाय के घी और मक्खन में एक खास तरह का पीला रंग होता है, जिसमें भैंस के मक्खन से कहीं अधिक केरोटीन यानी विटामिन 'ए' रहता है। इसमें एक खास तरह का स्वाद भी है। मुझसे मिलने को आनेवाले विदेशी यात्री सेवाग्राम में गाय का शुद्ध दूध पीकर लट्टू हो जाते हैं। और यूरोप में तो भैंस के घी-मक्खन को कोई जानता ही नहीं। हिन्दुस्तान ही ऐसा देश है जहाँ भैंस का घी-दूध इतना पसन्द किया जाता है। इसीसे गाय की बरबादी हुई है और इसलिए मैं कहता हूँ कि हम सिर्फ गाय पर ही जोर न देंगे तो वह नहीं बच सकती। यह बड़े दुख की बात है कि सब गाय और भैंसें मिलकर हम चालीस करोड़ लोगों को पूरा दूध नहीं दे सकतीं। हमें यह विश्वास होना चाहिए कि गाय का महत्त्व इसलिए है कि वही काफी दूध और खेती और बारबर-दारी के लिए जानवर देनेवाली है। वह मरने पर भी मूल्यवान है, यदि उसके चमड़े, हड्डी, मांस और अँतड़ियों का भी हम उपयोग करते हैं। लेकिन चौंडे महाराज को आम लोगों को यह समझाने में शंका है कि मरी हुई गाय का चमड़ा पवित्र है। पूछता हूँ कि पवित्र क्यों नहीं है? मैं तो गाय के मुर्दार जूते पहनकर घर के भीतर जाने में भी संकोच न करूँ यदि वे जूते साफ हों। मुझे ऐसे जूते पहनकर भोजन करने में भी परहेज न रहेगा। यह सब मुझे यह सिद्ध करने के लिए कहना पड़ता है कि गाय हमारे लिए मुनाफे की चीज है, घाटे का सौदा नहीं। आज बहुत जगह या तो मुर्दा गाय को गाड़ देते हैं या उसे कौड़ियों में बेच डालते हैं। यह कितने अज्ञान की बात है! उधर मुर्दार मांस खानेवाले हरिजनों से हम घृणा करते

हैं; लेकिन यह भूल जाते हैं कि इसमें दोष हमारा ही है। अगर हम मुर्दार चमड़े को अच्छी तरह कमायें, मुर्दार मांस की खाद का महत्त्व जानें और हड्डी और अँतड़ियों का उपयोग कर सकें, जैसा कि नालवाड़ी में प्रत्यक्ष होता है, तो फिर मुर्दार मांस खाने का सवाल ही नहीं रहता।

पिंजरापोलों का प्रश्न कठिन है, देश भर में उनकी संख्या काफी है। शायद हर बड़े कस्बे में, एक-दो धर्मार्थ गोशाला होंगी, उनके पास रुपया भी बहुत जमा है। लेकिन बहुतों की व्यवस्था बिगड़ी है। जब से मैं दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तान आया हूँ, तभी से मैंने पिंजरापोलों के सुधार की रट लगा रखी है। लेकिन जब तक हम यह न समझ लेंगे कि इन संस्थाओं का असली कार्य क्या है, तब तक उनमें देश का रुपया जिस तरह बर्बाद होता रहा हैं, आगे भी होता रहेगा। उनका असली काम उन सूखे, बूढ़े और अपाहिज गाय-बैलों का पालन करना है जिनकी देखभाल मालिक अलग-अलग नहीं कर सकते। शहरों में तो उनका पालन दरअसल असंभव है। इन संस्थाओं का काम दूध का व्यवसाय करना नहीं है। हाँ, वे चाहें तो एक अलग दुग्धालय या गोशाला-विभाग रख सकती हैं। लेकिन उनका मुख्य धर्म यही है कि बूढ़े और अपंग ढोरों का पालन करें और चर्मालय के लिए कच्चा माल भेजें। हर पिंजरा-पोल के साथ एक-एक सुसज्जित चर्मालय होना चाहिए। उन्हें उत्तम सांड भी रखने चाहिए, जो जनता के भी काम आ सकें। शेष सांड और बछड़ों को खस्सी करके बैल बनाने के लिए उन संस्थाओं के पास अहिंसक और वैज्ञानिक साधन होने चाहिए। खेती और गोपालन की शिक्षा का भी प्रबन्ध उनमें होना चाहिए। हमारे खेती और गोपालन की उच्च शिक्षा पाये हुए नवजवानों के

लिए पिंजरापोलों में सेवा का विशाल क्षेत्र मौजूद है। हर पिंजरापोल में इस तरह का एक-एक विशारद रहे। उसे अनुभव और तालीम भी मिलेगी। ये सब पिंजरापोल हमारे संघ के साथ संबद्ध होने चाहिए और इस केन्द्रीय संस्था की तरफ से हर पिंजरापोल को शास्त्रीय सलाह मिलनी चाहिए। साथ ही संघ हर जगह से जानकारी प्राप्त करके शाखाओं को उनका लाभ पहुँचाये।

संघ ने अपने सदस्यों के लिए यह शर्त रखी है कि वे गाय का ही घी-दूध खायँ और गाय-बैल का मुर्दार चमड़ा ही काम में लें। इस नियम के पालन में बड़ी कठिनाई यह बतायी जाती है कि जिनके यहाँ हम मेहमान बनते हैं, उनको बड़ी दिक्कत और परेशानी होती है। लेकिन इन कठिनाइयों को बहुत महत्त्व नहीं देना चाहिए। आप भी काका साहब की तरह जहाँ जायँ अपने साथ गाय का घी ले जा सकते हैं। उसके बिना भी काम चला सकते हैं। यह तो प्रचार का अच्छा साधन है। इससे आप अपने यजमान का भी विचार पलट सकते हैं। परन्तु धर्म का पालन सदा कष्टदायी तो होता ही है, उससे भागने में न बहादुरी है, न जीवदया।

अन्त में मैं कहूँगा कि आप सब लोग जमनालालजी को इस काम में मदद दीजिये। खास तौर पर पिंजरापोलोंवाला काम टेढ़ी खीर है। आपकी मदद के बिना जमनालालजी की हजार कोशिशें भी पार नहीं पड़ेंगी। आज तो गाय मृत्यु के किनारे खड़ी है और मुझे भी यकीन नहीं है कि अन्त में हमारे प्रयत्न इसे बचा सकेंगे। लेकिन यह नष्ट हो गयी तो उसके साथ ही हम भी यानी हमारी सभ्यता भी नष्ट हो जायगी। मेरा मतलब हमारी अहिंसा-प्रधान और ग्रामीण संस्कृति से है। इसलिए हमें दो में से एक रास्ता चुनना पड़ेगा। या तो हमें हिंसक

बनकर घाटा देनेवाले सब पशुओं को मार डालना होगा और उस हालत में यूरोप की तरह हमें दूध और मांस के लिए पशु-पालन करना होगा। लेकिन हमारी संस्कृति मूल में ही दूसरी तरह की है। हमारा जीवन हमारे जानवरों के साथ ओतप्रोत है। हमारे अधिकांश देहाती अपने जानवरों के साथ ही रहते हैं और अक्सर एक ही घर में रात बिताते हैं। दोनों साथ जीते हैं और साथ ही भूखों मरते हैं। बहुधा मालिक अपने दुबले ढोर को बहुत कम खिलाकर उसका शोषण करता है, उसके साथ मारपीट करता और निर्दयता से काम लेता है। लेकिन हमारा काम करने का ढंग सुधर जाय तो हम दोनों बच सकते हैं, नहीं तो हम दोनों को एक ही साथ डूबना है और न्याय भी यही है कि साथ ही डूबें और साथ ही तरें।

हमारे सामने तो हल करने का प्रश्न आज अपनी भूख और दरिद्रता का है। लेकिन मैंने आज सिर्फ अपने ढोरों की भूख और दरिद्रता का सवाल ही सामने रखा है। हमारे ऋषियों ने हमें रामबाण उपाय बता दिया है। वे कहते हैं, "गाय की रक्षा करो, सबकी रक्षा हो जायगी।" ऋषि ज्ञान की कुंजी खोल गये हैं। उसे हमें बढ़ाना चाहिए, बरबाद नहीं करना चाहिए। हमने विशेषज्ञों को बुलाया है और हम उनकी सलाह से पूरा लाभ उठाने की कोशिश करेंगे। हम साधारण लोग जो कहते हैं वह निर्णायक नहीं है। हम अपने विचारों को विशेषज्ञों के ज्ञान और अनुभव की कसौटी पर कसेंगे और उसी के प्रकाश में अपना रास्ता बनायेंगे। ● ● ●

ता० १-२-'४२

—मो० क० गांधी

गांधीजी के भावना व नीति-दर्शक वचन : ५ :

१. गोसेवा-संघ का काम बहुत ही बड़ा है। श्री जमनालाल-जी ने गोपुरी का छोटा-सा दायरा पसन्द करके यहीं अपना काम शुरू किया। उसको हमें आगे बढ़ाना है।

२. मैं मानता हूँ कि जितनी आसानी से हमें पानी मिलता है, उतनी ही आसानी से दूध भी मिलना चाहिए।

३. वर्धा का दृष्टांत देकर मैं सबसे कहता हूँ कि हरएक अपनी शक्ति के अनुसार हृष्ट-पुष्ट और अच्छी गायें बनाये।

४. सिर्फ गाय का ही घी-दूध आदि और मृत पशु की चमड़ी काम में लाने की शर्तें हरएक सदस्य पर बंधनकारक होनी चाहिए।

५. यदि हम गोरक्षा नहीं करेंगे, तो गाय और भैंस दोनों का नाश होनेवाला है।

६. गोसेवक बनने के लिए पवित्र आदमी की जरूरत है। सिर्फ काबिल आदमी यह नहीं कर सकेगा।

७. जब तक गोवध होता है, तब तक मुझे ऐसा लगता है कि मेरा खुद का ही वध हो रहा है। मेरे सारे प्रयत्न गोवध रोकने के लिए ही हैं।

८. गाय को बचाने के लिए जो अपने प्राण देने को तैयार नहीं, वह हिंदू नहीं। गोरक्षा की भावना हिन्दूधर्म की मानव-जाति के लिए एक बड़ी भेट है।

९. मेरी गहरी-से-गहरी दो मनोकामनाएँ हैं :—एक अस्पृश्यता निवारण और दूसरी गोसेवा। इनकी सिद्धि में ही मुझे मोक्ष दिखाई देता है।

१०. जैसे दुबले हमारे ढोर, वैसे ही हम। जहाँ ढोर भूखों मरते हैं, वहाँ ३ करोड़ आदमी भूखों मरें, तो आश्चर्य ही क्या ?

११. मैं नहीं मानता कि आज पिंजरापोल गाय या उसके वंश की रक्षा करते हैं। पिंजरापोलों में मैं आदर्श गाय-बैल देखने की आशा रखता हूँ। वे शहरों के बीच न होकर बड़े-बड़े खेतों पर होने चाहिए।

१२. गोरक्षा मुझे मनुष्य के सारे विकासक्रम में सबसे अलौकिक चीज मालूम हुई है। गाय का अर्थ इन्सान के नीचे की सारी मूक दुनिया करता हूँ। इसमें गाय के बहाने इस तत्त्व द्वारा मनुष्य को सभी चेतन सृष्टि के साथ आत्मीयता अनुभव कराने का प्रयत्न है।

● ● ●

गो-सेवा कैसे हो ? : ६ :

संस्कृत में 'गोसेवा' शब्द हमको शायद ही मिले। वहाँ 'गोरक्षा' शब्द का प्रयोग है। इसलिए हम सब लोग वह शब्द जानते हैं। लेकिन जानकर भी, हेतुपूर्वक, उसको छोड़ा है, और 'गोसेवा' शब्द अधिक नम्र समझकर चुन लिया है। यानी हम अपने में गोरक्षा की सामर्थ्य नहीं पाते, इसलिए गोसेवा से संतोष मान लिया है। अर्थात् दयाभाव से हमसे जितनी हो सकेगी, उतनी हम गाय की सेवा करेंगे और भगवान् की कृपा से जब हममें ताकत आ जायगी, तब फिर हम गोरक्षा करेंगे।

लेकिन जब हम 'गोसेवा' कहते हैं, तो यह पूछा जायगा कि "आप लोग गाय की क्या सेवा करना चाहते हैं ? अगर आप गाय का दूध और घी बढ़ाना चाहते हैं, और अच्छे बैल पैदा करना चाहते हैं, तो इसमें कौन सी 'गोसेवा' है ? इसमें तो आप लोग अपनी खुद की ही सेवा करना चाहते हैं। अंग्रेज लोगों ने 'पब्लिक सर्विस' शब्द निकाला है, वैसी ही आपकी यह गोसेवा हुई !"—ऐसा आक्षेप हो सकता है। इसके जवाब में कुछ कहना ठीक होगा।

हम लोग अपनी मर्यादा समझते नहीं। इसीलिए यह सवाल उठ सकता है। 'सेवा' और 'उपयोग' के बीच कोई आवश्यक विरोध नहीं है, यह समझने की जरूरत है। हम जिस प्राणी का उपयोग नहीं करते, उसकी सेवा करने की ताकत हममें नहीं होती। यह हमारी मर्यादा है। उसमें स्वार्थ का कोई मुद्दा नहीं है। एक-दूसरे की सेवा करने का यही एक रास्ता हमारे लिए

ईश्वर ने खुला रखा है। नहीं तो, जैसा कि बापू ने बताया, पिंजरापोलों में जो होता है, वही सारे समाज में होता रहेगा। आज भी हम यही हाल देखते हैं। पत्ती को खिलाते हैं और आदमी को भूखा रखते हैं। इस तरह दया या सेवा तो नहीं होगी, बल्कि निर्दयता या असेवा होगी।

ईश्वर के अनन्त गुण हैं। उनमें से हमें अनेक गुणों का अनुकरण करना है। लेकिन ईश्वर का जो विशेष गुण है, उसका अगर हम अनुकरण करेंगे, तो वह अहंकार होगा। ईश्वर के और सब गुणों का अनुकरण शक्य है, परन्तु उसके विशेष गुण का, यानी उसके ऐश्वर्य का, अनुकरण शक्य नहीं। वह सृष्टि का पालन करता है और संहार भी करता है। इसमें हम उसका अनुकरण नहीं कर सकते। हम किसीका पालन या रक्षण नहीं कर सकते। बहुत हुआ तो चींटियों के लिए शक्कर डाल देंगे। चींटियाँ वहाँ इकट्ठी हो जायँगी। और अगर संयोग से वहाँ पर एकाध बैल आ जाय, तो उसके पैर के नीचे वे खत्म हो जायँगी। जब ऐसी बात होगी, तो उसकी जिम्मेवारी मैं कैसे उठाऊँगा ? मैं तो कह दूँगा कि यह तो ईश्वर की करतूत है !

यहाँ मुझे एक घटना याद आती है। एक थी बुढ़िया। उसका एक बेटा था। बेटा उसकी बात मानता नहीं था। इसलिए वह बहुत दुखी रहती थी। जब उसके पास मैं पहुँचा, तो वह कहने लगी—"मैंने इसको पाला-पोसा, लेकिन यह मेरी मानता ही नहीं।"

मैंने उससे पूछा—"क्या तेरा यह अकेला ही लड़का है ?"

उसने कहा—"हाँ, तीन-चार और थे; वे सब मर गये।"

तब मैंने अपने जंगली ढंग से सीधा सवाल पूछा—"माजी, तुमने अपने तीन-चार लड़कों को क्यों मार डाला ?"

आप समझ सकते हैं कि मेरे इस जंगली सवाल से उसके

दिल पर कितनी चोट लगी होगी ! थोड़ी देर के लिए वह सहम गयी और बाद में कहने लगी—"मैं क्या करूँ ? भगवान् ने चाहा सो हुआ ।" तब मैं उससे पूछता हूँ—"अगर तुम्हारे तीन लड़कों को भगवान् ने मार डाला है, तो तुम्हारा यह जो चौथा बेटा है, उसको पाला-पोसा किसने ? पाला-पोसा तो तुमने और मार डाला भगवान् ने, यह कैसे हो सकता है ? या तो दोनों जिम्मेवारियाँ उठाओ या दोनों को छोड़ दो ।"

जिस प्राणी का हमारे लिए उपयोग नहीं है, उसकी सेवा हमसे नहीं हो सकती । गो-सेवा का रास्ता सीधा है । गाय का हमें ज्यादा-से-ज्यादा उपयोग तो है ही । वह करने की कोशिश करेंगे और उसके साथ-साथ उसकी सेवा, अधिक-से-अधिक जितनी हो सकती है, करेंगे; जैसी कि हम अपने बच्चों की सेवा करते हैं । यही उसका सीधा अर्थ होता है ।

गोसेवा का प्रथम पाठ हमें वैदिक ऋषि-मुनियों ने सिखाया और समझाया है । कुछ लोगों का कहना है कि गोसेवा का पाठ पढ़ाकर ऋषियों ने हममें अनुचित पूजा के भाव पैदा किये हैं । ऐसी पशु-पूजा वैज्ञानिक नहीं है । पर वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है । जिस तरह हम उपयोग की दृष्टि से विचार करते हैं, उसी तरह सीधे उपयोग की दृष्टि से ऋषि-मुनियों ने भी विचार किया है। उसी दृष्टि से उन्होंने बतलाया है कि हिन्दुस्तान के लिए गोसेवा मुफीद है । इसलिए वही धर्म हो सकता है । तब हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम गाय का जितना हो सकता हो, उतना उपयोग करें । वेद का वचन है :

'सहस्रधारा पयसा मही गौः ।'

'ऐसी गाय जिससे कि दूध की हजार धाराएँ रोज पैदा होती

हैं।' आप समझ सकते हैं कि दूध की एक धारा कितनी होती है। हिसाब करने पर मालूम होगा कि वैदिक गाय का दूध चालीस-पचास रतल (१ रतल = ३६ तोला) होता था। इस पर से आप समझ लेंगे कि उनकी मंशा क्या थी और गायों से वे क्या अपेक्षा रखते थे ? आजकल गाय का दूध नहीं मिलता, ऐसी शिकायतें आती हैं। वैदिक ऋषियों ने गोसेवा की दिशा भी बतलायी है।

अक्सर सुना जाता है कि दूध तो गायों से ज्यों-त्यों मिल सकता है, परन्तु घी के लिए तो भैंस की ही शरण लेनी पड़ेगी। लेकिन हमारे प्राचीन वैदिक ऋषि यह नहीं मानते। वे कहते हैं :

'यूयं गावो मेदयथाः कृशंचित्।'

हे गायो, जिसका शरीर (स्नेह के अभाव से) सूख गया हो, उसे तुम अपने मेद से भर देती हो। यहाँ 'मेदयथाः' यानी 'मेदती हो' का इस्तेमाल किया गया है। 'मेद' कहते हैं चरबी को, स्नेह को—जिसे हम अंग्रेजी में 'फैट' कहते हैं। इसका मतलब यह है कि दुबले-पतले को मोटा-ताजा बनाने लायक चरबी गाय के दूध में पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए। और अगर आज गाय के दूध में घी की मात्रा कम मालूम होती है, तो उसे बढ़ाना हमारा काम है। वह कसर गाय में नहीं, बल्कि हमारी कोशिश में है।

इसकी पुष्टि में उन्होंने गाय का वर्णन यों किया है :

'अश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्।'

जो शरीर अश्रीर है, उसे गाय श्रीर बनाती है। 'श्रीर' का अर्थ 'शोभन' है और 'अश्रीर' का अर्थ 'शोभाहीन'। 'अश्रीर' से

ही 'अश्लील' शब्द बना है। इस पर से आप समझ लेंगे कि हमको गोसेवा का पहला पाठ वैदिक ऋषियों ने पढ़ाया है। उसके विकास की दिशा भी बतला दी है और वह दिशा अनुचित पूजाभाव की नहीं, बल्कि शुद्ध वैज्ञानिकता की है, यानी परम उपयोगिता की है।

सेवा से मतलब उपयोगहीन सेवा नहीं है। उपयोग के साथ-साथ उपयोगी जानवर की यथासंभव अधिक-से-अधिक सेवा करना ही उसका अर्थ है। इसका भाव यह है कि उपयोगी जानवर को हमें अधिकाधिक उपयोगी बनाना है और इसी तरह हम इसकी अधिक-से-अधिक सेवा कर सकते हैं; जैसा कि हम अपने बाल-बच्चों के विषय में करते हैं। इस तरह हमारे लिए सेवा का उपयोग के साथ नित्य सम्बन्ध है। अब मैं जरा और आगे बढ़ूँगा। जैसे हम उपयोगहीन सेवा नहीं कर सकते, वैसे ही सेवाहीन उपयोग भी हमें नहीं करना चाहिए। 'गोसेवा' नाम में 'सेवा' शब्द का यही अर्थ है। यानी हम बगैर सेवा का लाभ नहीं उठायेंगे। यह आज भी होता है। हम ढोरों की सेवा कुछ-न-कुछ तो करते ही हैं। लेकिन शास्त्रीय दृष्टि हमारे पास नहीं है। विशेषज्ञों से इस काम में हम सहायता जरूर लेंगे। लेकिन सब काम उन पर नहीं छोड़ना चाहिए। हमें गाय की प्रत्यक्ष सेवा करनी चाहिए। जब ऐसा होगा, तब उसमें से गोसेवा का थोड़ा-बहुत शास्त्र हमारे हाथ आ जायगा।

पवनार में हमारे आश्रम के एक भाई, नामदेव ने दो-चार गायें पाली हैं। बाजार के लिए उसे एक दिन सेलू जाना पड़ा। शाम को नामदेव वापस लौटा और गाय दुहने के लिए बैठा, तो गाय ने दूध नहीं दिया। उसने काफी कोशिश की। तब उसने पूछा—"आज गाय को क्या हो गया है ?" जवाब मिला—

"कुछ तो नहीं। पता नहीं दूध क्यों नहीं देती ? बछड़ा भी तो बँधा हुआ था। इसलिए वह भी दूध नहीं पी सका होगा।" निदान नामदेव ने पूछा—"किसीने उसे पीटा-पाटा तो नहीं ?" एक भाई ने कहा—"हाँ, पीटा तो सही।" नामदेव ने कहा—"बस, तो इसीलिए वह दूध नहीं देती।" फिर नामदेव गाय के पास पहुँचा। उसने उसके शरीर पर हाथ फेरा, उसे पुचकारा। तब गाय कुछ देर के बाद दूध देने के लिए तैयार हो गयी। यह किस्सा इसलिए कहा कि हमें समझना चाहिए कि जब हम नामदेव की तरह सेवा करेंगे, तो उसीमें से गोसेवा का रहस्य धीरे-धीरे स्पष्ट हो जायगा और गोसेवा का शास्त्र बनेगा।

कालिदास ने, जो कि हिन्दू संस्कृति के अप्रतिम प्रतिनिधि हैं, हमारे सामने इस सेवा का कितना सुन्दर आदर्श पेश किया है! महाराज दिलीप ऋषि के आश्रम में रहने को आते हैं। ऋषि उन्हें गाय की सेवा का काम देते हैं, क्योंकि आश्रम में कोई बिना सेवा के रह ही नहीं सकता। आश्रम तो सेवा की ही भूमि है। हाँ, तो वे गो-सेवा का काम कितनी लगन से करते हैं ? उसकी कैसी सेवा-टहल करते हैं ? कैसे उसके पीछे-पीछे रहते हैं ? इसका चित्र कालिदास ने रघुवंश के एक श्लोक में यों खींचा है :

'स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबंधधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥'

अर्थात् शरीर की छाया की तरह राजा गाय का अनुचर बन गया था। जब वह गाय खड़ी होती थी, तब वह भी खड़ा हो जाता था। जब वह चलती, तो वह भी चलता; वह बैठ जाती, तो वह भी बैठता; वह पानी पीती, तभी वह भी पानी पीता; गाय को खिलाये-पिलाये बिना वह खुद भी नहीं खाता-पीता था।

गाय एक उदार प्राणी है। वह हमारी सेवा और प्रेम को

पहचानती है और अधिक-से-अधिक लाभ देने के लिए तैयार रहती है। 'सेवा' शब्द का दोहन करके मैंने यह दूध आपके सामने रख दिया है : एक तो हम बिना उपयोग के किसीकी सेवा नहीं कर सकते, और दूसरे सेवा किये बिना यदि हम उपयोग करेंगे, तो वह भी गुनाह होगा। हमें यह हरगिज नहीं करना है। ये दो बातें मैंने आपके सामने रखीं।

अब मैं और भी आगे बढ़ता हूँ। गोसेवा के कार्य का आरम्भ प्रतिज्ञा से होता है। अभिप्राय यह है कि अगर हम गाय के ही दूध-घी का सेवन करेंगे, तो उसकी सेवा करने की इच्छा पैदा होगी। इसलिए आरम्भ में गाय के ही दूध-घी के सेवन की प्रतिज्ञा रखी गयी है। कई लोग पूछते हैं—"प्रतिज्ञा की क्या जरूरत है। बिना प्रतिज्ञा के काम नहीं हो सकेगा?" उत्तर में मैं अपना अनुभव बता दूँ। मैंने देखा है कि जिस प्रयत्न का आरम्भ संकल्प से होता है वह जैसे फलता है, वैसे केवल मंशा का प्रयत्न नहीं फलता। कोई महान् कार्य संकल्प के बिना नहीं होता। मगर हम संकल्प से आरम्भ करते हैं, तो आधे से अधिक कार्य वहीं हो जाता है। प्रतिज्ञा सिर्फ यही नहीं है कि घी-दूध खायेंगे या नहीं खायेंगे। गाय के दूध-घी की पैदाइश बढ़ाने की कोशिश करेंगे, यही प्रतिज्ञा का मतलब है।

प्रतिज्ञा लेने में अक्सर यह आपत्ति उठायी जाती है कि हम दूसरों के घर ऐसे नियम लेकर जायँगे, तो उनको तकलीफ होगी। इसीलिए इसका जवाब बापू ने अपनी अहिंसा की भाषा में दिया है। मैं अपनी 'अनादर' की भाषा में बताना चाहता हूँ। इतना तकल्लुफ हमें क्यों रखना चाहिए? सूर्य को हम उसकी किरणों से जानते हैं। वह जहाँ जाता है, अपनी किरणें साथ ले जाता है। ये किसीको ताप दें, या आह्लाद दें, इस बात की वह

परवाह नहीं करता। सूर्य अगर अपनी किरणों को छोड़ता है, तो उसका सूर्यत्व ही जाता रहता है। वैसे ही हमें भी अपनी किरणों को, यानी अपने उसूलों को, अपने साथ ले जाना चाहिए। अगर मैं किसीके घर में अपने सिद्धान्तों और विचारों को छोड़कर प्रवेश करूँ, तो मैं अपने अपनेपन को ही छोड़ देता हूँ; मैं 'मैं' ही नहीं रह जाता। अगर हम 'स्वत्व' छोड़कर किसीके घर जायँगे, तो उसको आनन्द होगा, ऐसी बात नहीं है। इसलिए प्रतिज्ञा जरूर लेनी चाहिए और लोगों की कल्पित तकलीफों के विषय में निर्भय रहना चाहिए।

अब एक बात और। गाय और भैंस के विषय में बहुत कुछ कहा गया है। दोनों मनुष्य को दूध देनेवाले जानवर हैं। दोनों में कोई मौलिक विरोध तो नहीं होना चाहिए। फिर भी हम गाय का ही दूध बरतने की प्रतिज्ञा लेते हैं, तो उसका तत्त्व हम लोगों को जान लेना चाहिए। हिन्दुस्तान का कृषि-देवता बैल है। यह तो सब जानते ही हैं कि हिन्दुस्तान कृषि-प्रधान देश है। बैल तो हमें गाय के द्वारा ही मिलता है। यही गाय की विशेषता है। उसके साथ-साथ गाय की अन्य उपयोगिता हम जितनी बढ़ा सकते हैं, जरूर बढ़ायेंगे। लेकिन उसका मुख्य उपयोग तो बैल की जननी के नाते ही है। बिना बैल के हमारी खेती नहीं होती। इसलिए हमें गाय की तरफ विशेष ध्यान देना चाहिए और उसकी सार-सँभाल करनी चाहिए। ऐसा अगर हम नहीं करते, तो हिन्दुस्तान की खेती का भारी नुकसान करते हैं। जब हम इस दृष्टि से सोचते हैं, तो भैंस का मामला सुलझ जाता है। और यह सहज ही समझ में आ जाता है कि गाय को ही प्रोत्साहन देना हमारा प्रथम कर्तव्य क्यों हो जाता है।

मुझे याद आता है कि एक दफा मेरे एक मित्र ने सुनाया

था कि उनके प्रान्त में अकाल के समय जानवर किस क्रम से मरे। उन्होंने कहा, सबसे पहले भैंसा मरता है। क्योंकि हम भैंसे की उपेक्षा करके उसे मार डालते या मरने देते हैं। वर्धा के बाजार में भैंसें ऐसी अवस्था में लायी जाती हैं, जब कि वे एक-दो घण्टे में ही ब्याने को होती हैं। हेतु यह होता है कि लोग उन्हें तुरन्त खरीद लें। एक बार एक आदमी ऐसी एक भैंस बाजार को ला रहा था। उसी समय मनोहरजी ने, जो कि उन दिनों येलीकेली में महारोगी सेवा-मण्डल द्वारा महारोगियों की सेवा करते थे, उसको देखा। रास्ते में ही वह भैंस ब्याई—पुत्र-जन्म हो गया। लेकिन उस आदमी को उस पुत्र-जन्म से बड़ी झुँझलाहट हुई। उसने सोचा, यह पुत्र कैसा? यह तो एक बला आ गयी। मनुष्य को तो पुत्र-जन्म से आनन्द होता है, लेकिन भैंस के पुत्र को वह सहन नहीं करता। उसने उस पुत्र को वहीं छोड़ दिया और भैंस को ले जाकर वर्धा के बाजार में बेच दिया और जो पैसा मिला, वह लेकर अपने घर चलता बना। बेचारा भैंस-पुत्र वहीं पड़ा रहा। मनोहरजी बेचारे दयालु ठहरे। फिक्र में पड़े कि अब इसका क्या किया जाय? जिस खेत में वह रहते थे, उस खेत के मालिक के पास गये और उससे कहा—"भैया, इसको सँभालोगे?" मालिक ने कहा—"यह क्या बला आ गयी? मैं इसको कैसे रखूँ? आखिर इसका उपयोग ही क्या है? मैं इसकी परवरिश क्यों करूँ? इसको आखिर दशहरे के दिन कत्ल होने के लिए ही बेचना होगा। इसके सिवा और दूसरा कोई रास्ता नहीं है।"

मैंने यह एक नित्य की घटना आपके सामने रखी। तो, सबसे पहले बेचारा भैंसा मरता है। उसके बाद गाय मरती है। उसके पश्चात् भैंस मरती है और सबसे आखिर में बैल। बैल

सबसे उपयोगी है और इसीलिए उसकी हिफाजत करने की विशेष कोशिश की जाती है। लोग किसी-न-किसी तरह उसको खिलाते रहते हैं और उसे जिलाने की कोशिश करते हैं। यह तो हुई उपयोगिता की बात। बैल इन सब जानवरों में सबसे ज्यादा उपयोगी तो साबित हुआ। लेकिन सवाल यह है कि गाय की सेवा के बिना अच्छे बैल कहाँ से आयेंगे ? हिन्दुस्तान का आदमी बैल तो चाहता है, लेकिन गाय की सेवा करना नहीं चाहता। वह उसे धार्मिक दृष्टि से पूजने का स्वाँग रचता है। पर दूध के लिए तो भैंस की ही कद्र करता है। हिन्दुस्तान के लोगों की यह मंशा है कि उनकी माता तो रहे भैंस और बाप हो बैल ! यह योजना तो ठीक है; लेकिन वह भगवान् को मंजूर नहीं, इसलिए यह मामला बहुत टेढ़ा हो गया है। भैंस और गाय, दोनों का पालन हिन्दुस्तान के लिए आज बड़ी मुश्किल की बात हो गयी है।

लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिए कि गोसेवा में गाय की ही सेवा को महत्त्व देना पड़ता है। बापू ने कहा कि अगर हम गाय को बचा लेंगे, तो भैंस का भी मामला तय हो जायगा। इसका पूर्ण दर्शन तो अभी मुझे भी नहीं हुआ है और शायद उसकी अभी जरूरत भी नहीं है।

गाय और भैंस को एक-दूसरे की विरोधी मानने की जरूरत नहीं है। लेकिन हमें तो गोसेवा से आरंभ कर देना है और वही हो भी सकता है। हमें समझना चाहिए कि आज हम दर-असल भैंस की सेवा भी नहीं करते। आज हम जो भैंस की सेवा करते हैं, वह दरअसल न तो गोसेवा है और न भैंस की सेवा है। हम उसमें केवल अपना स्वार्थ देखते हैं। हम भैंस का केवल सेवाहीन उपयोग करते हैं। जिस प्रकार उपयोग-हीन सेवा

हम नहीं कर सकते, उसी प्रकार सेवाहीन उपयोग भी हमें नहीं करना चाहिए।

जैसा कि मैं बता चुका हूँ, आज भैंसे की हर तरह से उपेक्षा की जाती है। वस्तुस्थिति यह है कि हिन्दुस्तान के कुछ भागों में भैंस का उपयोग भले ही किया जाता हो, लेकिन साधारणतः हिन्दुस्तान की गरम हवा में भैंसा ज्यादा उपयोगी नहीं हो सकता। भैंस का हम केवल लोभ से पालन कर रहे हैं। नागपुर-बरार में गरमियों में गरमी का मान एक सौ पन्द्रह अंश तक चला जाता है। खास कर उन दिनों में भैंस को पानी जरूर चाहिए। मगर यहाँ तो पानी की कमी है। पानी के बगैर उसको बेहद तकलीफ होती है, क्योंकि भैंस पूरी तरह जमीन का जानवर नहीं है। वह आधा जमीन का और आधा पानी का प्राणी है। गाय तो पूरी तरह थलचर है। और अक्सर देखा जाता है कि जो पानीवाला जानवर है, उसके शरीर में भगवान् ने चरबी की अधिकता रखी है, क्योंकि ठंढ और पानी से बचने के लिए उसकी उसे जरूरत होती है। मछली के शरीर में स्नेह भरा हुआ रहता है। पानी के बाहर निकालते ही वह सूर्य के ताप से जल जाती है। वैसी ही कुछ-कुछ हालत भैंस की भी है। उसे धूप बरदाश्त नहीं होती। इसीलिए लोग गरमी के दिनों में उसीके मल-मूत्र का उसकी पीठ पर लेप करते हैं, ताकि कुछ ठंढक रहे। वे जानते हैं कि उस जानवर को उस समय कितनी तकलीफ होती है। देहात में जाकर आप लोगों से पूछेंगे कि आपके गाँव में कितनी भैंसें और कितने पाड़े हैं, तो वे कहेंगे कि भैंसें हैं करीब सौ-डेढ़ सौ और पाड़े हैं कुल दस या बहुत हुए तो बीस। अगर हम उनसे पूछें कि इन स्त्री-पुरुषों या नर-मादाओं की संख्या में इतनी विषमता क्यों है, तो हमारे देहातों के लोग जवाब देंगे—'क्या

करें ? भगवान् की करतूत ही ऐसी है कि भैंसा ज्यादा दिन जीता ही नहीं ।' आखिर यहाँ भी भगवान् की करतूत आ ही गयी ! यह हमारे बुद्धिनाश का लक्षण है। हम उसकी तकलीफ का ध्यान न करते हुए भैंस का उपयोग करते हैं और कहते हैं कि भैंसे जिन्दा ही नहीं रहते और नहीं रहेंगे। मतलब, हम भैंस की सेवा करते हैं, ऐसी बात नहीं है । उसमें हम सिर्फ भैंस का उपयोग ही करते हैं। बाकी उसकी सेवा कुछ भी नहीं करते ।

चन्द लोग पूछते हैं—"हिन्दुस्तान कृषि-प्रधान देश है, इसलिए खेती के वास्ते बैल चाहिए । और बैल चाहिए, तो गाय भी चाहिए, इत्यादि विचारश्रेणी तो ठीक है; मगर क्या हिन्दुस्तान का यही एक अर्थशास्त्र हो सकता है ? क्या दूसरा कोई अर्थशास्त्र ही नहीं हो सकता ? समय आने पर हम खेतों का काम ट्रैक्टर से क्यों न करें ?"

उसके जवाब में मैं यह पूछता हूँ कि ट्रैक्टर चलायेंगे, तो बैल का क्या होगा ? जवाब मिलता है—"बैल को हिन्दुस्तान के लोग खा जायँगे । हिन्दुस्तान के लोग दूसरे कई जानवरों का मांस बराबर खाते हैं; उसी तरह बैल का मांस भी खा सकते हैं। यह रास्ता क्यों न लिया जाय ?" इस तरह जब बैलों को खा जाने की व्यवस्था होगी, तभी ट्रैक्टर द्वारा जमीन जोतने की योजना हो सकती है। कहा जाता है कि बैलों को अगर हिन्दू नहीं खायेंगे, तो गैरहिन्दू खायेंगे । आज भी हिन्दू गाय तो बेचते ही हैं। खुद तो कसाई से पैसा ले लेते हैं और गोहत्या का पाप उसे दे देते हैं ! ऐसी सुन्दर आर्थिक व्यवस्था उन्होंने अपने लिए बना ली है। वह कहता है कि अगर मैं कसाई को गाय मुफ्त में देता, तो गोहत्या के पाप का भागी होता । लेकिन मैं तो उसे

बेच देता हूँ। इसलिए पाप का हिस्सेदार नहीं बनता। इस व्यवस्था को आगे बढ़ायेंगे, तो सब ठीक हो जायगा। हम भैंस से दूध लेंगे, बैलों को खा जायेंगे और यंत्रों के द्वारा खेती करेंगे —इस तरह तीनों का सवाल हल हो जायगा !

इसके जवाब में मैं अब आप लोगों को यह समझाना चाहता हूँ कि बैलों को क्यों नहीं खाना चाहिए। पूर्वपक्ष की दलील यह है कि कुछ 'प्रेज्यूडिस्ड लोग' यानी पूर्वग्रहदूषित लोग बैल को भले ही न खायँ, लेकिन बाकी के तो खायेंगे और हम यन्त्र के द्वारा मजे में खेती करेंगे। इस विषय में हमारे विचार साफ होने चाहिए। मैं मानता हूँ कि हिन्दुस्तान की आज की जो हालत है और आगे उसकी जो हालत होनेवाली है, उस हालत में अगर हम मांस का प्रचार करेंगे और यंत्र से खेती करेंगे, तो हिन्दुस्तान और हम जिन्दा नहीं रह सकेंगे। यह समझने की जरूरत है। हिन्दुस्तान के लोग भी अगर गाय-बैल खाने लगेंगे, तो कितने प्राणियों की जरूरत होगी ? उतने बैलों की पैदाइश हम यहाँ नहीं कर सकेंगे। सिर्फ मांस या गोश्त खाने का ढोंग तो नहीं करना है। मांस अगर खाना है, तो वह हमारे भोजन का नियमित हिस्सा होना चाहिए। तभी तो उससे अपेक्षित लाभ होगा। लेकिन हम जानते हैं कि लोग खा सकें, इतने बैल पैदा नहीं हो सकेंगे। अगर हम इस तरह करने लगे और खेती ट्रैक्टर के द्वारा होने लगी, तो ट्रैक्टर का खर्च बढ़ेगा और गोश्त भी पूरा नहीं पड़ेगा। आखिर में गाय और बैल का वंश ही नष्ट हो जायगा और उसके साथ मनुष्य भी।*

● ● ●

—विनोबा

* वर्धा की गोसेवा-परिषद् में अध्यक्ष पद से दिये गये भाषण का सार। फरवरी, १६४२.

मुख्य जरूरत है सेवकों की : ७ :

गाय को मानव-कुटुम्ब का हमने हिस्सा माना है, इसके मानी ये हैं कि हमने एक ऐसे समाजवाद की कल्पना की कि जिसमें गाय और बैल ग्रामीण अर्थशास्त्र के केन्द्र बन जाते हैं। इस चीज का भान उन लोगों को नहीं है, जो सिर्फ दुग्धादि के लोभ से गोपालन और गोसंवर्द्धन की बात करते हैं। खेती के बैल के खिलाफ याने उसे बेकार करनेवाला कोई औजार इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। निकम्मे जानवर पैदा न हों, इस तरह का विज्ञान सीखना चाहिए। गायों को भी उनकी सेहत सुधारने के वास्ते कुछ काम देने की योजना करनी चाहिए। अलावा इसके, उनसे हमको दूध मिलता है। कमजोर जानवरों के लिए गोसदन न सिर्फ सरकार की ओर से, बल्कि महाजनों की ओर से भी खुलने चाहिए। जानवरों के मल-मूत्र, हड्डी, चर्म आदि का पूरा उपयोग लेना चाहिए। श्रीकृष्ण भगवान् के समान कार्यकर्ता के हाथ गोबर से लिप्त रहने चाहिए। यह सब करेंगे, तभी गोपालन और संवर्द्धन हो सकेगा।

गाँव में गाय-बैलों के चरने के वास्ते बंजर भूमि छोड़ देते हैं। यह पर्याप्त नहीं है। बल्कि जितनी भूमि हम तोड़ सकते हैं, तोड़ें और खास किस्म की घास, जो विशेष पोषक हो, पैदा करनी चाहिए। गर्मी में भी कुछ हरी चीज गाय-बैलों को मिल सके, ऐसी योजना होनी चाहिए। इसलिए पानी का जरूरी इन्तजाम होना चाहिए।

मुख्य जरूरत है, लगन से और ढंग से काम करनेवाले सेवकों की। आशा करता हूँ, ऐसे सेवक अधिकाधिक मिलते जायँगे।

● ● ●

—विनोबा

गो-रक्षा एक सांस्कृतिक माँग है : ८ :

मैं मानता हूँ कि भारतीय सभ्यता की यह माँग है कि हिन्दुस्तान में गोरक्षा होनी ही चाहिए। अगर हिन्दुस्तान में हम गोरक्षा नहीं कर सके तो आजादी के कोई मानी ही नहीं होते। अगर गोरक्षा नहीं होती है, तो हमने अपनी आजादी खोयी और उसकी सुगन्ध गवाँयी, ऐसा कहना होगा।

हर हिन्दू अच्छा हिन्दू बने

हिन्दुस्तान में आज 'सेक्यूलर स्टेट' की बात चली है। यह अच्छी बात है, गलत नहीं है। अपनी सभ्यता में ही यह बात है कि जो राज्य चलेगा, वह सब धर्मों की समान रक्षा करेगा, पक्षपात नहीं करेगा। अशोक के जमाने में भी वह खुद बौद्ध था परन्तु प्रजा तीन धर्मों में—हिन्दू, बौद्ध और जैनधर्म में बँटी हुई थी। लेकिन तीनों की समान इज्जत होती थी और तीनों की समान रक्षा होती थी। इसलिए हम अशोक का इतना आदर करते हैं और हमने उसीका चिह्न अपने राज्य के लिए ले लिया है। 'सेक्यूलर स्टेट' होना तो अच्छा ही है। उसका गोरक्षा के साथ कोई विरोध नहीं है। अगर ऐसा होता कि आज हिन्दुस्तान में जितने धर्म हैं उनमें से एक धर्म कहता कि गाय को मारना पाप है और दूसरा धर्म कहता कि गाय का कत्ल करना पुण्य है तो सरकार कहती कि इस तरह दो धर्मों में विरोध है तो दोनों को अपने-अपने मत के अनुसार चलने की इजाजत होनी चाहिए। इसलिए सरकार इस बारे में कुछ नहीं कर सकती। परन्तु आज ऐसी बात नहीं है। मैंने कुरान का और बाइबल का गहराई

से और अत्यन्त प्रेम के साथ अध्ययन किया है और जिस तरह मैंने वेदों का चिन्तन किया है उसी तरह कुरान और बाइबल का भी किया है। इसलिए मैं मुसलमान और ईसाइयों की ओर से उनका प्रतिनिधि बनकर कहता हूँ कि उन दोनों धर्मों में ऐसी कोई बात नहीं है कि गाय का बलिदान हो। उन धर्मों में बलिदान की बात तो है। वैसे हिन्दूधर्म में भी है। परन्तु गाय का ही बलिदान होना चाहिए, ऐसी कोई बात उन धर्मों में नहीं है। और इस्लाम की तो यह आज्ञा है कि अपने पड़ोसी की भावनाओं का खयाल करो। इसलिए मैं कहता हूँ कि अपने 'सेक्यूलर स्टेट' में गोरक्षा होनी चाहिए। परन्तु आजकल कुछ लोगों को 'हिन्दू' कहलाने में भी झिझक मालूम होती है। यह बात गलत है। मैं तो कहता हूँ कि हरएक हिन्दू अच्छा हिन्दू बने। हरएक मुसलमान अच्छा मुसलमान बने और हरएक ईसाई अच्छा ईसाई बने और यहाँ पर सब धर्मों का एक सुयश संगीत चले। एक-दूसरे की उपासना से एक-दूसरे को पुष्टि मिले और सब मिलकर भगवान् का गुणगान करें। भगवान् के अनन्त नाम और अनन्त गुण हैं।

भिन्न-भिन्न रास्ते मात्र

जब एक मामूली शहर में पहुँचने के लिए कई रास्ते होते हैं, तो भगवान् के पास पहुँचने के असंख्य रास्ते हो सकते हैं। इसलिए हर कोई अपनी-अपनी भक्ति से भगवान् के पास पहुँचने की कोशिश करे। इससे हिन्दू न सिर्फ अच्छे हिन्दू बनेंगे, बल्कि अच्छे मानव बनेंगे। मुसलमान न सिर्फ अच्छे मुसलमान बनेंगे, अच्छे मानव भी बनेंगे। ईसाई न सिर्फ अच्छे ईसाई बनेंगे, बल्कि अच्छे मानव बनेंगे। इसलिए सब अपने-अपने धर्मों की एकाग्रता और निष्ठा से उपासना करें, यही मैं चाहता हूँ। इससे अपने देश में एक मधुर स्नेहमय जीवन बनेगा। इसलिए हिन्दुओं को खुद 'हिन्दू'

कहलाने में लज्जा नहीं मालूम होनी चाहिए, बल्कि उनको निष्ठा से हिन्दूधर्म की उपासना करनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि केन्द्रीय सरकार की गोरक्षा के प्रति सहानुभूति है। परन्तु वह कहती है कि यह राज्य-सरकार का काम है।

गाय और बैल, दोनों में फर्क क्यों ?

मध्यप्रदेश में गोरक्षा का कानून बना है। वह कानून कैसा बना है, यह मैंने नहीं देखा है। बिहार में भी एक कानून बनने जा रहा है। मैंने उस बिल को देखा है। उससे मेरा समाधान नहीं हुआ। उसमें गाय और गाय के बछड़ों की रक्षा की ही बात है, यह देखकर मैं ताज्जुब में रह गया। इस तरह गाय और बैल में फर्क क्यों किया जा रहा है। परन्तु मैंने सुना है कि हमारे संविधान में गोरक्षा का जो कालम है, उसके मुताबिक गाय और गाय के बछड़ों की रक्षा की ही जिम्मेदारी मानी गयी है। बैल की जिम्मेदारी नहीं मानी गयी है। संविधान के बारे में कुछ कहने का मैं अधिकारी नहीं हूँ। उसके जो माहिर हैं, वे वकील लोग ही उसके बारे में कहेंगे। परन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि संविधान का यह अर्थ मैं नहीं मानता हूँ। आपने केवल आर्थिक खयाल से गाय की जिम्मेदारी उठायी है या भारतीय सभ्यता की यह माँग है, इस खयाल से उठायी है? अगर केवल आर्थिक खयाल हो तो गाय की जिम्मेदारी न उठायें; क्योंकि अर्थशास्त्र की दृष्टि से लूली, लँगड़ी, कमजोर गायों की रक्षा करना गलत माना गया है।

बैलों की रक्षा के बिना गोरक्षा अधूरी

अर्थशास्त्र एक ही है। वह कहता है कि कमजोर गाय और बैलों को मारो तो उत्तम गाय और बैलों की रक्षा होगी। अगर

ऐसी बात है तो फिर आप कमजोर गायों की रक्षा की जिम्मेदारी क्यों उठाते हैं ? इसलिए न कि भारतीय सभ्यता की यह माँग है ? अगर ऐसा समझते हों तो बैलों की रक्षा की भी जिम्मेदारी उठायें । गाय और बैल, दोनों मिलकर 'गो' कहा जाता है। दोनों में फर्क नहीं है। वेदों में गाय को "अघ्नेया" और बैल को "अघ्नेय" कहा गया है । इस शब्द का मतलब है—जिसको मारना नहीं । इस तरह यहाँ की सभ्यता ने गाय और बैल, दोनों की रक्षा की जिम्मेदारी उठायी है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि असेम्बली में हमारे जो भाई हैं, वे उस बिल में संशोधन करें, और बैल की भी जिम्मेदारी उठायें।

हमारी सभ्यता का खयाल

अगर यहाँ की सभ्यता का खयाल करते हों तो ऐसा करना होगा । और केवल अर्थशास्त्र की दृष्टि से सोचते होंगे तो कम-जोर गायों की भी जिम्मेवारी न उठायें। साफ कहो कि हम गरीब हैं, हम कमजोर गाय-बैलों की जिम्मेदारी नहीं उठा सकते हैं। परन्तु कुछ संस्कृति का खयाल करते हों तो फिर केवल गाय की ही जिम्मेवारी क्यों उठायी ? गाय और बैल, दोनों की जिम्मेवारी उठाना यह हिन्दुस्तान का समाजवाद है । पाश्चात्य देशों के समाजवाद से हमारे देश के लोग एक कदम आगे बढ़े हैं। उनका समाजवाद मानता है कि हरएक मनुष्य की पूरी रक्षा होनी चाहिए। लेकिन भारतीय समाजवाद की मान्यता में गाय को भी अपने परिवार में दाखिल किया है। हाँ, उसके अनु-सार आज हम बर्ताव ही नहीं करते हैं, सिर्फ गो का आदर रखते हैं। परन्तु उसकी सेवा का जैसा कार्य विदेशों में चलता है वैसा नहीं करते । फिर भी हमारे मन में उसके लिए आदर है। जिस तरह हम अपने घर के बूढ़े लोगों की रक्षा करते हैं, उसी तरह

गाय-बैल को भी हमने अपने परिवार में दाखिल किया है। उन दोनों का हम पूरा उपयोग लेंगे, उनका दूध लेंगे, उनके गोबर का उपयोग करेंगे, मरने पर उनके चमड़े का उपयोग करेंगे, परन्तु उन्हें सहज मृत्यु मरने देंगे। यह बात यहाँ के समाजवाद ने मानी है। लेकिन उसके साथ हमें वैज्ञानिक बुद्धि रखनी चाहिए। सिर्फ गाय की पूजा करने से काम नहीं होगा। गोसदन खोलना चाहिए। कमजोर गायों की रक्षा के लिए व्यापारियों और श्रीमान् लोगों को मदद करनी चाहिए। प्रजा को यह त्याग करना चाहिए और उसके साथ-साथ सरकार को भी उपयुक्त कानून बनाना चाहिए।*

—विनोबा

मेरी यह भविष्यवाणी है कि जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती जायगी वैसे-वैसे दुनिया भर में गोश्त की महिमा कम होगी और दूध की बढ़ेगी। गो-दुग्ध ऐसी चीज है जिसने लोगों को मांसाहार से छुड़ाया। इसलिए वह पवित्र माना गया।

—विनोबा

हृदय-बल, बुद्धि-बल, विज्ञान-बल, धन-बल, व्यापार-बल और संघ-बल काम में लेकर धर्मनिष्ठ मनुष्य को मनुष्य-कुटुंब में दाखिल हुए असहाय प्राणी गोवंश का रक्षण करना चाहिए।

—काका कालेलकर

---

* हजारीबाग (बिहार) की प्रार्थना-सभा में किया गया प्रवचन।

गाय का आर्थिक पहलू : ६ :

आज गाय को बूचड़खानों से बचाने के लिए खूब बातें की जाती हैं। यह खुशी की बात है कि भारी पशु-वध के कारण हमारे देश में जो बुराइयाँ आयीं, लोग उन्हें समझने लगे हैं। निरी संकुचित दृष्टि से देखें तो चूँकि एक शाकाहारी देश में दूध की आवश्यकता बड़े महत्त्व की होती है, गाय को राष्ट्र की पोषिका के रूप में प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त उससे बैल भी मिलते हैं, जिनके बल पर किसान खेती करता है। गाय को माता का पूजनीय स्थान देकर गो-वध को एक धार्मिक प्रश्न के स्तर पर लाकर प्रश्न के इस पहलू के महत्त्व को पूरी तरह समझा दिया गया है। किसी तरह पागलपन के कारण जहाँ एक ओर इतनी ऊँची भावना थी, वहाँ दूसरी ओर कितनी संकुचित मनोवृत्ति हो गयी! गो-वध को लेकर जनता के विभिन्न वर्गों में प्रायः कितने झगड़े देखने में आते हैं। इसलिए अब हिन्दुस्तान में गाय का ठीक-ठीक स्थान क्या है, यह तय कर लेना और राष्ट्रीय पैमाने पर उसके बारे में सोचना जरूरी हो गया है।

एक कारीगर के लिए जिस औजार का वह उपयोग करता है, वह बिल्कुल पूजा की चीज बन जाता है। वास्तव में इस संस्कार को कराने के लिए हिन्दुस्तान में शस्त्र-पूजा का एक निश्चित त्यौहार ही हम मनाते हैं। मनुष्य जानता है कि आर्थिक दृष्टि से वह उत्पादन के साधनों पर अवलम्बित है। जैसे एक कारीगर अपने औजारों पर निर्भर रहता है, एक किसान गाय पर निर्भर रहता है और यदि हम आर्थिक क्षेत्र का प्रसार करें तो कह सकते हैं कि गाय चूँकि अन्न के उत्पादन का साधन है,

इसलिए वह मनुष्य के आर्थिक संगठन का केन्द्र बन जाती है, खास तौर से हिन्दुस्तान जैसे कृषि-प्रधान देश में।

इस पक्ष को छोड़कर जब हम गाय पर बैल की जननी के रूप में विचार करते हैं, तो गाय का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। अब वह हमारी अर्थ-व्यवस्था का केन्द्र वन जाती है। हम अपनी आर्थिक-व्यवस्था को, जहाँ चालक शक्ति (Motive Power), यातायात, अन्न-उत्पादन इत्यादि में गाय की बड़ी देन है, उसी प्रकार "गाय केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था" कह सकते हैं, जैसे इंग्लैंड और यूरोप के दूसरे देश, बहुत दिनों की बात नहीं है, 'अश्व-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था' वाले थे।

पिछली शताब्दी में ही इंग्लैंड अश्व-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था को छोड़कर कोयला-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था में आया और अब कोयला-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था से बड़ी तेजी के साथ तेल-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था की ओर बढ़ रहा है। इन सब स्थितियों पर ध्यान देना बहुत जरूरी है, क्योंकि दुनिया का भाग्य ही, जिन साधनों में हमें शक्ति मिलती है, उन पर निर्भर है।

गाय और अश्व-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्थाओं में हमारे साधन असीम रहते हैं, क्योंकि हम चाहे जितने बैल और अश्व उत्पन्न कर सकते हैं और चूँकि जितनी संख्या में वे प्राप्त होते हैं उस पर कोई पाबन्दी नहीं होती, इसलिए किसीके मन में लालच या ईर्ष्या पैदा नहीं होती। लेकिन कोयला और पेट्रोल या तेल सीमित हैं और सीमित मात्रा में मिलते हैं, इसलिए शक्ति के ऐसे साधन जैसे ही वे समाप्त होने लगते हैं, राष्ट्रों में झगड़े की जड़ बन जाते हैं। अब यह अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है कि इन महायुद्धों का बहुत बड़ा कारण अलग-अलग राष्ट्रों का तेल के सोतों पर अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न ही था, इसीलिए कोयले और तेल पर निर्भर

अर्थ-व्यवस्थाएँ राष्ट्रों को आपस में लड़ाने का काम करती हैं। इन दोनों से भिन्न गाय और अश्व-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्थाएँ अपेक्षाकृत शान्तिमय व्यवस्थाएँ हैं। इसलिए व्यापक अर्थ में हम कह सकते हैं कि जब हम गाय-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था को तोड़ते हैं तो वास्तव में हम गो-वध ही करते हैं। दूसरे शब्दों में जब हमारे काम "गाय-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था" के विरुद्ध होते हैं, तो हम गो-रक्षकों की पंक्ति से बाहर हो जाते हैं। उदाहरण के लिए जब हम चालक-शक्ति (Motive Power) के लिए कोयले और तेल से काम लेते हैं, तब हम वास्तव में गाय को अपनी अर्थ-व्यवस्था से निकाल देते हैं। जब हम कंकरीट या तारकोल की पक्की सड़कें बनाते हैं, जो जानवरों की सुविधा की दृष्टि से नहीं बनायी जातीं, तब भी हम गाय-केन्द्रित व्यवस्था को तोड़ने का अपराध करते हैं। केवल एक चार पाँव और दो सींगवाले जानवर के वध की अपेक्षा इस प्रश्न का यह (आर्थिक) पहलू हमारे लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है।

हमें आश्चर्य होता है, गो-वध का विरोध करनेवाले हमारे कितने दोस्त ऐसे निकलेंगे जो गो-रक्षा के ऊँचे अर्थ में यह कह सकें कि उनके हाथ गोरक्त (Bovine) से नहीं सने हैं। खादी की तरह गाय भी एक तरह के जीवन का प्रतीक है। गोवध का इसलिए यही अर्थ होगा कि उस प्रकार के जीवन को असम्भव बना देना। हमें आशा है, जो लोग गो-रक्षा के हामी हैं, वे जिस चीज के लिए खड़े हैं, उसके विस्तार को समझें और इसी विस्तार के साथ उस पर अमल करने में पूरे दिल से सहायता और सहयोग दें।

●

गो-सेवा की नीति

[राधाकृष्ण बजाज]

सेवा

पूज्य विनोबाजी ने कहा है कि "गोसेवा-संघ की नीति 'सेवा' शब्द में निहित है। गाय एक उदार प्राणी है। वह हमारी सेवा और प्रेम को पहचानती है और हमें अधिक-से-अधिक लाभ देने के लिए तैयार रहती है। इसलिए हमें उसकी सेवा करनी है। सेवा में दो बातें गृहीत हैं। एक तो हम बिना उपयोग के किसीकी सेवा नहीं कर सकते और दूसरे सेवा किये बिना हम उपयोग लेंगे तो वह गुनाह होगा और हमें वह गुनाह हरगिज नहीं करना है।"

गाय की मजबूत बछड़े देने की शक्ति को बढ़ाना है। बछड़ों का पूरा उपयोग करना है। गाय की दूध देने की शक्ति बढ़ानी है। उससे जुताई में भी जितनी मदद मिल सके, लेनी है। गोबर व गोमूत्र का खाद के रूप में अच्छे-से-अच्छा उपयोग करना है तथा मरने पर उसके चमड़े, हड्डी, मांस, चरबी इत्यादि का पूरा लाभ उठाना है। इसके लिए अधिक-से-अधिक शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करना है तथा प्राप्त ज्ञान का उपयोग करना है। ये सब बातें पूरा उपयोग लेने में आती हैं। गाय को समय पर उचित मात्रा में चारा-पानी देना, उसके रहने की अच्छी व्यवस्था करना, काम लेने में उस पर ज्यादती न करना, साफ-सफाई रखना, बीमारी का इलाज करना, उसके सुख-दुख का पूरा खयाल रखना और बूढ़ी होने पर उसको मरने तक खाना देना, इतनी बातें सेवा में आती हैं।

ऊपर की नीति के अनुसार यह बात स्पष्ट है कि हम गाय का शास्त्रीय संवर्धन करना चाहते हैं और उसका वध कतई बन्द करना चाहते हैं। हम यह मानते हैं कि गाय अर्थशास्त्र में टिकनी चाहिए और अर्थशास्त्र में टिकेगी तभी उसका पूरा पालन हो सकेगा। इस दृष्टि से जीवन भर गाय को स्वावलम्बी बनाने का हमारा प्रयत्न रहेगा। लेकिन बूढ़ी होने पर गाय का वध करना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होने पर भी हम उसका समर्थन नहीं कर सकते। प्राचीन संस्कृति को कायम रखने के लिए तथा मनुष्यत्व की नैतिक प्रेरणा के संतोष के लिए जिस गाय ने जीवन-भर हमारी सेवा की, उसका बुढ़ापे में वध करने की बात हमारा दिल कबूल नहीं कर सकता। शास्त्रीय गो-संवर्धन और संपूर्ण गोवध-बन्दी ही हमारी नीति रहेगी। गाय से हमारा मतलब गाय, बैल, बछड़े, बछड़ी अर्थात् पूरे गोवंश से है।

कुछ लोग कहते हैं, प्राचीनकाल में तो गोमांस खाया जाता था। आप गोवध-बन्दी की बात कहाँ से ले आये? इस बारे में काकासाहब के शब्द ध्यान देने योग्य हैं:

"कुछ लोग कहते हैं कि वैदिक-काल में मांसाहार था ही नहीं। अपने इस मत के समर्थन में वे वैदिक मंत्रों के नये अर्थ पेश करते हैं। मैं उनसे कहता हूँ, आपके किये हुए अर्थ हैं तो अच्छे, परन्तु सच्चे भी हैं या नहीं, यह मुझे देखना होगा। महाभारत-काल में मांसाहार प्रचलित था। चंबल नदी के किनारे राजा रंतिदेव के यज्ञ में हजारों पशुओं का वध होता था। उसका वर्णन पढ़कर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारे देश में न सिर्फ मांसाहार का रिवाज था, बल्कि किसी समय गोमांस भी खाया जाता था। बाद में गाय से ही हमें अहिंसा की शिक्षा मिली। कैसे, सो आगे सुनियेगा। चूँकि दूसरे पशुओं की अपेक्षा गाय

का ऋण हम पर अधिक है, इसलिए उसकी रक्षा हमें विशेष रूप से करनी है।

"मनुष्य बिना मांस के अपना काम न चला पाता; लेकिन, चूँकि गाय ने अपना दूध और घी उसे विशेष मात्रा में दिया, इसलिए वह मांस छोड़ सका। गाय ने अपनी देह का निचोड़ दूध और घी के रूप में देकर अपने वंश और दूसरे जानवरों को बचा लिया है, दूसरी ओर गोपुत्रों ने याने बैलों ने हमारे खेतों में मेहनत करके अनाज इतनी मात्रा में पैदा कर दिया कि मांसाहार की आवश्यकता कम हो गयी।

"तीसरी एक बात और भी हुई। बैलों ने कपास की खेती में हमारी मदद करके हमें अच्छे कपड़े दिये और जब कपड़ों के कारण हमारी गर्मी सुरक्षित रहने लगी, तो हमारी खुराक कम हो गयी याने हमें ज्यादा खाने की जरूरत न रह गयी। अन्न और वस्त्र, दोनों का हेतु है शरीर की गर्मी को बनाये रखना। जब पूरे कपड़े मिलने लगते हैं, तो आहार कम हो ही जाता है। जो साधु बहुत ही कम कपड़े धारण करते हैं, उनकी खुराक ज्यादा होती है। मैंने उनके बीच स्वयं रहकर इसे देखा है। इस तरह बैल ने अहिंसा के पालन में हमारी बड़ी मदद की है। इसलिए मैं कहता हूँ कि अहिंसा का तकादा है कि हम गाय और बैल की विशेष रूप से रक्षा करें।"

सर्वांगी

गाय की सेवा करना तय होने के बाद यह सवाल उठता है कि हमें किस तरह की गायों को तरक्की देनी चाहिए ताकि गोपालन सुलभ हो और गो-वध रोका जा सके। इस दृष्टि से विचार करने पर मालूम हुआ कि हमारे पास चारे की कमी है और

पशुओं की संख्या अधिक है। इसलिए हम चाहते हैं कि पशुओं की संख्या कम रहे। लेकिन खेती की दृष्टि से बैलों की शक्ति बढ़े और देश की जरूरत को देखते हुए दूध का उत्पादन आज से कई गुना अधिक हो। संघ की राय है कि किसान दूध के लिए अलग और खेती के लिए अलग नस्लों के पशु रखकर दो जोड़ी को पूरा खाना नहीं दे सकता। उसके दोनों काम एक ही जोड़ी से याने एक ही नस्ल के गाय-बैलों से पूरे होने चाहिए, ताकि पशु-संख्या कम रहे। ये दोनों काम पूरे करने की जिस नस्ल में शक्ति हो उसे सर्वांगी कहा गया है। जैसे हरियाना, थरपारकर, गीर, कांकरेज, औंगल आदि।

दूसरी बात यह है कि जो गायें दूध अधिक देती हैं, लेकिन खेती के लायक अच्छा बैल नहीं देतीं (जैसे अर्ध-इंग्लिश, शाही-वाल या सिंधी) उनके नरों की पूरी हिफाजत नहीं होती और वे जीते हैं तो भाररूप रहते हैं या मार दिये या मरने दिये जाते हैं। उसी तरह जो गायें खेती के लिए बैल अच्छे देती हैं, लेकिन दूध कम देती हैं (जैसे निमाडी, मालवी, गौलाऊ, शाहबादी, बछोर, अमृतमहाल, हल्लीकर, कंगायम आदि) उनकी बछड़ियों (मादाओं) की पूरी हिफाजत नहीं होती, न उन्हें बराबर खाना दिया जाता है। नतीजा यह होता है कि या तो वे धीमी भूख से मर जाती हैं या कत्ल कर दी जाती हैं। इस तरह के दुग्धप्रधान या वत्सप्रधान, दोनों एकांगी नस्लों के एक-एक पशु किसी-न-किसी तरह से हिंसा के शिकार होते हैं।

इसलिए संघ की राय है कि सारी गायों का विकास सर्वांगी रूप से किया जाय। आज जो वत्स-प्रधान गायें हैं, उन्हें सिलेक्टिव ब्रीडिंग (Selective Breeding) द्वारा अधिक दूध देने की शक्ति बढ़ाकर सर्वांगी बनाया जा

सकता है। उसी तरह दूध-प्रधान (Milch Breed) गायों के बैलों में खेत जोतने की शक्ति पैदा करके उन्हें भी सर्वांगी बनाया जा सकता है। कुल मिलाकर भारत की सारी गायें सर्वांगी बनायी जा सकती हैं। मुख्य बात यह है कि सर्वांगी बनाने का लक्ष्य रखकर नस्ल-सुधार का काम होना चाहिए। कुछ विशेषज्ञ मानते हैं कि एक ही नस्ल में दूध देने की शक्ति व अच्छे बैल देने की शक्ति साथ-साथ नहीं बढ़ायी जा सकती। एक के बढ़ाने से दूसरी कम होती है। हम इससे सहमत नहीं हैं। लेकिन मान लिया जाय कि बहुत आगे जाकर यह बात सही हो, तब भी मध्यस्थिति के पशु पैदा करने में कोई दिक्कत नहीं है। आज हमारे पास हरियाना, थरपारकर जैसी गायें मौजूद हैं, जिनके बैल खेती में बढ़िया-से-बढ़िया काम देते हैं और जिनकी गायें २० से ३० रतल तक रोजाना दूध देती हैं। हमारी नस्लें इस हद तक पहुँच जायँ तो काफी है। हमें खुशी है कि संघ के सुझाव पर भारत सरकार ने भी सर्वांगी नस्ल के बढ़ावे की नीति स्वीकार कर ली है। इस संबंध में भारतीय कृषि-अनुसंधान परिषद् का प्रस्ताव इस प्रकार है :

१. हमारे देश के बहुतेरे मवेशी किसी नस्ल में शुमार नहीं किये जा सकते, यह वस्तुस्थिति है। उसे नजर में रखते हुए यह आवश्यक है कि सर्वांगी नस्ल के मवेशी पैदा किये जावें। याने एक ही नस्ल में खेती लायक मजबूत बैल पैदा करने की और अधिक मात्रा में दूध देनेवाली बछियाँ पैदा करने की दोनों शक्तियाँ साथ-साथ जहाँ तक संभव हो अधिक-से-अधिक मर्यादा तक बढ़ायी जावें। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि जिनकी नस्ल तय नहीं है, ऐसे मवेशियों में ये दोनों गुण साथ-साथ साधारण हद तक बढ़ाये जा सकें, तो भी हमारे कार्य की पूर्ति के लिए अच्छी शुरुआत समझनी चाहिए।

२. जिन क्षेत्रों में विशेष नस्लें मौजूद हैं, वहाँ सिलेक्टिव ब्रीडिंग की रीति से नस्ल सुधार किया जाय। उस सुधार में दृष्टि यह रहे कि बैल-शक्ति एवं दूध-शक्ति, दोनों साथ-साथ बढ़ें।

३. जहाँ वत्सप्रधान नस्लें निश्चित रूप में मौजूद हैं, वहाँ उनके सुधार में यह नीति रखनी चाहिए कि बैल-शक्ति में कमी आये बगैर उनकी दूध-शक्ति जितनी भी अधिक-से-अधिक मात्रा में बढ़ायी जा सके, बढ़ानी चाहिए।

४. दुग्ध-प्रधान नस्लें भारत-विभाजन के कारण बहुत घट चुकी हैं। इस समिति की निश्चित राय है कि सिलेक्टिव ब्रीडिंग द्वारा इन नस्लों में उच्चतम सीमा तक दूध-शक्ति बढ़ानी चाहिए, और उनका उपयोग अविकसित क्षेत्रों के मवेशियों के विकास में करना चाहिए।

इस नीति का असर अखिल भारत पशु-प्रदर्शनी या उसके द्वारा आयोजित पशु-प्रदर्शनियों या प्रादेशिक पशु-प्रदर्शनियों—सब पर हो।

गाय के दूध की विशेषता

१. भैंस के दूध के मुकाबले गाय का दूध माता के दूध के ज्यादा नजदीक है। अतः मनुष्यों के लिए गाय का दूध अधिक लाभदायी है, यह बात नीचे के तख्ते से मालूम होगी :

	पानी	प्रोटीन	स्नेह	शर्करा	खनिज	कुल घन पदार्थ
माता	८७.५८	२.०१	३.७४	६.३७	०.३०	१२.४२
गाय	८७.२७	३.३६	३.६८	४.९४	०.७२	१२.७३
भैंस	८१.९२	४.२५	७.५५	४.७५	०.८६	१८.८

२. कॅलशियम, सोडियम, पोटैशियम, कॉपर, झिंक और मॅगनीज, ये धातुएँ सबके दूध में मिलती हैं, लेकिन लोहा, सल्फर

और आयोडिन, ये केवल गाय के दूध में ही मिलती हैं, भैंस के दूध में नहीं।

३. गाय के दूध में विटामिन अधिक होते हैं।

४. गाय के दूध में लेक्टोकोकस बेसिलिस जल्दी बढ़ते हैं, इस कारण गाय का दूध सुपाच्य और स्फूर्तिदायक होता है। दही का जल्दी जमना इसका प्रमाण है। गाय के दूध का दही जल्दी जमता है।

५. भैंस के घी के मुकाबले गाय के घी में आँख को ज्योति देनेवाला केरोटीन दसगुना होता है। भैंस के घी में अपचनीय अंश ४४ प्रतिशत होता है, जब कि गो-घृत में वह ३६ प्रतिशत होता है। इसके अलावा गो-घृत में औषधि-गुण भी काफी मात्रा में होते हैं।

६. गाय की प्रकृति मनुष्य-प्रकृति से मिलती-जुलती होती है। गाय प्यार को समझती है। गाय का बच्चा हमारी माताओं की तरह ९ महीने १० दिन में जन्मता है। जो औषधियाँ मनुष्य पर काम करती हैं, वे ही औषधियाँ अधिक मात्रा में गाय पर लागू होती हैं। इस तरह मनुष्य-प्रकृति से गाय अधिक नजदीक होने के कारण मनुष्य के लिए गाय का दूध-घी अधिक लाभदायी होता है।

७. वस्तुस्थिति यह है कि जो गुण-दोष माता में होते हैं, उनका असर दूध में होता है; फिर भले ही उनमें के कुछ गुण-दोष सायन्स की पहचान में आवें या न आवें। सांड और गाय में चपलता, स्फूर्ति, तेज, बुद्धिमत्ता दीखती है। इससे उल्टे भैंस और भैंसे में जड़ता, स्थूलता और बुद्धिहीनता दीखती है। इन गुणों का असर दूध में आये बिना नहीं रह सकता।

पिछले बारह वर्षों से वर्धा में गाय के दूध का प्रयोग हो रहा है। शहर में भी सैकड़ों लोग गाय के दूध का सेवन करते हैं। अनुभव से यह देखा गया है कि गाय के दूध का सेवन करने से सभी स्त्री-पुरुष, खासकर बच्चे विशेष निरोग रहे। आज दुनिया के अमेरिका, रूस, इंग्लैंड, यूरोप तथा अफ्रीका आदि देशों में केवल गाय के ही घी-दूध का उपयोग किया जाता है। भैंस वे रखते ही नहीं। वे मनुष्य के लिए भैंस का दूध लाभदायी नहीं मानते।

गाय का दूध स्वास्थ्य के लिए निश्चित रूप से लाभदायी है, इसमें मुझे कोई शक नहीं था, पर भैंस का दूध अधिक ताकतवर होगा ऐसी शंका मन में थी। लेकिन एक बार बैंगलोर में देखा कि घुड़दौड़ के लिए दस-दस, बीस-बीस हजार की कीमत के घोड़े-घोड़ी तैयार करने का जो फार्म है, उस पर जो सांड-घोड़ा रखा जाता है, उसे विशेष रूप से गाय का दूध पिलाया जाता है। जाँच करने पर मालूम हुआ कि भैंस का दूध पिला देने से दौड़ के बीच में ही घोड़े का दम टूट जाता है। गाय के दूध में ही अंत तक दम कायम रखने की शक्ति है।

यह बात सुनने के बाद विश्वास हो गया कि भैंस के दूध के मुकाबले ताकत भी गाय के दूध में ही अधिक है। बाद में आगरा के सेठ अचलसिंहजी से भेंट हुई। वे बड़े पहलवान हैं। उन्होंने भी अपना अनुभव बताया कि पहले वे भैंस का दूध इस्तेमाल करते थे। तब सुस्ती अधिक रहती थी और काम की ताकत कम। जब से गाय का दूध शुरू किया है, अत्यंत स्फूर्ति मालूम होती है और इतनी ताकत मालूम होती है कि काम से थकान आती ही नहीं।

गाय और भैंस

अब सवाल यह है कि भैंस का क्या किया जाय। क्या वह

अपवित्र है, उसका दूध बुरा है या देश को उसकी जरूरत नहीं है ? उसको कत्ल कर दिया जाय ? यह शंका ठीक नहीं है। छोटे बच्चों के पालन पर विशेष ध्यान देने के लिए कहने का अर्थ यह नहीं होता कि बड़े बच्चों को मरने दिया जाय या मार दिया जाय। उसका इतना ही अर्थ है कि बड़े बच्चे अपने को सँभालने में समर्थ हैं, अभी समाज को छोटों की सँभाल करना जरूरी है। इसी तरह संघ भैंस के प्रश्न को उपयोगिता व आवश्यकता की दृष्टि से देखता है। संघ का भाव यह नहीं है कि धार्मिक दृष्टि से गाय पवित्र है और भैंस अपवित्र है।

हमारा किसान खेती के लिए बैल और दूध के लिए भैंस, इस तरह गाय-बैल, भैंस-पाड़ा, दोनों जोड़ी का बोझ नहीं उठा सकता। आज देश में चारे की कमी है। उसे खेती और दूध, दोनों काम एक ही जोड़ी से लेने चाहिए। जिस तरह हम एकांगी गाय को भाररूप मानते हैं और उसे सर्वांगी बनाने का प्रयत्न करते हैं, उसी तरह जहाँ भैंस के नर (पाड़े) खेती में काम नहीं आते हैं, वहाँ वह एकांगी हैं, भाररूप हैं। जहाँ नर (पाड़े) खेती के काम में आते हैं वहाँ भैंस सर्वांगी अर्थात् पूर्ण उपयोगी समझी जायगी। वही स्थान उसके लायक है। हम भैंस को मारना नहीं चाहते। उसे उचित स्थान पर रखना चाहते हैं। गाय आज गिरी हालत में है। उसे सहारे की प्रथम जरूरत है। इसलिए हम पूरी शक्ति गाय को उठाने में ही लगाना चाहते हैं। इस बारे में पू० बापूजी ने संघ के प्रथम सम्मेलन में जो भाषण किया था, वह यहाँ दिया जाता है ताकि उन्हींके शब्दों में संघ की नीति स्पष्ट हो जाय :

"मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप और हम गाय को न बचा सके तो गाय और भैंस, दोनों को नहीं बचा सकेंगे और दोनों को साथ-साथ

बचाने की कोशिश करना संभव नहीं है। साथ-साथ बचाने जायँगे तो भैंस गाय को खा जायगी। इन दोनों जानवरों में अभी तक गाय की ज्यादा उपेक्षा की गयी है। इसलिए गाय के बचाने पर ही जोर देना चाहिए। यदि जमनालालजी को एक करोड़ रुपया मिल जाय तो भी उस वक्त तक हमारा उद्देश्य पूरा नहीं होगा, जब तक कि लोगों के और खास तौर पर पिंजरापोल और गौशाला चलानेवाले लोगों के विचार बदलकर हम उन्हें अपने खयाल के न बना लेंगे।

"बहिष्कार का कोई सवाल नहीं है। भैंस को तो मारने का प्रश्न ही नहीं है। मारने की बात ऐसी है जो पश्चिमवालों को आसानी से सूझती है। यही कारण है कि वे घटिया गाय-बैलों को मारकर अपनी मुश्किल हल कर लेते हैं। लेकिन यह हल मेरे लिए किसी भी काम का नहीं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम गोरक्षा का सच्चा शास्त्र सीख लें, तो भैंस की और दूसरे जानवरों की रक्षा का शास्त्र हमें अपने-आप मालूम हो जायगा।

"यहाँ एक यह सवाल पैदा हो सकता है कि भैंसों का बहिष्कार कर दिया जाय, तो उनका और उनके मालिकों का क्या होगा? इस बारे में मैं कह सकता हूँ कि गाय की सेवा का उद्देश्य इस हद तक पूरा हो जाय, तो मैं भैंसों और उनके मालिकों को सँभाल लूँगा। अगर मिल-मालिक स्वेच्छा से अपनी मिलें बन्द कर दें या वे बन्द हो जायँ, तो मैं खुशी के मारे नाचूँगा, लेकिन भैंस रखनेवाले अपनी भैंस कत्ल कर डालें या वे नष्ट हो जायँ तो मुझे दुख होगा। पश्चिम के अर्थशास्त्र में नीति की गुंजाइश नहीं। हमारे अर्थशास्त्र का नीतिशास्त्र से मेल है और अगर मेल नहीं है तो होना चाहिए। मैं जो सिर्फ गाय की ही रक्षा पर जोर देता हूँ उसका कारण तो यह है कि गाय की बेजा उपेक्षा की गयी है। हालाँकि मेरी राय में गाय आर्थिक दृष्टि से लाभदायक प्राणी हो सकता है। इस बात को साबित करने के लिए मुझे वेदों की सहायता नहीं चाहिए। यह ऐसा विषय है जिसमें वेदों के उपदेश को बुद्धि की कसौटी

पर करूँगा। बुद्धि मुझे विश्वास दिलाती है कि अगर मैं गाय को बचा लूँ तो गाय और भैंस, दोनों को बचा लूँगा। अगर कोई मुझे विश्वास करा दे कि गाय तो बच ही नहीं सकती और भैंस की ही रक्षा होनी चाहिए, तो मैं 'भैंस-सेवा-संघ' खोलने को तैयार हूँ। लेकिन बात तो उल्टी ही है। भैंस को विशेष संरक्षण की जरूरत नहीं, गाय को जरूरत है। भैंस और बकरी भी गाय की तरह ही मेरी माता है, मगर मैं जानता हूँ कि बेचारी बकरी तो बच ही नहीं सकती और गाय को बचाने की बड़ी जरूरत है और जब हम गाय को बचा लेंगे तो भैंस की रक्षा अपने-आप हो जायगी।"

स्थानीय गाय

ऊपर के विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूज्य बापूजी भैंस को भी बचाना चाहते हैं, लेकिन उसे बचाने के लिए वे प्रथम गाय को बचाने की आवश्यकता मानते हैं। लोग पूछते हैं कि गाय को ही बचाना है तो जहाँ-तहाँ की रद्दी गायों के पीछे शक्ति लगाने की अपेक्षा पंजाब आदि भागों से खूब दूध देने-वाली, और जिनके बैल भी अच्छे हों, ऐसी सर्वांगी गायें लाकर उन्हीं गायों को सब जगह बढ़ाना चाहिए। आज कई जगह इस तरह से काम चल रहा है। सरकार के भी बहुत से फार्म इसी तरीके से पर-प्रान्तीय गायें रखकर चलते हैं। लेकिन संघ की राय है कि एक स्थान की गायें दूसरे स्थान में जाने पर उनको वहाँ की आबोहवा अनुकूल नहीं पड़ती। अपने स्थान के मुकाबले वहाँ जाने पर उनका दूध घट जाता है। वे वहाँ पर पनप नहीं सकतीं। उनकी जनन-शक्ति कम हो जाती है। बछड़े कम बचते हैं। उन पर सांसर्गिक रोगों का असर जल्दी होता है और उनकी संतानें पीढ़ी-दर-पीढ़ी कम दूध देनेवाली होती हैं। बाहर की गायों के लाये जाने के कारण स्थानीय नस्ल की ओर लापरवाही

की जाती है, जिसके कारण उनकी हालत दिन-ब-दिन गिरती जाती है। यदि ऐसा कड़ा नियम बना दिया जाय कि एक स्थान की मादा दूसरे स्थान पर नहीं ले जायी जा सकती, तो आज जो ह्रास हो रहा है, वह रुक सकता है और स्थानीय गायों की तरफ विशेष रूप से ध्यान दिया जाय, तो दिन-ब-दिन उन्नति हो सकती है।

गत कुछ वर्षों से वर्धा के आसपास गोपालन सम्बन्धी प्रयोग किये जा रहे हैं। स्थानीय गौलाऊ नस्ल की गायें सिर्फ बछड़ों के लिए पाली जाती थीं। इन गायों का दूध बढ़ाने के थोड़े-से प्रयत्न हुए। फलस्वरूप इस जाति की गायें दूध कुछ अधिक देने लगी हैं तथा और भी अधिक दूध दे सकेंगी, ऐसा विश्वास होने लगा है। इतना ही नहीं, जब से इन गायों का दूध निकालना शुरू किया गया तब से इनकी खिलायी-पिलायी अच्छी होने लगी और उनसे पैदा होनेवाले बछड़े भी अधिक स्वस्थ और मजबूत होने लगे।

यदि हम व्यापक दृष्टि से विचार करें, तो यह स्पष्ट समझ में आ सकता है कि एक स्थान की कुछ अच्छी गायों को दस-बीस स्थानों में वितरण करने से समग्र गोवंश की उन्नति किसी भी हालत में नहीं हो सकती और बिना पूरे गोवंश की उन्नति के सारे देश में दूध की वृद्धि कैसे हो सकती है? इधर-उधर की गायें लाकर दो-चार गौशालावाले भले ही उन्नति दिखा सकते हैं, लेकिन सही उन्नति सारे गोवंश पर याने स्थानीय गायों पर ध्यान देने से ही हो सकती है। यह काम बहुत धीमा है। आरम्भ में काफी कठिन है। लेकिन सफलता की सही कुंजी इसीमें है, ऐसा संघ का विश्वास है और सभी विशेषज्ञों एवं अनुभवियों ने भी संघ को यही सलाह दी। इसलिए संघ ने अपने द्वितीय सम्मेलन में निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किया :

"इस सम्मेलन की राय है कि गो-जाति की उन्नति और रक्षण की दृष्टि से स्थानीय नस्ल के ही चुने हुए पशुओं को लेकर नस्ल-सुधार का काम करना चाहिए। वही वहाँ की आबोहवा में अच्छी तरह टिक और पनप सकते हैं और बड़े दायरे में गो-जाति का सुधार स्थानीय नस्ल पर ही निर्भर है। पर इस समय जहाँ कोई विशेष स्थानीय नस्ल न रह गयी हो वहाँ बारीकी से पूर्व नस्ल के ह्रास के कारणों की खोज की जाय और वहाँ के लिए उपयुक्त नस्ल स्थिर करने में अनुभवियों की सलाह से सावधानी-पूर्वक प्रयोग शुरू किया जाय।"

स्थानीय नस्ल किसे मानें, इस बारे में अनेक मतभेद हो सकते हैं। स्थानीय नस्ल से हमारा आशय है 'स्थानीय खेती जोतने में स्थानीय खुराक पर जो बैल अधिक-से-अधिक काम देते हों वे बैल और उनकी माताएँ।'

बूढ़े व अनुत्पादक पशु

स्थानीय गायों की तरक्की के लिए यह आवश्यक है कि अच्छे सांड के साथ-साथ उनको चारा भी भरपेट मिले। देहातों में या शहरों के आसपास जो चारा होता है, उसमें आज उपयोगी और अनुपयोगी, दोनों तरह के पशु हिस्सा बँटाते हैं। यदि अनुपयोगी पशु वहाँ से हटा दिये जायँ तो उपयोगी पशुओं के लिए चारे की सहूलियत हो जायगी। इन अनुपयोगी पशुओं को हटाने के दो रास्ते हैं। जो लोग गोवधबन्दी नहीं मानते वे तो कत्ल करने का सरल रास्ता अख्तियार कर लेते हैं। वह रास्ता आसान है और अर्थशास्त्र की दृष्टि से लाभदायी भी है; लेकिन हमने अपने लिए वह रास्ता बन्द कर दिया है। इसलिए हमारा काम कठिन है और सारी दुनिया के रास्ते से अलग स्वतन्त्र रास्ता खोजने का है। बूढ़े पशुओं के लिए हमारी नीति है कि दूर जंगलों में गोसदन

कायम किये जावें। वहाँ चारे-पानी की व्यवस्था हो। वहाँ सांड न रखा जावे, इससे बेकार पशुओं की उत्पत्ति रुक जायगी। वहाँ चर्मालय रहे, उसमें चमड़ा निकालने की, कमाने की तथा हाड़-मांस, चरबी सब चीजों का पूरा-पूरा उपयोग करने की व्यवस्था हो। वहाँ खेती भी हो ताकि गोबर व गोमूत्र के खाद का पूरा लाभ मिल सके। गोसदन स्वावलम्बी तो नहीं चल सकते, लेकिन इस तरह खर्च में काफी कमी की जा सकेगी तथा देहात व शहरों के उपयोगी पशुओं पर इनके चारे का बोझ नहीं पड़ेगा। खर्च कम करने के सारे तरीकों का इस्तेमाल करने से गोसदनों पर जो रकम खर्च होगी, वह भी काफी बड़ी होगी। वह कहाँ से आवे, यह सवाल रहता है। आज बड़े-बड़े शहरों में व्यापारियों ने स्वयं प्रेरणा से व्यापार पर धर्मादा के नाम से गोरक्षणों के खर्च के लिए लागें लगा रखी हैं, उन लागों को कानूनी बना दिया जावे। जिन शहरों में ये लागें न हों वहाँ भी लगा दी जावें। जहाँ स्थानीय गोरक्षण संस्था चलती हो वहाँ आधी आमदनी उसे दे दी जाय व आधी गोसदनों के लिए। जहाँ गोरक्षण संस्था न चलती हो वहाँ की पूरी आमदनी गोसदनों के लिए रहे। इस तरीके से स्थायी व्यवस्था हो सकती है। चालू गोरक्षण-संस्थाओं को इसमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि उनके भी काफी पशु गोसदनों में जावेंगे।

बूढ़े पशुओं का प्रश्न सदा रहेगा और उसका हल भी गोसदन से ही हो सकेगा। बहुत से बूढ़े पशुओं को तो लोग अपने-आप ही पाल लेंगे, क्योंकि वह अधिक दिन नहीं जीते। उनसे जन्म भर आमदनी भी मिल गयी होती है। लेकिन जो पशु अभी जवान होने पर भी खाते हैं और उतना उत्पादन नहीं देते, ऐसे अनुत्पादक पशुओं का प्रश्न बड़ा कठिन है। उसको हल करने के लिए संघ ने दो तरीके सोचे हैं :

१. बुरे सांडों को बधिया करके अच्छे सांडों से ही बच्चे लिये जावें ताकि नयी पीढ़ी में दूध बढ़े व बैल अच्छे निकलें, और वे अनुत्पादक न रहें। जो गायें अच्छे बछड़े देने के काबिल न हों उन्हें गोसदन में रखकर उनका प्रजनन बन्द किया जाय।

२. ऐसे कम उत्पादक पशुओं में गायें ही अधिक होती हैं। बैलों से तो काम मिल ही जाता है। ऐसी गायों से जोतने का काम लिया जाय, तो कुछ हद तक समस्या हल हो सकती है। आज मैसूर राज्य में इस तरह गायों से काफी तादाद में खेत जोतने का काम लिया जाता है। बैलों की तरह नाथ डाली जाती है और बैलों की बराबरी में भी जोत देते हैं। लेकिन भारी तथा पानी खींचने आदि के अधिक शक्तिवाले काम नहीं लिये जाते।

इस विषय में अभी सावधानी से प्रयोग करने की जरूरत है कि इसका गाय के दूध-उत्पादन व प्रजोत्पादन पर क्या असर होता है। पूरी तरह से शास्त्रीय संशोधन के बाद ही इसका प्रचार किया जा सकता है।

गोसदनों में बूढ़ी या लावारिस गायें ही अधिक जावेंगी, इसलिए पशुओं की मृत्यु-संख्या भी वहाँ अधिक होगी। उन मृत पशुओं के चमड़े, हाड़, मांस, चरबी, सींग आदि का पूरा उपयोग किस तरह लिया जाय, इसकी शिक्षा देने के लिए संघ की ओर से नालवाड़ी, वर्धा में गोसेवा-चर्मालय चल रहा है। जानकारी के लिए उसका थोड़ा पूर्व इतिहास यहाँ देना उचित होगा।

गोसेवा-चर्मालय

गोवधबंदी कराने की दृष्टि से गोवध के कारणों की खोज करते हुए पता चला कि हिन्दुस्तान में, खासकर मध्यप्रदेश में जो गोवध चल रहा है, उसमें से अधिकांश गायें केवल चमड़े के लिए

ही मारी जाती हैं। कत्ल किया हुआ चमड़ा तुरंत पकाने के लिए चला जाता है, कारण वह अच्छा मुलायम बन जाता है और उसका मूल्य भी काफी अधिक मिलता है। लेकिन अपने-आप मरनेवाले पशु का चमड़ा तुरंत पकाने के लिए नहीं ले जाया जा सकता। पहले उसे नमक लगाकर सुखा लिया जाता है और चार-छह महीने बाद फिर वह पकाने के लिए चर्मालय में जाता है। चमड़ा धूप में सुखाया गया हो तो पकाने में सड़कर गल भी जाता है। पशु किसी-न-किसी बीमारी से या अत्यधिक बूढ़ा होकर मरता है, इस कारण भी उसका चमड़ा खराब हो जाता है। मरे हुए जानवर को उठाकर ले जाते समय घसीटकर ले जाने में छिलकर चमड़ा फटता और खराब होता है। जानवरों की मृत्यु-संख्या बरसात में अधिक होती है। उस समय सुखाने का उचित प्रबंध न होने के कारण उसे गीला ही नमक लगाकर अधिक दिनों तक रख छोड़ते हैं। ऐसे अनेक कारणों से मृतक पशु का चमड़ा खराब होता रहता है।

हरिजन-आंदोलन के दिनों में श्री गोपालरावजी वालुंजकर की नजर में यह बात आयी। पू० बापूजी व विनोबाजी से उन्होंने बात की। यह सोचा गया कि कत्ल किया गया चमड़ा लोग काम में न लें तो गोवध कम हो और लोगों को मृतक चमड़ा पहनना हो तो उसे अच्छे-से-अच्छा पकाने की व्यवस्था होनी चाहिए। इस विचार से सन् १९३५ में नालवाड़ी, वर्धा में पूज्य बापूजी ने गोसेवा-चर्मालय की स्थापना की और श्री गोपालरावजी ने श्री सतीशचंद्रदास गुप्ता की सहायता से अच्छी-से-अच्छी चमड़ा-पकाई, रँगाई, क्रोम पकाई, केशदार पकाई आदि की व्यवस्था की। प्रथम यह चर्मालय ग्राम-सेवा-मंडल ने शुरू किया। पीछे गांधी सेवा-संघ के मातहत चला और १९४१ में फिर से ग्राम-

सेवा-मंडल के पास आया। अब छह साल से वह गोसेवा-संघ के अधीन चल रहा है। सन् १६३८ में कांग्रेस मंत्रिमंडल बना तब मध्यप्रदेश सरकार ने श्री गोपालरावजी की प्रेरणा से वर्धा, नागपुर और यवतमाल में मृतक पशु केन्द्र खोले। लेकिन सन् १६३६ में कांग्रेस मंत्रिमंडल ने इस्तीफा दिया, तब तीनों केन्द्र चर्मालय के अधीन किये गये। आज वर्धा व यवतमाल केन्द्रों में पूर्ववत् चमड़ा उतारना और मांस, चरबी, हड्डी आदि की खाद बनाने का कार्य जारी है। इस चर्मालय के चलाने में संघ की नीति यह है कि मृत पशु के चमड़े का, मांस का, हड्डी का, चर्बी का, सब उपयोग अधिक-से-अधिक लिया जाय ताकि उतनी रकम गाय के उत्पादन में अधिक जमा हो। चर्मालय में कत्ल की गयी गाय, बैल, भैंस का चमड़ा काम में नहीं लिया जाता। संघ के सभासदों के लिए यह नियम आवश्यक रखा है कि गाय, भैंस के कत्ल किये गये चमड़े की कोई चीज इस्तेमाल न करें। अन्य पशुओं के बारे में यह नियम नहीं है, क्योंकि उनका कत्ल रोक सकने की हमें कोई उम्मीद नहीं है।

शहरों से दुधारू पशुओं का हटाना

गोवंश के ह्रास एवं गोवध के कारणों की अधिक खोज करने से पता चला कि पशुओं की दुधारू नस्ल का विनाश सबसे अधिक बड़े शहरों में हो रहा है। आज तक यह समझ थी कि अंग्रेजी फौज के लिए मुसलमानों द्वारा कसाईखानों में बहुत-सी गायें कत्ल होती रहीं, इसलिए गोवंश का ह्रास हो रहा है, अच्छी गायें कट रही हैं और बुरी बच रही हैं। लेकिन जाँच में यह बात सामने आयी कि कसाईखानों में तो आर्थिक लाभ की दृष्टि ही अधिक रही है और वहाँ चुन-चुनकर सस्ती गायें ही मारी गयी

हैं। मुसलमान या अंग्रेजी फौजों के लिए जो गायें काटी जाती थीं, वे मांस की दृष्टि से तंदुरुस्त, मोटी-ताजी और जवान देखकर ली जाती थीं; लेकिन वे लोग भी अधिक दूध देनेवाली गायों को कभी कत्ल नहीं करते थे। तब सवाल उठता है कि अच्छे दूध की नस्ल कैसे नष्ट हुई ?

अधिक जाँच के बाद पता लगा कि बड़े-बड़े शहरों में दूध के लिए अच्छी-से-अच्छी गायें ले जायी जाती हैं और वे दूध बन्द होने के बाद कसाई के हाथ बेच दी जाती हैं। इस तरह से भारत का अच्छे-से-अच्छा गोधन इन शहरों की बलिवेदी पर भस्म हो रहा है। गोसेवा-संघ ने पूज्य बाबू राजेन्द्रप्रसादजी की अध्यक्षता में इस विषय की जाँच के लिए एक समिति नियुक्त की थी। उस समिति ने कलकत्ता और बम्बई, दो जगह की जाँच की। उसकी रिपोर्ट स्वतंत्र रूप से प्रकाशित हुई है। जाँच में यह पाया गया कि बड़े शहरों में गायों की हालत बहुत बुरी रहती है। न उनके निवास के लिए पूरा स्थान होता है, न दिन में घूमने को। बछड़े-बछड़ियों को मार दिया जाता है; क्योंकि उन्हें खिलाने-पिलाने में जितना खर्च होता है, उतनी उनकी कीमत नहीं आती। गायों को धनारने के लिए सांड की कोई सुविधा नहीं है, कृत्रिम उपायों से इतना दूध निकाला जाता है कि गाय जल्दी गरमाती भी नहीं। अक्सर दूध बन्द होने के बाद गाय कसाई के हाथ बेच दी जाती है, सूखी गाय को ब्याने तक आठ-नौ महीने रखने और खिलाने में जितना खर्च होता है उससे कम कीमत में नयी गाय मिल जाती है। इसलिए वहाँ के ग्वाले पंजाब, सिंध आदि से नयी गायें खरीदते हैं और पुरानी कसाई को बेच देते हैं। इस तरह देश की अच्छी-से-अच्छी दुधारू गायें और उनकी सन्तानें नष्ट कर दी जाती हैं। देश के

बढ़िया गोधन के विनाश का सबसे बड़ा कारण यही है। आज अच्छी दुधारू गाय का मिलना कठिन हो गया है, इसलिए शहर के दूधवाले गायों के स्थान पर दुधारू भैंसों को शहरों में ले जाने लगे हैं और उनकी भी वही बुरी हालत होने लगी है। आज बम्बई में ९५ फीसदी भैंस हो गयी हैं और कलकत्ते में ५० फीसदी के करीब। इस विनाश को रोकने के लिए संघ की यह स्पष्ट राय है कि बड़े शहरों में दुधारू पशुओं का रखना कतई बन्द कर देना चाहिए। जिन लोगों के पास बहुत कुछ खुली जमीन हो और जो लोग सूखे पशु पाल सकने में समर्थ हों, ऐसे कुछ लोगों को अपवाद के तौर पर इजाजत दी जा सकती है। शहरवालों को चाहिए कि शहर में पशु रखने के बदले देहातों से दूध शहर में लाने का इन्तजाम कर लें। मोटर, ट्रेन आदि से सौ-पचास मील दूर तक दूध लाया जा सकता है। गाय-भैंस तो वहीं रहनी चाहिए जहाँ पर खेती की जमीन है, चारा-पानी सस्ता है और जहाँ सूखे जानवर को पालने में आसानी है। ऐसे स्थानों पर गाय रखने से गाय बचेगी, खुली हवा में फिरनेवाली गाय का दूध भी अच्छा मिलेगा, खेती को अच्छा खाद मिलेगा, खेती की उन्नति होगी, अनाज की उपज बढ़ेगी। शहरों के बाहर गाय-भैंसों के चले जाने से शहरवाले गोबर और मूत्र की गन्दगी से तथा बीमारियों से बच जावेंगे। यह ऐसा तरीका है जिसमें गाय और शहरवाले, दोनों का लाभ है। दोनों बच जाते हैं।

खेती-गोपालन अभिन्न

सही बात तो यह है कि खेती और गाय, दोनों की जोड़ी है। दोनों एक-दूसरे से अभिन्न हैं। दोनों एक सिक्के के दो बाजू हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। खेती को गोपालन का जोड़ मिल

जाने से खेती के लिए अच्छे बैल पैदा होकर खेती की जुताई अच्छी होती है। गोबर और गोमूत्र में कचरा मिलाकर बड़ी तादाद में मिश्र खाद बनायी जा सकती है, जिससे खेती की उपज बढ़ती है, और उपज-शक्ति कायम रहती है। इन पशुओं के कारण अनाज से बचे हुए बेकार डंठल काम में आ जाते हैं और उनकी कीमत आ जाती है। किसान को बैल और गाय के सहारे से बचत के दिनों में आमदनी के कई काम मिल जाते हैं। उत्तर-प्रदेश में सन् १९४१ से १९४६ तक छह जिलों में केवल खेती और गोपालन के साथ खेती, इन दोनों के प्रयोग किये गये थे। उस बारे में उत्तर-प्रदेश की सरकार ने गोपालन और खेती के नाम से एक पर्चा (नं० १८८) निकाला है। उसमें बताया है कि ५ वर्ष के बाद यह सिद्ध हुआ कि गोपालन करनेवाले किसानों की आय कहीं-कहीं साधारण किसानों के मुकाबले तिगुनी से भी अधिक हो गयी। गोपालन के साथ खेती करनेवालों की आय फी एकड़ ११०।≡) पड़ी है और साधारण खेती की औसत आय फी एकड़ ५१॥-) पड़ी है।

इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि गाय का जोड़ मिलने से खेती की उपज बढ़ती है। कई जगह यह सवाल उठाया जाता है कि हम मनुष्यों को खिलायें या गाय को खिलायें। ऊपर के प्रयोगों से यह स्पष्ट होता है कि यह सवाल ही गलत है। हम गाय को जो कुछ भी खिलाते हैं, वह अपने लिए ही खिलाते हैं। गाय पर मेहरबानी नहीं करते। जितना उसे खिलाते हैं, उसके मुकाबले कई गुना अधिक लाभ हमें मिलता है! जैसे बीज बोने को धूल में अनाज फेंकना नहीं कहा जायगा, वैसे ही गाय को खिलाना भी। जैसे गाय से खेती को लाभ है, वैसे गाय को भी खेती से लाभ है। वह सुखमय जीवन खेत पर ही बिता सकती है। जहाँ खेती

नहीं है, वहाँ चारादाना महँगा होगा। वहाँ अच्छी-सी गाय का भी आज के अर्थशास्त्र में खड़ा रहना कठिन होता है। हमने वर्धा के आसपास दो-चार जगह, जहाँ खेती के लिए काफी जमीन थी, लेकिन उपज अच्छी नहीं थी, गौशालाएँ खोलीं और नतीजा यह हुआ कि वहाँ की जमीनें उपजाऊ बन गयी हैं। संघ की निश्चित राय है कि खेती और गोपालन एक-दूसरे के पूरक हैं। वे साथ-साथ चलने चाहिए याने हर किसान के पास गायें होनी चाहिए और हर ग्वाले के पास खेती की जमीन। इसी अनुभव से संघ ने गोपालन के साथ-साथ कृषि का काम भी हाथ में लिया है। और अब इस विभाग का नाम भी 'कृषि-गोसेवा विभाग' कर दिया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में कृषि के साथ गोसेवा जोड़ी है : "कृषि गोरक्ष वाणिज्यं।"

स्वावलम्बन

खेती के जोड़ से ही गाय स्वावलम्बी बन सकती है। गाय को जिन्दा रखने के लिए उसका स्वावलम्बी बनना आवश्यक है। आज का अर्थशास्त्र केवल माँग और पूर्ति की बुनियाद पर खड़ा है। उस पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता। देश के हित में आज नहीं तो कल उसे ठीक करना ही होगा। सच्चे अर्थ-शास्त्री की दृष्टि से हम सोचें तो गाय कभी घाटे का सौदा नहीं हो सकती। अनाज हम खा लें और उसके बेकार डंठल, भूसा आदि जो फेंकने और जलाने योग्य वस्तु बचती है, उसे गाय खाय और उसका बढ़िया-से-बढ़िया खाद्य-पदार्थ दूध बनाकर दे, यह कोई छोटी-मोटी सेवा नहीं है। आज के बढ़े हुए यन्त्रयुग में भी ऐसी कोई मशीन अभी तक नहीं निकली है, जिसमें कड़वी, भूसा डाल दें और उसका दूध बन जाय। गाय हमें ऐसा इंजन देती है जिसके बनाने के लिए लोहे की जरूरत नहीं, कारीगर या कार-

खाने की जरूरत नहीं और जिसे चलाने के लिए ईरान के तेल की आवश्यकता नहीं। गाय हमें ऐसा खाद देती है जिसकी बराबरी की दूसरी कोई खाद नहीं है। हजारों वर्षों तक भूमि की उपजाऊ शक्ति कायम रख सके, ऐसी खाद किसी यन्त्र ने नहीं बनायी है। केवल गाय ही ऐसी खाद देती है। गाय का दूध भी माँ के दूध से मिलता-जुलता होता है। मनुष्य के लिए अधिक-से-अधिक अनुकूल दूध गाय का ही होता है। इतना लाभदायक प्राणी कभी भी सच्चे अर्थशास्त्र में बोझरूप नहीं हो सकता। यदि आज के पैसे के अर्थशास्त्र में वह बोझरूप होता हो, तो हमें सोचना चाहिए कि इस अर्थशास्त्र में ही कहीं-न-कहीं कोई गड़बड़ी है और उसे सुधारना आवश्यक है।

सच्चे अर्थशास्त्र की दृष्टि से यह बात सही है कि गाय कभी बोझरूप नहीं होती। फिर भी आज के अर्थशास्त्र में गाय को स्वावलंबी बनाने का हमारा प्रयत्न होना चाहिए। संघ की यह निश्चित राय है कि अर्थशास्त्र में गाय स्वावलंबी बनेगी, तभी वह जी सकेगी। स्वावलंबी बनना याने खर्च की अपेक्षा अधिक पैदा कर देना। गाय को स्वावलंबी बनाने के लिए संघ ने दो रास्ते सोचे हैं। गाय का उत्पादन बढ़ाना यानी अधिक दूध देने की शक्ति और अच्छे बछड़े देने की शक्ति बढ़ाना, और उसके उत्पादन का यानी घी-दूध और बैल का बाजार कायम रखना, यानी उसकी माँग के साथ-साथ उसकी कीमत कायम रखना।

गोव्रत और जमाया हुआ तेल

ऊपर बताया है कि अर्थशास्त्र में गाय टिक सके, इसके लिए दो उपायों की जरूरत है। एक है गाय का उत्पादन बढ़ाना और दूसरा है उसकी उत्पादित चीजों के लिए बाजार बनाना। उत्पादन बढ़ाने के प्रश्न की चर्चा हम आगे करेंगे, यहाँ उसके बाजार

कायम रखने की बात का विचार करें। दूध के रूप में दूध बहुत कम परिमाण में केवल शहरों में बिकता है। अधिकांश देहातों में दूध जमाकर घी निकालकर भी बेचते हैं और छाछ काम में ले लेते हैं। आज के बाजारों में घी बेचने में दूध की कीमत कम मिलती है। यहाँ इतना बता देना आवश्यक है कि राष्ट्र-हित की दृष्टि से दूध बेचने की अपेक्षा घी बेचना ही हम अधिक पसंद करेंगे। इसमें किसान के घर में छाछ रह जाती है; जो उसके और उसके बच्चों के लिए अमृत के समान कीमती है।

दूध का भाव आज ६ आने से १ रुपया सेर तक का है। साधारणतया गाय के २७ सेर दूध में से एक सेर घी निकलता है। दही जमाने, बिलोने आदि की मेहनत अलग होती है। छाछ की कीमत एक-तिहाई से अधिक नहीं मिलती, यानी घी की कीमत १८ सेर दूध और घी निकालने की मजदूरी दोनों के बराबर होती है। कुछ गायों के दूध में घी की मात्रा कुछ अधिक रहती है। सारा विचार करने पर भी एक सेर घी की लागत १६ से २० सेर दूध के बराबर समझनी चाहिए। भैंस के दूध में घी का परिमाण गाय के घी से पौनेदो गुना होता है। १६ सेर दूध में एक सेर घी मानते हैं यानी छाछ का मूल्य निकालकर घी की कीमत ६ से १२ सेर दूध के बराबर पड़ती है।

आज दूध की कीमत कायम है, क्योंकि उसके मुकाबले कोई नकली दूध नहीं निकला है। विदेशी दूध, पाउडर के डिब्बों का कुछ बुरा असर होता है, लेकिन दूध की इतनी अधिक कमी है कि अच्छे दूध की बिक्री का बाजार कायम है। लेकिन जमाये हुए तेल (वनस्पति) के कारण घी के बाजार पर गहरा असर पड़ा है और पड़ रहा है। घी भी जरूरत से बहुत कम पैदा होता है। इसलिए वनस्पति के बावजूद वह खप सकता है। लेकिन वन-

स्पति की उसमें जो मिलावट होने लगी है, वह इतनी बढ़ गयी है कि अच्छे घी के मिलने की आशा छूटती जा रही है और लोग मिलावटी घी की अपेक्षा सीधा वनस्पति लेना अधिक पसंद करने लगे हैं। नतीजा यह होता है कि घी का बाजार खत्म होता जा रहा है। देश में 'वनस्पति' के विरोध में भारी आन्दोलन हुआ, अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति ने अहमदाबाद में इसके विरोध में प्रस्ताव पास किया। लोक-सभा के दो-तिहाई से अधिक सदस्यों ने घी की मिलावट रोकने की दृष्टि से वनस्पति को गाढ़ा न करने की सिफारिश की, भारत के कोने-कोने से लोगों ने इसका विरोध किया, फिर भी देश का दुर्भाग्य है कि मिलावट रोकने के लिए खास कोई उपाय अभी तक नहीं निकल पाया। संघ ने इस बारे में काफी अध्ययन किया है। संघ की निश्चित राय है कि इस जमाये हुए तेल की अपेक्षा बिना जमाया हुआ रिफाइन तेल या घानी का ताजा तेल अधिक पोषक और सस्ता पड़ता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से वनस्पति में खराबी होने-न-होने के बारे में अनेक मतभेद हैं, लेकिन ताजे तेल को सभी ने अच्छा माना है।

दूध या दूध-जन्य पदार्थों की नकलें बनाने का काम आज फुड रिसर्च संस्थाओं में हो रहा है। जैसे मूँगफली का दूध बनाना, खोवा बनाना, पेड़े बनाना, नकली घी-मक्खन बनाना, ये सारी चीजें असली दूध-घी के उत्पादन में बाधक होंगी। बाजारों का प्रसिद्ध नियम है कि बुरा सिक्का अच्छे को बाजार से खदेड़ देता है। वही नियम यहाँ भी लागू होगा। नकली माल असली को बाजारों से हटा देगा। लोगों को या शास्त्रज्ञों को पोषण की दूसरी चीजें तैयार करनी हों तो जरूर करें; पर उनके नाम अलग दें और उनका रंग-रूप भी दुग्ध-जन्य पदार्थों से अलग

बनावें, और उनकी बिक्री उनके वास्तविक गुणों के भरोसे हो। दुग्ध-पदार्थों की प्रतिष्ठा का बेजा लाभ न उठाया जाय।

जिस तरह नकली पदार्थ बाजार को गिरा रहे हैं, उसी तरह आज बाजारों में गाय के दूध को भैंस का दूध पीछे खदेड़ रहा है। भैंस का और गाय का हमारी दृष्टि में क्या स्थान है, इसकी चर्चा पहले आ चुकी है। हमारा मत है कि गाय को सहारा देने की जरूरत है। स्पष्ट है कि हम जिस पशु का दूध खरीदेंगे, उसी पशु को हमारे पैसों से खाना मिलेगा। यदि हम चाहते हैं कि गोसेवा हो, गाय की उन्नति हो तो हमें चाहिए कि अपने घर में केवल गाय का ही घी-दूध काम में लायें। ऐसा करने से हमारे घर से जानेवाला पैसा गाय के पेट में जाकर गाय को बचायेगा। इस तरह चारों ओर गाय के दूध की माँग बढ़ेगी, तभी गोरस का बाजार कायम रहेगा। तभी गोपालन को उत्तेजन मिलेगा और गाय की सच्ची सेवा होगी। इन्हीं कारणों से गो-सेवा-संघ के सदस्यों के लिए यह नियम रखा गया है कि वे गाय के ही घी-दूध का उपयोग करें। हमारी राय में गोव्रत लेना गोसेवा का श्रीगणेश है। हर गो-प्रेमी को कम-से-कम अपने घर में तो गोरस का आग्रह रखना ही चाहिए।

कितने ही लोगों की धारणा है कि गाय का घी न मिले तो वनस्पति खा सकते हैं, लेकिन भैंस का घी नहीं। यह विचारधारा गलत है। गाय और भैंस, दोनों के घी को वनस्पति हानि पहुँचा रही है। इसलिए गाय के घी के व्रतवालों को भैंस का घी या वनस्पति, दोनों ही चीजें नहीं खानी चाहिए। लेकिन दोनों में चुनाव करना ही हो, तो भैंस का घी खाना वनस्पति के मुकाबले हजार दर्जे अच्छा है।

यागका दूसरा उत्पादन बैल है। आज ट्रैक्टर और मोटर-

ठेले बैलों का काम छीनने लगे हैं। इनका उपयोग करते समय यह देखना जरूरी है कि बैल-शक्ति बेकार न पड़ी रहे। जहाँ बैल-शक्ति पर्याप्त नहीं पड़ती है, वहीं उनका उपयोग किया जाय।

नंदी (सांड)

अर्थशास्त्र में गाय को स्वावलंबी बनाने का दूसरा रास्ता उसका उत्पादन बढ़ाना है। उत्पादन बढ़ाने में सांड का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अच्छे सांडों के आधार पर ही दुनिया भर के देशों ने पशु-उन्नति की है। सैकड़ों वर्षों के अनुभव का सार अंग्रेजी में इस प्रकार कहा है : The bull is half the herd (अकेला सांड आधी गौशाला के बराबर होता है।) हमारे यहाँ भी नंदी का बड़ा महत्त्व रहा है। सांड छोड़ने का कार्य महापुण्य माना गया है। लेकिन इस समय अच्छे सांडों के अभाव में देश का पशुधन गिरता जा रहा है। अयोग्य सांडों से फलने के कारण भावी पीढ़ी कम दूध और कम ताकतवाली पैदा हो रही है। ऐसे बेकार पशुओं की रक्षा करना असंभव है। इसलिए अच्छे सांड पैदा करना और उनसे ही गायें फलाने का आग्रह रखे बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते, यह बात आज सर्वमान्य है।

आज एक साथ सौ टका अच्छे सांड मिलना संभव नहीं। इसलिए जो सांड उपलब्ध हों, उनमें से अच्छे सांड कायम रखकर बाकी सांडों को बधिया कर दिया जाय और ज्यों-ज्यों अधिक अच्छे सांड मिलते जावें, उनको रखते जायँ और कम अच्छों को बधिया कर दिया जाय। इस तरीके से आगे बढ़ना होगा। आज-कल धर्म के नाम पर कितनी ही जगह रद्दी सांड इधर-उधर घूमते हैं। उनको बधिया करने में कुछ लोग धर्म की हानि समझकर आपत्ति उठाते हैं; पर उन्हें समझना चाहिए कि अच्छे सांड के छोड़ने में महापुण्य क्यों माना गया है ? इसीलिए कि उससे गो-

संतान की तरक्की होती है। जिस सांड से गोसंतान का पतन होता है, ऐसे रद्दी सांडों को छोड़ना महापाप ही कहायेगा। रद्दी सांडों को बधिया करने का अर्थ है, गोजाति को पतन से बचा लेना। इसलिए रद्दी सांडों को बधिया करने का काम हमारी दृष्टि में अत्यंत आवश्यक और पवित्र काम है। इसके बिना हम आगे बढ़ ही नहीं सकते। इस काम की शिक्षा देने की हमने व्यवस्था की है। नयी पद्धति की बरडिज्जो केस्ट्रेक्टर मशीनें आती हैं। उससे आधे मिनट के भीतर बधिया करने की क्रिया कम-से-कम तकलीफ में हो जाती है।

बुरे सांडों को बधिया करने का काम आसान है, लेकिन अच्छे सांड तैयार करने का काम मुश्किल है। यह बात पहले आ चुकी है कि भारत की सभी गायें सर्वांगी (General Utility) बनायी जा सकती हैं। जो नस्लें सर्वांगी ही हैं, उनका तो सवाल ही नहीं। लेकिन अधिकांश भारत में तो वत्स-प्रधान (Draft Breed) नस्लें ही हैं। उनको सर्वांगी बनाने की दृष्टि से सांड का चुनाव करना हो, तो पहले यह देखना होगा कि अच्छा दूध देनेवाली गाय का बछड़ा सांड के लिए चुना जाय। उसमें सांड के योग्य लक्षण हों, तो उसे बचपन से भरपूर दूध पिलाया जाय और अच्छी खुराक दी जाय। सांड के योग्य बछड़ों पर चाहे जितना खर्च करें, बेकार कभी नहीं जाता। अनेक गुना वसूल होता है। अमेरिका ने एक सांड को इंग्लैंड से एक लाख रुपये में खरीदकर अपने गोधन की वृद्धि की है। आज भी वहाँ सांडों की कीमत लोग जानते हैं। पिछले दिनों अखबारों में निकला था कि अमेरिका में एक सांड दस लाख रुपये का है। हिसार सरकारी फार्म पर गधे सांडों का मूल्य १०००) है और एक गधे सांड को तो पाकिस्तान ने पचास हजार में माँगा था।

मैसूर में रेसेस के घोड़े तैयार करने का एक घोड़ा-सांड है। उसकी एक सर्विस की फीस एक हजार रुपया ली जाती है। वह घोड़ा लाख रुपये से ऊपर कीमत का माना जाता है। उसी तरह वृषभ भी अच्छे तैयार किये जा सकते हैं। सांड तैयार करने के इस काम में सरकार, गौशालाएँ तथा धनी किसानों को विशेष रूप से भाग लेना चाहिए। सांड का पालन किस तरह हो, इस बारे में संघ की ओर से 'वृषभ-सुधार' नाम की किताब छपी है।

ग्राम-नस्ल-सुधार-योजना

तैयार किये गये इन सांडों को देहातियों तक पहुँचाना और उनका उपयोग उनकी गायों के लिए हो, इस तरह की व्यवस्था करने का नाम है, ग्राम-नस्ल-सुधार-योजना (Key Village Centre Scheme)। आज यह योजना इधर-उधर छोटे पैमाने पर शुरू हो रही है। संघ ने भी इस बारे में एक योजना तैयार की है, जो "ग्राम-नस्ल-सुधार-योजना" के नाम से छपी है। इस तरह की योजना यहाँ पर पहले संघ के विशेषज्ञ श्री पारनेरकरजी ने तैयार की। उन्होंने यह योजना सरकार की मार्फत मध्यप्रदेश में सब जगह शुरू की है। आठ सांडों का एक केन्द्र रखा जाता है। ऐसे करीब ८० केन्द्र यहाँ चल रहे हैं। श्री पारनेरकरजी मध्यप्रदेश सरकार के आनरेरी 'लिव स्टाक अफसर' की हैसियत से सारी योजना देखते हैं। इस योजना का प्रसार भारत भर में सरदार दातारसिंहजी कर रहे हैं। उनकी प्रेरणा से हर प्रान्त में इसका प्रयत्न हो रहा है। भावनगर के महाराज ने आठ-दस साल पहले ही इसका प्रयोग श्री पु० न० जोशी के मातहत अपनी रियासत के १०० गाँवों में किया था और उसका नतीजा भी बहुत उत्साहवर्धक रहा। लेकिन रियासतों के विलीनीकरण

की गड़बड़ी में वह सारा काम समाप्त हो गया। सौराष्ट्र सरकार अब फिर से उसे चालू करने का विचार कर रही है।

इस योजना की मुख्य बात यह है कि गाय रखनेवाला हर किसान सांड नहीं पाल सकता। पुराने जमाने की तरह सांड चाहे जिधर फिरता रहे और लोगों की खेती को नुकसान पहुँचाता रहे, यह भी सहने लायक बात नहीं रही। अतः गाँव पीछे जरूरत के अनुसार एक-दो अच्छे सांड रखकर उनके चारे-दाने की व्यवस्था सब मिलकर करें और सरकार भी उसमें सहयोग दे। ऐसी यह सरकारी सांड-पालन की योजना है। यह काम हर गाँव में करना है। सब जगह सरकार का पहुँच सकना सम्भव नहीं। अतः सरकार जितना काम करती है उसे करने दें, लेकिन हम सब भी अपनी शक्ति के अनुसार इस काम को आगे बढ़ायें तभी इतना काम आगे बढ़ सकेगा। पिंजरापोलों को इसे विशेष रूप से करना चाहिए। अच्छे सांडों के वितरण के अलावा कोई ऐसा तरीका नहीं है कि अनुत्पादक पशुओं की संख्या घट सके और गायों का बेमौत मरना रोका जा सके।

पिंजरापोल या गोरक्षण (गौशाला) सुधार

पिंजरापोल या पुरानी गौशालाएँ किस तरह चलें, इसका विचार करने से पहले हम यह देखें कि उनकी स्थापना का उद्देश्य क्या था। पिंजरापोलों की स्थापना लावारिस पशुओं का इंतजाम और चिकित्सा करने के उद्देश्य से हुई थी। अच्छे पशुओं को लोग अपने घरों में पाल लेते हैं। जो भटकते, बेकार, बूढ़े, अपंग पशु होते थे, उनकी पंचायती व्यवस्था का नाम गौशाला या पिंजरापोल था। उसके खर्चे के लिए गाँव के व्यापारी व्यापार पर लाग लगाकर खर्चे की व्यवस्था करते थे। अपंग पशुओं के

इलाज की भी व्यवस्था वहाँ होती थी। आज समय बदल गया है। बेकार भटकनेवाले पशु इतने बढ़ गये हैं कि उन सबको रखना पिंजरापोलों की शक्ति से बाहर की बात हो गयी है। ऐसी स्थिति में पिंजरापोलों को अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आगे का रास्ता सोचना चाहिए। संघ की राय है कि पिंजरापोलों से बेकार पशु हटाकर उन्हें दूर जंगलों में गोसदनों में रख देना चाहिए। कुछ अपंग पशु वहाँ भले ही रखे जा सकते हैं। वहाँ स्थानीय नस्ल की अच्छी बढ़िया गायें और बढ़िया सांड रखकर 'सिलेक्टिव ब्रीडिंग' की पद्धति से नस्ल सुधारी जाय। सांड के लायक अच्छे बछड़े पैदा करने का प्रयत्न किया जाय। इन बछड़ों को खूब दूध पिलाया जाय। इस तरह बढ़िया सांड तैयार करने का काम पिंजरापोल करने लग जायँ, तो अच्छे सांडों के अभाव में गो-जाति की गिरी दशा रुक जाय तथा बेकार पशुओं की पैदाइश ही कम हो जाय। इस तरह लावारिस पशुओं की समस्या का कुछ हल निकल सकता है। संघ की राय में पिंजरापोलों में निम्न कार्य होने चाहिए :

१. स्थानीय अच्छी गायों की नस्ल सुधारी जाय और घटिया गायों की नस्ल-वृद्धि रोकी जाय।

२. गोवंश को गिरानेवाले हलके सांडों को बधिया किया जाय।

३. अच्छे सांड पैदा किये जायँ और उनका प्रचार किया जाय।

४. हर संस्था के पास यथासंभव चरागाहों की व्यवस्था हो, जहाँ आसपास की जनता की सूखी गायों और बछड़ों को भी रिआयती खर्च लेकर रखा जा सके। इन चरागाहों पर अच्छे सांड भी रखे जायँ।

५. हर संस्था के पास हरा चारा काफी मात्रा में पैदा करने और साइलेज वगैरह के रूप में संग्रह करने की व्यवस्था हो।

६. पिंजरापोलों के मकान सफाई और तन्दुरुस्ती का खयाल रखकर बनाये जायँ और वहाँ कुएँ, पानी की खेती वगैरह की रचना वैज्ञानिक ढंग से और निश्चित नमूने पर हो।

७. हर संस्था में एक पशु-विशारद होना चाहिए, जिसकी देखरेख में संस्था चलायी जाय। इस विशारद को पशुपालन का, उसके लिए होनेवाली खेती का और पशु-चिकित्सा का ज्ञान होना चाहिए।

संक्षेप में हर पिंजरापोल में दो विभाग रहने चाहिए। एक विभाग लूले, लँगड़े, अपंग, बूढ़े, बेकार पशुओं के पालन का, जिसको "सेवा-विभाग" कहा जाय और दूसरे में स्थानीय नस्ल की अच्छी-से-अच्छी गायें रखी जायँ। उनसे बढ़िया सांड पैदा किये जायँ और दूध-उत्पादन किया जाय। इसे "संवर्धन-विभाग" कहा जाय। इस तरीके से गौशाला और पिंजरापोल आगे बढ़ेंगे तो वे अपना उद्देश्य सफल कर सकेंगे। गौशालाओं में अच्छे कार्यकर्ता रखने की तरफ विशेष ध्यान दिया जाय, ताकि काम की उन्नति रुके नहीं। संचालकों को चाहिए कि अच्छे कार्यकर्ताओं की कदर करना सीखें, उन्हें पूरी आजादी दें और काम आगे बढ़ने दें। आजकल कुछ पिंजरापोल या गौरक्षणवाले भैंस रखने लगे हैं। वे सोचते हैं कि भैंस के उत्पादन से गाय का रक्षण करेंगे। इस विचार में मूलभूत दोष यह है कि भैंस के मुकाबले गाय को रक्षण देना छोड़कर हम भैंस को गाय का आधारस्तंभ बनाकर उसे कायम करते हैं। पिंजरापोलों को भैंस रखने के मोह से बचना चाहिए।

चारा-दाना

कार्यकर्ताओं को चाहिए कि गाय को स्वावलंबी बनाने के लिए उसका उत्पादन बढ़ाया जाय यानी गाय की दूध देने की शक्ति बढ़ायी जाय तथा बैल की खेत जोतने की शक्ति बढ़ायी जाय। इसके तीन रास्ते हैं : १. संतुलित खुराक, २. बढ़िया सांड और ३. निजी सँभाल। प्रथम महत्त्व का प्रश्न उचित मात्रा में चारा-दाना मिलने का है। खुराक पूरी नहीं मिलती हो तो उन्नति की आशा ही व्यर्थ है। चारे की कमी के प्रश्न को हल करने के लिए संघ की राय में निम्न उपाय काम में लेने चाहिए :

१. पशुओं की संख्या का कम रखना आवश्यक है, इसलिए खेती और दूध की आवश्यकता एक ही जोड़ी से पूरी की जाय। चाहे बैल-गाय से या पाड़ा-भैंस से।

२. पुराने जमाने की तरह आज बड़ी-बड़ी गोचर-भूमियाँ नहीं रह सकतीं, फिर भी हर गाँव की परिस्थिति के अनुसार फी पशु चौथाई से आधी एकड़ भूमि चरागाह के लिए रहे।

३. चरागाहों में सुधार किया जाय, ताकि घास अधिक पैदा हो और कंट्रोल-चराई का इंतजाम हो।

४. खेती में ऐसे अनाज बोने की तरफ झुकाव रहे, जिनका चारा पशुओं के लिए अधिक पोषक हो।

५. खेती की जमीन बदल-बदलकर जोती जाय याने "रोटेशन पद्धति" दाखिल की जाय ताकि खेती की उपजाऊ-शक्ति बढ़े और पशुओं के लिए खाली जमीन भी रहती जाय।

६. खास चारे की ही खेती की जाय, सिंचाई का प्रबन्ध करके चारे पैदा किये जायँ।

७. सिंचाई से बरसीम, रिजका, मेंगोल्ड, गीनीघास सरीखी

प्रोटीन-प्रधान घास पैदा करने की तरफ ध्यान रखा जाय, ताकि दाना कम-से-कम देना पड़े।

८. जंगलों में फिजूल जानेवाला चारे का अच्छा उपयोग हो और जंगलों में चारा अधिक अच्छी तरह पैदा करने की और उसकी रक्षा की व्यवस्था हो।

९. बेकार पशुओं को जंगलों में गोसदनों में रखा जाय ताकि उनका बोझ उपयोगी पशुओं पर न पड़े तथा जंगलों से देहातों में चारा लाने की भी कोई व्यवस्था हो।

१०. दूध छूटने पर ब्याने तक या काम लायक होने तक बछड़े-बछड़ियाँ 'गोकुल' में रखी जायँ।

११. वृक्षों को हानि न पहुँचाते हुए उनकी पत्तियों का चारे के लिए उपयोग बढ़ाया जाय।

१२. आम की गुठली, जामुन की गुठली आदि बेकार जाने-वाली चीजों के पोषक तत्त्वों का पता लगाकर उनका चारे-दाने के लिए उपयोग किया जाय।

१३. खाने के अयोग्य तेलों की खली का सीधा जमीन की खाद के तौर पर उपयोग हो और खाने योग्य तेलों की खली पशुओं के लिए सुरक्षित रहे। पशुओं के गोबर और मूत्र की मार्फत वह खेतों में पहुँचे।

१४. खेती और गोपालन साथ-साथ चलें।

१५. घरों में साग-सब्जी और फलों के छिलके आदि का संग्रह होकर गाय के पेट में पहुँचे।

१६. चूनी, भूसी, चोकर आदि अनाज के छिलकों का पूरा उपयोग गाय की खुराक में हो।

१७. चारा-कड़बी-घास काटकर कुट्टी करके देने की व्यवस्था हो, ताकि चारे की बचत हो।

१८. चारे के यातायात का रेलवे-किराया खास तौर से कम रखा जाय।

इस तरह खानेवालों की संख्या कम रखके, चारे की उपज बढ़ाकर, जंगलों के चारे की रक्षा करके, नये-नये चारों की खेती करके, बेकार जानेवाली चीजों से चारे का काम लेकर व कुट्टी द्वारा चारे की बचत करके तथा इसी तरह के अन्य तरीकों से इस सवाल को हल करना चाहिए। जैसे राष्ट्र के अनाज के लिए प्लानिंग होती है उसी तरह चारे के लिए भी प्लानिंग होनी चाहिए।

वैयक्तिक या सामुदायिक

गोपालन में संतुलित खुराक और अच्छे सांड के बाद सँभाल का प्रश्न आता है। गाय की देखभाल, सार-सँभाल आज के जमाने में सामुदायिक गोपालन से ही सफल हो सकेगी, ऐसी पूज्य बापूजी की स्पष्ट राय रही है। एक विचारधारा यह भी है कि अधिक गायें एक साथ रखने से उन पर वैयक्तिक देखभाल नहीं रह सकती। गाय सदा प्रेम की पहचान रखती है। प्रेम से उस पर हाथ फिराकर दूध बढ़ाया जा सकता है। इसलिए दूध का उत्पादन वैयक्तिक हो यानी हर किसान के पास एक-एक, दो-दो गायें हों, और बाजार का काम जैसे दूध-घी बेचना, दाना खरीदना आदि सामुदायिक हों। दोनों में ही गुण-दोष हैं। संभव है स्थानीय परिस्थिति के अनुसार पद्धति तय करनी पड़े। इस बारे में पू० बापूजी के विचार उन्हींके शब्दों में रख देना उचित होगा :

"गोसेवा-संघ की सभा के सामने एक महत्त्व का प्रश्न था कि गोपालन वैयक्तिक हो या सामुदायिक ? मैंने राय दी कि सामुदायिक हुए बगैर गाय बच ही नहीं सकती और इसलिए भैंस भी नहीं बच सकती। हाँ, एक

किसान अपने घर में गाय-बैल रखकर उनका पालन भलीभाँति और शास्त्रीय पद्धति से नहीं कर सकता। गोवंश के ह्रास के अनेक कारणों में वैयक्तिक गोपालन भी एक कारण हुआ है। यह बोझ किसान की वैयक्तिक शक्ति के बिल्कुल बाहर है।

"मैं तो यहाँ तक कहता हूँ, आज संसार हरएक काम में सामुदायिक रूप से शक्ति का संगठन करने की ओर जा रहा है। इस संगठन का नाम सहयोग है। बहुत-सी बातें आजकल सहयोग से हो रही हैं। हमारे मुल्क में भी सहयोग आया तो है; लेकिन वह ऐसे विकृत रूप में आया है कि उसका सही लाभ हिन्दुस्तान के गरीबों को बिल्कुल नहीं मिला।

"हमारी आबादी बढ़ती जा रही है और उसके साथ व्यक्तिगत रूप से किसान की जमीन कम होती जा रही है। नतीजा यह हुआ है कि प्रत्येक किसान के पास जितनी चाहिए उतनी जमीन नहीं है। जो है वह उसकी अड़चनों को बढ़ानेवाली है।

"ऐसा किसान अपने घर में या खेत पर निज की गाय या बैल नहीं रख सकता। रखता है तो अपने हाथों अपनी बरबादी को न्योता भी देता है। आज हिन्दुस्तान की यह हालत है। धर्म, दया या नीति की परवाह न करनेवाला अर्थशास्त्र तो पुकार-पुकार कर कहता है कि आज हिन्दुस्तान में लाखों पशु मनुष्य को खा रहे हैं। क्योंकि उनसे कुछ लाभ नहीं पहुँचने पर भी उन्हें खिलाना पड़ता ही है। इसलिए मार डालना चाहिए। लेकिन धर्म कहो, नीति कहो या दया कहो, ये हमें इन निकम्मे पशुओं को मारने से रोकते हैं।

"इस हालत में क्या किया जाय? यही कि जितना प्रयत्न पशुओं के जिन्दा रखने और उन्हें बोझ न बनने देने का हो सकता है किया जाय। इस प्रयत्न में सहयोग का अपना बड़ा महत्त्व है। सहयोग से यानी सामुदायिक पद्धति से पशुपालन करने से—

१—जगह बचेगी, किसान को अपने घर में पशु नहीं रखने पड़ेंगे।

आज तो जिस घर में किसान रहता है, उसीमें उसके सारे मवेशी भी रहते हैं। इससे हवा बिगड़ती है और घर में गंदगी रहती है। मनुष्य पशु के साथ एक ही घर में रहने के लिए पैदा नहीं हुआ। ऐसा करने में न दया है, न ज्ञान।

२—पशुओं की वृद्धि होने पर एक घर में रहना असंभव हो जाता है। इसलिए किसान बछड़े को बेच डालता है और भैंस या पाड़े को मार डालता या मरने के लिए छोड़ देता है। यह अधमतर है।

३—जब पशु बीमार होता है, तब व्यक्तिगत रूप से किसान उसका शास्त्रीय इलाज नहीं करवा सकता। अपनी समझ से ही चिकित्सा कर लेता है।

४—प्रत्येक किसान सांड नहीं रख सकता, लेकिन सहयोग के आधार पर बहुत से पशुओं के लिए एक अच्छा सांड रखना सरल है।

५—व्यक्तिशः किसान गोचर-भूमि तो क्या, पशुओं के लिए व्यायाम की यानी हिरने-फिरने की भूमि भी नहीं छोड़ सकता। किन्तु सहयोग के आधार से ये दोनों सुविधाएँ आसानी से मिल सकती हैं।

६—व्यक्तिशः किसान को घास इत्यादि पर बहुत खर्च करना पड़ता है। सहयोग द्वारा कम खर्च में काम चल जायगा।

७—व्यक्तिशः किसान अपना दूध आसानी से नहीं बेच सकता। सहयोग द्वारा उसे दाम भी अच्छे मिलेंगे और वह दूध में पानी वगैरह मिलाने से भी बच सकेगा।

८—व्यक्तिशः किसान के पशुओं की परीक्षा असंभव है, किन्तु गाँव भर के पशुओं की परीक्षा सुलभ है और उनके नस्ल-सुधार का प्रश्न भी आसान है।

"सामुदायिक या सहकारी पद्धति के पक्ष में इतने कारण होने चाहिए। सबसे बड़ी और प्रत्यक्ष दलील यह है कि व्यक्तिगत पद्धति के

कारण हमारी और पशुओं की दशा आज इतनी दयनीय हो उठी है। उसे बदलकर हम बच सकते हैं, और पशुओं को बचा सकते हैं।

"मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जब हम अपनी जमीन भी सामुदायिक पद्धति पर जोतेंगे, तभी उससे फायदा उठा सकेंगे। बनिस्बत इसके कि गाँव की खेती अलग-अलग सौ टुकड़ों में बँट जाय, क्या यह बेहतर नहीं कि सौ कुटुम्ब सारे गाँव की खेती सहयोग से करें और उसकी आमदनी आपस में बाँट लिया करें और जो खेती के लिए है, वह पशु के लिए भी समझा जाय?

"यह दूसरी बात है कि आज लोगों को सहयोग पद्धति पर लाने में कठिनाई है। कठिनाई तो सभी सच्चे और अच्छे कामों में होती है। गोसेवा के सभी अंग कठिन हैं। कठिनाइयाँ दूर करने से ही सेवा का मार्ग सुगम बन जाता है। यहाँ तो बताना यह था कि सामुदायिक पद्धति क्या चीज है और वह वैयक्तिकता से इतनी अच्छी क्यों है। यही नहीं, बल्कि वैयक्तिक गलत है, सामुदायिक सही है। व्यक्ति अपने स्वातंत्र्य की रक्षा भी सहयोग को स्वीकार करके ही कर सकता है। अतएव यहाँ सामुदायिक पद्धति अहिंसात्मक है, वैयक्तिक हिंसात्मक।" (८-२-'४२)

पशु-चिकित्सा

संसार भर में स्वास्थ्य-रक्षा का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। स्वास्थ्य-रक्षा के दो विभाग हैं। एक रोग-प्रतिबंधक और दूसरा चिकित्सा। हमारी दृष्टि में सबसे अधिक शक्ति प्रतिबंधक उपायों में लगानी चाहिए। गायों के शरीर में अधिकांश रोग गंदे पानी के द्वारा प्रवेश करते हैं। इसलिए उन्हें साफ पानी मिले इस ओर खास ध्यान दिया जाय। रहने का स्थान भी स्वच्छ, गंदगी-रहित हो। संक्रामक बीमारियों में टीका लगाने आदि की सावधानी रखी जाय।

आज की दुनिया में चिकित्सा-शास्त्र काफी बढ़ा हुआ है। अनेक पद्धतियाँ चल रही हैं। इस जमाने में एलोपैथी ने बहुत उन्नति की है और बड़े-से-बड़े शास्त्रज्ञ और आज की सभी सरकारें इसके पीछे पूरी शक्ति लगा रही हैं। जिन देशों में इस पद्धति का विकास हुआ है, उन देशों का उत्पादन भारत के मुकाबले काफी अधिक है। इस पद्धति का उन देशों ने बहुत लाभ उठाया है। फिर भी हमारे देश में इसकी अधिक प्रगति नहीं हो सकी है। कुछ शहरों तक ही वह सीमित है। इसका मुख्य कारण पद्धति का खर्चीलापन है। हमारे किसान की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर है कि वह अपने खुद के लिए भी इस चिकित्सा का लाभ नहीं ले सकता। तब फिर पशुओं का सवाल ही नहीं उठता। हमारे किसान के पशुओं को उसी पद्धति से लाभ पहुँच सकता है, जिसका ज्ञान और खर्च उसके बूते के बाहर न हो। हमारी देशी-चिकित्सा-पद्धति दोनों बातों में किसानों के अनुकूल है। इसका ज्ञान भी किसान को आसानी से हो सकता है और इसमें खर्च भी बहुत कम लगता है। बहुत-सी चीजें आसपास ही मिल जाती हैं। किसी दूसरे देश पर अवलंबित भी नहीं रहना पड़ता। इन सब दृष्टियों से किसान के हित में देशी-चिकित्सा-पद्धति ही लाभदायी होगी, ऐसा हमारा खयाल है।

एलोपैथी की जो दवाइयाँ किसान के बूते में होंगी, यानी जो बहुत महँगी नहीं होंगी, उनका उपयोग करेंगे तथा सीरम, वेक्सीन आदि दवाइयों का उपयोग भी करना होगा जो रोगों के प्रतिकार के लिए सुरक्षितता के तौर पर उपयोग में आती हैं और जिनका स्थान ले सकनेवाली देशी दवाइयाँ अभी उपलब्ध नहीं हैं। हमें किसी भी पद्धति से विरोध या नफरत नहीं है। होमियोपैथी

दवाइयाँ भी यहाँ काम में ली जाती हैं। सब पद्धतियों में कुछ-कुछ विशेष गुण हैं जिनके कारण वे बढ़ी हैं। उन सब अच्छी बातों का लाभ उठाना चाहिए, लेकिन संघ अपनी ओर से उन्हीं दवाइयों को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा जो दवाइयाँ किसान की शक्ति से बाहर महँगी नहीं हैं और जो किसान को स्वावलम्बन की ओर ले जानेवाली हैं। हमारी राय में देशी-चिकित्सा-पद्धति ही सर्वोपरि किसान के अनुकूल रहेगी। वही उसे स्वावलम्बी बना सकेगी। हमारा भरोसा है कि उस पद्धति में काफी शक्ति छिपी है, उस पर प्रयोग करने की जरूरत है। संघ की ओर से पीपरी में देशी चिकित्सा से सब तरह के रोगी पशुओं का इलाज सफलतापूर्वक किया जाता है। इस विषय पर "पशुओं की सिद्ध वनौषधि-चिकित्सा" नाम की अनुभूत नुस्खों की एक किताब प्रकाशित की गयी है। पीपरी में देशी पशु-चिकित्सा की मुफ्त शिक्षा देने का भी इंतजाम है।

कृत्रिम गर्भाधान

आज भारत में इस विधि का सरकार की ओर से सब प्रान्तों में प्रचार चालू है। अनेक जगह इसके केन्द्र खुले हैं। इस पद्धति से १० सांडों का काम एक ही सांड से लिया जा सकता है, यह इसका मुख्य गुण है। आज सांडों की बेहद कमी होने के कारण इस तरीके की अत्यधिक आवश्यकता है, ऐसा एक पक्ष है। इस विधि पर अनेक व्यावहारिक आक्षेप भी हैं, जैसे, साधारण-से जानकारों से यह कार्य कराया जाता है जिससे बड़ा नुकसान हो रहा है। गाँववाले दूर से गाय लाते हैं तो वह आने तक बुझ जाती है। सांड का चुनाव ठीक से नहीं होता, इस कारण हजारों गायों को नुकसान होता है। गाय के गरमाने का ठीक पता सांड

को ही लग सकता है। हमें बराबर पता न लगने से वह यों ही रह जाती है। सांड के साथ रहने से ही गायें समय पर गरमाती हैं, उसके बिना नहीं; ऐसे अनेक आक्षेप हैं। लेकिन इन सबको ठीक किया जा सकता है। इस पद्धति पर मुख्य आक्षेप नैतिक है। इस बारे में पू० विनोबाजी की राय इस प्रकार है :

"गायों के कृत्रिम गर्भाधान के बारे में मैंने पहले ही सोच लिया है। यह सारी क्रिया मानव-समाज के लिए नैतिक अधोगति का साधन हो सकती है। विज्ञान का विकास तो मैं बहुत चाहता हूँ, लेकिन नीति की मर्यादाओं का खयाल रखकर ही विज्ञान का उपयोग किया जाना चाहिए। इसलिए मेरी साफ राय है कि उस अश्लील क्रिया का प्रचार बन्द होना चाहिए, और अच्छे सांड तैयार करने के पुरुषार्थ में लग जाना चाहिए। वह काम कितना भी महँगा क्यों न मालूम हो, आखिर में वह सस्ता ही साबित होगा।"

संघ ने तय किया है कि वह अपनी ओर से कृत्रिम गर्भाधान का कोई केन्द्र नहीं चलावेगा और न इस क्रिया के प्रचार में किसी तरह का सहयोग देगा।

यंत्रों की मर्यादा

खेती में ट्रैक्टर वाहन के लिए मोटर-ट्रक तथा पानी के लिए एंजिन पम्पों का उपयोग कहाँ तक किया जाय, यंत्रों की मर्यादा क्या हो, इस बारे में पूज्य विनोबाजी की राय इस प्रकार है :

"यन्त्र तीन प्रकार के होते हैं। समय-साधक, संहारक और उत्पादक।

१. समय-साधक यन्त्रों का मैं विरोध नहीं करता। ट्रेन, हवाई जहाज जैसे यन्त्रों से उत्पादन नहीं बढ़ता, बल्कि समय बचता

है। दस हजार घोड़ों से हवाई जहाज की बराबरी नहीं हो सकती इसलिए ऐसे यन्त्रों को हम चाहते हैं।

२. तोप, बन्दूक, बम जैसे संहारक यन्त्रों का अहिंसा में स्थान नहीं है। इसलिए ऐसे यन्त्रों को हम नहीं चाहते।

३. उत्पादक यन्त्र दो प्रकार के होते हैं—पूरक और मारक। जहाँ जनसंख्या अधिक है और वहाँ कोई यन्त्र लोगों को बेकार बनाता है वह मारक है। पर जहाँ मनुष्य-शक्ति कम है और काम ज्यादा हैं वहाँ पर वही यन्त्र मारक नहीं पूरक साबित होगा। हिन्दुस्तान में बड़े-बड़े ट्रैक्टर जैसे यन्त्र लाने से लाजमी तौर पर बेकारी बढ़नेवाली है। परंतु अमेरिका, आस्ट्रेलिया जैसे देशों में वे ही यंत्र मारक नहीं, पूरक साबित होंगे। उसी तरह आज एक काल में एक यन्त्र पूरक हो तो दूसरे काल में वह यन्त्र मारक बन जाता है। इस तरह देश, काल और परिस्थिति के अनुसार कोई भी यन्त्र पूरक या मारक साबित होते हैं। इसलिए यन्त्र शब्द से न हम स्नेह रखना चाहते हैं और न विरोध करना चाहते हैं। किसी भी यन्त्र की उपयोगिता देखकर हम उसका उपयोग करेंगे।"

इस दृष्टि को सामने रखते हुए व्यवहारतः ऐसा सोचा गया है कि नयी जमीनों को तोड़ने की हद तक ट्रैक्टर से काम लिया जा सकता है। लेकिन रोज की चालू खेती में उसका उपयोग न किया जाय। मोटर-ट्रक और बैलगाड़ी में भी ऐसी कुछ मर्यादा बाँधी जाय कि फलाँ दूरी के ऊपर ही मोटर-ट्रक चले। सिंचाई के लिए एंजिन-पंपों का जरूरत के अनुसार उपयोग करने में आज की हालत में हर्ज न माना जाय। हालाँकि गहराई की कुछ मर्यादा यहाँ भी बाँधनी होगी।

गोपालन के सम्बन्ध में हमारी पूरी विचारधारा संक्षेप में ऊपर आ चुकी है। गोपालन से हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं

यह बात प्रारंभ में ही दे दी गयी है। गोशास्त्रियों में व संघ की विचारधारा में मुख्य फर्क यह है कि वे दूध को प्रधानता देते हैं। संघ बैल को प्रधानता देता है। उनके सामने शहरों की दूध की माँग प्रथम है, संघ के सामने देहातों की कृषि की माँग। इस विचार-भेद को हमें स्पष्टरूप से समझ लेना चाहिए।

गोसेवक इन सब पर विचार करें। यदि वे और कुछ जानकारी देना चाहें या कुछ फेर-बदल सुझावें तो उस पर विचार किया जायगा।

परिशिष्ट : १ (अ)

गो-सेवा-संघ की स्थापना एवं विकास

गोरक्षा-मंडल

२८ दिसम्बर, १९२४ को बेलगाँव में पूज्य बापूजी की अध्यक्षता में एक गोरक्षा-परिषद् श्री चौंडे महाराज की प्रेरणा से हुई थी। यहीं से इस संगठन का प्रारंभ हुआ। इस परिषद् के निश्चयानुसार २२ मार्च, १९२५ को विधान बनाया गया और २८ अप्रैल, १९२५ को माधवबाग, बंबई में अखिल भारत गोरक्षा-मंडल का यह विधान[1] स्वीकार किया गया। इस विधान को पेश करते समय पू० बापूजी के कहे गये पहले ही वाक्य[2] से पता चलता है कि यह काम उन्हें कितना भारी मालूम देता था। उन्होंने कहा, "अपनी जिन्दगी में मैंने बहुत से काम हाथ में लिये हैं, लेकिन जहाँ तक मुझे याद है, ऐसा एक भी काम नहीं जिसके बारे में इतना भय और कंपन मुझे हुआ हो, जितना आज इस काम को उठाते हुए हो रहा है।" इसी समय पू० बापूजी ने अपने बहुत से साथियों को केवल गाय के ही दूध-घी के सेवन का व्रत दिलाया। उन व्रतधारियों में से पू० काका साहब कालेलकर, आचार्य विनोबाजी, श्रीमती जानकीदेवीजी बजाज आदि के व्रत आज भी बराबर चालू हैं।

गोसेवा संघ, साबरमती

कुछ वर्षों के बाद ऐसा दिखायी दिया कि मंडल का जितना प्रभाव जनता पर पड़ना चाहिए था, नहीं पड़ रहा है। इसलिए

---

१. २. देखिये 'गो-सेवा', सम्पादक—वालजी गोविंदजी देसाई पृ० १६६ तथा २२।

२५ जुलाई, १६२८ को इस मंडल का विसर्जन कर दिया गया और उसके स्थान पर 'गोसेवा-संघ'[1] नाम की संस्था साबरमती में स्थापित की गयी। पू० बापूजी उसके अध्यक्ष रहे। १८ सदस्यों की समिति बनायी गयी।

गोसेवा संघ, वर्धा

सन् १६४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह में स्वर्गीय श्री जमनालालजी बजाज स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण जेल से रिहा कर दिये गये थे। पू० बापूजी वैसी हालत में उन्हें दुबारा जेल में नहीं जाने देना चाहते थे। तब श्री जमनालालजी की इच्छा हुई कि बापूजी के किसी अधिक-से-अधिक प्रिय विधायक कार्य में शक्ति लगायी जाय। पू० बापूजी ने बताया कि उन्हें हरिजन-सेवा और गोसेवा—ये दो काम अत्यन्त प्रिय हैं। लेकिन उनमें भी वे गोसेवा को पहला स्थान देते हैं; क्योंकि इस काम के योग्य व्यक्ति अभी तक उन्हें नहीं मिल सका है। पू० बापूजी की विशेष इच्छा देखकर तथा वैश्य का स्वाभाविक धर्म भी कृषि-गोसेवा होने के नाते उन्होंने इस कार्य का भार उठाना स्वीकार कर लिया।

विजया-दशमी, संवत् १६६८ यानी ३० सितम्बर, १६४१ के दिन पू० बापूजी ने ग्राम-सेवा-मंडल की नालवाड़ी-गौशाला में गोसेवा-संघ,[2] वर्धा, की नींव डाली। इसी समय ग्राम-सेवा-मंडल की नयी बस्ती का नाम 'गोपुरी' रखा गया और साबरमती के गोसेवा-संघ को इसमें विलीन कर दिया गया।

प्रथम सम्मेलन

गोसेवा-संघ की स्थापना के समय ही श्री जमनालालजी अपने शहर के बंगले को छोड़कर गोपुरी में घास की कुटिया बनाकर

---

१. विधान के लिए देखिये 'गोसेवा' पृ० १६८।

२. गोसेवा-संघ, वर्धा के विधान के लिए देखिये 'गोसेवा' पृ० १६०।

रहने लगे थे। उनके स्वभाव के अनुसार उनका सारा समय इसी काम की धुन में बीतने लगा। कुछ ही दिनों में उन्होंने गोसेवा-संघ के ११५ व्रतधारी सदस्य बना लिये। देश के छोटे-बड़े सब लोगों को इस कार्य की ओर आकर्षित कर लिया। चार महीने बाद १ फरवरी, १९४२ को वर्धा में गोसेवा-संघ का प्रथम सम्मेलन हुआ। पं० मदनमोहनजी मालवीय उसके अध्यक्ष मनोनीत थे। पर अस्वस्थ होने के कारण वे उपस्थित न हो सके। अतः सम्मेलन आचार्य विनोबाजी की अध्यक्षता[1] में हुआ। सम्मेलन[2] का उद्घाटन पू० बापूजी ने किया। सम्मेलन का उत्साह देखकर यह महसूस हो रहा था कि गोसेवा का कार्य अब बहुत तेजी से आगे बढ़ेगा। मंडल ने अगले वर्ष के कार्यक्रम में नीचे लिखे कार्यों पर जोर देने का निश्चय किया :

१. संघ के एक हजार साधारण सदस्य बनाये जायँ।

२. बिना मिलावट का शुद्ध घी और दूध बढ़ाने का प्रचार।

३. गोशालाओं और पिंजरापोलों में सुधार करवाने और उन्हें संघ से सम्बद्ध होने की प्रेरणा दी जाय।

४. संशोधन के लिए एक प्रयोगालय चलाया जाय।

५. गोसेवक तैयार करने के लिए गोप-विद्यालय चलाया जाय।

६. वर्धा कस्बे भर को गाय का शुद्ध दूध देने की कोशिश की जाय।

७. वर्धा के आसपास के गाँवों में नस्ल-सुधार और घी-उत्पत्ति के केन्द्र खोले जायँ।

जमनालालजी का स्वर्गवास

लेकिन इस सम्मेलन के एक सप्ताह बाद ही, ११ फरवरी, १९४२ को

---

१. पू० विनोबाजी के अध्यक्षीय भाषण के लिए देखिये—'गोसेवा' पृ० १३८।

२. सम्मेलन की पूरी कार्यवाही प्रथम सम्मेलन के नाम से जो अलग छपी है, कार्यालय से मँगायी जा सकती है।

श्री जमनालालजी का स्वर्गवास हो गया और यह काम फिर से निराधार बन गया। उनके स्वर्गवास के ८ दिन बाद १९ तारीख को नवभारत विद्यालय, वर्धा के हाल में पू० बापूजी के निमन्त्रण से उनके सारे मित्र बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित हुए। उस सभा में हरएक का दिल श्री जमनालालजी के वियोग के दुख से छटपटा रहा था। पू० बापूजी का कंठ अवरुद्ध हो गया था। हर आदमी के दिल में श्री जमनालालजी के गोसेवा के अधूरे कार्य को पूरी ताकत से आगे बढ़ाने की भावना थी। इस काम के लिए भारी चन्दा इकट्ठा करने की तथा अनेक तरह की योजनाएँ सोची गयीं। सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला तथा दो-चार मित्रों ने मिलकर पाँच लाख की लागत के १००० साँड श्री जमनालालजी के स्मरण में वितरण करने का निश्चय किया। उसके लिए 'वृषभ-सुधार-मण्डल' के नाम से एक स्वतन्त्र संगठन बनाया गया और साँड तैयार करने का केन्द्र पिलानी (जयपुर) में खोला गया। पू० जानकीदेवीजी को श्री जमनालालजी के स्थान पर गो-सेवा-संघ की अध्यक्षा बनाया गया। उनकी मदद के लिए आचार्य विनोबाजी और सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला—ये दो उपाध्यक्ष बनाये गये। जानकीदेवीजी ने अपनी सारी निजी संपत्ति, जो करीब सवा दो लाख की थी, संघ को समर्पित कर दी। संघ के मंत्री का काम अस्थायी रूप से राधाकृष्ण बजाज के जिम्मे किया गया। काम को गति देने की दृष्टि से श्री जमनालालजी ने स्वामी आनंद को यह भार सौंपना चाहा था, पर तब वे मिल नहीं सके थे। इस बार पू० बापूजी ने उन्हें वर्धा बुला लिया और मंत्री का काम उनके जिम्मे किया गया।

सत्याग्रह आन्दोलन

इस सारी व्यवस्था में कुछ महीने बीत गये। इतने में ही सन् १९४२ का अगस्त-आन्दोलन छिड़ गया। स्वामी आनन्द महसूस करने लगे कि हमारा बरसों का नस्ल-सुधार का काम यह विदेशी सरकार गायों को कत्ल

करके मिनटों में बरबाद कर देती है, इसलिए सर्वप्रथम इसको हटाना ही गोसेवा है। इस विचार से वे आन्दोलन में भाग लेने के लिए बंबई वापस चले गये। आन्दोलन तीन साल तक जारी रहा। अधिकांश लोग जेलों में रहे। वर्धा शहर में दूध-वितरण के लिए जो गोरस-भंडार का काम शुरू किया गया था, वह काम दफ्तर के लोगों द्वारा प्रयत्नपूर्वक चालू रखा गया। इस बीच सेवाग्राम की गोशाला भी संघ के अधीन आ गयी थी। उसका काम श्री पारनेरकरजी ने सँभाला। संघ का दफ्तर सेवाग्राम में ही रहा।

पुनस्संगठन

जेलों से छूटकर आने के बाद हम सब फिर इसमें लगे और ११ अगस्त, '४५ से श्री ऋषभदासजी रांका के मंत्रित्व में संघ का काम फिर से बढ़ाना शुरू किया गया। ११ फरवरी, १९४६ को देशरत्न बाबू राजेन्द्र-प्रसादजी की अध्यक्षता में स्वर्गीय जमनालालजी की समाधि के पास गोपुरी में संघ का दूसरा[१] सम्मेलन हुआ। इसका उद्घाटन भी बापूजी ने ही किया। इस सम्मेलन से संघ में पुनर्जीवन आया और काम कुछ आगे बढ़ने लगा। सेवाग्राम की गौशाला व जमीन नयी तालीम के काम के लिए पू० बापूजी की इच्छानुसार तालीमी संघ को दे दी गयी और वर्धा से तीन मील आर्वी रोड पर पीपरी में बच्छराज खेतीज लि० से गौशाला व जमीन खरीद ली गयी। तब से अब तक संघ की गौशाला व खेती पीपरी में ही चल रहे हैं। श्री पारनेरकरजी गौशाला के साथ ही सेवाग्राम से पीपरी आ गये। लेकिन कुछ दिन बाद ही वे मध्यप्रदेश सरकार के पशु-सुधार विभाग के मुखिया का काम अवैतनिक रूप से करने लगे। वे अभी तक वहाँ की व्हिलेज-सेंटर के नाम से ग्राम नस्ल-सुधार का काम

१. दूसरे सम्मेलन की पूरी कार्यवाही कार्यालय से प्राप्त हो सकती है।

सुचारु रूप से कर रहे थे। १ जनवरी, १९५३ से वे संघ के काम पर वापस आ गये।

कुछ दिन बाद संचालक-मंडल ने महसूस किया कि श्री ऋषभदासजी अपने निजी कामों के कारण पर्याप्त समय नहीं दे पाते हैं, इसलिए पू० विनोबाजी से कहकर राधाकृष्ण बजाज को संघ के स्थायी मंत्री के काम के लिए माँग लिया गया। मध्यप्रदेश सरकार की प्रार्थना पर १९४६ से १९५१ तक स्टॉकमैन और स्टॉक-सुपरवाइजर की शिक्षा देने के लिए संघ की ओर से गोप विद्यालय चलाया गया। १९५१ से संघ का विद्यालय पीपरी में चलता रहा और जनवरी, १९५४ से वह सेवाग्राम आ गया।

चर्खा-संघ, राजस्थान के भूतपूर्व मंत्री श्री बलवन्तरावजी देशपांडे, सन् १९४७ में गोसेवा में आ गये। पीपरी के सारे कार्यों को अब वे ही सँभालते हैं। गोरस-भंडार का काम बढ़ाया गया। रोजाना करीब २०-२५ मन गाय का दूध शहर में दिया जाता है। राधाकृष्ण बजाज को गोसेवा-संघ के काम के लिए दे देने के बाद ग्रामसेवा-मंडल ने गोसेवा-चर्मालय भी संघ को दे दिया। इस चर्मालय के संस्थापक श्री गोपालराव वालुंजकर हैं। चर्मालय की सारी उन्नति उन्हींकी मेहनत का फल है। लेकिन उन्हें इन दिनों दूसरे कामों में अधिक समय देना पड़ता था। अतः वे पूर्ववत् चर्मालय की पूरी देखभाल नहीं रख सकते थे। चर्मालय की देखभाल उनके बड़े भाई श्री बाबाजी वालुंजकर के जिम्मे की गयी। इस तरह अनेक काम बढ़ते गये।

विलीनीकरण

पू० बापूजी के निर्वाण के बाद ता० १३ मार्च, १९४८ को सेवाग्राम में रचनात्मक कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन हुआ। उसमें तय हुआ कि पू० बापूजी के इच्छानुसार सारे अखिल भारतीय व रचनात्मक संघ एक संगठन में आ जावें। इस निश्चय के अनुसार 'अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ'

की स्थापना हुई। संघ का विधान[1] मार्च, १९४९ को राऊ में स्वीकृत हुआ और ५-१-'५१ को संघ रजिस्टर्ड हुआ। सर्वोदय-सम्मेलन, अनगुल में यह विचार हुआ था कि जितने संघ सर्व-सेवा-संघ में विलीन हो सकें, अच्छा है। इसके अनुसार गोसेवा-संघ के संचालक-मंडल ने ८-७-'५० को सर्व-सेवा-संघ में विलीन होने का निम्न प्रस्ताव स्वीकार किया :

संचालक-मंडल का प्रस्ताव

"जुड़े संघों के विलीनीकरण के सम्बन्ध में सर्व-सेवा-संघ का प्रस्ताव उपस्थित किया गया और चर्चा की गयी। अहिंसक समाज की रचना के लिए सारे विधायक कार्य एक-दूसरे के अविभाज्य अंग हैं। उन सबके संगठन एवं प्रचार का विचार समग्रता की दृष्टि से होने के लिए एक ही संघ का होना अच्छा है। सर्व-सेवा-संघ की स्थापना इसी दृष्टि से हुई है और इसी दृष्टि से सर्व-सेवा-संघ ने उक्त प्रस्ताव भेजा है। इस पर काफी विचार-विनिमय होकर तय हुआ कि संचालक-मंडल की राय में उक्त प्रस्ताव पर्याप्त नहीं है। अब समय आ गया है कि जितने भी रचनात्मक संघ हैं, अपने अलग संघों को विसर्जन करके, जितना जल्दी सर्व-सेवा-संघ में मिल जायँ, उतना ही बेहतर होगा। इसलिए यह संचालक-मंडल, यदि गोसेवा-संघ की सर्वसाधारण सभा की अनुमति प्राप्त हो जाय तो, सर्व-सेवा-संघ में विलीन होने के पक्ष में है।"

ता० ४-८-'५० का गो-सेवा-संघ की साधारण सभा का प्रस्ताव

"सारी जानकारी दिये जाने के बाद इस विषय में गोसेवा-संघ की इसी साधारण सभा में चर्चा होकर तय हुआ कि

---

१. सर्व-सेवा-संघ का विधान अलग छपा है जो सर्व-सेवा संघ, वर्धा या गया से मिलेगा।

संचालक-मंडल के ८-७-'५० के प्रस्ताव नं० २ के अनुसार गोसेवा-संघ को सर्व-सेवा-संघ में विलीन कर दिया जाय और सर्व-सेवा-संघ जो कहे उसके अनुसार कानूनी कार्यवाही की जाय। जब तक सर्व-सेवा-संघ गो-सेवा-संघ को सँभाल न सके तब तक गोसेवा-संघ का कार्य पूर्ववत् चालू रखा जाय।"

प्रस्ताव के बाद पू० विनोबाजी ने जो मार्मिक शब्द कहे, उनका सार इस प्रकार है :

"अभी जो प्रस्ताव किया गया है, वह पूर्ण रूप से उचित मालूम पड़ता है। यद्यपि हम सब लोग अपने सब कामों को मानते हैं, तथापि अभी तक हम अपने-अपने कामों में मशगूल रहे और दूसरे कामों के बारे में जानकारी कम रखते थे। सहकार भी कम होता था, लेकिन वह जो अभाव था उसकी पूर्ति गांधीजी अकेले कर लेते थे। तब निभ जाता था। लेकिन उनके बाद अब आपस में प्रत्यक्ष सहकार की अधिक आवश्यकता है। पहले कोई असहकार था ऐसा नहीं है, लेकिन परस्पर अनुबन्ध कम था। जब एक मनुष्य ऐसा था कि सब तरह से सबको जोड़ देता था तो हरएक अपने-अपने काम में एकाग्रता से रह सकता था। यह कोई बुरी बात नहीं थी। उसका जो भी परिणाम होना था वह हुआ, लेकिन हर चीज की एक मर्यादा होती है, उसके बाहर एकाग्रता जाय तो हानिकारक हो सकती है।

"जब यह 'समग्रता' शब्द निकला, तभी मैंने कहा था कि इसका मतलब यह नहीं है कि सब चीजों को करें और सब बिगाड़ें। "एकहिं साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।" गो-सेवा-संघ का कार्य व्यापक तो होता जा रहा है, पर इसका मतलब यह नहीं है कि गोसेवा का कार्य परिपुष्ट और मजबूत भी होगा। व्रत लेना कठिन बात होती है। फिर भी वर्धा में केवल १५ व्रत-

धारी का होना स्पष्ट बताता है कि हमारा काम अलग-अलग होने से कमजोर हो गया है। जब कभी यन्त्रवाद के विरुद्ध अहिंसा को लेकर हम खड़े होते हैं, सब इकट्ठे नहीं हैं और हर विभाग अलग-अलग विरोध करता है, तो हमको पूर्ण सफलता नहीं मिलती और यही मान लेना पड़ता है कि यन्त्रों का मुकाबला ग्रामोद्योग क्या कर सकते हैं? इसलिए हमको समझना चाहिए कि जिस प्रकार यंत्रों के पीछे लश्कर, पुलिस आदि आधार-रूप रहते हैं, वैसे ही हमको सभी ग्रामोद्योगों को जोड़कर मजबूत होना पड़ेगा। तभी हम सच्चे माने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

"ईसा के बाद उनके बारह शिष्य ही थे। उन्होंने काफी सहन किया, त्याग किया और उसीके लिए खुद को भी अर्पण किया। वैसे बन्धु-भाव के बगैर काम नहीं चलेगा। गुण-दोष हम सभी में हैं। केवल गुणवान परमेश्वर ही हो सकता है और मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि गुण-दोष के मिश्रण बिना चित्र पूर्ण नहीं हो सकता। जैसे फोटो पूरा सफेद ही आये और कुछ भी कालिमा न आये तो वह फोटो नहीं कहलावेगा। कालिमा बहुत बढ़ जाय तब भी चित्र खराब हो जाता है। जैसे कबीरदास ने कहा है कि भगवान् ने मुझे केवल मीठा ही खिलाया है मगर सिर्फ एक ही स्वाद या रुचि से मजा नहीं आता है, उसमें रुचि-परिवर्तन हो तभी मजा आता है। यह समझकर एक-दूसरे पर प्यार कर सकेंगे, तो हमारी मन की भिन्नता चली जायगी। संस्कृत का एक श्लोक है—'न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।' मनुष्य खतरे में कूदता है तो शायद न भी बचे, लेकिन खतरे में जान डालकर बचा तो कल्याण होता है। लेकिन जो खतरे में नहीं कूदता, वह ज्यादा खतरे में है। वह न

केवल कल्याण के ही दर्शनों से वंचित रहता है, बल्कि उसका जीवन शिवहीन बन जायगा यानी जीकर भी मरे के समान होगा।"

१ अप्रैल, १६५१ से गोसेवा-संघ का काम सर्व-सेवा-संघ की तरफ से चलने लगा और इस विभाग का नाम 'अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ, कृषि-गोसेवा-विभाग' कर दिया गया। उसका कार्यालय पूर्ववत् गोपुरी में ही था और इस विभाग के मंत्री का काम भी पूर्ववत् राधाकृष्ण बजाज व उप-मंत्री का श्री बलवन्तरावजी देशपांडे के जिम्मे रहा। १ अगस्त, १६५२ से कार्यालय पीपरी आ गया था। जनवरी, १६५४ से स्वतन्त्र विभाग बन्द कर दिया गया। सारा काम मुख्य दफ्तर से चलता है।

नीति-निर्धारण

गोसेवा-संघ की नीति का निर्धारण स्वयं पू० बापूजी करते रहे हैं। उनके बाद पू० विनोबाजी की राय से नीति का निर्धारण होता रहा है। संघ के कार्य में अध्यक्षा श्री जानकीदेवीजी बजाज के अलावा पूज्य किशोर-लाल भाई मश्रूवाला, आचार्य काकासाहब कालेलकर, श्रीकृष्णदासजी जाजू, डा० राजेन्द्रप्रसादजी आदि की विशेष सलाह मिलती रही है। शास्त्रीय बातों में श्री सतीशचंद्रदास गुप्ता, सरदार दातारसिंह, डा० हर्ष-बहादुर शाही, श्री य० म० पारनेरकर, श्री प० आ० म्हात्रे और श्री परमे-श्वरीप्रसाद गुप्त से सलाह मिलती रहती है। इनके अलावा जगह-जगह से सरकारी विशेषज्ञों की और प्रत्यक्ष कार्य में लगे हुए गोपालक एवं पशु-विशेषज्ञों की सलाह संघ लेता रहता है। ● ● ●

परिशिष्ट १ (ब)

वर्धा के चालू कार्य

गोसंवर्धन गोरस-भंडार

गोसेवा-संघ की स्थापना के बाद पहला काम यह हुआ कि वर्धा शहर में गाय का दूध सुगमता से प्राप्त हो, इसलिए गोरस-भंडार की स्थापना १९४२ में की गयी। आज १९५५ में इस भंडार में ३ गौशालाओं, २८ ग्वालों तथा ७० किसानों का दूध आता है। रोजाना करीब ३५ मन दूध वितरित होता है। जून से सितम्बर तक चार महीने हर साल गायों का दूध घट जाता है। उस समय दो-तिहाई से कम दूध रह जाता है। गत वर्ष दिसंबर में दूध अधिक बढ़ा तो दूध के भाव घटाने के बदले दूध का माप ८० तोले से ९० तोला कर दिया गया। इससे दूध ज्यादा बिका। भाव घटाते तो दूध की खपत नहीं बढ़ती। यह प्रयोग बहुत सफल रहा। आजकल दूध का भाव घर-पहुँच ६ आने सेर है। गाय का घी भी बनता है। उसका भाव ८ रुपये सेर है। गोव्रतधारियों को साढ़े सात रुपये सेर दिया जाता है।

गोरस-भंडार में निम्न शर्तों पर ग्वालों को लिया जाता है :

१. जिसके पास खेती की जमीन भी हो।

२. अपनी कुछ गायें हों। केवल गौलाऊ नस्ल का ही सांड रखा जायगा। गायें स्थानीय, जो भी मिलें, रख सकता है, किन्तु जहाँ तक हो सके गौलाऊ ही रखी जायँ। पूरा दूध गोरस-भंडार को ही देना होगा, दूसरे को बाजार में नहीं बेच सकता। केवल गायें ही रहें, भैंस या बकरी न हों।

इस तरह जो व्यक्ति अच्छे व्यवहार का मालूम हो, उसे भंडार में दाखिल करते हैं। उसे दूध के दाम बाजार भाव से दिये जाते हैं। गोरस-भंडार के वितरण के खर्चे के लिए १० प्रतिशत कमीशन काट लिया

जाता है। इस कमीशन में से भंडार का खर्च और बचे दूध की घटी निकल जाती है। ग्वालों को पाँच सौ रुपयों तक की गायें खरीदकर भंडार की ओर से दी जाती हैं। हर माह दूध की रकम में से किस्तवार रुपये जमा कर लिये जाते हैं। रकम पर ब्याज नहीं लिया जाता। दाना और खली जरूरत के अनुसार भंडार की ओर से दी जाती रहती है। महीने के अन्त में दूध से रकम जमा कर ली जाती है। जो व्यक्ति साल के शुरू में दाना संग्रह करने के लिए कहे तो उतना ही संग्रह उसके लिए कर लिया जाता है। वह उसे मय खर्चे के लागत भाव पर ही दिया जाता है। रकम का ब्याज नहीं गिना जाता। भाव की घटा-बढ़ी की जिम्मेदारी उसकी रहती है।

गोरस-भंडार के अन्तर्गत दूध देनेवाली गायें करीब ५५० तथा कुल पशु-धन १४०० है। ग्राहक १३०० हैं। वर्धा के रेलवे-स्टेशन पर भी संघ का दूध बेचा जाता है। वहाँ संघ की ओर से दो आदमी हर गाड़ी पर रहते हैं। रोजाना करीब दो मन दूध बिकता है।

गोरस-भंडार में २५ कार्यकर्ता हैं। वार्षिक खर्च १६००० रुपये है। दूध की शुद्धता कायम रहे, इसलिए बीच-बीच में लेक्टोमीटर-टेस्ट लेते रहते हैं और शंका हो तो घृत जाँच कर लेते हैं। बाद में मावा या छन्ना बनाकर जाँच लेते हैं। अन्त में तीन बार घर जाकर सारी गायें सामने दुहा-कर उस दूध की जाँच कर ली जाती है। देखा गया है कि मावे या छन्ने की जाँच और सामने दुहाना, ये दो ही बातें ज्यादा-से-ज्यादा सही निर्णय दे सकती हैं।

साधारणतः शहर में गाय के दूध की बहुत अधिक माँग नहीं है। इसलिए ग्वाले डरते रहते हैं कि भंडार यदि उनका दूध बन्द कर दे तो उन्हें दूध बेचने में बड़ी दिक्कत होगी और भंडार से जो सुविधाएँ मिलती हैं उनसे वे वंचित हो जायँगे। ऐसा भी देखा गया है कि ग्वाले जब स्वतंत्र रूप से दूध बेचते थे, तब मुख्य आदमी की शक्ति दूध बेचने

में और पैसा वसूल करने में तथा दाना, खली खरीदने में चली जाती थी। रक़म की तंगी के कारण कई बार दाना, खली भी गायों को बराबर नहीं मिलती थी। लेकिन गोरस-भंडार में दूध देने से मुख्य आदमी गायों की सेवा के लिए खुले हो गये। नतीजा यह हुआ कि गायों की देख-भाल अच्छी होने से दूध बढ़ गया। जो ग्वाले पहले भैंस रखा करते थे, वे अब गायें रखने लगे हैं। वे अपना अनुभव बताते हैं कि भैंस की अपेक्षा गाय लाभदायी सिद्ध हुई है। अच्छे सांड से गायें गाभिन होने के कारण बछड़ों की कीमतें अच्छी मिल जाती हैं। गायें बीमारियों से कम मरती हैं। और समय-बे-समय, थोड़ा-बहुत चारा-दाना कम मिलने पर भी दूध देती रहती हैं। भैंस बिना पूरी खुराक के दूध नहीं देती। भैंस के मुकाबले में गाय ब्याती भी जल्दी हैं। गाय का दूध बराबर बिकता रहे, तो उन लोगों को गाय अधिक पुसाती है।

गाय का दूध बेचने में एक दिक़्क़त यह आती है कि हलवाई या होटलवाले उसे नहीं खरीदते; क्योंकि उसमें खोवा कम निकलता है। गाय का दूध केवल गृहस्थों को ही बेचना पड़ता है। गृहस्थों को दूध सुबह ६ बजे चाहिए, इसलिए रात को ३ बजे से दूध दुहना शुरू किया जाता है, तब समय पर उन्हें दूध पहुँचा पाते हैं। गोरस-भंडार में सुबह ५ बजे और शाम को ५ बजे दूध आ जाता है। गो-दुग्ध के ग्राहक कम होने के कारण दूर-दूर बिखरे होते हैं, इस कारण दूध बाँटनेवाले आदमी अधिक रखने पड़ते हैं और खर्च भी बढ़ जाता है।

पीपरी में किसानों से दूध खरीदते हैं। हमें शंका थी कि दिन भर काम करनेवाला किसान रात को इतनी जल्दी दूध कैसे निकाल सकेगा; लेकिन अनुभव ने बताया कि जब आमदनी होती है, तो तकलीफ उठाने के लिए मनुष्य तैयार रहता है। आज बराबर ३ बजे गोशाला में घंटी बजती है तब सारे देहात के गायवाले जग जाते हैं और ४ बजे तक अपना-अपना दूध ले आते हैं। जब से गोरस-भंडार का काम चला है, ग्वाले अपनी गायों

को खुराक देने लगे हैं। उनकी गायों का दूध बढ़ा है, तन्दुरुस्ती ठीक हुई है और बछड़े अच्छे होने लगे हैं। किसानों से दूध लेते समय यह खयाल रखा जाता है कि उनके बच्चों के लिए वे थोड़ा दूध रखें। आम तौर पर तो हमारी यही राय है कि किसानों को दूध नहीं बेचना चाहिए। उन्हें घी निकालकर घी बेचना चाहिए। और उस घी की कीमत से चारा-दाना खरीदकर गाय को देना चाहिए। घरवालों को मेहनत और चारे के बदले छाछ और बछड़े मिलते रहें तो संतोष मानना चाहिए। छाछ में दूध के सारे आवश्यक तत्त्व मिल जाते हैं। यदि किसानों को आध सेर छाछ प्रति व्यक्ति रोजाना मिलती रहे तो ६० प्रतिशत बीमारियाँ कम हो जायँगी और बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार होगा। उनके चेहरों पर तेज प्रकट होने लगेगा। शहरों के लिए दूध ग्वालों से ही लेना चाहिए। आसपास के किसानों के पास अधिक दूध हो तो वह भी लिया जा सकता है। गोसेवा-संघ का स्मरण वर्धा शहरवालों को इस गोरस-भंडार के जरिये नित्यप्रति होता रहता है। आज भारतवर्ष में बहुत कम स्थान ऐसे मिलेंगे, जहाँ पर गाय का शुद्ध दूध इतनी मात्रा में मिलता हो। हमारा प्रयत्न इस प्रवृत्ति को बहुत कुछ बढ़ाने का है। हम चाहते हैं कि वर्धा शहर का प्रत्येक बच्चा गाय का ही दूध पीवे।

स्थानीय नस्ल-सुधार प्रयोग

पूज्य विनोबाजी ने करीब तीस साल से केवल गाय के घी-दूध का व्रत ले रखा है। साधारण तौर से सारे आश्रम में गाय के ही घी-दूध के सेवन की वृत्ति रही है। आज तो यह नियम ही बन गया है कि गोपुरी का कोई भी निवासी भैंस का घी-दूध सेवन नहीं कर सकता। गाय का दूध मिलने में पंद्रह वर्ष पहले वर्धा में बड़ी कठिनाई थी। इसलिए आश्रम में गायें रखने का विचार हुआ। श्री रामदास भाई को उसकी प्रेरणा हुई और उन्होंने १७ जून, १९३६ को मान्दोली देहात में गायें रखना शुरू किया।

१९४० में वह गौशाला गोपुरी में आ गयी। पू० विनोबाजी की सदा से यही राय थी कि स्थानीय गायों की तरक्की की जाय। इस दृष्टि से स्थानीय गौलाऊ नस्ल की गायें ही रखी गयीं। उनकी देख-भाल ठीक बच्चों की तरह की गयी। हमें कोई शास्त्रीय ज्ञान नहीं था और न कोई विशेषज्ञ हमारे पास था। गाय का स्नेह और काम की लगन, इन दोनों को लेकर हम आगे बढ़ते गये और आज इस दशा पर पहुँच गये।

हम कहाँ तक पहुँचे हैं, इसका हमें अभी पूरा पता नहीं है। हमें तो लगता है कि अभी दिल्ली दूर है। अभी बड़ी-बड़ी मंजिलें तय करनी हैं। फिर भी नस्ल की प्रगति ठीक हो रही है। इसे हम महसूस करते हैं। बेटी, माँ और नानी तीनों को खड़ा करके देखने पर आँखें ही प्रगति बता देती हैं। यह प्रगति शास्त्रीय दृष्टि से किये गये परिश्रम से हुई है। गायों का दूध भी बढ़ा है। जो बछड़ियाँ पाँच साल में बच्चा देती थीं, वे चार साल के भीतर ही देने लगी हैं। प्रयाग की कुछ गायों ने, जिन्हें खास खुराक दी गयी थी, ३ साल के भीतर ही बच्चे दिये हैं। कुछ गायों ने अपवाद-रूप में दो हजार सेर तक दूध दिया है। खर्च की दृष्टि से भी कम-से-कम खर्च में काम चलाने का प्रयत्न किया गया है। कहा जा सकता है कि गत १५ वर्षों में गायों ने जितना खाया, उतना ही लौटा दिया। आर्थिक सफलता का मुख्य कारण श्री रामदास भाई जैसे लगन और सूझबूझवाले एवं तन, मन और सेवा-भाव से काम करनेवाले व्यक्ति का केवल भोजन-खर्च पर मिल जाना है। दूध सारा बिकता गया। खाद का खेत में उपयोग हो गया, बछड़ों की कीमतें अच्छी आ गयीं। मृत्यु-संख्या कम हुई। रकम का ब्याज गिना नहीं। पशुओं की कीमतें बढ़ती गयीं। ऐसे अनेक कारण भी रहे। एक विशेष बात यह भी रही कि सांड के लिए आवश्यक दो-चार बछड़े रखकर बाकी बछड़े माँ का दूध छूटते ही बेचते गये, और बछड़ियाँ भी कम करते गये, उससे भार हल्का होता

रहा। सारी बछड़ियों को गाय या बछड़ों को बैल बनाने तक रखते तो आज के अर्थशास्त्र में टिकना कठिन था।

भारत के बड़े-बड़े विशेषज्ञों में इस बात पर बड़ा मतभेद है कि गाय की दूध देने की शक्ति और बैल की हल जोतने की शक्ति, दोनों साथ-साथ बढ़ा सकते हैं या एक के बढ़ने पर दूसरी घटती है? हमारा अब तक का अनुभव तो यह है कि दोनों शक्तियाँ साथ-साथ बढ़ी हैं। जिन गायों का दूध बढ़ा, उन्हें खुराक अच्छी मिली, वे हृष्ट-पुष्ट रहीं और उनके बैल भी खेती के लिए अधिक उपयोगी साबित हुए।

गोसंवर्धन घी-केन्द्र

वर्धा से २५ मील दूरी पर पीपलखूँटा के पास गुंडमुंड में संघ का एक केन्द्र है। वहाँ पर सूखी गायें व बछड़े-बछड़ियाँ रखी जाती हैं। वहाँ करीब २०० एकड़ जमीन संघ के अधीन है और नजदीक ही सरकारी जंगल है। वहाँ के पहाड़ों में पानी की कमी है। स्थानीय गायों की उन्नति की दृष्टि से वहाँ आसपास के गाँवों से गाय का दूध सामने दुहाकर खरीदा जाता है। यहाँ के ग्वालों के लिए भैंस न रखने का प्रतिबन्ध नहीं है। उस दूध का दही जमाकर घी निकालते हैं। गाँववालों से ५ आना सेर से दूध खरीदते हैं। करीब २७ सेर दूध से एक सेर घी निकलता है। वह साढ़े आठ रुपया सेर के भाव से गोरस-भंडार को बेच देते हैं। इसमें दूध की कीमत निकल आती है। दूध लेना, दही जमाकर घी निकालना आदि मेहनत के बदले छाछ मिल जाती है। यह छाछ बछड़े-बछड़ियों को पिलाते हैं। २-३ साल से बराबर यह अनुभव हो रहा है कि छाछ के कारण गुंडमुंड के बछड़े-बछड़ियाँ बड़ी ही हृष्ट-पुष्ट—ताजी-तवानी—रहती हैं और जल्दी जवानी में आती हैं। गर्मी में भी उनके शरीर की कान्ति कम नहीं होती। लेकिन दूध खरीदने का यह सिलसिला अगस्त से फरवरी तक—सात महीने ही चलता है। बाद में पहाड़ों में पानी की कमी के कारण ग्वाले गायों को

लेकर वर्धा नदी के किनारे चले जाते हैं और वहीं सारी गर्मी बिताते हैं। वर्षा के बाद लौटते हैं और इस दूध-खरीदी के कारण गुंडमुंड के आसपास की गायें सुधरती जा रही हैं। उन्हें दाना मिलने लगा है। अच्छे सांड की सुविधा मिल जाती है। यह सारा क्षेत्र पहले से ही गौलाऊ-नस्ल का अच्छा क्षेत्र रहा है। पहले ग्वाले केवल बछड़ों का ही ध्यान रखते थे, अब दूध का भी ध्यान रखने लगे हैं। इस तरह इस केन्द्र में नस्ल-सुधार तेजी से होने लगा है। ● ● ●

परिशिष्ट : २

गोवध-बन्दी

गोवध-बन्दी सम्पूर्ण होनी चाहिए। उसे आंशिक (Partial) या उपयोगी (Useful) तक सीमित रखने से काम नहीं निभेगा। गोरक्षा एवं संपूर्ण गोवध-बन्दी भारतीय संस्कृति का एक अपरिहार्य अंग है। भारत कभी गोवध सह नहीं सकेगा। गो से मेरा मतलब गाय, बैल, बछड़े— संपूर्ण गोवंश से है। सम्पूर्ण गोवध-बन्दी की यह भावना एकमात्र गोवंश के लिए है, उसमें भैंस आदि पशु नहीं आते। उपयोगी पशुओं की रक्षा की दृष्टि से भैंस, घोड़े आदि अन्य उपयोगी पशुओं का कत्ल बन्द करने के लिए स्वतंत्र कानून बनाना पड़े, तो उसमें कोई आपत्ति नहीं। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि वह गोवध रोकती है। विश्वशान्ति के लिए यह आवश्यक है कि स्वार्थपरायणता घटे, कृतज्ञता व सेवापरायणता बढ़े। भारतीय संस्कृति ने गोरक्षा द्वारा मानव को इस ओर ले जाने का प्रयत्न किया है। गोवध बंद करना यानी मानवता की रक्षा करना है। जन्म देनेवाली माता तो केवल साल भर दूध पिलाती है, लेकिन गोमाता तो जन्म भर पिलाती है। बिना लोहे व कारखाने के 'बैल' एक ऐसा इंजन है, जो बिना तेल के स्थानीय घास पर चलता रहता है। गाय ऐसी खाद देती है, जो हजारों वर्षों से हमारी भूमि की उपजाऊ शक्ति कायम रखती आ रही है। ऐसी परोपकारी गाय को हम कम-से-कम सम्मान दें, तो भी माँ से कम नहीं मान सकते। गाय जीवन भर हमें उत्पादन देती है। जिसने अपने जीवन में हमें हजारों का लाभ दिया, वही बुढ़ापे में साल-दो साल बैठकर अपनी मौत मरना चाहती है; उस समय भी वह खाद तो देती ही रहेगी। फिर भी उस अर्से में सौ-दो सौ रुपया खर्च होगा। उसीकी कमाई में से होनेवाले इस खर्चे को बचाने के

लोभ से उसके कत्ल का विचार करना मानवता से गिरना है। मनुष्य केवल अर्थ के बल पर नहीं जीता। भावना का उसके जीवन पर भारी असर होता है। भावना के लिए मनुष्य ही नहीं, राष्ट्र के राष्ट्र मर मिटते हैं। गोवध-बन्दी के लिए भावना का होना पर्याप्त कारण मानना चाहिए।

भैंस या बकरी का कत्ल रोकने का कानून बनाने की सिफारिश हम इसलिए नहीं करते कि इनके वंश को बचा सकना हमें संभव नहीं दीखता। उनके नरों से काम नहीं लिया जाता। जिनसे काम नहीं लिया जाता, उनको हमेशा खाना देना मनुष्य के लिए संभव नहीं हो सकता। गाय के नर-मादा, दोनों से हम काम लेते हैं। इसलिए उसे बचाना संभव माना गया है। गो-दूध, गो-घृत मनुष्य के लिए सर्वोत्तम हैं। गोवध-बन्दी के बाद जो समस्याएँ खड़ी होंगी, उनके हल करने के लिए हमारे सुझाव इस प्रकार हैं :

(क) जंगली (Wild)
(ख) आवारा (Stray)
(ग) कम उत्पादक (Uneconomic)

} इन तीनों श्रेणियों के गाय और बैल, दोनों से खेती जोतने का उनकी शक्ति के अनुसार हल्का या भारी काम लिया जाय।

(घ) बूढ़े (Old)—यह श्रेणी उन बूढ़े पशुओं की है, जो चल-फिर-कर खा सकते हैं। इन जानवरों को गोसदनों में भेज दिया जाय।

(च) अपंग (Lame, Blind and Lunatic) यह श्रेणी लूले, लँगड़े, अंधे पशुओं की है जो घूम-फिर नहीं सकते। उन्हें पिंजरापोल या गोरक्षण संस्थाओं में रखा जाय।

(छ) बेकाम सांड (Scrub Bulls) धार्मिक दृष्टि से छोड़े हों या वैसे ही घूमते हों। जो सांड नस्ल-सुधार के लिए उपयोगी नहीं हैं, उन्हें बधिया करके काम में ले लेना चाहिए। बूढ़े हों, तो गो-सदन में भेज दिये जायँ।

गाय को जोतने के विषय में लोगों की भावना जाग्रत करनी होगी। जब लोग देखेंगे कि बिना काम लिये गाय को खाना देना या बचा सकना सम्भव नहीं, तो वे काम लेने के लिए तैयार हो जायँगे। आज पुराने जमाने की तरह जनसंख्या कम और जंगल अधिक नहीं हैं। बढ़ी हुई जनसंख्या को मद्देनजर रखकर थोड़ी जमीन से काम निभाना होगा। मैसूर स्टेट में आज भी गायों से खेती जोतने का काम लिया जाता है।

हिन्दूधर्म और आज के हम हिन्दू, इनमें फर्क करना होगा। हिन्दू-धर्म की भावना गोरक्षा के लिए अत्यन्त तीव्र है। लेकिन आज के जमाने में हमारा नैतिक स्तर ही नीचे गिर गया है। इस कारण सभी बातों में ढिलाई आ गयी है। इसका इलाज है, पूरे देश के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाना। देश में आज जो भूदान-आन्दोलन चल रहा है वह देश का नैतिक स्तर ऊँचा उठाने में सहायक होगा, ऐसी आशा है।

हम किसी भी तरीके के नये गोटैक्स या पशु-सेस को ठीक नहीं समझते। आज खुशी से पुरानी गोशालाओं की जो लाग-बाग चालू है उसीको कानूनी बनाकर सब मंडियों पर लागू करना काफी है। अनुत्पादक गाय से उसकी शक्ति के अनुसार काम लेने में कोई हर्ज नहीं मानना चाहिए। आज के जमाने में बिना काम लिये खाना देना संभव नहीं है। अनुत्पादक गाय से काम नहीं लिया गया, तो उसको बचा सकना असम्भव है।

हम देखते हैं कि कई शास्त्रज्ञ गाय के हित में ही गोवध जारी रखना चाहते हैं। वे समझते हैं कि गोवध चालू रहा, तो गाय की हालत अच्छी रहेगी और गोवध बन्द होने से हालत एकदम बिगड़ जायगी। उनकी सद्भावना की हम कदर करते हैं। फिर भी वे सोचें कि आज जब कि १५० वर्ष से बराबर अनिर्बंध गोवध जारी है, तो क्या गाय की हालत सुधरी या बिगड़ी? १५० वर्ष तक गोवध कायम रखकर भी जब गाय की हालत बिगड़ती गयी, तो अब गोवध बन्द करके देश की भावना को तो सन्तोष दीजिये। जहाँ इतनी

हालत बिगड़ी है वहाँ थोड़ी और बिगड़ जावेगी, इससे ज्यादा क्या होना है ? वास्तव में देखा जाय, तो गाय की हालत सुधरने-न सुधरने का आधार केवल गोवध या गोवध-बन्दी नहीं है। उसका आधार है, गोपालन के विधायक तरीके। देश की भावना की कदर करके हमें सम्पूर्ण गोवध बन्द करना चाहिए और उससे पैदा हुई सद्भावना को बटोरकर विधायक गोपालन से गाय की व भारत की दशा सुधारनी चाहिए।

खर्च

गोसदन के खर्च के लिए आम जनता पर गो-टैक्स या गाय-भैंस-वालों पर पशुसेस (Cess) नहीं बैठाना चाहिए। ऐसा करने में गाय के प्रति एक विरोधी भावना निर्माण होगी। जहाँ तक हो वहाँ तक गाय को स्वावलम्बी बनाना चाहिए। अनुत्पादक पशु कम-से-कम पैदा हों, नस्ल-उत्पादन नीति (ब्रीडिंग-पॉलिसी) के द्वारा इस पर नियंत्रण करना चाहिए। जो हैं उनसे काम लेना चाहिए। फिर भी कुछ खर्च तो होगा ही। कई जगह व्यापारी-मण्डियों में गोशालाओं के लिए 'लाग-बाग' चालू है। उसीको कानूनी बनाकर सब मण्डियों पर लागू कर दिया जाय। जहाँ स्थानीय गोरक्षण संस्था हो, आधी लाग उसे दी जाय और आधी गोसदन के लिए रखी जाय। जहाँ स्थानीय गोरक्षण संस्था न हो, वहाँ की पूरी आमदनी गोसदन के लिए रहे।

गोरक्षण संस्था के मुख्य दो काम होने चाहिए :

(१) अपंग पशुओं का पालन।

(२) अच्छे सांडों का निर्माण।

अच्छे सांडों का निर्माण करके अनुत्पादक पशुओं की वृद्धि रोकनी चाहिए। इस नीति से बराबर काम होता रहा, तो एक समय ऐसा आ सकता है जब गाय पूर्ण स्वावलम्बी हो जायगी। इतना ही नहीं, बचत भी देने लगेगी। ऐसा समय आने पर अधिकांश लोग बूढ़ी गायों को

गोसदन न भेजकर घर पर ही पाल लेंगे। मध्यप्रदेश में तो केवल खाद ही के लिए ही गायें रखी जाती हैं। भारत के किसानों को बूढ़ी और जवान गायों से, सब मिलकर खर्च से थोड़ी अधिक आमदनी होती रही, तो वे अधिक मुनाफे के लिए बूढ़ी गायों को गोसदन नहीं भेजेंगे।

राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में खाद की कीमत बाजार की दर से न लगाकर खाद के डालने से जितने वर्षों तक जितनी पैदावार अधिक हो, उस पर से लगाना चाहिए।

गोवध-बन्दी से चमड़े के व्यापार पर बुरा असर पड़ेगा। जवान और कत्ल की गयी गाय का जैसा चमड़ा होता है, वैसा बूढ़ी और बीमारी से मरनेवाली गाय का नहीं हो सकता। चमड़े के धन्धे में कुछ नुकसान मानकर ही हमने गोवध-बन्दी की सिफारिश की है। भावना का मूल्य इन छोटे-मोटे लाभों के मुकाबले बहुत अधिक होता है। हम सिद्धान्त रूप से मानते हैं कि धर्म और अर्थ का विरोध नहीं होना चाहिए। एकांत धर्म सदा नहीं टिक सकता। कत्ल करने में अधिक बचत हो सकती है, यह बात सही है, परंतु आज के अविचारपूर्ण कत्ल से तो देश का बहुत भारी आर्थिक नुकसान हो रहा है।

हमारा यह विश्वास है कि आज भी गाय भारत के राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में स्वावलम्बी है। जितना खर्च राष्ट्र का बच्चे से लेकर बूढ़े तक के गोवंश पर होता है, उससे अधिक उत्पादन राष्ट्र को वह देता है। कत्ल बन्द करने पर भी गाय खर्च से अधिक उत्पादन देगी। नस्ल-सुधार होने पर तो वह बहुत बड़ी बचत देगी। लेकिन हमें व्यक्तिगत अर्थशास्त्र और राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के भेद को समझना चाहिए। व्यक्तिगत अर्थशास्त्र माँग और पूर्ति (Demand and Supply) पर आधारित होता है। वह केवल 'अनर्थ-शास्त्र' है। राष्ट्रीय अर्थशास्त्र यह है कि राष्ट्र को कितना धन पोषण में खर्च करना पड़ा और कितना वापस मिला। इसका हिसाब मेहनत, वस्तु आदि के रूप में लगाना होता है, पैसे के रूप में नहीं।

विधायक कार्यक्रम

(१) शहरों में गो-संवर्धन के लिए गोरस-भंडार कायम हों। वहाँ देहातों से दूध लाया जाय। यह काम बिना मुनाफे की नीयत के केवल सेवा-भाव से काम करनेवाली एजेन्सी द्वारा होना चाहिए।

(२) बड़े शहरों में ग्वाले, दुग्धालय (Dairy) नहीं होने चाहिए। जहाँ प्रति पशु आधे से एक एकड़ तक जमीन हो वहीं गायें रहनी चाहिए।

(३) बड़े-बड़े शहरों में निजी तौर से गायें रखनेवाले उन्हें बिना इजाजत न रखें। और उन्हें इजाजत भी तब दी जाय जब यह विश्वास हो जाय कि उनके पास गाय को पालने के पर्याप्त साधन हैं।

(४) हर किसान के पास गायें हो और हर ग्वाले के पास जमीन हो। गाय और भूमि, दोनों साथ-साथ रहें।

(५) गोरक्षण संस्थाएँ शहर से बाहर ही, जहाँ गायों के अनुपात में भूमि प्राप्त हो सके, रहनी चाहिए।

(६) गोरस व्रत का यानी गाय के ही घी-दूध का इस्तेमाल करने का प्रचार किया जाय, ताकि गोरस के लिए बाजार (Market) बना रहे।

(७) शहर को दूध देने की कोई भी योजना बने तो यह खयाल रखा जाना चाहिए कि हर पशु के पीछे आधे से एक एकड़ तक जमीन उस स्थान पर होनी चाहिए। जहाँ पर्याप्त जमीन मिल सके वहीं बस्ती (Colony) की जाय।

(८) जैसे हर देहात में अन्न की योजना (Food planning) है, उसी तरह चारे-दाने की योजना (Fodder planning) भी होनी चाहिए।

(९) हर देहात में कुल भूमि की १० या १२ फीसदी जमीन गोचर भूमि के रूप में रहनी चाहिए।

(१०) जंगलों में बड़े-बड़े चरागाह हैं। उन पर प्रयोग कर उनमें अच्छा चारा पैदा करने के सुधार होने चाहिए।

(११) खाद का पूरा उपयोग किया जाना चाहिए।

(१२) चमड़ा कमाना तथा मृत पशु के हाड़, मांस, सींग आदि का पूरा उपयोग किया जाना चाहिए।

(१३) देशी और सस्ती पशु-चिकित्सा को अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए।

(१४) जो भी प्रयोग हो उसकी सफलता का निर्णय देहातों में किसानों के जरिये उसका व्यवहार देखने के बाद किया जाय।

(१५) शिक्षा ऐसी हो जिसमें किताबी थोड़ी और प्रात्यक्षिक अधिक हो।

ग्रामोद्योग

देहातों को स्वावलम्बी बनाने के लिए खेती और गोपालन के साथ ग्रामोद्योगों का होना अत्यन्त आवश्यक है। खेती और गोपालन से जो समय बचे उसमें जितनी भी कमायी हो सके वह आवश्यक है। जितनी भी चीजें देहात में कच्ची की पक्की हो जायँ उतना ही देहात शहरों की लूट से बचेगा, स्वावलंबी होगा। कम-से-कम अन्न-वस्त्र के सम्बन्ध में आवश्यक सारी जीवनोपयोगी वस्तु देहात में ही तैयार हो जानी चाहिए।

सौ मन का भारी पलड़ा नीचे बैठा है। दूसरे पलड़े में पंचानबे मन बोझ पड़ा है। उसमें केवल छह मन बोझ अधिक पड़ जाय, तो सौ मन का भारी पलड़ा उठ जायगा। यहाँ जैसे छह मन को हम छोटा नहीं गिन सकते वैसे ही ग्रामोद्योग की आमदनी थोड़ी होने पर भी वह कृषि और गोपालन के पलड़े में पड़ेगी। इसलिए उस आमदनी को कम न माना जाय। उसका मूल्य जीवन-विकास में अत्यधिक है। कृषि, गोरक्षा और ग्रामोद्योग मिलकर ग्राम का अर्थशास्त्र स्वावलंबी होगा।* ● ● ●

---

* गो-संवर्धन जाँच-समिति के समक्ष दिया गया वक्तव्य।

—सम्पादक

परिशिष्ट : ३

गोपालन-संस्थाओं का नामकरण

नाम से संस्था के काम का स्वरूप ध्यान में आ सके इस दृष्टि से आज जो प्रचलित नाम हैं उनमें किसका कहाँ उपयोग किया जाय इस पर विचार करके निम्न निश्चय पर पहुँचे हैं। ये नामकरण मुख्य उद्देश्य को नजर में रखकर किये गये हैं। वैसे एक विभाग में दूसरे विभाग रह ही सकते हैं। जैसे पिंजरापोल, गोरक्षण व गोसदन में सेवा-विभाग के साथ संवर्धन-विभाग रह सकता है; वैसे ही गौशाला व गोकुल में संवर्धन-विभाग के साथ सेवा-विभाग रह सकता है।

१. पिंजरापोल—आबादी के पास-पड़ोस में बूढ़े, लूले, लँगड़े, अपंग पशुओं के रक्षण का स्थान। जिसमें गाय के अलावा अन्य पशु भी लिये जा सकते हों। इन पशुओं की वृद्धि अवांछनीय होती है। इसलिए ऐसे स्थानों में सांड न रखकर प्रजनन बन्द किया जाता है।

२. गोरक्षण—इसमें पिंजरापोल से एक ही फर्क है कि गाय के अलावा अन्य पशु नहीं लिये जाते हों।

३. गोसदन—इसमें गोरक्षण से इतना ही फर्क है कि गोरक्षण का स्थान बस्तियों के नजदीक होगा और इसका स्थान बस्तियों से दूर।

४. गोशाला—गोसंवर्धन के लिए आवश्यक सारे शास्त्रीय प्रयोग करनेवाली संस्था। इसमें अच्छे सांड रखकर नस्ल सुधारी जावेगी, वंशावली रहेगी, अच्छे सांड निर्माण किये जायँगे। प्रजनन के व चारे-दाने के सब तरह के प्रयोग होंगे। संक्षेप में यह स्थान शास्त्रीय गोपालन का केन्द्र होगा और साथ में खेती जुड़ी होगी। उसमें चारे-खेती के प्रयोग होंगे।

५. अनुसंधानशाला—नया शोध करनेवाली संस्था : जैसे कृषि-अनुसंधानशाला, मवेशी-अनुसंधानशाला, पशु-चिकित्सा अनुसंधान-शाला आदि ।

६. गोप-विद्यालय—गौशाला में चलनेवाले गोपालन की व साधारण खेती की शास्त्रीय व प्रात्यक्षिक शिक्षा देने का स्थान । जिसमें प्रमुख स्थान गोपालन को व खेती को द्वितीय स्थान हो, उसे गोप-विद्यालय व जिसमें खेती को प्रमुख व गोपालन को द्वितीय स्थान हो, उसे कृषि-विद्यालय कहना चाहिए ।

७. नंदीशाला—नस्ल-सुधार के लिए सांड रखने का घर । इस घर से जुड़ा एक चौक होना चाहिए, जहाँ पर गाय छोड़ी जा सके और सांड सर्विस कर सकें ।

८. देशी पशु-चिकित्सालय—सब तरह के पशुओं के इलाज की व्यवस्था हो । चिकित्सा की पुरानी व नयी पद्धतियों का इस्तेमाल होता हो, लेकिन स्थानीय व स्वदेशी औषधियों को प्रथम स्थान दिया जाता हो ।

ऊपर की आठों संस्थाएँ सेवा की दृष्टि से चलायी जायँगी । इसलिए इन संस्थाओं में हमेशा ही आमदनी से खर्च अधिक होनेवाला है । इन संस्थाओं की सफलता पैसे के आमद-खर्च से नहीं आँकी जायगी, बल्कि जिस उद्देश्य से वे काम कर रही हैं उसमें कितनी तरक्की कर सकीं, इससे आँकी जायगी । इन संस्थाओं को जनता की ओर से सदा ही सहायता मिलती रहनी चाहिए । ये गोसेवा की बुनियादी संस्थाएँ हैं ।

९. दुग्धालय—इसका मुख्य उद्देश्य दूध-उत्पादन का होगा । अच्छी गायें रखकर उनका अच्छी तरह पालन करके व्यापारी ढंग पर बिना नुकसान उठाये दूध पैदा करना व बेचना ।

१०. गोकुल—बस्ती से दूर जहाँ बड़े चरागाह हों, वहाँ गोकुल रहेंगे । इनकी कल्पना है कि इनमें बछड़े व बछड़ियों का पालन होगा । सूखे

पशुओं का पालन होगा तथा हजारों की तादाद में छोटी-बड़ी दूध-बिन-दूधवाली गायें रहेंगी व अच्छे सांड रखकर अच्छे गाय-बैल पैदा किये जायँगे।

११. गोरस-भंडार—गोदूध, दही, घी, खोवा, पेड़ा, मधुरिका आदि गोदुग्ध के बने पदार्थ बेचने का स्थान।

ऊपर की तीनों संस्थाएँ व्यापारी ढंग पर चलनी चाहिए और उनसे आमदनी होनी चाहिए। हो सकता है कि प्रारम्भ में कुछ नुकसान भी उठाना पड़े, लेकिन अन्त में ये स्वावलम्बी होनी चाहिए।

विनोबा के साथ

निर्मला देशपांडे

प्रस्तावना
जयप्रकाश नारायण

अखिल भारत सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे
मंत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (म० प्र०)

द्वितीय संस्करण : १०,०००
जुलाई, १९५५

मूल्य : एक रुपया

मुद्रक :
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव
भार्गव भूषण प्रेस,
बनारस

प्रस्तावना

●

मराठी-साहित्य से जिनका थोड़ा भी परिचय है, वे श्री पी० वाई० देशपाण्डे को जानते हैं। लेखक होने के अतिरिक्त वे मध्यप्रदेश की राजनीति में भी प्रमुख स्थान रखते हैं। वे मेरे अनन्य मित्र हैं और जिन मुट्ठी भर लोगों ने पुरानी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की नींव डाली थी, उनमें "पी० वाई०" भी थे।

निर्मला देशपाण्डे उन्हींकी पुत्री है। पिता की प्रतिभा पुत्री में स्पष्ट झलक रही है, इसकी गवाही इस डायरी का एक-एक पन्ना दे रहा है। साहित्यकारिता की प्रतिभा तो इसमें दीखती ही है, विद्वत्ता भी है इसमें। होना भी ऐसा ही चाहिए। चिरंजीवी निर्मला विद्वान् माता-पिता की सन्तान तो है ही, उसने ऊँची शिक्षा भी प्राप्त की और वह विनोबाजी के पास जाने के पहले नागपुर के एक कॉलेज में अध्यापन-कार्य भी कर चुकी है।

विनोबाजी की उत्तर-प्रदेश तथा बिहार की पदयात्राओं में निर्मला महीनों उनके साथ रही है। उनकी पदयात्राएँ हम भारतीयों के लिए सौभाग्य का विषय बन गयी हैं, क्योंकि विनोबा एक विलक्षण व्यक्ति हैं। आध्यात्मिक विभूतियों के साथ-साथ प्रकाण्ड पाण्डित्य और अतुल अनुभूतियाँ भी उनमें संग्रहीत हैं। वे प्रतिदिन बोलते हैं, फिर भी कुछ-न-कुछ बराबर नया कहते हैं। केवल भाषणों में ही नहीं, चलते-फिरते, उठते-बैठते, मुस्कराते विनोबा अक्सर अनमोल बातें कह जाते हैं। अगर उन्हें नोट कर लेनेवाला कोई पास न हो तो उन बोधमय सुभाषितों से हम वंचित रह जाते हैं। विनोबा कभी सामाजिक प्रश्नों की मीमांसा अनायास कर देते हैं, कभी किसी जटिल शंका का समाधान एक वाक्य में कर डालते हैं, कभी पुराने ऋषि-वाक्यों का ऐसा नया अर्थ दे डालते हैं कि सुनते ही बनता है! कभी किसी बुढ़िया के झोपड़े में जाकर ऐसी मार्मिकता और हार्दिकता से कुछ बोल जाते हैं कि वह अखिल विश्व की सम्पत्ति बन जाता है। कभी अनायास और अकस्मात् कोई पावन प्रसंग उपस्थित हो जाता है, तो कभी कोई चमत्कार!

दुर्भाग्य से इन सबका रेकार्ड रखा नहीं जाता, क्योंकि विनोबाजी की बराबर यह कोशिश रहती है कि उनके साथ कम-से-कम लोग रहें। जो भी उन्हें जरा काम का लगता है, उसे अपने यहाँ से हटाकर प्रत्यक्ष कार्य-क्षेत्र में भेज देना चाहते हैं। भारतीय प्रचार-साधनों ने अधिकतर उनकी अवहेलना ही की है। शहरों के या खास-खास मौके के भाषणों की रिपोर्ट तो छप जाती है, लेकिन जिन मोतियों को वे हर दिन बिखेरते रहते हैं, उन्हें चुन और पिरोकर रख लेनेवाला अक्सर कोई नहीं होता। उन मोतियों के पारखी भी तो चाहिए। हम अंगरेजी शिक्षा प्राप्त लोग भारतीय चिन्तन-धारा से इतनी दूर होते हैं कि विनोबा के चिन्तन की बहुत सारी बारीकियाँ हमारे ऊपर से ही ढुलककर उसी प्रकार गिर जाती हैं, जैसे बतख के पंखों पर से पानी। बेचारे प्रेसवाले इसके अपवाद नहीं हैं।

ऐसी दशा में यह हमारा परम सौभाग्य है कि निर्मला बहन जैसे प्रतिभावान् पारखी विनोबा के साथ कभी-कभी रह पाते हैं।

इस डायरी में विनोबा की उत्तर-प्रदेश और बिहार की चार महीने की यात्रा का वर्णन है। वर्णन कितना सुन्दर और जानदार है, यह पढ़ने से ही पता चलेगा। यात्रा चलचित्र की तरह आँखों के सामने आ जाती है, जैसे विनोबा के साथ हम स्वयं घूम रहे हों और उन्हें अपने कानों से सुन रहे हों। बीच-बीच में लेखिका की टिप्पणियाँ चित्र में और भी चमक भर देती हैं। इस डायरी में कई गम्भीर विषयों पर विनोबा के विचार मिलेंगे जो पहले प्रकाशित नहीं हुए हैं। भूदान-आन्दोलन का विकासशील स्वरूप इस डायरी के पन्नों में अंकित मिलेगा, और मिलेंगे अहिंसक समाज-क्रान्ति तथा समाज-रचना के अमूल्य तत्त्व।

यह पुस्तक अवश्य पठनीय है।

सर्वोदय-आश्रम, सेखोदेवरा,
गया (बिहार)
१९ जनवरी, १९५५

—जयप्रकाश नारायण

भूदान-यज्ञ से जो हवा बन रही है, नैतिक मूल्यों की जो प्रतिष्ठा लोगों के ध्यान में आ रही है—सामाजिक अन्याय सहन न करने की, और अन्याय-मुक्त होने की जो तीव्र भावना पैदा हो रही है, जो सबसे पिछड़े हुए हैं, उनकी ओर सबसे पहले ध्यान देना चाहिए, यह बात जो लोगों की समझ में आ रही है, जिसे मैंने 'प्रजासूय-यज्ञ' कहा, 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' कहा, बेजबान मजदूर का उत्तर कहा, उसके मुकाबले मैं भूमि का मसला हल होने की बात विशेष महत्त्व की नहीं मानता। यह जो आबहवा फैली है, और इसमें जो प्राण है, उसका स्पर्श सबको हुआ तो न सिर्फ भूमि का मसला ही हल होगा, बल्कि सारे ही मसले हल होंगे; क्योंकि मानव-समाज में जो-जो मसले पैदा हुए हैं, उन सबके मूल में जो कुप्रवृत्ति और अबुद्धि है, उस कुप्रवृत्ति और अबुद्धि पर ही इससे प्रहार होता है। इसलिए यह मसला कब हल होगा, यह विचार मेरे मन में आता ही नहीं।

—विनोबा

अनुक्रम

(पहला भाग)

(दूसरा भाग)

(तीसरा भाग)

(चौथा भाग)

(पाँचवाँ भाग)

(छठा भाग)

(सातवाँ भाग)

(आठवाँ भाग)

विनोबा के साथ

पहला भाग

दान-धारा और ज्ञान-धारा

भदोही (बनारस)

२०.४.१९५२

'ॐ पूर्ण है वह पूर्ण है यह......'

रात बीतने को थी, लेकिन सुबह नहीं हो पायी थी। सुबह की प्रार्थना में ईशावास्योपनिषद् का पाठ हो रहा था। तीर की गति से आगे बढ़ते हुए बापू के आत्मज को देखकर लगा, जैसे नोआखाली की अधूरी यात्रा पूरी की जा रही है।

नित्यक्रम के अनुसार प्रातःकाल चार बजते ही सेवापुरी-आश्रम से हमारी यात्रा आरम्भ हुई। चौदह मील की दूरी पर 'भदोही' में हमारा पहला पड़ाव था। विनोबाजी के चलने की गति बहुत ही तेज है और मेरी आराम की जिन्दगी का श्रम से परिचय केवल पुस्तकों से ही है। कल्पना और विचारों की दुनिया में भले ही मैं श्रमनिष्ठ और कष्टसहिष्णु होऊँ, फिर भी वास्तविक जगत् में मेरी स्थिति विपरीत थी। लेकिन सोचा, इन दो दुनिया की दूरी मिटाने के लिए ही तो मैं यहाँ आयी हूँ।

हमारे यात्री-दल में कुछ पुराने अनुभवी पथिक और कुछ मुझ जैसे 'नौसिखिए' थे। युनेस्को में काम करनेवाली दक्षिण अमरीका की एक बहन, एक फ्रेंच पत्रकार महिला और सेवाग्राम की विद्या बहन मेरे समान ही नयी बहनें थीं। इसलिए पड़ाव पर पहुँचते ही हममें से किसी की भी

हालत कुछ करने लायक न रही। किन्तु दूसरी तरफ यात्री-दल के मृदु और गौतम जैसे छोटे बच्चे फौरन काम में जुट पड़े। विनोबाजी की लोकनागरी लिपि के टाइपराइटर पर दोनों मजे में हाथ चला लेते हैं।

नित्यक्रम के अनुसार शाम को कताई, प्रार्थना और प्रवचन आदि का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। कताई के बारे में विनोबाजी ने कहा, "बच्चा बोलने से नहीं, देखने से समझ जाता है। इसीलिए बापू हम बच्चों को सबक सिखाने के लिए हर रोज सूत कातते थे। गांधीजी को याद करने से ही हम अपना जीवन सुखी बना सकते हैं।"

चारों ओर रिश्वत, कालाबाजार आदि चल रहा है। सारे समाज का नैतिक स्तर गिर गया है—आजकल हर जगह यही बात सुनाई दे रही है। विनोबाजी के पास आनेवाले अधिकांश लोग उन्हें यही सुनाया करते हैं; लेकिन विनोबाजी तो कहते हैं, "मैंने पवनार से बनारस, हजार मील की यात्रा की; लेकिन मुझे तो आज तक एक भी दुर्जन नहीं मिला ......।"

मुझे महाभारत का एक किस्सा याद आ गया। एक सभा हो रही थी। उसमें धर्मराज को एक भी दुर्जन नहीं मिला और उसी सभा में दुर्योधन को एक भी सज्जन नहीं मिला। मेरे मन में सवाल उठा—तो क्या इसका मतलब यह है कि हम सारे दुर्योधन बन गये हैं और इसीलिए चारों ओर हमें दुर्जन ही दुर्जन दिखाई दे रहे हैं? लेकिन सवाल उठते ही मैंने विनोबाजी का जवाब सुना, "मानव का हृदय शुद्ध है; लेकिन आज की समाज-रचना बिगड़ी हुई है। पैसे का महत्त्व बढ़ गया है। हर कोई कांचन के मृग-जल को देखकर उसके पीछे दौड़ रहा है। लेकिन यदि मनुष्य को सत्य वस्तु का भान कराया जाय और उसे अपने अन्दर की छिपी हुई अच्छाई को बाहर लाने का मौका दिया जाय तो अच्छाई फौरन प्रकट होगी। भूदान-यज्ञ के द्वारा यही कार्य हो रहा है।"

इसके बाद विनोबाजी ने एक हृदयस्पर्शी घटना सुनायी, "एक गरीब किसान, जिसके पास कुल डेढ़ बीघा जमीन थी, मेरे पास आया और दान

देने लगा। मैंने उससे कहा—तुम खुद गरीब हो, दान मत दो। तो वह रो पड़ा। उससे दान दिये बगैर रहा नहीं जाता था। इतना महान् यज्ञ शुरू हुआ है और उसमें अपनी आहुति अर्पण किये बगैर चले जाना, उसका भारतीय हृदय भला कैसे मान सकता था? वह गरीब है तो क्या हुआ? क्या उसे सुदामा के तंदुल अर्पण करने का हक नहीं था? ...... आखिर उसकी भक्ति देखकर मैंने उसका दानपत्र ले लिया। तब वह खुश हुआ। .:.... ऐसे कई किस्से हुए हैं। उनका स्मरण ही दिल को पवित्र बना देता है।"...... आखिरी वाक्य बोलते समय विनोबाजी की आवाज में कुछ कम्पन-सा हुआ, उनकी आँखें सजल हो गयीं। कुछ रुककर, उन्होंने फिर ग्रामीणों से कहना शुरू किया, "भारत में दो धाराएँ निरन्तर बहती रही हैं। जहाँ गंगा और यमुना की जल-धाराएँ हैं, वहाँ प्राचीनकाल से लेकर आज तक ज्ञान-धारा और दान-धारा भी निरन्तर बहती रही हैं। दान-धारा में स्नान करके अपना जीवन पुनीत बनाओ।" —यही संदेश देने के लिए तो उनकी यात्रा चल रही है। दान-धारा के साथ-साथ वे ज्ञान-धारा की भी महिमा बताते हैं। "हर रोज ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। आप अनपढ़ हैं, तो कुछ श्रवण करना चाहिए; लेकिन ज्ञान हासिल किये बगैर एक भी दिन नहीं जाना चाहिए। जिस दिन हमने ज्ञान की बात नहीं सुनी, वह दिन हमने खो दिया।"

राजा राम–प्रजा राम

रामपुर (जौनपुर)
२१. ४. १९५२

एक दिन मैं बैठी-बैठी दैनिक कार्यक्रम के बारे में सोच रही थी। वैसे तो बैठने का अवसर कहाँ, फिर भी जब कभी एकान्त का अवसर मिलता तो पिछले जीवनक्रम का सारा नक्शा सामने आ जाता। आज की शिक्षा-प्रणाली पर कुछ सोचने लगी थी।

आज की शिक्षा-प्रणाली में जो सबसे बड़ी खराबी है, उसे अब मैं तीव्रता से महसूस कर रही हूँ। पिछले १८ वर्षों के मेरे अध्ययन-काल में मुझे न कभी जंगल से लकड़ी लानी पड़ी थी, न कभी गायें चरानी पड़ी थीं। इसलिए मेरा शरीर किसी भी प्रकार के परिश्रम के लिए सर्वथा असमर्थ बन गया था। यात्रा में शरीक होने पर पहले ही दिन मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया। पिछले १८ वर्षों के दरमियान मैं किसी भी विषय में प्रवीण न हो सकी, यह बात तो थी ही, लेकिन उधर वर्धा के महिला-श्रम की नर्मदा बेन मुझ जैसी ही नौसिखुआ होते हुए भी बड़ी फुर्ती से विनोबाजी के साथ चल रही थीं।

मैं अयोग्य साबित हो चुकी थी, इसलिए दूसरे ही दिन मुझे सामान ले जानेवाली जीप में बैठकर अगले पड़ाव पर जाना पड़ा। सबका ध्यान खींचने के लिए बीमारी जैसा दूसरा साधन कोई नहीं हो सकता। विनोबाजी से लेकर हर कोई मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछता था। फौरन इलाज भी शुरू हो गया। विनोबाजी ने पूछा, "बेटा, अब तेरा स्वास्थ्य कैसा है?" यह सुनते ही मुझमें काफी ताकत आ गयी। और बाद में जब किसीने मुझे सुनाया कि विनोबाजी तुम्हारे बारे में कह रहे थे कि "उसका शरीर कमजोर होते हुए भी मन के बल पर वह सब काम कर रही है;" तब तो मुझमें चलने की ही नहीं, दौड़ने की भी शक्ति आ गयी।

हमारा निवास-स्थान हमेशा सारे गाँव का आकर्षण-स्थान बन जाता है। सरकारी अफसर, भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्षों के कार्यकर्ता, गाँव के बड़े-बड़े लोग आदि सब सेवा के लिए उपस्थित रहते हैं और गाँव की जीर्ण पाठशाला में रहते हुए भी लगता है कि हम किसी आलीशान महल में रह रहे हैं। विनोबाजी तो हमेशा कहते हैं कि "मैं तो दुनिया के सब बादशाहों से बड़ा बादशाह हूँ। दूसरे बादशाहों के ज्यादा-से-ज्यादा पचास महल होंगे; लेकिन मुझे तो हर रोज नया महल मिलता है।" और हम भी विनोबा के सहयात्री होने के कारण बादशाहों के खान-दानवाले बन जाते हैं। संत के दर्शन के लिए आनेवाले लोग हमारा भी 'दर्शन' करते हैं।

हमारे यात्री-दल में जो फ्रेंच महिला थीं, वह भारतीय पोशाक धारण करती थीं। भारतीय-जीवन के साथ बिल्कुल हिल-मिल जाने की उनकी कोशिश को देखते हुए मुझे सूट-बूट पहननेवाले यहाँ के बाबू लोगों की याद आती है। जरा-सी अंग्रेजी पढ़कर हमारे लोग अंग्रेजों की नकल करने की कोशिश करते हैं और इधर योरप के भाई-बहन यहाँ आकर भारतीय बनने की कोशिश करते हैं। वह फ्रेंच बहन हमारे साथ ही पैदल चलती थीं, जमीन पर पालथी मारकर बैठती थीं, हाथ से (बिना छुरी-काँटे के) खाना खाती थीं। वह भूदान का कार्य देखने आयी थीं। लोग प्राणों से भी प्रिय जमीन दान में कैसे देते हैं, यह उनके लिए एक भारी समस्या बन गयी थी। भूदान-यज्ञ के द्वारा अहिंसक समाज-रचना हो सकती है, यह बात तो उन्हें असम्भव-सी लगती थी। उन्होंने अब तक देखा था कि युद्ध के नाम से मानव की पाशविक प्रवृत्तियाँ किस भयानक रूप में प्रकट होती हैं, इसलिए मानव अपने गरीब पड़ोसी को अपनी जमीन दे सकता है और वह भी एक संत की प्यारभरी माँग पर! ...... यह सारा उन्हें अघटनीय प्रतीत होता था और इसीलिए असम्भव-सा लगता था। लेकिन वह अपनी आँखों देख रही थीं कि रास्ते में विनोबाजी कभी-कभी दर्शनार्थियों के बीच चन्द मिनट के लिए रुकते हैं, दो-चार शब्द बोल लेते हैं और फिर भूदान की वर्षा होने लगती है। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा कि "आप भारतीय लोग बड़े अच्छे हैं; लेकिन जरा ख्वाबों की दुनिया में अधिक रहते हैं।" मैंने जवाब दिया, "आप जिसे ख्वाब कहती ह वसी कई घटनाएँ हमने अपनी आँखों से देखी हैं। जिसने गांधीजी का कार्य देखा, वह भविष्य की ओर आशा की निगाह से देखे बगैर कैसे रह सकता है?"

विनोबाजी जब ग्रामीणों के सामने बोलते हैं तब बिल्कुल तन्मय हो जाते हैं। वक्ता और श्रोता का द्वैत नष्ट हो जाता है। दिल की भाषा को दिल पहचान लेता है। नूतन से नूतन क्रान्तिकारी विचार को वे इतने सरल ंग से समझाते हैं कि जनता उसे आसानी से ग्रहण कर लेती है। उन्होंने एक बार बोलते हुए कहा, "आज की समाज-रचना में एक क्षण के लिए

भी नहीं सह सकता।" ......"हम तो राम-राज्य स्थापित करना चाहते हैं—ऐसा राम-राज्य जिसमें राजा राम, प्रजा राम, सब राममय हो जाते हैं।" ...... इन दो विचारों की संगति जन-मन में अनजान में ही जुड़ जाती है। हम शिक्षित लोग क्रान्ति की किताबें पढ़ते हैं और भारतीय जनता पर अज्ञान, संकीर्णता एवं रूढ़िप्रियता का दोषारोपण करते हैं। भारतीय जनता को किस प्रकार क्रान्ति के लिए प्रेरित किया जा सकता है, यह सीखना हो, तो इस संत के पास ही आना होगा।

आजकल हमारे भोजन की ऐसी व्यवस्था की गयी है कि हम लोगों के सम्पर्क में अधिक-से-अधिक जा सकें। यात्री-दल के सब सदस्य दो-तीन की संख्या में एक-एक घर में भोजन के लिए जाते हैं। इससे क्रान्ति का संदेश रसोईघर तक पहुँचाने का मौका मिलता है। लेकिन सुबह १४-१५ मील चल लेने के बाद फिर जब उत्तर प्रदेश की कड़ी धूप में दोपहर के समय सिर्फ भोजन के लिए मील-दो मील चलना पड़ता है; तब तो 'उदरभरण' बिल्कुल 'यज्ञकर्म' मालूम होता है। आज जहाँ मैं भोजन करने गयी थी, वहाँ की स्त्रियों से बातचीत करने के लिए चूल्हे की ओर बढ़ ही रही थी, इतने में घर की स्त्रियों ने कहा—"पास मत आइये, छूना मत।" उनके मन में हमारे प्रति अत्यन्त आदर और श्रद्धा की भावना थी; लेकिन रूढ़ि-परम्परा के कारण वे हमें पास नहीं आने दे रही थीं। उन्होंने यह सोचा होगा कि ये सन्त के साथ रहनेवाली बहनें हैं। न मालूम किस जाति की होंगी, शायद इनमें से कोई हरिजन भी हो सकती है ...... यही रूढ़ि है, जो मानव को मानव से दूर रखती है।

शबरी के बेर

मड़ियाँहू (जौनपुर)

२२.४.१९५२

चलते समय आरम्भ का कुछ समय शान्ति से बीतता है। दिन भर सारे कार्यक्रमों में वही ऐसा समय है जब कि विनोबाजी शान्ति से

चिन्तन कर सकते हैं। उसके बाद रास्ते में ही चर्चाएँ, मुलाकातें आदि आरम्भ हो जाती हैं। वह चर्चा तो घरेलू चर्चा जैसी रहती है, इसलिए बड़ी रोचक मालूम होती है। दिल तो चाहता है एक-एक शब्द सुना जाय; लेकिन उसके लिए विनोबाजी की गति से चलना बड़ा मुश्किल है।

आज प्रेमा बहन के साथ बातचीत हो रही थी। विनोबाजी ने कहा, "मैं चाहता हूँ कोई एक शंकराचार्य जैसी तेजस्वी, वैराग्यमूर्ति और ज्ञाननिष्ठ स्त्री निकले। उसके बगैर स्त्री-जाति का उद्धार नहीं हो सकता।" सेवापुरी के सम्मेलन में जब विनोबाजी ने कहा था कि "स्त्री-जाति को ब्रह्मचर्य और संन्यास का अधिकार है" तब कई सनातनियों ने 'शिव ! शिव !!' कहा होगा।

गाँव नजदीक आ रहा था। रामधुन का घोष, वाद्यों की ध्वनि और भूदान के नारे आदि की संमिश्र ध्वनि सुनाई दे रही थी। स्वागत के लिए जगह-जगह द्वार बनाये गये थे। सारे रास्ते साफ किये गये थे, आम्र-पल्लवों के बन्दनवार लगाये गये थे। पुष्पवृष्टि हो रही थी। रास्ते के दोनों ओर बच्चों से लेकर बूढ़े तक असंख्य नर-नारी खड़े थे। **'भूमिदान यज्ञ सफल करेंगे'** और **'महात्मा गांधी की जय'**—इन दो नारों से सारा आकाश गूँज उठा। मुझे ऐसा लगा कि जनता यह सूचित कर रही है कि इन दो नारों में कुछ आन्तरिक संगति है।

आज का हमारा निवासस्थान एक कॉलेज था। चर्चा में कुछ सवाल पूछे गये। सवाल अच्छे थे।

एक भाई ने कहा—"भूदान यज्ञ ट्रस्टीशिप (Trusteeship) में आता है या नहीं ?"

विनोबा—"जी हाँ, आता है। लेकिन जमीन के बारे में हम यह नहीं कह सकते कि हम उसके ट्रस्टी हैं, क्योंकि जमीन तो परमेश्वर की देन है। अपनी जायदाद के हम ट्रस्टी हैं, मालिक नहीं—यह भावना पैदा करनी है। जो चीज नैतिक दृष्टि से गलत मानी जाती है, वह समाज की दृष्टि

से दण्डनीय बन जाती है। आज चोरी को ठीक कहनेवाला समाज में कोई नहीं है, इसलिए कानून में भी चोरी को गुनाह माना गया है। मैं चाहता हूँ, जमींदार लोग खुद यह समझ जायँ कि चोरी के समान जमीन का संग्रह भी नैतिक दृष्टि से पाप ही है। सब लोग मेरा यह कहना मानेंगे; क्योंकि आज सब लोग चोरी के खिलाफ हैं। इसलिए समाज कल यह भी मानने लगेगा कि कंजूसी भी गलत है। वास्तव में जो कंजूस होते हैं, वे चोरों के बाप होते हैं। जो धनसंग्रह करते हैं, वे चोरों को पैदा करते हैं। उपनिषद् में राजा कहता है कि—**'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यः'** मेरे राज में न कोई चोर है और न कोई कंजूस। मैं मानता हूँ कि कभी-न-कभी समाज यह विचार मंजूर करेगा कि चोरी के समान संग्रह भी पाप है, क्योंकि यह सद्विचार है।"

हमेशा की चर्चाओं में नित्य नूतन विचार देने की विनोबाजी की कला बहुत ही आकर्षक मालूम होती है। आज उन्होंने कहा, "राजसत्ता का ौर ऋषिसत्ता का धर्म अलग-अलग होता है। ऋषि लोकमत बनाते हैं और बनाये हुए लोकमत के आधार पर राजसत्ता काम करती है। राजसत्ता के जरिये कभी क्रान्ति नहीं हो सकती। क्रान्ति तो ऋषि ही कर सकते हैं। समाज में तीन प्रकार के लोग होते हैं: १. समाज को आगे ले जानेवाले क्रान्तदर्शी ऋषि, २. समाज के साथ-साथ रहनेवाले समाज के मित्र समाज-सुधारक और ३. समाज के पीछे-पीछे जानेवाले सेवक यानी सरकार। सरकार तो हमारी नौकर होती है। नौकरों को हम चुनते हैं। इसलिए जो सरकार में दाखिल हो जाते हैं, वे नेता नहीं रह सकते, सेवक बन जाते हैं। जनता की आज्ञा के अनुसार सरकार काम करती है। इसलिए समाज को आगे ले जानेवाले नेता तो ऋषि ही हो सकते हैं।"

मेरे कानों ने यह विचार सुन तो लिया; लेकिन दिमाग तक पहुँचने में उसे काफी समय लग गया। स्वराज्य के बाद हमने सरकार से जो अपेक्षाएँ रखी थीं, उनके मूल पर ही प्रहार करनेवाला विचार था यह। हम समझते थे कि अब तो धरती पर स्वर्ग लाने का काम सरकार का ही है। अगर सरकार यह काम नहीं कर पाती, तो उसको कोसना हमारा कर्त्तव्य है।

लेकिन इधर विनोबा कह रहे थे कि "आपने जिन लोगों को चुना है, वे अब नेता नहीं रह गये हैं, सेवक बन गये हैं। समाज को मार्गदर्शन करने का काम वे अब नहीं कर सकते।" ...... दिमाग में विचार-चक्र आरम्भ हो गया था। इतने में सहसा विनोबाजी के एक वाक्य ने मेरा ध्यान खींच लिया, "जहाँ आप तोते को छोड़ देते हैं, वहाँ आपकी भी जंजीर टूट जाती है।" शोषण का अन्त कैसे हो सकता है, इसका इससे सुन्दर जवाब क्या हो सकता है? ...... चर्चा चल रही थी—"लोगों की सदसद्विवेकबुद्धि (Conscience) जाग्रत करने की जरूरत है। आज लड़ाई के खिलाफ जन-मन में वह भाव नहीं है, जो मार-काट के खिलाफ है। सका मतलब यह है कि अभी सदसद्विवेकबुद्धि को विकसित करना बाकी है। लड़ाई के रूप में जो सामूहिक हिंसा होती है, उसके खिलाफ लोकमत तयार करना चाहिए। मानव-समाज का निरन्तर विकास होता जा रहा है, इसलिए मानव-हृदय में युद्ध का आज जो स्थान है वह कल नष्ट होगा और फिर दुनिया में भी युद्ध के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा।"

"बावजूद इसके कि छापाखाना (Printing Press) नहीं था, तुलसी-रामायण जितनी फैली, उतनी एक भी अर्वाचीन किताब नहीं फैली, न राजाओं की सल्तनत फैली। कई सल्तनतें आयीं और गयीं, लेकिन तुलसी-रामायण की सल्तनत आज भी चल रही है।"

आज नजदीक के गाँव, टिकारडी के सब जमीनवालों ने मिलकर इतनी जमीन दान में दी कि गाँव के सब भूमिहीनों के लिए पर्याप्त हो जाय। जमीन के साथ-साथ उन लोगों ने बीज, हल आदि साधनों का भी दान दिया। भूदान के साथ जब साधनों का भी दान दिया जाता है, तो विनोबाजी उस दान को 'सालंकृत कन्यादान' कहते हैं। आज की प्रार्थना-सभा में टिकारडो वासियों का खास स्वागत हुआ। उन्हें एक जुलूस में सभा-स्थान पर लाया गया। भूदान देनेवालों में गरीबों की तादाद ही अधिक थी। जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों से ढके हुए शरीर, चिन्ता से मुरझाये हुए चेहरे; लेकिन उनकी आँखों में दातृत्व का अपार समाधान था। उनमें से एक बूढ़े थे।

बीच-बीच में वे सन्त की ओर देखते थे। उनकी आँखों में भक्तिभाव नजर आता था, कभी-कभी आनन्दाश्रु बहने लगते थे; लेकिन वे दूसरी ओर देखने लगते थे, मानो कुछ गहराई में सोच रहे ह। जीवन के इन आखिरी दिनों में आज उन्होंने एक क्रान्तिकारी निर्णय किया था। क्या इसीलिए वे अपने बीते दिनों को याद कर रहे हैं? धरती की गोद में, गेहूँ-चने के पौधों से बातें करते, खेल की हार-जीत में उनका बचपन बीता था। जवानी में हो सकता है कि उन्होंने एक छोटे-से टुकड़े के लिए अपने भाई को धोखा दिया हो या यह भी सम्भव है कि अपने छोटे भाई को अपने ही लड़के की तरह पाल-पोसकर बड़ा किया हो। हिन्दुस्तान के किसी साधारण किसान के जीवन में जो भी सुख-दुःख आते हैं वे सब वे भोग चुके हैं। और आज एक संत की पुकार पर अपने से भी गरीब भूमिहीन दूसरे भाइयों के लिए 'शबरी के बेर' अर्पण करते समय शायद वे अपने जीवन का यश-अपयश तौल रहे होंगे। सुख-दुःख दोनों का अनुभव उन्हें हो रहा होगा। जिन्दगी वही थी, लेकिन इसी एक दान से जैसे उसमें उजाला हो गया हो। जिन्दगी की इन थोड़ी-सी बची घड़ियों में ईश्वर की निकटता का अनुभव उन्हें हो रहा होगा। फिर भी वे केवल सुखी ही हों सो बात नहीं, विचारमग्न भी दिखलाई पड़ रहे थे। प्रवचन के बाद रामधुन शुरू हुई। यद्यपि उनके होंठ राम-राम जप रहे थे पर मन जैसे किसी दूसरे विचार में डूबा था। आज की घटना से शायद उनकी दृष्टि किसी चिरंतन तत्त्व की ओर गयी हो।

आज के प्रवचन में विनोबाजी ने कहा, "भारत में बोलने के बजाय मौन का ही अधिक परिणाम होता है। यहाँ पर दस हजार साल से आन्तरिक एकता की भावना भरी हुई है। चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित, हर दिल जानता है कि यह सारी सृष्टि एक ही वस्तु से भरी है।...... बापू घूमते थे, जनता उनकी भाषा समझ लेती थी। जनता विद्वानों के शब्द नहीं, हृदय की भाषा समझ लेती है।" ......"मुझे अब ज्यादा बोलना नहीं पड़ेगा। मेरी भावना लोगों के हृदय तक पहुँच गयी है।" मानो

अब शब्दों का कोई काम नहीं रहा है, अब तो शब्दातीत का काम आरम्भ हुआ है। अव्यक्त की शक्ति हर दिल को स्पर्श कर रही थी, जगा रही थी और प्रेरित कर रही थी। और उसका व्यक्त स्वरूप था, श्रद्धाभाव से यज्ञ में अर्पण की असंख्य आहुतियाँ! ...... लोग भूदान कैसे देते हैं? शिक्षित मन को सतानेवाली इस जटिल समस्या का उत्तर ढूँढ़ना हो तो भारत की हजारों साल की प्राचीन सभ्यता, तत्वज्ञान, चिन्तन आदि का अध्ययन करना होगा। भूदान देनेवाला गरीब किसान आज दुनिया के सभी मानस-शास्त्रियों के लिए, राजनीतिज्ञों के लिए और अर्थशास्त्रज्ञों के लिए एक पहेली बन गया है।

बापू की राह पर

जौनपुर

२३. ४. १९५२

चलते समय रास्ते में विनोबाजी को देने के लिए लोग कई प्रकार की चीजें लाते हैं। विनोबाजी को हम 'न खानेवाले भगवान्' कहते हैं। उन्हें तो बस मिट्टी (भूदान) ही चाहिए। इसीलिए लोग जब बढ़िया दूध, दही, मिठाई, फल आदि चीजें लाते हैं, तो वे सारी चीजें हम जैसे 'खानेवाले भगवान्' के हिस्से में आ जाती हैं। लेकिन 'खानेवाले भगवानों' को 'न खानेवाले भगवान्' के साथ तेज रफ्तार से चलना पड़ता है; इसलिए अक्सर हमें उन आकर्षक चीजों की ओर सिर्फ नजर डालते हुए ही आगे बढ़ना पड़ता है। आज विनोबाजी ने रास्ते में एक दफा लोगों को मिठाई बाँटना आरम्भ किया यह कहते हुए कि "जो मिठाई खायेगा उसे जमीन देनी होगी!" ...... लोग भी इसे सहर्ष स्वीकार कर लेते थे।

हमने सुना था कि जौनपुर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (R. S. S.) को माननेवाले काफी लोग हैं। आज विनोबाजी के स्वागत के लिए उन्होंने जगह-जगह द्वार बनाये थे और हरएक द्वार के पास वे लोग आरती, फूलमाला आदि लेकर खड़े थे। यहाँ पर हर राजनैतिक पक्ष के लोगों ने स्वागत का

अलग-अलग इन्तजाम किया था। इसलिए बीच-बीच में '**भारतीय संस्कृति की जय हो**', '**क्रान्ति की जय हो**', '**महात्मा गांधी की जय**' आदि नारे सुनाई पड़ते थे। लेकिन साथ-साथ '**भूदान यज्ञ सफल करेंगे**' का नारा भी सुनाई देता था। बीच-बीच में सफेद, काली, लाल टोपियाँ और कुछ बिना टोपीवाले दीख पड़ते थे।

जौनपुर के राजा आज सुबह विनोबाजी से मिलने आये थे। उन्होंने दो हजार एकड़ का दान अत्यन्त श्रद्धापूर्वक अर्पण किया। राजा साहब उत्तर प्रदेश के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रमुख हैं। उस संस्था ने उत्तर प्रदेश के अपने सारे कार्यकर्ताओं को विनोबाजी के कार्य में सहायता देन का आदेश दिया है। विनोबाजी चाहते हैं कि भिन्न-भिन्न पक्षवाले सब भूदान के काम में जुट जायँ। हम देख रहे हैं कि चुनाव के समय जो एक-दूसरे को अपना शत्रु मानते थे, वे सारे आज एक साथ भूदान का काम कर रहे हैं। यह घटना बहुत ही आशाजनक प्रतीत हुई। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद गांधीजी गये और देश में विचारों की उलझनें पैदा हुईं, किसीको भी ठीक रास्ता सूझ नहीं पड़ रहा था। स्वराज्य के पहले हमने जो स्वप्न देखे थे, उनको नष्ट-भ्रष्ट होते देखकर विफलता, निराशा और कटुता की भावनाएँ पैदा हो रही थीं। जहाँ देखो वहाँ असंतोष, असमाधान दिखाई पड़ रहा था। लेकिन उससे छुटकारा पाने का कोई तरीका नजर नहीं आ रहा था, जिसके कारण अगतिकता पैदा हुई थी। लगता था जैसे हम किसी प्रवाह में बह रहे हैं। उससे बाहर निकलना चाहते हुए भी नहीं निकल पा रहे हैं। इन सब आघात-प्रत्याघातों के कारण खासकर युवा-मन दयनीय हो गया था। लेकिन विनोबाजी के साथ चार-छह दिन रहकर लगता था मानो सारी निराशा, अगतिकता दूर भाग गयी हो, जीवन में एक नया प्रकाश मिल रहा हो। हमारे यात्री-दल में जो युवक कार्यकर्ता थे, उन सबको एक नया संजीवन प्राप्त हुआ-सा लगता था। गुजरात के नारायण देसाई (स्व० महादेव भाई देसाई के पुत्र), राजेन्द्र भाई, मलाबार के जनार्दन पिल्ले, तमिलनाड के व्यंकटेशय्या, आन्ध्र की विद्या बहन, उत्तर प्रदेश के हरिमोहन भाई, शिवदास

त्रिपाठी आदि सबको भूदान-यज्ञ से एक नयी प्रेरणा, नयी स्फूर्ति प्राप्त हुई थी। न इनके पास संख्या का बल था, न ज्ञान और न अनुभव। और इस विशाल देश की समस्याओं को हल करने की आकांक्षा रखना पागलपन माना जा सकता था। फिर भी वे पागल थे। भूदान के जरिये होनेवाली क्रान्ति के दर्शन से वे दीवाने बने थे। वे भूल गये थे कि वे छोटे हैं—शक्तिहीन हैं। अग्नि की एक छोटी-सी चिनगारी भी कपास के गंज (ढेर) को जला सकती है। विनोबाजी ने अपने **'स्थितप्रज्ञ-दर्शन'** में प्रज्ञा को अग्नि की चिनगारी ही कहा है। नव-विचार के कारण हम सबके दिल में एक चिनगारी पैदा हुई थी और हमारा विश्वास था कि उस चिनगारी में वह ताकत है जो दुनिया के सारे असत्य, अन्याय के ढेर को जला सकती है। भविष्य के कार्यक्रम के बारे में हम योजना कर रहे थे। मुझे वे दिन याद आये जब होस्टल के कमरों में बैठकर हम भारत को स्वतन्त्र बनाने की योजना बड़ी गम्भीरता से बनाया करते थे। लेकिन स्वराज आया और लगता था कि बहुत जल्दी ही आया और हमें शहीद बनने का मौका नहीं मिला। लेकिन अब हमारे लिए पराक्रम का एक नया क्षेत्र खुल गया है। अब क्षणमात्र के लिए चमकनेवाली बिजली नहीं बनना है, बल्कि तिल-तिल जलनेवाला दीप बनना है।......

नारायण और राजेन्द्र भाई गुजरात के दूर जंगलों में आदिवासियों के बीच रचनात्मक काम कर रहे थे। विद्या बहन पाँच साल आंध्र की कस्तूरबा ट्रस्ट के एजेंट के नाते गाँव-गाँव में घूमी थीं। ये सब उच्च-विद्याविभूषित थे, इसलिए जीवन के दूसरे मोहपूर्ण रास्ते उनके लिए खुले थे। फिर भी उन्होंने खुशी-खुशी तपस्या का मार्ग अपनाया। इन सबमें मैं ही एक ऐसी थी जो न सिर्फ जन्म से, बल्कि कर्म से भी अधिक 'बुर्जुआ' थी।

आज हम सबको राजा साहब के यहाँ भोजन करने जाना था। विनोबा-जी तो सिर्फ दूध-दही ही खाते हैं और वह भी बच्चों के समान तीन-तीन घण्टे पर तोला-माशा नाप-तौलकर खाते हैं। इसलिए भोजन के विषय में

तो हम लोगों को ही हर जगह उनका प्रतिनिधित्व करना पड़ता है। आज हम महल में भोजन करने जा रहे थे; लेकिन किसी की भी पोशाक वहाँ जाने लायक न थी। फकीर के साथियों का महल में अत्यन्त नम्रता-पूर्वक स्वागत हुआ। यह युग बदलने की निशानी थी। सत्ता और सम्पत्ति को जीवन का सर्वोत्तम मूल्य माननेवाला आज का समाज नष्ट होने-वाला है और सच्चा जीवन-मूल्य प्रस्थापित होनेवाला है, इसीका वह श्रीगणेश था।

शाम की प्रार्थना-सभा में विशाल जनसमूह एक घण्टे तक मंत्रमुग्ध होकर ऋषि-वाणी सुनता रहा। लगता था जैसे भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए एक ऋषि पैदा हुआ है। भाषणारम्भ ही दिल खींचनेवाला था। विनोबाजी बोलने लगे, "हमें अभी-अभी स्वराज्य प्राप्त हुआ है, इस-लिए एक तरफ से हम शिशु हैं तो दूसरी तरफ से हम दस हजार साल के पुराने अनुभवी हैं। ...... अनेक परिवर्तनों के बावजूद भी भारत की परम्परा अटूट रही है, जो हमें प्राचीनकाल से जोड़ देती है। असंख्य भेदाभेदों के होते हुए भी यहाँ आन्तरिक एकता का दर्शन होता है। बावजूद इसके कि उस समय आमदरफ्त के कोई साधन नहीं थे, ऋषियों ने सारे भारत को एक बनाया। लेकिन योरप अभी तक एक नहीं हो पाया है। जिन बातों में हम अनुभवी हैं, उनमें अपनी विशेषताओं के साथ हमें आगे बढ़ना है। यहाँ पर समाज-शास्त्र के बहुत प्रयोग हुए हैं। इसमें योरप हमसे पिछड़ा हुआ है। इसीलिए प्राचीन समाज-शास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर, नम्र भाव से पश्चिम का अर्वाचीन विज्ञान लेकर हमें नयी समाज-रचना करनी है। ...... हमारी जो चातुर्वर्ण्य की कल्पना है, वह स्पर्धा-रहित समाज-रचना की कल्पना है। यद्यपि आज हम उसका विकृत रूप देख रहे हैं, फिर भी उसकी मूल कल्पना हमें लेनी चाहिए। उस रचना में एक वर्ण विद्यादान करनेवाला था, जो अपरिग्रही था। ब्राह्मणों ने जब से अपरिग्रह छोड़ा तब से उनका पतन हो गया। जहाँ विद्वान पैसे के पीछे लग जाते हैं, वहाँ वे समाज के रक्षक न रहकर शोषक बन जाते हैं।

क्षत्रियों को ब्रह्मचर्याश्रम में गुरु के पास जाकर आम लोगों के समान रहना पड़ता था। गुरु की सेवा करनी पड़ती थी। फिर कुछ दिनों तक राजा के नाते प्रजा की सेवा करने के बाद फिर वानप्रस्थाश्रम में जंगल जाना पड़ता था। हर कोई अपना-अपना काम करता था और सबमें सहकार्य था। स्पर्धारहित रचना के लिए समान वेतन जरूरी है। अगर समान वेतन न हो तो वह वर्णव्यवस्था ही नहीं रह सकती, वर्गव्यवस्था बन जाती है। वर्गनाश का मतलब है, सबको समान वेतन, और वर्गहीन समाज का मतलब है, वर्णव्यवस्था। ...... वर्णव्यवस्था की मूल कल्पना में उच्चता या नीचता का भाव नहीं है। उसी भाव से आज वर्णव्यवस्था दूषित हो गयी है। सब समान हैं और हर कोई अपना-अपना काम निष्काम भाव से करे तो मोक्ष प्राप्त हो सकता है। यह विचार उस रचना का मूलाधार है। उसी तरह अपने गाँव में पैदा हुई चीजें ही इस्तेमाल करना भी उस व्यवस्था का एक मूलभूत सिद्धान्त है। ...... हम चाहते हैं कि आज की बिगड़ी हुई समाज-रचना को खतम करके, वर्णव्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर एक नयी समाज-रचना की जाय। ...... भूदान-यज्ञ तो उसका आरम्भमात्र है। जमीन का मसला दुनिया में सर्वत्र मौजूद है। दूसरे देशों ने कत्ल और कानून के तरीके से उसे हल करने की कोशिश भी की है; लेकिन वे तरीके हमारी सभ्यता के खिलाफ हैं। इसलिए हम चाहते हैं कि करुणा के रास्ते से, जो हमारी सभ्यता के अनुकूल है, यह मसला हल हो।"

यह कहकर विनोबाजी ने आखिर में भारत के सभी भिन्न-भिन्न पक्षों को भूदान के इस कल्याणकारी काम में जुट जाने को जो आवाहन किया, वह इतना कलापूर्ण था कि जीवन-कला के इस महान् कलाकार को निर्माण करनेवाले बापू की स्मृति से मेरा दिल भर आया। विनोबाजी के हर शब्द के, कृति के पीछे उनकी प्रेरणा है। विनोबाजी के महान् कार्य का वर्णन एक ही वाक्य में किया जा सकता है—

'वे बापू की स्मृति को जाग्रत कर रहे हैं।'

दोनों बाबा का मिलाप

गोरा बादशाहपुर
२४. ४. १९५२

'कानन' का एक गीत है, जिसमें इस दुनिया को तूफान-मेल की उपमा दी गयी है। रेलगाड़ी में नये मुसाफिर चढ़ते जाते हैं, पुराने उतरते जाते हैं। कुछ मुसाफिर एक स्टेशन ही तक सफर करते हैं, तो किसी की यात्रा लम्बी रहती है। हमारी यात्रा पर भी यही उपमा लागू होती है। कोई आता है, कोई जाता है; लेकिन विनोबाजी की यात्रा तो अविराम चलती रहती है।

अक्सर लोगों का ऐसा गलत ख्याल रहता है कि गांधीजी, विनोबाजी जैसे महापुरुषों के साथ रहना हो तो हमेशा गम्भीर चेहरा बनाकर रहना पड़ता है। गांधीजी तो विनोद को प्राणवायु ही मानते थे। विनोबाजी भी इस बारे में अपने गुरु के चेले हैं। उनकी गम्भीर मुद्रा, लम्बी दाढ़ी, प्रखर तेजस्वी नेत्र देखकर शायद ही कोई यह ख्याल रखने की हिम्मत करेगा कि वे कभी हँसते या हँसाते होंगे। लेकिन कल्पना-जगत् और वास्तविक जगत् में अंतर है। इसीलिए तो जीवन में मजा आता है। इस लम्बी दाढ़ीवाले संत के मुँह से विनोदयुक्त वाणी सुनने का मजा कुछ और ही रहता है।

हमारे यात्री-दल के कर्णधार, करण भाई, जो अब उत्तर प्रदेशीय भूदान समिति के संयोजक हैं, अपनी योजकता के लिए सबके प्रशंसापात्र तो बने ही हैं; लेकिन हम उनकी जो कीमत करते हैं वह दूसरे ही कारण से। हमारे शरीर चलने के श्रम से और काम से थके हुए रहते ही हैं। ऐसे समय पर हमेशा 'हँसो, नाचो, खेलो' का संदेश देकर सबका श्रम-परिहार करनेवाले करण भाई का हमारे यात्री-दल में अद्वितीय स्थान है। वे एम० एल० ए० थे; लेकिन उन्हें भूदान जैसे क्रान्ति के काम के मुकाबले में राजनीति बिल्कुल ही फीकी मालूम हुई; इसलिए उन्होंने उसका त्याग कर दिया। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले का क्रान्तिकारी राजनैतिक जीवन स्वराज्य के बाद सत्ता की लालसा में परि-

र्वातित होते हुए देखकर राजनीति छोड़कर अपने जीवन की दिशा बदलने-वाले कई निकलेंगे। अब तो बड़े-बड़े लोग भी यह बात महसूस करन लगे हैं। फिर भी करण भाई जैसे 'बुनियादी पत्थरों' की अपनी महत्ता तो रहेगी ही।...... बाबा राघवदासजी भी 'बुनियादी पत्थर' हैं जिनके कारण भूदान की बुनियाद मजबूत होनेवाली है। बाबाजी ने अपनी साधुता के कारण उत्तर प्रदेश की जनता के हृदय में स्थान पा लिया है। लेकिन विनोबाजी तो उनकी साधुता की अपेक्षा उनकी निर्मलता और ऋजुता पर अधिक मुग्ध हैं। जब उन दोनों की बातें चलती हैं तब छोटा गौतम कहता है—"अब दोनों बाबा मिल गये हैं, फिर उन्हें दुनिया की सुध-बुध कैसे रहेगी ?"

कल का और आज का पड़ाव याने उत्तर और दक्षिण ध्रुव जैसे था। कल बड़ा शहर था। दिन भर चारों ओर लोगों की भीड़ लगी रहती थी, बड़े-बड़े लोग मिलने आते थे, चर्चाएँ चलती रहती थीं, हमारे दरवाजे के पास मोटरों की कतार लगी रहती थी और आज ठीक उसके विपरीत था—छोटा-सा गाँव, एकान्त-शान्त आश्रम। एक सुन्दर तालाब जिसके चारों ओर ऊँचे पेड़ और आश्रम की छोटी-छोटी झोपड़ियाँ, पक्षियों का कलरव और पत्तों की सरसराहट को छोड़कर वहाँ अद्‌भुत शान्ति विराजमान थी। मन चाहता था कि हम किसी वृक्ष के नीचे बैठ जायें और सामने के तालाब की शान्त प्रसन्न छबि देखें एवं कानों से पक्षियों का कलनाद तथा पत्तों का संगीत सुनें। ग्रीष्म की प्रखर गर्मी में भी मंद, शीतल हवा शरीर को स्पर्शसुख दे रही थी। ऐसे समय में जीवन के गूढ़ प्रश्नों पर चिन्तन करें या हाथ में लेखनी लेकर जो-जो विचार स्फुरित हों, उन्हें लिखें अथवा निसर्ग-सौन्दर्य का चुपचाप आनंद लूटें—यही जी होता है।

ऐसे समय में विनोबाजी का प्रकृति-प्रेम विशेष रूप से दिखाई देता है। घण्टों वे सृष्टि-सौन्दर्य का ही स्वाद लेते रहते हैं। ऐसे समय विनोबाजी वेदों के सुन्दर प्रकृति-वर्णन की ऋचाएँ बोलने लगते हैं। परन्तु हम तो संस्कृत के 'शुद्ध-बुद्ध ज्ञानी' होने के कारण समझ बैठते कि वे 'आत्मा-ब्रह्म' विषयक कुछ बोल रहे हैं।

आध्यात्मिक कर्मयोग

महिरांवां

२५. ४. १९५२

विनोबाजी के निजी सचिव दामोदरजी उत्साह और लगन के प्रतीक हैं। विनोबाजी का संदेश प्रत्येक हृदय तक पहुँचे, यही उनकी एक-मात्र चाह है। विनोबाजी का हरएक शब्द वे लेखनी पर उठा लेते हैं। मुझे उनके पास काम मिला। विनोबाजी के भाषणों के नोट्स लेना, टाइपिस्ट से टाइप करवा लेना, अखबारों के लिए रिपोर्ट्स तैयार करना आदि काम मुझे मिला जो बेहद पसन्द आया। इस काम के जरिये मुझे विनोबाजी के विचारों का अध्ययन करने का मौका मिला। इस समय यात्री-दल में दो टाइपिस्ट हैं—तमिलनाड का व्यंकटेशय्या और उत्तर प्रदेश का श्रीवास्तव। दोनों कार्य-विभाजन के तत्त्व को सामने रखते हुए टाइपिंग का काम करते हैं; लेकिन क्रान्तिवीर बनने में किसीसे पीछे नहीं रहते। न उन्हें आराम की परवाह है और न नींद की चिन्ता। कितना भी काम क्यों न हो, वे हँसते-हँसते कर लेते हैं। अय्या तो गवैया होने के कारण काम करते-करते बीच में गा भी लेता है। उसकी हिन्दी टाइपिंग की गति प्रशंसनीय है। दोनों उम्र में छोटे होते हुए भी इस तरह जिम्मेदारी से काम करते हैं कि बड़े-बड़े उनका लोहा मानेंगे।

व्हिन्सेन्ट शीन की गांधीजी के जीवन पर लिखी हुई 'Lead Kindly-Light' किताब मुझे बहुत ही पसंद आयी थी और मैं चाहती थी कि विनोबाजी भी उसे पढ़ें। उन्हें वह किताब देते समय मेरे मन में डर था। लेकिन उन्होंने वह किताब न सिर्फ पढ़ी; बल्कि अपने 'सेवक' मासिक के लिए उस पर एक बहुत अच्छा अभिप्राय भी लिख दिया। उन्हें वह किताब अच्छी लगी; यह बात मुझे भी खुश करनेवाली थी। उन्होंने उस किताब के बारे में लिखा :

"गांधीजी के जीवन पर एक अमरीकन भाई की लिखी हुई उड़ती नजर डालनेवाली एक पुस्तक मेरे देखने में आयी। नागपुर के श्री पु० य०

देशपाण्डे तथा उनकी कन्या निर्मला जो आजकल मेरे साथ घूम रही है, इन दोनों की तरफ से मिली हुई वह भेंट थी, इसलिए उसको पढ़ना ही पड़ा।......अमरीकन स्वभावानुसार सत्य के साथ कुछ बाहरी बातों की मिलावट भी इसमें है। फिर भी वह किताब मुझे बहुत अच्छी लगी। उसका कारण यही है कि लेखक ने गांधीजी के जीवन का भारतीय विचारों के साथ समरस होकर अचूक दर्शन किया है। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा को 'सत्य-शोधन' कहा है और इस लेखक ने उनके जीवन को 'कर्मयोग का मार्ग' कहा है। उसके विषय-प्रवेशक अध्याय में गीता का सारा रहस्य उँड़ेल देनेवाला एक अध्याय रख दिया है। उसका नाम है—"कौन-सा युद्ध?" अन्त में गीता का संक्षेप में ही विवरण देनेवाला एक परिशिष्ट जोड़ा है जिसका नाम है—'गीता और गांधीगीता'। इस प्रकार लेखक ने सारी पुस्तक गीतामय बना दी है। लेखक कहता है कि गीता में कहे हुए आध्यात्मिक कर्मयोग का उससे (गांधीजी) बढ़कर स्पष्ट उदाहरण इतिहास में अन्यत्र नहीं है।......आजकल कर्मयोग शब्द का प्रयोग बहुत ही ढिलाई से किया जाता है, लेकिन अपना सारा जीवन विश्व की सेवा में लगा देना, अहिंसा, सत्य आदि सिद्धान्तों का कट्टरतापूर्वक पालन करना, अहंकार और आसक्ति का जरा भी स्पर्श न होने देना, निरन्तर आत्म-शोधन करना, जीवन की प्रत्येक क्रिया ईश्वर से संलग्न करना, इन सबके एकत्रीकरण के बिना गीता के अनुसार कर्मयोग सम्भव नहीं। ...... गीतानुसारी आध्यात्मिक कर्मयोग के उदाहरण इने-गिने हैं। ऐसे उदाहरणों की प्रत्यक्ष प्रगति जो हमने (गांधीजी के रूप में) पायी है, वह हमारा महान् भाग्य है। इस उदाहरण का मनन करें और उसे अपने जीवन में उतारें।"

दामोदरदासजी की लड़की मृदुला और स्व० जमनालाल जी बजाज का नाती गौतम, ये दोनों बिल्कुल बच्चे हैं। लेकिन चलने में वे हम सबके गुरु बन सकते हैं। विनोबाजी के आदेशानुसार आजकल वे दोनों अपनी सारी चीजें दो-तीन थैलियों में भरकर थैलियाँ लेकर १५ मील चलते हैं।

'एकला चलो'

शाहगंज
२६. ४. १९५२

पिछले चार-पाँच दिनों के आराम के बाद आज मैंने चलना आरम्भ किया। नित्यक्रम के अनुसार तीन बजे उठकर चार बजे चलना शुरू हुआ। विनोबाजी के पीछे-पीछे जाते हुए अनुपम आनन्द हो रहा था। आज का रास्ता खेतों में से होकर गुजरनेवाला और काँटों से भरा था। विनोबाजी के दोनों ओर मृदु और गौतम लालटेन लिये चल रहे थे। बस, वही प्रकाश था बाकी चारों ओर घनघोर अन्धकार छाया हुआ था। विनोबाजी की गति से चलने पर ही प्रकाश मिलना सम्भव था, वरना अँधेरे में कहीं गिर जाने की ही अधिक सम्भावना थी। यदि कोई कवि मौजूद होता तो उस पर एकाध सुन्दर कविता लिख डालता और तत्त्वज्ञानी होता तो 'विनोबा की गति', 'प्रकाश', 'अन्धकार में कहीं गिर जाना' आदि पर प्रबन्ध लिख डालता। लेकिन हम न कवि थे, न तत्त्वज्ञानी। इसलिए हम केवल गिरने के डर से और काँटों से बचने की दृष्टि से विनोबाजी की गति से चलने की कोशिश कर रहे थे।

पौ फटते ही रास्ते में एक कमल से भरा तालाब मिला जिसमे सफेद कमलों की बिछायत सजी थी। सूर्योदय हो रहा था। सूर्य की किरणें कमल की पँखुड़ियों को जगा रही थीं। इच्छा होती थी कि दौड़ जायें और कमल तोड़ लायें। यह बात तो उसी प्रकार हुई जैसे कल्पवृक्ष के नीचे बठते ही इच्छा पूर्ण हो जाती है। विनोबाजी को अर्पण करने के लिए सुन्दर कमल के फूल भेंटरूप में कितने ही ग्रामीण लाये, परन्तु विनोबाजी दूर निकल गये थे, इसलिए उन्होंने हमें ही उनका प्रतिनिधि समझकर फूल दे दिये ताकि वे फूल विनोबाजी तक पहुँच जायें।

आजकल हमारे यात्री-दल में रा० स्व० संघ के कुछ कार्यकर्ता भी रहते हैं। आज रास्ते में उनमें से एक ने विनोबाजी से हिन्दुत्व और राष्ट्रीयता पर एक सवाल पूछा और फिर विनोबाजी की वाक्-सलिला बहने

लगी, "हमें सब धर्मों की अच्छी-अच्छी बातें लेकर उनका समन्वय करना होगा। सबमें जो समानता नजर आयेगी उसको अधिक महत्त्व देना होगा। संस्कृति के सत्य, अहिंसा, त्याग आदि मूल तत्त्व हैं। सब धर्मों में हम यही मूल तत्त्व पाते हैं। सिर्फ उपासना के भिन्न-भिन्न तरीके होते हैं, जिन्हें मंजूर करना होगा।"

एक भाई ने कहा—"आप कोई संगठन क्यों नहीं खड़ा करते?"

विनोबा—"संगठन का बन्धन मुझे नहीं चाहिए। इस प्रकार के बंधन कभी-कभी मार्गभ्रष्ट कर देते हैं। मुहम्मद पैगम्बर ने दुनिया को शान्ति और मानवता का संदेश दिया। उस समय उनके अनुयायियों की तादाद कम थी। उस समय वह कहता था, "खुद मरो लेकिन मारो मत।" उसको बहुत तकलीफें सहनी पड़ीं जिसके कारण उसे मक्का छोड़कर भागना पड़ा। फिर उसने कहा, "भागने से तो अच्छा है कि शस्त्रों से अपनी रक्षा की जाय।" इस विचार को मंजूर करते हुए उसने अनजाने में ही शस्त्र को स्वीकृति दे दी। उस समय उसकी सेना को ऐसा आदेश था कि लड़ाई के समय भी नमाज पढ़ने के वक्त लड़ाई बन्द करके नमाज पढ़ी जाय। लेकिन इससे दुश्मन को फायदा हुआ और उसकी सेना को बहुत बड़ा नुकसान हुआ। इसलिए फिर उसने अपनी सेना के दो हिस्से किये। एक हिस्सा लड़ता रहता था और दूसरा नमाज के वक्त नमाज पढ़ता था। इस तरह हिंसा को प्रवेश मिल गया। रक्षा (defence) के नाम पर शस्त्र आया कि दूसरों पर हमला करने से ही अच्छी रक्षा हो सकती है (Offence is the best type of defence.)—ऐसा कहा जाता है। फिर किसे रक्षा (Defence) कहा जाय, किसे आक्रमण (Offence) कहा जाय, यह सवाल पैदा होता है। इसलिए एक दफा तलवार हाथ में ली कि फिर उसका प्रभाव जमने लग जाता है। जिस धर्म के भगवान् रहीम और रहमान (अत्यन्त दयालु) हैं, जिसका नाम इस्लाम (शान्ति) है, जिसके झण्डे पर चन्द्रमा और सितारे हैं—याने सूर्य जैसी प्रखर वस्तु नहीं बल्कि चन्द्रमा जैसी सौम्य-शीतल वस्तु है; उस इस्लाम धर्म के प्रसार में कहीं-कहीं तलवार का भी प्रयोग हुआ। अर्थात् तेरह सौ साल पहले

पैगम्बर यह नहीं सोच सकता था कि हिंसा को प्रवेश देने से आगे चलकर क्या-क्या होगा। लेकिन हमें अब उनके अनुभवों से कुछ सीखना चाहिए। मुमकिन है कि अगर मैं पैगम्बर के जमाने में पैदा होता तो उनसे भी अधिक भारी गलतियाँ करता। इसलिए आज हम यह नहीं कह सकते हैं कि पैगम्बर ने हिंसा को मंजूर करने में गलती की। लेकिन अब उनका अनुभव हमारे सामने है। इसलिए हमें हिंसा को सर्वथा त्याज्य समझना चाहिए। ...... संगठन के बारे में मैंने कई दफा बापू से भी बातें की थीं। उन्हें मेरा विचार जँच गया और उन्होंने मुझे सब संस्थाओं से मुक्त किया। आज मैं दुनिया की किसी भी संस्था का सदस्य नहीं हूँ। मैं बिल्कुल मुक्त हूँ। ...... 'भागने से हिंसा बेहतर है' इस किस्म के विचारों को विकृत रूप मिल सकता है। ...... कइयों को लगता है कि बिना संगठन के काम कैसे होगा? लेकिन मेरे विचार इस बारे में बिल्कुल सुलझे हुए हैं। मैं हमेशा इन्सान से मिलता हूँ, किसी संस्था के प्रतिनिधि से नहीं मिलता। मैं प्रत्येक को इन्सान के नाते ही पहचानता हूँ। इन्सान के नाते हर कोई भूदान का काम कर सकता है।"

"संतों के उद्देश्य बहुत ऊँचे होते हैं। लेकिन उन उद्देश्यों को वास्तविक जगत् में लाने के लिए कभी-कभी उनको समझौता (Compromise) करना पड़ता है, जिससे वे कुछ असफल से दिखाई देते हैं। लेकिन उनकी वह असफलता भी दुनिया के लिए बड़ी मूल्यवान् साबित होती है। उस असफलता में से ही दुनिया के कल्याण का मार्ग निकलता है। साधारण आदर्श को सामने रखकर सफलता प्राप्त करने से बेहतर है कि ऊँचे आदर्श सामने रखकर असफल हों।"

"आज इस बात की सख्त जरूरत है कि हिन्दु और इस्लाम दोनों धर्मों का गहराई के साथ अध्ययन करके दोनों का पथ-प्रदर्शन करनेवाला कोई निकले। मैं नहीं जानता कि भगवान् यह काम किसके जरिये करवाना चाहता है। लेकिन मेरा विश्वास है कि यह काम होगा जरूर।"

रास्ते में एक गाँव आया जहाँ की जनता ने स्वागत की जोरदार तैयारी की थी। फूलमाला, आरती आदि सब साधनों से सुसज्जित जनता

दर्शन के लिए खड़ी थी। फूलों से और पत्तों से शोभित सुन्दर मंच तैयार किया गया था। विनोबाजी को रुकना पड़ा और दो-चार शब्द बोलना ही पड़ा। लेकिन मालाओं के साथ-साथ भूदान भी काफी मिला, इसलिए रुकना सार्थक हुआ।

पड़ाव नजदीक आ रहा था, लेकिन मेरी सारी ताकत खतम हुई जा रही थी। एक कदम भी आगे बढ़ना मुश्किल हो रहा था। इतने में गाँव के लोग राम-नाम गाते हुए हमारी ओर आते नजर आये जिससे मुझमें नयी ताकत पैदा हुई। व्यंकटेशय्या गाने लगा—**'भूमि-दान-यज्ञ हम सफल बनायेंगे'**—हम सब उसके साथ गाने लगे। रास्ते के दोनों ओर सैकड़ों लोग खड़े थे, जयजयकार कर रहे थे। फूलों की वर्षा हो रही थी। वह सारा दृश्य इतना आकर्षक था कि **'विश्व का कलह मिटे, फिर सदा को शान्ति हो'**—यह गीत-पंक्ति हम न सिर्फ गा रहे थे बल्कि हमारे दिलों में उसी श्रद्धा की ज्योति जाग गयी थी। सैकड़ों कंठों से एक ही आवाज निकली—**'महात्मा गांधी की जय।'** मेरे दिल में भी वही स्वर गूँजा। भारत में अहिंसा का एक नया प्रयोग आरम्भ हुआ था। मानव के हृदय में छिपी हुई सद्प्रवृत्तियों को जगाकर, पुरानी दुनिया के पुराने जीवन-मूल्यों को नष्ट करते हुए नयी दुनिया के निर्माण के लिए नये जीवन-मूल्य स्थापित करने का कार्य आरम्भ हुआ था। गांधी का शिष्य पथ-प्रदर्शन कर रहा था और गांधी की जनता उसके साथ थी। परमाणु-युद्ध के भय से भयभीत हुए इस दुनिया के श्रद्धाहीन मानवों को यह घटना कितनी आशादायी प्रतीत होगी! निराशा के भयानक अन्धकार को नष्ट करने के लिए आशा का छोटा-सा नन्दादीप भी काफी है। मानो भारतीय जनता की मूक वाणी दुनिया से यह सब कहना चाहती थी। लेकिन उसने चार ही शब्दों द्वारा सब कुछ कह डाला—**'महात्मा गांधी की जय।'**

पड़ाव पर पहुँचते ही स्वागत के लिए उपस्थित जन-समुदाय के सामने विनोबाजी अक्सर चन्द शब्द बोल देते हैं। वैसे प्रमुख प्रवचन तो शाम की प्रार्थना में होता है, लेकिन सुबह के दो-चार वाक्यों में ही वे कभी-कभी

बहुत कुछ कह डालते हैं। आज उन्होंने कहा, "विचार शक्तिमान् होता है। पुरानी समाज-रचना का संहार और नव-निर्माण, दोनों करने की ताकत विचार में ही है। दुनिया में विचार से बढ़कर शक्तिशाली वस्तु दूसरी कोई नहीं है। मैं आपको एक विचार दे रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप उसे ग्रहण करें। विचार के ही जरिये मैं हर हृदय में प्रवेश पाना चाहता हूँ।"

आज शाम की प्रार्थना-सभा में विनोबाजी का जो भाषण हुआ, वह संत का प्रवचन नहीं था, कलाकार की कलाकृति थी। नये जीवन का एक सुन्दर कल्पना-चित्र था। "हम ग्रामों का नव-निर्माण करना चाहते हैं। इस तरह कि हमारे ग्राम न सिर्फ नव-जीवन का आदर्श उपस्थित करेंगे; बल्कि संत्रस्त, सम्मोहित और संभ्रमित जगत् को शान्ति का पथ दिखायेंगे।" विनोबाजी ने यह सारा इतने विश्वास से कहा कि क्षणमात्र के लिए आभास हुआ जैसे उस कल्पना-चित्र ने साकार रूप धारण किया हो।...... "और इसका अधिष्ठान है, भूदान-यज्ञ। **'सबै भूमि गोपाल की'** इस तत्त्व के अनुसार गाँव की जमीन का फिर से बँटवारा होगा, जमीन के साथ-साथ बुद्धि का भी बँटवारा होगा जिससे हर कोई अपनी बुद्धि का स्वतन्त्र रूप से विकास कर सकेगा। गाँव का सारा कारोबार गाँव-पंचायत करेगी जिससे हरएक को राज सँभालने का शिक्षण और मौका मिलेगा। सबको काम मिलेगा, सबको ज्ञान मिलेगा। हर रोज शाम को सारे गाँववाले प्रार्थना-मंदिर में इकट्ठे होंगे जहाँ श्रवण होगा, ज्ञान-चर्चा होगी। कभी-कभी संगीत, नृत्य आदि का कार्यक्रम भी होगा। हमारे गाँव कला, संस्कृति और सच्चे धर्म के केन्द्र बन जायेंगे। पाँच लाख गाँवों में से पाँचों लाख गाँव ऐसे बनेंगे कि सुन्दरता, कला और धर्म को देखने के लिए बाहर से लोग यहाँ आयेंगे।....... सच्चा स्वराज्य, ग्रामराज्य या रामराज्य स्थापित होगा।......क्या यह केवल स्वप्न है? हमने आज तक ऐसे कई स्वप्न देखे थे। गांधीजी का आदर्श भारत, गुरुदेव की कविता का भारत निर्माण करने का स्वप्न कइयों ने देखा होगा। लेकिन विनोबा का स्वप्न केवल कल्पना-चित्र नहीं है। कर्मतूलिका और

विश्वानुभूति के पटल इन दोनों के आधार पर उनका यह चित्र सजीव होगा। "इसीलिए तो मैं पैदल घूमता हूँ। आपको एक विचार दे रहा हूँ। यदि विचार आपको जँच जाय तो आप उसके मुताबिक अपने जीवन में परिवर्तन लायेंगे। इस तरह अनेक व्यक्तियों के जीवन का परिवर्तन होते-होते सारे समाज में परिवर्तन हो जायगा। हृदय-परिवर्तन, जीवन-परिवर्तन और समाज-परिवर्तन, यह क्रान्ति की त्रिविध प्रक्रिया है। क्रान्ति पहले दिल में होती है फिर समाज में।" जैसे ज्योति से ज्योति जागती है उसी प्रकार जगा हुआ हृदय दूसरे हृदयों को उठा देता है। क्रान्ति का रास्ता क्रांतदर्शी कवि ने पहले ही दिखा दिया है। अपने हृदय को जलाकर अकेले ही आगे बढ़ते चलो।

दूसरा भाग

फूलों की राह

सुरहुरपुर (फैजाबाद)

२७. ४. १९५२

झुटपुटे के प्रशान्त वातावरण में, लालटेन के धुँधले प्रकाश में तेजी से बढ़ते हुए विनोबा को देखकर **'स्थितधी बोलता कैसे, बैठता और डोलता ?'** इस प्रश्न का उत्तर सहज मिल जाता है। चाहे भूदान अधिक मिले या कम मिले, स्वागत के लिए चार व्यक्ति आयें या चार हजार आयें, कोई स्तुति करे या निन्दा, उन पर किसी भी चीज का असर होता दिखाई नहीं देता। उनका निष्काम कर्मयोग तो अविराम चलता रहता है। लगता है, वे सुख-दुःख से परे अनासक्त अवस्था में सदा विचरते हैं।

आज के पड़ाव का गाँव आकार से तो छोटा ही था, लेकिन भक्ति में बड़ा था। गाँव में प्रवेश करते ही देखा—सारे रास्ते साफ-सुथरे, दूकान, घर आदि सब स्वच्छ और सुन्दर, जगह-जगह द्वार, अल्पना से सजायी हुई भूमि और दीवारों पर मोटे अक्षरों में लिखे हुए संत-वचन। विनोबाजी आगे निकल चुके थे, मैं पिछड़ गयी थी। उन पर की गयी पुष्पवृष्टि से सारा रास्ता पुष्पाच्छादित बन गया था। पीछे से आने के कारण मेरे लिए फूलों का मार्ग बन गया था।

फैजाबाद जिले में गांधी-आश्रम का रचनात्मक कार्य दिखाई देता है। जगह-जगह उनके आश्रम और खादी-उत्पादन के केन्द्र हैं। गांधी-आश्रम के कारण यहाँ पर जो जन-जाग्रति हुई है उसका अनुभव हम प्रतिदिन ले रहे हैं। गांधी-आश्रम के कार्यकर्ता अपनी-अपनी रुचि के अनुसार राजनीति में स्वतन्त्र रूप से भाग ले सकते हैं। इस संस्था के प्रमुख, आचार्य कृपालानीजी, एक राजनैतिक पक्ष के नेता हैं और उनके दाहिने हाथ श्री विचित्र भाई कांग्रेस-सरकार में एक मन्त्री हैं।

पुनर्जन्म और विज्ञान

अकबरपुर (फैजाबाद)

२८. ४. १९५२

रास्ते में लोग विनोबाजी से कई प्रकार के सवाल पूछते हैं। आज मैंने डरते-डरते कई सवाल पूछ ही लिये। विनोबाजी का प्रकाण्ड पाण्डित्य और मेरा गहरा अज्ञान याने प्रकाश और अन्धकार के जैसा ही है। इसीलिए आज तक मैंने कुछ पूछने की हिम्मत नहीं की थी। लेकिन मैंने जब देखा कि उनसे—"आप जनेऊ क्यों नहीं पहनते ?", "आपकी दाढ़ी सफेद और बाल काले क्यों हैं ?" जैसे ऊटपटाँग सवाल भी पूछे जाते हैं, तब मैंने भी अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिए कुछ सवाल पूछे।

प्रश्न—"हिन्दु-धर्म के पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्तों में केवल नियतिवाद (Determinism) है या उसमें स्वेच्छा (Free-will) के लिए भी कुछ गुंजाइश है ?"

विनोबा—"यदि किसी को व्यापार करने के लिए कुछ पूँजी दी जाय और उससे कहा जाय कि "अब तू चाहे जो कर सकता है" तो पूँजी को वह घटा भी सकता है और बढ़ा भी सकता है। इसमें उसको स्वतन्त्रता है या नहीं ? उतनी स्वतंत्रता हमें भी प्राप्त है। यदि बैल का जन्म मिला तो हम हाथी का काम नहीं कर सकते। लेकिन बैल के लिए जो सम्भव है, वह सब कर सकते हैं। एक दफा जेल में हमने देखा, चीनी के पास कुछ चींटियाँ इकट्ठी हो गयी थीं। मैंने विनोद में अपने साथियों से पूछा—"ये चींटियाँ स्वतन्त्र हैं या परतन्त्र ?" हो सकता है वे चींटियाँ कभी भी जेल के बाहर न निकली हों।...... मानव अपने पूर्वजन्मों की कुछ पूँजी लेकर पैदा होता है। लेकिन फिर उसके बाद उसे चाहे जो करने की स्वतन्त्रता रहती है।"

प्रश्न—"लेकिन मार्क्स कहता है कि मानव स्वतन्त्र नहीं है। पूंजीपति (Capitalists) और श्रमिक (Proletariate) दोनों अपने-अपने जाति-बोध (Class-consciousness) के मुताबिक काम करते रहते हैं।"

विनोबा—"आधुनिक शास्त्रज्ञों की यह एक अजीब बात है कि वे दो-चार घटनाएँ देखकर उन पर से अनुमान लगाकर एक ढाँचा बना लेते हैं। फिर सारी मानव-जाति का इतिहास उस ढाँचे में ढाल देते हैं। मसलन भारत जब परतंत्र था, उस समय यदि भारत का इतिहास लिखा जाता तो इस तरह लिखा जा सकता था कि "भारत वेदों के जमाने से लेकर आज तक परतंत्र ही रहा है। क्योंकि इस देश की आबहवा और मनुष्यों में ही यह दोष है जिससे कि यह देश हमेशा गुलाम रहा है।" और अब भारत स्वतन्त्र हो जाने के बाद इतिहास लिखा जाय तो इस तरह से लिखा जा सकता है कि "भारत देश वेदों के जमाने से लेकर आज तक स्वतन्त्र ही रहा है। इस देश का इतिहास इस बात का सबूत देता है कि चाहे जितनी आपत्तियाँ आयी हों, भारत हमेशा स्वतन्त्र ही रहा है। क्योंकि इस देश की आबहवा और मनुष्यों में कुछ ऐसा गुण है जिसके कारण अंग्रेज-सल्तनत जैसी भारी सल्तनत से भी लोहा लेकर यह देश स्वतन्त्र हुआ।" ...... इस प्रकार अपना एक दृष्टिकोण बना लेना और सारे इतिहास पर वह लागू करने की जो प्रवृत्ति है, वह इसमें काम करती है।...... मान लो कि १, २, ४, १२ और २४ इतने अंक सामने रक्खे हैं। अब यदि हम उसमें से १ और २ को ही देखेंगे तो हम इस प्रकार का अनुमान लगा सकेंगे कि सारी सृष्टि की रचना १, २, ३, ४ के क्रम से हुई है।...... यदि हम १, २, ४ अंकों को देखेंगे तो यह अनुमान लगा सकेंगे कि सारी सृष्टि की रचना इस प्रकार हुई है कि १, २, ४, ८ याने दुहरा हो जाता है। यदि हम १, २, ४ और १२ इतने अंकों को देखेंगे तो यह अनुमान लगा सकेंगे कि सारी सृष्टि की रचना ही इस प्रकार हुई है कि सृष्टि में दुहरा, तिहरा, चौहरा ऐसा क्रम है।...... इस तरह सान्त ज्ञान के आधार पर एक नियम (Law) बनाना और उसे अनन्त पर लागू करना, यह जो आधुनिक शास्त्रज्ञों की प्रवृत्ति है वह मूलतः सदोष है।"

प्रश्न—"क्या हम विज्ञान के आधार से पुनर्जन्म के सिद्धान्त को सही साबित कर सकते हैं?"

विनोबा—"विज्ञान मूलत: इन्द्रियगम्य है। इसलिए उसकी एक सुनिश्चित मर्यादा होती है। विज्ञान तो अत्यन्त नम्र होता है। विज्ञान यह नहीं कहता कि परमेश्वर है ही नहीं। क्योंकि इस प्रकार का निषेधात्मक वाक्य कहने के लिए भी ज्ञान चाहिए। विज्ञान तो कहता है कि "परमेश्वर हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। लेकिन हम अभी तक उसके बारे में कुछ भी नहीं जानते।"...... मनुष्य की इन्द्रियाँ भी काफी ज्ञान ग्रहण कर सकती हैं। यदि हमारे हाथ में गन्दगी लगी है और वही हाथ हम नाक के पास ले जाते हैं तो हमारी नाक उसे सह नहीं सकती और हम फौरन उस हाथ को वहाँ से हटा लेते हैं। अब विज्ञान कहता है, गन्दगी में अति सूक्ष्म जन्तु होते हैं। इसीलिए हमारी नाक उसे सहन नहीं कर सकती। इस तरह कई बातें विज्ञान को बाद में मालूम होती हैं।......विज्ञान तो इन्द्रियों की सहायता से आगे बढ़ता जाता है। चाहे जितनी बढ़िया दूरबीन क्यों न हो, आखिर देखना होगा हमें अपनी आँख से ही। कोई भी सिद्धान्त इन्द्रियों के जरिये सही हुए बगैर विज्ञान उसे नहीं मानता। लेकिन इन्द्रियों की अपेक्षा मन अधिक शक्तिशाली होता है और मन से भी शक्तिशाली है आत्मा। क्योंकि उस मन के सारे व्यापार मैं (आत्मा) जान सकता हूँ। चाहे जितना वेगवान साधन भी क्यों न हो, एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने में उसे कुछ तो समय लगेगा ही। प्रकाश-किरण की गति प्रति सेकण्ड पौने दो लाख मील है। याने चन्द्रमा से निकली हुई प्रकाश-किरणों को यहाँ आने में तीस सेकण्ड लगते हैं। लेकिन हमारा मन एक सेकण्ड से कम समय में ही यहाँ से चन्द्रमा तक पहुँच जाता है।...... अभी हम जहाँ ध्रुवतारा देख रहे हैं, क्या वह वास्तव में इस समय वहाँ पर है ? प्रकाश-किरण को ध्रुव से यहाँ तक आने में तीस साल लगते हैं। इसका मतलब यह है कि अभी हम जो ध्रुवतारा देख रहे हैं वह तीस साल पहले वहाँ पर था। हो सकता है उन्तीस साल पहले वह नष्ट भी हो चुका हो, लेकिन हम तो एक साल तक और उसे देख सकेंगे और कहेंगे कि वह नष्ट हुआ; लेकिन वह तो तीस साल पहले ही नष्ट हो चुका था।......ध्रुव तो काफी

नजदीक है। लेकिन कई सितारे ऐसे हैं जो हमसे बहुत दूर, कई 'प्रकाश-वर्ष' दूर हैं। तो, वहाँ से निकली हुई प्रकाश-किरणों को यहाँ तक आने में सैकड़ों साल लग जाते हैं। ...... इस प्रकार सृष्टि में लघुता और विशालता दोनों अनन्त हैं। तो फिर तर्क के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि मानव-जीवन का आदि-अन्त क्यों होगा ? एक दफा एक मुसलमान भाई से चर्चा चल रही थी। मैंने उससे कहा कि एक लड़का पैदा होता है और दो मिनट में ही मर जाता है। तो क्या आखिरी दिन न्याय करते समय अल्ला उसके दो मिनट के पाप-पुण्य को देखकर न्याय करेगा ? एक जीव अनन्तकाल तक अव्यक्त रहता है। फिर दो ही मिनट के लिए व्यक्त हो जाता है और फिर अनन्तकाल तक अव्यक्त रहता है। यह बात तर्कसंगत नहीं मालूम होती। मैंने सुना है कि आजकल कुछ ईसाई भी पुनर्जन्म को मानने लगे हैं। इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि जब तक विज्ञान के जरिये पुनर्जन्म का सिद्धान्त सही साबित नहीं होता है, तब तक उसे मंजूर नहीं करना चाहिए।

योगियों की बात तो अलग ही है; लेकिन सामान्य मनुष्यों के जीवन में भी ऐसे कई प्रसंग आते हैं, जिनसे कि पुनर्जन्म की बात सही मालूम होती है। मैं अपना ही एक अनुभव बता रहा हूँ। उस समय मैं पाँच साल का बच्चा था। अपनी माँ के साथ मैं नाना के घर जा रहा था। हम लोग प्लैटफार्म पर बैठे रेलगाड़ी (Train) की राह देख रहे थे। सहसा मेरी आँखों के सामने एक दृश्य उपस्थित हुआ। मैंने देखा कि एक घर है, उसका एक बड़ा दरवाजा है, फिर एक बगीचा है, दाहिनी ओर एक सीढ़ी है। मैंने तब तक कभी भी वह घर नहीं देखा था। लेकिन बाद में जब मैं नाना के घर पहुँचा तो मुझे ताज्जुब हुआ। नाना का घर ठीक वैसा ही था जैसा कि मैंने देखा था। फिर मैंने माँ से उस घटना के बारे में पूछा तो उसने कहा, "पूर्वजन्म के कुछ णानुबन्ध होंगे।" मैं अभी तक उसे भूला नहीं हूँ। ...... और यदि हम पुनर्जन्म को नहीं मानेंगे तो जीवन में कोई स्वाद ही नहीं रहेगा। मान लो, इस समय कोई साँप मुझे काटता है और मैं मर जाता हूँ तो क्या इसका मतलब यह हुआ कि मैंने आज तक जो सारा

ज्ञान प्राप्त किया वह बेकार गया ? साँप के जैसे बुद्धिशून्य और क्षुद्र प्राणी के काटने से मेरा सारा ज्ञान एक क्षण में नष्ट हो सकता हो तो फिर मेरी सारी ज्ञान-लालसा ही खतम हो जायगी। लेकिन मुझे और भी ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होती है; क्योंकि मैं पुनर्जन्म में विश्वास करता हूँ।...... मैंने देखा है कि कइयों को सिगरेट-बीड़ी पीने की इच्छा होती है। बड़े-बड़े लोगों को उसमें आनन्द महसूस होता है। लेकिन मुझे कभी भी ऐसा नहीं लगता कि जरा इन बातों का मजा चख लूँ। मेरा मन कभी इस ओर मुड़ता ही नहीं। इसका कारण यह हो सकता है कि मैंने अपने पूर्वजन्मों में कुछ ऐसे अनुभव लिये हों। मैंने कुछ ऐसे प्रयोग किये हों और उनकी व्यर्थता मुझे महसूस हुई हो। यह सब सम्भव है। इसका मतलब यह है कि हर कोई अपने पुराने जन्मों के अनुभवों की पूँजी लेकर नया जन्म लेता है।...... लेकिन भाई, विज्ञान को तो बिल्कुल पूरा प्रमाण (Full-proof) चाहिए। Full कहो या Fool कहो। सयानों के लिए तो थोड़ा-सा भी प्रमाण (Proof) काफी है। लेकिन वैज्ञानिकों के लिए और सामान्य जनों के लिए तो बिलकुल 'Fool-proof' चाहिए।" यह सुनकर हम सब खिलखिलाकर हँस पड़े।

अकबरपुर में खादी का एक बड़ा उत्पादन-केन्द्र है और आश्रम भी है। शहर में प्रवेश करते ही जनता ने अत्यन्त उत्साह से स्वागत किया। लेकिन आश्रम के द्वार पर जो स्वागत हुआ वह उससे बढ़िया था। सारा आश्रम आम्रपर्णों एवं अल्पना से सजाया हुआ था। द्वार पर खादी पहनी हुई बहनों ने विनोबाजी को तिलक लगाया और आरती उतारी। जहाँ कहीं महिलाओं को निर्भयता से विचरते देखते हैं वहाँ हम फौरन समझ लेते हैं कि नजदीक यहीं कहीं रचनात्मक काम करनेवालों का आश्रम है। प्राचीनकाल में होम का धुआँ और निर्भयता से चौकड़ी मारते हुए हिरनों को देखकर पहचान लेते थे कि नजदीक कहीं आश्रम है। लेकिन अब तो होम के धुएँ के बजाय स्वच्छता और व्यवस्थितता और हरिणों के बजाय खादीधारी युवक-युवतियाँ ही आश्रम की पहचान है।

आश्रम का वातावरण प्रशान्त और रम्य है। सुन्दर बगीचे और कल-कल बहनेवाले झरने। लीची, बेल और नीलगिरी के वृक्ष तो बड़े सुहावने मालूम होते थे। गर्मी के दिनों में बेल का शर्बत मिलने पर तबीयत खुश हो जाती है। लीची के पेड़ फलों से लदे हुए हैं; लेकिन पेड़ पर लदी हुई लीची को देखकर हममें से किसी का भी—खास कर गौतम का—समाधान कैसे हो सकता था? लेकिन लीची अभी तक पकी नहीं थी, इसलिए गौतम ने कपिल भाई से—जो गांधी आश्रम के प्रमुख कार्यकर्ताओं में से एक हैं—वादा करवा लिया कि कल कहीं से भी लाकर गौतम को लीची दी ही जायगी। कपिल भाई के लिए तो गौतम की माँग विनोबाजी की माँग से भी महत्त्व की होती है; क्योंकि वह सबसे छोटा है।

शाम की प्रार्थना में विनोबाजी ने गांधी-आश्रम के काम की प्रशंसा की।

सर्वोदय-दर्शन के सिद्धान्तों का विवरण देने के बाद आखिर में भूदान की बात कहे बगैर विनोबाजी का भाषण पूरा ही नहीं होता। उन्होंने कहा, "मैं भिक्षा माँगने नहीं आया हूँ, मैं आपको दीक्षा देने आया हूँ। ...... आप पाँच पाण्डव हैं तो आपका छठा भाई भी है जो अव्यक्त है। जिसे विवेकानन्द ने दरिद्रनारायण कहा था और गांधीजी ने जिन्दगी भर जिसकी सेवा की थी ...... वही दरिद्रनारायण आपका छठा भाई है। उसका हिस्सा उसे दीजिये।"

वेद, उपनिषद्, गीता के महासागर में तो विनोबाजी गहरे पैठकर मोती ढूँढ़कर लाये ही हैं। लेकिन कुरान, बाइबल आदि से भी उनकी जिगरजान दोस्ती है। मूल कुरान पढ़ने के लिए उन्होंने अरबी सीखी और कुरान का काफी हिस्सा उन्होंने कंठस्थ कर लिया है। अव्यक्त दरिद्रनारायण की वकालत करते समय आज उन्होंने कुरान की एक कहानी सुनायी—"एक दफा पैगम्बर अपने दो साथियों के साथ कहीं जा रहे थे। पीछे से दुश्मनों की बड़ी फौज आ रही थी। उनके साथी ने कहा कि "वह बड़ी भारी फौज है और हम तीन ही हैं तो क्या करें?" जिस पर पैगम्बर ने कहा—"हम तीन नहीं हैं, हम चार हैं और वह चौथा जो है वह दीखता नहीं है; लेकिन वह है और जबर्दस्त है।"

दुर्लभं भारते जन्म

गुसाईंगंज (फैजाबाद)

२६. ४. १९५२

रास्ते में किसीने सवाल पूछा—"सत्याग्रह-आन्दोलन या ऐसे ही दूसरे आन्दोलनों में जो निर्भयता को आवाहन किया जाता है, उसमें तो आत्म-प्रतीति का भान भी होता है, क्योंकि उसमें संघर्ष भी रहता है। लेकिन भूदान के काम में संघर्ष न होने के कारण इनके लिए कहाँ गुंजाइश है?"

विनोबा—"भूदान-यज्ञ में हम गरीब से भी दान ले रहे हैं। इसमें दान देनेवाला और लेनेवाला, दोनों हक को पहचानते हैं। इसलिए आत्म-प्रतीति का भान हो जाता है। सत्याग्रह या दूसरे आन्दोलनों में जो निर्भयता होती है, वह अभावात्मक (Negative) होती है। अंग्रेजों से लड़ने के लिए हम निर्भय बने थे। लेकिन भूदान-यज्ञ में निर्माण होने-वाली निर्भयता भावात्मक (Positive) है। देहभावना नष्ट हुए बगैर ऐक्यभावना सम्भव नहीं है और ऐक्यभावना के बगैर निर्भयता सम्भव नहीं है। ऐक्य से ही हम निर्भयता की ओर बढ़ सकते हैं।"

आज का हमारा निवास-स्थान एक कॉलेज था। दिन भर शिक्षक और विद्यार्थियों के साथ चर्चाएँ चल रही थीं।

आज के प्रवचन में विनोबाजी ने शिक्षा के बारे में एक मूलभूत सिद्धान्त बताया, "सरकार के हाथ में तालीम नहीं होनी चाहिए। उससे तो सबको एक ही प्रकार की तालीम दी जायगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के स्कूल चलावें। शिक्षण पर ऋषियों की सत्ता रहे, राजाओं की नहीं। पुरानी भाषा में कहना हो तो तालीम का काम अपरि-ग्रही, निस्पृह, ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणों के ही हाथ में होना चाहिए। तालीम में प्रयोग चलते रहने चाहिए, जिससे ताजगी रहेगी। अमरीका में ऐसे प्रयोग चलते हैं। पुराने जमाने में तो ऋषियों के हाथ में तालीम थी। तालीम का काम राजसत्ता के हाथ में रहे, तो सरकार जैसा नागरिक पैदा करना

चाहती है वैसी ही तालीम दी जायगी। इससे सबका दिमाग गुलाम बनेगा। राजसत्ता के हाथ में तालीम दी जाय, इससे अधिक खतरा देश के लिए कोई नहीं हो सकता। तालीम तो ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी का शरीर और मन मजबूत बनेगा, वह शीलवान और समाज का सेवक बनेगा।"

प्रान्ताभिमान के बारे में पूछे गये सवाल के जवाब में विनोबाजी ने कहा, "अपनी मातृभाषा का अभिमान रखना गलत नहीं है, लेकिन भारतीयता को कभी नहीं भूलना चाहिए। आवागमन का कोई साधन न होते हुए भी ऋषियों ने कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक हृदय की एकता पैदा की। सारे संस्कृत-साहित्य में हम **'दुर्लभं भारते जन्म'** पढ़ते हैं; लेकिन कहीं भी **'दुर्लभं महाराष्ट्रे जन्म', 'दुर्लभं गुर्जरदेशे जन्म'** जैसे वाक्य नहीं हैं। ...... मैं चाहता हूँ कि हर कोई मातृभाषा और राष्ट्रभाषा सीखे और जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, वे अपने पड़ौस की कोई प्रान्तभाषा सीखें।"

अक्सर भाषण के अन्त में विनोबाजी कहते हैं—**"रैन बसेरा कर ले डेरा उठ चलना परभात रे**—यही मेरा जीवन बना है। इसलिए हमारी यह पहली और आखिरी मुलाकात है। कल सबेरे चार बजे हम यहाँ से प्रस्थान करेंगे। यदि परमेश्वर ने चाहा तो जा सकेंगे, नहीं तो यहीं पर मेरी समाधि हो जायगी। इसलिए आपको मेरा आखिरी प्रणाम।"

हिंसा सर्वथा त्याज्य

पूरा बाजार (फैजाबाद)
३०.४.१९५२

आज कुछ समय तक हाथ में लालटेन लेकर रास्ता प्रकाशमान करने का काम मेरा था। थोड़ी देर बाद ही चर्चा आरंभ हुई।

प्रश्न—"जिस प्रकार रक्तरंजित क्रान्ति में संघर्ष अनिवार्य है, उसी प्रकार अहिंसक क्रान्ति में भी वह अनिवार्य है या नहीं? और बिना संघर्ष के प्रतिकार-निष्ठा कैसे आ सकती है?"

विनोबा—"मनुष्य-स्वभाव की बुनियाद सहकार्य है, संघर्ष नहीं। वैसे अहिंसक आन्दोलन में भी कहीं-कहीं संघर्ष आ सकता है। मिसाल के तौर पर एलोपैथी और नेचरोपैथी की बात लीजिये। एलोपैथी में बीमारी के साथ संघर्ष आता है। लेकिन उसमें एक बीमारी नष्ट होते ही दूसरी बीमारी पैदा होती है। नेचरोपैथी में बीमारी हटती है; लेकिन मूल तत्त्वों के सहकार्य से। इसलिए इसमें जो संघर्ष आता है, वह दूसरे प्रकार का होता है।...... हिंसक क्रान्ति कोई क्रान्ति ही नहीं है। क्रान्ति के मानी हैं जीवन के मूल्यों में परिवर्तन। जहाँ हिंसक क्रान्ति होती है, वहाँ भय-निष्ठा तो रहती ही है। वहाँ पर तो भय के आधार से क्रान्ति की जाती है। इसका मतलब यह है कि उसमें हम इस बात को स्वीकार कर लेते हैं कि यदि कोई हमसे भी बलवान ताकत पैदा हो तो वह हमें हरा सकती है। यानी हिंसक क्रान्ति में जीवन के पुराने ही मूल्य कायम रहते हैं, भय-निष्ठा का मूल्य खत्म नहीं होता।"

इस पर मैंने पूछा—"कई लोगों का कहना है कि शारीरिक हिंसा (Physical Violence) से भी मानसिक हिंसा (Psychical Violence) अधिक भयानक होती है और आज के तानाशाह उसका प्रयोग किया करते हैं। इसलिए उसका अधिक निषेध करना चाहिए।"

विनोबा—"हाँ, निषेध तो करना ही चाहिए। लेकिन कम या ज्यादह, यह सवाल ही नहीं पैदा होता। दोनों भयानक हैं। किसी भी तरह की हिंसा बुरी ही होती है। पत्थर से ईंट मुलायम भले ही हो, लेकिन भूखे की दृष्टि से दोनों बेकार ही साबित होंगी; क्योंकि भूखा न पत्थर खा सकता है और न ईंट। जिस समाज में हिंसा की प्रतिष्ठा होती है, वहाँ सारे समाज पर उसका असर हो जाता है।"

मैंने कहा—"क्या इसका मतलब यह है कि सेना का असर हमेशा बुरा ही होगा?"

विनोबा—"हाँ, जरूर। सेना में जो वृत्ति निर्माण की जाती है, उसका असर सारे जीवन पर पड़े बगैर नहीं रह सकता। कइयों का कहना है कि सेना के द्वारा मनुष्य में शिस्त और इन्तजाम करने के गुण पैदा होते हैं।

मैं चाहता हूँ, हमारे समाज में ये गुण फैलें, लेकिन बिना सेना के। सेना तो सर्वाधिकारशाही का तरीका (Totalitarian method) जैसी बात है। आजकल अपने देश के भी बड़े-बड़े लोग कहने लगे हैं कि "चीन की सरकार सर्वाधिकारशाही (Totalitarian) होने के कारण वहाँ पर झट से सब काम हो सकते हैं। लेकिन हमारे यहाँ प्रजातन्त्र होने के कारण देर लगती है और इसीलिए हम उनसे पीछे हैं।" यह बिल्कुल गलत विचारधारा है। सर्वाधिकारशाही (Totalitarian) राज्यपद्धति में देश को चन्द लोगों की अक्ल का ही लाभ होता है। वे चन्द लोग चाहे जितने बुद्धिमान क्यों न हों, देश के सब लोगों की अक्ल से उनकी अक्ल कम ही होती है। इसका मतलब यह है कि देश को सबकी अक्ल का लाभ नहीं होता। इसलिए देश का नुकसान होता है। यह तो बिल्कुल मामूली गणित की बात है। इसलिए आज हमने जिस प्रजातंत्र की पद्धति को नुकसान पहुँचानेवाली पद्धति कहा; वास्तव में उसी पद्धति के द्वारा हमारी भलाई हो सकती है। आज हमारे देश को छोटे-बड़े सबकी अक्ल का लाभ मिल रहा है। सब प्रयोग कर रहे हैं। हमारे लिए यह एक महान् अवसर है और इसीसे हमारा विकास होगा। जहाँ तानाशाही चलती है, वहाँ की हालत भयावह ही हो सकती है; क्योंकि वहाँ एक या चन्द व्यक्तियों की ही अक्ल काम करती है। भगवान् ने तो हरएक को थोड़ी-थोड़ी अक्ल दी है, इसलिए हरएक को अपनी-अपनी अक्ल का उपयोग करने का अवसर मिलना चाहिए।"

इस पर मैंने कहा—"आपकी अवसर मिलनेवाली बात तो स्वीकार करनी ही होगी, लेकिन हम देख रहे हैं कि जनता हिटलर जैसे तानाशाहों की बातों पर और प्रलोभनों पर विश्वास करती है। तो फिर इसके लिए क्या किया जा सकता है?"

विनोबा—"यह बात सही है, लेकिन इस मामले में भारत की हालत दूसरे लोगों से भिन्न है। भारत ने आज तक कभी भी तानाशाहों की सत्ता को स्वीकृति नहीं दी। भारत की जनता हमेशा साधु, सन्त और परोपकारी पुरुषों के ही पीछे गयी है। भारतीय जनता के जीवन-मूल्य उच्चकोटि के हैं। हजारों साल के अनुभव के आधार से वे मूल्य बने

हुए हैं। योरप और अमरीका में अभी भी पैसा, पाशविक शक्ति और पुस्तकीय पाण्डित्य की प्रतिष्ठा है। उन्होंने अभी तक जीवन के सच्चे मूल्यों को नहीं पहचाना है। इस बारे में वे हमसे पिछड़े हुए हैं। हमारी जनता अशोक और अकबर जैसे महान् सम्राटों को भूल गयी है, लेकिन बुद्ध, कबीर, तुलसी आदि को याद रक्खा। एक दफा मैंने मुसलमानों की सभा में पूछा था—"अकबर कौन था ?" तो उन्होंने कहा—"अल्लाहो अकबर।" जहाँ उनको अकबर ही याद नहीं है तो दूसरे छोटे-मोटे राजाओं की याद कैसे रहेगी ? लेकिन वे कबीर को जानते थे और अपने गाँव के किसी पीर की भी उन्हें याद थी। इसका मतलब यह है कि भारत की यह विशेषता है कि उसके जीवन में उच्च मूल्यों की प्रतिष्ठापना हो चुकी है। आज हम व्यवहार में पैसा, पाशविक शक्ति आदि की भले ही इज्जत करते हों, लेकिन हमारे दिलों में इन चीजों के प्रति कोई आदर की भावना नहीं है। पैसे के प्रलोभन से या बल के भय से आज हम अपने व्यवहार में निम्नकोटि की बातों को स्वीकार कर लेते हैं। मानो कोई बैल हमारे सामने आया और हम भाग गये तो क्या इसका मतलब यह होगा कि हमने उस बैल का श्रेष्ठत्व स्वीकार कर लिया ? एक अंग्रेज ने लिखा था—'हमने अभी तक हिन्दुओं को सच्चे अर्थ में नहीं जीता है, क्योंकि वे अभी हमसे छुआछूत मानते हैं।' इस पर मैंने कहा कि आपने (अंग्रेज) हमें अपनी ऐसी कौन-सी बात दिखाई है कि जिससे हम आपका श्रेष्ठत्व कबूल करें ? हम मानते हैं कि पाशविक शक्ति में आप हमसे बढ़कर हैं। इसीलिए आपने हिन्दुओं को हराया। लेकिन क्या इसीलिए हम उस बैल के समान आपका भी श्रेष्ठत्व कबूल करेंगे ? अगर आपने कोई नैतिक शक्ति दिखाई होती तो बात अलग थी। हम ईसाई धर्म के बिल्कुल खिलाफ नहीं हैं। हमने एंड्रूज जैसे नीतिमान ईसाई की कितनी इज्जत की ! इसका मतलब यही है कि हम नीतिमत्ता की और सदाचार की इज्जत करते हैं; पाशविक बल की नहीं।"

इस पर मैंने पूछा—"तो फिर हमारे उच्चकोटि के जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठापना योरप, अमरीका आदि देशों में किस प्रकार हो सकती है ?"

विनोबा—"उसके लिए भारत को आज उच्चकोटि के जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठापना अपने खुद के ही जीवन में करके दिखानी होगी। आज हम निर्भय नहीं हैं। इसीलिए पैसा, पाशविक-शक्ति आदि को हम व्यवहार में भी मानते हैं। जब हम निर्भय बनेंगे और उन उच्चकोटि के जीवन-मूल्यों की अपने ही जीवन में प्रतिष्ठापना करेंगे, तब दूसरे देश भी हमारा अनुसरण करेंगे।"

फिर मैंने दूसरा सवाल पूछा—"कुछ लोग कहते हैं कि सर्वाधिकारशाही पद्धति (Totalitarian system) में सरकार का प्रतिकार करना सर्वथा असम्भव है। भारत अंग्रेजी सल्तनत का अहिंसक ढंग से प्रतिकार इसीलिए कर सका, क्योंकि अंग्रेज लोग कुछ उदार मतवाले थे।"

विनोबा—"इस तरह से कहना तो ऐसा मानने जैसा होगा कि पुराने ब्राह्मणों जैसे अंग्रेज लोग भी उच्चवर्ण के थे। यह विचारधारा ही गलत है। १८५७ के बलवे के समय अंग्रेजों ने कुछ कम अत्याचार नहीं किये थे।"

मैंने कहा—"मैं मनुष्यों के बारे में नहीं, पद्धति (System) के बारे में कह रही हूँ। सर्वाधिकारशाही पद्धति (Totalitarian system) म सरकार के खिलाफ एक शब्द का भी उच्चारण करते ही शारीरिक नाश (Physical-liquidation) हो जाता है।"

विनोबा—"इसका मतलब यह है कि वह शब्द अमर हो जाता है। शरीर चला गया तो इसमें कौन बड़ी बात है, जाने दो। देहासक्ति को छोड़े बगैर मानव कभी निर्भय नहीं बन सकता। उन देशों की सरकार सारे स्कूलों में अपनी ही विचारधारा का प्रसार करती है; तो वहाँ के लोग अपने बच्चों को स्कूल में न भेजें, घर में ही पढ़ायें। नतीजा क्या होगा? जेल या मृत्यु! होने दो।"

मैंने कहा—"लेकिन वहाँ के लोग इतने भयग्रस्त हो गये हैं कि उनमें कुछ भी करने की हिम्मत नहीं रहती और हमारी आवाज उनके कानों तक पहुँचना तो सम्भव है ही नहीं। फिर वहाँ की समस्याएँ कैसे हल होंगी?"

विनोबा—"उसके लिए सबसे पहली बात तो यह है कि आज हमारे देशों में जो Regimentation चल रहा है उसे रोकना होगा।"

मैंने कहा–"हमारे देशों में यानी स्वतन्त्र जगत् (Free World) में ?"

विनोबा—"जी हाँ। जिन-जिन देशों का सर्वाधिकारशाहीवाद (Totalitarianism) पर विश्वास नहीं है, उन सबको अपने खुद के जीवन में जीवन के उच्चकोटि के मूल्यों की प्रतिष्ठापना करनी चाहिए। वैसे तो आज सारा योरप भयग्रस्त है, क्योंकि वे सब शस्त्रनिष्ठ या साधननिष्ठ हैं। हाथ में शस्त्र हो तभी बहादुर साबित होंगे, नहीं तो नहीं। हम शेर को बहादुर कहते हैं, लेकिन जरा-सी रोशनी देखते ही वह भाग जाता है। इसी तरह योरप के लोग डरपोक हैं। यदि हम स्वतन्त्रता को टिकाना चाहते हैं, तो हमें सच्चे अर्थ में निर्भय बनना चाहिए।"

इसके बाद किसीने दूसरे ही विषय पर चर्चा छेड़ी। वेदान्त के तत्त्वज्ञान और हिन्दुओं की सहिष्णुता आदि के बारे में सवाल पूछे गये। विनोबाजी ने कहा, "हम हिन्दु लोग प्राचीन और अनुभवी होने के कारण कुछ अधिक सहिष्णु हैं। यह स्वाभाविक ही है। इसीलिए हमको दूसरे के प्रति उदार दृष्टिकोण रखना चाहिए। एक दफा एक फ्रेंच महिला ने मुझसे कहा था कि "ईसाई धर्म की जो–'Man is born in sin.' (मनुष्य पाप से ही पैदा हुआ है।)—बात है वह मुझे कभी जँची नहीं। उससे मुझे कभी शान्ति नहीं मिली। लेकिन जब मैंने कठोपनिषद् और नाचिकेत की कहानी पढ़ी तब मुझे शान्ति मिली।" उस बहन का कहना सच है।...... ईसाई धर्म के तत्त्वज्ञान की कई बातें विज्ञान ने गलत साबित की हैं। लेकिन उपनिषदों के तत्त्वज्ञान के साथ आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ है। हमारे पीछे उपनिषद् का तत्त्वज्ञान है। इसलिए हमें सारी मानव-जाति को अपना ही मानना चाहिए। जिस तरह हमने बुद्ध को अवतार मानकर बुद्ध-धर्म को अपना लिया, उसी तरह पैगम्बर और ईसा को अवतार मानकर उन धर्मों को अपना लेना चाहिए। मुसलमानों को तो हम अपना ही रहे हैं। **'ईश्वर अल्लाह तेरे नाम'** यह उसी प्रक्रिया का संकेत है।...... हमें भारत की गरीब जनता के समान पाकिस्तान की गरीब जनता का भी ख्याल करना चाहिए। हमें देशों के भेद को भूल जाना चाहिए। वहाँ भी भूदान-यज्ञ करना होगा। मैंने तो मुसलमानों में काम किया है और उनका प्रेम भी हासिल

किया है। मैंने उन्हें पर्दे के खिलाफ कई बातें कही हैं और उन्होंने भी प्रेम से सुनी हैं। वे मुझे अपना ही समझते हैं, क्योंकि मैं भी उन्हें अपना ही मानता हूँ।...... जो सत्य है, वह मैं बोलूँगा। उससे मेरा कुछ भी बिगड़नेवाला नहीं है।"

प्रश्न—"दूसरे धर्मवाले कहते हैं, राम और कृष्ण को—मानव होते हुए भी—आप भगवान् क्यों मानते हैं?"

विनोबा—"महापुरुषों की मृत्यु के बाद उनकी आत्मा को उनके देह से अलग करके उसे परमात्मा में विलीन करने की हमारी सनातन प्रक्रिया है। इसीलिए राम और कृष्ण अब मानव नहीं रहे हैं, बल्कि भगवान् बन गये हैं।"

भूदान मजदूर-आन्दोलन है

फैजाबाद

१. ५. १९५२

फैजाबाद के रास्ते पर प्रभु रामचन्द्र की अयोध्या नगरी थी। अयोध्या को जानेवाला रास्ता भी बड़ा सुहावना मालूम हो रहा था। विनोबाजी ने इस जिले में प्रवेश करते ही कहा था, "अयोध्या नगरी तो मनुष्य के हृदय में है। कहा जाता है कि जहाँ प्रेम है; वैर, झगड़े, द्वेष नहीं हैं, एसी अयोध्या नगरी में रामचन्द्र रहते हैं। लेकिन वह तो हरएक के हृदय में रमनेवाले राम हैं। वही हृदयस्थ राम सबको सत्कार्य की प्रेरणा देता है।"

अयोध्या में प्रवेश करते ही विद्याकुण्ड दिखाई दिया। कुण्ड की रचना सुन्दर थी। चारों ओर ऊँचे आम्रवृक्ष थे। कहा जाता है कि श्री रामचन्द्र ने यहीं विद्या प्राप्त की थी। लेकिन उस कुण्ड का पानी इतना गंदा था कि बदबू आ रही थी। हमारे सभी तीर्थक्षेत्रों में इस तरह का विरोधाभास नजर आता है। आज के हमारे तीर्थक्षेत्रों में इतनी गन्दगी, ढोंग, पसे का बाजार चलता है कि वहाँ जाने पर कोई भी नास्तिक बन सकता है।

जिस स्थान पर बैठकर तुलसीदासजी ने रामायण लिखी थी, वहीं पर आज उनका एक मन्दिर है। उस मंदिर के आँगन में विनोबाजी का स्वागत हुआ। अभिनन्दन संबंधी कविताएँ, मानपत्र आदि हर रोज पढ़े जाते हैं। विनोबाजी को तुलसी-रामायण विशेष रूप से प्रिय है। इसलिए इस स्थान पर भाषण देते समय वे गद्गद हो गये। तुलसीदासजी के नाम का उच्चारण करते समय उनका कण्ठावरोध हो जाता था और आँसू भी बहने लगते थे। बोलते समय वे एक-एक शब्द पर रुक जाते थे। एक सन्त के स्थान पर दूसरे सन्त का भावमग्न होना स्वाभाविक ही था। इससे उन दोनों का एकात्म्य प्रकट हो रहा था। वह सारा दृश्य इतना चित्त-वेधक था कि हृदय-पटल पर सदा के लिए अंकित हो गया। वहाँ से निकलते ही हवा जोरों से चलने लगी। पानी की कुछ बूंदें भी पड़ने लगीं, मानो भगवान् भी इन दोनों के आन्तरिक मिलन से आनन्दित हो उठे।

फैजाबाद शहर में प्रवेश करते ही एक छोटी सी बच्ची ने आरती उतारी और खिले हुए बेले का हार अर्पण किया। विनोबाजी को प्रायः प्रत्येक दिन मिलनेवाले फूलों के हारों में इतना वैचित्र्य होता है कि कोई कवि होता तो सुन्दर कविता लिख देता। कुछ हार सफेद, कोमल बेले के कलियों के होते तो कुछ हारों में कोमल कलियाँ और खिले फूलों का गुम्फन होता। कुछ हार सफेद और लाल फूलों के गुँथे होते और कुछ रंग-बिरंगे फूलों के कारण अत्यन्त मनोहर लगते। एकाध हार लाल गुलाबों का बना होता। कभी-कभी हरे पत्ते गुँथे हुए तो कहीं रंग-बिरंगी पन्नियाँ और कलाबत्तू से बने हुए हार होते और फूल तो पूछिये ही नहीं—न जाने कितने प्रकार के होते! चमेली, सांतिया, बेला, गुलाब और ऐसे ही बहुत से बेनाम के फूल (फूलों के नाम तो होते पर मैं ही जिन्हें नहीं जानती)। गाँवों के जंगली फूलों के हार तो वैचित्र्य के कारण देखनेवाले का मन मोह लेते।

यह शहर बड़ा है और हमारा निवास-स्थान किसी धनी की बड़ी भारी हवेली में है। इसीलिए यहाँ का सारा प्रबन्ध हवेली के उपयुक्त

है। पर मुश्किल तो इतनी ही है कि हवेली ठीक सड़क के किनारे है, जिसमें सामने की दूकान में ध्वनि-विस्तारक (Loud-speaker) पर बजनेवाले फिल्मी गानों ने हमारे कान फाड़ डाले। विनोबाजी को तलघर में स्थान दिया गया था, इसलिए वे इस कष्ट से बच गये।

फूलों के हारों की तरह हमारे निवास-स्थान में भी विविधता होती थी। कभी झोपड़ी, कभी महल, कभी गाँव की कोई जीर्ण पाठशाला, कभी बिल्कुल आधुनिक साधनों से सुसज्जित डाक-बँगला, कभी किसी सेठ का बँगला, कभी धर्मशाला और कभी किसी मध्यम श्रणी के परिवार का छोटा-सा सजा घर।

अक्सर विनोबाजी से सवाल पूछा जाता है—"आप अमीरों के घर क्यों ठहरते हैं?" विनोबाजी का जवाब सारी शंकाओं का समाधान कर देनेवाला होता है। "हवा का और अग्नि का हर घर में प्रवेश हो सकता है, तो मेरा क्यों नहीं हो सकता? अग्नि जहाँ कहीं जाती है, जलाने के लिए ही जाती है। उसी तरह मैं भी अमीरों के घरों में जाकर आग लगा देता हूँ तो इसमें क्या बुराई है?" विनोबाजी का जिस घर में प्रवेश होता है, उस घर को क्रान्ति की आग लगे बगैर नहीं रह सकती। घर का मालिक भूमिदान देता है, स्त्रियों को पर्दा छोड़ने का आदेश मिल जाता है, घर के लड़कों को क्रान्ति की दीक्षा मिल जाती है। सारा विनोबा-साहित्य घर में प्रवेश करता है। चरखा प्रवेश करता है। विनोबाजी के यात्री-दल में सभी प्रान्तों के, सब जातियों के लोग होते हैं और गाँव के सभी छोटे-बड़े लोग विनोबाजी से मिलने आते हैं जिसके कारण उस घर को समानता का पाठ पढ़ाया जाता है। अस्पृश्यता और जातियों को नष्ट करने का प्रत्यक्ष उदाहरण सामने उपस्थित हो जाता है। फिर भी कुछ वामपक्षियों को विनोबाजी का अमीरों के यहाँ ठहरना खलता ही है। विनोबाजी कहते हैं—"यह भी एक किस्म का जाति-भेद ही है।"

आज दिन भर चर्चाएँ चलती रहीं। भिन्न-भिन्न तबके के लोग मिलने आते हैं, अपनी शंकाएँ सामने रखते हैं और प्रभावित होकर लौट जाते हैं। कुछ मुसलमान भाइयों ने धर्मनिरपेक्ष राज्य (Secular state) के बारे में

सवाल पूछा। विनोबाजी ने जवाब दिया, "राज्य (State) जो बनता है वह चन्द लोगों के लिए नहीं, बल्कि सबके लिए बनता है। धर्मनिरपेक्ष राज्य (Secular state) आपके खुदा का विरोध नहीं करता, बल्कि वह कहता है, "हम ईश्वर को अपनी बुनियाद नहीं मानते हैं। हम धर्म के नाम पर इन्सान-इन्सान में फर्क नहीं करेंगे। हम सबको समान अवसर देंगे। फिर उससे चाहे हम जन्नत में जायें, चाहे जहन्नुम में।" धर्म-निरपेक्ष राज्य (Secular state) नास्तिक या काफिर नहीं होता, वह तो केवल खिदमतगार होता है।"

इसके बाद कोई प्रगतिवादी आया जिसने कहा—"हम आपके भगवान्, धर्म आदि में विश्वास नहीं करते हैं।"

विनोबाजी ने पूछा—"आप भगवान् में विश्वास नहीं करते हैं तो कोई हर्ज नहीं है। लेकिन आप सत्य, नीति, सदाचार आदि में तो विश्वास करते हैं न ?"

प्रगतिवादी—"जी हाँ, जरूर करता हूँ।"

विनोबा—"तो फिर मैं कहूँगा कि आप आस्तिक ही हैं। यदि कोई भगवान् में भी श्रद्धा का दावा करते हुए झूठ, चालबाजी आदि करता है तो उससे वह आदमी कई गुना आस्तिक है जो भगवान् में विश्वास न करते हुए भी सत्यनिष्ठा से बरतता है।"

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री (वर्तमान केन्द्रीय गृहमंत्री) पंतजी तो भूदान-यज्ञ के बहुत ही अनुकूल हैं। उन्होंने सेवापुरी के सर्वोदय-सम्मेलन में कहा था कि "भूदान से हमारी आर्थिक समस्या तो हल हो ही रही है; लेकिन जो नैतिक वातावरण निर्माण हो रहा है, उसका मूल्य मैं अधिक मानता हूँ।" पंतजी ने सभी सरकारी अफसरों को व्यक्ति के नाते भूदान का काम करने की इजाजत दी है। इसलिए कई छोटे-बड़े अफसर भूदान का काम करते हुए दिखाई पड़ते हैं। आज एक सरकार-विरोधी पक्ष के कार्यकर्ता ने विनोबाजी से कहा कि "सरकारी अफसर भूदान माँगते हैं तो उससे अनुचित दबाव पड़ता है। इसलिए उनको भूदान का काम नहीं करने देना चाहिए।" विनोबाजी ने जवाब दिया—"जहाँ सरकार राष्ट्रीय होती है, वहाँ सरकारी और गैर-सरकारी का भेद नहीं होना चाहिए।

जहाँ समुद्र में गंगा-जमुना जैसी नदियाँ जाती हैं वहाँ नाले भी जाते हैं। समुद्र किसीसे भी इनकार नहीं कर सकता। भूदान का काम तो समुद्र के जैसा है। मैं नहीं मानता कि सरकारी अफसर यदि भूदान का काम करेंगे, तो यह आन्दोलन दूषित हो जायगा। वैसे तो मेरा भी नैतिक दबाव पड़ता है। एक दफा मथुरा में एक भाई श्रद्धा से दान देने आया। वह अपनी हैसियत से बहुत कम दान दे रहा था। मैंने उससे कहा, मैं भिक्षा माँगने नहीं आया हूँ, मैं तो गरीबों की तरफ से उनका हक माँगने आया हूँ। आप तीन भाई हैं तो मैं आपका चौथा भाई हूँ। मेरा हिस्सा मुझे दीजिये। उस भाई को यह विचार जँच गया और उसने मुझे अपना चौथा भाई समझकर ठीक-ठीक चौथा हिस्सा (५०० एकड़) जमीन दी। ऐसे कई मौके आये हैं। तो क्या इसमें दबाव आया ?"

प्रश्न—"लेकिन कई बुरे लोग भूदान का काम करके प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं।"

विनोबा—"मनुष्य में दोष हो सकते हैं, लेकिन मैं इन्सान में इस तरह का अविश्वास नहीं रखना चाहता। मैं सबकी मदद लेना चाहता हूँ। यदि मैं किसी व्यक्ति पर अविश्वास रखूँ तो मेरी बुनियाद ही खत्म हो जायगी।...... सरकारी अफसरों को काम न करने देने का मतलब है राष्ट्रीय सरकार (National Government) को कार्य (function) ही नहीं करने देना। मैं मानता हूँ कि अगर सरकार अपने अफसरों को भूदान का काम करने का आदेश देती है, तो बिल्कुल ठीक काम करती है। क्योंकि सरकार का यह फर्ज है कि जनता की सेवा करे।"

प्रश्न—"लेकिन कई लोग भूदान का काम अधूरे विश्वास से (Half heartedly) करते हैं।"

विनोबा—"कोई हर्ज नहीं। कोई अच्छा काम आधा (Half) ही क्यों, एक आना विश्वास से (Heartedly) भी करे तो कोई हर्ज नहीं है। मैं किसी को भी दूर नहीं फेंकूँगा, मुझे सबको सुधारना है। मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे साथ काम करने से बुरे आदमी पर मेरा असर जरूर होगा, उसका असर मुझ पर नहीं होगा। इसीलिए मैं निर्भय होकर सबकी मदद ले रहा हूँ।"

शाम की प्रार्थना-सभा में विशाल जन-समुदाय के सामने बोलते हुए विनोबाजी के मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द हृदय-पटल पर अंकित हो रहा था। गुरुदेव ने कहा है—"भगवान् तो अनन्त हाथों से देता ही रहता है। लेकिन हम अपने छोटे से दो हाथों से ही ले सकते हैं। वह तो देता ही रहता है; लेकिन हममें लेने की ताकत नहीं होती।" विनोबाजी के साथ रहते हुए मैं इस बात को तीव्रता से महसूस कर रही हूँ। ज्ञान-दान का नव-विचार देने का उनका काम तो अखण्ड चलता रहता है; लेकिन उसे ग्रहण करने की ताकत हममें नहीं होती। आज उन्होंने कहा, "व्यक्ति के मन के समान सारे समाज का एक सामूहिक मन भी होता है। इसलिए सारी पृथ्वी पर मानव करीब-करीब एक-सी बातें करता आ रहा है। ढाई हजार साल पहले का जमाना था, जब मानव को सब जगह समाज की धारणा के मूल तत्त्व खोजने की इच्छा हुई। भारत में बुद्ध और महावीर, चीन में लाओत्से और कनफ्यूशियस, पॅलेस्टाइन में जरतुश्त और ईसा, मिश्र में मूसा पैदा हुए। इस तरह सब मानवों को एक ही प्रेरणा हुई, उस जमाने में जब कि एक-दूसरे को खबर पहुँचने में वर्षों लग जाते थे। फिर भी एक अव्यक्त-सी हवा फैलती थी, जिसका कारण सर्वांतरयामी, सर्वप्रेरक परमेश्वर ही हो सकता है। उसके बाद आज से करीब एक हजार साल पहले की बात है, मानव को सब जगह आध्यात्मिक संशोधन-कार्य की प्रेरणा हुई। हरएक देश में ध्यान-चिन्तन करके, मन के अन्दर पड़ी हुई शक्तियों का आवाहन करके जिन्दगी को शक्तिशाली बनाने का काम चल रहा था। इसीको अध्यात्मविद्या (Mysticism) का जमाना कहा जा सकता है। और आज मानव को सर्वत्र समता, स्वतन्त्रता और न्याय की भूख लगी है। आत्मा सबमें समान रूप से निवास करती है। यह बात तत्त्वज्ञान में तो थी ही। उसे अब जीवन में लाना है।

आज 'मई'-दिवस (May-Day) के अवसर पर मैं आप लोगों से कहना चाहता हूँ कि यह मेरा मजदूर-आन्दोलन है। जो सबसे कमजोर मजदूर हैं, जो बेजमीन और बेजबान हैं, उनकी आवाज मेरे मुख से प्रकट हो

रही है। अहिंसा के तरीके में जो सबसे आखिर का है, उसे प्रथम उठाना होता है। उसके साथ बाकी के सारे ऊँचे उठ जाते हैं। मैं भी एक मजदूर हूँ। मैंने अपने जीवन की जवानी के बत्तीस साल मजदूरी में बिताये हैं। खेती, कताई, बुनाई, भंगी-काम आदि सारे काम मैंने किये हैं।

जमीन का मसला तो हल होने ही वाला है। दुनिया में उस मसले को हल करने के लिए कई बेढंगे तरीके इस्तेमाल किये गये हैं। मेरी सारी कोशिश यही है कि हम इस मसले को शुद्ध तरीके से, अहिंसात्मक मार्ग से, जो हमारी सभ्यता के अनुकूल है, हल करें। क्योंकि इसीसे मानव का कल्याण होगा। घी के डब्बे को आग लगाना या वेद-मन्त्रों के साथ यज्ञ में घी की आहुति देना, दोनों में घी तो जलेगा ही। लेकिन एक से भावना जलेगी और दुनिया खत्म होगी। दूसरे से भावना पुनीत होगी और दुनिया में मंगल होगा।"

बच्चा भी भूदान की ही बात करता है

सुचेतागंज (फैजाबाद)
२.५.१९५२

कल रात बारह बजे सोने को मिला था, इसीलिए आज सुबह नींद ही नहीं खुलती थी। पर तीन की घण्टी सुनाई देते ही हमने बिस्तर लपेटे। विनोबाजी का कहना है कि रात को नौ के बाद तो जगना ही नहीं चाहिए। पर कुछ न कुछ काम के कारण हम लोगों को हमेशा कुछ देर हो ही जाती है। विनोबाजी का स्पष्ट आदेश है कि बीमार की सेवा को छोड़कर किसी भी कारण से देर तक नहीं जगना चाहिए। रात को जल्दी सोकर सुबह जल्दी उठने के अनेक लाभ हैं। यह प्रमाणित करने के लिए वे वेद और उपनिषदों के कितने ही श्लोक कह जाते हैं—**'यो जागार तं ऋचा कामयन्ते'**। सुबह जल्दी उठनेवाले को ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

एक दफा तो उन्होंने जागने के विषय में एक मजेदार बात कही कि जिसे सुनते ही फिर जगने की हिम्मत नहीं हो सकती। उन्होंने कहा, "रात के नौ बजे तक तो सर्वसामान्य जगते ही हैं, नौ से बारह

बजे तक केवल भोगी जगते हैं और बारह से तीन तक चोर। इसके अलावा तीन से छह तक जगनेवाला योगी होता है।"

विनोबाजी की व्याख्या के अनुसार यहाँ पर हमें उनके सहवास में योगी की उपाधि मिल सकती थी, पर विद्यार्थी-जीवन में कितनी ही रातें बारह से तीन तक जागकर हमने बिताई हैं। इस दृष्टि से तो हम चोर ही साबित हुए थे। इस कल्पना से तो मन में हँसी ही आयी और उस समय तो चोर बननेवाले विद्यार्थियों की प्रशंसा की जाती थी।

पड़ाव पर पहुँचते ही विनोबाजी ने स्वागत के लिए आये हुए बच्चों में से एक को बुलाया और उससे सवाल पूछने लगे, "तुम कितने भाई-बहन हो?"

उत्तर—"चार।"

विनोबा—"तुम्हारी माँ अकेले तुम पर ही प्यार करती है या सब पर समान प्यार करती है?"

उतर—"सबपर समान प्यार करती है।"

विनोबा—"धरती हमारी कौन है ?"

उतर—"माता।"

विनोबा—"तो क्या उस माता पर सब बच्चों का समान अधिकार नहीं होना चाहिए ?"

उत्तर—"सबका समान अधिकार होना चाहिए।"

इसके बाद विनोबाजी ने जनता से कहा, "देखो, यह बच्चा भी भूदान की ही बात करता है। बच्चों के मख से भगवान् बोलता है। इसलिए यह काम अब होकर ही रहेगा।" इस तरह बच्चों से बातचीत करके भूदान का विचार कहने की विनोबाजी की जो पद्धति है, उसका बहुत प्रभाव पड़ता है। वे तो इसको 'नाटक' कहते हैं।

आज शाम को ऐसे ही बातचीत चल रही थी। विनोबाजी ने पूरा बाजार की घटना सुनायी। परसों पूरा में दोपहर के समय विनोबाजी अकेले ही पढ़ रहे थे। उनके पास हममें से कोई भी नहीं था। सामने की सड़क पर एक बस (Bus) खड़ी हुई, कुछ मुसाफिर उतरे और विनोबाजी के

दर्शन के लिए कमरे में आये। उनमें से एक जो शिक्षित मालूम हो रहा था, ज्यादा देर तक खड़ा रहा। जाते समय उसने विनोबाजी से कहा, "एक आदमी (गाँधीजी) ने देश के टुकड़े बनाये इसलिए लोगों ने उसे स्वर्ग भेज दिया। अब आप जमीन के टुकड़े कर रहे हैं, इसलिए आपको भी वहीं भेजा जायगा।" विनोबाजी ने उसे प्रणाम किया, लेकिन वह बिना देखे ही चला गया। यह सुनकर हमें बड़ी बेचैनी मालूम होने लगी। क्या अभी भी भारत में इस वृत्ति के लोग मौजूद हैं? हम तो दुखी हुए, लेकिन विनोबाजी हमेशा की तरह शान्त और अविचल दिखाई दे रहे थे।

अमर महात्मा

शुजागंज (बाराबंकी)

३. ५. १९५२

उत्तर प्रदेश की मई महीने की गर्मी दिन-ब-दिन उग्र रूप धारण कर रही थी। आज १७ मील चलना पड़ा और रास्ता था अति बीहड़। सात न बज पाते कि सूर्य अपनी प्रचण्डता लिए आ निकलता। इसलिए आखिर के कुछ मील तो जान पर ही आते थे। सुबह चार बजे निकलने के कारण सुबह के दो घण्टे तो आनन्द से कट जाते थे। आज तो सब के सब थक गये थे। थकावट के कारण विनोबाजी से तो बोल ही न निकलता था। पड़ाव पर पहुँचते ही चार शब्द जैसे-तैसे बोलकर बिछौने की शरण ली।

आज का पड़ाव एक छोटे से गाँव में है। शान्त और रमणीक स्थान, एक सुन्दर-सा तालाब और उसके किनारे एक मंदिर, जो हमारा निवास-स्थान है।

ऐसे दूर के गाँवों में बाहर से कौन जाता है? सारे नेता लोग तो मोटर के रास्ते पर जो गाँव होते हैं वहाँ जाते हैं, दस-पाँच मिनट का एक भाषण देते हैं, और चले जाते हैं। लेकिन यह संत ऐसा है जो ऐसे गाँवों में जाता है जहाँ न रेल जाती है, न मोटर। वह पैदल चलता है, छोटे से गाँव में

भी दिन भर रहता है, गाँववालों का दुख-सुख सुनता है। इसलिए उन्हें लगता है, जैसे उनका कोई मित्र आया हो। उनको आशा पैदा होती है कि यही एक संत ऐसा है, जिसके पास हम अपना दुखड़ा रो लेंगे। और फिर यह हमें सुख का रास्ता बतायेगा। जिनकी कोई पूछ-परख नहीं है, जिनके पास कोई जाता नहीं है; उन पीड़ित, दलित, दुखित मानवों के पास 'गाँधी बाबा का चेला' ही तो जायेगा।......

वे फौरन पहचान लेते हैं कि वह गाँधी का काम कर रहा है। एक दफा हम गाँववालों से कह रहे थे "विनोबा महात्माजी के चेला हैं।" यह सुनते ही एक किसान ने कहा—"चेला नहीं; ये तो महात्मा ही हैं। हम कह रहे थे—"महात्माजी तो इस दुनिया में नहीं हैं।" उसने फौरन कहा—"महात्मा कभी मरता है?" एक नन्हा-सा वाक्य था, लेकिन उसी वाक्य में महाकवि को प्रेरणा देने की शक्ति थी। वह किसान कह रहा था कि महात्मा अमर है। हमारे आँसू पोंछनेवाला, हमारा पथ-प्रदर्शन करनेवाला कोई भी आये, वह महात्मा का ही काम करेगा। उसके जरिये महात्मा ही अपना काम करेगा। महात्मा कोई शरीर धारण करनेवाला मानव नहीं है। त्रिभुवनव्यापी परमात्मा ने ही दुनिया के कल्याण के लिए महात्मा का वेश धारण कर लिया था। महात्मा कभी मरते नहीं, क्योंकि महात्मा याने कोई मानव नहीं है; बल्कि परमात्मा का संदेश है।

आज शाम की प्रार्थना-सभा में विनोबाजी बहुत ही प्रसन्न दिखाई पड़ रहे थे। उन्होंने ध्वनि-विस्तारक (Loud-speaker) हटा दिया और गाँववालों के बीच घूमते हुए उनसे बातचीत करने लगे। उन्होंने कहा—"ध्वनि-विस्तारक (Loud-speaker) तो मेरे और जनता के बीच आनेवाली एक दीवार है।" आज वह दीवार हट गयी थी, इसलिए विनोबा और जनता की दिल की बातें चल रही थीं।

अखण्ड ज्ञान-लालसा

सफदरगंज (बाराबंकी)
४. ५. १९५२

चलते समय व्यंकटेशय्या ने मद्रास की हालत पर सवाल पूछा। विनोबाजी ने कहा—"राजाजी मद्रास के मुख्य मंत्री बने, यह बहुत ही अच्छा हुआ। उनके आने से मद्रास प्रान्त बच गया। राजाजी बुद्धिमान, चतुर और लायक व्यक्ति हैं। उनके पदग्रहण का मतलब है कि ठीक स्थान पर ठीक मनुष्य पहुँच गया।" व्यंकटेशय्या तमिलनाड का है, इसलिए राजाजी की प्रशंसा सुनकर वह बहुत खुश हुआ।

इस गाँव में अधिकतर मुसलमान ही दिखाई दिये। पुरानी मस्जिदें, दरवाजे आदि के खँडहर जगह-जगह दिखाई दे रहे थे। स्त्रियों में साड़ी पहनने का रिवाज नहीं दीखा। चमकीली किनारवाले लहँगे पहने स्त्रियाँ दीख रही थीं।

आज के भाषण में विनोबाजी ने पर्दा-प्रथा की कड़ी आलोचना करते हुए कहा, "मैं दक्षिण में तेलंगाना में घूमता था तो सभा में जितने पुरुष आते थे, उतनी ही स्त्रियाँ भी आती थीं। और वहाँ की स्त्रियाँ तो निर्भयता से सभा में खड़ी होकर मुझसे सवाल भी पूछती थीं। लेकिन यहाँ तो मुसलमानों का राज चला इसलिए मुसलमान राजाओं को खुश करने के लिए हिन्दुओं ने भी उनके पर्दे के रिवाज को अपना लिया। दूसरों के अच्छे रिवाज लेने में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन पर्दे का रिवाज तो बहुत ही बुरा है। मुसलमानों को भी पर्दा छोड़ना पड़ेगा। मैंने अजमेर में, दरगाह शरीफ में, मुसलमानों की सभा में कहा था, यहाँ पर भी कोई स्त्री दिखाई नहीं देती है! अल्लाह की मस्जिद में भी स्त्री-पुरुष का भेद क्यों? आपको पर्दा छोड़ना ही पड़ेगा। जिस समाज की स्त्रियाँ पर्दे में रहेंगी वह समाज कभी प्रगति नहीं कर सकेगा।' उन्होंने मेरा कथन प्रेम से सुन लिया क्योंकि यह सत्य विचार है और मैं उन्हें अपने से भिन्न नहीं मानता। हिन्दु-धर्म ने स्त्री-पुरुष समानता मानी ही है। हिंदुओं का कोई भी धर्म-

कार्य पत्नी के बिना नहीं हो सकता । राम को यज्ञ करना था और सीता को जंगल में भेज दिया गया था, तो ऋषि ने कहा—'सीता के बिना यज्ञ नहीं हो सकता ।" तब 'हिरण्मयी सीता' बनानी पड़ी और फिर यज्ञ हुआ । वैदिक-काल में तो बड़ी ज्ञानवती स्त्रियाँ होती थीं।...... याज्ञवल्क्य की सभा में चर्चा चल रही थी । गार्गी खड़ी हुई और उसने याज्ञवल्क्य से कहा कि "जैसा काशी या विदेह का क्षत्रिय वीर बाण मारता है, वैसे ही मैं तुझे प्रश्नरूपी बाण मारती हूँ । अपनी छाती सामने कर, मैं प्रश्नों से ताड़ना करूँगी ।" फिर उसने दो सवाल पूछे । याज्ञवल्क्य ने जवाब दिये । तब उसने हिम्मत के साथ पण्डितों से कहा कि "पण्डितो ! अब याज्ञवल्क्य से चर्चा मत करो । इसे नमस्कार करो, क्योंकि इससे कठिन सवाल नहीं होंगे ।" गार्गी वीर के समान खड़ी होकर हिम्मत के साथ कहती है कि "मुझसे कठिन सवाल और कौन पूछेगा ?" वह वेद और उपनिषदों का जमाना था और आज ?"

गार्गी की कहानी सुनकर मन में कई विचार उठे । उस जमाने में गार्गी के सवाल सबसे कठिन थे, लेकिन याज्ञवल्क्य उसका जवाब दे सका । क्या इस युग में ऐसी कोई गार्गी नहीं पैदा होगी जिसके सवालों का जवाब कोई भी याज्ञवल्क्य न दे सकेगा और हार मान लेगा ?

विनोबाजी का तो स्त्रियों के लिए खास संदेश है, "अखण्ड ज्ञान-लालसा रखिये । ज्ञानतृष्णा को कभी नष्ट मत होने दीजिये । ज्ञान की उपासना से ही आप दुनिया को जीत सकती है ।"

समय रहते ही मिल गया

सफदरगंज (बाराबंकी)

५. ५. १९५२

रास्ते में विद्याबहन के साथ आंध्र की समस्याओं के बारे में चर्चा चल रही थी। आंध्र में तो कम्युनिस्टों का काफी बोलबाला है। वहाँ पर भूदान का काम किस प्रकार हो सकता है, इस बारे में चर्चा चल रही

थी। विनोबाजी हमेशा कहते हैं कि "साम्यवाद एक विचार है। यदि आपको वह विचार पसंद नहीं है, तो उसका मुकाबला फौज से नहीं हो सकता। विचार का मुकाबला विचार से ही हो सकता है। दुनिया में जो अन्तिम संघर्ष होगा, वह तो सर्वोदय और साम्यवाद (सर्वनाश), इन दो विचारों में होगा। क्योंकि ये दो ही विचार बलवान् हैं।" विनोबा कहते हैं कि हिंसा के साथ नाश आता ही है। और जहाँ हिंसा पर अधिष्ठित तत्त्वज्ञान बनाया जाता है, वहाँ सर्वनाश के अलावा और क्या हो सकता है? यद्यपि आज दुनिया में साम्यवाद की विजय होती दिखाई दे रही है, फिर भी आखिर में सत्य की ही विजय होनेवाली है। प्रकाश के सामने अन्धकार टिक नहीं सकता, सत्य के सामने असत्य टिक नहीं सकता, यह उनका अमर विश्वास है। लेकिन आज हम सत्य का पालन कट्टरता से नहीं करते; उसमें असत्य की मिलावट कर देते हैं। फिर हमें असफलता प्राप्त हुई तो चिल्लाते हैं कि दुनिया में सत्य के लिए स्थान नहीं है। वास्तव में हमारी असफलता का कारण सत्य और अहिंसा का मार्ग नहीं; बल्कि यह है कि हम उस मार्ग पर ठीक से चलते नहीं हैं।

विद्या बहन कह रही थी कि "आंध्र में आज सर्वोदय का काम ही कहाँ चलता है? लेकिन एक दफा विनोबाजी को वहाँ जाने दो, फिर देखो, हमारा आन्ध्र सबसे आगे बढ़ेगा।" उसका आशावाद मुझ पर भी असर करने लगा। इस दुनिया में जब कि सारे सच्चे मूल्य, श्रद्धा, निष्ठा आदि पर सतत प्रहार हो रहा है, उस समय ऊँचे आदर्शों को सामने रखकर जीवन बिताना असम्भव-सा मालूम होता था। आधुनिक मानव का मनोविश्लेषण करते हुए चीनी दार्शनिक लिन युटांग ने कहा था कि "मानव के जीवन में ऐसा कुछ तो भी चाहिए जिसके लिए वह जी सकता है और मर भी सकता है। एक जमाना था, जब मानव के मन में ईश्वर और धर्म के प्रति श्रद्धा थी। लेकिन हमने भगवान् को अपने दिलों से हटा दिया और उसके साथ श्रद्धा को भी वनवास दे दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के

मानव ने अपने दिल का रिक्त आसन विज्ञान और प्रगतिवाद को दे दिया। लेकिन इन भयानक महायुद्धों के कारण उसकी सारी श्रद्धा आमूल नष्ट हुई। आज के मानव के सब दुःखों का एक ही कारण है—'श्रद्धाहीनता'। वह जानता नहीं कि उसे किसलिए जीना है।"

गांधीजी के देश में पैदा न होती, गांधीजी का क्षणमात्र के लिए ही क्यों न हो, सच्चे अर्थ में दर्शन न करती तो हमारे लिए भी श्रद्धाहीनता के इस तूफान में अपनी जिन्दगी को तबाह होते देखने के अलावा और क्या हो सकता था? लेकिन जनता गर्जना कर रही थी—'**महात्मा गांधी की जय**।' हमें जो चाहिए था, मिल गया; समय रहते ही मिल गया।••

तीसरा भाग

हम निमित्तमात्र बनें

बाराबंकी

६. ५. १९५२

क्षितिज पर पूरब में उषा की लालिमा फैल ही रही थी कि विनोबाजी पड़ाव पर पहुँच गये। किसीने कहा "आप आज बहुत जल्दी पहुँच गये।" विनोबाजी ने जवाब दिया, "मोटर और हवाई जहाजवाले देर से पहुँच सकते हैं, लेकिन पैदल चलनेवाले को तो ठीक समय के कुछ पहले ही पहुँच जाना चाहिए। अक्सर ऐसा होता है कि जैसे-जैसे साधनों की गति बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे मनुष्य की बुद्धि मन्द होती जाती है। हम चाहे मन्द गति के साधन स्वीकार कर लेंगे, लेकिन साधनों की गति बढ़ाकर बुद्धि की मन्दता को स्वीकारना हमें पसन्द नहीं है।"

विनोबाजी का आज का भाषण जगानेवाला था। उन्होंने कहा, "मेरे जैसा फकीर सात महीनों से आपके प्रदेश में घूम रहा है। आप, जो कार्यकर्ता कहलाते हैं, अभी तक जाग्रत नहीं हुए हैं। क्या आप सब शववत् हो गये हैं ? कार्यकर्ताओं में से कुछ सरकार में दाखिल हुए हैं, कुछ अपने संसार में मशगूल हैं और कुछ साहित्य में। गरीबों का काम करने के लिए किसीके पास फुरसत नहीं है। लेकिन आप काम करें या न करें, मैं तो करता ही जाऊँगा। मैंने तो गोरखपुर की सभा में ही कह दिया था कि जिस तरह भगवान् ने अर्जुन से कहा था कि "हे अर्जुन, सारे कौरव तो पहले ही मर चुके हैं, लेकिन तुम अब निमित्त बनो" —**'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।'** उसी तरह मैं भी कहता हूँ कि यह सारी जमीन मेरी हो चुकी है। सारी जमीन जमीनवालों के हाथ से निकल चुकी है और श्रम करनेवालों के पास पहुँच चुकी है; लेकिन मैं कहता हूँ कि आप निमित्तमात्र बनिये और यश लीजिये।"

इस भाषण ने यहाँ के कार्यकर्ताओं को जगा दिया और कुछ कार्यकर्ताओं ने निरन्तर भूदान का काम करने का संकल्प किया।

विनोबाजी कह रहे थे कि "आज तो सबकी परीक्षा हो रही है। इस समय जो निमित्त-मात्र बनेगा उसीका यश होगा।" लेकिन 'निमित्त मात्र' बनने के लिए भी तो अर्जुन की 'ऋजुता' और 'हरिशरणता' चाहिए ही !

विश्व एकता की चतुर्विध योजना

चनहट (लखनऊ)

७. ५. १९५२

आज रास्ते में दोनों तरफ कतार में लगे वृक्षों ने मानो स्वागत के लिए कमान ही खींच दी। अभी-अभी पौ फट रही थी। बाराबंकी जिला लाँघकर लखनऊ जिले में प्रवेश हो रहा था। दोनों जिले की सीमा पर दोनों जिले के कार्यकर्ता इकट्ठे हुए थे। यहाँ की बिदाई और वहाँ के स्वागत का अपूर्व समारोह था। बाराबंकी के लोगों को विनोबाजी ने संदेश दिया, "सतत काम चलने दो" और पास में ही बैठे हुए उस जिले के जिलाधीश से हँसते-हँसते बोले, "अब आपको भी भूदान का काम करना होगा, पर शर्त यह है कि इसके लिए आपको अलग से भत्ता नहीं मिलेगा।" सब हँसने लगे। जिलाधीश तो मारे शर्म के पानी-पानी हो गया।

किसीने कहा—यह स्थान दोनों जिलों की सीमा पर है। विनोबाजी ने कहा, "यहाँ कहाँ सीमा है? मुझे ऊपर अनंत आकाश और नीचे अखण्ड पृथ्वी ही दिखाई देती है।"

किसी अखबार में विनोबाजी पर आलोचना करते हुए कहा गया था कि "ये अहिंसावाले तो कम्युनिस्टों से भी ज्यादा खतरनाक हैं। क्योंकि ये तो गीता का आधार लेते हैं।" इस लेख का जिक्र करते हुए विनोबाजी ने कहा, "जिसने यह लिखा है, उसने हमारी ताकत को ठीक

पहचाना है। अब मेरा 'गीता-प्रवचन' घर-घर जानेवाला है, लोगों के दिलों को प्रभावित करनेवाला है और क्रान्ति की दीक्षा देनेवाला है।"

इसके बाद मैंने ऊटपटाँग सवाल पूछना शुरू कर दिया। फिर तो चर्चा पड़ाव पर पहुँचने तक चलती रही। मैंने पूछा—"भलाई-बुराई (Good and Evil) के संघर्ष में कम-बुराई (lesser-evil) का स्वीकार करना कहाँ तक उचित माना जा सकता है? इस दुनिया में ठीक हमारे आदर्श तक पहुँचे हुए व्यक्ति मुश्किल से ही मिलेंगे। और यदि इस संघर्ष में हम कुछ भी नहीं कबूल करते हैं, तो हमें संग्राम छोड़कर भाग जाना पड़ेगा।"

विनोबा—"कम-बुराई (lesser-evil) यह शब्दप्रयोग ही गलत है। वह तो केवल दार्शनिकों की बात है। इस दुनिया में हम परिस्थिति देखकर कुछ चीजों को स्वीकार करते हैं और कुछ को अस्वीकार। वैसे देखा जाय तो जब 'कालयवन' आया था उस समय देश बर्बाद होगा इस डर से भगवान् श्रीकृष्ण संग्राम छोड़कर भाग गये थे। फिर भी हम उन्हें 'रणछोड़' कहकर उनका गुणगान करते हैं। इसीलिए कभी-कभी बुरी चीज को स्वीकार करने की अपेक्षा कृष्ण के जैसा पलायन करना भी अधिक उचित माना जा सकता है। महाभारत युद्ध के समय जब धर्मराज भागने लगा तब कवि ने उसका गुणगान करते हुए लिखा है कि "वह कृष्ण के जैसा भाग रहा था।" वैसे तो हमारा शरीर भी एक कम-बुराई (lesser-evil) ही है। जब हमने शरीर को स्वीकार किया तो कुछ तो बुराई (evil) मान ही ली।"

मैंने पूछा—"आपकी इस विचारधारा के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हमें कौन-सी नीति रखनी चाहिए?"

विनोबा—"व्यापक क्षेत्र में हमें जरा भी बुराई (evil) स्वीकार नहीं करनी चाहिए। सब देशों की जो जनता है, वह अच्छी है और वह अपनी ही है, लेकिन उस जनता के नाम पर बोलनेवाली जो सरकार होती है, वह अपनी नहीं है।"

मैंने पूछा—"कुछ लोग कहते हैं कि जहाँ सर्वाधिकारशाही (Totalitarianism) चल रही है, उन देशों में जो जनता है उसके कानों तक हमारी आवाज नहीं पहुँच सकती है, तो फिर हमें उसके लिए क्या करना चाहिए ?"

विनोबा—"सब बापों की सेवा करना हमारा फर्ज नहीं है। अपने बाप की सेवा करने से हम सबकी सेवा कर लेते हैं। गांधीजी इसीलिए भारत की जनता की सेवा को सबसे अधिक महत्त्व का स्थान देते थे।"

मैंने विनोद में पूछा—"सब देशों की जनता अपनी ही है, तो फिर अमरीका से आनेवाला अनाज भी अपना ही है, ऐसा क्यों न समझें ?"

विनोबाजी ने हँसते-हँसते जवाब दिया—"तो फिर वहाँ की जनता ने वह अनाज खाया याने हमने ही खाया, ऐसा क्यों न समझें ? यदि आत्मीयता की भावना ही स्वीकारनी है तो पूरी आत्मीयता माननी होगी, अधूरी नहीं।"

इसके बाद विनोबाजी कहने लगे—"यदि हम इस उसूल को मंजूर करें कि एक जगह से दूसरी जगह अनाज ले जाना अच्छा है, तो फिर उसका नतीजा यह होता है कि जिस स्थान पर जो चीज अधिक पैदा हो सकती है वहाँ वही पैदा की जावेगी और सब चीजों का आदान-प्रदान चलता रहेगा। बंगाल में सिर्फ चावल ही पैदा किया जायेगा और पंजाब में सिर्फ कपास। इस प्रकार की योजना में माल का आदान-प्रदान करने-वाला जो अधिकरण (Agency) होता है, उसका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। हमारा जीवन उस पर निर्भर रहता है। लेकिन अहिंसक समाज-रचना में इस प्रकार के अधिकरण के लिए कोई स्थान नहीं है। क्योंकि जहाँ इस प्रकार का अधिकरण आया, वहाँ अहिंसा टिक नहीं सकती। अहिंसा के लिए स्वयंपूर्णता अनिवार्य है। मैंने अपने सेवापुरी के भाषण में यही कहा था कि हमें अपनी राष्ट्रीय योजना ऐसी बनानी चाहिए जिससे कि धीरे-धीरे राज्य (State) की जरूरत ही कम होती जायगी। हमारा मकसद है, शासनहीन समाज-व्यवस्था। कइयों को यह बात जँचती नहीं। वे कहते हैं कि यह तो असम्भव वस्तु है।"

मैंने पूछा—"दुनिया के सारे मसले हल करने का एकमेव मार्ग 'विश्व-संघ राज्य' (World State) ही है या नहीं ?"

विनोबा—"जब तक दुनिया के सब देशों में अहिंसक समाज-व्यवस्था स्थापित नहीं होती, तब तक दुनिया में शान्ति निर्माण होना असम्भव है।"

मैंने कहा—"लेकिन कुछ लोग तो कहते हैं कि 'राष्ट्र' जैसी कोई चीज ही नहीं है। हम सब मानव हैं और हमें यही दृष्टिकोण रखते हुए सब मसलों के बारे में सोचना चाहिए।"

विनोबा—"कुछ लोग कहते हैं कि 'राष्ट्र' ही नहीं बल्कि 'दुनिया' जैसी भी कोई चीज नहीं है; मानव-समाज एक है, यहीं तक बात क्यों करते हो ? फिर इससे भी आगे बढ़ने में क्या हर्ज है ? हो सकता है कि आगे चलकर कोई यह कहे कि शनि, मंगल आदि सबको लेकर एक राज्य बनाना चाहिए। यह सारा गोरखधंधा किसलिए ? हमारा कोई शनि या मंगल से विरोध थोड़े ही है। लेकिन सबको एकत्रित करके एक राज्य बनाने की क्या जरूरत ?"

मैंने पूछा—"लेकिन जिस तरह भारत का एक राज्य बनने से प्रान्त-वाद खत्म हुआ, उसी तरह दुनिया का एक राज्य बनने से राष्ट्रवाद जो लड़ाइयों को पैदा करता है, क्या वह नष्ट नहीं हो सकता ?"

विनोबा—"भारत का एक राज्य बनने से प्रान्तवाद खत्म हुआ है या बढ़ा है ? और भारत का एक राज्य किसने बनाया है ? किसीने ऊपर से जबरदस्ती लादा नहीं है। तो फिर दुनिया का जो एक राज्य बननेवाला है, वह एकता की भावना से पैदा होगा या उसे कोई ऊपर से जबरदस्ती लादनेवाला है ? जबरदस्ती से लादी हुई एकता टिक नहीं सकती।"

मैंने कहा—"जी हाँ। मानवों में एकता की भावना निर्माण करके फिर दुनिया का एक राज्य बनाया जायेगा।"

विनोबा—"लेकिन कुछ लोग इस बारे में इस तरह सोचते हैं कि जैसे आज सारे भारत का कारोबार दिल्ली से चलता है, उसी तरह

सारी दुनिया की एक राजधानी होगी न्यूयार्क, लन्दन या दिल्ली और वहीं से सारी दुनिया का कारोबार चलेगा। लेकिन ये लोग समझते नहीं कि वास्तविक एकता तो विचारों की ही होती है। मैं अपनी योजना बताऊँ। अनाज, वस्त्र आदि जीवन की जरूरतों के बारे में गाँव स्वावलंम्बी होना चाहिए। फिर दुनिया की एकता के लिए यह करना होगा :

१. सारी दुनिया में विचारों का आदान-प्रदान चलता रहेगा, जिससे कि मानवों में एकता की भावना पैदा हो।

२. वस्तुओं का आदान-प्रदान होगा, लेकिन प्रीति-भेंट के तौर पर और ऐसी वस्तुओं का जिनके बिना काम चल सकता है। आवश्यक वस्तुओं के बारे में तो गाँव को स्वावलम्बी ही होना चाहिए।

३. दुनिया के सारे विवाद तय करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायमंडल (International-tribunal) रहेगा।

४. जहाँ कहीं मदद की जरूरत हो वहाँ मदद के लिए फौरन दूसरे देश दौड़ जायेंगे। मान लो कहीं अकाल पड़ा तो सारे देश वहाँ अनाज पहुँचाने को दौड़ पड़ेंगे।

अब आप चाहें तो इस चतुर्विध योजना को विश्व-संघ-राज्य (World-State) कह सकते हैं।"

मैंने पूछा—"तो फिर इसमें पुलिस, सेना आदि की कोई जरूरत नहीं रहेगी।"

विनोबा—"बिल्कुल नहीं। ग्राम-पंचायतों के पास थोड़ी-सी पुलिस रहेगी, लेकिन जो अंतर्राष्ट्रीय संगठन होगा, उसके पास केवल नैतिक शक्ति रहेगी, भौतिक शक्ति बिल्कुल नहीं। उसके पास तो अधिक से अधिक नैतिक शक्ति और कम से कम भौतिक शक्ति रहेगी।"

मैंने पूछा—"न्यायमंडल (Tribunal) कैसे चुना जायेगा?"

विनोबा—"हरएक देश की जनता अपने देश के ज्ञानी और सदाचारी व्यक्तियों को वहाँ भेजेगी। उनके पीछे सिर्फ नीति का अधिष्ठान (Moral-Sanction) रहेगा। उसका काम सिर्फ झगड़ों का निपटारा करना

ही नहीं, बल्कि सलाह देना भी रहेगा। इसे ज्ञानियों की सत्ता या पुरानी भाषा में कहें तो ब्राह्मणसत्ता भी कह सकते हैं।

आज संयुक्त राष्ट्रसंघ (U.N.O.) का न्यायालय तो एक खेल बन गया है। उसके पीछे न नीति का अधिष्ठान (Moral-Sanction) है, न कानून (Legal-Sanction) का। वैसे देखा जाय तो आज संयुक्त राष्ट्रसंघ ही क्यों, भिन्न-भिन्न देशों की जो सरकारें हैं, वे भी खेल ही हैं। आजकल जो चुनाव चलते हैं, वे भी तो खेल ही हैं। मैं मानता हूँ कि खेल, नाटक आदि के लिए मानव-जीवन में कुछ स्थान है। लेकिन हमें इस बात का खयाल रखना चाहिए कि वह खेल ज्यादा महँगा न हो। अगर किसीने अपनी साल भर की क़माई एक ही नाटक देखने में खर्च कर दी तो उससे बढ़कर बेवकूफ और कौन हो सकता है? खेलो, जरूर खेलो; लेकिन खेल की मर्यादाओं को न भूलो !"

यह सुनकर दामोदरजी ने कहा कि "आपकी यह जो विश्व-संघ-राज्य (World-State) की कल्पना है वह कुछ अस्पष्ट (Abstract) सी लगती है। जरा कुछ स्पष्ट (Concrete) चीज बताइये; यों तो कुछ समझ में नहीं आता है।"

इस पर विनोबाजी ने हँसते हुए कहा—"अगर आप स्पष्ट चीज चाहते हैं तो लीजिये, अणु बम (Atom-bomb)। एक दफा ऊपर से गिरा कि सारा 'हिरोशिमा' खत्म !"

हिरोशिमा के बहादुर नागरिक-जैसे इस अणु बम को सिर पर झेलते हुए दामोदरजी ने फिर से अपनी शंका उठायी ही, "आपकी विश्व-संघ-राज्य (World-State) की कल्पना रेखागणित के 'बिन्दु' जैसी लगती है। लेकिन शिक्षक विद्यार्थियों को 'बिन्दु' के बारे में समझाने के लिए काली तख्ती पर उस 'विन्दु' को कुछ तो साकार (Concrete) बना ही देता है।"

विनोबा—"हाँ, इसे भी उतना साकार (Concrete) बनाया जा सकता है। लेकिन उससे बिन्दु की जो मूल व्याख्या है, उसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। बिन्दु तो व्याख्या में ही रहनेवाली वस्तु है। उससे बाहर लायी जाय

तो वह बिन्दु रहती ही नहीं। मैं मानता हूँ कि काली तख्ती पर बिन्दु की आकृति बनाने के लिए शिक्षक को वह बिन्दु कुछ तो साकार बनाना ही पड़ता है। वह कितना बड़ा बनाया जाय यह तो विद्यार्थी की दृष्टि पर निर्भर है। विद्यार्थी की दृष्टि की प्रखरता या मन्दता के मुताबिक उस बिन्दु का आकार भी बदलता जायेगा। हो सकता है कि किसी मन्दबुद्धि विद्यार्थी के लिए बिन्दु के नाम पर छोटा-सा वर्तुल ही बनाना पड़े। लेकिन इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह वर्तुल इतना बड़ा न हो कि उस विद्यार्थी को भी लगे कि यह वर्तुल है, बिन्दु नहीं है।"

अब विनोबाजी ने इतना बड़ा वर्तुल बनाकर समझाया कि हम जैसे मन्दबुद्धि विद्यार्थियों को भी बिन्दु क्या चीज है, इसका भान हुआ। इसलिए यह चर्चा समाप्त हुई। इसके बाद अन्य विषयों पर चर्चा चली।

प्रश्न—"क्या प्राचीनकाल में सबको वेदाध्ययन का अधिकार था?"

विनोबा—"प्राचीनकाल में सिर्फ ब्राह्मणों को ही वेदाध्ययन का अधिकार था, ऐसी बात नहीं है। लेकिन उस समय सारी रचना ही ऐसी थी कि ब्राह्मणों को वेदाध्ययन जैसा मुश्किल काम करना पड़ता था और साथ-साथ अपरिग्रही भी होना पड़ता था। संस्कृत का उच्चारण शुद्ध बनाने के लिए उन्हें सालों तक उच्चारण के पीछे लगना पड़ता था। अतः सम्भव है कि अन्य लोगों को ऐसा कठिन जीवन बिताने की इच्छा ही न होती हो और इच्छा होने पर भी वे अपने को उस काम के लिए असमर्थ पाते हों। उन्हें लगता होगा, सालों तक संस्कृत शब्द रटते बैठना एक भारी सजा ही है और बेचारे ब्राह्मणों को यह सजा भुगतनी पड़ रही है। लेकिन मैं मानता हूँ कि यदि किसी दूसरे को वेदाध्ययन की इच्छा हो तो उसे उस अधिकार से वंचित रखना अयोग्य है। मैं मानता हूँ कि वेदाध्ययन का अधिकार सबको देना चाहिए, फिर चाहे उस अधिकार का कोई लाभ उठावे या न उठावे। मैंने १९१७ में यह घोषित कर दिया था कि मैं खुद वेदाभ्यासी ब्राह्मण हूँ और मैं मानता हूँ कि

सबको वेदाध्ययन करने का हक है। एक जमाना था, जब शूद्रों और स्त्रियों को वेदाध्ययन करने का हक नहीं था, लेकिन यह बात मुझे मंजूर नहीं है। इसलिए मैं सबको वेद पढ़ाने के लिए तैयार हूँ। जो वेदाध्ययन करना चाहता है, वह चाहे जिस जाति का हो, मेरे पास आ सकता है। मैंने १९१७ में यह बात कही थी और अब १९५२ चल रहा है। लेकिन आज तक एक भी ऐसा नहीं निकला जो मेरे पास वेदाध्ययन के लिए आया हो। इसलिए सबको अधिकार देने में कोई हर्ज नहीं है। अधिकार देने पर भी एकाध ही ऐसा होगा जो उस अधिकार का लाभ उठायेगा। मन्दिर-प्रवेश पर भी यही बात लागू होती है। मैंने तो कई दफा कहा है कि जरा सबको मन्दिर-प्रवेश का हक तो दीजिये। फिर देखिये, मुश्किल से एकाध अनन्य भक्त मन्दिर में जायेगा। वह बेचारा आज भी चुपके से जाता होगा। इन दिनों मंदिर में जायगा कौन? लेकिन सबको अधिकार न देने से नाहक झगड़े पैदा होते रहते हैं। मैंने जब यह घोषित किया कि मैं सबको वेद पढ़ाने के लिए तैयार हूँ तब सीखने के लिए कोई आया नहीं, लेकिन उससे मैं सबका दोस्त बन गया।"

मैंने जब सुना कि आज तक हम स्त्रियों और शूद्रों में से किसीने भी वेदाध्ययन की इच्छा प्रकट नहीं की, तब मुझे कुछ धक्का-सा लगा। मैंने सोचा, समान अधिकारों के लिए आवाज उठाने के बजाय समान अधिकारों का लाभ उठाने के लिए योग्य बनने की ओर अधिक ध्यान देना जरूरी है। मैं मानती हूँ कि विज्ञान के क्षेत्र में मैडम क्यूरी निकल सकती है तो कुछ तो स्त्रियाँ ऐसी निकलेंगी ही जो इस क्षेत्र में अपना अधिकार जमा लेंगी। लेकिन उसके लिए सबसे जरूरी बात है, 'जिज्ञासा'। **'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'** यही है प्रथम पाठ।

आज विनोबाजी ने जो बात की वह मुझे इतनी चुनौती-सी (Challenging) लगी कि मैंने अनजान में भगवान् से प्रार्थना की कि "हे भगवन्, ब्रह्मज्ञान के क्षेत्र में विनोबाजी का पराभव करनेवाली कोई स्त्री ही निकले।"

आज का पड़ाव था चनहट, जिसने १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्ध में काफी बीरता दिखाई थी। आज दिन भर हम यहाँ के वीरों की कहानियाँ सुनते रहे।

कल हमें लखनऊ में प्रवेश करना है, इसकी सूचना आज ही मिल गयी। बड़े-बड़े अफसर, पत्रकार, फोटोग्राफर, फिल्मवाले, रेडियोवाले आदि सब दिखाई देने लगे।

भगवान् सहस्र-रश्मि के आगमन की सूचना देनेवाले अरुण के समान विनोबाजी का आज का भाषण था। उन्होंने कहा, "मैं धर्म-चक्र-प्रवर्तन करना चाहता हूँ। भगवान् बुद्ध से हमारी महत्त्वाकांक्षा कम नहीं है।"

"जागिये रघुनाथ कुँवर"

लखनऊ
८. ५. १९५२

सूर्योदय के पहले ही राजधानी में प्रवेश हुआ। जगह-जगह मन्त्री, सरकारी अफसर और प्रतिष्ठित नागरिकों ने स्वागत किया। गोमती नदी का पुल पार करते समय चारों ओर मनोहारी दृश्य दिखाई पड़ता था। गोमती के किनारे घनी झाड़ी थी और उस गहरे हरे रंग की पार्श्व-भूमि पर सफेद आलीशान इमारतें बड़ी लुभावनी मालूम हो रही थीं।

नगर में प्रवेश करते ही हमने उच्च स्वर से गाना आरम्भ किया। पश्चिम की मोहक सभ्यता से सम्मोहित नगरी को हम गीत-गर्जना से जाग्रत कर रहे थे। सत्ता और सम्पत्ति के काञ्चनमृग के पीछे दौड़नेवाले नागरिकों को यह पैदल चलनेवाला फकीर सचेत कर रहा था—"किस ओर दौड़ रहे हो? जरा ठहरो, सोचो!"

व्यंकटेशय्या मधुर स्वर में गा रहा था—

द्वार-द्वार नग्न पद जो दीन हेतु जा रहा।
यह बुद्ध है या गांधी है जो प्रेम-गीत गा रहा॥

पश्चिम के किसी लेखक ने लिखा था—"Whoever may deserve to be the president of world federation, he will be an heir to Gandhi." (विश्व-संघ राज्य का अध्यक्ष बनने की योग्यता रखनेवाला

चाहे कोई हो, वह गांधी का वारिस ही होगा।) दुनिया का कोई भी क्रान्तिकारी ो या सत्यशोधक, वह जाने-अनजाने गांधी-गीत ही गायेगा।

'उठ पड़ो ऐ भारतीय, जग जगायेंगे।'

गांधी के भारत को आवाहन किया गया।

आज का हमारा निवास-स्थान था उत्तर प्रदेश कांग्रेस संसदीय मंडल (Parliamentary Board) का कार्यालय। वहाँ पहुँचते ही लोगों की भीड़ लग गयी। दिन भर मेरा एक ही कार्यक्रम था। सामने नोट-बुक थी, कान विनोबाजी के शब्द सुन रहे थे और हाथ में कलम थी, जो अपना काम तेजी से कर रही थी।

सबसे पहले सरकारी बड़े अफसर मिलने आये। सरकार कानून के जरिये भूदान के काम को किस प्रकार मदद कर सकती है, इस बारे में वे चर्चा करने आये थे। विनोबाजी ने प्रस्तावना के तौर पर कहा, "हम तो जनता के हृदय में परिवर्तन लाना चाहते हैं, सिर्फ जमीन हासिल करना नहीं चाहते।

आपकी सरकारी योजनाएँ तो अपने खुद के घर की हैं। लेकिन सरकार यदि मेरी योजना में मदद दे तो इससे सरकार की ही प्रतिष्ठा बढ़ेगी और यदि सरकार ने उसकी उपेक्षा की तो असंतोष पैदा होगा। लोग कहेंगे कि सरकार विनोबाजी को मदद नहीं दे रही है। इसलिए हमें मदद देना आपके हित में ही है।"

प्रश्न—"गरीबों से जमीन लेने में छोटे-छोटे टुकड़े बनेंगे, यह एक और समस्या पैदा होगी।"

विनोबाजी ने हँसते-हँसते कहा—"समस्या (Problem) पैदा करनेवाले हम हैं, उन्हें हल करनेवाले आप हैं। तो मैं ही आपके लिए एक सबसे बड़ी समस्या बन गया हूँ।" यह सुनते ही सब हँसने लगे।

प्रश्न—"आपका काम तो भावना पर आधारित है तो फिर उसे कानून से कैसे जकड़ा जा सकता है? उसे कानून के जरिये कैसे सहायता दी जा सकती है?"

विनोबा—"यह बात ठीक है। यदि कानूनी ढंग से सोचा जाय तो दान की जमीन सरकार की बन जाती है। लेकिन सरकार कानून के जरिये उसे बाँटने का अधिकार हमारी भूदान-समिति को देगी। हैदराबाद की सरकार ने ऐसा कानून बनाया है। यदि यहाँ की सरकार ने वैसा कानून नहीं बनाया तो मैं सारे दान-पत्र लौटाकर बिहार की तरफ चला जाऊँगा। उससे मेरा क्या बिगड़ेगा ? मैं तो फकीर हूँ, लेकिन इससे सरकार ही बदनाम होगी और जनता में असंतोष फैलेगा। मैं तो सरकार पर पूरा विश्वास रखकर काम कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि सरकार इस काम के अनुकूल कानून बनायेगी। लेकिन अगर उसने नहीं बनाया तो सरकार के लिए ही खतरा पैदा होगा। फकीर का कौन क्या बिगाड़ सकता है ?"

प्रश्न—"आप जो ये सारी बातें कर रहे हैं, उनसे कई खतरे पैदा होने की सम्भावना है।"

विनोबा—"मैं तो आज के राज्य (State) के लिए इतना बड़ा खतरा पैदा कर रहा हूँ, जैसा कि आज तक किसी कम्युनिस्ट ने भी न किया होगा। क्योंकि मैं अहिंसक हूँ और सीधे लोगों के दिल में पहुँचता हूँ और कहता हूँ कि जमीन तो ईश्वरीय है। मैंने यह विचार न चीन से लिया है, न रशिया से, बल्कि ईश्वर से लिया है।

"एक दफा रास्ते में मुझे फूलों के हार अर्पण किये गये। मैंने उन लोगों से कहा कि एक शख्स वर्धा से यहाँ तक हजारों मील चलकर आया, तो क्या फूलों के हारों के लिए ? क्या वर्धा में हार नहीं मिलते हैं ?...... मेरा स्वागत करना चाहते हो तो जमीन देकर करो। आपसे भी मैं यही कहना चाहता हूँ। भूदान के काम में हिस्सा लेने में सरकार का ही हित है।"

विनोबाजी के शब्दों ने उन लोगों को अत्यन्त प्रभावित किया। मुख्य सचिव ने कहा, "महाराज, इस काम में आनेवाली सभी अड़चनें हम लोग दूर करना चाहेंगे; क्योंकि यह हमारा कर्त्तव्य है।"

दिन भर चर्चाएँ और सभाएँ होती रहीं। मुश्किल से भोजन के लिए समय निकला। वहाँ से आने पर देखा कि मुख्यमन्त्री पंतजी विनोबाजी से मिलने आये थे। पंतजी ने प्रेसवालों से कहा था कि "हमारी सरकार भूदान में पूरा हिस्सा लेगी।" पंतजी और विनोबाजी दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति जो सौहार्द था, उसके कारण उन दोनों की भेंट बहुत चित्ताकर्षक रही।

इस बुढ़ापे में भी पंतजी जिस लगन से काम करते हैं, उसे देखकर हम जवानों को लज्जित होना पड़ेगा। मैंने देखा, दस्तखत करते समय उनका हाथ काँपता है।

दोपहर को पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन (Press Conference) हुआ।

प्रश्न—"क्या आपको कहीं-कहीं बहुत-सी झगड़े की जमीन ही मिली है ?"

विनोबा—"मैंने देखा है कि कई दफा इस प्रकार की गलतफहमियाँ हुआ करती हैं। हैदराबाद में बँटवारे का कुछ काम हुआ है। इसलिए वहाँ के अनुभव से हम कुछ कह सकते हैं। वहाँ पर झगड़े की भी जमीन मिली, परन्तु हमारे सम्पर्क से झगड़े मिट गये और उससे कुछ लाभ ही हुआ। जिन्होंने खराब जमीन दी, उन्होंने जान-बूझकर नहीं दी। अक्सर ऐसा होता है कि बड़े जमींदार अपनी जमीन के बारे में कुछ भी नहीं जानते, इसलिए मुनीम के कहने से जमीन दे देते हैं। एक दफा बँटवारे के समय मालूम हुआ कि एक भाई की दी हुई ५०० एकड़ जमीन खराब थी। हमने उससे पूछा कि क्या हम यह जाहिर कर दें कि आपकी जमीन खराब है या आप वह जमीन लेकर दूसरी जमीन देनेवाले हैं ? उस भाई ने दूसरी अच्छी जमीन देना कबूल कर लिया। अक्सर कोई भी अपनी बदनामी नहीं करा सकता। सात्त्विक, राजस और तामस, तीन प्रकार के दान होते हैं। सभी दान सात्त्विक नहीं होते। इसलिए कहीं अगर खराब जमीन मिली है तो कोई हर्ज नहीं है। मैंने तो कहा है कि मैं पहाड़ भी लेने को तैयार हूँ। कोई देनेवाला निकले तो

मैं हिमालय भी दान में ले लूँगा। मेरा मकसद तो यह है कि मैं जमीन की मालकियत ही मिटाना चाहता हूँ।"

प्रश्न—"क्या आपका काम सामाजिक क्रान्ति का एक लाक्षणिक प्रयोग है?"

विनोबा—"जो अन्धा होता है, वह नहीं जानता कि सामने खम्भा है; लेकिन जो आँखवाला होता है वह जानता है, इसलिए वह खम्भे से बिना टकराये आगे बढ़ता है। इसी प्रकार द्रष्टाओं को वर्तमान काल में ही भविष्य का दर्शन हो जाता है, जो सर्वसाधारण लोगों को नहीं हो सकता। मैंने देखा कि इस समय जमीन का बँटवारा हुए बगैर काम नहीं हो सकता, इसीलिए मैंने यह काम उठा लिया। तेलंगाना में जिस दिन मुझे पहला दान मिला उस रात को मैं उसके बारे में सोचने लगा: क्या इस प्रकार दान माँगकर हिन्दुस्तान में बेजमीनों का मसला हल हो सकता है? मेरा दिल तो 'ना' कह रहा था। सारे इतिहास में आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ है। मन्दिर, मस्जिद आदि के लिए थोड़ी-सी जमीन माँगी गयी थी, लेकिन भूमिहीनों के लिए लाखों एकड़ माँगना असम्भव-सा लगता था। तिस पर मैं अपने में ऐसी कोई शक्ति नहीं पा रहा था, जिससे कि मैं दान माँग सकूँ और लोग मुझे दान दें। जमीन जैसी प्रिय चीज का दान माँगना मेरे लिए सम्भव नहीं था। मैं तो तुच्छ था, मुझे कौन दान देता? मेरी बुद्धि ने निर्णय दिया, 'नहीं, मैं इस काम को नहीं उठा सकता।' इतने में अन्दर से एक आवाज आयी—'तुझे यह काम उठाना ही होगा। क्या तेरी अहिंसा पर श्रद्धा नहीं है? आज वह समय आया है जब कि अहिंसा की कसौटी होनेवाली है। यदि जमीन का मसला अहिंसा के तरीके से हल न हो सका तो फिर अहिंसा को सदा के लिए हार मानकर हिंसा के लिए जगह खाली करनी पड़ेगी। क्या इस समय भी तू डर के मारे चुप बैठ सकता है?' नहीं, मैं चुप नहीं बैठ सकता था। अहिंसा पर मेरी असीम श्रद्धा थी। मैं मानता था कि दुनिया के सारे मसले अहिंसा के तरीके से ही हल हो सकते हैं। अहिंसा की कसौटी

का क्षण आया था। मैं दुर्बल था, तुच्छ था; फिर भी मेरे लिए एक ही रास्ता था। अपनी दुर्बलता के कारण पीछे हटना मेरे लिए असम्भव था। मने भगवान् पर पूरा भरोसा रखकर कदम आगे बढ़ाया। मेरा विश्वास था कि जो भगवान् मुझे दान माँगने की प्रेरणा दे रहा है वही भगवान् दूसरों को दान देने की प्रेरणा देगा। जहाँ उसने बालक के पेट में भूख पैदा की, वहाँ माता के स्तन में दूध भी पैदा किया। भगवान् का काम पूरा ही होता है, अधूरा नहीं। इसी विश्वास के साथ मैंने दान माँगना शुरू किया और मुझे दान मिलता गया।"

यहाँ के निकटवर्ती अमीनुद्दौला पार्क में सायंकाल की सभा थी। आने-जानेवालों से अभी मेल-मुलाकात खतम नहीं हो पायी थी कि किसी ने आकर कहा कि "बाबा (विनोबाजी) चले गये हैं।" अतएव हाथ में चरखा लेकर तुरत भागना पड़ा। देखा कि ऊँचे व्यासपीठ पर विनोबा चरखा कात रहे हैं। कताई समाप्त हुई। यह सोचकर कि अब प्रवचन शुरू होनेवाला है, मैं कलम निकालकर तत्परता से बैठ गयी।...... **'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते'** गम्भीर ध्वनि सुनाई दी। लगा कि जैसे यह ध्वनि बीसवीं सदी की नहीं है, हजारों वर्ष पहले का कोई ऋषि किसी गुफा में तपस्या में मग्न वेदमन्त्रों का गान कर रहा हो। चौंककर सिर ऊपर उठाकर देखा ...... वे विनोबा ही थे पर ध्वनि उनकी नहीं थी। ...... **'असतो मा सद्गमय'** नेत्र बन्द कर ध्यानस्थ बैठे हुए विनोबा की ओर आँखें लगी थीं। रोज प्रवचन के बाद महादेवी ताई प्रार्थना कहती थीं, पर आज स्वयं विनोबा ने प्रवचन से पूर्व प्रार्थना शुरू कर दी थी। हमें पता ही न चला कि प्रार्थना कब शुरू हो गयी ! मैं विनोबा की ओर अपलक देख रही थी। आँखों के सामने थी विनोबा की ध्यानस्थ मूर्ति और सुनाई दे रही थी उनके मुख से प्रवाहित होनेवाली ऋषियों की वाणी। इनके सामने हम दीन-दुनिया को भूल गये। ...... गीता के स्थित-प्रज्ञ के लक्षणोंवाला पाठ (दूसरे अध्याय का आखिरी अंश) समाप्त हुआ। कुरानशरीफ का पाठ आरम्भ हुआ। मैं फिर एक बार चौंक पड़ी।

यह वैदिक-काल का ऋषि नहीं था। पैगम्बर के प्रथम शिष्यों में कोई श्रेष्ठ शिष्य नमाज पढ़ रहा था। बिल्कुल शुद्ध अस्खलित अरबी उच्चारण सुनाई पड़ते थे। कुरान का पाठ समाप्त हुआ। सब धर्मों की प्रार्थनाओं का एक-एक अंश पढ़ा गया। प्रत्येक बार लगता था—विनोबा न ीं और कोई हैं। जैसे प्रत्येक धर्म के आद्य प्रचारकों में से हरएक की ध्वनि दूर किसी अज्ञात भूतकाल से सुनाई दे रही हो।

प्रार्थना समाप्त हुई, प्रवचन शुरू हुआ। उनकी आँखें अभी तक बन्द थीं। विशाल जन-समुदाय में से प्रत्येक के हृदय में प्रवचन का एक-एक शब्द अंकित हो रहा था। "हमारे आराध्यदेव उधर खेतों में कड़ी धूप में काम कर रहे हैं। वे खुद भूखों रहकर हमें खिलाते हैं। उनके हम पर अगणित उपकार हैं। उनकी सेवा करना हमारा धर्म ह।......

"जो खुद मेहनत करते हैं, उनका आशीर्वाद जिस खेत को प्राप्त नहीं होता है, वह खेत क्या बरकत देगा? उन्हींके आशीर्वाद से तो हम जियेंगे। उनकी आशा, उनकी वासना उस अनाज पर रहेगी।......वे फसल पैदा करते हैं, लेकिन उस फसल को केवल आँखों से देख सकते हैं। वह उनके पेट में नहीं जाती।...... वे अत्यन्त सहनशील हैं। वे अब भी हमारी ओर आशा से देख रहे हैं कि हम उनकी चिन्ता करेंगे। जैसे माँ बच्चे से आशा रखती है, वैसे वे भी हमसे आशा रखते हैं।...... जाग जाइये, जितनी देर करेंगे उतने ही गुनहगार साबित होंगे।...... मैं आपके दिल के भगवान् को जगाने आया हूँ।...... **'जागिये रघुनाथ कुँवर, पंछी बन बोले।'** मेरे भगवान्, जाग जाइये, सेवा में लग जाइये।

"आज बापू होते तो मैं बाहर नहीं निकलता।......उन्होंने जो काम मुझे सौंपा था, उसीमें मुझे आनन्द प्राप्त होता था।......लेकिन वे गये और मुझे अपना एकान्त आश्रम छोड़कर निकलना पड़ा, उन्हींके लिए! ...... मैं नेता नहीं हूँ, मैं तो सबका खिदमतगार हूँ। मैं आप सबकी ओर भक्तिभाव से देखता हूँ। मेरे सामने कोई भी आ जाय, मेरे हाथ

भक्तिभाव से जुड़ जाते हैं। मेरे दोनों हाथों को जुड़ जाने की ही आदत है। मैं नहीं पहचानता कि सामने कौन आया है। मैं तो सामने भगवान् की मूर्ति देखता हूँ।"

आँसुओं की धारा रुकी नहीं, बह निकली। "बापू होते तो मैं बाहर नहीं निकलता!" कहनेवाले और सुननेवाले एक हो गये थे। आँसुओं की होड़ लगी थी। आज से चार वर्ष पहले भी इसी तरह संसार के सारे मनुष्य एकत्रित हुए थे। जहाँ देखो वहाँ केवल आँसू ही दिखाई देते थे; पर वे आँसू वियोग के, दुःख के आँसू थे।...... आज भी उन्हींकी स्मृति से आँसू बह रहे थे। पर आज के आँसू, जैसे पुर्नमिलन के आनन्दाश्रु थे।

धर्म-चक्र-प्रवर्तन

लखनऊ

९. ५. १९५२

प्रातःकाल छह बजे विश्वविद्यालय (University) में ग्राम-पंचायत के अफसरों के सामने विनोबाजी का भाषण हुआ। उसी समय खेलों की प्रतियोगिता में विजयी लोगों को इनाम देने के समारोह का भी आयोजन था। इसलिए विनोबाजी ने भाषण का आरम्भ किया—"जीवन खेल है।" आगे चलकर कहा—"इसलिए उस खेल की हार-जीत को समान ही समझो। खेल के समान यह दुनिया भी मिथ्या है, इसका खयाल रखना चाहिए। हम खेलते हैं, तो फल-निष्पत्ति के लिए नहीं; बल्कि खेल के आनन्द के लिए। जीवन में भी यही तत्त्वज्ञान लागू करना चाहिए।"

वहाँ से लौटकर निवासस्थान पर आते ही रा० स्व० संघ (R. S. S.) के कार्यकर्ताओं की सभा में विनोबाजी का भाषण हुआ। उन लोगों का अनुशासन और विनोबाजी के प्रति आदरभाव देखकर खुशी हुई। विनोबाजी ने उनसे कहा, "मानव की शक्ति मर्यादित होती है, इसलिए सेवा का क्षेत्र भी मर्यादित हो सकता है, लेकिन वृत्ति मर्यादित नहीं रखनी चाहिए।

सेवा का क्षेत्र चाहे मर्यादित हो, पर भावना का, सहानुभूति का क्षेत्र अमर्यादित रखना चाहिए, संकुचित नहीं। हम सारी दुनिया की सेवा तो नहीं कर सकते, पर हमें सब मानवों को अपना ही समझना चाहिए। जाति, पंथ, धर्म, वर्ण आदि के आधार पर मानवता के टुकड़े बनते हैं, यह बात हमें असह्य होनी चाहिए। हमें यही खयाल रखना चाहिए कि मैं एक परिशुद्ध आत्मा हूँ, देह नहीं हूँ। सारे भेद तो देह के कारण पैदा होते हैं। यदि मैं मानवों में धर्म, राष्ट्र आदि के नाम पर भेद करने लगता हूँ तो मेरी आत्मा छिन्न-भिन्न हो जाती है। मुझमें जो अनन्त शक्ति है, उसे खोकर मैं सान्त-शक्ति के पीछे पड़ता हूँ। यदि हम मनुष्य को मनुष्य के नाते नहीं देखेंगे, तो हिन्दु-धर्म की आत्मा को ही खो देंगे। हिन्दु-धर्म तो समुद्र जैसा है, जो सबको अपने पेट में समा लेता है।"

इसके बाद एक कार्यकर्ता ने सवाल पूछा—"जब एक जमात का दूसरी जमात पर आक्रमण होता है, तो क्या उस जमात को संगठित नहीं करना चाहिए ?"

विनोबाजी का जवाब सिर्फ शंका-समाधान कर देनेवाला न था, बल्कि आत्मसंशोधन की प्रेरणा देनेवाला था। उन्होंने कहा, "यह सवाल हवा में नहीं, जमीन पर पूछा गया है। आज हिन्दुओं को डर है कि मुसलमान उन्हें खत्म कर देंगे। ......लेकिन दुनिया में यदि कोई हिन्दुओं का नाश करने-वाले हैं तो हम ही हैं। ...... आज हममें जो जातिभेद, छुआछूत, विषमता आदि है; उन्हींके कारण हमारा नाश हो सकता है। आज भारत के मुसलमानों के मन में जो कटुता का भाव है, वह हमारे ही मन का प्रति-बिम्ब है। ...... वेदों ने हमें आज्ञा दी है कि अगर हम चाहते हैं कि सारी दुनिया हमारी ओर मित्र की निगाह से देखे, तो हम भी सारी दुनिया को मित्र की निगाह से देखेंगे।

'मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥'

भाषण का अन्त तो दिल को खींचनेवाला था, "हमारे दुश्मन बाहर नहीं, हमारे ही दिल में हैं।"

भाषण समाप्त होते ही विनोबा ने विनोद में पूछा, "आपके निजाम कहाँ हैं ?" सब हँसने लगे। स्वयं निजाम भी हँसते-हँसते विनोबाजी के पास चले गये और फिर दोनों का वार्तालाप शुरू हुआ।

यह सभा समाप्त होते ही किसान-मजदूर प्रजापार्टी (K. M. P. P.) के कुछ कार्यकर्ता मिलने आये। गरम, नरम, बीच के, सभी दलों के व्यक्तियों से पूछे जानेवाले सवालों के जवाब देने की विनोबाजी की पद्धति देखकर उनके गुरु—शंकराचार्य—का स्मरण होता है।

एक सज्जन ने पूछा—"क्या आप कम्युनिस्टों की क्रान्ति को रोकना चाहते हैं ?"

विनोबा—"मैं एक क्रान्ति (हिंसक) को रोकना चाहता हूँ और दूसरी (अहिंसक) को लाना चाहता हूँ। 'जैसे थे' (Status quo) को कायम रखने के लिए मैं पैदल नहीं घूम रहा हूँ।

कम्युनिस्टों में और हममें सिर्फ साधन (Means) के बारे में ही अन्तर नहीं, बल्कि तत्त्वज्ञान में भी मौलिक अन्तर है। ...... फिर भी मैं चाहता हूँ कि उनमें परिवर्तन हो और वे मुझमें सम्मिलित हो जायँ। मैंने तो उन्हें तेलंगाना में ही कहा था कि इस तरह रात को आकर क्यों लूटते हो ? मेरे समान दिनदहाड़े प्रेम से लूटना सीखो। आखिर यहाँ के कम्युनिस्ट हमारे ही हैं। मुझे विश्वास है कि उनमें कभी न कभी परिवर्तन जरूर होगा। यदि वे भूदान का काम करने लग जायँगे तो मैं उनका स्वागत ही करूँगा। मैं तो समुद्र हूँ। समुद्र किसी नदी को इनकार नहीं कर सकता, पर वह नदियों से कहता है कि मुझमें आओगी तो तुम्हारा पानी भी मुझ जसा खारा बन जायगा।"

एक सज्जन—"किसी भी काम के लिए धर्म-प्रसारकों का जोश (Missionary-fire) और पागलपन (Madness) चाहिए। वैसा जोश (Fire) सिर्फ आपमें और कम्युनिस्टों में है। आप उन्हें दावत दीजिये।"

विनोबा—"मेरा सब मानवों को निमंत्रण है। ...... यह तो उनमें और

मुझमें बहुत साम्य है। उनके लिए जैसा उनका अपना एक मिशन है, वैसे मेरा भी अपना एक मिशन है।

तेलंगाना में कम्युनिस्टों ने बहुत अत्याचार किये, लेकिन मैं कब से उन लोगों से कह रहा हूँ कि हिंसक आन्दोलन वापस ले लो, ताकि तुम एक कानूनी संस्था के नाते चुनाव में हिस्सा ले सको। उन लोगों में से कितनों को यह बात जँच भी गयी; लेकिन उन्होंने बीच में काफी समय गँवाया और अब हिंसक आन्दोलन वापस लेने का निर्णय लिया। उन्होंने इतना समय गँवाया, इसका कारण यही है कि उन्हें वहाँ से (रशिया से) आदेश प्राप्त करना होता है, उनका दिमाग (Brain) तो वहीं है न !"

गरम दलवाले चले गये और विद्वान आये। लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति आचार्य जुगलकिशोरजी, डा० राधाकमल मुखर्जी तथा विद्यापीठ के अन्य प्रोफेसरों को आते देखकर विनोबाजी ने मुस्कराते हुए कहा कि "विद्वत्-समाज ह।" चर्चा शुरू हुई।

डॉ० मुखर्जी ने प्रश्न पूछा—"अर्थशास्त्र की निगाह से देखा जाय तो सर्वोदय-योजना कहाँ तक सफल हो सकती है ?"

विनोबा—"हमारा यह मानना है कि अर्थशास्त्र कोई गणित जैसा पूर्ण शास्त्र (Absolute Science) नहीं है। वह तो समाज की स्थिति के मुताबिक बदलता रहता है। सर्वोदय-योजना का एक बुनियादी सिद्धान्त यह है कि गाँव स्वावलम्बी बने और गाँव के कच्चे माल का पक्का माल गाँव में ही बने। यह एक बुनियादी सिद्धान्त है। मशीन के बारे में हम स्वमताभिमानी (Dogmatic) नहीं हैं। हम चाहते हैं कि यदि बड़ी मशीनें आयें तो खानगी मालिकी न रहे, बल्कि समाज की मालिकी हो जाय। हमारा आग्रह तो इस बात का है कि सबको काम देना चाहिए।"

विनोबाजी ने आज की शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन करना कितना आवश्यक है, इस बारे में भी समझाया। चर्चा के समय डॉ० मुखर्जी,

अंग्रेजी में बोलने लगे, क्योंकि वे हिन्दी नहीं जानते। विनोबा ने बँगला में कहा, "हिन्दी न आती हो तो बँगला में ही बोलिये।" इस पर उन्होंने आश्चर्य से पूछा, "आप बँगला भी जानते हैं?" विनोबा के "हाँ" कहते ही वे प्रसन्नता से बँगला में बोलने लगे। विनोबा हिन्दुस्तान की प्राय: सभी भाषाएँ जानते हैं। इसलिए वे प्रत्येक प्रान्तवासी को अपने आदमी जैसे लगते हैं। उन्होंने दक्षिण की भाषाओं को भी आत्मसात् कर लिया है। मैं तो सोचती हूँ कि यह बहुत बड़ी साधना है। तमिल भाषा की गड़गड़ाहट सुनकर मुझे लगा कि कम-से-कम इस जन्म में मैं यह भाषा नहीं सीख सकूँगी और आश्चर्य की बात तो यह है कि विनोबा ने चीनी भाषा भी सीखने की कोशिश की है। चीनी भाषा के उच्चारण को सुनकर और लिखावट को देखकर मैं इतनी घबड़ा गयी कि किसी भी चीनी भाषा जाननेवाले व्यक्ति के सामने साष्टांग प्रणाम करने को तैयार थी। चीनी भाषा के केवल 'अ, आ' लिखने के लिए भी साक्षात् रविवर्मा को ही अवतीर्ण होना पड़ेगा। जो भाषा मुझे इतनी कठिन प्रतीत हुई, उस भाषा का विनोबा ने केवल कुछ महीनों में परिचय प्राप्त कर लिया।

दोपहर को यहीं के रहनेवाले एक महाराष्ट्रीय बन्धु के घर हम लोगों को भोजन का निमंत्रण था। वहाँ पत्तल के चारों ओर चौक पूरा गया था। अगरबत्ती जल रही थी। पूरे महाराष्ट्रीय ठाट का भोजन देखकर हम खुश हुए। मेरा अनुभव है कि उत्तर प्रदेश के लोग अत्यन्त प्रेम से और आग्रहपूर्वक अतिथियों को भोजन कराते हैं। उनका प्रेम से आग्रहपूर्वक खिलाना हम महाराष्ट्रियों के लिए अनुकरण की वस्तु है। पर उत्तर प्रदेशीय भाई मुझे क्षमा करें। महाराष्ट्र की परोसने की कला से वे अन-भिज्ञ हैं। महाराष्ट्र में बहुत सारी मिठाइयाँ भले ही न मिलें, पर दो-चार जो भी थोड़ी चीजें होती हैं, वे एक विशिष्ट पद्धति से परोसी जाती है; जिसे देखते ही मन प्रसन्न हो उठता है। मैं समझती हूँ कि यदि हर प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त की अच्छी बातों को ग्रहण करें तो कितना अच्छा हो।

दोपहर में कांग्रेस-कार्यकर्ताओं की सभा में विनोबाजी ने अध्ययन न करने के लिए फटकारते हुए कहा कि "कम्युनिस्ट लोग और धार्मिक लोग अपने-अपने साहित्य का तो अध्ययन करते हैं, लेकिन कांग्रेसवाले और रचनात्मक कामवाले बिल्कुल अध्ययन नहीं करते। अध्ययन के बिना प्रगति कैसे होगी ?"

इस चर्चा के बाद मुसलमान भाई आये। उन्होंने उर्दू के बारे में अपनी माँगें पेश कीं। विनोबाजी ने उनसे कहा कि "यदि हमें उर्दू को बढ़ाना है तो उर्दू नागरी-लिपि में भी लिखी जानी चाहिए। मेरा तो मानना है कि भारत की सभी भाषाएँ नागरी-लिपि में लिखी जाय जिससे आदान-प्रदान सुलभ हो जायेगा।"

इस चर्चा के बाद महिलाओं की सभा आरम्भ हुई।

महिलाओं ने शिकायत की—'पुरुष हमें आगे नहीं बढ़ने देते।'

विनोबाजी ने कहा—"तो फिर सत्याग्रह करो। आपमें प्रेम होता ही है। फिर उसके साथ आग्रह आया तो सत्याग्रह हो जाता है। जहाँ प्रेम है वहीं सफलतापूर्वक सत्याग्रह किया जा सकता है।"

संध्या का समय था, निर्मल नीले आकाश में पूनो का चन्द्रमा चमक रहा था। आज का दिन, बुद्ध-जयन्ती का दिन था। प्रार्थना-प्रवचन आरम्भ हुआ।

'न हि वेरेण वेराणि समन्तीघ कुदाचन'
'अवेरेण च समन्ति एस धम्मो सनन्तनो'

ढाई हजार साल पहले ये शब्द प्रकट हुए थे, लेकिन आज फिर ही शब्द दोहराये गये, क्योंकि उनमें त्रिकालातीत सत्य निहित था।

गम्भीर गिरा प्रकट होने लगी: **"मित्रस्य अहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।** वेदों ने कहा है कि दुनिया को शत्रु या मित्र बनाना मेरे हाथ में है। मेरी आँख निर्मल है तो आईने में यह ताकत नहीं है कि वह मलिनता दिखाये। जैसे आईना मेरा प्रतिबिम्बरूप है वैसे यह दुनिया भी मेरा प्रतिबिम्ब है, क्योंकि वह जड़ है और मैं चेतन हूँ। ...... अहिंसा और निर्वैरता का सिद्धान्त भगवान् बुद्ध के और कई सन्तों के जीवन में सिद्ध

हो चुका है। समाज की सारी समस्याएँ हल करने में निर्वैरता का कैसे अमल किया जाय, यह अब सोचना है। ...... राजनैतिक क्षेत्र में गांधीजी ने वही प्रयोग किया और हमने अपनी आजादी अहिंसा के तरीके से हासिल की, यह कोई छोटी बात नहीं है। ...... इस पर ध्यानपूर्वक सोचिये। यह संध्या-समय है, ध्यान-चिन्तन का समय है, ठीक सोचकर रास्ता तय कीजिये। ...... स्वराज्य के पहले हमने अहिंसा अपनायी थी, किन्तु उस समय हमारे लिए हिंसा का रास्ता खुला नहीं था। इसलिए वह अहिंसा अशरण की शरण, अगतिक की गति, अनाथ का आश्रय थी। लेकिन अब हमारे सामने चुनाव है। हम चाहें तो हिंसा का रास्ता ले सकते हैं और चाहें तो अहिंसा का। ...... यदि हम हिंसा का रास्ता लेते हैं तो हमें अमरीका या रूस को गुरु बनाना पड़ेगा। फिर या तो उनका शागिर्द होकर रहना पड़ेगा या अगर हम उनसे भी अधिक बलवान् बने तो दुनिया के लिए खतरा बन जायेंगे। तो क्या गुलाम या खतर-नाक बनना चाहते हैं? ...... सोचिये, जिस तरह प्रलय के समय सर्वत्र पानी ही पानी हो गया था, लेकिन मार्कण्डेय ऋषि अकेला तैरता था और उसने दुनिया को बचाया, उसी तरह आज जब कि सारी दुनिया प्रलय की ओर जा रही है, ऐसे समय जो देश मार्कण्डेय ऋषि के समान तैरेगा वह खुद बचेगा और दुनिया को भी बचायेगा। अहिंसा का रास्ता लेकर हमारा भारत मार्कण्डेय बन सकता है। ...... निर्णय कीजिये, हिंसा या अहिंसा? ...... हवा के समान विचार को कोई नहीं रोक सकता। अहिंसा के रास्ते को लेकर हमारा भारत अपना विचार बाहर भेज सकता है। ढाई हजार साल पहले भगवान् बुद्ध के अनुयायियों ने दुनिया भर में अपना विचार फैलाया। उसी निष्ठा से काम करोगे तो आज भी हमारा अहिंसा का विचार सारी दुनिया में फैल सकता है। मनु महाराज ने भविष्य लिखा था:

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥'

भारत में जो ज्ञानी पैदा होंगे उनसे सारी दुनिया के लोग सबक सीखेंगे। यदि हम अहिंसा का रास्ता लेते हैं तो मनु महाराज का भविष्य सही होकर रहेगा। भगवान् बुद्ध का काम परमेश्वर ने मेरे इन कमजोर कन्धों पर सौंपा है। हम दुनिया को आकार दे सकते हैं। ...... निर्णय करो।"

ये केवल शब्द नहीं थे, हृदय में आग भड़कानेवाली चिनगारियाँ थीं। "अपना दिल चीरकर मैंने आपके सामने रखा है।"—विनोबा ने अन्तिम शब्द कहा। मैं सोचती हूँ, ये सचमुच अन्तिम शब्द थे, क्योंकि इससे ज्यादा और क्या कहा जा सकता था ? शब्दों के द्वारा जो भी व्यक्त हो सकता था, वह प्रकट हो चुका था। अब शब्दों की शक्ति समाप्त हो गयी थी।

'धर्म-चक्र-प्रवर्तन'—हाँ, यही तो था वह शब्द। इस शब्द में केवल प्राचीन गौरव की स्मृतिमात्र रक्षित न थी, बल्कि उज्ज्वल भविष्य का स्वप्न भी था।......

'अक्कोधेन जिने क्कोधं असाधुं साधुना जिने' ...... कारुण्यावतार का विहार चल रहा था। ...... "क्रोध को प्रेम से ही जीता जा सकता है। अंधकार का नाश प्रकाश से ही हो सकता है। हिंसा के दुष्ट चक्र में फँसी दुनिया को अहिंसा द्वारा ही जीता जा सकता है।" ...... किसके हैं ये शब्द ?...... "अगणित मानवों की रक्तधारा से लाल कलिंग-भूमि आज मेरी है ! पर क्या सचमुच वह मेरी है ?" ...... चक्रवर्ती सम्राट् के दिमाग में विचार-चक्र शुरू हो गया और उसी विचार-चक्र में से धर्म-चक्र को गति देने-वाले, 'देवानाम् प्रिय' अशोक का जन्म हुआ था। ...... "अनेक लोगों के विश्वास से निर्मित मेरा अद्वितीय नेतृत्व; पर क्या मैं सचमुच उन असंख्यों के विश्वास का पात्र हूँ ? मेरे स्वागत के लिए उत्सुक जनता की आँखों में जो निराशा, दैन्य, उदासीनता थी, वह मेरी नजरों से नहीं बच सकी। मैं इन लोगों के लिए क्या रहा हूँ ?" ...... विचार-चक्र फिर शुरू होगा। फिर सत्ता दान कर मनुष्य के हृदय के धर्म-चक्र को चलानेवाला कल का अशोक पैदा होगा। ...... हाथों में न शस्त्र है, न अस्त्र; पर संसार को जीतते हुए आगे बढ़नेवाले वे भिक्षु ......और ...... **'क्षुधार्त विश्व**

के लिए जमीन दो, जमीन दो । नवीन धर्म के लिए जमीन दो, जमीन दो।' का गीत गानेवाले ये कौन ?

भूत और भविष्य की सीमा-रेखाएँ धुँधली होने लगीं । वर्तमान में ही दोनों का दर्शन होने लगा। विगत कल की स्मृति और आनेवाले कल का स्वप्न, दोनों का अन्तर न रहा और आज की अनुभूति में दोनों का आभास होने लगा। • • •

चौथा भाग

योगी और कलाकार

बन्थरा (लखनऊ)

१०. ५. १९५२

नित्य की तरह तीन बजे उठकर चार बजे हम निकल पड़े। वही प्रकृति, वे ही सुन्दर दृश्य, वही गति, वे ही सहयात्री और वही नित्य की चर्चा। रोज की तरह सब नित्यकर्म चल रहा था, परन्तु मन में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया था। मन में नयी लौ जल उठी थी, जिसकी रोशनी के प्रकाश से नहाई हुई नयी दुनिया नजर आ रही थी। एक छोटे-से शब्द के द्वारा यह परिवर्तन हुआ था। अणुशक्ति की अपेक्षा शब्दशक्ति अधिक प्रभावोत्पादक होती है। ...... उस शब्द ने नयी दृष्टि दी थी, विश्व-विजय का नया तन्त्र सिखाया गया था। पर इस तन्त्र में स्वयं को जीतने के बाद ही विश्व-विजय की दीक्षा थी। इसलिए मन में एक प्रकार की गम्भीरता छा रही थी।

कल रात की घटना याद हो आयी। अपनी कला दिखाने भारत के दो विख्यात कलाकार आये थे। एक के हाथ में वायलिन था, दूसरे के हाथ में पखावज। विनोबा के शब्दों में एक सुकुमार कला थी, दूसरी मर्दानी कला थी। वायलिन के कोमल, करुण स्वर मानव-हृदय की करुणा को जगा रहे थे। पखावज का गम्भीर निनाद सत्य और अहिंसा के द्वारा असत्य और हिंसा से लड़ने के लिए प्रवृत्त कर रहा था। दोनों कलाकारों की कला उनकी उँगलियों में उतर आयी थी। वे स्वयं तो दुनिया को भूल ही गये; पर विनोबा भी आत्म-विस्मृत हो गये थे। प्रत्येक राग की समाप्ति पर विनोबा धीरे से राग का नाम बता देते थे और ऐसे रसिक संगीतज्ञ की दाद मिलने पर कलाकार दूने उत्साह से नया राग बजाने लगते थे। योगी के शयन का समय ठीक नौ बजे होता; पर आज कलाकारों ने

योगी को भी जीत लिया था। रात को साढ़े दस बजे तक वादन-समारोह चलता रहा।

हम हर रोज नये घर में भोजन करने जाते हैं; पर लगता है, जैसे अपने ही किसी नये घर में भोजन कर रहे हों। घर की स्त्रियों से हमारी दोस्ती हो जाती है, जैसे किसी पुराने जन्म के ऋणानुबन्धी हों। हर घर की स्त्रियाँ हम पर जो प्यार बरसाती हैं, उससे हमारी जिम्मेदारी बढ़ जाती है। इन सबका प्यार हमें ऋणी बना देता है। वह ऋण ऐसा होता है, जो जिन्दगी भर की तपस्या से चुकाया नहीं जा सकता।

आज हमने जिस घर में भोजन किया, वहाँ की एक लड़की ने मुझसे कहा, "क्या आप लोग कल ही चली जायँगी ? सिर्फ एक दिन के लिए आकर इस प्रकार नाता जोड़कर जाना ही था तो आयीं ही क्यों ?"

गुरु-दक्षिणा

नवाबगंज (उन्नाव)
११. ५. १९५२

प्रातः साढ़े चार का समय था। पौ फटी नहीं थी। सैकड़ों कोमल कण्ठों से एक ही ध्वनि निकली—**'भूमि-दान-यज्ञ हम सफल बनायेंगे', 'दुनिया नयी बसायेंगे।'** रास्ते के दोनों ओर नन्हे-नन्हे बच्चे एक कतार में खड़े थे। उनमें से एक ने मधुर स्वर में भूमि-दान-यज्ञ गीत गाया। वे बच्चे दिल में उत्कण्ठापूर्वक रात से ही वहाँ खड़े थे। बाबा को मिलनेवाले फूलों के हार वे बच्चों को पहना देते हैं। फिर जिसको वह हार पहनाया जाता है वह तो खुशी के मारे फूला नहीं समाता। आज जो हार मिले, उनमें एक मखानों का हार था। गौतम ने चुपके से वही हार चुरा लिया। मैं उसे कभी-कभी अंग्रेजी पढ़ाया करती हूँ। इसलिए मैंने उससे उस हार में से अपनी 'गुरुदक्षिणा' ले ही ली। हार खतम होते ही गौतम कहने लगा, "हर रोज ऐसे ही हार मिलते तो कितना अच्छा होता। फूलों के हार तो सूख जाते हैं।"

करण भाई की लड़की, मुन्नी, अभी-अभी यात्री-दल में शामिल हुई है। वह मृदु और गौतम से भी छोटी । उसकी मीठी-मीठी भोली बातें सुनकर हम भी उसके समान बोलने लगते हैं। पन्द्रह मील तक कड़ी धूप में चलने के बाद प्यारी मुन्नी अनेक भावों को व्यक्त करनेवाला एक ही शब्द बोल उठती है, "हाय बाबूजी !" सुनकर हम लोगों का तो श्रम-परिहार ही हो जाता है और हम खिलखिला पड़ते ह।

रात को हम एक धोबी के घर भोजन करने गये। कानपुर जैसे शहर के आसपास रहनेवाले धोबी भी मालदार ही हैं। वहाँ के परिवार की बहनों ने मेरे पैर पड़ना शुरू किया। यह देखकर तो मैं घबड़ाने लगी। 'ना, ना' करती मैं एक को रोकती तो दूसरी चुपचाप ही मेरे पैरों पर अपना माथा टेक देती। आज भी यहाँ पर सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा होने के कारण एक-एक घर में छोटी-बड़ी मिलाकर बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस स्त्रियाँ होती हैं। इन सबको मेरे चरण-स्पर्श से पावन (?) होते देखकर मेरी तो बिना भोजन किये ही यहाँ से कहीं भाग जाने की इच्छा होती थी। कहाँ उनका पावन होने का विश्वास और कहाँ हमारा मानसिक दौर्बल्य।

जय हिन्द, जय दुनिया, जय हरि

उन्नाव

१२. ५. १९५२

विनोबाजी से अक्सर पूछा जाता है कि 'आपका काम कब पूरा होगा?' विनोबाजी जवाब देते हैं—"क्या यह मेरे घर की शादी है? यह तो आपका काम है। मुझसे क्यों पूछते हो कि कब पूरा होगा? आप जब इसे पूरा करना चाहेंगे, तब वह पूरा होगा। परमेश्वर मुझसे जितना काम लेना चाहता है, लेगा और जब वह मुझे उठा लेगा तब मैं आनन्द से उससे मिलने चला जाऊँगा। ......याद रखिये कि यह आपका काम है, मेरा नहीं।" ......यह जवाब सुनकर सवाल पूछनेवाले को लगा होगा जैसे किसी ने तमाचा जड़ा हो।

रास्ते में किसी ने नारा लगाया, **'तिरंगे झंडे की जय ।'** यह सुनकर बाबा ने ऊँचे स्वर में कहा, **'सब झंडों की जय।'** हम लोग भले ही 'सर्वोदय' का नाम लेते हों, पर 'सब झंडों की जय' जैसे विचार को हजम करना हमारे लिए कठिन ही है।

इसी समय विनोबा ने एक घटना का जिक्र करते हुए कहा, "एक दफा एक भाई मुझसे मिलने आये थे, आते ही उन्होंने अभिवादन करते हुए कहा, **'जय हिन्द ।'** मैंने कहा, **जय हिन्द, जय दुनिया, जय हरि ।"**

हमारे यात्री-दल के साथ विनोबा-साहित्य की एक छोटी-सी दूकान भी रहती है। यात्री-दल के दो भाई साहित्य-प्रचार का ही काम करते रहते हैं। सबसे अधिक बिक्री 'गीता-प्रवचन' की होती है। अपने हरएक प्रवचन के अन्त में विनोबाजी किसी कुशल प्रचारक के तौर पर कहते हैं, "मैंने आज का दिन आपके साथ बिताया, कल यहाँ से चला जाऊँगा। जिन्दगी में हम फिर कब मिलेंगे, कौन जानता है? सम्भव है, हमारी यह आखिरी मुलाकात हो।......परन्तु शरीर की संगति से विचार की संगति बेहतर है। मैंने 'गीता-प्रवचन' में अपनी जिन्दगी के अनुभव कहे हैं। यदि आप यह किताब खरीदेंगे तो उसके जरिये मैं सदा आपके पास रहूँगा। विचारों की दुनिया में हम सदैव निकट रहेंगे।"......प्रवचन समाप्त होते ही पुस्तकों की दूकान के पास 'गीता-प्रवचन' खरीदनेवालों की भीड़ लग जाती है।

अमर शहीद गणेशशंकर की याद

कानपुर

१३. ५. १९५२

जैसे-जैसे शहर नजदीक आता गया, भीड़ बढ़ती गयी। आखिर के चार मीलों में ऐसा लगता था, मानो जन-समुद्र को तैरकर ही आगे बढ़ना होगा। रास्ते के दोनों तरफ यद्यपि हाथ-बाँधे दो सौ स्वयंसेवकों की कतार थी, तथापि भीड़ को रोकना असम्भव था। लोग अपनी सुविधानुसार अनेक वाहनों

(साइकिलें, रिक्शे, ताँगे आदि) का उपयोग करते हुए और पैदल आ रहे थे। विनोबाजी के पास पहुँचना असम्भव समझकर लोग उनकी तरफ दूर से ही फूल-मालाएँ फेंककर अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहे थे। सुनते हैं, राम और कृष्ण के अनेक कार्य ऐसे होते थे कि समय-समय पर देवता उन पर पुष्प-वृष्टि करते थे। पर विनोबा पर सतत पुष्प-वृष्टि होती हुई दिखाई दे रही है। देवताओं द्वारा नहीं, जनता-जनार्दन द्वारा। यह ऋतु मोगरे के फूलों की है। इसलिए मोगरे की बहार और सुगन्ध चारों ओर फैली है। गंगा के पुल पर नागरिकों की तरफ से स्वागत की तैयारियाँ जोरों पर थीं। वहाँ पर तो मानो जन-समुद्र ही उमड़ पड़ा था। अब शहर की सीमा लग गयी थी। आगे के तीन मील पर जगह-जगह मंगल आरती उतारी जाती थी। रास्ते में स्थान-स्थान पर स्वागत-सूचक द्वार बने थे और उन पर लिखा था, 'हे युगप्रवर्तक संत, तेरा स्वागत है।', 'बापू के महाशिष्य संत, तेरा स्वागत है।', 'अहिंसक क्रान्ति के प्रणेता, तेरा स्वागत है।' विनोबाजी के आगे बैंड के साथ चार घुड़सवार चल रहे थे। भीड़ से विनोबाजी को बचाने के लिए पीछे से हम लड़कियाँ उन्हें घेरकर चल रही थीं। **'महात्मा गांधी की जय'** के निनाद से आकाश गूँज उठा था। दरिद्रनारायण के प्रतिनिधियों का यह स्वागत देखकर लगता था, मानो नये युग का आगमन हो गया है।

हमारा निवास एक उद्यान के बीच एक सुहावने बँगले में था। द्वार पर पहुँचते ही चन्दन और अक्षत से हम सबका स्वागत हुआ। सारी व्यवस्था अति उत्तम थी।

कानपुरवालों की ओर से पिछले दो महीनों से स्वागत की जोरदार तैयारियाँ चल रही थीं। भूदान के लिए जिले भर में सुचारु रूप से एक आन्दोलन ही चला था। जिले के सब पक्षों के प्रमुख कार्यकर्ताओं की 'विनोबा-स्वागत-समिति' बनायी गयी थी। उस समिति की ओर से जिले भर में विनोबा-साहित्य का प्रचार हुआ। छोटी किताबें तो हजारों की तादाद में बिकीं। जगह-जगह पोस्टर्स द्वारा जनता को पूरी जानकारी दी गयी। भूदान-गीत गाते

हुए भूमि माँगनेवाले कार्यकर्ता गाँव-गाँव घूमने लगे। बड़े लोग, बड़ों के पास जाकर जमीन माँगते थे और छोटे कार्यकर्ता, छोटों के पास जाकर माँगते थे। इन सब प्रयत्नों के परिणामस्वरूप कानपुर जिले में प्रवेश करते ही विनोबाजी को कानपुरवालों ने जिले के लिए मुकर्रर किये हुए दस हजार एकड़ भूमि के कोटे से अधिक भूमि के दानपत्र कानपुर की सभा में अर्पण किये। भूदान-यज्ञ के इतिहास में यह अनोखी घटना थी। अपने प्रवचन में इसकी सराहना करते हुए विनोबाजी ने कहा, "आपने जमीन तो दी, लेकिन उसके साथ दो हजार बैलजोड़ियाँ भी दीजिए।" इस पर कानपुर के प्रमुख भूदान कार्यकर्ता श्री शिवनारायणजी टण्डन ने सभा में ऐलान किया, "विनोबाजी की यह दूसरी माँग भी हम पूरी करेंगे।" यह सुनते ही तालियों की आवाज से आसमान गूँज उठा। यहाँ के सब छोटे-बड़े कार्यकर्ताओं ने इतने उत्साह और लगन से मिल-जुलकर काम किया कि उन्होंने सारे देश के सामने एक मिसाल पेश कर दी।

विनोबाजी के कानपुर-निवास का यहाँ के लोगों ने इस प्रकार योजना करके लाभ उठाया कि विनोबाजी के हर क्षण का ठीक-ठीक उपयोग किया गया, जिससे शहर के सभी पक्षों और तबकों के लोग उनसे मिल सके और अपनी-अपनी परिस्थिति निवेदन कर मार्गदर्शन पा सके।

सबसे पहले गोरक्षावाले आये। विनोबाजी ने उनसे कहा, "गोरक्षा का काम अन्धश्रद्धा से नहीं, वैज्ञानिक दृष्टि रखते हुए करना चाहिए।" इसके बाद जमींदारों के प्रतिनिधि आये। उन्होंने सफेद कमलों से भरा हुआ पलाश-पर्णों का एक सुन्दर पात्र अर्पण किया। फिर उन्होंने अपनी तकलीफें सुनायीं।

विनोबाजी ने उनसे कहा, "आपकी जमीन कानून से तो गयी, पर दिल से कितनी गयी, यह देखना है। मैं तो आपको स्वामित्व-निरसन का पाठ पढ़ाने आया हूँ। ...... मैं जानता हूँ कि आज आपके पास पहले जैसी सम्पत्ति नहीं है; फिर भी मैं चाहता हूँ कि आप यदि अपने से छोटों की तरफ देखें, तो आपको मालूम हो जायगा कि उनसे तो आपकी हालत

कई गुनी अच्छी है। ...... आपकी जमीन तो जाने ही वाली है। आज सारी दुनिया में जमीन के बँटवारे की हवा चल रही है। जहाँ हिंसक क्रान्तियाँ होती हैं, वहाँ पर तो जमीनवालों को कत्ल किया जाता है। फिर जरा सोचिये, इस क्रान्ति में आपको जो तकलीफ हो रही है वह कितनी कम है। मैं भी चाहता हूँ कि आपको कम से कम तकलीफ हो। इसीलिए मैं आपसे भूदान माँग रहा हूँ।"

जमींदारों के जाने के बाद व्यापारी और मजदूरों के प्रतिनिधि आये। उन्होंने मजदूरों की दुर्दशा के बारे में बताया। विनोबाजी ने उनसे कहा, "...... जैसे अहमदाबाद में गांधीजी के नेतृत्व में मजदूरों का एक सुदृढ़ संगठन खड़ा हुआ था, जिसकी मजदूर-मालिक दोनों में नैतिक प्रतिष्ठा थी और जो पक्षपाती नहीं था, वैसा संगठन खड़ा कीजिये तो फिर आपका काम बन सकता है।"

'अमर शहीद' गणेशशंकर विद्यार्थी कानपुर के ही थे। उन्हींके बनाये हुए कई अच्छे कार्यकर्ता आज भूदान का काम करते हैं। विनोबाजी ने अपने प्रवचन में उनके बारे में कहा, "इस नगरी में 'समर्पण-योगी' स्व० गणेशशंकर विद्यार्थीजी की प्रेरणा काम कर रही है। यहाँ पर जो अच्छा काम हुआ, उसका श्रेय किसको दें? मैं मानता हूँ कि उसके मानसिक कारणों में सबसे बड़ा कारण वे हैं। एक मनुष्य के शुद्ध जीवन से ऐसी पुण्य-परम्परा का निर्माण होता है, जो कभी टूटती नहीं। यहाँ पर जो प्रेरणा है उसके पीछे उनके बलिदान की शक्ति है।" ...... किसी सत्प्रवृत्त मनुष्य के जीवन का परिणाम उसकी मृत्यु के बाद भी कैसे दिखाई देता है, इसका यह जीता-जागता उदाहरण था। सूख जाने पर भी बकुल के फूलों की सुगन्ध कायम रहती है।

दोपहर में कार्यकर्ताओं की सभा हुई। सबसे पहला सवाल था, "आपको कैसी जमीन मिल रही है?"

विनोबाजी ने जवाब दिया—"मुझे कैसी जमीन मिल रही है, इसका जवाब तो आपको देना चाहिए, क्योंकि आप ही जमीन लानेवाले ह। ......

मैं चाहता हूँ कि हरएक शख्स ऐसी जमीन दे जो वह अपने लड़के को देता है।...... इस पर कोई सवाल पूछ सकता है कि "यह कैसे सम्भव है?" तो मैं कहूँगा कि जब लोग नालायकों को दत्तक-पुत्र मान लेते हैं, तो फिर मेरे जैसे लायक को अपना पुत्र क्यों नहीं मानेंगे? ......" यह सुनकर सब हँसने लगे।

सायंकालीन सभा का दृश्य अपूर्व था। लाखों की भीड़ होने पर भी व्यवस्था बहुत उत्तम रही। व्यासपीठ तो अति सुन्दरता से सजाया गया था। अमलतास के फीके, पीले फूलों के गुच्छे, लाल-लाल गुलमेंहदी और हरे पत्तों के गुँथे हुए सुन्दर-सुन्दर बन्दनवार चारों ओर लटक रहे थे। सूर्यास्त की अलसायी हुई किरणें अमलतास के कोमल पुष्पों का सौन्दर्य बढ़ा रही थीं। जैसे ही विनोबा व्यास-पीठ पर आये, वैसे ही नजदीक की किसी उच्च अट्टालिका से उनके आने की सूचना बैंड द्वारा दी गयी। इसके बाद यहाँ के संगीत-कॉलेज के विद्यार्थियों ने वृन्द-वादन के साथ **'आनेवाले तुम्हें प्रणाम'** का गीत गाया। अब भी उस गीत की सुरीली तान कानों में गूँज रही है। गीत के समाप्त होते ही एक किशोरी, बंगाली पद्धति से सजाया हुआ पूजा का थाल लेकर सामने आयी।

पहले उसने दूर्वादल से विनोबा के चरणों में जल छिड़का और चरण-धूलि अपने मस्तक पर लगायी। उनके भाल पर चन्दन लगाया तथा अक्षत एवं दूर्वादल उनके मस्तक पर रख दिये। अन्त में बड़े-बड़े गुलाब के सुन्दर फूलों का हार पहनाया।

प्रवचन शुरू हुआ, "गुरुदेव ने गाया है, **'एई भारतेर महामानवेर सागरतीरे'**...... हमारा भारत मानवों का महासागर है। सागर के समान सबको वह अपने पेट में समा लेता है।...... भारत में एक सिद्धान्त स्थिर हुआ है, मनुष्य जीवन का अन्तिम आदर्श है मुक्ति, मुक्ति का अर्थ है हम अपने को भूल जायँ, अहंकारशून्य हो जायँ और विश्वरूप समाजरूप भगवान् में लीन हो जायँ। बिन्दु सिन्धु में लीन हो जाता है, तब वह बड़ा बन जाता है, नष्ट नहीं होता।......

हमें भगवान् के चरण छूना है । समाज में जो दुःखी हैं, पीड़ित हैं, वे भगवान् के चरण हैं। उन्हींकी सेवा करने से हमें भगवान् के चरण-स्पर्श का लाभ होगा। ...... आज हिन्दुस्तान जाग रहा है। हजारों लोग श्रद्धा से भूमिदान दे रहे हैं। अन्धों ने भी दान दिया है। वह रामचरण अन्धा है। उसे मैं कसे भूल सकता हूँ ? ...... उस दिन एक छोटे से गाँव में हमारा पड़ाव था। रात को हम लोग सो गये थे। वह अंधा चार मील की दूरी से बैलगाड़ी पर बैठकर आया। उसने मेरे साथियों को जगाया और दान देकर चला गया। ...... दूसरे दिन जब मुझसे यह बताया गया, तो मैंने कहा, वह अन्धा नहीं था, वह तो भगवान् था। ...... उस अन्धे को क्या दर्शन हुआ ? ...... यह प्रेरणा कहाँ से आती है ? इसका मतलब यही है कि भगवान् इस काम को चाहता है। आप सब महान् हैं, तुच्छ नहीं हैं। इस दुनिया में कोई अपूर्ण नहीं है, सारे मानव पूर्ण हैं। **'पूर्णमदः पूर्णमिदम्'** ...... अहिंसा का रास्ता लीजिये और दुनिया के नेता बन जाइये। जिस तरह सम्राट् अशोक ने बुद्ध भगवान् से प्रेरणा लेकर प्रेम और अहिंसा का संदेश सारी दुनिया में फैलाया, उसी तरह हमें इस अशान्तिमय जगत को शान्ति और अहिंसा का सन्देश देना है। लेकिन उसके लिए हमें अपने निज के जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठापना करनी होगी।"

हमें वामनावतार ही चाहिए

कानपुर

१४. ५. १९५२

प्रातः चार बजे प्रार्थना हुई। शहर के कई नागरिक उपस्थित थे। उसके बाद यहाँ के विकास-बोर्ड द्वारा बननेवाली हरिजन-बस्ती का शिलान्यास विनोबाजी द्वारा निवासस्थान पर ही कराया गया। सबसे पहले लाल-लाल गुलाब-कलियों का एक सुन्दर हार अर्पण किया गया। हार को देखते ही उसे चुरा लेने का दिल हुआ।

शिलान्यास-समारोह के भाषण में विनोबाजी ने कहा, "आपके शहर की प्रतिष्ठा बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं से नहीं; बल्कि इन हरिजन भाइयों के निवासस्थानों से ही होनेवाली है। ...... हमारे शरीर का जो सबसे कमजोर अवयव है, वही हमारी शक्ति है। भंगी हमारा हृदय है। अगर वही फेल हो जायगा, तो एक दिन समाज भी खतम हो जायगा। शृंखला की जो कमजोर कड़ी है, वही उसकी ताकत है। वही टूट जायगी तो कमर टूट जायगी।"

आज मुझे बाबा के एक लेख का अंग्रेजी में अनुवाद करना था। जहाँ उनके भाषणों में वेदान्त आने लगता है वहाँ मेरे दिल में धड़कन पैदा होने लगती है कि अब इसका अनुवाद कैसे करूँ? एक दफा 'परमार्थ-साधना' के लिए ठीक शब्द नहीं मिल रहा था। मेरा सारा काम उस शब्द पर अड़ गया। आखिर मैंने तंग आकर कहा कि इससे तो 'परमार्थ-साधना' करना ही अच्छा होगा। उसी तरह 'आत्मौपम्य बुद्धि' ने आज मेरी जान खा डाली।

इस प्रदेश में जगह-जगह सन् १८५७ के वीरों की स्मृतियाँ छिपी हुई हैं। यहाँ से नजदीक ही बिठूर (ब्रह्मावर्त) नाम का एक ऐतिहासिक स्थान है। यात्री-दल के कुछ भाई-बहन बिठूर देखने जा रहे थे। ठीक उसी समय निवासस्थान पर पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन (Press-Conference) था। अब मेरे सामने सवाल पैदा हुआ कि कहाँ जाऊँ! आखिर यह सोचते हुए कि विगत इतिहास से आँखों के सामने बननेवाले इतिहास को अधिक महत्त्व देना चाहिए, मैंने बिठूर न जाने का तय किया। मेरा चुनाव बिल्कुल ठीक रहा। आज के सवालों के कई जवाब मेरी शंकाओं का समाधान करनेवाले थे।

पुराणों की कथाओं के रूपक आज की परिस्थिति पर लागू करने की विनोबाजी की पद्धति बहुत ही उद्‌बोधक प्रतीत हुई। आज की परिस्थिति को नरसिंहावतार की उपमा देते हुए विनोबाजी ने कहा, "आज की हालत न नयी है, न पुरानी; बल्कि बीच की है। यह नरसिंहावतार चल रहा है। सब अवतारों में यह अवतार भयानक होता है—न पूरा पशु, न पूरा मानव। इसके पहले के अवतारों के बारे में तो हम समझ लेते थे कि ये पशु हैं। लेकिन यह तो संक्रमण-काल चल रहा है।

"मेरा काम नया नहीं है। यह तो वामनावतार चल रहा है। बलिदान का मतलब है, बलि राजा का दिया हुआ दान याने बलवानों का दान; दुर्बलों का नहीं। बलि राजा तो चक्रवर्ती सम्राट् था। आज के वामनावतार में भी तीन कदम भूमि माँगी गयी है। पहला कदम है, अपनी भूमि का छठा हिस्सा दान दीजिये। दूसरा कदम, सालंकृत कन्यादान याने जमीन के साथ और साधनों का भी दान दो और गरीबों की सेवा में लग जाओ। तीसरा कदम, गरीबों की सेवा करते-करते खुद गरीब बन जाओ। **'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्'**...... यह तो पुराना ही काम है। लेकिन जसे युग बदलता है, वैसे ही काम का रूप भी बदल जाता है।"

प्रश्न—"दूसरों की योजना में और आपकी योजना में क्या फर्क है?"

विनोबाजी—"यही फर्क है कि हमारा वामनावतार है और दूसरों का परशुरामावतार या रामावतार। परशुराम ने शस्त्रों के जरिये निःक्षत्रिय पृथ्वी बनाने के लिए इक्कीस दफा प्रयोग किये, लेकिन वे सारे प्रयोग असफल रहे। आज भी परशुराम के प्रयोग चल रहे हैं। वे लोग कहते हैं कि 'शुद्ध' (Purge) करो। जमींदार और पूँजीपतियों को कत्ल कर डालो। रामावतार में राजा रामचन्द्र की आज्ञा से काम चलता है। यही बात आज की भाषा में कहनी हो, तो कहेंगे कि कानून के जरिये बँटवारा किया जाय। लेकिन हमारा काम तो इन दोनों से भिन्न है; क्योंकि हमारा वामनावतार है। हम तो प्रेम से विचार समझाकर जमीन का दान लेते हैं; कोई इनकार नहीं करता, लोग दान देते हैं।"

"वामनावतार के बाद परशुरामावतार या रामावतार इन दोनों में से एक तो लाजिमी है। लेकिन वामनावतार में ही काम बन जाता है तो फिर इनमें से किसी की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। हम रामावतार को पसन्द करेंगे; लेकिन हमें परशुरामावतार तो हर्गिज नहीं चाहिए। क्योंकि परशु-राम के इक्कीस प्रयोगों से यह साबित हो चुका है कि यह असफल ही होने-वाला है। लेकिन सबसे बड़ी बात तो यह ह कि वामनावतार में ही सब काम हो जाय।"

विनोबाजी इन तीन तरीकों को कत्ल, कानून और करुणा का तरीका कहते हैं। हमारे भूदान-कार्यकर्ताओं में ये शब्द इतने प्रिय हो गये हैं कि हमारे यात्री-दल के गौतम और मृदु जैसे बच्चे भी कत्ल, कानन और करुणा के तरीकों का स्पष्टता से विवेचन कर यह साबित कर सकते ह कि करुणा का ही मार्ग सबसे अच्छा है।

प्रश्न—"आज तो आप उनको जमीन दे रहे हैं, जो बिल्कुल बेजमीन हैं; लेकिन बेहतर होता कि आज जिसके पास दो-तीन एकड़ जमीन है, उसे और दो-तीन एकड़ देकर एकॉनॉमिक होल्डिंग्ज (Economic holdings) बनाया जाय। हमारी बुद्धि को तो यही बात जँचती है।"

इस सवाल का जवाब महाभारत की एक कहानी में मिला।

विनोबाजी ने कहा—"सब काम बुद्धि से ही नहीं करने होते, कुछ काम हृदय से भी करने होते हैं। महाभारत की एक कहानी है। यक्ष के सामने धर्मराज खड़ा था। यक्ष के सवालों का जवाब दिये बगैर पानी पीने की कोशिश की, इसलिए उसके चारों भाई मर गये थे। यक्ष ने धर्मराज से सवाल पूछे। उसने अच्छे जवाब दिये, इसलिए यक्ष खुश हो गया और उसने धर्मराज से कहा कि "मैं तुम्हारे एक भाई को जिन्दा करूँगा। बताओ, किसे जिलाऊँ ?" वैसे सबसे उपयोगी तो अर्जुन था। अर्जुन आर्थिक इकाई (Economic Unit) था। परन्तु धर्मराज ने कहा—"हमारा जो सबसे छोटा भाई सहदेव है, उसे जिलाओ। हमारी दूसरी माता का वह सबसे लाड़ला बेटा है।" यह सुनकर यक्ष बहुत खुश हुआ और उसने धर्मराज के सब भाइयों को जिलाया। उसे लगा कि धर्मराज उपयोगितावादी नहीं है, धर्मनिष्ठ है। अर्जुन को जिलाना सबसे लाभदायी था, परंतु उसने लाभ को छोड़ा और सबसे छोटे भाई को जिलाने के लिए कहा। इसीको धर्मदष्टि कहते हैं। ऐसी धर्मदृष्टि रखो और समाज में जो सबसे दुःखी गरीब हैं, उन्हें सुखी बनाने की कोशिश करो।"

अक्सर लोग कहते ह कि "हमें भूदान-यज्ञ का विचार अच्छा मालूम होता है; लेकिन गाँव-गाँव घूमकर जमीन माँगना हमारे लिए सम्भव नहीं है, तो हम किस प्रकार का काम कर सकते हैं?"

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए विनोबाजी ने कहा, "दुनिया में ऐसा कोई नहीं है जो भूदान का काम न कर सके। इसमें हर कोई— स्त्रियाँ, बच्चे, सब हिस्सा ले सकते हैं। यदि आप जमीन नहीं माँग सकते हैं तो विचार-प्रचार का काम कीजिये। भूदान-साहित्य के प्रचार का काम कीजिये। सबसे पहले विचार आता है और उसके बाद आचार......। अक्सर स्त्रियों को जमीन देने का हक नहीं होता, इसलिए वे खुद तो जमीन नहीं दे सकतीं; लेकिन दिलाने का काम कर सकती हैं। गाजियाबाद में एक वकील भाई की पत्नी ने उसे समझाया कि "आपकी वकालत तो अच्छी चलती है और हम खुद जमीन पर काश्त भी नहीं करते हैं तो जमीन रखकर क्या करेंगे ? सब जमीन दान में दे दो।" फिर उस भाई ने सारी जमीन (बारह एकड़) दान में दे दी।......अक्सर पुरुष कहते हैं कि "हम लोग तो दान देना चाहते हैं लेकिन स्त्री और बच्चों की आसक्ति के कारण नहीं दे सकते।" तो यदि स्त्रियाँ ही कहने लग जायँ कि दान दो तो फिर पुरुषों को दान देना ही पड़ेगा। हमने पुराणों में पढ़ा है कि देवों की स्त्रियाँ तो अच्छी होती ही हैं; लेकिन राक्षसों की भी स्त्रियाँ सती-साध्वी होती थीं। रावण की पत्नी मन्दोदरी साध्वी थी, उसने अपने पति को बुराई से बचाने की काफी कोशिश की।......तो इस यज्ञ में हिस्सा न लेनेवाले राक्षसों (हँसी) की स्त्रियाँ मन्दोदरी जैसा काम कर सकती हैं। इसलिए अपने दैवी गुणों से पुरुषों की आसक्ति छुड़ाने का और दान दिलाने का काम वे कर सकती हैं। हमने अक्सर देखा है कि देवों की स्त्रियाँ तो हमें अनुकूल होती ही हैं, लेकिन राक्षसों की स्त्रियाँ भी हमें अनुकूल होती हैं।......और बच्चे तो भूदान का काम कर ही सकते हैं। वे जोरों से भूदान के नारे लगा सकते हैं और गीत गा सकते हैं। इससे तो वह शब्द त्रिभुवन में फैल सकता है।"......आखिरी शब्द सुनकर हममें से कितनों के मन में विचार आया, "काश ! अगर हम इस समय बच्चे होते !"

चर्चा चल रही थी।

प्रश्न—"क्या आप जानते हैं कि आपको दान देनेवाले बड़-बड़े जमींदारों म से बहुत से स्वार्थ की दृष्टि से दान दे रहे ह ?"

विनोबा—"मैं दूसरों की भावनाओं का विश्लेषण नहीं करता। मैं मानता हूँ कि जो भूदान देता है, वह विचार सुनकर देता है और प्रेम से देता है। कोई कल तक प्रेम नहीं करता था तो क्या आज नहीं कर सकता ? मनुष्य का हृदय एक क्षण में बदल सकता है। मनुष्य के हृदय में प्रेम है।

"कम्युनिस्ट मुझ पर आक्षेप करते हैं कि 'विनोबा तो जमींदार और पूँजीपतियों का एजेंट है।' अगर वे लोग मेरा अधिकरण (Agency) कबूल करें तो मैं जरूर उनका एजेंट बनूँगा। गरीबों का एजेंट तो मैं हूँ ही; लेकिन श्रीमानों का भी एजेंट बनना चाहता हूँ। मेरा उद्देश्य तो है **'सर्वोदय'** याने सबका उदय, किसी एक वर्ग का उदय नहीं।"

आखिरी सवाल था—"आपका उत्तराधिकारी कौन है ?"

विनोबा—"मेरा उत्तराधिकारी भगवान् है।"

यह सुनकर सभी लोग चौंक पड़े। विनोबाजी के इस उत्तराधिकारी पर कोई आक्षेप तो नहीं किया जा सकता था। पर यदि वह गलती करे तो हम उसे चुनाव में हरा नहीं सकते।

आज शाम की प्रार्थना-सभा भी कल की तरह विराट् थी। अभि-नन्दनपरक कविताएँ और भूदान-गीतों की तो वर्षा ही हुई। हमारी इस यात्रा में ऐसा एक भी दिन नहीं था जब कि सभा में किसी स्थानीय कवि ने भूदान-गीत अर्पण न किये हों। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त से लेकर देहात की ग्रामीण भाषा में कविता लिखनेवाले अज्ञात कवि तक सकड़ों कवियों ने भूदान-गीत लिखे हैं। हिन्दी साहित्य-जगत् में इन छोटे-बड़े कवियों के भूदान-गीतों ने अपना एक विशेष स्थान पा लिया है।

विनोबाजी ने आज के भाषण में सर्वोदय-विचार के बुनियादी उसूलों पर प्रकाश डाला। फिर आज की सच्ची राजनीति क्या है, इस बारे म बोलते हुए विनोबाजी ने कहा—**'प्रजाशक्तिसंवर्धनम् राजकारणम्'** "देश में अनन्त भेद-भावों के होते हुए भी भेद में अभेद निर्माण करना

और जनशक्ति जाग्रत करना ही सच्ची राजनीति है। अभेद में भेद निर्माण करना कोई अक्लमंदी का काम नहीं है। आज जब कि देश में असंख्य मतभेद मौजूद हैं, तब सबका ध्यान किसी एक बुनियादी मसले पर केन्द्रित करना ही सबसे जरूरी बात है। आज भूदान-यज्ञ के जरिये सबका ध्यान गरीबी की समस्या की ओर केन्द्रित हो रहा है, लोगों में उत्साह पैदा हो रहा है और इस काम को सबकी सहानुभूति हासिल हो रही है।"

विनोबाजी कह रहे थे, पर हमारे राजनीतिज्ञों को इसका भान कब होगा? भगवान् बुद्ध के जमाने में क्या कम शक्तिशाली राजा थे? लेकिन उनकी राजनीति के जो षड्यंत्र चलते थे, उन्हें फुर्सत ही कहाँ थी कि उस पैदल घूमनेवाले द्रष्टा के उपदेश की ओर ध्यान दें। अस्त्र-शस्त्रों की आवाज बुलन्द थी तो एकाकी पथिक की अहिंसा, मैत्री और करुणा की ध्वनि कैसे सुनाई देती?......लेकिन दुनिया उन शक्तिशाली राजाओं को भूल गयी और वह एकाकी पथिक आज भी मानव-हृदय को आकर्षित कर रहा है।......

क्या अब फिर से यह सारा इतिहास दोहराया जानेवाला है?

सर्वोदय स्वप्न नहीं, सत्य है

सचेंडी (कानपुर)

१५. ५. १९५२

भूदान के प्रणेता के स्वागत में कानपुर नगरी ने जो योजकता, कल्पकता, कलात्मकता और भव्यता दिखायी; उसके कारण उस नगरी ने भूदान-यज्ञ के इतिहास में अपना एक स्थान पा लिया है। पिछले दो दिनों में कानपुर की जाग्रति का दर्शन तो हुआ ही था; पर आज जब प्रातः चार बजे हमने प्रस्थान किया तो फिर से उसका दर्शन हुआ। कानपुर पार करने में करीब डेढ़ घण्टा समय लगा। तब तक रास्ते भर संत को बिदाई देने के लिए हजारों की भीड़ दिखाई देती थी। पुष्पवृष्टि और जयजयकार चलता ही रहा। अँधेरा होने के कारण चेहरे दिखाई नहीं दे रहे थे, फिर भी उन चेहरों पर दिखाई देनेवाले भाव हम कल्पना से जान सकते थे। शहर की सीमा तक सैकड़ों नागरिक हमारे साथ चल रहे थे। 'विजयी

'विश्व तिरंगा प्यारा' के रचयिता कवि आजकल हमारे साथ ही घूम रहे हैं। उन्होंने भूदान पर भी एक अच्छा गीत रचा है और चलते समय वे खुद वह गीत गाते रहते हैं। जनता भी उनके साथ गाने लग जाती है। एक कवि अपना गीत गा रहा था :—

'आज गौतम और गांधी की हो रही विजय है।'

इस छोटी-सी पंक्ति में न जाने क्या-क्या निहित है।

पिछले दो दिन धूमधाम के थे, इसलिए आज के गाँव की शान्ति और स्थान की रमणीयता विशेष रूप से प्रतीत हो रही थी। एक छोटे-से तालाब के किनारे हमारा छोटा-सा घर था। तालाब के दूसरे किनारे पर एक विशाल वृक्ष था, जिसकी छाया में बैठकर मैं दिन भर अपना काम करती रही।

आज हम एक बड़े जमींदार के मेहमान थे। हमारे यजमान ने विनोबाजी से कहा कि "आप आये और हमें बचाया, वरना हमारी हालत बहुत खराब हो जाती!" यह कहनेवाला खुद काफी जमीन का दान तो देता ही है, परन्तु दान देने में उसे खुशी भी महसूस होती है। विनोबाजी हमेशा कहते हैं कि "भूदान-यज्ञ के जरिये अमीर और गरीब दोनों की भलाई होगी। वास्तव में उन दोनों के हितों में विरोध है ही नहीं।"......—ऐसी घटनाओं को देखकर उनके इस कथन की सत्यता प्रतीत होती है। 'सर्वोदय' याने कोई कवि की कल्पना नहीं है, बल्कि एक महान् सत्य है, इसका भान हमें भूदान के जरिये हो रहा है। जिन्हें जमीन मिलनेवाली है ऐसे गरीब लोग विनोबाजी को अपना उद्धारक मानते हैं, यह तो स्वाभाविक ही है। परन्तु जिन्हें जमीन देनी पड़ती है, वे भी विनोबाजी को अपना उद्धारक मानते हैं। इसीमें अहिंसा के तंत्र की सफलता निहित है।

हमारे यजमान के एक भाई बहुत मोटे-ताजे थे। उन्होंने विनोबाजी से कहा, "मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।" अक्सर इत्मीनान से बातें होती हैं चलते समय। इसलिए विनोबाजी ने मुस्कराते हुए जवाब दिया—"मैं आपसे यह तो नहीं कह सकता कि कल मेरे साथ पैदल चलिये तब बातें होंगी।" यह सुनकर सब खिलखिलाकर हँस पड़े और स्वयं प्रश्नकर्ता भी हँसने लगे।

गांधी के भारत की ओर दुनिया की निगाहें

बारा (कानपुर)
१६. ५. १९५२

कल चलते समय कमर में दर्द होने के कारण विनोबाजी की चलने की गति काफी कम याने बिल्कुल मेरे जैसी थी। वे खुद को 'प्रजासूय यज्ञ का अश्व' कहा करते हैं। इसलिए आज उन्होंने विनोद म कहा, "आज तो घोड़ा तैयार है । कभी-कभी थक जाता है।"

रास्ते में लक्ष्मीनारायणजी ने विनोबाजी से कहा—"आपका लखनऊ-वाला भाषण 'सर्वोदय' (मासिक) के इस अंक में पूरा छापना होगा।" विनोबाजी ने झट से जवाब दिया—"मुझे आपके 'सर्वोदय' वगैरह की कोई जरूरत नहीं है। मेरा अपना एक खास रेडियो है, उसके जरिये मेरा संदेश सारी दुनिया में कब का फैल गया है। मुझे आपके प्रचार के साधनों की कोई आवश्यकता नहीं महसूस होती।" ...... मुझे याद आया, परसों दक्षिण अमरीका के किसी कोने से एक भाई का विनोबाजी के नाम पत्र आया था। उसने लिखा था कि "गांधी के भारत में आज आपका जो अहिंसा का प्रयोग चल रहा है, उसकी ओर हम सब आशा की निगाह से देख रहे हैं। इस हिंसा और अशान्ति से भरे जगत् में वही एक आशा की किरण नजर आ रही है।" ...... ऐसे कई पत्र दुनिया के हर एक देश से आते रहते हैं। ...... मैं सोचती हूँ कि इन पत्रों के लेखकों को बाबा के इस 'खास रेडियो' द्वारा संदेश मिलते होंगे !

हमारे यात्री-दल के एक रा० स्व० संघ (R. S. S.) के भाई द्वारा उपस्थित की हुई शंकाओं के जवाब में बाबा ने कहा, "गाँवों का सारा कारोबार गाँववालों के ही हाथ में सौंपना चाहिए। अपने गाँव का हित जानने के लिए पर्याप्त अक्ल हरएक में होती है। पर आज अक्ल न होते हुए भी सारे राष्ट्र के बारे में सोचने की कोशिश की जाती है, जिससे कई मतभेद पैदा होते रहते हैं। मैं तो चाहता हूँ कि गाँववाले शहरवालों को जतायें कि 'हमें न आपके राजनैतिक पक्ष चाहिए और न झगड़ा, हम अपना-

अपना देख लेंगे!' ...... आज का राष्ट्रधर्म तो राष्ट्र-अधर्म बन गया है, क्योंकि आज के राष्ट्रधर्म में दूसरे राष्ट्रों से नफरत करने की बात आती है। वैसे तो हम सारे विश्व को ही एक मानते हैं और वास्तव में वह एक है भी। लेकिन आजकल अहंकार के कारण सारे विश्व को कृत्रिम उपायों के जरिये एक बनाने की नाहक कोशिश की जाती है जिससे सैकड़ों मतभेद पैदा हो जाते हैं। सारे विश्व को एक बनाने के लिए कृत्रिम या बाह्य उपायों की जरूरत ही नहीं है। भगवान् ने गीता में कहा है कि 'मैंने सबको एक सूत्र में पिरोया है।' ...... दुनिया मूलतः एक ही है। करने की बात तो यही है कि आज जो भेदाभेद नजर आ रहे हैं उन्हें मिटाया जाय तो फिर विश्व की मूलभूत एकता का दर्शन हो जायगा।

"हमें किसीसे भी डरने की जरूरत नहीं है। सारी दुनिया एक है—ऐसा सोचकर अभिन्नता और अद्वैत को अपने जीवन में लाइये, फिर सारी दुनिया वेदान्त, तत्त्वज्ञान स्वीकार करेगी। ...... मैं जो भविष्य की बात कह रहा हूँ, लिख लीजिये कि "कल सारी दुनिया वेदान्त के तत्त्वज्ञान को स्वीकार करनेवाली है।"

शाम की सभा के बाद यहाँ के कुछ मुसलमान भाई विनोबाजी से मिलने आये। उन्होंने कुरान शरीफ का कुछ अंश सुनाया। जो हिस्सा उन्हें ठीक से याद नहीं था, वह विनोबाजी उन्हें बताते गये। फिर सरल भाषा में उसका अर्थ भी बताते गये। यह देखकर मुसलमान भाइयों को आश्चर्य तथा आनन्द हुआ। विनोबाजी ने गद्गद होकर कहा, "इस छोटे से गाँव में भी कुरान कण्ठस्थ करनेवाले लोग मौजूद हैं, इस बात की मैं बहुत कीमत करता हूँ। यही श्रद्धा है जिसके बल पर हम तर जायँगे।"

ऋषिसत्ता

डींग (कानपुर)

१७. ५. १९५२

"आप पैदल क्यों घूमते हैं?" यह सवाल अक्सर शहरों में पूछा जाता है। इस पर बाबा का जवाब बड़ा मजेदार रहता है—"यदि मैं हवाई जहाज से

घूमता तो मेरा काम भी हवा में ही रह जाता। लेकिन मैं जमीन पर पैर रखकर घूम रहा हूँ, इसलिए मेरा काम जमीन में गहरा जा रहा है। यदि मैं हवाई जहाज में घमता तो मुझे सिर्फ मानपत्र मिलते, भूमि के दानपत्र नहीं।......सत्य का संशोधन करना है, किस काम से अहिंसा चलेगी, इस पर चिन्तन करना है, तो खुली हवा में, मुक्त आकाश के नीचे घूमना चाहिए।......वेदों ने तो आज्ञा दी है कि जो चलता है, वह कृतयुग में रहता है—**'कृतं सम्पद्यते चरन् ।'**

"मैं पैदल घूमता हूँ, इसीलिए तो जनता विश्वासपूर्वक मुझसे बातें करती है। उसके मन में मेरे प्रति आत्मीयता का भाव पैदा होता है।" ......इस आत्मीयता का प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, बाबा से पूछे जानेवाले विविध प्रश्न। जैसे कोई छोटा बालक इत्मीनान से माँ के पास जाकर दुनिया का चाहे जो सवाल पूछ लेता है, वैसे ही लोग इत्मीनान से बाबा के सामने अपना दिल खोलकर रख देते हैं। "आप दुबले क्यों ?" यह सवाल उसी किस्म का एक अजीब सवाल है और उसका उत्तर भी अजीब है। बाबा जवाब देते हैं, "अपने शरीर में जो पंचमहाभूत होते हैं, उनमें से पृथ्वी के अंश को कम करना योगी के लिए ठीक है।...... तपस्वी हमेशा कृश ही होते हैं । ...... अपने शरीर की मिट्टी कम किये बगैर मुझे मिट्टी (भूदान) कैसे मिलेगी ?"

दुनिया के किसी भी विषय के बारे में चाहे जो सवाल पूछो, बाबा का जवाब हाजिर रहता है। यह देखकर मेरे मन में कभी-कभी एक 'दुष्ट' इच्छा पैदा हो जाती है कि कोई भला मानुष ऐसा सवाल क्यों नहीं पूछता, जिसका उत्तर बाबा न दे सकें!

छोटा-सा गाँव होने के कारण आज शाम की सभा में ग्रामीण जनता ही उपस्थित थी, पर विनोबाजी के नव-विचार को ग्रहण करने की क्षमता शहरवालों की अपेक्षा ग्रामीणों में अधिक होती है। शायद यह सोचकर आज उन्होंने एक नव-विचार बताया :

"एक जमाना था, जब सत्ताधारी राजा लोग ऋषियों की सलाह से राज्य चलाते थे । इसका मतलब यह है कि उस समय ऋषियों

की सत्ता चलती थी।......सत्ता और सम्पत्ति से ऋषि सदव अलिप्त रहा करते थे। वे जंगल में रहते थे; ध्यान, चिन्तन, अध्ययन और अध्यापन करते थे। वे अपरिग्रही होते थे, इन्द्रिय-निग्रह करते थे। दुनिया की भलाई की बातें सोचते थे, समाज-धारणा के मूल तत्त्वों का चिन्तन करते थे और राजाओं को योग्य सलाह देते थे।

"मैं मानता हूँ कि राजाओं की सत्ता की अपेक्षा लोक-सत्ता अच्छी है। फिर भी आज के जनतन्त्र में जो बहुसंख्यक, अल्पसंख्यक आदि के भेद पैदा होते हैं, उनके कारण देश का कल्याण नहीं होता।...... सच्ची लोकसत्ता तब स्थापित होगी जब सत्ता का विकेन्द्रीकरण होगा।...... लेकिन आज इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि समाज में एक ऐसा सेवक-वर्ग खड़ा हो जो अपरिग्रही, निष्काम तथा निष्पक्ष हो। ये सेवक सरकार और जनता दोनों से भिन्न होंगे। ये चिन्तन करेंगे और दोनों की गलतियाँ बताकर उचित मार्ग दिखायेंगे। ये सिर्फ सत्य का ही उच्चारण करेंगे। इनके मन में सबके लिए समान भावना रहेगी और ये सबकी ओर मानव के नाते ही देखेंगे।......महाभारत की कहानी है: कृष्ण भगवान् ने स्वयं न लड़ने की बात कबूल करवाकर अर्जुन का सारथी बनना स्वीकार किया था। फिर भी उन्हें एक मर्तबा हाथ में शस्त्र लेना ही पड़ा। पर व्यासमुनि तो सबसे अलिप्त थे। अर्जुन और अश्वत्थामा, दोनों ने ब्रह्मास्त्र छोड़े, तो दुनिया का संहार होने लगा। तब व्यासमुनि दोनों के बीच खड़े हुए और उन्होंने अर्जुन से ब्रह्मास्त्र रोकने के लिए कहा और दुनिया को संहार से बचाया।......इस तरह व्यासमुनि जैसे अलिप्त, निष्पक्ष सेवकों की आज बहुत जरूरत है।...... मुझे उम्मीद है कि 'सर्वोदय-समाज' के जरिये ऐसे सेवक पैदा होंगे।"

भाषण सुनते समय मुझे विनोबाजी के 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' का एक वाक्य याद आया: "स्थितप्रज्ञ के नेतृत्व को स्वीकार करनेवाला समाज ही सबसे अधिक प्रगतिशील और उन्नत समाज है।"

भारत की जनता ने एक दफा स्थितप्रज्ञावस्था तक पहुँचे हुए नेता का नेतृत्व मंजूर किया था, जिससे उसकी निर्णयकुशलता तथा बुद्धिमत्ता का परिचय दुनिया को मिल गया था!

भूमि-वितरण का प्रथम समारोह

पुखरायाँ (कानपुर)

१८. ५. १९५२

आज चलते समय विद्याबहन मुक्तकण्ठ से भजन गा रही थीं। जोरों से हवा चल रही थी और उसकी आवाज हवा के साथ स्पर्धा कर रही थी। विद्याबहन उन साधकों में से एक हैं, जो गीतों के पंखों द्वारा भगवान् के चरणों को स्पर्श करने की मनशा हृदय में रखते हैं।

हवा की गति कुछ कम हुई और पुखरायाँ की जनता के सामने बोलते हुए विनोबाजी की गति बढ़ने लगी, "दुनिया में दो ही दान शाश्वत दान कहे जाते हैं—विद्यादान और भूमिदान! आज विद्यादान तो कौन दे सकता है? मुश्किल से एक-आध ज्ञानी विद्यादान दे सकेगा। इसलिए आप सब भूदान ही दीजिए।"

इसके बाद उन्होंने 'गीता-प्रवचन' की सिफारिश की। इतने में एक भाई खड़े होकर कहने लगे कि "आपका 'गीता-प्रवचन' जहाँ-जहाँ पहुँचता है, वहाँ-वहाँ लोगों के दिलों को प्रभावित किये बगैर नहीं रहता। उसे तो अब जन-हृदय में 'तुलसी-रामायण' जैसा स्थान मिल रहा है। उसे पढ़कर विद्वान को भी रास्ता मिल जाता है और अपढ़ को भी।" यह सुनकर विनोबाजी ने कहा, "जी हाँ। जहाँ वह किताब पहुँचती है, वहाँ हमारा काम जल्दी हो जाता है।...... कोई तलवार से जमीन लेता है और कोई कानून से; पर मैं तो किताब से जमीन ले रहा हूँ। मैं तो आपको विद्या-दान दे रहा हूँ और आपसे मिट्टी जैसी तुच्छ वस्तु ले रहा हूँ। तो, यह सौदा आपके लिए बहुत सस्ता है।"

कानपुर जिले का यह आखिरी पड़ाव था। कानपुर के लोगों ने बहुत-सी बातों में प्रथम नम्बर प्राप्त कर लिया है। वे चाहते थे कि विनोबा द्वारा भूमि-वितरण का हिन्दुस्तान में सबसे पहले समारोह भी अपने ही जिले में मनाया जाय। आज उनकी इच्छा पूर्ण हुई।

पुखरायाँ और नजदीक के सुनरापुर गाँव से दान में मिली हुई जमीन विनोबाजी ने स्वयं अपनी आँखों देखी। जमीन अच्छी थी और उसमें अच्छी फसल होती थी। सुनरापुर में दान में मिली जमीन के टुकड़ों के बीच का एक ही टुकड़ा ऐसा था जो दान में नहीं मिला था। विनोबाजी ने उसके मालिक से कहा, "इतना ही टुकड़ा रखकर क्या करोगे?" मालिक ने फौरन उसका दान-पत्र भर दिया। फिर हमारे यात्री-दल के भाई घर जाकर थालियाँ लाये और उन्होंने गाँव में घूमकर ढिंढोरा पीटकर सबको खबर दी कि "आज १० बजे विनोबाजी के हाथों जमीन का बँटवारा होनेवाला है। अतएव सब भाई-बहन उपस्थित रहें।"

यह सुनकर लोग आश्चर्य से देखने लगे। वे विश्वास नहीं कर सकते थे कि इस तरह बिना किसी शर्त के बेजमीनों में जमीन बाँटी जानेवाली है।...... दोनों गाँवों में कितने लोग बेजमीन हैं, इसकी भी पूछताछ की गयी। सुनरापुर में चार और पुखरायाँ में आठ भूमिहीन निकले जो दूसरों के खेतों पर मजदूरी करते थे।

ठीक समय पर सभा आरम्भ हुई। सभा में दान देनेवाले, लेने-वाले तथा गाँव के अन्य सारे भाई उपस्थित थे। विनोबाजी के शब्दों में वह एक 'मंगल-प्रसंग' था। व्यासपीठ को समारोह के अनुकूल ही सजाया गया था। दोनों ओर आम्रपत्रों से सजाये हुए मंगल-कलश तथा दीप रखे हुए थे। सामने स्वस्तिक तथा ॐ की आकृतियाँ बनायी गयी थीं। सबसे पहले यह बताया गया कि जमीन किसे दी जाती है। जो बेजमीन होगा, जो काश्त करना चाहता होगा, जो काश्त करना जानता होगा तथा जिसके पास स्थायी स्वरूप का दूसरा कोई धन्धा नहीं होगा, वही दान लेने का पात्र हो सकता है। इस सभा में ऐसे 'पात्र' १२ थे। हर परिवार को ५ एकड़ जमीन देने के हिसाब से सिर्फ ६ व्यक्तियों को देने के लिए पर्याप्त भूमि मिली थी। फिर किसे जमीन दी जायगी? ...... विनोबाजी ने बँट-वारे का एक सुव्यवस्थित तंत्र बनाया है, जिसमें पक्षपात के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। भूमिहीन भाई खुद अपने में से सबसे अधिक गरीब

भाइयों को 'पात्र' चुननेवाले थे। स्वयं विनोबाजी तथा सभा में आये हुए अन्य सज्जन केवल 'साक्षी' बनकर बैठे थे। बाँटी जानेवाली जमीन में से एक-तिहाई जमीन हरिजनों को दी जायगी।

अब जमीन मिलेगी, बिना किसी शर्त के, वह जमीन मेरी होगी, इस विचार से भूमिहीन भाई कुछ हकबकाये-से दीख रहे थे। विनोबाजी मंच से नीचे उतरकर उन भाइयों के पास गये। हरएक की पीठ पर हाथ फेरते हुए बातें करने लगे। सहसा उनमें से एक हरिजन-भाई गद्गद होकर बोला—"मेरे लड़के बड़े हैं, हम मजदूरी करके जैसे-तैसे निभा लेंगे। लेकिन वह भाई (दूसरे भाई की ओर इशारा करते हुए) मुझसे भी गरीब है, उसके बच्चे छोटे-छोटे हैं, उसे जमीन दीजिए, मुझे मत दीजिए।"

यह सुनकर सभा में शायद ही ऐसा कोई होगा, जिसकी आँखों में आँसू न आये हों। आज, जब कि दुनिया में चारों ओर सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए एक भयानक स्पर्धा चल रही है, हर कोई अपने स्वार्थ की ही बात सोचता है, उस समय भारत का एक गरीब हरिजन मजदूर खड़ा होकर कहता है, "मुझे मत दीजिए, पहले उसे दीजिए।"...... क्या कहीं गलती से धरती पर सतयुग तो नहीं आ गया? ...... नहीं, अभी तक नहीं आया था। लेकिन नयी दुनिया का एक निर्माता कह रहा था, "पहले उसे दीजिए, वह मुझसे भी अधिक गरीब है!" ...... कहनेवाले के शरीर पर जीर्ण-शीर्ण कपड़े थे, जो उसका युगों का दारिद्रय दुनिया के सामने प्रकट कर रहे थे। लेकिन उसके दिल में अपार मानवता, करुणा और उदारता थी। राक्षसों के संहार के लिए अपनी हड्डियाँ देनेवाले दधीचि मुनि का वह वंशज था। जहाँ असंख्य सत्पुरुषों की तपस्या के पुण्य-कण पड़े हुए थे, उस भारत-भूमि में उसने जन्म लिया था। और इसीलिए वह भूल गया कि भूख के मारे उसकी देह कृश हो रही है, और उसे याद आये उसके दूसरे भाई के भूखों मरनेवाले नन्हे बच्चे!...... अभिमान के साथ सिर ऊँचा करते हुए उसने कहा—"पहले उसे दीजिए।"

विनोबाजी ने सभा में उपस्थित जमीनवालों से कहा, "क्या ऐसे

मंगल अवसर पर आप चुप बैठ सकते हैं? क्या आपमें से कोई भी दान देने के लिए आगे नहीं बढ़ सकता?"..... फौरन एक भाई ने खड़े होकर कहा—"मैं ५ एकड़ दूँगा"..... विनोबाजी ने फिर सवाल किया—"ठीक! और एक परिवार को जमीन मिलेगी। लेकिन क्या बाकी के पाँच व्यक्तियों को खाली हाथ लौटाओगे?"..... सुनते ही दो भाई और खड़े हुए और उन्होंने ५-५ एकड़ जमीन दान में दी। विनोबा कहने लगे, "और तीन भाइयों को जमीन चाहिए।..... यह आनन्द का, प्रेम का प्रसंग है, ऐसा मौका फिर कभी नहीं आयेगा। जिन्दगी में लेने के मौके तो कई आते हैं, पर देने का मौका कम आता है।"..... बँटवारे के काम में मदद देने के लिए सरकारी कागजात लेकर आया हुआ गरीब पटवारी यह सब देख रहा था। उससे रहा नहीं गया। उसने कहा, "मेरी सवा दो बीघे जमीन लीजिए।"..... पाकिस्तान में अपनी जायदाद बर्बाद होते देखकर आया हुआ एक पंजाबी शरणार्थी भाई वहाँ उपस्थित था। यहाँ आकर उसने मेहनत करके थोड़ी-सी जमीन खरीदकर अपना उध्वस्त घर फिर से बसाया था। वह पहले ही पाँच एकड़ भूमि का दान दे चुका था। लेकिन अब उसके हृदय की करुणा ने उसे चुप नहीं बैठने दिया। वह बोल उठा, "मैं अपनी सारी जमीन (बारह बीघा) देता हूँ।" यह सुनकर एक बोल उठा, "अब जितनी कम पड़ती है, उतनी सब मैं दूँगा।"

दान माँगने का काम समाप्त हुआ। दोनों गाँव के सब भूमिहीनों को जमीन मिल गयी। 'किसे चुना जाय' यह सवाल ही नहीं रहा। जिस हरिजन भाई ने कहा था—'पहले उसे दीजिए, मुझे मत दीजिए', उसे भी जमीन मिल गयी। उसीके त्याग ने सबको दान देने की प्रेरणा दी थी। उसे जमीन मिली अपने ही त्याग के कारण। उसने सब कुछ त्याग दिया, इसीलिए उसे सब कुछ मिल गया।

महादेवी ताई ने सब भूमिहीनों को चन्दन-तिलक किया। उन्हें दान नहीं मिला, उन्हीं का हक वापस मिला। वे भूमिपुत्र थे, परन्तु आज तक उन्हें भूमाता के प्यार से वंचित किया गया था। वे काश्त

करते थे, परन्तु दूसरे के खेतों में, मजदूर बनकर। आज भूमिपुत्र भूमाता के प्यार को पा रहा था।

विनोबाजी बोलने लगे। कंठावरोध हो गया, शब्द निकल नहीं रहे थे। सहसा आँसू बहने लगे, राह खुल गयी—"आप देख रहे हैं कि भारतीय हृदय किस तरह काम कर रहा है। और तिस पर भी लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या इस तरह दान माँगकर जमीन मिल सकती है?...... लेकिन गंगा-यमुना की इस पावन-भूमि में क्या हो सकता है, इसका दर्शन आज हमें हो रहा है। हमने अपनी आँखों से एक अनोखा दृश्य देखा है।"

बाबा राघवदासजी बोलने लगे, आँखों से अश्रुधाराएँ बह रही थीं—"मानव-हृदय में वास करनेवाले परमेश्वर का आज दर्शन हुआ।...... 'पहले उसे दीजिए' यह कहनेवाले हरिजन भाई के रूप में भारतीय हृदय का साक्षात्कार हुआ।" भर्रायी हुई आवाज में उन्होंने नानक का भजन गाया :—

'सब महि रम रहिया प्रभु एक।'
'पेखि, पेखि नानक बीग साईं।'

आँसुओं को रोकते हुए भर्रायी आवाज में विनोबाजी ने फिर से बोलना आरम्भ किया, "आज जिनको जमीन मिली है वे तो भाग्यवान हैं ही, लेकिन जिन्होंने जमीन दी, वे बहुत ही भाग्यवान हैं...... आज तक उन दोनों में कोई रिश्ता नहीं था, लेकिन अब दोनों को एक ही प्रेमसूत्र में गूँथा गया है। मैं चाहता हूँ कि जिन्हें जमीन मिली है, वे प्रामाणिकता से भूमाता की सेवा करें, अपने दुर्गुणों को छोड़ें और भगवान् के भक्त बनें।...... जमीन के बँटवारे का इससे बेहतर तरीका दूसरा कोई नहीं हो सकता।

"गीता का नित्य पठन कीजिये। वह माता है। उसने हमेशा मेरी रक्षा की है। उसीकी प्रेरणा से यह यज्ञ आरम्भ हुआ है। उसने मुझे सिखाया है—'कर्म करो, फल की चिन्ता मत करो।' यदि मैं फल की चिन्ता करता तो पहले ही मेरे पंख टूट जाते और आज जो मेरा गगन-विहार हो रहा है, वह न होता।"

भूमि-वितरण का यह प्रथम समारोह था। सिर्फ ६० एकड़ जमीन का बँटवारा हुआ था। फिर भी उससे जमीन देनेवाले, लेनेवाले,

देखनेवाले प्रत्येक के हृदय में क्रान्ति हुई थी।......और जब लाखों, करोड़ों एकड़ भूमि का बँटवारा होगा? ......गणित की सीमा तो कब की पार हो जायगी—परमेश्वर का सारा काम अगणित होता है।

सभा समाप्त हुई। आज के एक दाता ने कहा, "हम खुद को दानी क्यों कहलायें? इससे तो अहंकार हो जाता है। ऐसे महात्मा को भूदान देने से हम खुद पवित्र हो जाते हैं। आज तक मैं वकालत करता था। पर आज से उसे समाप्त कर भूदान के काम में अपना जीवन अर्पण कर दूंगा।"...... दूसरा दाता कहने लगा, "आज जैसी परम आनन्द की अनुभूति मुझे जीवन में कभी नहीं हुई थी।"...... तीसरा दाता कहने लगा, "राम और कृष्ण के जमाने में रहनेवालों से भी हम अधिक भाग्यवान हैं, क्योंकि हम गांधीजी की पुकार सुनकर उसके अनुसार काम कर सके और अब हमें विनोबाजी की पुकार सुनकर भूमिदान देने का महान् अवसर प्राप्त हुआ है।"

किसीने आज के दान देनेवालों और लेनेवालों को इकट्ठा किया, बीच में विनोबाजी को बिठाया और सबकी फोटो खींच ली। सबके मुख पर आनन्द की आभा झलक रही थी।

शाम की प्रार्थना-सभा में जिन्हें जमीन मिली थी, उन्हें उस जमीन के कागजात दिये गये। शिवनारायणजी टण्डन ने हृदय को हिलानेवाला भाषण किया, "भारतीय हृदय की एकमात्र अभिलाषा यही रहती है कि मैंने आज तक जो कमाया उसका त्याग कर दूं, परमेश्वर को समर्पण कर दूं।......जिसे सर्वत्र आत्मा ही आत्मा दिखाई देती है, ऐसे ब्रह्मर्षियों में से विनोबा एक हैं। ऐसा द्रष्टा, स्थितप्रज्ञ नेता हमें मिला, इसलिए हम भगवान् के कृतज्ञ हैं।"

विनोबा ने कहा, "यह बोलने का प्रसंग नहीं है। ......जिस तरह बच्चे को दूध पिलाने में माता को खुशी होती है, उसी तरह आज भूदान देनेवालों को खुशी हो रही है।......मैं कल कानपुर जिले को छोड़कर जा रहा हूँ। लेकिन इस जाने में मैं वियोग अनुभव नहीं कर रहा हूँ; बल्कि मिलन के भाव को लेकर जा रहा हूँ।"

• • •

पाँचवाँ भाग

समय रहते जाग जाइये

कालपी (जालौन)

१६. ५. १६५२

जमुना के एक किनारे पर कानपुर जिला खतम होता है और दूसरे किनारे पर जालौन जिला आरम्भ होता है। कानपुरवासियों ने प्यार से बिदा दी। उन लोगों के साथ बिताये हुए पिछले ६ दिन अविस्मरणीय थे। कानपुर के श्री रामनाथजी टण्डन एवं उनकी पत्नी, दोनों में हमने अपने माता-पिता को ही पा लिया था।

कालपी के पास महर्षि व्यास का स्थान है। सन् १८५७ में तो कालपी विशेष रूप से मशहूर हुई थी। झाँसी की रानी की कई स्मृतियाँ यहाँ छिपी हुई हैं। सुना है कि झाँसी की रानी, तात्या टोपे और नाना साहब पेशवा इन तीनोंकी मुलाकात का स्थान कालपी ही था। यहाँ से बुंदेलखण्ड आरम्भ हो जाता है। सन् १८५७ में सारे बुंदेलखण्ड में क्रान्ति की ज्वालाएँ धधक रही थीं। यहाँ आते ही स्व० सुभद्राकुमारी चौहान के गीत की पंक्तियाँ याद हो आयीं :—

'बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥'

आज जमुना में खूब तैर लिया। तैरने को व्यायाम क्यों कहा जाता है, मेरी समझ में नहीं आता। क्योंकि १४-१५ मील चलने के बाद जब हम नदी के शीतल जल में तैरते हैं, तो लगता है जैसे श्रम-परिहार हो गया हो। अब तक इस यात्रा में गंगा, गोमती, तमसा और यमुना इनसे दोस्ती हुई है।

बुंदेलखण्ड की कड़ी धूप हमें तपा रही थी। यह प्रदेश ऐसा है जहाँ हिन्दुस्तान भर में सबसे अधिक गर्मी पड़ती है। इस प्रदेश में हमारी यात्रा चल रही थी ठीक मई और जून के दिनों में। जाड़े में नैनीताल-

अल्मोड़ा के प्रदेश में, हिमालय की तराई में हमारी यात्रा हुई थी। विनोबाजी के सारे काम उल्टे ही होते हैं!

विनोबाजी नें आज के भाषण में कड़े शब्दों में हमें अपने कर्तव्य का भान कराया :—"स्वतंत्रता के आन्दोलन में कई हजार कार्यकर्ताओं ने अपना जीवन अर्पण किया था, किन्तु आज सभी शववत् हो गये हैं। ......जब से स्वराज्य मिला, हम सब पुरुषार्थहीन बन गये हैं। ...... अगर यही क्रम चला तो हमारा स्वराज्य कैसे टिक सकेगा? ......क्या आप देश की अपार गरीबी नहीं देख रहे हैं? क्या सर्वनाश का प्रसंग आने की जरूरत है, तब जागेंगे? भाइयो, समय रहते जाग जाइये, काम में लग जाइये, नहीं तो फिर पछताना पड़ेगा।"

स्वराज्य के बाद हमारा देश निस्तेज-सा बन गया था। इसलिए उसे जगाने के लिए यह कड़ा प्रहार किया गया। रात को सोते समय एक ही वाक्य याद आ रहा था—'समय रहते जाग जाइये।'

साम्यवाद नहीं, साम्ययोग

आटा, उरई, डकौर (जालौन)

२०, २१, २२ मई, १९५२

आजकल बुन्देलखण्ड की ऊबड़-खाबड़ भूमि पर हमारी यात्रा चल रही है। जंगल, पर्वत आदि का यह प्रदेश है। यहाँ पर पानी की बहुत कमी है। गर्मी में तो कुँओं से पानी निकालने में काफी तकलीफ होती है। इसलिए कड़ी धूप होते हुए भी हमें कम-से-कम पानी में काम चलाना पड़ रहा है। रास्ते में आनेवाली नदियों का तो हम पूरा लाभ उठाते हैं।

रास्ते की चर्चा में बाबा ने 'वेदान्त-धर्म को सारी दुनिया अपनानेवाली है' इस कथन का स्पष्टीकरण करते हुए कहा, "अब तो नास्तिकता और वेदान्त के बीच संघर्ष होनेवाला है। नास्तिकता का तत्त्वज्ञान शरीर को प्रधान मानता है, जिसके कारण मनुष्य का मन सुखोपभोगों की

ओर आकृष्ट हो जाता है। 'मुझे सुख चाहिए' इस विचार से दूसरों के दुःखों के प्रति उदासीनता, ईर्ष्या, कलह आदि पैदा हो जाते हैं। इसके विरोध में वेदान्त खड़ा होगा। वेदान्त कहता है कि हम देह नहीं, आत्मा हैं। आत्मा की सर्वव्यापकता तथा अद्वैत की शिक्षा देनेवाला वेदान्त ही मानव को आज के इस कलह-सत्र से बाहर निकाल सकेगा।"

उरई की सभा में साम्यवाद के बारे में पूछे गये सवाल का जवाब देते हुए उन्होंने कहा, "मैं साम्यवाद नहीं चाहता। गीता का साम्य-योग फैलाना चाहता हूँ। साम्ययोग का मतलब है, दुनिया में सब प्राणियों में एक ही आत्मा वास करती है और मुझमें भी वही आत्मा है, इसका भान कराना।"

डकौर गाँव बाहरी दुनिया से बिल्कुल दूर है। यहाँ पर न रेल आती है, न मोटर। दिन भर कोयल की कूक और मोरों की आवाज सुनाई दे रही थी। आज रात को हमने जिनके यहाँ भोजन किया, उनसे ५०० एकड़ का दान मिला। अक्सर हम भोजन के साथ कुछ दक्षिणा भी मिल जाती है। एक दफा एक होटल के मैनेजर ने एक कुँए का दान दिया और एक मिल के मालिक ने, जिनके यहाँ हमने भोजन किया था, १० बोरिंग-कुँओं का दान दिया।

सबै भूमि गोपाल की

इ ैलिया (हमीरपुर)

२३. ५. १९५२

हमारा सामान ले जानेवाली बैलगाड़ी का गाड़ीवान कह रहा था—"मैंने अपनी जमीन का सबसे बढ़िया दो एकड़ का टुकड़ा दान में दिया है। दिल चाहता है, घर-बार त्यागकर विनोबाजी के साथ रहूँ और देश की सेवा करूँ। कल विनोबाजी ने जो कहा कि सारे गाँव का एक परिवार बनाना चाहिए, वह बात मुझे बहुत पसन्द आयी।" यह कहनेवाला एक गरीब, अनपढ़ किसान था।

मँगरौठ यहाँ से नजदीक ही था, लेकिन विनोबाजी को मँगरौठ ले जाने में बुन्देलखण्ड की ऊबड़-खाबड़ भूमि पर मई की कड़ी धूप में और दो मील चलाना पड़ता, इसलिए सब मँगरौठ-निवासी विनोबाजी के दर्शन के लिए बेतवा नदी के किनारे इकट्ठे हो गये थे। गाँव के बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी उपस्थित थे। महिलाएँ माथे पर मंगल-कलश लिये खड़ी थीं। विनोबाजी वहाँ पाँच मिनट रुके, गाँववालों को मंत्र दिया—**'सबै भूमि गोपाल की।'** मँगरौठवालों ने अपने परिश्रम से नयी पगडंडी बनायी थी, जिसके दोनों ओर दिशासूचक संकेत-चिह्न और पट्टियाँ लगवायी गयी थीं। उसी रास्ते से विनोबाजी इटैलिया की ओर चले।

मँगरौठ के जमींदार दीवान शत्रुघ्न सिंह इस इलाके के प्रभावशाली कार्यकर्ता हैं। उनकी पत्नी—रानी साहिबा तो निरन्तर काम करती रहती हैं। उनमें सादगी और सौजन्य मानो साकार हो गया है। हम बेतवा नदी पारकर चलने लगे तो देखा, हमारे साथ खादी की मोटी साड़ी पहने एक महिला भी चल रही हैं। नर्मदा बेन ने उनसे पूछा—"आप कौन हैं?" उन्होंने सरलता से जवाब दिया—"मैं एक मजदूर हूँ।" हमने बात मान ली। लेकिन बाद में पता चला कि वे तो रानी साहिबा थीं। उन्होंने सारे हमीरपुर जिले में घूम-घूमकर काम किया है। इस जिले में शायद ही ऐसा कोई गाँव हो जहाँ वे न गयी हों। सूत कातना, पर्दा और छुआछूत छोड़ना आदि बातों का उन्होंने पिछले बीस साल से सर्वत्र प्रचार किया है। इसका नतीजा यह हुआ कि इस जिले के गाँव-गाँव से कई बहनों ने स्वतन्त्रता के आन्दोलनों में हिस्सा लिया, और वे जेल भी गयी हैं।

दीवान साहब तथा रानी साहिबा की गत बीस वर्षों की तपस्या से जमीन तो तैयार ही हुई थी, विनोबाजी ने उसमें मन्त्ररूपी बीज बोया—**'सबै भूमि गोपाल की', 'सारे गाँव का एक परिवार बनाइये।'** फिर फसल उगे बगैर कैसे रहती?......विनोबाजी का वह मंत्र लेकर मँगरौठ-निवासी घर लौटे और उन्होंने अत्यन्त सहज भाव से एक महान् क्रान्तिकारी निर्णय कर लिया। सबने मिलकर तय किया—**'सबै भूमि गोपाल की।'**

उस दिन दीवान साहब भूदान के ही काम के लिए कहीं दूसरे गाँव गये थे। रात को लौटकर उन्होंने देखा कि सारे गाँववाले उनकी राह देख रहे थे। न व्याख्यान की जरूरत थी, न सभा की और न प्रचार की। गाँववालों ने दीवान साहब से कहा, "हम सब अपनी सारी जमीन विनोबाजी को दान देंगे।" दीवान साहब ने अपनी सारी भूमि दान में देकर स्वयं मजदूर बनने का निश्चय तो कर ही लिया था।......बस, अब गाँववाले त्याग की मस्ती के आनन्द का अनुभव कर रहे थे। घर जाते हीं उनमें से दो-एक भाइयों को फटकार सुननी पड़ी। कोकिल-कण्ठों से विरोधी स्वर निकला—"सारी जमीन दे डाली, अब क्या खाओगे? दीवान साहब तो खुद कंगाल हो रहे हैं, आप भी उनके पीछे क्यों जाते हो ?" मस्ती के साथ जवाब मिला—"दो हाथ तो हैं ही, मजदूरी करेंगे।" फिर अपने सिद्धान्तों का अपने जीवन के द्वारा परिचय करा देनेवाली रानी साहिबा इस समय चुप कैसे बैठतीं? उन्होंने घर-घर जाकर बहनों को समझाया—"पुरुषों ने क्रान्ति का मार्ग पकड़ा है तो क्या उसमें रुकावट बनना हमें शोभा देता है? हमें तो क्रान्ति का अग्रदूत बनना चाहिए।"

दुनिया में जिसके लिए हजारों का खून बहाया गया, मानवता को कलंकित करनेवाली घटनाएँ घटीं, भारत का साधारण किसान, वही क्रान्ति कितने सहज भाव से कर सकता है और उसे इस बात का भान भी नहीं होता है कि वह एक महान् कार्य कर रहा है। आज दुनिया में सर्वत्र मानवीय मूल्यों को तबाह होते देखकर जो लोग मानवता में श्रद्धा खो बैठे हैं, वे जरा मँगरौठ की सहज क्रान्ति को देखें। उनकी श्रद्धा उन्हें वापस मिल जायगी।

मँगरौठ में कुल १११ परिवार हैं, जिनमें ४५ परिवार भूमिहीन और ६६ भूमिवाले हैं। लेकिन अब तो गाँव की सारी जमीन परमेश्वर की हो गयी है और परमेश्वर के प्रसाद के तौर पर वह जमीन सारे गाँव को वापस मिली है। अब तो न कोई भूमिहीन है, न कोई भूमिवान। जमीन तो सबकी हो गयी है। सब मेहनत करेंगे और मिलकर खायेंगे। गाँव के सब बच्चे एक साथ तालीम पायेंगे और फिर अपने-अपने स्वधर्म के अनुसार काम करेंगे। महिलाएँ पर्दा छोड़कर बाहर निकलेंगी और जीवन

के हर क्षेत्र में समानता के साथ हिस्सा लेंगी। गाँव में कोई बीमार पड़ा तो सारे गाँववाले उसकी चिन्ता करेंगे। किसी पर कोई तकलीफ आ पड़ी तो सारे गाँववाले उसके आँसू पोछने दौड़ पड़ेंगे।

लेकिन यह तो केवल श्रीगणेश ही है। विनोबाजी का आशीर्वाद लेकर मँगरौठवालों ने नयी दुनिया बसाने के लिए नया कदम उठाया है। लम्बी राह चलने के बाद भी दूर दीखनेवाले क्षितिज की तरह जीवन का आदर्श भी सदैव दूर दिखाई देता है। हम उसके निकट नहीं पहुँच पाते। फिर भी अखण्ड चलते रहने में ही मानव-जीवन की सफलता है। संत की कल्पना और वास्तविकता की दूरी को कम करने की मँगरौठवासियों की आकांक्षा आकाश-कुसुम के समान लगती है। तो भी किसी कवि से सुना है कि आकाश में उड़ान भरने पर ईश्वर के चरणों के अधिक निकट जाना सम्भव है।

प्रत्यक्ष अपनी आँखों से अपने किसी स्वप्न को साकार होते देखना शायद ही किसी भाग्यवान को नसीब हुआ हो, लेकिन आज जो असम्भव था वह सम्भव हो गया; क्योंकि जमाने की रफ्तार तेज है। मानव को इसी समय तय करना है कि वह 'सर्वोदय' चाहता है या 'सर्वनाश'?

"मँगरौठ के निवासी कोई यक्ष, किन्नर या गन्धर्व तो नहीं हैं, वे भी हम-आप जैसे मानव ही हैं। तो फिर जो उन्होंने किया वह हरएक गाँव क्यों नहीं कर सकता?"—विनोबाजी अब हरएक गाँव से यही सवाल पूछते जाते हैं।

दीपावली को जगमगाने के लिए एक ही जलता हुआ दीपक पर्याप्त है।

शाकुन्तल की याद

राठ, पनवाड़ी, कुल पहाड़

२४, २५, २६ मई, १९५२

प्रातः चार बजे इटैलिया से निकलते समय देखा, रास्ते के दोनों ओर सैंकड़ों नर-नारी राम-धुन गा रहे थे। गाँव में प्रवेश करते समय स्वागत

और दूसरे ही दिन बिदाई—यही हमारा प्रतिदिन का जीवन है। संत कहते ह—'यह तो दो दिन की जिन्दगी है', लेकिन हमारी तो एक ही दिन की जिन्दगी है।

स्वस्थ और मजबूत महिलाओं को राम-धुन गाते देखकर खशी हुई। ये सब खेतों में काम करनेवाली बहनें थीं। ...... मुझे आभास हुआ कि राम-धुन से कुछ करुण स्वर सुनाई दे रहा है। उस राम-धुन में किसी की स्मृति छिपी हुई थी। शायद इसीलिए ऐसा आभास हुआ हो। हम लोग काफी दूर निकल आये, फिर भी वे लोग हमारे पीछे-पीछे चल रहे थे। आखिर उनकी श्रद्धा के कारण विनोबाजी को रुकना ही पड़ा। वे बोलने लगे। कुछ बहनें पिछड़ गयी थीं। विनोबाजी को रुकते देखकर वे दौड़कर आगे आने लगीं। उनके परों के नूपुरों की कोमल ध्वनि गूँज उठी।

पता ही न चला कि कब बोलना समाप्त हुआ और कब विनोबाजी आगे बढ़ गये। विनोबाजी ने उन्हें घर लौटने को कहा था, इसलिए वे आगे तो नहीं बढ़ सकते थे। लेकिन उनके नेत्र तेजी से आगे बढ़नेवाले पैरों के साथ तेजी से आगे बढ़ रहे थे। कुछ देर बाद हमने पीछे मुड़कर देखा। वे सब उसी स्थान पर चित्रवत् खड़े थे ।

आजकल गर्मी तो इतनी तेज हो गयी है कि लगता है, जैसे भट्ठी में बैठे हों। चारों ेर लू चलती है, जैसे आग की लपटें निकलती हों। हम लोग सोते हैं दरियों पर, पर लगता है जैसे चिता पर सोये हों। रास्ते में अगर गाँव न मिले तो प्यास के मारे प्राण तड़पता है। ऐसे समय अगर भगवान् आकर वरदान माँगने को कहें तो हमारे मुँह से एक ही शब्द निकलेगा 'पानी'। यहाँ के लोग कहते हैं कि बुन्देलखण्ड की कड़ी धूप में घूमना तपस्या ही है। इसलिए वे हमें भी नाहक तपस्वी की उपाधि दे देते हैं। एक दिन चलते समय छोटी माया प्यास से तिलमिला उठी। गौतम ने दो मील दौड़कर किसी गाँव से उसके लिए पानी ला दिया। आखिर वह भी तो बच्चा ही था, लू लगने से उसे बुखार आ

गया। रात को मैंने लोरियाँ गाकर उसे सुला दिया। परिणाम यह हुआ कि अब ये दोनों बच्चे हर रोज बिना लोरियाँ गाये सोते ही नहीं।

अब तक तो बाबा जमीन का छठा हिस्सा ही माँगते थे, लेकिन जब से मँगरौठ गाँव पूरा मिल गया, तब से वे पूरा का पूरा गाँव माँगने लगे हैं। हममें से किसीने मजाक में कहा कि 'मराठी में एक कहावत है कि ब्राह्मण को घर में जरा-सी जगह दे देने पर वह पूरे घर पर कब्जा कर लेता है।'......बस, वैसी ही बात है यह। मैंने कहा—"यह ब्राह्मण तो उससे भी बढ़कर है। यह तो वामन बनकर आया है। इसे सिर्फ घर देने से काम नहीं चलेगा। इसके सामने तो बलि राजा के समान अपना सिर ही झुकाना पड़ेगा।"

'कुल पहाड़' गाँव अपने नाम को सार्थक कर रहा था। पहाड़ियों से घिरा हुआ यह गाँव दूर से ही दिखाई पड़ता था। इस प्रदेश में जगह-जगह कमलों से भरे हुए तालाब भी नजर आते हैं, जिन्हें देखकर धूप कुछ कम मालूम होती है। कुल पहाड़ में हमें कमल-पत्रों पर भोजन करना पड़ा। मैंने विनोद में कहा—"हम कितने अरसिक हैं। जहाँ शकुन्तला इस पत्र पर प्रेम-पत्र लिखती थी वहाँ हम इस पर भोजन कर रहे हैं।" भोजन करते समय मुझे कालिदास के 'शाकुन्तल' के कई दृश्य याद आये, कमलनाल से कमल-पत्र पर पत्र लिखनेवाली शकुन्तला का वर्णन याद आया— **'उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः'** और साथ ही उस पत्र का विषय, **'तव न जाने हृदयम्'** और साथ ही शिरीष-कुसुमों की भी याद आ गयी।

साँप भी पहचानता है

महोबा, कबरई, मटौंध

२७, २८, २९ मई, १९५२

आसपास के ऐतिहासिक स्थानों को देखने के लिए हममें से कुछ लोग निकले। महाराज छत्रसाल का किला और बेला तालाब देखा। सुना

है, यह आल्हा-ऊदल का स्थान है। बेला तालाब पहाड़ियों से घिरा हुआ है। सुबह का समय था, आकाश कुछ-कुछ मेघाच्छादित था। मेघों की आड़ में से छनकर नवोदित सूर्य की किरणें सृष्टि-सौन्दर्य को बढ़ा रही थीं। कमल विकसित हो रहे थे और हम नाव से चल रहे थे। कमल को देखते ही काव्य याद आ जाता है और साथ ही तत्त्वज्ञान। संस्कृत-साहित्य में तो कमल की उपमाएँ भरी पड़ी हैं। साहित्य में भले ही कीचड़ में से पैदा हुए कमल की पवित्रता की उपमा पढ़ी हो और आनन्द भी आया हो, पर आँखों देखे इस दृश्य की अनुभूति कुछ और ही थी। हम कमल-पत्र पर पानी के छींटे उँड़ेलने का खेल खेलने लगे। कितना ही पानी हम कमल-पत्र पर डालें, पर कमल-पत्र को वह जल स्पर्श भी नहीं कर सकता। वह तो सूखा ही रहता है। **'पद्मपत्रमिवाम्भसा'** का स्मरण हुआ। जीवन की क्षणभंगुरता को सूचित करनेवाले कमल-पत्र के वे जल-बिन्दु और जीवन की अलिप्तता बतानेवाले वे कमल-पत्र देखकर कई स्मृतियाँ उमड़ आयीं।

हमारे प्रधानमंत्री ने कहीं कहा था, "ऐतिहासिक स्थानों का हर पत्थर कई घटनाएँ, सुख-दुःख की कहानियाँ बताता है; लेकिन आधुनिक नगर प्राणहीन-से लगते हैं।" किले के खँडहरों को देखते समय इस कथन की अनुभूति होने लगी। वीरों की गर्जनाएँ, राजनीतिज्ञों के षड्यंत्र, नर्तकी के नूपुरों की झनकार, गवैयों की तानें, विद्वानों की ज्ञान-चर्चाएँ—सब कुछ सुना होगा यहाँ के पत्थरों ने। न जाने उनके अन्तर में कितनी स्मृतियाँ छिपी होंगी। लगा, जैसे जीवन के सब कटु-मधुर अनुभव लेकर वे पत्थर विरक्त-से बन गये हों और हम जैसे मुसाफिरों के आगमन से भी उनकी समाधि नहीं टूटती।

हमारे पास समय कम था, इसलिए सब चीजों पर उड़ती नजर ही डाल सकते थे। एक महल के कुछ कमरों में अब पाठशाला चल रही है। उपयोगितावाद की दृष्टि से तो यह ठीक ही था; फिर भी मन को यह बात जँची नहीं। यदि कल ताजमहल में पाठशाला या दवाखाना खोला जाय तो ......!

इस सैर के कारण अतीत में भूले मन को बाबा ने भाषण द्वारा एकदम वर्तमान में ला दिया। कम्युनिस्टों के पूछे सवालों का जवाब देते समय बाबा ने कहा, "मैं नहीं मानता कि समाज में कोई एक शोषक-वर्ग है। दुनिया में शोषण चलता है और हममें से हर कोई एक का शोषक तथा दूसरे से शोषित है। सारा समाज जिसका शोषण करता है, वह भंगी भी अपनी औरत का शोषण करता ही है। शोषण को मिटाने के लिए आज की समाज-रचना में आमूल परिवर्तन करना होगा। मैं एक क्षण के लिए शोषण को बर्दाश्त नहीं कर सकता। इसीलिए तो पैदल घूम रहा हूँ। अहिंसक मार्ग से शोषणहीन समाज कायम करने के काम में भूदान-यज्ञ पहला कदम है।"

महोबा में रात को सबसे ज्यादा गर्मी हुई। आसमान में बदली छा गयी थी और हवा बिल्कुल बन्द थी। रात भर प्राण व्याकुल रहे। लाख कोशिश करने पर भी नींद न आयी। दिल चाहता था, नजदीक के किसी तालाब में जाकर सो जाऊँ। दूसरे दिन मैंने करण भाई से कहा, "यह गर्मी तो हमें उत्तर प्रदेश से भगा देगी।"

हमीरपुर जिले का आखिरी पड़ाव था कबरई। इस जिले में आठ दिनों में १८ हजार एकड़ जमीन मिली। अब जमीन की गति भी तेजी से बढ़ रही है। दीवान साहब के परिवार के लोग पिछले ८ दिनों से हमारे यात्री-दल में शामिल हुए थे। उन सबसे हमारा इतना स्नेह हो गया था कि कल वे जा रहे हैं, इस कल्पना से मन व्यथित हो रहा था। रानी साहिबा तो पैरों में बड़े-बड़े छाले हो जाने पर भी कड़ी धूप में १५ मील चलती थीं। हमने उन्हें कई दफा मना किया, फिर भी वे नहीं मानीं। वे कहती थीं—"भगवान् जाने, बाबा के साथ फिर कब चलना होगा। मैं जब उनके साथ चलती हूँ तो भूल जाती हूँ कि मेरे पैर में छाले हो गये हैं।"

प्रातःकाल की प्रार्थना चल रही थी। तुलसीदासजी के बाँदा जिले में प्रवेश हो रहा था। चारों ओर अँधेरा छाया हुआ था। रास्ते में, बिल्कुल बीचोबीच एक बड़ा साँप फन उठाये बैठा था। विनोबाजी का पैर उस पर

पड़ने ही वाला था कि माया ने उनसे कहा—"बाबा, जरा इधर से चलिये।" वे जरा मुड़कर चलने लगे। उन्हें पता भी नहीं चला कि क्या हुआ है। न जाने क्यों, पर हममें से किसीके भी मन में डर पैदा नहीं हुआ। उस साँप को भी किसीको काटने की इच्छा नहीं हुई। हमें आगे बढ़ते देखकर वह भी चुपचाप चला गया।

शाम की सभा में बाबा ने कहा—"आप दिल के प्रेम-पंछी को कुटुम्ब के पिंजड़े में ही बन्द मत रखिये, उसे गाँव में उड़ने दीजिये और फिर वहाँ से सारे गगन में संचार करने दीजिये।"

"सत्य का प्रचार स्वयं ही हो जाता है। क्या सूरज के प्रचार के लिए विज्ञापन की जरूरत है? उसी तरह सत्य के प्रचार के लिए किसी भी बाह्य साधन की जरूरत नहीं है। सत्य का आचरण करने से सत्य का प्रचार हो जाता है।"

ये विचार कलम द्वारा कागज पर तो लिखे ही गये; लेकिन हृदय-पटल पर भी अंकित हो गये।

जयप्रकाश नारायण का आगमन

बाँदा

३०. ५. १९५२

ऊँची-ऊँची पहाड़ियों में से शान्त बहनेवाली 'केन' नदी के किनारे बाँदा शहर बसा हुआ है। केन के किनारे बाँदावासियों ने शुभ्र कमल-पुष्पों को अर्पण कर बाबा का स्वागत किया।

आज प्रसिद्ध समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण बाबा से मिलने आये। तीन घण्टे तक एकान्त में उनकी वार्ता चलती रही। शाम की प्रार्थना-सभा में दोनों एक ही मंच पर बैठे थे। सभी पक्षों ने अलग-अलग मान-पत्र दिये। उनमें दोनों का स्वागत किया गया था। यह घटना भविष्यसूचक थी। जयप्रकाशजी ने अपने भाषण में कहा, "गांधीजी के चले जाने के

बाद देश में चारों ओर अँधेरा छाया हुआ नजर आ रहा था। रूस के मार्ग से जाने में खतरा है—इस बात का भान तो हो चुका था; लेकिन गांधीजी के मार्ग से, अहिंसा के मार्ग से सारे मसले किस तरह हल किये जा सकते हैं, यह कोई नहीं बता सकता था। इसलिए सर्वत्र निराशा नजर आ रही थी। लेकिन अब विनोबाजी के भूदान-यज्ञ के जरिये देश को आशा की किरण मिली। दिल में विश्वास पैदा हुआ कि विनोबाजी के मार्ग से दुनिया का भला हो सकता है और नयी दुनिया का निर्माण हो सकता है।"

प्रार्थना के समय जयप्रकाशजी नेत्र बन्दकर शान्त बैठे थे। मुझे व्हिन्सेन्ट शीन की किताब का एक प्रसंग याद आया। ...... एक दफा उस लेखक ने जयप्रकाशजी से कहा—"मेरा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) पर का विश्वास उड़ गया है। अब मैं भगवान् को मानने लगा हूँ।" यह कहकर उसने जयप्रकाशजी की ओर देखा। उसे लग रहा था कि यह समाजवादी नेता उसके कथन का उपहास करेगा। लेकिन जयप्रकाशजी ने सिर उठाकर उसकी ओर देखते हुए कहा—"मैं भी भगवान् को मानता हूँ (I too believe in God.)।"

जयप्रकाशजी के मुख से निकलनेवाले शब्द दिल में क्रान्ति की आग भड़कानेवाले होते हैं; लेकिन उन शब्दों का उच्चारण होता है अत्यन्त शान्त, अविवश, अविचल मुद्रा से। हममें से किसीने उनसे पूछा—"१९४२ में आप जेल से कैसे भागे?" मंद-मंद मुसकराते हुए उन्होंने कहा—"बहुत आसान तरीके से!" फिर उन्होंने अपने जीवन की वह क्रान्तिकारी घटना सुनायी। जेल की दीवार कैसे पार की, जंगलों में से काँटों के रास्ते छिप-छिपकर कैसे भागे—सारा वर्णन कह सुनाया; लेकिन इतनी शान्ति और अविकलता से कि आवाज में उतार-चढ़ाव भी नहीं था। मुझे लगा, इनका व्यक्तित्व तो एक पहेली है।

फिर कब आओगे ?

खुरहँट, बन्दौसा, चित्रकूट, पहाड़ी

३१ मई, १, २, ३ जून, १९५२

खुरहँट में हरिजनों के यहाँ हम लोगों को भोजन का निमंत्रण था। वे सब बेजमीन मजदूर थे, बिल्कुल गरीब थे; लेकिन उन्होंने चन्दा करके 'संत के सहयात्रियों' को भोजन के लिए अपने घर बुलाया। हमारे संविधान से तो अस्पृश्यता मिट गयी है; लेकिन गाँवों में अभी भी हरिजनों की हालत वैसी ही है। इन लोगों को गाँव के कुँओं पर पानी भरने नहीं दिया जाता और इस कड़ी धूप में बाहर के किसी दूर के कुँए से पानी लाना पड़ता है। हमारा आज का भोजन था दाल और रोटी; लेकिन इतना मधुर भोजन हमने जिन्दगी में शायद ही कभी किया हो। हरिजन भाई-बहन तो खुशी के मारे फूले नहीं समाते थे। सारे समाज ने आज तक जिनकी उपेक्षा की थी, उन्हीं के यहाँ आज संत के सहयात्री मेहमान बनकर आये थे। हमने बहनों में जाकर बातचीत शुरू की। वे अपनी दुर्दशा का हाल बता रही थीं और हमारे आने से उन्हें कितनी खुशी हुई, इसका भी वर्णन कर रही थीं। हम लोग उनकी भाषा ठीक से नहीं समझ पा रही थीं; लेकिन दिल की भाषा तो समझ ही ली। बिदा करते समय उन बहनों ने बार-बार अपने हाथों में हमारा हाथ लेकर पूछा—"फिर कब आओगी ?" लगा, जैसे उनके मुख से भारत की समस्त पीड़ित, दलित, दुःखी जनता हमें पुकार रही हो, पूछ रही हो—"फिर कब आओगी ?"

बन्दौसा जाते समय शीतल वायु, रास्ते में दोनों ओर बड़े-बड़े पेड़ों की छाया और सबसे बढ़कर बाबा का सान्निध्य—इन सबके कारण पता भी नहीं चला कि आज १६ मील चलना पड़ा और धूप भी तेज है। बाबा ने मुझसे कहा, "तुम अब काफी पक्की बन गयी हो। धीरे-धीरे बिल्कुल देहाती बन जाओगी। असल में मन की ताकत पर ही सब कुछ निर्भर रहता है। शरीर के सुख की ओर जितना ध्यान दो, उतना ही

वह दुर्बल बन जाता है। मैं तो बचपन में बहुत ही दुबला था। किसी को उम्मीद भी नहीं थी कि मैं ज्यादा दिन तक जिन्दा रहूँगा। लेकिन मेरा मन बलवान था, इसलिए मैं हजारों मील की यात्रा कर रहा हूँ।"

चित्रकूट तुलसीदासजी का आराधना-स्थल है। कहा जाता है कि अत्रि ऋषि और सती अनुसूया का आश्रम यहीं था। यहीं से मन्दाकिनी नदी बहती है। उसके किनारे कई मन्दिर बने हैं। यह पवित्र भूमि मानी जाती है। यात्रा के दिनों में हजारों यात्री मन्दाकिनी में स्नान करते हैं। मैं नहीं जानती कि उससे क्या पुण्य प्राप्त होता होगा; लेकिन मैंने जब दोपहर की कड़ी धूप में मंदाकिनी के शीतल-स्वच्छ जल में डुबकी लगायी तो जल के स्पर्श से अपार आनन्द की अनुभूति हुई।

चित्रकूट के इर्द-गिर्द घनी झाड़ी और सृष्टि के नयन-मनोहर रूप को देखकर लगा, जैसे बुन्देलखण्ड की कड़ी धूप कुछ कम हुई हो। तुलसीदासजी ने तो कहा ही है:—

'अब चित चेत चित्रकूटहिं चलु।'

आज के प्रवचन में विनोबाजी ने कहा, "जनसेवा ही सच्ची पूजा है।" विद्या बहन ने बाद में मुझे बताया कि तेलगू में एक कहावत है—

'मानव-सेवा माधव-सेवा'

अभी खबर आयी कि गांधीजी की पोती, सुमित्रा, एम० ए० की परीक्षा में प्रथम आयी और उसे स्वर्ण-पदक मिला है। वह मेरी प्यारी सहेली है, इसलिए मैंने बहुत खुश होकर बाबा को यह खबर सुनायी। दामोदरजी ने उनसे कहा—"आप सुमि को कुछ लिखिये।" इस पर बाबा ने हँसते हुए कहा, "अगर फेल होती तो उसे सांत्वना देने के लिए जरूर कुछ लिखता। लेकिन अब तो उसे स्वर्ण-पदक मिला है। उस पर मैं भी कुछ लिखूँ तो उसके बोझ से वह दब जायगी।"

शाम को सभा के बाद नित्यक्रम के अनुसार गाँव के कार्यकर्ता बाबा से बातें कर रहे थे। किसी ने कहा, "गाँवों में सेवाग्राम-पद्धति के शौच-

कूप बनाने की तालीम देनी चाहिए।" बाबा ने कहा—"कोई भी नया और 'महान् काम पागलों से ही हो सकता है। मुझे उम्मीद है कि यह काम करने के लिए भी कोई पागल जरूर निकलेगा।"

घर पर कई लोग मुझसे कहते थे कि "विनोबा के साथ पदल चलने का साहस मत कर।" अब मैं उन्हें भी बाबा के ही शब्दों में जवाब दूँगी, "पागलों से ही क्रान्ति हो सकती है।"

सत्यमेव जयते

राजापुर (बाँदा)
४. ६. १९५२

आज चलना आरम्भ किया तभी से आसमान में बादल दिखाई दे रहे थे। बीच-बीच में बिजली भी चमक रही थी, जो मार्गदर्शन कर रही थी। थोड़ी ही देर में बूँदाबाँदी होने लगी। ग्रीष्म की अति प्रखर धूप के बाद आनेवाली यह प्रथम वर्षा इतनी सुखदायी प्रतीत हुई कि गुरुदेव के शब्दों में—'दहन से तप्त हुई धरती पर परमेश्वर की इन्द्रलोक से भेजी हुई अमृत की वर्षा' थी वह! बारिश हो रही थी, पवन भी उसके साथ बह रहा था। हममें से हर कोई अपनी-अपनी भाषा का, वर्षा के स्वागत का गीत गाने लगा। गौतम और माया तो नाचने लग गये। गुरुदेव की सबसे प्रिय ऋतु 'वर्षा' है। उनका वह वर्षा-गीत याद आया जिसमें कवि कहता है कि 'कई युग बीत चुके, एक जमाना था जब ऐसा ही आषाढ़ का महीना चल रहा था, बारिश हो रही थी। रेवा-नदी के किनारे बैठे हुए किसी कवि के गीत के स्वर सुनाई दे रहे थे।'

बारिश कुछ कम हुई और चर्चा आरम्भ हुई। मैंने पूछा, "आप कहते हैं कि मानव का जीवन सुखमय है; लेकिन भगवान् बुद्ध तो कहते हैं कि जीवन दुःखमय है। उन्होंने दुःख को प्रथम 'आर्य सत्य' कहा था। फिर दोनों के विचारों में इस तरह का विरोध क्यों?"

बाबा ने कहा, "भगवान् बुद्ध ने मानव-जीवन को दुःखमय कहा था, वह सत्य ही है। लेकिन मैं जीवन की ओर आत्मा की दृष्टि से देखतें हुए कहता हूँ कि जीवन सुखमय है। वैसे देखा जाय तो जीवन आज भी दुःखमय है। लेकिन भगवान् बुद्ध ने दुःख का कारण क्या बताया था ?"

मैंने कहा, "तृष्णा।"

"और उस तृष्णा के विनाश का मार्ग ?" बाबा ने फिर पूछा।

मैंने कहा, "तृष्णाक्षय।"

बाबा बोलने लगे, "ठीक ! तो फिर इसका मतलब यह हुआ कि हमारे सब दुःखों का कारण है वासना !......जीवन तो सुखमय है; लेकिन वासना-नाश होने के बाद ही।"

शंका-समाधान हो चुका था, इसलिए मैंने दूसरा सवाल पूछना आरम्भ किया। मैंने पूछा, "अक्सर कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध का तत्त्वज्ञान निराशावादी (Pessimistic) है, यह कहाँ तक सच है ?"

बाबा ने कहा, "यहाँ पर आशावाद (Optimism) और निराशावाद (Pessimism) जैसे शब्दों का प्रयोग करना ही अयोग्य है। भगवान् बुद्ध का तत्त्वज्ञान बिल्कुल निराशावादी है ही नहीं। लोकमान्य तिलक ने अपने 'गीता-रहस्य' में यही कहा है कि संन्यास का मतलब निराश होकर जीवन से भाग जाना नहीं है। संन्यास का मतलब है, सच्चे आनन्द की प्राप्ति की इच्छा। जो निराशावादी होते हैं उनकी इच्छाएँ नष्ट नहीं हुई रहतीं, जिन्दा ही रहती हैं। लेकिन संन्यासी की इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और उसे शाश्वत आनन्द की प्राप्ति हो जाती है।"

मैंने पूछा, "साहित्य में दुःखान्त (Tragedy) को अधिक सुन्दर तथा कलापूर्ण माना जाता है, इसका कारण क्या है ?"

बाबा—"क्या दुःखान्त (Tragedy) का मतलब यह है कि सज्जन का दुःखान्त हो जाता है ? वास्तव में देखा जाय तो सज्जन का दुःखान्त हो ही नहीं सकता। यदि सिर्फ इस दुनिया की दृष्टि से देखा जाय तो कह सकते हैं कि सज्जन को काफी तकलीफें झेलनी पड़ती हैं और दुर्जन मौज उड़ाते दिखाई पड़ते हैं। और इसी साधारण दृष्टि से देखा जाय तो

'दुःखान्तिका' लिखी जा सकती है। लेकिन हमारा विश्वास है कि आखिर में सज्जनता की ही विजय होती है। उस दुनिया में सज्जनता की ही कीमत की जाती है; लेकिन जरा लम्बी नजर से देखा जाय तो मालूम होगा कि इस दुनिया में भी सज्जनता की ही विजय होती है। ...... अब बापू की ही मिसाल लीजिये। ...... उनके जैसी उत्तम मृत्यु प्राप्त होना दुर्लभ ही कहा जायगा। ...... उनका दिन भर का सारा काम समाप्त हो चुका था। प्रतिदिन के नियमानुसार सूत कातना भी हो चुका था। प्रार्थना के लिए जा रहे थे और तिस पर भी थोड़ी देर हो जाने के कारण मन में भगवान् के सिवा दूसरा विचार भी नहीं था। ऐसे समय दो गोलियाँ लग जाती हैं, मुख से राम-नाम निकलता है और कुछ क्षणों में मृत्यु हो जाती है। कितना बड़ा भाग्य है यह! मरते समय मुख में राम-नाम आये, इसके लिए कितनों को कितनी तपस्या करनी पड़ती है। ...... एक दफा मेरी उनसे बातचीत चल रही थी। तब उन्होंने कहा—"ज्ञानी सर्वथा अहंकारशून्य होता है, यह कहना गलत है। जब तक देह है तब तक कुछ न कुछ अहंकार तो रहेगा ही, बिल्कुल खत्म नहीं होगा। हाँ, धीरे-धीरे खत्म होता जायगा। लेकिन जिस क्षण अहंकार बिल्कुल नष्ट हो जायगा, उसी क्षण यह देह एक ढेर के समान गिर जायगी।"...... ठीक वैसी ही मृत्यु उनकी हुई।

"कुछ लोग कहते हैं कि 'बापू का काम पूरा होने के पहले उन्हें चला जाना पड़ा, इसलिए उनके जीवन को असफल कहना होगा।' लेकिन यह कहना ठीक नहीं है। क्या दुनिया की सारी समस्याओं को हल करने का उन्होंने ठेका लिया था? ...... परमेश्वर की दुनिया तो चलती ही रहती है। उसकी समस्याएँ भी अगणित होती हैं और उन्हें हल करने की जिम्मेदारी भी परमेश्वर की ही होती है। बीच-बीच में वह किसी-किसी को अपना साधन बनाकर भेजता रहता है। यदि बापू के व्यक्तिगत जीवन की कोई समस्या होती और उसे हल किये बगैर वे चले जाते तो फिर हम कह सकते थे कि वे असफल रहे। ...... लेकिन समस्याएँ तो उनकी अपनी नहीं थीं, दुनिया की ही थीं।

विनोबा के साथ

"बापू की मृत्यु के बारे में भिन्न-भिन्न लोगों के भिन्न-भिन्न विचार हो सकते हैं; लेकिन उनका अपना निजी जीवन नहीं था। वे तो सारी दुनिया के साथ एकरूप हो गये थे। हम सभी के पुण्य से वे पुण्यवान बन जाते थे और हम सभी के पाप से पापी। हम सभी के पापों का बोझ उन्हीं के सिर पर था, उसी पाप का प्रायश्चित्त है—वह मृत्यु।

"समत्व एक अत्यन्त दुर्लभ चीज है। लेकिन मुझे तो दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने में ही आनन्द महसूस होता है। ...... वैसे देखा जाय तो परिपूर्ण ज्ञानी, समत्वयुक्त व्यक्ति इस दुनिया में मिलना अशक्य ही है। किसी भी महापुरुष के जीवन में बिल्कुल पूर्णता नजर नहीं आती, कुछ-न-कुछ अपूर्णता तो रहती ही है। पूर्ण समता तो अव्यक्त ही रहेगी। व्यक्त होने का मतलब ही है कि उसमें कुछ-न-कुछ अपूर्णता जरूर है। पूर्णता तो अव्यक्त परमेश्वर में ही पायी जा सकती है। लेकिन महापुरुषों के जीवन से हमें प्रेरणा मिलती है। उनमें हम अपनी ही आत्मा के परिशुद्ध स्वरूप को देखते हैं। उसी तरह उनमें जो अपूर्णता होती है, उनके दर्शन से भी लाभ होता है।...... मेरा ऐसा मत है कि 'ज्ञानेश्वर' ही एक ऐसा व्यक्ति है जो समता के आदर्श के काफी निकट पहुचा था। उसके सारे लेखन में कहीं एक भी कटु शब्द नहीं मिलता।...... वैसे उसकी जिन्दगी भी छोटी-सी ही थी।

"मातृभाषा मराठी होने के कारण मैंने बचपन से ज्ञानेश्वर की किताबों का अध्ययन किया है। इसलिए उसके विचारों का परिचय मुझे बचपन से हुआ है। इसलिए सम्भव है, उसके बारे में मैंने जो कहा है उसमें कुछ पक्षपात हो। फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि सब महापुरुषों में ज्ञानेश्वर ही एक ऐसा है जो 'समत्व' के आदर्श के सबसे निकट पहुँच चुका था।

"मुझसे कितन ी लोग कहा करते थे—"विश्वामित्र भी जो नहीं कर सका वह तुम कैसे कर सकोगे?"...... इस पर मैं जवाब देता था—"मैं तो विश्वामित्र के कंधों पर खड़ा हूँ। बाप के कन्धों पर खड़ा बालक

अधिक दूर का देख सकता है। ...... आज तक के सभी ऋषियों के अनुभवों का लाभ मुझे मिल रहा है । ...... मुझे सफल बनाने के लिए ही विश्वामित्र असफल हुआ।"

स्वागत के लिए राजापुर से आयी हुई भजन-मंडली की रामधुन की आवाज सुनते ही हमारी चर्चा समाप्त हुई। 'राजापुर' महाकवि तुलसीदास का जन्मस्थान है। जमुना के किनारे जहाँ उनका घर था, उसी स्थान पर अब एक मन्दिर बनाया गया है जिसमें राम, लक्ष्मण, सीता और तुलसी-दासजी की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर में तुलसीदासजी की लिखी हुई, उन्हींके सुन्दर हस्ताक्षर की रामायण के अयोध्याकाण्ड की एक प्रतिलिपि है। बाबा ने भक्त तथा वैज्ञानिक की दृष्टि से उस रामायण को देखा।

हमारा आज का निवासस्थान जमुना के किनारे एक ऊँचे टीले पर रहा। पास में ही वह मन्दिर था जो तुलसीदासजी का घर था। कल बारिश होने के कारण आज जमुना का पानी निर्मल नहीं रहा, इसलिए तैरन का मजा तो नहीं मिला, फिर भी हमने जमुना में स्नान करके थोड़ा-सा पुण्य हासिल कर ही लिया।

आज की सभा का आरम्भ हुआ वेदमंत्रों के साथ। फिर संस्कृत में मान-पत्र पढ़ा गया। उसके बाद छोटा-सा कीर्तन और रामायण-पाठ हुआ। ...... आज के भाषण में तुलसीदासजी की स्मृति में विनोबाजी बार-बार गद्गद हो गये।

महात्मा गांधी की जय

सुरधुआ, कमासिन, किशुनपुर (बाँदा)

५, ६, ७ जून, १९५२

चलते समय किसी ने बाबा से पूछा कि "कर्तव्य का निर्णय कैसे किया जा सकता है?"

बाबा न जवाब दिया, "कर्त्तव्य का निर्णय करने की जरूरत नहीं पड़ती, वह तो सहज ही प्राप्त हो जाता है। मनुष्य को अपना-अपना-

स्वधर्म नहीं चुनना पड़ता, माँ के समान स्वधर्म भी पैदा होते ही प्राप्त हो जाता है। अब यह सवाल हो सकता है कि स्वधर्म कैसे पहचाना जाय? लेकिन समझ लो कि जिस काम में अपने मन को विशेष आनन्द महसूस होता है, वही हमारा स्वधर्म है। मुझे दिन-ब-दिन आत्मा के चिन्तन को छोड़कर और किसी काम में आनन्द नहीं महसूस होता। इसलिए मेरा स्वधर्म है 'आत्मचिन्तन'। अब मुझमें कोई भी वासना नहीं रही। इसी क्षण मेरी मृत्यु हो जाय तो मैं परमेश्वर का चिन्तन करता ही रहूँगा और मृत्यु के बाद परमेश्वर में लीन हो जाऊँगा।"

हमारा आज का निवासस्थान भी बिल्कुल नदी के किनारे ही था। जब तूफान चल रहा था तब नदी का सौन्दर्य अनुपम हो उठा। आसमान के बादलों की छाया नदी के पानी पर पड़ती और कई चित्र बन जाते। फिर जोरों से हवा चलने लगती और वे सारे चित्र मिट जाते। सफेद बगुलों का एक झुण्ड बड़ी शान से तैरता हुआ जा रहा था। हम किनारे पर बैठकर गीत गा रहे थे। **'शिष्टागमने अनध्यायः'**—वचन के अनुसार हम बारिश, तूफान आदि के आगमन पर काम न करते हुए छुट्टी मना लेते हैं।

बाँदा जिले का आखिरी पड़ाव था कमासिन। एक हफ्ता पहले जब हम लोगों ने इस जिले में प्रवेश किया था तो यही बात सुनाई दे रही थी—'इस जिले में कुछ भी काम नहीं हुआ, जमीन बहुत ही कम मिलेगी।' लेकिन विनोबाजी ने इस जिले में प्रवेश करते ही कह दिया था—"तुलसी-दासजी के जिले में तो मुझे बिना घूमे ही जमीन मिलनी चाहिए। जहाँ पर उस संत ने तपस्या की, उससे मैं बहुत अपेक्षा रखता हूँ।" ...... और कमासिन में हमने देखा कि तुलसीदासजी की तपस्या का फल प्राप्त हुआ था। सात दिनों में २१ हजार एकड़ जमीन का दान मिला था। यहाँ के कुछ कार्यकर्ता गत सात दिनों में दिन भर जीप लेकर घूमते और शाम की सभा में दान-पत्रों को देकर चले जाते थे।

बाँदा छोड़कर फतहपुर जिले में प्रवेश करते समय नाव से जमुना नदी

पार करनी थी। जमुना की भूरे रंग की रेत देखकर ऐसा लगा, मानो मखमल का गलीचा हो। सूर्य की किरणों से चमकती हुई उस रेत के गलीचे पर पैर रखने को इसलिए जी नहीं चाहता था कि कहीं उसकी शोभा न बिगड़ जाय। फूलों तथा पत्तों से सजायी नाव में पैर रखते ही फतहपुर के लोगों ने सबको चन्दन-तिलक लगाया। जमुना के इस किनारे बिदाई देने-वाले लोग थे तो उस किनारे स्वागत करनेवाले। दोनों किनारों से सतत जयजयकार की ध्वनि सुनाई दे रही थी, इसलिए पता नहीं चला कि नाव कब छूटी और कब पहुँची। जैसे ही बाबा नाव से उतरे, फतहपुर की जनता ने गगनभेदी स्वर में गर्जना की—**'महात्मा गांधी की जय!'**

शाम के प्रवचन में विनोबाजी ने भर्रायी आवाज में कहा, "आज का ही दिन था वह! जून की ७ तारीख थी। ३६ साल पहले आज के ही दिन पहली बार मैं बापू से मिला था। उस समय मैं एक छोटा-सा बालक था। तब से वे आज्ञा देते और उनकी आज्ञा के अनुसार मैं काम करता जाता था। बस, यही मेरी जिन्दगी है।" ...... विनोबाजी ने जो बात कही, उसे भारत की जनता कब से जान गयी थी। इसीलिए तो वह विनोबाजी को देखते ही आनन्द के साथ गर्जना करती है—**'महात्मा गांधी की जय।'**

विचार की विजय

खागा, बहरामपुर, फतहपुर, मौजमाबाद (फतहपुर)

८, ९, १०, ११ जून, १९५२

खागा जाते समय रास्ते में 'विजयीपुर' नामक गाँव पड़ा, जो उत्तर प्रदेश की विकास-योजना में प्रथम आया था। गाँववालों ने स्वागत के लिए जोरदार तैयारियाँ की थीं। विनोबाजी ने उनसे कहा, "आपने विकास-योजना में अव्वल दर्जा प्राप्त कर लिया, इसलिए अब गाँव के सब भूमिहीनों को भूमि देकर उस काम में भी प्रथम स्थान प्राप्त कीजिये।" इस स्थान पर हम सबको चन्दन-तिलक तथा अक्षत लगाये गये। बाबा,

ने हमारी ओर देखकर मुस्कराते हुए कहा, "आज तो सब बाबा बन गये हैं।"

फिर चर्चा शुरू हुई। एक भाई ने मानसिक समानता के बारे में सवाल पूछा। बाबा ने कहा, "आर्थिक-क्रान्ति का अधिष्ठान ही है मानसिक समानता। मानसिक समानता का मतलब है, सब मानवों में एक ही आत्मा समान रूप से वास करती है और हम देह नहीं; बल्कि आत्मा हैं।"

फिर महर्षि अरविन्द पर चर्चा चली। बाबा ने कहा, "रामानुज, शाक्तपंथ और विज्ञान, इनका महर्षि अरविन्द पर प्रभाव पड़ा है। वे भी रामानुज की तरह माया को मिथ्या न मानकर उसे ब्रह्म का अंश मानते थे।"

प्रश्न—"माताजी (Mother) ने यह आश्वासन दिया है कि यद्यपि अरविन्द की स्थूल देह नष्ट हो गयी है, फिर भी वे आज सूक्ष्म रूप से अपना काम कर रहे हैं। इस बारे में आपकी क्या राय है?"

विनोबाजी—"यह कथन सत्य है। सभी महापुरुष देहत्याग के बाद सूक्ष्म रूप से अधिक काम करते हैं।"

बहरामपुर जाते समय रास्ते में एक विचित्र घटना घटी। हमारे यात्री-दल को आगे बढ़ते देखकर कुछ गाँववाले घर से बाहर आकर देखने लगे। उस समय हमारे यात्री-दल के साथ कुछ पुलिसवाले भी चल रहे थे। बाबा आगे निकल चुके थे, हम पीछे से जा रहे थे। इतने में हमने गाँववालों की बात सुनी—'क्या यह सारा गिरोह गिरफ्तार हो गया है? लड़के-लड़कियाँ भी?' उस गाँव के लोगों के अज्ञान का कोई पार नहीं था। उन्हें इस बात का पता ही न था कि विनोबाजी जा रहे हैं। इस घटना के कारण करण भाई को बड़ा आघात लगा। उन्हें लगा कि कार्यकर्ताओं ने प्रचार नहीं किया, इसीलिए गाँववालों को ठीक जानकारी नहीं मिली। वे अत्यन्त दुःखी हो गये और शाम की सभा में उन्होंने अपने भाषण में यह व्यथा प्रकट की। इसके बाद विनोबाजी का जो भाषण हुआ उससे हम सबकी निराशा तथा दुःख भाग गया। विनोबाजी ने कहा, "लोगों में जितना कम उत्साह हो उतना ही मुझे काम

करने में अधिक उत्साह मालूम होता है। सामने जितना ही गहरा अन्धकार हो, दीपक के लिए उतना ही अच्छा रहता है, क्योंकि गहरे अन्धकार में दीप का प्रकाश अधिक फैलता है। इसलिए ऐसी घटनाओं से निराश मत होइये; बल्कि उत्साह के साथ काम में लग जाइये।"

बहरामपुर में शाम की सभा समाप्त हो गयी थी। हम लोग बाबा के पास बैठकर बातचीत कर रहे थे। देखा, एक भाई दौड़ता हुआ आ रहा था। पास आने पर पता चला कि वह चार मील की दूरी से दौड़ता हुआ आ रहा है; फिर भी वह प्रवचन के समय यहाँ नहीं पहुँच सका। उसके पास सिर्फ ६ बीघा जमीन थी और उसका छठा अंश १ बीघा दान देने वह आया था। उसने आज तक न कभी बाबा का दर्शन किया था और न बाबा के व्याख्यान ही सुने थे। फिर उसे प्रेरणा कहाँ से हुई? बाबा अक्सर कहते हैं कि "भूदान का काम मेरा काम नहीं है। वह तो भगवान् का ही काम है और वही सबको दान देने की प्रेरणा दे रहा है।" ऐसी घटनाओं को अपनी आँखों से देखकर बाबा के इस कथन की सत्यता महसूस होने लगती है।

परसों राजापुर में भाषण करते हुए बाबा ने कहा था कि "तुलसीदासजी का जीवन अत्यन्त शुद्ध था, इसीलिए उनके शब्दों में इतनी सामर्थ्य निर्माण हुई।" इस बारे में मैंने एक शंका उठायी थी, "यूरोप के कई प्रतिभाशाली कवियों का जीवन पतित था, फिर भी उनके शब्दों में ताकत थी।" बाबा ने कहा, "मानव की आत्मा हमेशा ऊपर उठने की कोशिश करती है और उसमें असफल होकर नीचे गिरती जाती है। यूरोप के वे कवि अक्सर इस तरह की ऊपर उठने की कोशिश में ही अपना काव्य लिख डालते हैं, इसीलिए उनके शब्दों में ताकत आती है। उस काव्य का उनके नित्य के जीवन के साथ कोई ताल्लुक नहीं रहता। अक्सर ऐसे साहित्य में सातत्य की कमी नजर आती है। फिर भी उनका जो अच्छा विचार है, उसे ग्रहण करना चाहिए और उनके जीवन को भूल जाना चाहिए। मैंने 'शली' के काव्य का स्मरण रखा और उसके जीवन को भूल गया।"

प्रश्न—"क्या प्राचीनकाल में वेदाध्ययन का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही था?"

विनोबा—"उस जमाने में सबको ज्ञानप्राप्ति का अधिकार था। लेकिन वेदाध्ययन का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही था। इसका कारण यही है कि उस जमाने में लिखने के साधन नहीं थे, इसलिए उच्चारण की शुद्धता को विशेष महत्त्व दिया जाता था। उच्चारण की शुद्धता पर ही वेदों का शुद्ध रूप निर्भर था, इसलिए वेद-पठन का अधिकार भी केवल ब्राह्मणों को दिया गया जो इसी काम में लगे हुए थे। उस जमाने में उन लोगों के पास वेदों को टिकाने का इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं था। इसलिए उन लोगों ने जो किया उसे हम पाप नहीं कह सकते। उनकी अड़चनों को, कठिनाइयों को ध्यान में न लेते हुए यदि हम उन पर टीका करेंगे तो यह अन्याय होगा।"......

मैंने देखा है कि वेद-काल के बारे में बोलते समय बाबा की आवाज जैसे किसी अज्ञात भूतकाल से आ रही हो। वे अपने गत जीवन की स्मृतियों को याद कर रहे हों, ऐसा आभास होता है।

फतहपुर में विशाल जनसमुदाय के सामने बोलते हुए बाबा ने कहा—"ऐसा सवाल मत उठाइये कि भूदान का काम आज तक इतिहास में कभी भी नहीं हुआ है, बल्कि यह कहिये कि हम इसे करके ही रहेंगे। इतिहास में आज तक जो काम नहीं हुआ है, वह काम करने के लिए ही तो भगवान् ने हमें पैदा किया है। यदि करने के सारे काम हमारे पूर्वजों ने ही कर डाले होते तो भगवान् हमें यह जन्म ही किसलिए देता? अतएव याद रखिये कि हमें एक ऐसी अहिंसक क्रान्ति कर दिखानी है जो आज तक के इतिहास में कभी नहीं हुई थी।"

आज जब बाबा का प्रवचन हो रहा था, तब लग रहा था कि यह बाबा नहीं बोल रहे हैं, कोई और ही बोल रहा है और वही बाबा के जरिये अपना काम करवा रहा है। वह हमारे इतना निकट है, फिर भी हमें उसका भान तक नहीं है।

मौजमाबाद जाते समय एक कार्यकर्ता के सवालों का जवाब देते हुए बाबा ने कहा, "सरकार अपना काम करेगी, मैं अपना काम करूँगा। मेरा जनशक्ति पर ही भरोसा है, इसलिए मैं जनशक्ति को ही जाग्रत करने का काम कर रहा हूँ। लेकिन सरकार को गरीबों के हित में कानून बनाने से कौन रोकता है? कानून बनाना तो उसका काम ही है। लेकिन मेरा कानून पर विश्वास नहीं, जनशक्ति पर है। मैं मानता हूँ कि कानून से कुछ ही मसले हल हो सकते हैं। ......

"मैं प्रेम के मार्ग से दुनिया को एक विचार देकर अपना काम कर रहा हूँ। अगर मेरा विचार थोड़े लोगों को जँच गया तो थोड़ा काम होगा, सबको जँच गया तो पूरा काम होगा। और किसी को भी नहीं जँचा तो कुछ भी काम नहीं होगा। लेकिन मैं तो केवल विचार ही देता रहूँगा, जबरदस्ती विचार लादूँगा नहीं। मैं मानता हूँ कि हर किसी को अपने विचार का प्रचार करने का अधिकार होना चाहिए। मैं इस बात को बिल्कुल गलत मानता हूँ कि अपने विचार को छोड़कर बाकी के सारे विचारों का प्रचार बन्द किया जाय। कम्युनिस्ट अपना विचार जनता के सामने रखेंगे, मैं अपना विचार रखूँगा। दूसरे भी लोग अपना-अपना विचार रखगे। फिर जनता को जो विचार पसन्द आयेगा उसे वह स्वीकार कर लेगी। चुनाव करने का काम तो जनता का ही है। ...... मेरे मन में कोई भी उलझन नहीं है, मेरा दिमाग बिल्कुल साफ है। मैं जनता को एक विचार बता रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि वह राह सबसे बेहतर है। फिर भी उस राह को पकड़ना या न पकड़ना, इसका फैसला तो जनता ही करेगी।"

अब तक बाबा कहा करते थे कि "मुझे चलते समय कहीं रोकना हो तो मेरे हरएक मिनट की फीस (भूदान) देनी पड़ेगी।" लेकिन आज तो उन्होंने कहा कि "जो कोई सवाल पूछेगा, उसे भी हरएक सवाल की फीस देनी पड़ेगी।" आज के प्रश्न पूछनेवाले कार्यकर्ता से उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "आपने तीन सवाल पूछे, इसलिए अब ३०० एकड़ जमीन लाकर दीजिये।" यह सुनकर मैंने अपने मन में हिसाब लगाना शुरू

किया तो पता चला कि आज तक के मेरे सवालों की फीस तो हजारों एकड़ हो जायगी। मन में डर पैदा हुआ कि मैं कहाँ से हजारों एकड़ जमीन लाऊँ। फिर मैंने सोचा—जमीन से तो जीवन अधिक कीमती चीज है। इसलिए भूदान के काम में जीवन को ही समर्पित करके मैं ऋणमुक्त हो जाऊँगी। परन्तु ज्ञान पाने का यह महान् ऋण एक जन्म के क्या, अनेक जन्मों के जीवन से भी न चुकेगा।

मौजमाबाद बिल्कुल गंगा के किनारे पर बसा हुआ गाँव है। गाँव नजदीक आते ही शीतल वायु और मुलायम मिट्टी ने इस बात की सूचना दे दी कि गंगाजी निकट हैं। पड़ाव पर पहुँचते ही गंगा के विशाल प्रवाह का भव्य दर्शन हुआ। घण्टों तक उसकी ओर देखते रहने पर भी मन नहीं भरा! हमारे निवासस्थान से शब्दशः चार कदम पर गंगाजी थीं, याने बिल्कुल घर में ही गंगा आयी थीं। गंगा की नीली झाँकीवाली, सफेद चमचमाती रेत का सौन्दर्य मुग्ध कर देनेवाला था। जमुना की रेत में भूरापन था तो गंगा की रेत में कुछ नीलापन। दोनों का सौन्दर्य एक-दूसरे से स्पर्धा करनेवाला था। गंगा-जमुना के दर्शनमात्र से ही सौन्दर्य का साक्षात्कार हो जाता था।

पुनरागमन

लालगंज

१२. ६. १९५२

रात बीत रही थी। रायबरेली जिले में प्रवेश करने के लिए हम लोग नाव पर चढ़े। नाव से गंगा पार करनी थी। प्रार्थना चल रही थी। प्रशान्त समय में चन्द्रमा के सौम्य-शीतल प्रकाश में हम एक ब्रह्मर्षि के साथ उपनिषद्-सूक्तों का पाठ करते हुए नाव से जा रहे थे। उस समय एक अपूर्व आनन्द की अनुभूति हुई। प्रार्थना समाप्त होते ही हमने भजन आरम्भ किया—**'संत परम हितकारी'** नाव धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। मन में इतनी खुशी हुई कि आँखों के आँसू गंगा माई के जल से गले मिलने के

लिए द्रुतगति से आगे बढ़ने लगे। दूसरे किनारे पर रायबरेली की जनता स्वागत के लिए उपस्थित थी। नाव को पास आते देखकर उनमें से एक कार्यकर्ता स्वागतपर भाषण देने लगा—"जाह्नवी-तीर पर की यह तपोभूमि कई ऋषियों ने पुनीत की है। महर्षि जह्नु और गर्ग के आश्रम यहीं पर थे। मर्यादा-पुरुषोत्तम राम इसी स्थान से नाव में बैठकर दक्षिण गये और लंका-विजय की। अब दक्षिण से संतप्रवर यहाँ आ रहे हैं, जाह्नवी को पारकर प्रभु रामचन्द्र की भूमि में प्रवेश कर रहे हैं। रामराज्य की स्थापना के उनके महान् कार्य में अपने को समर्पित करना हम सबका कर्त्तव्य है।" सारी सृष्टि में स्तब्धता छायी हुई थी और सिर्फ इन्हीं शब्दों का उच्चारण हो रहा था। लगता है, अभी वे शब्द कानों में गूँज रहे हैं। हमारी नाव किनारे पर पहुँची कि **'महात्मा गांधी की जय'** का घोष दसों दिशाओं में गूँज उठा।

गंगा के किनारे शिवालय था। यहाँ के निकटवर्ती खजुर गाँव के राणा साहब ने उस शिवालय में बाबा का तुलसी की माला से स्वागत किया और चार हजार बीघे भूमि का दानपत्र उन्हें अर्पण किया। जिसे शोषक-वर्ग कहा जाता है उस वर्ग का एक प्रतिनिधि अपने भूमिहीन भाइयों का हक उन्हें वापस देने के लिए खुद अपनी जमीन देता है और दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि की वन्दना करता है—क्या यह घटना कम क्रान्तिकारी है? इसमें जो क्रान्ति निहित है, उसका हमें भान हो जाय तो हिन्दुस्तान की सूरत ही बदल जायगी।

क्रान्ति राजसत्ता से नहीं, ऋषि से होगी

अटौरा बुजुर्ग, रायबरेली
१३, १४ जून, १९५२

शाम के भाषण में कार्यकर्ताओं के आलस्य के लिए उन्हें कड़ी फटकार मिली। अन्त में नये खून का आवाहन करते हुए विनोबाजी ने कहा—

"क्रान्ति कभी बूढ़ों से नहीं होती, वह तो जवानों से ही होती है। नये विचार को ग्रहणकरने की क्षमता नये खून में ही होती है। ...... राजसत्ता के जरिये कभी क्रान्ति नहीं हो सकती, वह तो ऋषियों के द्वारा ही होती है। बड़े-बड़े सम्राटों का स्थान भी इतिहास की किताबों में ही है, जनता के हृदय में नहीं। यदि राजसत्ता के द्वारा क्रान्ति हो सकती तो भगवान् बुद्ध अपने हाथ को राजसत्ता छोड़ संन्यासी क्यों बनते ?"

सई नदी के किनारे उदयोन्मुख सूर्य की साक्षी में रायबरेली की जनता ने विनोबाजी का स्वागत किया। नारे तथा गीत-गर्जनाएँ आरम्भ हुईं—

'एक नये ढंग से, नये रंग से, बदलेगा संसार,
बदलनेवाला आया है!'

बाबा के साथ कुछ दिन रहने के लिए मैं यहाँ आयी थी; लेकिन अब मैंने निश्चय कर लिया था कि भूदान के ही काम में जीवन को समर्पित किया जाय। मैंने जब बाबा को यह बात बतायी तो वे मुस्कराते हुए कहने लगे—"बहुत अच्छी बात है। स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ कभी भी श्रेयस्कर ही होता है।"....... उसके बाद भूदान का काम तथा शिक्षित-वर्ग के बारे में बोलते हुए बाबा ने कहा, "अक्सर देखा गया है कि क्रान्ति के काम में शिक्षित या विद्वान् लोग बहुत ही कम संख्या में आगे आते हैं। छोटे-छोटे लोगों से ही क्रान्ति होती और इतिहास बनाया जाता है। ...... फिर उनका इतिहास लिखने के लिए ये विद्वान् आगे आते हैं।"

निजी काम के निमित्त मुझे कुछ दिनों के लिए घर जाना था। रायबरेली का दिन आखिरी था। दिल तो जाना नहीं चाहता था; लेकिन अब तो भूदान का ही काम करने का संकल्प हो चुका था। इसलिए जाते समय बाबा के शब्दों में 'वियोग की नहीं; बल्कि मिलन की अनुभूति' लेकर गयी।

●●●

छठा भाग

पूर्व-पश्चिम का संगम

काशी विद्यापीठ, बनारस

११. ६. १६५२

आज बाबा का जन्मदिन था। सर्वसाधारण व्यक्ति के जीवन में इस दिन गत जीवन का सिंहावलोकन किया जाता और यशापयश को तौला जाता है। लेकिन जिसने जीवन में चिरन्तन सत्य की खोज की हो और जिसका प्रतिक्षण का जीवन ही चिर सनातन और चिर नूतन हो, ऐसे व्यक्ति के लिए जन्मदिन का क्या महत्त्व हो सकता है? फिर भी कभी-कभी ऐसे महापुरुषों की अति कठोर तपस्या के संकल्प उनके जन्मदिन के अवसर पर घोषित किये जाते हैं। परन्तु वह तो केवल योगायोग ही है। विनोबाजी ने भी आज एक संकल्प की घोषणा की—"भारत की भूमि-समस्या हल किये बगैर मैं अपने पवनार-आश्रम नहीं जाऊँगा, संचार ही करता रहूँगा या इसी काम में खत्म हो जाऊँगा।"

यहाँ के निकटवर्ती भारतमाता-मंदिर के पुस्तकालय में शाम की सभा हुई। मंदिर का हाल अशोक के पुष्पों तथा पत्तों से सजाया गया था। उत्तर प्रदेश के सभी जिलों के कार्यकर्ता आये थे, जो यहाँ से स्फूर्ति और प्रेरणा पाकर अपने-अपने जिले में भूदान का काम करनेवाले थे। दो दिनों के बाद विनोबाजी उत्तर प्रदेश छोड़नेवाले थे, इसलिए यह बिदाई का समारोह भी था। सभा में प्रथम अभिनन्दनपर कविताओं की वर्षा हुई, फिर भाषणों की। किसीने विनोबाजी को 'दक्षिण से उत्तर को आये हुए मर्यादा-पुरुषोत्तम राम' कहा, तो किसीने 'नवयुग का संदेश'। किसीने 'अहिंसक क्रान्ति का अग्रदूत' तो किसीने 'भगीरथ' और 'वशिष्ठ' कहा। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति आचार्य नरेन्द्रदेव ने कहा—"विनोबाजी में हम पूर्व और पश्चिम का एक सुन्दर संगम पाते

हैं। वे नवीन से भी नवीन हैं और प्राचीन से भी प्राचीन।" कानपुर के शिवनारायणजी टंडन ने कहा—"विनोबाजी में गीता का कर्मयोग साकार हुआ है।" मँगरौठ के दीवान साहब ने कहा—"मैं वक्ता नहीं, सेवक हूँ। इसीलिए शब्दों में नहीं, कृति से कहता हूँ कि विनोबाजी का मार्ग सच्चे सुख का मार्ग है।"

विनोबाजी ने अपने भाषण में अपना संकल्प जाहिर करते हुए कहा—"गीता में यज्ञ, दान और तप की त्रिविध क्रियाएँ बतलायी गयी हैं। जनता दान और यज्ञ कर रही है, कार्यकर्ताओं को तप करना चाहिए। मैं आज आप सब लोगों से तप की माँग कर रहा हूँ।"

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका उच्चारण जितना सरल होता है, आचरण उतना ही कठिन होता है। 'तप' भी ऐसा ही एक शब्द है। हिंसक क्रान्ति में या युद्ध में काफी शौर्य, धैर्य की आवश्यकता होती है; लेकिन अहिंसक क्रान्ति में तो उससे भी कई गुना अधिक शौर्य और धैर्य की आवश्यकता होती तथा अधिक गहराई में जाना पड़ता है। रणक्षेत्र में हँसते-हँसते गोली खाकर मरने में पराक्रम जरूर है; लेकिन हँसते-हँसते तपस्या का जीवन बिताने में जो पराक्रम है, उसका मूल्य बहुत अधिक है। तिल-तिलकर अखंड जलनेवाली शमा की उपमा काव्य में मधुर प्रतीत होती है; लेकिन अहिंसक सैनिक का तो सारा जीवन ही उस शमा जैसा सतत जलनेवाला होता है।

दोपहर को काशी के महाराज, जिन्होंने आज तक का सबसे बड़ा, दस हजार एकड़ का दान दिया है, विनोबाजी से मिलने आये। उन्होंने विनोबाजी को जन्मदिन के अवसर पर उपहार के रूप में एक बड़ा व्याघ्रचर्म भेट दिया।

काशी विद्यापीठ ने आज तक देश को कई नर-रत्न भेट किये हैं। उसी विद्यापीठ में विनोबाजी ने वर्षा-काल के निमित्त पिछले दो महीने तक निवास किया था। उन दिनों 'धर्म-चक्र को गति कैसे प्रदान की जा सकती है', इस पर उनका चिन्तन चल रहा था। उनका बहुत-सा समय वेद, उपनिषद्, गीता, कुरान, बाइबल आदि की—जो उनके सुहृद्-जन

हैं—संगति में बीतता था। शांकरभाष्य से तो उनकी जोड़ी ही मिल गयी थी।

इस चिन्तन में से किस चीज का निर्माण हुआ, यह तो कल के इतिहासकार ही बता सकेंगे।

दे दो अब भूमि अधिकार

मुगलसराय (बनारस)

१२. ६. १९५२

प्राचीन ऋषियों का आदेश है कि वर्षाकाल में यात्रा को स्थगित रखकर विश्राम लेना चाहिए। इस आदेश का पालन करने के लिए विनोबाजी ने पिछले दो महीने काशी में निवास किया। परसाल तेलंगाना की यात्रा के बाद उन्होंने इसी तरह वर्षाकाल में दो महीने अपने पवनार के आश्रम में बिताये थे। ठीक आज के ही दिन उन्होंने अपनी उत्तर भारत-यात्रा आरम्भ की थी। तब से जनता को चक्रवर्तित्व प्राप्त करा देने के लिए प्रजासूय-यज्ञ का यह अश्व सतत संचार कर रहा है। जिसका संचार परमेश्वर की ही प्रेरणा से हो रहा हो, उसे रोकने की ताकत मानव में कैसे हो सकती थी ? ...... उसका भारत-भ्रमण समाप्त होते ही दरिद्रनारायण को दुनिया के इतिहास में सबसे पहली बार, सार्वभौमत्व की उपाधि प्राप्त होगी।

आज तीन महीनों के बाद फिर से मेरी यात्रा आरम्भ हुई थी। इस बीच विनोबाजी ने रायबरेली के बाद सुलतानपुर, इलाहाबाद तथा मिर्जापुर जिले की यात्रा की थी। सुलतानपुर ने तो भूदान-प्राप्ति तथा साहित्य-बिक्री में उच्चांक प्राप्त किये थे। इलाहाबाद में राजर्षि टंडनजी, जो आजकल उत्तर प्रदेशीय भूदान-समिति के प्रमुख हैं, यात्रा में साथ रहे। नित्यक्रम के अनुसार प्रातः ४ बजे काशी विद्यापीठ से प्रस्थान हुआ। वहाँ से लेकर मालवीय-पुल तक सैकड़ों नागरिक रास्ते के दोनों ओर खड़े थे। मालवीय-पुल पर विनोबाजी ने नागरिकों को आखिरी प्रणाम करते हुए

'स्वच्छ-काशी आन्दोलन' को चलाये रखने का संदेश दिया। आजकल हमारे तीर्थक्षेत्रों में बहुत ही गन्दगी रहती है, सुना है, तीर्थस्थानों में मरने से सीधे स्वर्ग जाते हैं । शायद इसीलिए वहाँ सीधे स्वर्ग जाने की यह सुविधा निर्माण की गयी हो ! काशी की अस्वच्छता को देखकर विनोबाजी को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने काशी के नागरिकों का आवाहन किया और ७ सितंबर को सैकड़ों नागरिकों ने संत की पुकार पर हाथों में झाड़ू लेकर स्वच्छ-काशी आन्दोलन का आरम्भ किया। जनशक्ति को जाग्रत कर समस्याओं को कैसे हल किया जा सकता है, इसका एक सुन्दर उदाहरण था वह आन्दोलन।

पुल पर खड़े होकर मैंने फिर से एक दफा काशी नगरी की ओर देखा। नीचे से गंगा का विशाल प्रवाह बह रहा था। अभी-अभी पौ फट रही थी। आकाश की नीलिमा पर फीके गुलाबी रंग की झाँकी दिखाई दे रही थी। सफेद बादलों के पुंज यों ही इधर से उधर सैर कर रहे थे। गंगा के किनारे बसी हुई अति प्राचीन काशी नगरी विशेष रमणीय प्रतीत हो रही थी। मन्दिरों से घण्टानाद सुनाई पड़ रहा था ।

पिछले नौ महीने तक विनोबाजी के साथ यात्रा में रहे हुए उत्तर प्रदेश के एक कर्मठ कार्यकर्ता श्री जलेश्वर भाई कह रहे थे, "मैंने ९ महीने तक रास्ते में बाबा को पानी पिलाने का काम किया, इसलिए लगता है कि मेरा नाम सार्थक हुआ।" जलेश्वर भाई ने अभी-अभी दो हजार एकड़ भूमि का बँटवारा करने का काम किया था। वे उस काम के अपने अनुभव बता रहे थे। उन्होंने कहा, "बँटवारे के समय प्रायः अधिक जमीन का दान मिल जाता हैं। भूमिहीनों को देने के लिए बैल, बीज आदि साधनों का दान भी गाँव से मिल जाता है। वितरण का समारोह अभूतपूर्व-सा रहता है। जिन्हें जमीन मिलती है उन्हें लगता है, जैसे कई जन्मों की इच्छा पूरी हो रही हो। भूमि-दान-यज्ञ के कारण भूमिहीनों में जाग्रति पैदा हो रही है। वे जान गये हैं कि अब उन्हें जमीन मिलनेवाली है। इसलिए उनमें स्वाभिमान पैदा हुआ है। अब उनमें अत्याचारों को चुपचाप सहते रहने की वृत्ति नहीं रही है।"

आज मँगरौठ के दीवान साहब भी साथ थे, उन्होंने मँगरौठ की बात

बतायीं। बाहर के कुछ लोगों ने मँगरौठवालों को यह कहकर भड़काने की कोशिश की थी कि 'सारी जमीन दे देने से आपका क्या लाभ हुआ ? नाम तो दीवान साहब का हुआ, मँगरौठ का नहीं।' इन भड़कानेवालों को मँगरौठ-निवासी अच्छे जवाब देकर भगा देते हैं। वे कहते हैं, 'अरे, जिस मँगरौठ को पास के राठ में कोई नहीं जानता था, उसे अब सारा हिन्दुस्तान जानने लगा है। अब रेडियो भी उसकी बात बोलता है।'

सिन्ध के प्रसिद्ध कवि दुखायलजी आजकल यात्री-दल में शामिल हुए हैं। वे सिंधी भाषा के मशहूर भक्त कवि हैं ही, लेकिन अब हिन्दी में भी गीत बनाने लगे हैं। वे जब अपने बनाये हुए गीत खँजड़ी पर गाने लगते ह तब हजारों की भीड़ मंत्रमुग्ध होकर सुनती रहती है। उनका यह गीत—

'दे दो अब भूमि-अधिकार।
दान करो अभिमान रहित, तो होगा बेड़ा पार।'

बहुत ही लोकप्रिय हो रहा है। इस गीत में बिल्कुल सरल भाषा में भूदान का सारा तत्त्वज्ञान बताया गया है।

कल का दिन (१३.९.'५२) उत्तर प्रदेश की यात्रा का आखिरी दिन था। फिर बिहार की भूमि में प्रवेश होनेवाला था। पिछले १० महीने से बाबा के साथ रहे हुए बाबा राघवदास, करण भाई, कपिल भाई, जलेश्वर भाई आदि के उदास चेहरे याद दिला रहे थे कि अब वियोग का क्षण निकट आ रहा है। आज भोजन के समय करण भाई आग्रह करके हमें मलाईवाला दही खिला रहे थे। मैंने विनोद में कहा, "क्या आप हमें पहलवान बनाना चाहते हैं?" करण भाई ने कहा, "खा लो बेटा, यह आखिरी दिन है।" मैंने देखा, यह कहते हुए उनकी आँखें भर आयी थीं।

भूदान के लिए आत्मसमर्पण का प्रारम्भ

सैयदराजा (बनारस)

१३.९.१९५२

चार दिन हुए, जब पूज्य किशोरलाल भाई मश्रूवाला के स्वर्गवास की खबर सुनकर विनोबाजी को लगा—जैसे अपना एक बहुत बड़ा आधार ही

नष्ट हो गया हो। तब से वे अपने हर भाषण में स्वर्गीय किशोरलाल भाई के तपस्वी जीवन के बारे में कुछ न कुछ कहते हैं। आज उत्तर प्रदेश की यात्रा का आखिरी दिन था। सुबह की प्रार्थना के बाद विनोबाजी ने मौन रखने का क्रम भंग करते हुए एक छोटा-सा भाषण दिया। सर्वप्रथम स्वर्गीय किशोरलाल भाई के बारे में कुछ कहा और फिर बोले—"मैंने एक प्रतिज्ञा-पत्रक बनवाया है, जिस पर दस्तखत करके भूदान के काम में अपने को समर्पित कर देनेवाले कार्यकर्ताओं की मैं माँग कर रहा हूँ। ऐसे निष्ठावान् सेवक बिल्कुल ही थोड़े हों तो भी क्या हर्ज है? ईसामसीह के आरंभिक शिष्य तो बारह ही थे।"

शाम की सभा का दृश्य तो अविस्मरणीय ही रहा। गाँव छोटा होते हुए भी सभा में दस हजार से अधिक लोग उपस्थित थे। आकाश मेघाच्छन्न था। हवा चल रही थी। दुखायलजी मधुर स्वर में गा रहे थे। कवि की वाणी जनता को विश्वबंधुत्व का पाठ पढ़ा रही थी—

'कैसा है यह सुखमय सपना मानो सारा जग है अपना।
सबके सुख में सुख मानें हम, सबके दुख में सीखें तड़पना॥'

विनोबाजी का प्रवचन आरम्भ होते ही जोरों से बारिश होने लगी। कुछ लोगों को छाते खोलते हुए देखकर विनोबाजी ने उच्चस्वर में कहा—"सभी छाते हटा दो, बारिश के रूप में परमेश्वर की कृपा बरस रही है। छातों को बीच में मत लाइये, परमेश्वर का स्पर्श होने दीजिये।" सब छाते बन्द हो गये। मूसलाधार वर्षा हो रही थी, फिर भी सारा समुदाय चित्रवत् बनकर संत-वाणी सुन रहा था। छोटे बच्चे भी बिल्कुल शान्त बैठे थे। विनोबा की वाग्धारा तेजी से बह रही थी, "यह विनोबा नहीं बोल रहा है, विनोबा के मुख से भगवान् बोल रहा है।"

सभा के बाद काफी देर तक यही एक दृश्य दिखाई दे रहा था। बदन पर फटे कपड़े, हाथ में लकड़ी लिये हुए एक-एक किसान आगे बढ़ता और दान-पत्र पर दस्तखत करके अपना सुदामा का तंदुल अर्पण करके चला जाता था। अब जमाना बदल गया था। अब उसके पास न धन था, न वैभव और न शान। फिर भी यज्ञ में आहुति अर्पण करने की अपनी प्राचीन

भारतीय परम्परा को वह भूला नहीं था। भारत के पुनरुत्थान के लिए जो भूदान-यज्ञ आरम्भ हुआ, उसमें अपना हविर्भाग अर्पण कर असंख्य किसान अपनी प्राचीन परम्परा निभा रहे थे। गरीबों के दान को विनोबाजी 'जिगर के टुकड़े' कहते हैं। उनका विश्वास है कि आज जो अनेक गरीब अपने जिगर के टुकड़े दान दे रहे हैं, उन्हीं दानों में से एक महान् क्रान्तिकारी शक्ति पैदा होगी।

उत्तर प्रदेश की गत १० महीने की यात्रा में प्रतिदिन एक हजार एकड़ के हिसाब से ५ लाख बीघे (सवा तीन लाख एकड़) का दान मिला था। इसका मतलब था, पाँच लाख मनुष्यों को सदा के लिए स्वाभिमान का नया जीवन जीने का अवसर प्राप्त हुआ था। और यह सारा हुआ केवल प्रेम की शक्ति से। ...... सूई की नोक पर जितनी मिट्टी रखी जा सकती है उतनी मिट्टी भी देने के लिए दुर्योधन राजी नहीं था। इसी-लिए महाभारत हुआ। और आज ...... हजारों किसान अपनी इच्छा से लाखों एकड़ जमीन का दान दे रहे थे—खून का एक बूंद बहाये बगैर, किसी के भी मन को दुःख पहुँचाये बगैर, सब मनुष्यों के हृदय में छिपी हुई सत्प्रवृत्तियों को जगाकर, इस जमाने के 'यक्ष-प्रश्न' का उत्तर ढूँढ़ा गया था।

उत्तर प्रदेश से बिदा और बिहार में प्रवेश

दुर्गावती (शाहाबाद)

१४. ६. १९५२

रात बीत रही थी। उत्तर प्रदेश की जनता संत को बिदा करने के लिए भजन गा रही थी। दान-पत्रों को स्वीकार करने के लिए विनोबाजी को एक जगह रुकना पड़ा। दान-पत्र अर्पण करके बाबा राघवदास भर्रायी हुई आवाज में बोलने लगे, "अब थोड़ी ही देर बाद उत्तर प्रदेश भगवान् के इस महान् भक्त को बिदा करेगा।" उत्तर प्रदेशवालों की आँखों से बहनेवाली अश्रुधाराएँ एक-दूसरे से स्पर्धा करने लगीं। हम भी उनके साथ

हो गये। लग रहा था, जैसे हम अपने ही घरवालों को छोड़े जा रहे हों। उत्तर प्रदेश की भूमि पर विनोबाजी के ये आखिरी कदम थे। ...... जिसे न कभी देखा था और न जिसके बारे में कभी सुना था, उस गांधी-बाबा के चेले को उत्तर प्रदेश की जनता ने फौरन पहचान लिया। इसी उत्तर प्रदेश की भूमि पर गंगा-यमुना के तट पर असंख्य ऋषियों ने तपस्या की थी, मानव को सदा के लिए शान्ति प्रदान करनेवाले तत्त्वज्ञान का आविर्भाव किया था। और अब उसी तपोभूमि पर अहिंसा-धर्म का धर्म-चक्र-प्रवर्तन आरम्भ हुआ था। अहिंसक क्रान्ति में सक्रिय हाथ बँटानेवाली जनता को आखिरी प्रणाम करने का क्षण नजदीक आ रहा था। आगे बढ़नेवाला प्रत्येक कदम हमें बिहार की तरफ ले जा रहा था। करण भाई ने अपना प्रिय भजन गाना आरम्भ कर दिया—

'गौतम ऋषि की नारी अहिल्या पत्थर से, तुम तारचो राम।'

गांधी-निर्वाण के बाद देश में जो निराशा का अन्धकार छा गया था उससे सारे कार्यकर्ता निस्तेज, प्राणहीन-से बन गये थे। निराशा, असहा-यता, पथभ्रष्टता के प्रवाह में सारे अगतिक बनकर बह रहे थे। सब पत्थर जैसे संवेदनाशून्य, चेतनाहीन बन रहे थे।...... ऐसे समय भूदान-यज्ञ ने नयी चेतना, नया प्राण, नयी स्फूर्ति प्रदान कर हमारा अहिल्योद्धार कर दिया था।

हम आगे बढ़ रहे थे। कर्मनाशा नदी सामने दिखाई देने लगी। नदी के उस पार बिहार की भूमि थी। दोनों प्रदेशों की सीमारेखा पर एक भव्य द्वार बनाया गया था, जिसके नीचे सजाया हुआ मंच था। उत्तर प्रदेशवालों ने बाबा को कुंकुम-तिलक लगाकर आरती उतारी, चरणों पर पुष्पाञ्जलि अर्पण की और आखिरी प्रणाम किया। बिदाई का क्षण आ पहुँचा था।...... मंच पर बाबा आँखें मूँदकर ध्यानस्थ बैठे थे।...... इस समय उनके हृदय-सागर में किन विचारों की लहरें उठ रही होंगी? ...... रात को आकर चुपचाप दान देकर चला जानेवाला वह रामचरन अन्धा, 'अपने गाँव से संत को रिक्तहस्त नहीं भेजना चाहिए' इस विचार से सुदामा के तन्दुल अर्पण करनेवाला वह तेली, 'मेरे शबरी के बेर आपको लेने ही

होंगे' यह कहकर अपने दान का स्वीकार करानेवाला वह गरीब किसान—क्या इन सबकी याद से बाबा का दिल भर न आया होगा ? गाँव के सब भूमिहीनों को दान देनेवाले टिकारडी के निवासी और अपने गाँव की सारी जमीन दान देकर **'सबै भूमि गोपाल की'** बनानेवाले मँगरौठ-निवासी तो बाबा के हृदय में स्थान पा ही चुके हैं। ...... क्या उन्हें उनकी भी याद आ रही थी ? ...... इन सबको स्मृति आनन्द को अनुभूति निर्माण कर रही होगी। 'लेकिन अभी भी हम दरिद्रनारायण की क्षुधा को शान्त नहीं कर पाये' इस विचार से शायद बाबा के दिल को वेदना की भी अनुभूति हो रही होगी। ...... बाबा शान्त ही रहने की कोशिश कर रहे थे। फिर भी उनके दिल में उत्तर प्रदेश के प्रति जो प्रेम था, वह आँखों से आँसुओं के रूप में उमड़ पड़ा।

हृदय-पटल पर उत्तर प्रदेश की अगणित स्मृतियों को अंकित कर हमने बिहार-भूमि में प्रवेश किया।

'संत विनोबा अमर हों' ...... बिहार की जनता ने गर्जना की। इस गर्जना में भविष्य की ओर संकेत था।

रास्ते में दर्शनार्थी-स्त्रियों के झुण्ड देखकर किसी ने कहा, 'राम की भूमि से सीता की भूमि में आये हैं, इसका लक्षण दिखाई दे रहा है।' यह सीता देवी का विदेह है। मैंने स्त्रियों के पास जाकर उनसे बातचीत करना शुरू किया। बूढ़ी औरतों ने मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा, 'बेटा, तुम बड़ी तपस्या कर रही हो। तुम्हारे दर्शन से हमें बड़ा भाग्य मिला।' ...... जानती थी कि आज उनके विश्वास के लिए मैं सर्वथा अपात्र थी, फिर भी शायद उन्हीं के आशीर्वाद से मैं कभी पात्र बन सकूँगी। दिल ने भगवान् से प्रार्थना की कि 'इन माँ-बहनों की सेवा करने के लिए मुझे बल दो।'

भगवान् बुद्ध की बिहार-भूमि में प्रवेश करते ही विनोबाजी ने भगवान् की ही प्रेरणा से नयी घोषणा की—"बिहार की भूमि-समस्या को हल किये बगैर मैं बिहार नहीं छोड़ूँगा।" ...... काशी में जो चिन्तन चला था यह उसीका परिणाम था। विनोबाजी ने सोचा कि हर प्रान्त में चार-छह

महीने तक घूमकर चार-छह लाख एकड़ भूमि इकट्ठी करते हुए वे देश भर में घूम लेंगे, तो सारे देश से कुछ लाख एकड़ जमीन तो इकट्ठी होगी ही और हवा भी तैयार हो जायगी। लेकिन इससे जमीन का मसला हल नहीं होगा। इसलिए किसी एक प्रान्त में मसला हल करके दिखाया जाय तो सारे हिन्दुस्तान को राह मिल जायगी। इसी विचार से उन्होंने भगवान् बुद्ध की तपस्या-भूमि बिहार को अपना प्रयोग-क्षेत्र बना लिया। वे अक्सर कहते हैं कि "यदि एक त्रिकोण में कोई सिद्धान्त सिद्ध हो चुका तो फिर हर त्रिकोण में वह सिद्धान्त सिद्ध हुआ रहता है।" इसी तरह यदि बिहार में अहिंसा, करुणा के मार्ग से भूमि-समस्या हल हुई तो फिर दुनिया के किसी भी प्रदेश में अहिंसा कारगर साबित हो जायगी। ...... बिहार को फिर से एक बार दुनिया को राह दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ था। विनोबाजी बोल रहे थे—"मैं भगवान् बुद्ध के चरण-चिह्नों का अवलम्बन कर रहा हूँ। ...... वे महान् थे और मैं तुच्छ हूँ, फिर भी मैं उनका बालक हूँ—उनके कंधे पर खड़ा हूँ। इसीलिए उनके जमाने में जो काम नहीं हो सकता था, वह आज हो सकता है, क्योंकि उनका अनुभव हमारे पीछे है।"

कम्युनिस्टों के सवालों का जवाब देते हुए विनोबाजी ने कहा, "कम्युनिस्ट लोग क्रान्ति-क्रान्ति चिल्लाते हैं; लेकिन वे जानते नहीं कि क्रान्ति किस चिड़िया का नाम है। उन्होंने क्रान्ति का एक शास्त्र भी बनाया है और वे सोचते हैं कि मार्क्स की किताबों में लिखी हुई बातों के अनुसार ही क्रान्ति होगी। लेकिन इस तरह अगर क्रान्ति को ढाँचे में ढाला जाय तो क्रान्ति मिट जाती है। हिन्दुस्तान में किस ढंग से क्रान्ति होगी, यह उनसे बेहतर मैं जानता हूँ। वेदों से लेकर गांधी तक सारे विचार घोलकर पी गया हूँ। और इसीलिए मैं घोषित करता हूँ कि इस देश का अपना एक क्रान्ति का ढंग है, अपना एक तत्त्वज्ञान है और अपना एक मिशन है।"

पर्दे के खिलाफ बगावत करो

भभुआ, सासाराम, कुदरा (शाहाबाद)

१५, १६, १७ सितम्बर, १९५२

एक अमरीकन बहन 'पैट' तथा एक अमरीकन भाई 'फिलिप' हमारे यात्री-दल में शामिल हुए। इन दिनों तो १६-१७ मील प्रतिदिन चलना पड़ता था। चलने से पैट बहन के पैरों में बड़े-बड़े छाले पड़ गये, फिर भी वह किसी की बात न सुनते हुए पैदल ही चलती थी। उसकी शान्त, सौम्य, प्रसन्न मुद्रा देखकर ही खुशी मालूम होती थी। हमने उसे कभी भी चिढ़ते नहीं देखा और न शिकायत करते हुए ही। चाहे जितनी तकलीफ सहनी पड़े, वह हँसते-हँसते सह लेती। तमिलनाड़ भूदान-समिति के तरुण संयोजक जगन्नाथन्‌जी की पत्नी कृष्णम्मा कुछ महीनों के लिए यात्रा में रहकर भूदान के तंत्र का अध्ययन करने आयी थीं। जगन्नाथन्‌जी उच्च जाति के हैं और कृष्णम्मा हरिजन, इसलिए उनके विवाह ने समाज की रूढ़ि पर ही प्रहार किया था। कृष्णम्मा न सिर्फ शिक्षित है; बल्कि सुसंस्कृत व सुस्वभावी भी।

यहाँ पर प्रतिदिन की सभा में छोटे-से गाँव में भी पन्द्रह हजार से अधिक भीड़ रहती थी। हमारा निवासस्थान भी किसी यात्रा का स्थान बन जाता था। दिन भर कमरे के हर एक दरवाजे और खिड़की से मनुष्यों के झुण्ड के झुण्ड झाँकते रहते, जिससे सारी हवा बन्द हो जाती थी। सख्त गर्मी तो रहती ही थी, इसलिए और भी दम घुटने लग जाता। हम बार-बार लोगों से प्रार्थना करते, 'जरा हट जाइये, हवा अन्दर आने दें।' फिर भी कोई हटने के लिए तैयार न होता। 'हम आपके जैसे ही मनुष्य हैं, फिर हमें क्या देख रहे हैं?' इस तरह चाहे जितना समझाते, पर कोई मानता ही न था। वे तो एक ही जवाब देते—'हम आपका दर्शन कर रहे हैं।' भगवान् जाने, हमारे दर्शन से उन्हें क्या लाभ होता होगा। ...... दिन भर उठते-बैठते, काम करते, आराम करते, खाते समय इस बात को ध्यान में रखना पड़ता कि कम से कम सौ आँखें अपने हर काम का

निरीक्षण कर रही हैं। नारायण कहता, 'हम तो किसी प्राणि-संग्रहालय के विचित्र प्राणी बन गये हैं।'

•

अक्सर लोग विनोबाजी से कहते, "आपका सारा विचार हमें अच्छा लगता है, लेकिन इस कलियुग में उस विचार को अपने जीवन में कौन लायेगा ?" विनोबाजी उन लोगों को जवाब देते, "युग जैसी कोई चीज नहीं है। रामचन्द्र और कृष्ण के युग में रावण और कंस जैसे राक्षस पैदा हुए। और इस कलियुग में भी गांधी, रामकृष्ण जैसे कई सत्पुरुष पैदा हुए। इसका मतलब यही है कि हम खुद अपना युग बनानेवाले हैं, किसी के बने-बनाये युग में हम नहीं रहते। जिस तरह मंगल, गुरु आदि ग्रहों के इर्द-गिर्द अपना वातावरण रहता है, उसी तरह हमारे इर्द-गिर्द हमारा वातावरण रहता है, क्योंकि हम चेतन हैं।" ...... एक दफा युग की बात बताते समय उन्होंने एक आश्चर्यजनक कहानी बतायी। उन्होंने कहा, "एक दफा श्रावस्ती के कुछ लोगों ने भगवान् बुद्ध को चातुर्मास के विश्राम के लिए श्रावस्ती बुलाया। जिन्होंने उन्हें बुलाया उन्होंने श्रावस्ती के जमीनवालों से भगवान् के लिए कुटी बनाने के निमित्त जमीन माँगी। जमीनवालों ने कहा—'जमीन पर मोहरें बिछाइये और वे ही मोहरें दे-देकर जमीन लीजिये।' आखिर उन लोगों को मोहरें बिछाकर ही जमीन लेनी पड़ी। जहाँ भगवान् बुद्ध के जमाने में उस महापुरुष के लिए मोहरें बिछाकर जमीन लेनी पड़ी, वहाँ मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति को उसी श्रावस्ती में सौ एकड़ जमीन दान में मिली। तो बताइये, यह कलियुग है या सत्ययुग ?"

आजकल भाषण के अन्त में बिहारवासियों से अपील करते हुए विनोबाजी कहते हैं—"गौतम और गांधी की आँखें अपने इस छोटे-से काम की ओर लगी हुई हैं। वे देख रहे हैं कि उनका बिहार इस अहिंसक क्रान्ति को कैसे सफल बनाता है ?"

•

कुदरा जाते समय एक छोटी-सी नदी पार करनी थी। घरनई (कामचलाऊ नाव) और हाथी—इनमें से विनोबाजी ने घरनई को ही चुना।

उधर हमारे अमरीकन भाई-बहन, जिन्दगी में पहली बार हाथी पर बैठने का अवसर प्राप्त होने के कारण, बहुत खुश थे। घरनई में बाबा, करण भाई और मैं—तीन ही आदमी थे। मुझे अमरीका के एक 'गैलप पोल' की याद आयी। 'एक नौका में ट्रूमन, आइन्स्टीन और फिल्म-स्टार व्हीव्हीलन ली—तीनों बैठे हैं, नौका डूब रही है, किसी एक को ही बचाया जा सकता है तो किसे बचाया जाय ?' इस सवाल पर एक अखबार में लोगों की राय माँगी गयी। सबसे अधिक मत व्हीव्हीलन ली के पक्ष में थे और सबसे कम ट्रूमन के। मैंने जब बाबा को यह किस्सा बताया, तो उन्होंने कहा, "भारत में इस प्रकार मतदान नहीं होता।" घरनई से उतरे और एक पगडंडी से चलना आरम्भ हुआ। अँधेरा, कीचड़, मेढ़क और मच्छर इन सबसे मुलाकात करते-करते हम तंग आ गये। कदम उठाते समय डर लगता—कहीं मेढ़क पैर से कुचल न जाय। मुँह खोलते ही १०-५ मच्छर भीतर चले जाते। थोड़ी देर बाद खेतों में से जानेवाली पगडंडी आयी। सबेरा हो गया था। चारों ओर धान के हरे-भरे खेत मन को प्रसन्न कर रहे थे। इस पैदल-यात्रा में सृष्टि का जो विविध सौन्दर्य दिखाई देता था, वाहन से सफर करनेवाले को वह सौन्दर्य नसीब कहाँ ?

रास्ते में नाव से दुर्गावती नदी पार करनी थी। कांग्रेसी और समाजवादी दोनों ने फूलों से सजाई हुई दो नौकाएँ तैयार रखी थीं। विनोबाजी को किस नौका में बैठाया जाय, इस पर दोनों में झगड़ा हुआ। ...... बिहार में पक्षभेदों की जो तीव्रता है, उसका धीरे-धीरे दर्शन होने लगा। नाविक ने विनोबाजी के चरण धो लिये, फिर उन्हें नौका में बैठाया। उस समय वह दृश्य याद आया—

'सोई चरन केवट धोई लीन्हों, फिर प्रभु नाव चढ़ाई।'

इस तरफ पर्दे का रिवाज अधिक होने के कारण यहाँ की महिलाएँ दिन में बाहर नहीं निकलतीं, रात होते ही वे विनोबाजी के दर्शन के लिए आने लग जाती थीं। रात को बारह बजे तक वे आती रहतीं, लेकिन बाबा तो साढ़े आठ बजे ही सो जाते थे, इसलिए उन्हें दर्शन लिये बिना ही घर

लौट जाना पड़ता। कभी-कभी जो बहनें साढ़े आठ के पहले आतीं उनसे बाबा पूछते—"आप चोर हैं या डाकू ? इस प्रकार चोर-डाकुओं के समान रात को क्यों आती हो ? दिन में सूर्य-प्रकाश में क्यों नहीं आतीं ? यह पर्दे का रिवाज बिल्कुल खराब है, पर्दा छोड़कर निर्भयता से घूमो।" इस पर बहनें कहतीं, "हम तो इस बात को चाहती हैं; लेकिन घर के पुरुष हमें बाहर नहीं निकलने देते।" यह सुनते ही बाबा ऊँची आवाज में उन्हें आदेश देते थे—"तो फिर बगावत करो।"

सासाराम की विशाल सभा में विनोबाजी ने बहुत ही क्रान्तिकारी विचार प्रकट किये, "राष्ट्रपति और बढ़ई को समान वेतन मिलना चाहिए। समाज में किसी मनुष्य को जो श्रेष्ठता प्राप्त होगी, वह विद्वत्ता और चारित्र्य के कारण ही। ...... तनख्वाह कम-बेशी क्यों होनी चाहिए?"

कौन सी कला श्रेष्ठ है ?

डेहरी, नासिरगंज, विक्रमगंज, नवानगर, इटाड़ी

१८, १९, २०, २१, २२ सितम्बर, १९५२

इन दिनों चलते समय प्रकृति का विशेष सुन्दर स्वरूप दिखाई देता था। रास्ते के दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे पेड़ होते। आसमान में ऊषा की लालिमा के साथ बादलों का नृत्य चलता रहता है। कभी उस नृत्य की शोभा को निहारते, कभी धान के खेतों के चमकीले हरे रंग को देखते, कभी धान पर गिरे जल-बिन्दुओं का पान करते और बीच में कभी-कभी शोणभद्र का भव्य दर्शन करते हुए हमारी यात्रा चलती रही। ......

चलते-चलते बाबा ने पूछा, "तेरे पिताजी योरप की इतनी लम्बी यात्रा कर आये, फिर भी तूने अभी तक मुझे उनकी सफर के बारे में कुछ नहीं कहा।" मैंने जब उन्हें वह घटना बतायी, जब कि मेरे पिताजी के एक यूरोपियन मित्र ने उनसे कहा—"आप पूरब के लोग प्राचीन तथा अनुभवी होते हैं। आप लोगों ने जीवन की गहनतम समस्याओं पर चिन्तन

किया है। इसलिए अपने छोटे भाई—पश्चिम के देशों—को उस बारे में शिक्षित करना आपका कर्तव्य है। भारत के तत्त्वज्ञान का सन्देश लेकर आनेवाले मिशनरियों की यहाँ सख्त जरूरत है।" ...... तो यह सुनकर बाबा ने कहा—"हाँ, यहाँ से मिशनरी जरूर जायँगे। लेकिन कुछ समय तो बीतना ही चाहिए! भगवान् बुद्ध के एक हजार साल बाद उनका तत्त्वज्ञान दुनिया में फैला। और यहाँ पर तो आज भगवान् बुद्ध का जन्म हो रहा है। ...... कुछ समय बीतने दो, फिर यहाँ से अहिंसा का संदेश बाहर ले जानेवाले कई प्रचारक निकल पड़ेंगे।"

फिर 'कला और जीवन' विषय पर चर्चा शुरू हुई। बाबा ने कहा, "कला के बारे में मेरा जो मत है वह 'खतरनाक' है। जो सबको प्रिय होगी और सबको प्रभावित कर सकेगी वही श्रेष्ठ कलाकृति है। कालिदास और टैगोर से वाल्मीकि अधिक उच्च श्रेणी का कवि था।"

मुझे बाबा की यह बात जँची नहीं। मैंने पूछा, "लेकिन अक्सर देखा गया है कि सर्वसाधारण मनुष्य उच्च कलाकृति का मूल्य नहीं पहचान सकता। ...... Cultured taste को तो Cultivate ही करना होता है।"

बाबा बोले, "प्रकृति; संस्कृति और विकृति इन तीनों की सुनिश्चित मर्यादाएँ पहचाननी होती हैं। अक्सर देखा गया है कि संस्कृति के नाम पर विकृति को लाया जाता है। ...... जिसे 'बुर्ज्वा कला' कहते हैं वह इसी प्रकार की कला है। ...... जो सबको प्रिय होगी वही सच्ची कला है।"

मैंने कहा, "इस बारे में मतभेद हो सकते हैं। ...... मैं तो मानती हूँ कि जो बर्नार्ड शॉ की कलाकृतियों का रस ग्रहण कर सकता है, वही सच्चे अर्थ में सुसंस्कृत है।"

बाबा ने कहा, "बर्नार्ड शॉ या कालिदास जैसे कलाकार तुम जैसे सुसंस्कृत व्यक्तियों का मनोरंजन कर सकते हैं, लेकिन वे किसी असंस्कृत को सुसंस्कृत नहीं बना सकते। इसके विपरीत वाल्मीकि जैसे कवि असंस्कृत मनुष्य को भी सुसंस्कृत बना देते हैं।" इस कथन से तो मैं सहमत हो गयी, फिर भी मेरा मन इस बात को मंजूर नहीं कर सका कि 'जो सबको प्रिय होगी, वही श्रेष्ठ कला है।'

विक्रमगंज की सभा में पचीस हजार से अधिक जनसमुदाय था। लाउड स्पीकर काम नहीं कर रहा था, जिससे लोग शान्ति नहीं रख पा रहे थे। इसलिए विनोबाजी बिल्कुल थोड़े समय तक बोले। भाषण समाप्त होने के बाद वे मंच पर बैठकर ही 'गीता-प्रवचन' पर हस्ताक्षर कर रहे थे। काफी समय बीत जाने पर भी सारा समुदाय उसी तरह बैठा था। मुझे लगा कि ये लोग विनोबाजी का भाषण सुनने नहीं आते; बल्कि दर्शन करने आते हैं। सिर्फ दर्शन से इन्हें क्या लाभ होता होगा, वे ही जानें। 'व्हिन्सेन्ट शीन' भी विनोबाजी की तरह कहता है कि 'भारतीय लोग केवल दर्शन से ही संतुष्ट हो जाते हैं। उनकी दर्शन-लालसा अजीब प्रकार की है, जो दुनिया के दूसरे देशों में नहीं दिखाई देती। इसका कारण है भारतीय जन-मन में गहरा पैठा हुआ वेदान्त का तत्त्वज्ञान। हरएक भारतीय को महात्मा में अपनी ही आत्मा का परिशुद्ध स्वरूप दिखाई देता है।'

विनोबाजी सिर्फ 'गीता-प्रवचन' पर अपने हस्ताक्षर कर देते हैं। आजकल 'गीता-प्रवचन' पर हस्ताक्षर करने का कार्यक्रम काफी समय तक चलता रहता है, क्योंकि साहित्य की बिक्री बहुत बढ़ रही है। इसलिए दस्तखत लेनेवालों की एक लम्बी कतार बन जाती है। आज जब वह काम चल रहा था, तो कुछ लोग कतार छोड़कर आगे आने की कोशिश कर रहे थे। विनोबाजी ने उनसे कहा, "इस तरह आगे बढ़ने की कोशिश क्यों करते हो ? 'मैं सबसे आखिर में रहूँगा' ऐसी वृत्ति रहेगी तभी 'सर्वोदय' होगा। और 'मुझे सबसे आगे बढ़ना है, मेरी जरूरत सबसे पहले पूरी होनी चाहिए' ऐसी वृत्ति रहेगी तो सर्वनाश होगा।" 'गीता-प्रवचन' पर हस्ताक्षर करके विनोबाजी स्वयं किताब लेनेवालों के हाथ में किताब दे देते हैं। इसे वे जन-परिचय का एक अंग मानते हैं। अक्सर देखा गया है कि उनके हाथ से किताब लेते समय प्रत्येक आदमी उनके चरण छू लेता है। आज हस्ताक्षर करते समय बाबा कह रहे थे—"अब गीता-प्रवचन लिया है तो जमीन देनी पड़ेगी। अब तो जरा काम-क्रोधादि पर विजय प्राप्त करना सीखो।"

अँधेरा होते ही घूँघट निकाले हुए स्त्रियों के झुण्ड के झुण्ड हमारे निवास-स्थान पर आने लगते थे। पैट और कृष्णम्मा हिन्दी नहीं जानती थीं, इसलिए महिलाओं से बातचीत करने का काम मुझ पर ही आ पड़ता। कभी-कभी उनमें से कोई बहन मुझसे कहती, "बेटा, ज्ञान हासिल करने के लिए तुम अपना घर-बार छोड़कर संत के साथ घूम रही हो बड़ी कठिन तपस्या है यह! तुम्हें शत-शत प्रणाम! तुम्हारे दर्शन से ही मैं पवित्र हो गयी।" तो दूसरी बहन कहती, "इस तरह मारे-मारे घूमकर अपने कोमल शरीर को क्यों कष्ट दे रही हो? शादी कर लो, अकेली मत घूमो।" ...... इन बहनों को बाबा के पास ले जाने पर वे कहने लगते, "क्या आप सब मुसलमान हैं? हिन्दू-धर्म में तो पर्दे का रिवाज है ही नहीं। और अब तो कुछ मुसलमान भाई भी समझने लगे हैं कि पर्दा बुरी चीज है।" मैं इन बहनों से पैट की ओर इशारा करके कहती कि "वह गोरी लड़की सात समुद्र पार करके यहाँ आयी है और विनोबाजी के साथ घूम रही है, और आप इसी देश में रहते हुए विनोबाजी के स्वयं आपके घर आने पर भी उनका भाषण सुनने बाहर नहीं निकलतीं।"

एक दिन नंगे पैर चलते देखकर बाबा ने मुझसे कारण पूछा। मैंने जवाब दिया—"जूते ने काटा है, इसलिए नंगे पैर चल रही हूँ।" इस पर बाबा ने कहा, "मुसाफिरी में कैसा जूता पहनना चाहिए, इस विषय में मैं अब प्रोफेसर बन गया हूँ।" ...... यहाँ आने के पहले मैंने एक साल तक कॉलेज में प्रोफेसर का काम किया था, इसलिए बाबा से लेकर गौतम तक सभी 'प्रोफसर' कहकर मेरा मजाक उड़ाते थे।

नवानगर जाते समय रास्ते में बारिश होने के कारण हम लोग पूरे भींग गये। अभी बरसात समाप्त नहीं हुई थी, इसलिए चलते समय कई दफा पानी में भींगना पड़ता था। बारिश की रफ्तार बढ़ते देख बाबा के चलने की रफ्तार भी बढ़ जाती थी। मैंने बाबा से कहा कि "आज की रफ्तार तो बहुत तेज है।" इस पर उन्होंने जवाब दिया, "हाँ, इसी रफ्तार से ही तो क्रान्ति हो सकती है।" फिर रफ्तार कम करते हुए

मुस्कराकर कहने लगे, "अच्छा, अब निर्मला को ज्यादा थकाना नहीं चाहिए।" फिर उन्होंने अपने नागपुर-जेल के साथियों के बारे में मुझसे पूछा और हरएक के गुणों का वर्णन किया। किसी के गुणों का ही ग्रहण करने की उनकी वृत्ति देख मन में विचार आया, क्या कभी इन्हें किसी के दोष भी दिखाई देते होंगे? पड़ाव पर पहुँचते ही बाबा ने हँसते हुए कहा, "मेरी आज की चलने की गति इतनी तेज थी कि उसके लिए 'परम-वीर-चक्र' ही दिया जाना चाहिए।" यह सुनकर सभी हँस पड़े।

नवानगर में दिन भर बारिश होती रही। सभा-स्थान पर सर्वत्र कीचड़ हो गया था, फिर भी पाँच हजार लोग खड़े होकर भाषण सुन रहे थे। सुबह पहुँचते ही खबर मिली कि यहाँ पर कुछ भी जमीन नहीं मिली है। तो फिर यात्री-दल के प्रमुख रामदेव बाबू जमीन माँगने गये और सभा के समय तक कुछ जमीन लेकर आये। जनता तो दान देने के लिए उत्सुक है, परन्तु माँगनेवालों की ही कमी है—इस बात का हम प्रतिदिन अनुभव कर रहे हैं। विनोबाजी के भाषण के बाद किसान हमारे कार्यालय में आकर स्वयं दान दे जाते।

चलते समय स्थान-स्थान पर कमलों तथा कुमुदों से भरे हुए तालाब नजर आते थे। सूर्योदय होते ही सारे कमल खिल जाते, किन्तु उधर कुमुदों के तालाब में ठीक उल्टा दृश्य दिखाई देता था। आज तक साहित्य में चन्द्रमा की किरणों से खिलनेवाले कुमुदों का वर्णन पढ़ा था। लेकिन अब प्रत्यक्ष में कुमुदों को देखकर लगा—कुमुद तो योगी जैसे हैं। जब सारी दुनिया सो जाती है, तब वे जागते रहते हैं और जब दुनिया जागती है तब वे सो जाते हैं।

इटाढ़ी जाते समय फिर से मूसलाधार बारिश होने लगी। मैंने विनोद में करण भाई से कहा, "जाड़े के दिनों में नैनीताल, गर्मी में बुन्देलखंड की यात्रा हुई और अब बरसात की यात्रा भी हो रही है। तो बताइये, अब हमारी भगवान् बुद्ध जैसी तपस्या हुई या नहीं? बस, अब तो बोध-गया में जाकर उस पीपल के पेड़ के नीचे बैठना भर बाकी रह गया है।"

इटाड़ी में हमारा सामान लानेवाली जीप काफी देर से पहुँची, इसलिए दिन भर गीले ही कपड़े पहने रहना पड़ा। ऐसे समय बाबा की सारी व्यवस्था करते-करते हमारी महादेवी ताई को काफी परेशानी उठानी पड़ती है। उन्हें तो हर रोज नये स्थान पर नया घर बसाना और इसीलिए अपनी कल्पनाशक्ति का पूरा उपयोग करना पड़ता है। आज तो बाबा को बारिश के पानी से बचाने के लिए ताई ने एक टूटे-फूटे कमरे के चारों ओर छोटी सी खन्दक खोदी, पानी बाहर जाने की सुविधा कर ली और बीच के सुरक्षित स्थान में एक चौकी पर बाबा का आसन तैयार कर दिया। यों तो ताई ने कई सालों से निष्ठा के साथ बाबा की सेवा की है, फिर भी इस बरसात में उनकी मानो परीक्षा ही थी। खुद की तबियत खराब होने पर भी वे बाबा की सेवा में किसी भी प्रकार की त्रुटि न रहने देतीं। बाबा केवल दही, दूध और कभी-कभी फलों का रस लेते हैं। वे कहते हैं—"दही तो मीठा ही होना चाहिए। उपनिषदों ने कहा भी है—**दधि मधुरं मधु मधुरम्।**" "यह बात सुनने में तो बड़ी मधुर मालूम होती है, लेकिन बाबा को हर ३ घण्टे पर मीठा दही देने की जो व्यवस्था करनी पड़ती है, उसे करते-करते ताई का तो कचूमर ही निकल जाता है। दही खट्टा न हो जाने की सतर्कता में ताई को रात में भी बार-बार उठकर देखना पड़ता है।

प्रकाश को अन्धकार का डर नहीं होता

बक्सर

२३, २४ सितम्बर, १९५२

बक्सर पौराणिक काल से मशहूर है। सुना है, विश्वामित्र ने यहीं पर यज्ञ किया था। रामचन्द्रजी विवाह के लिए विदेह जाते समय यहीं रुके और उन्होंने यज्ञ में बाधक राक्षसों का संहार कर यज्ञ की रक्षा की थी। ताड़का राक्षसी का वध भी इसी स्थान पर हुआ था। इतिहास में तो

बक्सर की लड़ाई मशहूर ही है। उसी लड़ाई में अंग्रेजों ने काशीनरेश को हराकर सारे बिहार पर कब्जा कर लिया था। उस लड़ाई में अंग्रेजों के पास थोड़ी-सी ही फौज थी, लेकिन उनमें इन्तजाम करने की शक्ति तथा अनुशासन होने के कारण वे काशीनरेश की बड़ी भारी फौज पर विजय हासिल कर सके। बाबा उसी लड़ाई का जिक्र करते हुए कहने लगे--"हम लोगों का सबसे बड़ा दुर्गुण यह है कि हममें इन्तजाम करने की शक्ति नहीं है। बिहार में मैं प्रतिदिन इस बात का अनुभव कर रहा हूँ। इसी दुर्गुण के कारण हम बक्सर की लड़ाई हारे। अब भी जग जाइये और इस दुर्गुण को हटाने की कोशिश कीजिए।"

बिहार प्रान्तीय कांग्रेस के सभापति, (जिनका अब स्वर्गवास हो गया है) पंडित प्रजापति मिश्र भूदान के काम में बहुत दिलचस्पी लेते थे। उन्होंने बक्सर में भूदान के काम के लिए कांग्रेस कार्यकर्ताओं की सभा बुलायी। दिन भर वह सभा चलती रही। बिहार में अभी तक बहुत ही कम काम हुआ, और विनोबाजी ने तो कहा था, "बिहार की भूमि-समस्या हल करने के लिए मैं अपने प्राणों को भी अर्पण कर दूँगा।" सभा में एक कांग्रेसविरोधी कार्यकर्ता ने विनोबाजी से कहा, "इन कांग्रेसवालों ने बापू को धोखा दिया, अब आपको धोखा देंगे। इसलिए इनसे दूर रहिये।" विनोबाजी ने जवाब दिया, "जो माँ अपने बच्चे को बुरा समझकर उसे दूर कर देती है वह माँ ही नहीं है। ......मुझे सब अच्छे और पवित्र ही दिखाई देते हैं। प्रकाश को अन्धकार का डर नहीं होता।"

बिहार-यात्रा के बाद बंगाल आने का निमंत्रण देने के लिए बंगाल के एक नेता विनोबाजी से मिलने आये। आज वे बंगाल के कार्यक्रम के बारे में बातचीत कर रहे थे। विनोबाजी ने उनसे कहा, "मेरी एक महीने की फीस एक लाख एकड़ है।" आजकल विनोबाजी हर प्रदेश की सारी भूमि का छठा अंश माँगने लगे हैं। वे कहते हैं, "आज का राजा है दरिद्र-नारायण और **'षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः'** इस शास्त्र-वचन के अनुसार उस राजा को अपनी जमीन का छठा हिस्सा देना चाहिए।" सारे भारत से

उन्होंने पाँच करोड़ एकड़ जमीन की माँग की है, वह इसी तत्त्व पर आधारित है। अलावा इसके, देश में पाँच करोड़ बेजमीन किसान हैं, जिन्हें पाँच करोड़ एकड़ की जरूरत है। विनोबाजी कहते हैं कि १९५७ तक हमें पाँच करोड़ एकड़ जमीन हासिल करनी है। बंगाल के कार्यक्रम के बारे में बातचीत चल रही थी। सामने विभक्त बंगाल का नक्शा था। उसे देखकर नारायण ने कहा, 'कितना विचित्र मालूम होता है यह बंगाल।' यह सुनते ही बाबा बोले, "यह सब तो नक्शे पर है, वैसे तो जमीन सटी हुई ही है।" बाबा की दृष्टि में राजनैतिक सत्ता का कोई महत्त्व ही नहीं है। मानव के हृदय को जगाकर नयी दुनिया बसाने की उनकी मनीषा है। इसलिए उनके मन की दुनिया में, नक्शे में दिखाई देनेवाले भिन्न-भिन्न राजनैतिक सत्तावाले भिन्न-भिन्न देशों का कोई अस्तित्व ही नहीं है। उनके लिए सभी मानव सर्वत्र एक-से हैं। 'क्रान्ति का आरम्भ तो घर से ही होता है।' इसलिए उन्होंने भारत के भूमिहीन किसानों का मसला सबसे पहले हाथ में लिया हो तो भी पाकिस्तान, चीन तथा दुनिया के सभी देशों के मानवों की समस्याएँ उन्हें अपने जैसी ही मालूम होती हैं। सब देशों की दुःखी जनता की पुकार उन्हें सुनाई देती है। राजनैतिक सीमाओं को पारकर, मानवमात्र के दिल को आकर्षित करनेवाले भगवान् बुद्ध के वे अनुयायी हैं।

आज हमने यहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा प्रकाशित एक पुस्तिका देखी। उसमें लिखा था, 'विनोबा तो जमींदार तथा पूंजीपतियों का एजेन्ट है। इसलिए हम जनता को सचेत करना चाहते हैं कि वह विनोबा के मायावी जाल से बचकर रहे।' इस पर हमारे यात्री-दल के एक भाई ने कहा, 'कम्युनिस्टों को डर लगता है कि विनोबा के रास्ते से भारत की भूमि-समस्या हल हो जाय तो फिर हिन्दुस्तान 'चीन' नहीं बन पायेगा।'

शाम की सभा में भी कम्युनिस्टों ने बहुत सारे सवालों की एक लम्बी फेहरिस्त पेश की थी। विनोबाजी ने जो जवाब दिया उससे किसी भी बुद्धिमान आदमी की शंकाओं का समाधान हो सकता है। विनोबाजी ने कहा—"कम्युनिस्ट पुस्तक-पूजक होते हैं। वेदवाक्य के समान वे मार्क्स की किताब को प्रमाण मानते हैं। इसलिए तेजी से आगे बढ़नेवाले इस

जमाने में वे पिछड़ गये हैं। इसी वृत्ति के कारण उनमें नव-विचार ग्रहण करने की शक्ति नहीं रहती। ...... मेरा काम साम्यवाद के विरोध में से पैदा नहीं हुआ है। मेरा तो अपना स्वतन्त्र कार्य है। उसका अधिष्ठान इसी भारतभूमि में पैदा हुआ तत्त्वज्ञान है। इसीलिए मैंने कहा है कि यह तो 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' का काम है। मैं तो अहिंसा के मार्ग से सारी समाज-रचना में आमूल क्रान्ति करना चाहता हूँ। मैं कम्युनिस्टों को अपना मित्र मानता हूँ। यद्यपि आज वे गुमराह हैं, फिर भी मेरा विश्वास है कि कल उन्हें मेरा विचार अवश्य जँच जायगा।"

यह तात्त्विक विवेचन समाप्त हुआ और विनोबाजी ने दूसरे किसी के पूछे हुए सवालों का कागज हाथ में लिया। पहला सवाल था, 'क्या आप भारतीय संस्कृति में विश्वास करते हैं?' विनोबाजी ने हँसते-हँसते कहा—"जरा मेरी शक्ल-सूरत देखो और निर्णय करो कि यह भारतीय संस्कृति है या विलायती संस्कृति?" यह सुनकर सारी सभा हँसने लगी।

बाबा अक्सर कहते रहते हैं कि "मैं तो अकेला घूमना चाहता हूँ" लेकिन जब उनकी बात कोई भी मंजूर नहीं करता तो फिर कहने लग जाते है—"तो फिर हमारे यात्री-दल में कम-से-कम व्यक्ति होने चाहिए।" आज उसी विषय में उन्होंने कहा—"गौतम, मृदुला और निर्मला ये तीन सेक्रेटरी मेरे लिए काफी हैं। महादेवी और उसके साथ दो सेवक निजी काम के लिए बस हो जायँगे। निर्मला का विदेश-विभाग (Foreign Department) और महादेवी का स्वदेश-विभाग (Home Department) दोनों मिलाकर ६ व्यक्ति और मैं सातवाँ। 'We are seven' खूब जम गया!"

बक्सर के जेल में सत्याग्रह के लिए बन्दी हुए कुछ समाजवादी भाई थे। विनोबाजी ने जेल में जाकर उनसे मुलाकात की। भारत को कुछ पहले ही स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी थी, इसलिए मुझे कभी भी जेल जाने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। मेरी जिन्दगी में जेल के भीतर प्रवेश करने का यह पहला ही मौका था। वहाँ का सारा उदास वातावरण, चोर कैदियों की शून्यता तथा निराशा से भरी हुई नजरें देखकर मुझे बेचैनी

मालूम होने लगी। दिल चाहने लगा कि ऐसे समाज का निर्माण हो जिसमें जेल की आवश्यकता ही महसूस न हो। फिर दिल को इस विचार से कुछ तसल्ली हुई कि ऐसे ही समाज का निर्माण करने के काम में हम हाथ बँटा रहे हैं। जेल के भीतर प्रवेश करते ही समाजवादी कैदियों ने नारा लगाया—**'संत विनोबा अमर हों।'** तथा विनोबाजी पर फूल बरसाये। उनके मुखिया ने अपने भाषण में कहा—"आज हम जेल के बंदियों जैसा भाग्यशाली दूसरा कोई नहीं होगा कि जेल में भी वह प्रकाश आया है जो हिन्दुस्तान के जेल के बाहर के हिस्सों को प्रकाश दे रहा है। हम विनोबाजी की आज्ञानुसार काम करेंगे।" विनोबाजी ने भर्रायी हुई आवाज में भाषण देते हुए कहा, "आप तो हमारी ही जमात हैं। इस बात का मुझे बहुत दुःख होता है कि स्वराज्य के बाद भी लोगों को जेल आना पड़ा है।" उसके बाद कैदियों ने विनोबाजी के पास अपनी-अपनी शिकायतें पेश कीं और विनोबाजी ने पास बैठे हुए जेल के अधिकारियों से शिकायतें दूर करने के लिए कहा। फिर उन्होंने पूरे जेल का निरीक्षण किया। आमरण कारावास की सजा भुगतनेवाले कैदियों की कोठरी में जाकर उनसे बातचीत की। उन्होंने सब कैदियों को बताया कि "शरीर तथा मन के स्वास्थ्य के लिए हर रोज कम-से-कम चार घण्टे का शरीरश्रम का काम करना चाहिए।" उन्होंने सबको आदेश दिया कि "जेल को आश्रम बनाइये।" सब कैदियों ने अपने एक समय के भोजन का पैसा बचाकर भूदान-यज्ञ के काम में अर्पण किया।

स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य का अधिकार

डुमराँव, ब्रह्मपुर, बिहिया, धमार

२५, २६, २७, २८ सितम्बर, १९५२

महाराष्ट्र से बहन प्रेमा कंटक की कल ही बाबा के नाम एक चिट्ठी आयी है जिसमें उन्होंने लिखा है—"आपने जो कहा था कि 'कोई एक-आध तेजस्वी, ज्ञाननिष्ठ वैराग्यमूर्ति शंकराचार्य जैसी स्त्री निकलनी चाहिए' उस

मत का यहाँ के कुछ नेताओं ने घोर विरोध किया। वे लोग कहते हैं—'स्त्री के लिए विवाह अत्यावश्यक है। स्त्री का धर्म है पातिव्रत्य।' यह पढ़कर महादेवी ताई ने नाराज होकर कहा—"इन पुरुषों को तो ऐसी ही अक्ल लगानी चाहिए।"

जब बाबा ने मुझसे पूछा—"इस विषय में तुम्हारी क्या राय है?" तो मैं क्या-जवाब देती? बस, मैंने इतना ही कहा—"बापू ने जो आदेश दिया था, 'पहले पाने के योग्य बनो, तब इच्छा करो' (First deserve then desire) वह बात मुझे जँचती है और इस विषय में भी मेरी वही राय है।"

बाबा—"हाँ, वह तो ठीक है। लेकिन आज यदि कोई यह विचार प्रकट करे कि 'स्त्रियों को ब्रह्मचर्य तथा संन्यास का हक है' तो फौरन लोग उसके खिलाफ बोलने लग जाते हैं। मैं मानता हूँ कि आम स्त्रियों को इस अधिकार की जरूरत भी नहीं महसूस होगी। फिर भी आज के पुरुष-वर्ग का जो कहना है कि 'स्त्रियों को ब्रह्मचर्य का अधिकार ही नहीं होना चाहिए', वह अयोग्य है।" मैंने कहा—"ऐसे पुरुषों को तो कृति से ही चुप बैठाया जा सकता है।"....... मेरा तो मत है कि बाबा की कल्पना के अनुसार कल कोई एक-आध 'शंकराचार्य' पैदा हुई तो फिर 'स्त्रियों को संन्यास का हक नहीं है' कहनेवाले सारे पुरुष भी उसका शिष्यत्व स्वीकार करेंगे। जिस देश में संघमित्रा निर्माण हो सकती है, वहाँ शंकराचार्या भी जरूर निर्माण होगी।

विनोबाजी कई दफा समाज को शरीर की उपमा देते हुए कहते हैं—"जिस तरह शरीर के सारे अवयव मिल-जुलकर काम करते हैं, उसी तरह सब व्यक्तियों को मिल-जुलकर काम करना चाहिए, तभी समाज सुखी हो सकेगा।" मेरी बुद्धि को यह बात जँचती नहीं थी, इसलिए मैंने पूछा—"आप समाज को शरीर की उपमा देते हैं, परन्तु वह तो ऑर्गानिक कॉन्सेप्शन ऑफ् सोसाइटी (Organic conception of Society) है और इसीमें से सर्वाधिकारशाही (Totalitarianism) पैदा हुई है, ऐसा कई दार्शनिक मानते हैं। फिर इस प्रकार के समाज में व्यक्ति की स्वतंत्रता कैसे

टिकेगी ?" बाबा ने कहा—"मैं इस उपमा का प्रयोग करता हूँ; लेकिन बिल्कुल ही दूसरे अर्थ में। मेरी कल्पना के समाज में व्यक्ति को पूरी स्वतंत्रता होगी। शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों के समान भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के काम भी भिन्न-भिन्न होते हैं। आँख का काम आँख ही कर सकती है।" मने कहा, "लेकिन अगर समाज व्यक्ति को स्वतंत्रता नहीं देता और अपनी व्यवस्था व्यक्ति पर लादता है तो फिर व्यक्ति नष्ट हो जायगा।"

बाबा, "कोई भी शरीर यह नहीं चाहेगा कि आँख फोड़ डाली जाय, क्योंकि उससे सारे शरीर को नुकसान पहुँचेगा।"

मने कहा, "लेकिन सर्वाधिकारशाह (Totalitarians) कहते हैं कि 'व्यक्ति को समाज की इच्छा के खिलाफ काम नहीं करना चाहिए', और यह विचार समझाने के लिए वे इस शरीर की उपमा का ही आश्रय लेते हैं।"

बाबा, "तो फिर कहना होगा कि वे इस उपमा का ठीक मतलब ही नहीं जानते। मैं इस बात को कभी नहीं मंजूर कर सकता कि व्यक्ति और समाज इन दोनों के हित एक-दूसरे के खिलाफ हैं।"

मैंने पूछा, "पर यदि समाज-व्यवस्था बिगड़ गयी हो तो क्या व्यक्ति को उस समाज के खिलाफ बगावत करने का हक नहीं है? ईसामसीह तथा महात्मा गांधी ने समाज के खिलाफ बगावत ही तो की थी।"

बाबा, "बगावत करने का हक है या नहीं? यह सवाल ही नहीं पैदा हो सकता। यदि कोई व्यक्ति बगावत करना चाहे तो वह बगावत करेगा और उसे उसका फल भी भुगतना पड़ेगा। यदि उस व्यक्ति के विचार में कुछ सत्य होगा तो वह टिकेगा, और नहीं होगा तो नहीं टिकेगा।"

मैंने पूछा, "लेकिन आपकी कल्पना के अनुसार जो नयी समाज-व्यवस्था बनेगी क्या उसमें व्यक्ति को बगावत करने का हक (Right to revolt) रहेगा?"

बाबा, "हक तो जरूर रहेगा; लेकिन हक होने का यह मतलब नहीं कि वह उसका कर्त्तव्य हो जाता है। किसी भी अधिकार का उपयोग करते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वह हमारा कर्त्तव्य है या नहीं।"

सोलह साल की उम्र के किसी भी लड़के को अपने पिता से अलग रहने का अधिकार है; लेकिन वह उस अधिकार का उपयोग करते समय अपने कर्त्तव्य का भी ख्याल रखता है।"

अद्वैत के सिद्धान्त पर आधारित विचार कहता है कि 'व्यक्तियों के हित या व्यक्ति और समाज के हित एक-दूसरे के खिलाफ नहीं हो सकते।' इसी विचार में से सर्वोदय का तत्त्वज्ञान पैदा हुआ है। लेकिन अभी तक मेरे दिमाग में यह बात घुस नहीं पाती। हो सकता है कि मेरी आज तक की शिक्षा ही इसका कारण हो। हमारी शिक्षा ने हमें संघर्ष का ही तत्त्व-ज्ञान सिखाया है।

नाश्ते का समय हो गया, इसलिए चर्चा यहीं पर रुक गयी। इस समय बाबा शहद और पानी लेते हैं। हमारे यात्री-दल में विभिन्न प्रान्तों के लोग होते हैं। हम सबकी ओर नजर डालते हुए बाबा ने विनोद में कहा, "प्रत्येक प्रान्त के लोग उनके चेहरे पर से पहचाने जा सकते हैं। दक्षिण के लोग काले होते हैं; लेकिन उनकी आँखें तेजस्वी होती हैं।" यह सुनते ही हम सब व्यंकटेशय्या की ओर देखने लगे।

अभी भूदान बहुत ही कम मिल रहा था। आज की सभा में इस बारे में बोलते हुए विनोबाजी ने कहा, "मेरा स्वागत करना हो तो जमीन से कीजिये, फूल-हारों से नहीं। यदि आपने जमीन न देकर फूल-माला और बन्दनवारों से मेरा स्वागत किया तो मुझे बहुत दुःख होगा। ये मालाएँ मुझे विषवत् प्रतीत होती हैं।" विनोबाजी की माँग तो छठे हिस्से की होती है। इसलिए 'यदि कोई अपनी हैसियत से बहुत ही कम जमीन देता है, तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए'—ऐसा उनका आदेश है। आज किसी ३०० एकड़ जमीन रखनेवाले ने सिर्फ ५ एकड़ जमीन दान दी थी। विनोबाजी ने सभा के सामने उसका दान-पत्र फाड़ डाला। वे कहने लगे—"मैं भिक्षा माँगने नहीं आया हूँ, दीक्षा देने आया हूँ। दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि बनकर उसका हक माँग रहा हूँ।"

डुमराँव के राजा ने करीब-करीब छठे हिस्से का दान-पत्र बाबा को

अर्पण किया। बाबा ने उनसे कहा, "यह काम आपके भी हित में है, यह ध्यान में रखते हुए अब आप दूसरों से जमीन दिलाने का काम उठाइये।"

बिहार में चावल को 'प्रसाद' और खीर को 'तस्मै' कहा जाता है। मैंने कहा कि "यहाँ के मनुष्यों के नामों में तो 'प्रसाद' भरा ही पड़ा है परन्तु प्रतिदिन के भोजन में भी 'प्रसाद' है।" हमें नाश्ते में कभी-कभी हलुआ मिलता है। एक दफा ऐसा हलुआ मिला था, जिसमें पत्ते, मरी हुई चींटियाँ, कंकड़, लकड़ी सब कुछ था। हमारी पैट बहन कहने लगीं—"इसमें क्या नहीं है, यही सवाल है।" गुड़ का हलुआ कुछ काला देखकर एक दफा बाबा ने विनोद में कहा—"क्या आप लोग गोबर खा रहे हो?" यह सुनकर हँसते-हँसते हमारे पेट में बल पड़ गये।

धमार में दशहरे के दिन विनोबाजी ने 'सीमान्त' करने का आदेश दिया। उन्होंने कहा—"भूमि का मसला हल करने की अपेक्षा उसे हल करने के अहिंसक तरीके को मैं अधिक महत्त्व देता हूँ। ......आज तक मेरी यह श्रद्धा थी कि अहिंसा के तरीके से दुनिया के सारे मसले हल हो सकते हैं। लेकिन उस श्रद्धा को वास्तविक जगत् में भी अब आधार प्राप्त हुआ है। फिर भी आलस्य और वैमनस्य—इन दो दुर्गुणों के कारण बिहार में अभी तक ज्यादा काम नहीं हो रहा है।"

आज हमने रामलीला देखी। जहाँ-जहाँ तुलसी-रामायण पहुँची, वहाँ-वहाँ हर साल दशहरे के दिन रामलीला होती है। प्रचार के किसी भी आधुनिक साधन का अवलम्ब किये बिना, रामायण का प्रचार करने की तुलसीदासजी की इस पद्धति से आज के जननेताओं को सबक सीखना चाहिए। ......सैकड़ों वर्षों से वही राम-कथा चल रही है और जनता उसी उत्साह से हर साल रामलीला देखती है। विनोबाजी कहते हैं—"रामायण और महाभारत ये दो ग्रन्थ भारतीय-जीवन के साथ एकरूप हो गये हैं। हर भारतीय को लगता है कि उन ग्रन्थों के जो पात्र हैं, वे अपने कुटुम्बियों से भी अधिक निकट हैं।" मुझे लगा कि इसी रामलीला का कुशलता से भूदान-यज्ञ के काम के लिए उपयोग किया जाय तो कितना अच्छा होगा।

सातवाँ भाग

भूदान युग-धर्म है

आरा, अखगाँव, बागा

२९, ३० सितम्बर, १ अक्तूबर, १९५२

बिहार-भूमि में प्रवेश करते ही विनोबाजी की वाणी धर्म-चक्र को गति देने लग गयी थी। आरा की सभा में विशाल जनसमुदाय के सामने बोलते हुए उन्होंने बुद्ध के वंशजों का जो आवाहन किया, उसे सुनकर तो मुर्दों में भी जान आ जायगी। उन्होंने कहा—"भगवान् बुद्ध ने एक तत्कालीन समस्या—यज्ञ में की जानेवाली पशु-हिंसा का विरोध—को लेकर दुनिया को अहिंसा का विचार समझाया। उस समस्या को हल करते-करते उन्होंने अहिंसा द्वारा दुनिया को जीतने के विजय-धर्म का प्रवर्तन किया। केवल तत्त्व-विचार अव्यक्त, निर्गुण और निराकार होता है। इसलिए उसका प्रचार करना हो तो कोई प्रत्यक्ष कार्य करना चाहिए—जमाने की समस्या को हाथ में लेकर उस मसले को हल करने में वह विचार साकार होता है। उसी तरह मैं भूमि के मसले को हल करने के काम के जरिये समाज को सर्वोदय-विचार दे रहा हूँ। ...... मैं तो मानता हूँ कि हिंसा के तरीके से क्रान्ति हो ही नहीं सकती। उससे क्रान्ति का आभास होता है; लेकिन फौरन प्रतिक्रान्ति आरम्भ हो जाती है। सच्ची क्रान्ति तो तब होती है जब साध्य और साधन दोनों में क्रान्ति हो जाती है। यदि किसी दुर्जन से लड़ने में मैंने उसीका दकियानूसी शस्त्र—तलवार—हाथ में लिया तो उस लड़ाई में चाहे मेरी जीत भी हो जाय, तो भी उसकी आत्मा मुझमें प्रवेश करती है और जितना वह दुर्जन था उतना ही मैं भी दुर्जन बन जाता हूँ। इसलिए उसमें उसीकी जीत होगी। ...... जहाँ साधन और साध्य दोनों में में क्रान्ति होती है, वह सम्यक् क्रान्ति या 'संक्रान्ति' हो जाती है। ...... भगवान् बुद्ध को इसी बिहार-भूमि में ज्ञान प्राप्त हुआ था। महात्मा गांधी को

इसी भूमि—चम्पारन में अहिंसा देवी का साक्षात्कार हुआ था। ...... बुद्ध के वंशजो! आपके प्रदेश में एक अहिंसक क्रान्ति होने जा रही है। क्या इस भाग्यवान भूमि के निवासी इस क्रान्ति को सफल नहीं करेंगे?"

इन दिनों विनोबा-साहित्य की बिक्री बहुत हो रही है, जिससे विचार-प्रचार काफी हो रहा है। विनोबाजी कहते हैं कि "एक दफा मेरा विचार जनता के दिल को जँच जाय तो फिर जमीन की बारिश शुरू हो जायगी।" आरा की सभा में ५०० 'गीता-प्रवचन' बिके। छोटी-छोटी किताबें तो प्रतिदिन सैकड़ों की तादाद में बेची जाती थीं, फिर भी जमीन कम मिल रही थी, इसलिए विनोबाजी कुछ चिन्तित भी हो उठते थे। उन्होंने कार्यकर्ताओं से कहा, "मुझे सिर्फ आग ही लगानी होती तो मैं केवल सभाओं में भाषण देकर विचार-प्रचार करता जाता; लेकिन मुझे तो आग बुझानी है, इसलिए भूदान की माँग कर रहा हूँ। यदि इसी प्रकार जमीन कम मिलती गयी तो आग लग ही जायगी। मेरी प्रतिदिन की सभा में हजारों लोग आते हैं, मेरा संदेश सुनते हैं। अब उनमें जमीन की भूख पैदा होगी और यदि समय रहते ही उस भूख को नहीं मिटाया गया तो फिर क्या होगा—जरा सोचो तो!"

विनोबाजी कहते हैं, "भूदान-यज्ञ जमाने की माँग है, 'युग-धर्म' है। सारा काल-प्रवाह उस काम के अनुकूल है, जनता को आज उसकी जरूरत है।" इसी विषय पर बोलते हुए उन्होंने अखगाँव की सभा में कहा, "काल-रूप भगवान् और विश्वरूप भगवान्, दोनों इस काम के अनुकूल हैं।" बांगा में हम एक मन्दिर में ठहरे थे। मन्दिर के महन्तजी ने कुछ जमीन दान में दी थी। "महन्तजी तो हमारे ही हैं, वे तो संन्यासी हैं"—यह कहकर विनोबाजी ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

प्रतिदिन सृष्टि का जो नित्य-नूतन सौन्दर्य दिखाई देता है, उससे ऐसा लगता है कि ये हरे-भरे खेत, पहाड़ियाँ, नदियाँ, झरने, कमलों से भरे तालाब देखने हों तो पैदल-यात्रा ही करनी चाहिए। प्रकृति का इतना नयन-मनोहर सौन्दर्य देखने के बजाय लोग क्यों रेलगाड़ी और हवाई जहाज से घूमते रहते हैं! ...... यहाँ पर बाँस तथा कटहल के वृक्षों की शोभा

दिखाई देती थी। प्रतिदिन के सूर्योदय और सूर्यास्त का दृश्य तो पागल बना देता था और अब पूर्णिमा पास आ रही थी। इसलिए चन्द्रमा के प्रकाश से नहायी हुई सृष्टि को देखने के लिए रात को घूमने की इच्छा जाग उठी। इस काम में पैट की और मेरी अच्छी जोड़ी मिल जाती थी।

दिमाग में हिमालय, दिल में अग्नि

पालीगंज, विक्रम, बिहटा, मनेर (पटना)

२, ३, ४, ५ अक्तूबर, १९५२

नहर के किनारे एक छोटी-सी पगडंडी थी। पश्चिम क्षितिज पर चतुर्दशी का चन्द्र चमक रहा था। बाबा हाथ में लालटेन लिये सबसे आगे चले जा रहे थे। आज केवल लाक्षणिक ही नहीं; बल्कि व्यावहारिक अर्थ में भी वे हमारा पथ-प्रदर्शन कर रहे थे। थोड़ी ही देर बाद शोण नदी का किनारा आया। पटना जिले में प्रवेश करना था। हमारी नाव धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। बाबा आकाश-दर्शन का पाठ पढ़ाने लगे। दक्षिण दिशा में अगस्ति का तारा और उनका आश्रम बताया गया; फिर कृत्तिका नक्षत्र, जो ६ ऋषिपत्नियों से बना हुआ है। सातवीं अरुंधती तो सप्तर्षियों में से वशिष्ठ के पास ही रहती है। धीरे-धीरे तारों का अस्त होने लगा, प्राची के मुख पर लालिमा दिखाई देने लगी और देखते-देखते लाल-सुर्ख सूर्यबिम्ब ने क्षितिज पर पदार्पण किया। शोण के जल में उसका प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहा था जिससे मन यह नहीं तय कर पा रहा था कि किस सूर्यबिम्ब की ओर देखूं। नाव किनारे लगी और फिर शोण की रेत में एक मील पैदल चलना पड़ा। शोण की रेत में न गंगा-यमुना की रेत-सी नजाकत है और न उतनी मुलायमत ही। मैंने बाबा से यह बात कही तो वे बोले, "हाँ, इसीलिए तो गंगा-यमुना की रेत में जिस तरह पाँव फँस जाते थे वैसे यहाँ नहीं फँसते।" बाबा के चरण-चिह्नों को रेत पर

अंकित होते देख मुझे उन्हींका एक वाक्य याद आया, "मैं भगवान् बुद्ध के चरण-चिह्नों का अवलम्बन कर रहा हूँ।"

आज गांधी-जयन्ती भी थी और कोजागरी (शरद) पूर्णिमा भी। सभा का प्रारम्भ हुआ बिहार के प्रसिद्ध कवि 'दिनकर' के गीत से :—

'सुरम्य शान्ति के लिए जमीन दो, जमीन दो।
महान् क्रान्ति के लिए जमीन दो, जमीन दो॥'

हम सोचते थे कि आज बाबा खूब बोलेंगे; लेकिन बाबा ने गम्भीर स्वर में कहा, "आज का दिन बोलने का नहीं, आत्मसंशोधन का है।"

प्रवचन के बाद कार्यकर्ताओं की सभा में बोलते हुए उन्होंने कहा—"मैं तो सबकी परीक्षा लेने आया हूँ। अब देखना है कि बापू का नाम लेनेवाले सब इस कसौटी पर कहाँ तक खरे उतरते हैं।" एक भाई ने कहा, "सबसे पहले मंत्री और बड़े-बड़े नेताओं से जमीन लीजिये।" इस पर विनोबाजी ने कहा, "क्रान्ति कभी बड़ों से नहीं होती। प्रभु रामचन्द्र ने बन्दरों से महान् काम करवाया, कृष्ण भगवान् ने ग्वाल-बालों से। ईसामसीह और गांधी के प्रथम शिष्यों में भी छोटे-छोटे लोग ही थे।"

रात बीत रही थी। पूर्णिमा के चन्द्र ने अपने किरणजाल में सारी सृष्टि को बन्दी बना लिया था, जिससे बिहार की रमणीय सृष्टि और अधिक रमणीय प्रतीत हो रही थी। रास्ते में दोनों ओर सैकड़ों नर-नारी हाथ में आरती और फूल-मालाएँ लिये खड़े थे। पालीगंज से बिक्रम तक ९ मील के रास्ते भर यही दृश्य दिखाई दे रहा था। स्थान-स्थान पर फूल-मालाओं के साथ भूदान भी मिल रहा था। एक जगह आरती के थाल में कपूर को जलते देख बाबा ने कहा, "इसे हर्गिज नहीं जलाना चाहिए, क्योंकि यह तो विदेश से आता है।"

हमारे यात्री-दल के एक समाजवादी भाई तिवारीजी ने कुछ सवाल पूछे। बाबा कहने लगे, "समाजवादियों का कोई साफ विचार नहीं है। उनमें से कुछ गांधीवादी हैं, कुछ मार्क्सवादी, कुछ दोनों। और कुछ तो कुछ भी नहीं हैं। उनमें से कुछ लोग विकेन्द्रीकरण की बातें करते हैं। इसका

मतलब यह है कि जो मिलें अहमदाबाद में केन्द्रित हुई हैं, उनको देहात-देहात में विकेन्द्रित किया जाय। परन्तु अभी तक वे ग्रामोद्योग तक नहीं पहुँचे हैं।" मेरा तो मत है कि जो उत्पादक काम हैं वे हाथ से ही होने चाहिए। मैं तो सब मिलें बन्द करने के पक्ष में हूँ।...... लेकिन रेल-गाड़ी, विमान आदि वाहनों को मैं चाहता हूँ, क्योंकि ये अलग चीजें हैं। ये समयसाधक यंत्र हैं, उत्पादक नहीं। मैं तो अत्यन्त गतिमान विमान चाहता हूँ। आज के विमानों की गति मेरे लिए काफी नहीं है। अभी इस (मेरी ओर इशारा करके) लड़की का बाप यूरोप जाकर आया है। उसी तरह यह विमान मुझे भी यूरोप या अमरीका पहुँचायेगा। पर मैं तो मंगल और गुरु पर जाना चाहता हूँ।"

हमारा आज का निवास विक्रम के बेसिक ट्रेनिंग स्कूल में था। किसी सैनिक छावनी का अब बेसिक स्कूल में रूपान्तर किया गया है। बाबा ने कहा, "सैनिक छावनी का इससे बेहतर उपयोग क्या हो सकता है?" ...... किसी भी रचनात्मक काम करनेवाली संस्था में जाने पर खादी-धारी भाई-बहनें दिखाई देने लगती हैं; सर्वत्र स्वच्छता, नियमितता, सूत-कताई आदि देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। लगता है, जैसे अपने ही घर में आये हों। विक्रम की शाम की सभा भी विराट् थी। एक विशाल आम्रवृक्ष की छाया में अल्पना तथा कलश से सजाये हुए मंच पर विनोबाजी बैठे थे। 'नयी तालीम' के बारे में विनोबाजी ने कहा, "यह तालीम आज के समाज के सारे पुराने मूल्यों को नष्ट करके नये मूल्य स्थापित करनेवाली है। यह समता लानेवाली है।" आगे उन्होंने कहा, "मेरा जो विचार है वह न मैं चीन से लाया हूँ, न रूस से। वह तो इसी आर्य-भूमि का एक धर्म-विचार है। उपनिषदों ने कहा है, 'जो मनुष्य अपने भाइयों को देने के बजाय नाहक अन्न का संग्रह करता है, वह अपने वध का संग्रह करता है।' इससे कठिन शाप कौन दे सकता है?"

पैट ने मुझसे कहा, "मैं तुमसे हिन्दू तत्त्वज्ञान सीखना चाहती हूँ।" मैंने जवाब दिया, "इस विषय में मैं भी तुम जितनी ही अज्ञान हूँ।"...... पैट को देखकर यहाँ के लोगों को और खासकर विद्यार्थियों को बड़ा आश्चर्य

होता था। विद्यार्थी हमेशा उससे सवाल पूछते रहते थे। खासकर साम्य-वाद की ओर झुके विद्यार्थी उससे कहते, "भूदान से कोई मसला हल नहीं हो सकेगा।" और फिर वह बिल्कुल शान्ति से घण्टों तक विद्यार्थियों को भूदान का तत्त्वज्ञान समझाती रहती। भारतीय विद्यार्थियों को यज्ञ, दान, अद्वैत आदि के बारे में एक अमेरिकन बहन से शिक्षा लेनी पड़ती है!

जयप्रकाशजी की पत्नी प्रभावतीजी की 'महिला-चरखा-समिति' का काम इस क्षेत्र में काफी हुआ है। उस संस्था की बहनों ने यहाँ खूब प्रचार किया। इसलिए आजकल सभाओं में बहनों की काफी संख्या दिखाई देती थी। यहाँ से पटना नजदीक होने के कारण मन्त्री, बड़े-बड़े अफसर, विधान-सभा के सदस्य आदि की भी भीड़ लगी रहती। बिहार की प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी ने बिहार की विधानसभा के सदस्यों तथा संसद् के सदस्यों को अपने-अपने निर्वाचन-क्षेत्र में भूदान का काम करने का आदेश दिया था। इस-लिए जिस सदस्य के निर्वाचन-क्षेत्र में विनोबाजी जानेवाले होते वे वहाँ पर पहले से कुछ जमीन प्राप्त करके स्वागत के लिए तैयार रहते।

किसी दिन बाबा ने कहा था, "यह मैं नहीं घूम रहा हूँ, क्रान्ति घूम रही है।" ...... आज मुझे बाबा के साथ चलते हुए देखकर यहाँ के एक नेता ने विनोद में कहा, "आप तो बिल्कुल क्रान्ति के साथ-साथ कदम मिलाती हुई चलती हैं।" मैंने हँसते हुए जवाब दिया, "जी नहीं, मैं तो क्रान्ति के पीछे-पीछे चलती हूँ।"

१० मील से कम फासला हो तो हम सूर्योदय के पहले पड़ाव पर पहुँच जाते थे। फिर प्रातःकाल की सुहावनी वेला में बाबा को बोलने की प्रेरणा हो जाती। मनेर पहुँचने पर ऐसी ही वेला में वे बोलने लगे, "आर्य का मतलब है—उदार और देनेवाला। इसलिए हम आर्यभूमि के निवासियों को उदार बनना चाहिए। कृपण आर्य नहीं कहा जा सकता।

"कुछ लोग कहते हैं कि मिल के कपड़ों की अपेक्षा खादी महँगी पड़ती है। लेकिन मिल के कारण जितने लोग बेकार हो जाते हैं, उनको खिलाने-पिलाने की जिम्मेदारी अगर मिलों पर सौंपी जाय तो मिल का कपड़ा महँगा हो जायगा। मिल की चीज सस्ती इसलिए होती है कि

वहाँ पर लोगों को कम-से-कम मजदूरी दी जाती है। मतलब, लोगों को भूखों मरना पड़ता है। खादी सबको काम देती और खिलाती है। ...... जहर सस्ता और अमृत महँगा है, क्या इसलिए जहर खरीदियेगा ?

"हिमालय का स्थान छाती नहीं, दिमाग है। दिमाग ठंडा हो; पर दिल गर्म होना चाहिए। वहाँ तो भावनाएँ होनी चाहिए। दिमाग में हिमालय और हृदय में अग्नि होनी चाहिए। लेकिन आजकल के नवजवानों की हालत ठीक इससे उल्टी रहती है।"

देवों को संतुष्ट कीजिये

छपरा, माँझी, एकमा, महाराजगंज (सारन)

६, ७, ८, ९ अक्तूबर, १९५२

सारन राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू का जिला है। राजेन्द्र बाबू ने पिछले साल दिल्ली में विनोबाजी से कहा था, "बिहार में मेरी जो जमीन पड़ी है, उसमें से आप चाहे जितनी ले लीजिये।" उन्होंने एक पत्रक निकालकर अपने जिले के निवासियों से अपील की थी, "विनोबाजी के भूदान-यज्ञ के काम में हिस्सा लीजिये।" जयप्रकाशजी भी इसी जिले के हैं। इन दिनों वे स्वास्थ्य-लाभ के लिए पूना में आराम कर रहे थे, लेकिन उनके साथी कहते थे, "उनका सारा दिल बिहार में भूदान के काम में है। उनकी पूना से आनेवाली हरएक चिट्ठी भूदान की चिट्ठी रहती है।" विनोबाजी ने उन्हें लिखा था, "यद्यपि आपका शरीर वहाँ पर है, फिर भी आप मन से काफी काम कर रहे हैं।"

चलते समय एक कार्यकर्ता ने कहा, "जिस दिन जमीन नहीं मिलेगी, उस दिन क्या किया जाय ?" बाबा ने जवाब दिया, "जिस दिन जमीन नहीं मिलती, उस दिन फाका करना चाहिए और जमीनवालों से प्रेम से कहना चाहिए कि यदि जमीन नहीं देंगे तो मैं आज खाना नहीं खा सकूँगा।" ...... इस पर उस कार्यकर्ता ने कहा, "यह तो दबाव हुआ।" बाबा

ने ऊँचे स्वर में जवाब दिया, "यह कौन सा दबाव है? उनकी छाती पर तो पिस्तौल तानी जानेवाली है, हम उन्हें इससे बचाते हैं। यह तो प्रेम से समझाने की बात है।"

माँझी जाते समय रास्ते में एक लम्बा गाँव आया। उस गाँव में एक ही रास्ता था। रास्ते के दोनों ओर घर थे और घरों के पीछे खेत। बाबा ने कहा, "यह ग्राम-रचना अच्छी है। हरएक घर को खुली हवा मिलती है। सामने समाज और पीछे सृष्टि।" उस गाँव के पास गौतम ऋषि का मन्दिर था। वहीं पर उनका आश्रम था, ऐसा कहा जाता है।

माँझी सरयू नदी के किनारे बसा एक गाँव है। धरती माता ने जब सीता देवी को अपने पेट में रख लिया तब सीता के विरह से व्याकुल राम ने इसी सरयू नदी में देहत्याग किया था। सरयू नदी में पानी का वेग अधिक है, परन्तु वह वेग नहीं, राम के प्रेम का उद्वेग है।

एक दिन हम एक जमींदार के यहाँ ठहरे थे। उनकी शिक्षित पत्नी ने सारा घर कलात्मक ढंग से सजाया था। उसे देखकर प्रसन्नता हुई; लेकिन दूसरे ही क्षण मन में विचार आया, "जब कि लाखों लोग देश में भूख से तड़प रहे हैं, उस समय क्या कोई व्यक्ति अपना घर सजाने की ओर ध्यान दे सकता है? जनता की सारी आवश्यकताएँ पूरी किये बगैर व्यक्ति अपने छोटे-से घरौंदे में सुख से नहीं रह सकता। यह कटु क्यों न हो, पर है सत्य। इस सत्य का भान होते ही आज का सुखी जीवन जीनेवाले व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन के मोहपाश को तोड़कर समाज के जीवन में अपने को लीन करना सीखेंगे।"

महाराजगंज के प्रवचन में विनोबाजी ने कहा, "आज की समाज-रचना कोई रचना ही नहीं है; बल्कि विध्वंस है।

"देव तो थोड़ी ही पूजा से संतुष्ट हो जाते हैं। उनको 'पत्रं पुष्पं फलं तोयम्' ही बस है; लेकिन राक्षस तो सर्वस्व की ही माँग करते हैं और सब कुछ बर्बाद कर देते हैं। इसलिए समय रहते देवों को संतुष्ट कीजिये, नहीं तो सर्वस्व का हरण करनेवाले राक्षस आयेंगे।"

नैतिक अधिष्ठान भूदान की बुनियाद

सीवान, मीरगंज, बड़हरिया, गोपालगंज, बरौली

१०, ११, १२, १३, १४ अक्तूबर, १९५२

मार्गक्रमण चल रहा था और साथ-साथ चर्चा भी। एक भाई ने कुछ सवाल पूछे। बाबा बोलने लगे, "स्वराज्य के पहले देश की जो हालत थी उससे आज की हालत भिन्न है। उस समय तो स्वराज्य हासिल करने के काम में ही देश की सारी शक्तियाँ केन्द्रित करनी पड़ी थीं, क्योंकि स्वराज्य हासिल किये बगैर हम कुछ भी नहीं कर सकते थे। लेकिन अब तो सरकार हमारी हो गयी है। सरकार में जो लोग गये हैं, वे हमारे मित्र हैं, शत्रु नहीं। इस समय स्वराज्य को मजबूत करना ही हमारा कर्तव्य है। जिससे स्वराज्य को धक्का पहुँच सकता हो, ऐसा कोई काम हमें नहीं करना चाहिए। कितनों को इस बात का खयाल नहीं रहता। स्वराज्य मजबूत हो जाने के बाद याने २०-२५ साल के बाद हम आज से भिन्न बर्ताव कर सकते हैं; लेकिन आज 'अराजकता' से स्वराज्य को ही धोखा पहुँच सकता है। इसलिए मैंने 'योजना आयोग' की सख्त आलोचना की, फिर भी सरकार के खिलाफ बगावत का झण्डा नहीं उठाया। जैसे-जैसे जनशक्ति जाग्रत होती जायगी, वैसे-वैसे उसका प्रभाव सरकार पर पड़ेगा। हमारा मकसद तो है विकेन्द्रीकरण; लेकिन आज हमारा सिर्फ दो बातों का आग्रह है : (१) भूमि का बँटवारा और (२) ग्रामोद्योग। इन दोनों को मैं 'सीता-राम' कहता हूँ। यदि आज की सरकार इन दो बातों को मंजूर करती है तो आज के लिए इतना ही काफी है। इससे गरीब जनता को कुछ तो राहत मिलेगी और जनता में विश्वास पैदा हो जायगा। उसके बाद आगे का काम सरल है।

"मेरे काम की ओर कई भिन्न-भिन्न पहलुओं से देखा जा सकता है। जिसे जो पहलू पसन्द आयेगा उसके अनुसार वह काम करेगा। लेकिन किसी एक पहलू को महत्त्व देते समय दूसरे पहलुओं को धक्का न पहुँचे, इस काम का जो नैतिक अधिष्ठान है उसे धक्का न पहुँचे—इस बात का

खयाल रखना चाहिए। मुझे विश्वास है कि भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्षों के लोग इस काम को करते समय मेरी ही पद्धति से काम करेंगे।

"राजनीति तो सबसे आखिर में आती है। वह तो मन्दिर का शिखर है। बुनियाद के बिना मन्दिर खड़ा नहीं किया जा सकता। बुनियाद की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता, फिर भी हमारे कार्यकर्ताओं को चाहिए कि वे भूदान-यज्ञ का जो नैतिक अधिष्ठान है, उसीकी ओर ध्यान दें। नैतिक अधिष्ठान बुनियाद है, आर्थिक पहलू मन्दिर और राजनैतिक पहलू कलश है। भूदान-यज्ञ के काम से आज का सारा राज्य (State) ही बदल जायगा या हमारी विचारधारा का नया राज्य आयेगा। यदि दूसरी परिभाषा में यही बात कहनी हो तो यह कहना होगा कि इस काम की बुनियाद (Basis) नैतिक है, योजना (Plan) आर्थिक और महत्त्व (Elevation) सामाजिक है।"

इस जिले में चीनी-मिलें काफी हैं। मीरगंज में ऐसी ही एक चीनी-मिल है। उसका परिचय मीरगंज के नजदीक आते ही हो गया। चीनी-मिल के कारण वातावरण में बदबू फैली हुई थी। बाबा उसे बिल्कुल नहीं सह सकते थे। उन्होंने कहा, "मुझे किसी भी जंगल के पेड़ के नीचे रखिये, परन्तु ऐसे स्थान पर मत रखिये; यह तो शुद्ध नरक है।" इसके बाद एक भाई ने पारिजातक (हरसिंगार) के फूलों की अंजलि भेंट की। उन फूलों की ओर देख प्रसन्न हो वे कहने लगे—"कितने सुन्दर फूल हैं ये, पारिजातक तो स्वर्ग का वृक्ष है।"

बड़हरिया की सभा में केवल दो एकड़ का दान मिला। आज तक की यात्रा में इतना कम दान कभी नहीं मिला था। आज के प्रवचन में बाबा ने यहाँ के कार्यकर्ताओं को फटकारते हुए कहा, "यहाँ के सारे कार्यकर्ता सुस्त और निस्तेज बन गये हैं। उनकी हालत बिल्कुल ही दयनीय हो गयी है।" इस फटकार से कार्यकर्ता कुछ जाग्रत हो गये और उन्होंने गाँव-गाँव जाकर जमीन लाना आरम्भ किया। सारन जिले में अच्छे कार्यकर्ता काफी तादाद में हैं। स्वराज्य-आन्दोलन में सैकड़ों लोगों ने हिस्सा लिया

था। लेकिन बाबा कहते हैं, "सब सत्ता के पीछे पड़े हैं, इसलिए गरीबों का काम करने को किसीके पास समय नहीं है।"

बिहार के एक मंत्री ने हाल में ही भूदान-यज्ञ की आलोचना करते हुए कहा था, "विनोबा के काम से समाज में खतरा पैदा हो रहा है।" गोपालगंज की सभा में इस विषय पर बोलते हुए विनोबाजी ने कहा—"जो कहते हैं कि मेरे काम से खतरा पैदा हो रहा है, वे जरा अपने मन को टटोलें। ...... यदि उन्होंने तय किया हो कि जमीन नहीं देंगे तो फिर मेरे काम से जरूर खतरा पैदा हो सकता है। इसलिए समाज में खतरा पैदा करना, न करना उन्हीं पर निर्भर है।"

आज कुछ कड़ी जबान कही गयी थी, इसलिए उसकी रिपोर्ट तैयार करके मने बाबा को दिखायी कि कहीं उसका संतुलन तो नहीं खो गया। एक दिन एक रिपोर्ट में सारांश लिखते समय मैंने एक महत्त्व का वाक्य छोड़ दिया था। उस समय बाबा ने मुझसे कहा था, "वह एक ही वाक्य छूट जाने से उस रिपोर्ट का संतुलन बिगड़ गया है।" बाबा के विचारों की रिपोर्टिंग करना कितनी कठिन साधना है, इसका मुझे उस समय भान हुआ। ...... बाबा हरएक शब्द को गौर से देखने लगे। जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा था, मेरे दिल में धड़कन पैदा होने लगी। आखिर में जब उन्होंने सिर्फ दो-चार शब्दों में हेर-फेर करके कहा—"ठीक है", तब मुझे लगा कि मैंने एम० ए० से बढ़कर कोई परीक्षा पास कर ली है। उन्होंने मुझसे यह भी कहा—"जिन शब्दों में मैंने हेर-फेर कर दिया है वह क्यों किया, इसका अध्ययन करो।"

एक दिन हम रास्ते में नाश्ते के लिए रुके तो एक स्थानीय कार्यकर्ता वहाँ की जनता के सामने जमीन देने के लिए भाषण करने लगा। बाबा ने उसे रोकते हुए कहा, "इस तरह हवा में बातें क्या करते हो? हरएक व्यक्ति के पास जाकर उसे प्रेम से समझाओ। किसी को गोली मारनी हो तो क्या उसे इस प्रकार हवा में मारी जाती है? उसके लिए उस आदमी के पास जाकर उसकी छाती पर पिस्तौल तानते हुए गोली मारी जाती है। ......

हमारा प्रेम का तरीका है, हिंसा का नहीं; लेकिन उसमें भी आदमी के नजदीक तो जाना ही पड़ता है।"

आजकल बाबा को कई दफा इस तरह बन्दूक की उपमा का प्रयोग करते देख हम लोगों को आश्चर्य होता था। वे भारत, बिहार और उसके हर जिले के नक्शे को सामने रखते और काफी देर तक उनकी ओर देखते रहते। वे सोचते रहते कि किस स्थान पर कितना काम हुआ और किस कार्यकर्ता को कहाँ भेजने से अधिक काम होगा। वे बिल्कुल किसी महायुद्ध के सेनापति की भाँति योजना बनाते रहते हैं। वे हमेशा कहते थे कि हिंसक युद्ध के अनुशासन, व्यवस्था, योजना, नियमितता आदि जो गुण हैं, वे सभी गुण हम अहिंसक सैनिकों को भी अपनाने चाहिए।

दीवाली का पव निकट आ रहा था। एक दिन आकाश में एकादशी के चन्द्रमा की ओर देखते हुए बाबा ने यहाँ के लोगों से पूछा, "आप लोग दीवाली का उत्सव किस प्रकार मनाते हैं?" फिर वे दीवाली पर कुछ बोलने लगे, "बारिश के बाद शरद्-ऋतु में आकाश स्वच्छ, निरभ्र और निर्मल होता है। वैसे गर्मी के दिनों में भी आकाश में कुछ रज-कण तो रहते ही हैं। इसलिए निर्मल आकाश तो शरद्-ऋतु में ही दिखाई देता हैं। इसीलिए शरद् की प्रथम पूर्णिमा (कोजागरी) और प्रथम अमावस्या (दीवाली) का उत्सव मनाया जाता है। अमावस्या के दिन निर्मल आकाश में तारागण का उत्सव होता और हम धरती पर भी दीपावली के द्वारा वैसा ही दृश्य लाते हैं। ये उत्सव प्रकृति के साथ एकरूप होने के उत्सव हैं।"

फिर बाबा ने उनकी कल्पना के अनुसार जो नयी ग्राम-व्यवस्था निर्माण होगी, उस बारे में कहा। किसी भाई ने पूछा, "यह सब सुनने में तो बड़ा अच्छा मालूम होता है, परन्तु हमारी आदतें कसे बदलेंगी?" बाबा ने जवाब दिया, "आदतें तो देह की होती हैं, इसलिए हृदय में विचार प्रवेश करने के साथ ही आदतें फौरन बदल जाती हैं। किसी गुफा में दस हजार साल का पुराना अँधेरा हो और हम वहाँ छोटा-सा दीप लिये जायँ तो उसी क्षण वह अँधेरा दूर हो जाता है। यह नहीं होगा कि वह अँधेरा तो दस हजार साल का है; इसलिए उसे नष्ट होने में कुछ समय लगेगा।

इसी तरह दिल को विचार जँच जाय तो आदतों में फौरन परिवर्तन हो जाता है।"

मुझे तुलसीदासजी का वचन याद आया, **'बिगड़ी जनम अनेक की, सुधरत पल में आध।'** मानव-हृदय को नव-विचार जँचते ही उसमें परिवर्तन हो जाता है। यही श्रद्धा तो भूदान-यज्ञ का अधिष्ठान है।

फिर किसी के, गीता में बताये गये 'स्थितप्रज्ञ' के लक्षणों के बारे में, पूछे गये प्रश्न का उत्तर देते समय बाबा ने कहा, "गीता में स्थितप्रज्ञ के जो लक्षण बताये गये हैं, वे ही उसके साधन भी हैं। स्थितप्रज्ञ के लिए जो बातें स्वाभाविक होती हैं, वे हमें प्रयत्न से सिद्ध करनी होती हैं। ठीक समय पर उगना सूरज के लिए स्वाभाविक है, परन्तु हम प्रयत्न से वह कर सकते हैं।"

बाबा अक्सर भूदान को 'कन्यादान' की उपमा देकर कहते हैं, "भूमिहीन किसान को अपना दामाद समझकर उसे इज्जत के साथ जमीन तथा अन्य साधन भी देने चाहिए, जिससे कि 'सालंकृत कन्यादान' हो जायगा।" मुझे बाबा की यह बात कभी जँचती न थी। मुझे लगता है कि क्या कन्या कोई प्राणहीन वस्तु है, जो दान में दी जा सके? इसलिए मुझे लगता है कि कन्यादान शब्द के प्रयोग से स्त्री के स्वाभिमान को धक्का पहुँचता है। आज मैंने साहस करके बाबा से कहा, "आप जो कन्यादानवाली बात करते हैं, वह हमें पसन्द नहीं आती।"

बाबा ने जवाब दिया, "हाँ, ठीक है। यह बात नापसन्द करने लायक ही है। लेकिन समाज में यह रिवाज है और लोगों को उन्हींकी भाषा में समझाने के लिए मैं उसका प्रयोग करता हूँ। लेकिन अब नहीं करूँगा। वैसे हमारे शास्त्रों में तो 'कन्या-संप्रदान' शब्द का प्रयोग है। उसका मतलब दान जैसा नहीं है। फिर भी 'दान' वाली बात समाज में चली, क्योंकि आज भी माँ-बाप अपने लड़कों की शादी तय करते हैं। अगर लड़के-लड़कियाँ खुद अपनी शादी तय करने लग जायँ तो वह बात ही अलग हो जाती है। वह तो 'स्वयंवर' होगा। हाँ, वह भी अच्छा है।"

इसके बाद उन्होंने अपने एक प्रवचन में इसी बात का जिक्र करते हुए कहा, "मेरे साथ जो कन्याएँ घूमती हैं उनमें से एक ने कहा कि 'हमें 'कन्यादान' शब्द पसन्द नहीं है।' इसलिए मैंने वादा किया कि अब मैं उस शब्द का प्रयोग नहीं करूँगा। वैसे अलंकारशास्त्र का यह नियम है कि उपमा का एक ही अंश ग्रहण करना होता है। 'दूध हंस के समान शुभ्र है' यह कहने का मतलब यह नहीं होता कि हंस भी दूध के समान पिया जा सकता है या दूध भी हंस के समान उड़ता है। फिर भी चूँकि कन्याएँ इस शब्द को पसन्द नहीं करतीं, इसलिए मैं उसे छोड़ दूँगा।"

चलते समय एक पंछी की आवाज सुनाई दी। बाबा ने कहा, "वह कहता है, ठाकुरजी, ठाकुरजी।" रामदेव बाबू ने कहा, "इस तरफ इस पक्षी को 'खेलो जी' कहते हैं।" बाबा ने कहा, "अच्छा शब्द है। वह पंछी कहता है, खेलो, लड़ो मत।" उसके बाद उन्होंने व्यंकटेशय्या से पूछा कि "तमिल में इस पंछी का क्या नाम है ?" और फिर केरल से आयी हुई राजम्मा से पूछा कि "मलयालम में इसे क्या कहते हैं ?" इसी तरह वे चलते समय राजम्मा से मलयालम और अय्या से तमिल सीखते हैं। लेकिन अक्सर दिखाई पड़ता है कि उन भाषाओं के बारे में गुरु से शिष्य अधिक जानता है।

रास्ते में एक किसान ने बाबा के कहने पर अपनी दो बीघा जमीन में से दो कट्ठे का दान दिया। उस पर बाबा ने कहा—"यह हिन्दुस्तान में ही होता है। यूरोपवाले तो कहते हैं कि क्या कभी माँगने से जमीन मिलती है? जमीन तो मारकर ही मिलती है।" ...... उसके बाद एक धनी आदमी को अपनी हैसियत से बहुत कम दान देते देखकर बाबा ने उनका दानपत्र वापस लौटाते हुए कहा, "मैं नहीं चाहता कि आपकी बेइज्जती हो। मैं तो चाहता हूँ कि सबकी इज्जत बढ़े। इसलिए मैं आपका दानपत्र नहीं ले रहा हूँ। क्योंकि यदि मैं लेता तो आपकी बदनामी होती। लोग कहते कि इन्होंने बहुत कम दिया और विनोबाजी को ठगाया। इसीलिए देना हो तो बिल्कुल सोच-विचारकर दीजिये और अपनी हैसियत के मुताबिक दीजिये। कम देना हो तो मत दीजिये।

बरौली के प्रवचन में विनोबाजी ने उपनिषद् का एक सुन्दर मन्त्र सुनाया:—

'श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया अदेयम्, श्रिया देयम्,
ह्रिया देयम्, भिया देयम्, संविदा देयम् ।'

और इस मंत्र से भूदान में दान की पद्धति का मार्मिक विश्लेषण किया। सनातन मंत्रों का नूतन क्रान्तिकारी अर्थ बताने की उनकी पद्धति बहुत ही आकर्षक होती है। एक दिन इसी बारे में उन्होंने विनोद में कहा था—"मेरे शस्त्रागार में इतने शस्त्र हैं कि उनके सामने कोई भी टिक नहीं सकता।" ...... वेद-उपनिषदों का वह शस्त्रागार तो सबके लिए खुला ही है; लेकिन उन शस्त्रों का उपयोग करने की पात्रता ही हममें कहाँ है ?

हमारा रास्ता अहिंसा का

गोरैया कोठी, बसन्तपुर, मसरख

१५, १६, १७ अक्तूबर, १९५२

आदर्श ग्राम-रचना के बारे में बोलते हुए बाबा ने कहा, "गाँव की सारी जमीन गाँव की मालिकी की हो जाने के बाद दो किस्म के प्रयोग हो सकते हैं: (१) या तो सब जमीन पर सामूहिक काश्त होगी या (२) हर परिवार को काश्त के लिए कुछ जमीन दी जायगी और बची हुई जमीन पर सब मिलकर काश्त करेंगे। गाँव के सब बच्चों को एक-सी तालीम मिलेगी और यदि गाँववालों को जरूरत महसूस होगी तो वे गाँव के किसी बुद्धिमान लड़के को बाहर की शिक्षा प्राप्त करने के लिए गाँव की ओर से भेजेंगे। गाँव में एक 'सामूहिक विवाह-कोष' होगा और किसी भी लड़के-लड़की की शादी परिवार की शादी नहीं होगी; बल्कि उसमें सभी गाँववाले हिस्सा लेंगे।"

आजकल हमने प्रतिदिन दोपहर को बहनों की एक अलग सभा बुलाना आरम्भ किया है। उसमें हम पर्दा छोड़ने की तथा भूदान की बातें

समझाती हूँ। एक दिन एक बहन ने हमसे कहा, "जो बहनें शिक्षित होती हैं वे शिक्षा के बल पर पर्दा छोड़कर बाहर निकल सकती हैं, लेकिन हम किस बल पर बगावत करें?" जब मैंने बाबा से यह बात कही तो उन्होंने कहा, "वे अपनी आत्मा के बल पर बगावत करें।" चलते समय मैंने आज बाबा से पूछा, "पूरब के लोग अपनी संस्कृति का गौरव महसूस तो करते हैं; लेकिन फिर भी पूरब के ही देशों में स्त्रियों की हालत इतनी खराब क्यों है? लड़का पैदा होने पर खुशी मनायी जाती है और लड़की पैदा होने पर दुःख, ऐसा क्यों?"

बाबा—"यह जो खुशी और दुःख मनाने की बात है, उसमें आर्थिक समस्या है। लड़की पराये घर जाती है और लड़का बुढ़ापे का सहारा होता है। फिर भी आप जितना समझती हैं, उतनी खराब हालत नहीं है। हिन्दुस्तान के घरों में तो स्त्रियों का ही राज्य रहता है। स्त्री को 'धन' कहा जाता है; लेकिन उसमें सम्पत्ति का अभिप्राय (Property Sense) नहीं है। वह तो गुणवाचक शब्द है। लड़के को भी 'रत्न' कहा जाता है। शाकुन्तल में शकुन्तला के विवाह के बारे में जो कहा गया है—'आहुति अग्नि में गिर गयी' वह तो केवल उपमा है। उसमें कवि की कल्पनाशक्ति है। वास्तव में यहाँ पर कभी भी स्त्री का स्थान गौण नहीं था। भारत में वेदान्त का तत्त्वज्ञान माना जाता है, उससे जन-मन में यह भावना रूढ़ हो गयी है कि सबमें एक ही आत्मा समान-रूप से वास करती है। यहाँ की महिलाओं को वोट का हक प्राप्त करने के लिए कोई स्वतन्त्र आन्दोलन नहीं करना पड़ा। लेकिन इंग्लैंड की महिलाओं को उसके लिए बड़ा भारी आन्दोलन करना पड़ा। आज भी यूरोप के कई आगे बढ़े हुए देशों में महिलाओं को वोट का हक नहीं है। इसलिए आप लोग जब पूरबवालों पर टीका करें तो यह मत भूलना कि पूरब में आध्यात्मिक समानता की बात मानी गयी है।"

मैंने कहा—"आज तो हमारे तत्त्वज्ञान और जीवन, इन दोनों में उत्तर और दक्षिण ध्रुव के जैसा फासला है।"

बाबा ने जवाब दिया, "हाँ, यह बात सच है।" ...... फिर कुछ उद्वेग के साथ उन्होंने कहा, "हमारा सारा तत्त्वज्ञान 'गौरीशंकर' पर ही रह गया है। अभी तक वह नीचे नहीं उतरा। भारत के महापुरुष दूसरे देशों के महापुरुषों से बड़े हैं, लेकिन यहाँ की सामान्य जनता दूसरे देशों की जनता जैसी है। यहाँ पर महापुरुष और आम लोग; इन दोनों में बहुत बड़ी दूरी है।"

अभी-अभी सिक्किम का दौरा करके लौटे हुए संसद् के एक सदस्य बाबा से कह रहे थे कि "वहाँ की हालत इतनी खराब है कि उससे देश को खतरा पैदा हो सकता है। वहाँ की सारी ज़मीन बड़े लोगों के पास है और जनता बहुत गरीब है। कम्युनिस्ट लोग वहाँ पर जोरों से प्रचार कर रहे हैं और उन्हें उत्तर की सीमा के उस पार से भी भारी मदद मिलती रहती है।"—इस बात का जिक्र करते हुए बाबा ने अपने प्रवचन में कहा, "हमें इस बात का खयाल रखना चाहिए कि खतरा मौजूद है; लेकिन हमारा रास्ता अहिंसा और शान्ति का ही हो सकता है। हम फौज के बल पर इस खतरे का, आक्रमण का मुकाबला नहीं कर सकते; बल्कि अपने देश में अहिंसक समाज-व्यवस्था स्थापित करने से ही उसका मुकाबला कर सकेंगे।" ...... वे भाई मुझसे कहने लगे कि "आपका रास्ता दूसरा ही है। हम तो कहीं भी खतरा दीख पड़े तो फौज़ के बल पर उसका प्रतीकार करने की बात सोचते हैं।" मैंने उनसे कहा, "फौज के बल पर साम्यवाद का मुकाबला नहीं किया जा सकता। यदि आप इस खतरे से बचना चाहते हैं तो आपको भूदान के जरिये भूमि-समस्या जल्द-से-जल्द हल करने के काम में जुट जाना चाहिए। हम सब मिलकर काम करेंगे तो भूदान-यज्ञ सफल होकर ही रहेगा।"

बसन्तपुर के कार्यकर्ताओं की सभा में बोलते हुए विनोबाजी ने कहा—"मैं जिले के हरएक थाने से कम-से-कम बीस कार्यकर्ताओं की माँग करता हूँ। सारे बिहार से मुझे दस महीने के लिए दस हजार कार्यकर्ता चाहिए। यदि प्रतिज्ञापूर्वक भूदान का काम करेंगे तो बिहार का मसला हल होकर ही रहेगा। मेरी यह माँग कोई बहुत बड़ी माँग नहीं है। रूस और चीन

में तो क्रान्ति के लिए हजारों लोग जिन्दगी भर काम करते रहे। उस हिसाब से तो मेरी माँग बहुत ही कम है, क्योंकि भूदान का काम क्रान्ति का काम है। रूस में जमीन का मसला हल करने के लिए तो सत्रह लाख लोगों को काट डाला गया। अगर हिन्दुस्तान में भी उसी तरह सिर काटने का कार्यक्रम उठाया गया तो उस काम के लिए कितने लोगों की जरूरत होगी, जरा हिसाब लगाइये। लेकिन हम तो प्रेम और शान्ति के तरीके से काम करना चाहते हैं। हम मानते हैं कि इसी तरीके से सबसे जल्दी और अच्छा काम होगा।"

कार्यकर्ताओं में से एक भाई ने कहा, "हम भूदान का काम करना चाहते हैं, लेकिन जिला-बोर्ड या विधान-सभा का सदस्य बनने की हमारी महत्त्वाकांक्षा है।" बाबा बोल उठे, "उसे महत्त्वाकांक्षा मत कहो, क्षुद्राकांक्षा कहो।" ...... हमारे कार्यकर्ताओं को इसका भान कब होगा कि आज तो क्रान्ति के काम में अपने को समर्पित कर देना ही हमारी सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा हो सकती है।

मसरख जाते समय पाली भाषा में एम० ए० की डिग्री प्राप्त एक भाई ने बाबा से चर्चा की। दो-चार वाक्यों में उनके पाली के ज्ञान की परीक्षा हो गयी। वे 'धम्मपद' के चार श्लोक भी ठीक से नहीं बोल सके। ...... बाबा ने उनसे सिंहली भाषा का 'धम्मपद' भेजने के लिए कहा। फिर 'त्रिपिटक' शब्द कैसे बना, इस बारे में बाबा ने कहा, "इसके पीछे जो मूल कल्पना है वह तीन वेदों की है। लेकिन सारा बौद्ध-साहित्य तीन सन्दूक में रखा गया था, जिससे 'त्रिपिटक' शब्द का निर्माण हुआ।"

बाबा ने हरएक भाषा में कौन-सी रामायण है, इसकी भी जानकारी करायी और फिर कहा, "किसी भी साहित्यिक की छोटी-सी ही क्यों न हो, पर एक-आध कलाकृति को भी जन-मन में स्थान प्राप्त हुआ तो वह साहित्यिक अमर हो जाता है। जैसे Grey's elegy, Goldsmith का Vicar of Wakefield और साने गुरुजी की 'श्यामची आई'। बंकिमचन्द्र को भारत भूल जायगा, पर 'वन्दे मातरम्' के द्वारा वे अमर रहेंगे।"

रास्ते में समाजवादी भाइयों ने नारों से स्वागत किया। बाबा ने विनोद म उनसे कहा, "नारों से क्या स्वागत करते हो ? भूदान से करो!" ...... फिर उन्होंने बाबा को लाल-लाल सुंदर फूल भेंट किये तो बाबा ने मुस्कराते हुए कहा, "लाल रंग तो प्रीति का रंग है।"

हमारे साथ जो समाजवादी भाई थे, उन्हें बाबा 'ए लाल टोपी' कहकर बुलाते थे। बाबा ने आज कहा, "मैं तो इसे (लाल टोपी) मनोरंजन का एक साधन मानता हूँ। मैं तो चाहता हूँ कि हर कोई मनोरंजन के लिए लाल, काली, सफेद सभी टोपियाँ पहने।" फिर उन्होंने हँसते हुए तिवारी-जी से पूछा, "अक्सर लाल टोपी देखकर बड़े लोग डर जाते हैं, उसे लाल झंडी (Red Signal) मानते हैं। तो क्या बड़े लोगों के पास जाते समय लाल टोपी उतार दोगे ?" तिवारीजी के 'हाँ' कहने पर बाबा ने कहा— "ठीक! यह अक्लमन्दी की बात है। नहीं तो टोपी भी ब्राह्मणों के जनेऊ जैसी बन जाती।"

शाम की प्रार्थना-सभा में विनोबाजी का प्रवचन चल रहा था, "आज का ही दिन था वह, अक्तूबर की १७ तारीख थी। बारह साल हुए, इसी दिन बापू के आदेश के अनुसार मैंने प्रथम सत्याग्रही के नाते व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ किया था। उसी समय भान हुआ कि मुझे इस देश का प्रतिनिधित्व करना होगा और इसीलिए तभी से भारत की जनता के साथ एकरूप होने के लिए मैंने भारत की सभी भाषाओं का अध्ययन करना शुरू किया। आज का दिन मेरे लिए एक महत्त्वपूर्ण दिन है।"

मुझे सुबह का दृश्य याद आया। हम मसरख जा रहे थे। सबेरा हो रहा था। प्राची के गालों पर ललाई छा रही थी। ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के बीच का आकाश आज गम्भीर दिखाई देता था, मानो कोई ऋषि ध्यानस्थ बैठा हो। धीरे-धीरे पूर्व दिशा खुल रही थी। फिर एकाएक सूर्यबिम्ब क्षितिज से झाँकने लगा। देखते ही मन मुग्ध हो गया। सूर्योदय नयनोत्सव ही होता है। भले ही यह रोज का दृश्य हो; पर उसमें नित्य-नूतनता, नित्य-आनन्द और नित्य-सौन्दर्य दिखाई देता है। रोज

सूर्योदय देखकर आँख तृप्त होती है; परन्तु साथ ही आगामी कल के लिए फिर वही उत्सुकता !

गीता-प्रवचन और भूदान

देवरिया, अमनौर, परसा

१८, १९, २० अक्तूबर, १९५२

'गीता-प्रवचन' और भूदान के सम्बन्ध में बोलते हुए विनोबाजी ने कहा, "अक्सर लोग मुझसे पूछते हैं कि 'आप गीता का प्रचार क्यों करते हैं, भूदान से उसका क्या सम्बन्ध है?' वैसे ऊपर से देखा जाय तो कोई सम्बन्ध नहीं दीखता, परन्तु भूदान का काम करते समय मोह छोड़ना पड़ता है। खुद का मोह छोड़ना है और जिससे जमीन माँगनी है वह भी तो अपना ही होता है, इसलिए वहाँ भी मोह आ जाता है। अर्जुन निडर वीर था। लेकिन उसने देखा कि शत्रु-सेना में सब अपने ही रिश्तेदार हैं, तब वह मोहग्रस्त हो गया। उसने युद्ध से हटने की बात की। यदि शत्रु-सेना में कोई दूसरे होते तो अर्जुन के बाण छूटने में देर न लगती। इसलिए उसके मोह का निराकरण करके उसके कर्तव्य का भान करा देने के लिए भगवान् को 'गीता' कहनी पड़ी। इसी तरह हमारे मोह के निराकरण के लिए यह किताब अत्यन्त उपयोगी है। मोह के छूटते ही भूदान का काम तेजी से शुरू होगा। आज तो सारे कार्यकर्ता मोहग्रस्त हो गये हैं।" ...... हमने देखा कि कई कार्यकर्ता कहते हैं कि हम अपने इलाके में दान नहीं माँग सकते, इसलिए कहीं बाहर जाकर भूदान का काम करेंगे।

दीपावली का दिन था। बाबा के भाषण में दीप की प्रशान्ति प्रकट हो रही थी। आज का भाषण हृदयस्पर्शी था। बाबा ने कहा, "मुझे चार साल पहले की एक घटना याद आ रही है। दीपावली का ही दिन था। शाम का समय था। किसी गाँव के पास की झोपड़ी में, मैंने देखा, अन्धकार था। घर में खाने की चीजें नहीं थीं तो दीये जलाने के लिए तेल

कहाँ से आता ? वहाँ से १५ मील की दूरी पर एक शहर था। शहर जाते ही मैंने देखा, चारों ओर दीपक जल रहे हैं। लोग खुशियाँ मना रहे हैं। ...... मेरी आँखों में आँसू आ गये। क्या उन दोनों में कोई रिश्ता नहीं है ? क्या उनमें भारतीयता का, मानवता का कोई संबंध नहीं है ? ...... दीवाली में हम आनन्द का आभास निर्माण करने की कोशिश करते हैं।". ...... इस भाषण ने सबको अन्तर्मुख बना दिया।

सभा के बाद मैं बाबा के कमरे में दीये रखने गयी। बाबा ने पूछा, "यह क्या कर रही हो ?" महादेवी ताई ने कहा, "निर्मला को घर की याद आयी होगी, इसलिए वह घर जैसी दीवाली मना रही है।" फिर बाबा ने कहा, "ठीक है।" मुझे डर लगा कि कहीं बाबा सारे दीये बुझाने के लिए तो नहीं कहते हैं। ...... उनके कमरे में दीप रखते हुए यह मेरी पहली दीवाली थी।

सब ओर दीपक का मन्द, मनोहर, शान्त प्रकाश फैला हुआ था। मैंने पैट से पूछा, "क्या तुमने इस तरह की दीवाली कभी देखी है ?" उसने जवाब दिया, "हमारे विद्यापीठ में भारतीय विद्यार्थी इसी प्रकार की दीवाली मनाया करते थे।"

दीवाली का दिन था, इसलिए हरएक को घर की याद आ रही थी। हम जिस स्कूल में ठहरे थे, वहाँ एक रेडियो भी था। मैंने नागपुर स्टेशन लगाया। इत्तफाक से उस समय मेरी माँ ही बोल रही थी। नागपुर से 'दीपावली' पर उसका भाषण हो रहा था। इसकी कल्पना मुझे स्वप्न में भी न थी कि इस मंगल दिवस पर अपनी माँ की आवाज में सुनूँगी। यात्री-दल के सब लोग मुझे यह कहकर हँसाने लगे कि "अब तो तुम्हारी माँ तुम्हें मिल गयी।" उसके बाद मद्रास स्टेशन पर दक्षिण का संगीत सुनकर व्यंकटेशय्या भी खुश हो गया।

दूसरे दिन चलते समय विनोबाजी ने कहा, "मुझे भूदान प्राप्त करने की अपेक्षा ज्ञानदान करने में ही अधिक खुशी होती है। एक जमाना था,

जब हजारों परिव्राजक, संन्यासी देश भर सतत संचार करते हुए ज्ञान-प्रचार करते थे। आज भूदान के निमित्त में आप लोगों को सर्वोदय का तत्त्वज्ञान समझा रहा हूँ। सर्वोदय में यह मानना होता है कि मैं सबसे आखिर का हूँ। मनुष्य की दो प्रकार की इच्छाएँ होती हैं:—(१) चित्त-शुद्धि की इच्छा और (२) शरीर को आवश्यक चीज प्राप्त करने की इच्छा। चित्त-शुद्धि के बारे में ऐसी इच्छा रखनी चाहिए कि हम सबसे आगे रहेंगे। खुद का चित्त शुद्ध करने की ओर सर्वप्रथम ध्यान देना चाहिए और फिर दूसरों के चित्त-शुद्धि की भाषा बोलनी चाहिए। शरीर के लिए आवश्यक चीजों के बारे में तो हमें यह कहना चाहिए कि सबसे पहले दूसरों की जरूरतें पूरी हों और फिर मुझे मिलें। पहले दूसरों को खाना मिलने दो और फिर मुझे। इसी वृत्ति से सर्वोदय आयेगा।"

हम लोगों नें प्रतिदिन दोपहर को महिलाओं की सभा बुलाने का जो कार्यक्रम निश्चित किया था, उसमें अब कुछ-कुछ सफलता प्राप्त हुई है। एक गाँव में सभा में इकट्ठी हुई सब महिलाओं को हम लोग एक जुलूस बनाकर आम सभा में ले आये। उनमें से कुछ बहनों ने तो जिन्दगी में पहली बार वह रास्ता देखा था। चुनाव के दिनों में भी वे पर्देवाली गाड़ी में बैठाकर मतदान के स्थान पर लायी गयी थीं। सौ-सवा सौ गज-गामिनियों का जुलूस लेकर जब हम सभा-स्थल पर पहुँचीं तो हमें लगा, जैसे हमने किसी बड़ी भारी लड़ाई में फतह हासिल की हो। बहनों में १० 'गीता-प्रवचन' बिके। अच्छे-अच्छे घरानों की बहनों ने निरक्षर होने के कारण किताबें नहीं खरीदीं।

आज बाबा की आँखें दुख रही थीं, मेरी तरफ देखकर उन्होंने विनोद में कहा, "परसों इसने मेरे कमरे में दीपक जलाये थे, जिसके प्रकाश से आज मेरी आँखें दुखने लगीं।" ...... मुझे याद आया कि कई दिन पहले वे महादेवी ताई से भी बोले थे, "तुम्हारे शहद से मुझे खाँसी हो गयी।" दीपक के सौम्य प्रकाश से आँखें दुखना और शहद से खाँसी आना—ये बातें तो ऐसी ही हैं, जैसे कोई राजकन्या सात गद्दियों के ऊपर सोती थी

और उन गद्दियों के नीचे पड़ा हुआ एक चना उसे गड़ता था। मेरी तो इच्छा हुई कि वह कहानी बाबा से कह दूँ।

यहाँ गंगा-किनारे का प्रदेश था, इसलिए कहीं भी कंकड़-पत्थर का नाम नहीं था। चारों तरफ मखमल जैसी मिट्टी बिछी थी। मिट्टी का मृदु-शीतल स्पर्श इतना सुखद मालूम होता था कि जी चाहता—नंगे पैर चलें।

क्रान्ति की बुनियाद--हृदय परिवर्तन

शीतलपुर, सोनपुर

२१, २२ अक्तूबर, १६५२

चलते समय पैट से मेरी बातचीत चल रही थी। पैट ने अपनी कहानी सुनायी। वह एक गरीब किसान की लड़की है। उसने काम करते-करते शिक्षा प्राप्त की है। कॉलेज में पढ़ते समय उसने देखा, दुनिया में चारों ओर अशांति तथा अन्धकार फैला हुआ है। उसको देखकर उसे मानव के भविष्य के बारे में निराशा प्रतीत होने लगी। तब वह शांति तथा प्रकाश की खोज में गांधीजी के भारत में आयी। वह कह रही थी, "अब तो दुनिया को साम्यवाद या अहिंसा इनमें से किसी एक को चुनना होगा।" मैंने उससे कहा कि "अमरीका लौटने के बाद तुम अहिंसा के विचार का प्रचार करो।" उसने कहा, "मुझे नहीं लगता कि अमरीका इस समय अहिंसा को अपनायेगा। उसके लिए तो कुछ समय बीतना चाहिए।"

मैंने कहा, "तुम्हें यश मिले या न मिले, तुम प्रचार करती रहो। कभी-न-कभी अमरीकावालों को अहिंसा अपनानी ही होगी। जमाना ही उस ओर बढ़ रहा है।"

पैट ने कहा, "मुझे यश की कोई चिन्ता नहीं, मुझे तो काम करते रहने में आनन्द महसूस होता है। मुझसे जो होगा, वह तो मैं करूँगी ही।" यह सुनकर मुझे बहुत खुशी हुई। मैंने उससे कहा, "सच्चे अहिंसक सैनिक की यही वृत्ति होनी चाहिए। ...... आज तक गोरे लोगों ने जो बर्ताव

किया है उसके कारण पूरबवालों के मन में उनके प्रति अच्छे भाव नहीं हैं। तुम जैसे लोगों के इस तरह गाँव-गाँव घूमने से, तुम्हारी तपस्या से सारी गलतफहमियाँ दूर होंगी। तुम्हारी तपस्या पूरब और पच्छिम को निकट लायेगी।"

उसने मुस्कराते हुए कहा, "लेकिन मेरे जैसे लोग बहुत ही कम हैं।"

विनोबाजी ने शीतलपुर के प्रवचन में कहा, "व्यक्ति के हृदय-परिवर्तन और समाज की रचना में परिवर्तन, इन दोनों के आधार से क्रान्ति होगी। बल काबू में हो और रास्ता भी अच्छा हो तो गाड़ी मजे में चलती रहती है।" इसमें व्यक्ति को जो बैल की उपमा दी गयी थी उससे मेरे मन में कई शंकाएँ पैदा हुईं। बाद में मैंने बाबा के पास उन शंकाओं को प्रकट किया तो वे कहने लगे, "बैल और रास्ते की जो उपमा है उससे मैं यह सूचित करना चाहता हूँ कि मनुष्य चेतन है और समाज-रचना (रास्ते के समान) जड़ है। यही उसका गूढ़ार्थ है।"

मैंने कहा, "हाँ, यह बात ठीक है। लेकिन व्यक्ति को बैल की उपमा देने से सम्भव है कि आगे चलकर उसमें से व्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रहार करनेवाले, विकृत रूप धारण करनेवाले सिद्धान्त निकाले जायँ। इसलिए हमें इस बात का खयाल रखना चाहिए कि आगे आनेवाले कोई हमारे सिद्धान्तों को Exploit न कर सकें तथा उनके शुद्ध रूप को न बिगाड़ सकें। दुनिया में कई अच्छे विचारों को बाद में विकृत रूप मिल गया है।"

बाबा—"हाँ, यह बात बिल्कुल सही है। हम तो मानते हैं कि क्रान्ति की बुनियाद ही हृदय-परिवर्तन है। व्यक्ति के हृदय में परिवर्तन हो जाय तो फिर समाज के विचार में क्रान्ति हो जाती है। और फिर उसके आधार पर सारी समाज-रचना में परिवर्तन करना होगा। क्रान्ति की यही सही प्रक्रिया है। उस बैलवाली उपमा का यह मतलब नहीं कि पहले समाज-रचना में परिवर्तन करना और फिर उन सिद्धान्तों को अमल में लाने के लिए जबरदस्ती व्यक्ति को एक ढाँचे में ढालना।" इससे मेरी शंकाओं का समाधान हो गया।

सोनपुर जाते समय फिर इसी विषय पर चर्चा चली। मैंने पूछा—"जमीन की मालकियत मिटाने का मतलब है, आर्थिक-क्षेत्र में अराजकता (Anarchism) निर्माण करना। तो क्या इसके लिए उसके साथ-साथ शासन को भी समाप्त कर राजनैतिक क्षेत्र में अराजकता अमल में लाने की जरूरत है?"

विनोबाजी—"राज्य (State) को समाप्त होने में कुछ समय लगेगा। यदि सच्चा ग्रामराज्य स्थापित हो जाय तो उस गाँव के लिए राज्य खतम हो हो जायगा। फिर भी गाँवों के बीच के सम्बन्ध के नियंत्रण के लिए अभी काफी समय तक राज्य की जरूरत महसूस होगी।"

मैंने पूछा, "जमीन गाँव की मालकियत की है, यह कहने में सामूहिक मालकियत (Social ownership) की कल्पना है और जमीन परमेश्वर की है, यह कहने में जमीन की मालकियत की कल्पना को ही मिटा दिया जाता है। तो दोनों में से कौन-सी भाषा अधिक अच्छी है?"

बाबा—"यह दोनों तो एक ही चीज का भावात्मक (Positive) और अभावात्मक (Negative) रूप है।"

फिर थोड़ी देर तक मौन रहकर बाबा फिर से कहने लगे—"यह कहना अधिक उचित होगा कि 'जमीन परमेश्वर की है।' हाँ, उसके बाद एक ही सवाल रह जायगा और वह है—परमेश्वर ही है या नहीं?"

मैंने कहा, "मुझे भी उचित मालूम होता है कि 'जमीन परमेश्वर की है' यही कहा जाय; क्योंकि जैसा आपने अभी कहा था, 'जमीन गाँव की मालकियत की मानी जाय तो फिर किसी गाँव के पास अधिक जमीन या अच्छी जमीन हो तो उस गाँव के लोग अपेक्षाकृत धनी बन जायँगे और वे दूसरे गाँववालों को अपने गाँव में नहीं आने देंगे।' याने गाँव-गाँव में झगड़े पैदा हो सकते हैं।"

फिर मैंने दूसरा सवाल पूछा, "नये विचार के अनुसार आज की समाज-रचना में परिवर्तन हो जाने के बाद भी नये-नये विचार पैदा होते ही रहेंगे। लेकिन आज नया विचार देनेवालों को या तो कत्ल ही किया जाता है या उनका सामाजिक बहिष्कार हो। जैसे महाराष्ट्र में 'आगरकर' का।"

बाबा—"दोनों बातें तो एक-सी ही हैं। बहिष्कार करना तो कत्ल करने जैसा ही भयानक है।"

मैंने पूछा—"तो फिर जहाँ पर ये दोनों ही नहीं रहेंगे, ऐसी समाज-रचना की जा सकती है?"

बाबा—"हाँ, जरूर की जा सकती है।"

मैंने पूछा—"जिस तरह विज्ञान में यह बात मानी हुई रहती है कि आज के सिद्धान्त कल के प्रयोग से गलत साबित किये जा सकते हैं यानी आज जिसे हम सत्य कहते हैं वे भी अन्तिम सत्य नहीं; बल्कि प्रयोग ही हैं। कल कोई वैज्ञानिक अपने प्रयोगों से आज के 'सत्य' को गलत साबित करेगा। क्या समाज-रचना के बारे में भी ऐसी ही वृत्ति रखी जा सकती है?"

बाबा—"नहीं, समाज-धारणा के कुछ मूल तत्त्व ऐसे होते हैं, जो त्रिकालाबाधित सत्य होते हैं। सत्य, प्रेम, अहिंसा, न्याय आदि तत्त्व सदा के लिए सत्य हैं। इन मूल तत्त्वों को छोड़कर बाकी की बातों के बारे में वैज्ञानिक दृष्टि रखी जा सकती है। फिर भी कँसौटी पर कसे बगैर किसी भी नव-विचार को ग्रहण करना समाज के लिए उचित नहीं है।"

अभी गुजरात से नारायण देसाई की चिट्ठी आयी थी, जिसमें पूछा गया था—'ढोंगी साधुओं के प्रति समाज में जो श्रद्धा है, उसे देखकर दुःख होता है। जनता तो भूदान पर भी श्रद्धा रखती है। तो फिर उस श्रद्धा और इस श्रद्धा में क्या फर्क है?' जब मैंने बाबा से यह पूछा कि "ऐसा सवाल उठानेवालों को क्या जवाब दिया जा सकता है?" तो उन्होंने कहा—"सिर्फ साधु-वेष ही हो तो जनता के मन में उसके प्रति श्रद्धा पैदा होती है। फिर सच्चा साधु दिखाई देने पर कितनी श्रद्धा पैदा होगी। इस दृष्टि से उस सवाल की ओर देखना चाहिए।"

अभी-अभी बंगाल से आये हुए एक भाई बाबा से कह रहे थे कि "आप कहते हैं कि सब लोग सज्जन हैं; लेकिन हमें तो चारों ओर दुर्जन ही दुर्जन दिखाई देते हैं।" यह सुनकर बाबा कुछ ऊँचे स्वर में बोले—"मैंने

तो आज तक एक भी दुर्जन नहीं देखा। इस पर यदि आप कहें, 'विनोबा तो संत हैं, इसलिए व्यवहार के मामले में वे मूर्ख हैं। व्यवहार के बारे में तो साधारण मनुष्य विनोबा से अधिक अक्ल रखते हैं' और यदि आपका ऐसा खयाल हो तो आप जरूर वैसा खयाल रख सकते हैं। लेकिन जिसका यह खयाल है कि सब लोग बुरे हैं वह हमारा काम कभी नहीं कर सकता।"

प्रश्न—"यदि आप इस काम को पूरा किये बगैर ही चले गये तो फिर क्या होगा?"

बाबा—"फिर भगवान् किसी और को इस काम की प्रेरणा देगा। प्रेरणा देनेवाला तो वही है। किसे मालूम था कि गांधीजी के बाद भगवान् मुझे भूदान की प्रेरणा देगा। लेकिन भगवान् तो हमेशा किसी न किसी को भेजता ही रहता है। उसे जो काम करना होता है, उस काम को वह किसी-न-किसी के जरिये करवा ही लेता है।"

सोनपुर नगर गंडक के किनारे बसा है। यहाँ हरिहरेश्वर का एक मन्दिर है। 'गज-ग्राह' की अपूर्व कथा का स्थान यही है। उन दोनों की लड़ाई में कौन हारा, यह सवाल उठाया जाता है। इसलिए इस स्थान का नाम 'कोन-हारा' ही पड़ गया। यहाँ पर हर साल बड़ा भारी मेला लगता है, जिसमें हाथियों का बहुत बड़ा व्यापार होता है। बिहार में हाथी काफी तादाद में दिखाई पड़ते हैं। जमींदार लोग अपने दरवाजे पर हाथी बाँधने में गौरव महसूस करते हैं।

बाबा ने कहा, "बौद्ध साहित्य में हाथी की उपमा बार-बार आती है। इसका कारण अब समझ में आ गया।"

गंडक नदी का प्रवाह इतना अधिक है कि इसमें थोड़ी दूर तैरकर जाना मानो स्वर्ग में जाना है।

सोनपुर के प्रवचन में विनोबाजी ने राजनैतिक पक्षवालों से कहा—"शिव और शक्ति की एक साथ उपासना करो। केवल शक्ति की उपासना करने से हम राक्षस बन जायँगे और खुद का नाश कर लेंगे, जिससे सारी दुनिया का नाश हो जायगा।"

• • •

आठवाँ भाग

पाटलिपुत्र के अंचल में

पटना

२३, २४, २५ अक्तूबर, १९५२

अरुणोदय का समय था। पूर्व क्षितिज पर लाली लिये सूर्यबिम्ब चमक रहा था। गंगा और गंडक का संगम-स्थल था। हमारी नाव आगे बढ़ रही थी। दो महान् नदियाँ कितनी सरलता से एक-दूसरे से मिलीं और दोनों ने एक-दूसरे में अपना अस्तित्व विलीन कर दिया! कल सोनपुर में गंडक का महान् विस्तार देखा और आज उसका गंगा में चुपचाप आत्म-समर्पण। परन्तु मनुष्य अपना क्षुद्र अहंकार साथ लिये फिरता है!

दूर से पाटलिपुत्र नगर की शोभा दिखाई देने लगी। वह नगर गंगा के एक किनारे चौदह मील तक फैला हुआ है। नाव पास आते ही जनता गर्जना करने लगी—

'घर-घर से आयी आवाज, सन्त विनोबा जिन्दाबाद।'

'सन्त विनोबा करे पुकार, दो जमीन का छठवाँ भाग।'

नाव किनारे लगते ही अट्टालिकाओं से पुष्पवृष्टि होने लगी। पीले वस्त्र पहने हुए बच्चों ने वेदमंत्रों का गायन करके स्वागत किया। ...... बाबा बोलने लगे, "सुवर्ण के आवरण से सत्य का पात्र ढाँका गया है। मैं आपको सुवर्ण के मोह से मुक्त करने आया हूँ।"

तीव्र गति से संत को बढ़ते देखकर लगा कि सम्राट् अशोक की नगरी में फिर से एक बार भगवान् बुद्ध का प्रवेश हो रहा है। ...... आँखों के सामने विनोबा न रहकर स्वयं तथागत दिखाई देने लगे। उनके साथ चलने में अतीव आनन्द की अनुभूति होने लगी। शायद तथागत के प्रथम शिष्यों को इसी प्रकार के आनन्द की अनुभूति हुई हो। किसी कवि ने कहा है—"इस एकाकी पथिक के बढ़ते हुए चरणों के साथ धर्म-चक्र घूमने लगा।" ...... कवि की वाणी बहुत कुछ कह सकी, फिर भी उस

एकाकी पथिक के चरण-चिह्नों का अवलम्बन करते हुए चलने में जो दिव्य अनुभूति होती है, वह तो शब्दातीत है। उस दैवी अनुभूति को व्यक्त करने की शक्ति मनुष्य की भाषा में कहाँ ?

रास्ते में स्थान-स्थान पर विनोबाजी का एक रेखाचित्र दिखाई दे रहा था। वे अक्सर कहते हैं, "स्वयं बापू ही मेरे इस शरीर के जरिये काम कर रहे हैं।" ...... आज मैंने देखा कि उस चित्र में कलाकार की कूँची द्वारा भी यही भाव व्यक्त हो रहा था।

शहर के व्यस्त जीवन का आरम्भ हुआ। सबसे पहले चर्च के फादर (Father) मिलने आये। बाबा ने उनसे मूल हिब्रू 'बाइबल' माँगी। जाते समय उन्होंने भूदान के काम के लिए मंगल-कामना प्रकट की। फिर दिन भर शहर के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में काम करनेवाले मिलते रहे। जमींदारों के प्रतिनिधियों ने अपनी मुसीबतों का वर्णन करते हुए कहा, "हमारी जमीन तो जाने ही वाली है; लेकिन बदलती हुई हालत के साथ अपने जीवन को बना लेने में कुछ समय चला जाता है। हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि सरकार से आप यह कहें कि वह जमीन के लिए कोई कानून न बनाये।"

विनोबा—"यदि आप उदार दिल से दान देंगे तो सरकार को फिर कानून बनाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। जमाने की माँग की ओर ध्यान दीजिये। भूदान देने से आपका ही कल्याण होगा।"

दोपहर में साहित्यिक तथा कलाकारों के बीच विनोबाजी का जो भाषण हुआ, वह किसी संन्यासी का भाषण नहीं था, अपितु किसी कलाकार के भाषण जैसा लगता था। जिन्होंने भावाभिव्यक्ति को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है, ऐसे कलाकार भी शायद जिस चीज को व्यक्त नहीं कर सकते, उसको आज विनोबाजी ने व्यक्त किया। 'मैं कोई साहित्यिक नहीं हूँ' यह वे कहते जाते थे, फिर भी साहित्यिक के अन्तस्तल का एक-एक पटल बड़ी कोमलता के साथ खोलते हुए अन्तरतम में निहित सूक्ष्म और गूढ़ भावों को व्यक्त करते जाते थे।

विनोबाजी साहित्यिकों को 'देवर्षि' कहकर बोलने लगे—"दुनिया जिन्हें श्रेष्ठ पुरुष कहती है, वे तो महान् होते ही हैं; लेकिन दुनिया को जिनकी

पहचान न हुई हो, वे उनसे भी महान् होते हैं। मानव की आँखें सूर्य-किरण के सात रंग ही देख सकती हैं; लेकिन विज्ञान कहता है कि सूर्य-किरण में मानव को न दिखाई देनेवाले रंग भी होते हैं, जो अधिक गुणकारी होते हैं। उसी तरह दुनिया में कुछ ऐसे महापुरुष होते हैं जिनको दुनिया नहीं जानती; लेकिन वे अव्यक्त रूप से हमें प्रेरणा देते रहते हैं।

"कलाकार किसी के आज्ञानुसार कला का निर्माण नहीं कर सकता। वह इसलिए लिखता है कि उससे लिखे बगैर रहा नहीं जाता। इसलिए हम आपसे यह तो नहीं कहते कि 'भूदान पर कुछ लिखो।' लेकिन हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यह एक ऐसा विषय है जो आपको प्रेरणा दे सकता है। ऐसे कई प्रसंग हुए हैं जब गरीबों ने अपने जिगर के टुकड़ों का दान दिया है। अंधों ने भी दान दिया है।" ...... आखिर में उन्होंने कहा, "जैसे देवों में विविधता, विचित्रता होती है उसी तरह साहित्यिकों में भी होती है। किसी देव को गरुड़ पसंद है तो किसी देव को चूहा। आप साहित्यिकों का देव गणपति तो चूहे पर ही बैठता है। मैं आपको अपने साथ घूमने का निमंत्रण देता हूँ।"

भाषण सुनने के बाद बिहार के प्रसिद्ध साहित्यिक बेनीपुरीजी ने मुझसे कहा—"मैं कुछ दिन विनोबाजी के साथ घूमना चाहता हूँ।" जब मैंने विनोबाजी से यह बात कही तो वे मुस्कराते हुए कहने लगे—"हाँ, वे चूहे पर बैठकर आयेंगे।"

सायंकालीन प्रार्थना में विनोबाजी ने 'सम्पत्ति-दान-यज्ञ' की घोषणा की। वह एक ऐसा तरीका था, जिससे सुवर्ण के मोह से मुक्त होकर सत्य की झाँकी प्राप्त हो सकती थी।

विशाल जनसमुदाय को देखकर हम सब किसी प्राचीन धर्मप्रचारक की निष्ठा तथा किसी आधुनिक क्रान्तिकारी का प्रचार-तंत्र, इन दोनों को अपनाकर विनोबा-साहित्य का प्रचार करने लग जाते हैं। 'गीता-प्रवचन लीजिये!' चिल्लाते हुए हम मानो दीन-दुनिया को ही भूल जाते हैं। कौन सबसे अधिक किताबें बेचता है, इस पर होड़-सी लगी रहती है। उस समय दिल गाता रहता है—

'वीरों की यह बाट है भाई, कायर का नहीं काम।
सर पर बांध कफन जो निकले बिन सोचे परिणाम॥'

पटना में तीन दिन रहना था, इसलिए दूसरे दिन **'उठ चलना परभात रे'** तो नहीं था; फिर भी बाबा ठीक चार बजे घूमने निकले। इसलिए आज भी आराम नसीब नहीं था। लेकिन चलते समय जो ज्ञान-चर्चा चली उसे सुनकर सुबह की नींद खोने का बिल्कुल दुःख नहीं हुआ। महाराष्ट्र से एक भाई आये हुए थे जिनसे 'क्रान्तिकारी कानून' की बात सुनकर बाबा बोल उठे, "क्या कभी क्रान्ति कानून के जरिये हो सकती है?"

उन्होंने आगे चलकर कहा, "क्या भूदान का काम कोई सिर्फ दस-पन्द्रह दिन तक खेला जानेवाला क्रिकेट का खेल है? इस काम के लिए तो जीवन की आहुति देनी पड़ेगी।" इसके बाद नेपाल से आये हुए कर्मठ रचनात्मक कार्यकर्ता 'तुलसी मेहेरजी' ने बाबा को नेपाल आने का निमंत्रण दिया। बाबा ने उनसे कहा—"पहले आप लोग कुछ काम करके कुछ जमीन इकट्ठी कर रखिये और वहाँ की सरकार की सहानुभूति भी हासिल कर लीजिये। नहीं तो सरकार यह समझ बैठेगी कि 'यह शख्स अशान्ति ही पैदा करने आया है।' सबको यह मालूम हो जाना चाहिए कि यह शख्स अशान्ति की आग को बुझाने आया है और भूदान का काम सबके कल्याण का काम है।"

नेपाल जाने की कल्पना मुझे बहुत ही आकर्षक लगी। दिल सोचने लगा कि बाबा को बिहार का मसला हल करने के बाद भारत के अन्य प्रान्तों में जाने की अपेक्षा नेपाल जाना चाहिए। अगर कहीं धर्म-चक्र उत्तर दिशा में घूमने लगे तो उससे इतनी प्रचण्ड गति प्राप्त होगी जिससे सारी दुनिया को झकझोर देनेवाली महान् शक्ति पैदा होगी। नेपाल, फिर तिब्बत, फिर चीन और फिर उसके बाद? मन तो गगन-विहार करने लगा; लेकिन पैर जमीन पर थे। सम्भव है कि हमारी पीढ़ी के युवकों की सारी जिन्दगी भारत के मसलों को हल करने में ही बीत जाय। लेकिन आनेवाले युवक भारत के तत्त्वज्ञान का संदेश लेकर संसार के कोने-कोने में जायँगे।

प्रातःकाल सात बजे से ही मुलाकातों, सभाओं आदि का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। समाजवादी कार्यकर्ताओं की सभा में एक कार्यकर्ता ने किसानों पर किये जानेवाले अत्याचारों की कहानी सुनायी। विनोबाजी ने कहा, "यदि कहीं बहुत अन्याय होता हो तो मत सहना, अहिंसा के मार्ग से उसका प्रतीकार करना। कहीं आग लगी हो तो हम यह तो नहीं कहेंगे कि 'हम तो भूदान का काम कर रहे हैं, इसलिए आग बुझाने नहीं आयेंगे।' लेकिन ऐसे अपवाद के प्रसंगों को छोड़कर अपना सारा समय भूदान के काम में लगाना चाहिए। इस समय सारी शक्तियाँ भूदान के काम पर केन्द्रित करने से ही क्रान्ति होगी। यह मत भूलना कि **एकै साधे सब सधे।**"

प्रश्न—"आप गरीबों से दान क्यों लेते हैं?"

विनोबा—"मैं अपनी सेना तैयार कर रहा हूँ। यदि कल अहिंसक लड़ाई का मौका आये तो आज जो जिगर का टुकड़ा दान देते हैं वे ही हमारी सेना के सैनिक बनेंगे। लेकिन हमारा विश्वास है कि लड़ाई का मौका नहीं आयेगा। लड़ाई के बिना ही यह मसला हल होगा।"

समाजवादी भाइयों ने कहा, "हम आपकी ही सलाह से काम करेंगे।"

फिर बिहार के राज्यपाल दिवाकरजी आये। उन्होंने हाल में ही जापान का दौरा करके लौटे हुए किसी भाई के अनुभवों का जिक्र करते हुए कहा, "जापान में जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हैं और वहाँ पर छोटे यंत्रों द्वारा हाथ से खेती की जाती है। फिर भी वहाँ पर उत्पादन बढ़ ही रहा है। जो कहते हैं कि हिन्दुस्तान में जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े होने के कारण उत्पादन घटेगा, वे जरा जापान की हालत देखें।"

विनोबाजी ने कहा, "लेकिन आज तो हमारे लोगों की आँखें रूस और अमरीका की ओर लगी हैं। वे इस बात का खयाल ही नहीं करते कि इन दो देशों की हालत हमारी हालत से सर्वथा भिन्न है।"

फिर बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कार्यकर्ताओं की सभा हुई जिसमें प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी की ओर से, बिहार के लिए मुकर्रर किया गया ४ लाख एकड़ का प्राथमिक कोटा पूरा करने का प्रस्ताव मंजूर किया गया। सभापति

पंडित प्रजापति मिश्र ने कहा, "भूदान के काम से हमारी शुद्धि होनेवाली है। इस काम में अपना सर्वस्व समर्पित करनेवाले कार्यकर्ताओं की जरूरत है। हमें बौद्ध-भिक्षुओं जैसा काम करना होगा।" ...... बिहार की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने अभी जो प्रस्ताव मंजूर किया, आज तक किसी भी संस्था ने ऐसा प्रस्ताव मंजूर नहीं किया था। आज तक भिन्न-भिन्न संस्थाओं के कार्यकर्ता व्यक्तिगत नाते से भूदान का काम करते थे, लेकिन अब यहाँ की कांग्रेस ने संस्था के नाते भूदान का काम उठा लिया। इसकी सराहना करते हुए विनोबाजी ने कहा, "बिहार की कांग्रेस कमेटी ने अभी एक संकल्प करके सारे देश के सामने एक मिसाल पेश कर दी है। अब यह मत कहिये कि 'हमने तो आज तक काफी त्याग किया है।' बल्कि नये त्याग के लिए प्रस्तुत हो जाइये। वरना **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** जैसी बात हो जायगी। आप तो देश के काम में रँगे हुए हैं। मैं आपको क्रान्ति का झंडा दे रहा हूँ।" यह भाषण सुनकर सर्वत्र उत्साह की लहर दौड़ गयी। एक मंत्री कहने लगे, "मालूम होता है १९२१ का जमाना फिर लौट आया है। कभी-कभी इस बात का दुःख होता था कि स्वराज्य-आन्दोलन के दिनों में जो चैतन्य, आनन्द, उत्साह था वह अब सदा के लिए नष्ट हो चुका है। अब वे बीते दिन फिर से नहीं आयेंगे। लेकिन विनोबाजी ने एक क्रान्ति का काम देकर फिर से हममें नयी प्रेरणा भर दी है।" एक समाजवादी नेता कहने लगे, "इस क्रान्ति के लिए हम सारे पक्षभेदों को भूलकर कांग्रेसवालों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करने के लिए तयार हैं।"

दोपहर को यात्री-दल के कुछ भाई-बहन पाटलिपुत्र नगरी के भग्नावशेष देखने जानेवाले थे। अब फिर से चुनाव करने की बात आयी, क्योंकि इसी समय एक भूदान-सम्मेलन होने जा रहा था। लेकिन अशोक की पाटलिपुत्र नगरी का नाम सुनकर मैंने निर्णय किया कि कुछ समय इन खँडहरों की संगति में बिताया जाय।

पास के कुम्हरार गाँव में खुदाई का काम हो रहा था। बड़े-बड़े

स्तम्भों, ईंटों, मूर्तियों, टूटी-फूटी दीवारों आदि को देखकर मन वर्तमान को भूल गया। वहाँ की हरएक चीज अगणित स्मृतियाँ जगा रही थी।

अशोक, संघमित्रा, महेन्द्र, तिष्यरक्षिता ...... आँखों के सामने सारा इतिहास चित्रपट जैसा दिखाई देने लगा। तथागत का संदेश हर-एक के हृदय में किस तरह पहुँचाया जाय, इसकी योजना करते हुए अशोक ने कई रातें इसी भूमि पर घूमकर बितायी होंगी। प्राणों से प्रिय कन्या संघमित्रा और पुत्र महेन्द्र को धर्मप्रचार के लिए विदेश भेजने का निर्णय उसने यहीं पर किया होगा। यह निर्णय एक चक्रवर्ती सम्राट् का निर्णय नहीं था, बल्कि तथागत की भक्ति में रँगे हुए एक पिता का था। उस प्रसंग का स्मरण हुआ जब नन्हीं-सी संघमित्रा को दीक्षा दी गयी होगी। ...... कल तक वह एक चक्रवर्ती सम्राट् की कन्या थी; लेकिन आज वह एक भिक्षुणी बननेवाली थी। **'बुद्धं शरणं गच्छामि'**—संघमित्रा के कोमल कंठ से गम्भीर ध्वनि सुनाई दी। क्षणमात्र के लिए सम्राट् अशोक के मन में एक टीस पैदा हुई—'आज तक वैभव में पली मेरी संघमित्रा को अब न जाने किन-किन मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। घर-बार, माँ-बाप छोड़कर वह दूर जानेवाली है।' **'धम्मं शरणं गच्छामि'**—उसके चेहरे पर अपार शान्ति, असीम समाधान दिखाई दे रहा था। दुनिया के तुच्छ सुखों को त्यागकर वह शाश्वत सुख की राह पकड़नेवाली थी। **'संघं शरणं गच्छामि'**—अब वह अशोक-पुत्री नहीं रही, तथागत की शिष्या बन चुकी थी।

उन्नीस वर्ष की उम्र में, चक्रवर्ती सम्राट् का राजमहल छोड़कर जिसने धर्म-चक्र-प्रवर्तन के लिए गेरुए वस्त्र धारण किये और लंका जैसे दूर देश में जाकर वहाँ के जन-मन में सदा के लिए स्थान पा लिया था, वही संघमित्रा आज हमसे पूछ रही है—"तुम क्या करोगी ?"

प्रातःकाल ठीक ५ बजे बाबा के साथ राजभवन में प्रवेश किया। राज्यपाल ने कल ही बाबा को निमंत्रण दिया था। राजभवन के सामने एक भव्य पुतला था। सब लोगों ने सोचा—गांधीजी का पुतला होगा और हममें से कुछ भाइयों ने उसे श्रद्धा से प्रणाम भी किया। लेकिन पौ फटते

ही सबका भ्रम-निवारण हो गया। वह पुतला गांधीजी का नहीं, इंग्लैंड के राजा का था। छोटी-सी घटना थी, लेकिन उसमें बहुत-कुछ छिपा हुआ था।

स्वतंत्रता प्राप्त होते ही बापू ने कहा था कि "अंग्रेजों ने अपने वैभव का प्रदर्शन करने के लिए आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित राजभवन आदि जो इमारतें बनवायी हैं, उनका अब दवाखानों या वस्तु-संग्रहालयों में रूपान्तर करना चाहिए।" ......गोलमेज-परिषद् के समय उन्होंने इंग्लैंड की जनता से पूछा था, "क्या एक गरीब देश के वाइसराय को इतनी बड़ी तनख्वाह लेना शोभा देता है, जब कि लोगों को पूरा खाना भी नहीं मिल रहा है? जरा सोचिये तो, यह भी कोई न्याय है?" ......यह सारा याद आया। लेकिन बापू ने तो कई बातें कही थीं। अब उनको याद रखने की क्या जरूरत है?

राजभवन वैसा ही था, जैसा अंग्रेजों के जमाने में था। हाँ, अब हरएक कमरे में बापू की तसवीर टँगी हुई थी। हम भारतीय तो पत्थर में भी भगवान् का दर्शन कर लेते हैं। फिर भगवान् को पत्थर बनाना भी हमारे लिए आसान हो जाता है।

राजभवन से लौटते ही पुनः कार्यक्रमों की भीड़ लग गयी। हर जिले से आये हुए कार्यकर्ता अपनी परिस्थिति का वर्णन कर रहे थे और विनोबाजी से आगे के काम के बारे में मार्गदर्शन पा रहे थे। बिहार के मुख्यमंत्री अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों के साथ विनोबाजी से मिलने आये थे। यहाँ की महिला कार्यकर्त्रियों तथा विधानसभा के सदस्यों से चर्चा हुई। विनोबाजी ने महिलाओं से कहा कि "पर्दा तो कृत्रिम गुलामी की निशानी है। उसके खिलाफ घर-घर में सत्याग्रह होना चाहिए।"

पटना-निवास का यह आखिरी दिन होने के कारण आज मिलनेवालों की भीड़ ही लग गयी थी। आज के बिदाई के भाषण में विनोबाजी ने कहा, "जीवन की सभी समस्याओं पर गहराई से सोचने की जरूरत है।" आज के भाषण में वर्णाश्रम-धर्म की पुनर्स्थापना, वानप्रस्थाश्रम का महत्त्व, मजदूरों के लिए उनका काम ही पूजा है आदि कई बातें थीं। रात को

पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन था। 'आप सत्याग्रह क्यों नहीं करते?'—अक्सर यह सवाल उठाया जाता है। आज बाबा ने उसका उत्तर देते हुए कहा—"दुनिया में अगर मेरी कोई प्रतिष्ठा है तो सत्याग्रही के ही नाते। सत्याग्रह के तंत्र को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन मैं आज जो कर रहा हूँ वह भी एक सत्याग्रह ही है। सतत पैदल घूमना, विचार-प्रचार करना, गरीबों से दान लेना आदि सब सत्याग्रह ही तो है। सत्य का आग्रह रखना और उसके अनुसार कृति करना ही तो सत्याग्रह है। लेकिन आप जिसे सत्याग्रह कहते हैं, वैसे स्थूल प्रकार के सत्याग्रह की जरूरत महसूस होने पर मैं वह भी करूँगा।"

पटना के तीन दिन के कार्यक्रम में यद्यपि धर्म-चक्र-प्रवर्तन का शब्दों द्वारा विशेषकर उच्चारण नहीं था, फिर भी उसकी कृति स्पष्ट हो रही थी। यहाँ नींव डालने का काम आरम्भ हुआ। नींव का एक-एक पत्थर चुन-चुनकर लिया जाता और ठोंक-पीटकर उसे आकार देने का काम चल रहा था। संगमरमर को यह पता भी नहीं चलता कि मुझ पर पड़नेवाले शिल्पकार के हथौड़े के प्रत्येक प्रहार से मुझसे निर्माण की जानेवाली मूर्ति का आकार बन रहा है। आखिर वह पत्थर ही तो है। कितने भी प्रहार उस पर पड़ें, वह तो चुपचाप सहन करता जाता है। यही तो उसकी तपस्या है। इतनी तपस्या करने पर ही तो वह असंख्य मानवों की श्रद्धा का पात्र बन पाता है। "मैं आप लोगों को नये त्याग और तपस्या का संदेश देने आया हूँ।"—विनोबाजी ने घोषित कर दिया था। परन्तु इसके लिए तो हमें पत्थर का ही आदर्श सामने रखना होगा।

स्त्रियों को संपत्ति का अधिकार हो

पुनपुन, मसौढ़ी (पटना)
२६, २७ अक्तूबर, १९५२

पुनपुन गाँव पुनपुन नदी के किनारे बसा हुआ है। कहा जाता है कि यह तीर्थ का स्थान है। पिण्डदान करने के लिए गया जाते समय पहले

पुनपुन में पिण्डदान करना होता है। आज हवा में कुछ ठंढ़क होने के कारण मैंने पुनपुन नदी में स्नान करके पुण्य प्राप्त करने की अपेक्षा गर्म पानी से नहाना पसंद किया।

मसौढ़ी की सभा में विनोबाजी ने सवाल उठाया, "योजना किसके लिए करनी है? पहले दिल्ली या देहात? ...... सबसे पहले देहात की ओर ध्यान देना चाहिए, लेकिन आज तो सारा उल्टा ही चल रहा है।"

इन दिनों विनोबाजी 'धम्मपद' का अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने कई दफा कहा कि "मैं चाहता हूँ कि मैं भी भगवान् बुद्ध की तरह अकेला घूमूँ। इसीसे मुझे शान्ति मिलेगी और मेरा स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा।" **'एकला चलो रे'** इस कल्पना में जो काव्य, भव्यता तथा उदात्तता है वह तो मन को मोहित कर देनेवाली है। फिर भी दिल नहीं चाहता कि बाबा अकेले घूमें। शंकराचार्य, बुद्ध अकेले ही घूमे। बापू भी आखिर के दिनों में नोआखाली में अकेले ही घूमे। इसीलिए शायद आजकल बाबा के मन में अकेले घूमने का विचार उठ रहा हो।

एक दिन हमने गाँववालों को आपस में बात करते सुना। उनमें से एक भाई कह रहा था, "गांधीजी ने अंग्रेजों से कहा, 'भारत छोड़ो' और उन्हें छोड़ना ही पड़ा। अब विनोबा कहते हैं कि 'भूमि का बँटवारा होगा' तो यह बात भी होकर ही रहेगी।" ...... मुझे लगा, जैसे इन ग्रामीणों के मुख से जमाने की माँग प्रकट हो रही है।

एक दफा एक भाई विनोबाजी से मिलने आये। उन्होंने हिन्दू कोड-बिल, तलाक और स्त्रियों को सम्पत्ति पर अधिकार आदि के बारे में सवाल पूछे। मैं सोचती हूँ कि विनोबाजी का जवाब सुनकर वे जरूर आश्चर्य-चकित हुए होंगे।

विनोबाजी ने कहा, "पति-पत्नी में अन्याय, अनाचार, अत्याचार, परस्पर-द्वेष होता है, तो उससे बच्चों को तकलीफ होती है। इस हालत में उन्हें तलाक का हक हो तो कोई हर्ज नहीं। सारा धर्म स्वेच्छा पर खड़ा है, कानून पर नहीं। धर्म आज्ञा देनेवाला नहीं, अनुज्ञा देनेवाला है। इसलिए विशेष

परिस्थिति में तलाक का अधिकार देना उचित माना जायगा। इस पर यदि कोई यह कहे कि 'इससे तो बहुत सारे तलाक देने लग जायँगे' तो यह मानना धर्म के लिए ठीक नहीं है। हाँ, तलाक के लिए कुछ कारण रखने चाहिए और उसे अपवाद मानना चाहिए। मूल विचारों को कायम रखते हुए उदार बुद्धि रखकर तलाक को मान्यता देनी चाहिए।

"अब स्त्रियों के सम्पत्ति के अधिकार की बात लीजिये। कुछ लोग कहते हैं कि इससे भाई-बहनों में प्रेम नहीं रहेगा। यह सोचना गलत है। 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' में स्त्री का हक माना गया है। जैसे पुत्र में पिता का रूप, गुण, शील आदि दिखाई देता है, उसी तरह कन्या में भी दिखाई देता है। परमेश्वर तो कन्या और पुत्र में फर्क नहीं करता। इस पर कुछ लोग कहते हैं कि कन्या तो पराये घर जाती है, इसलिए उसे पिता की सम्पत्ति मिलनी चाहिए या पति की? लेकिन यह तो व्यवहार की बात है। कन्या को सम्पत्ति का अधिकार है, यह बात मंजूर करनी ही होगी। इससे भाई-बहन का प्रेम नष्ट नहीं होगा। यदि ऐसा होता तो आज भी भाई-भाई में प्रेम दिखाई न देता। फिर पिता के सब पुत्रों को समान हक क्यों दिया जाता है? इसलिए यदि पिता की सम्पत्ति का भाइयों में बँटवारा हो सकता है तो भाई-बहनों में बँटवारा क्यों नहीं हो सकता? आज तो स्त्रियों को वोट का हक भी मिला है। तो फिर स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार क्यों न दिया जाय? यदि कोई कहे कि यह अधिकार देने से हिन्दू-धर्म टूटेगा तो यह बात गलत है। हिन्दू-धर्म काफी मजबूत धर्म है। वह इतना उदार है कि उसने बुद्ध को भी अवतार मान लिया है। इससे उसमें अनेक प्रकार के सुधार की गुंजाइश है।

"आप लोग कहते हैं कि स्त्री को ब्रह्मचर्य का या संन्यास का अधिकार नहीं है। लेकिन ऐसा क्यों? आप लोगों ने स्त्रियों को वोट देने का अधिकार दिया है तो फिर उसे अब संन्यास का अधिकार क्यों न दिया जाय? अधिकार देने पर बहुत सारी स्त्रियाँ ब्रह्मचारिणी बनेंगी, ऐसी बात नहीं। पुरुषों को तो आप नहीं रोकते, उन्हें अधिकार दे दिया है, फिर

स्त्रियों को क्यों रोकते हैं ? इसीसे हमारी प्रगति रुक गयी है। भगवान् कृष्ण ने तो गीता में कहा है कि 'स्त्री, वैश्य, शूद्र हर कोई मोक्ष पा सकता है।' फिर आपका स्त्रियों को अधिकार न देना भयानक बात है। हम लोग बातें तो आत्मज्ञान की करते हैं। आत्मा में तो स्त्री-पुरुष का कोई भेद ही नहीं होता। यह भेद तो देह का है, मोक्ष का सम्बन्ध तो आत्मा से है। आप कहते हैं कि स्त्रियों को वेदाध्ययन करने का अधिकार नहीं है, लेकिन वेदों के काल में हम देखते हैं कि पचासों स्त्रियाँ ऋषि थीं और खुद मंत्र बोलती थीं। इसलिए यदि आज कहा जाय कि स्त्री को वेदाध्ययन तथा संन्यास का अधिकार नहीं है तो उससे स्त्री का आध्यात्मिक दर्जा कम हो जाता है। इससे हिन्दू-धर्म का विकास नहीं होगा। जो हिन्दू-धर्म कहता है कि सबमें एक ही आत्मा समान रूप से वास करती है, वह तो समानता की ही बात करता है। इसलिए हमें किसी तरह का भेद नहीं मानना चाहिए। व्यापक और उदार बुद्धि से ही किसी धर्म की प्रगति हो सकती है। आज तो हर धर्म के लोगों को आत्मनिरीक्षण कर अपनी शुद्धि करनी चाहिए।"

बाबा के मुख से इन बातों को सुनकर मुझे बहुत खुशी हुई। लेकिन जहाँ वे स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार देना चाहते हैं, वहाँ वे यह भी कहते हैं कि "मैं तो चाहता हूँ कि सम्पत्ति की मालकियत की कल्पना ही मिट जाय। सम्पत्ति किसी व्यक्ति की मालिकी की न रहे; बल्कि वह **'संपति सब रघुपति कै आही'** हो जाय।"

समाजाय इदम्, न मम

जहानाबाद, मखदुमपुर,
बेला, टिकारी, राजपुर (गया)

२८, २९, ३०, ३१ अक्तूबर, १ नवम्बर, १९५२

भगवान् बुद्ध की तपस्या-भूमि गया में प्रवेश हुआ। चलते समय किसी ने बाबा को फूल भेंट किये तो बाबा ने कहा, "हम इन लड़कों की (फूलों

की) कीमत नहीं करते, हम तो इनकी माँ (धरती) की कीमत करते हैं।" इसके बाद उन्होंने धम्मपद का श्लोक सुनाया, जिसमें कहा गया है कि "जिनकी वृत्ति फूलों के पीछे पड़े भ्रमर जैसी होती है, उनका नाश उसी तरह हो जाता है, जैसे बाढ़ के पानी से सोये हुए गाँव का नाश होता है।" ...... उसमें 'फूलों की आसक्ति' प्रतीकात्मक है, जिससे भोग-विलास की प्रवृत्ति सूचित की गयी है।

सुना है, गया जिले में समाजवादियों का काफी जोर है। आम चुनाव में भी उन्हें काफी सफलता मिली थी। यहाँ पर लाल झण्डे और लाल टोपियाँ काफी तादाद में दिखाई देती थीं। इस जिले में लाल कमलों से भरे तालाब भी काफी संख्या में नजर आते थे। इस पर दामोदरजी ने उनसे विनोद में कहा, "यहाँ की सृष्टि भी आपके साथ है।" स्वागतार्थ बनाये हुए द्वार भी लाल कमलों से सजाये हुए थे। लाल कमलों के हारों को देखकर मन प्रसन्न हो जाता था।

हमारे यात्री-दल के समाजवादी भाई को चिल्ला-चिल्लाकर 'गीता-प्रवचन' बेचते हुए देखकर, एक समाजवादी नेता ने विनोद में कहा, "हमें डर लग रहा है कि आप कहीं हमारे इस अच्छे कार्यकर्ता को छीन न ले जायँ।" इस पर दामोदरजी ने कहा, "जब हमने खुद जयप्रकाशजी को ही छीन लिया तब और किसीको छीनने की बात ही क्या ?"

एक स्थान पर बच्चे नारा लगा रहे थे—**'संत विनोबा अमर हों।'** विनोबाजी ने रुककर हँसते हुए कहा—"कुछ जमीन भी दोगे ? ऐसे कैसे अमर होंगे विनोबा ?"

अभी-अभी खबर आयी थी कि केन्द्रीय सरकार ने कंट्रोल हटाने का निर्णय किया है। इस बात के लिए सरकार की सराहना करते हुए विनोबाजी ने कहा, "कंट्रोल उठाने के लिए हिम्मत और हिकमत दोनों चाहिए।" केन्द्रीय-योजना के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा, "केन्द्रीय-योजना से जनता को कभी भी सुख हासिल नहीं हो सकता। सत्ता, योजना और अक्ल का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए; तभी देश की शक्ति का पूरा उपयोग होगा और प्रत्येक गाँव अपने सुख की योजना बना सकेगा

'त्रेला' के पास 'लोमश' ऋषि की गुफाएँ हैं । लोमश ऋषि युधिष्ठिर के वनवास का मार्गदर्शक तथा साथी था। ये गुफाएँ अति प्राचीन हैं। सम्राट् अशोक ने उनका उत्खनन किया है। हममें से एक दल भूदान-गीत गाता हुआ गुफाएँ देखने गया। हरएक गुफा में हम लोगों ने यों ही गम्भीर स्वर में, **'बुद्धं शरणं गच्छामि'** का उच्चारण किया। इस मंत्र में क्या जादू भरा है! केवल उन शब्दों का उच्चारण करते ही दिल में इच्छा पैदा होती है कि भगवान् बुद्ध के लिए सर्वस्व समर्पित कर दें। हजारों साल बीतने के बाद, आज के अश्रद्धा के युग में रहनेवाले व्यक्ति के मन में भी जब यह मंत्र श्रद्धा की भावना पैदा कर सकता है, तो उस जमाने में यह कितना शक्तिशाली रहा होगा! उस समय तो **'बुद्धं शरणं गच्छामि'** का गम्भीर घोष सुनते ही लाखों व्यक्ति जाने-अनजाने बुद्ध-धर्म की ओर आकृष्ट होते रहे होंगे। आज भी क्षण भर के लिए ही क्यों न हो, पर जीवन का शाश्वत सुख, शान्ति तथा समाधान प्राप्त करा देने की सामर्थ्य इस मंत्र में निहित है। तो फिर उस जमाने में तो इस मंत्र से कितनों की जिन्दगी का रंग ही बदल गया होगा । काम-क्रोध से ग्रस्त और जीवन के क्षुद्र सुख-दुःख से त्रस्त मानव को इस मंत्र के सुनते ही शाश्वत सुख की प्राप्ति होती होगी। कहा जाता है कि मंत्र की शक्ति दुनिया के किसी भी अस्त्र-शस्त्र की शक्ति से बढ़कर है।

टिकारी में वहाँ की रानी साहिबा ने काफी जमीन दान में दी। इन दिनों भूदान की गति भी बढ़ने लगी। टिकारी की सभा में टिकारी-राजा के मैनेजर ने एक मानपत्र पढ़ा जिसमें कहा गया था कि "हम जमींदारों को चाहिए कि जमाने की माँग को पहचानें। विनोबा जैसे महान् संत के आदेश का पालन कर अधिक से अधिक जमीन देने में ही हमारा कल्याण है।"

टिकारी के प्रवचन में विनोबाजी ने भूदान के काम के पीछे जो तत्त्व-ज्ञान का अधिष्ठान है उस पर प्रकाश डालते हुए कहा, "मूलभूत विचार, जिसे तत्त्वज्ञान कहते हैं, जो हरएक धर्म की प्रतिष्ठा है, जिसके आधार पर धर्म गहराई में जाता है, उस तत्त्वज्ञान के बिना कोई भी धर्म नहीं

टिकता। मेरा जो मूल विचार है, वह है 'अपरिग्रह' और उसके विरोध में आज दुनिया में जो विचार चल रहा है, वह है अपहरण का विचार। ...... हम दुनिया को अपरिग्रह का विचार दे रहे हैं। भगवान् ने हमें सम्पत्ति, बुद्धि, शक्ति आदि जो भी गुण दिये हैं, वे हमारे लिए नहीं; बल्कि समाज की सेवा के लिए दिये हैं। जिस तरह ऋषि यज्ञ में आहुति देते समय कहते थे—**'इन्द्राय इदम्, न मम'**, उसी तरह हमें कहना चाहिए कि **'समाजाय इदम्, राष्ट्राय इदम् न मम।'** हमारे पास जो कुछ है, वह सब कृष्णार्पण करना है, समाज को अर्पित कर देना है और फिर समाज की तरफ से हमें जो 'प्रसाद' रूप मिलेगा, उसे ग्रहण करना है।"

टिकारी में बाबा की नींद रात को एक बजे ही खुल गयी और फिर वे चिन्तन करने लगे। उस समय उन्हें प्रेरणा हुई कि गया जिला भगवान् बुद्ध की तपस्या-भूमि है। इसलिए इस जिले में पहली किस्त के तौर पर एक लाख एकड़ भूमि की माँग की जाय।

दूसरे दिन राजापुर में उन्होंने उपस्थित कार्यकर्ताओं के सामने एक लाख एकड़ जमीन की माँग पेश की। कार्यकर्ताओं ने उसे उत्साह के साथ स्वीकार कर लिया। तुलसीदासजी के बाँदा जिले से भी बाबा ने इसी प्रकार एक लाख एकड़ की माँग की थी। अब तक तो हम अपने पूर्वजों के गौरव का केवल अभिमान ही रखा करते थे। लेकिन अब बाबा ने एक ऐसा तरीका निकाला, जिससे सबके अभिमान की परीक्षा हो जायगी। अब पता चल जायगा कि असल और नकल क्या है?

बाबा ने कहा, "भगवान् बुद्ध की ही प्रेरणा से मैंने इस काम को उठा लिया है और अब उन्हीं की प्रेरणा से उन्हीं की तपस्या-भूमि से मैं यह माँग कर रहा हूँ।"

राजापुर बिल्कुल ही छोटा-सा गाँव है। एक प्राइमरी स्कूल के बाल-वर्ग में हमारा निवास था। सामने बिल्कुल ही पास में एक छोटा पोखरा था, जिसमें सिमटे हुए कुमुदों की दो कलियाँ थीं। कमरे में बैठे-बैठे ही प्रकृति का सुन्दर रूप दिखाई दे रहा था। हरे-भरे खेत और दूर तक

फैली हुई पहाड़ियों की कतार, स्वच्छ-निर्मल नीला आसमान और कुमुद की वे कलियाँ! दिल चाहता था कि सारा काम छोड़कर प्रकृति की सुन्दरता को निहारती रहूँ। बाबा तो अक्सर कहते हैं, "छोटे गाँव में मुझे बड़ी प्रसन्नता मालूम होती है।"

शाम को चन्द्रोदय होते ही कुमुद खिलने लगे। चन्द्रमा का प्रकाश सभी ओर फैलते ही वे आनन्द-विभोर हो झूमने लगे। जब मैंने कुमुद-पुष्पों को खिलते देखा तो लगा, जैसे कई दिनों की साध पूरी हो गयी। सूर्य की किरणें सारी दुनिया को जीवनदान देती हैं। सारी प्रकृति आनन्द से उन किरणों का स्वागत करती है; लेकिन कुमुदों को तो चन्द्रमा ही अधिक प्रिय होता है। चन्द्रमा के प्रकाश में जब सारी दुनिया सोयी रहती है, तब ये कुमुद खिलते हैं और उनका नृत्य आरम्भ होता है।

सर्वोदय या सर्वनाश

बोधगया, गया

२, ३ नवम्बर, १९५२

प्रातःकाल हो रहा था, फिर भी पूर्णिमा का चाँद अपनी शान पर था। मानो उसे कोई तेजहीन कर ही नहीं सकता। सूर्योदय होने पर भी वह हार मानने को तैयार न था। सूर्य के कितने ही दूर निकल जाने पर भी चाँद अपनी ही जगह पर अड़ा था।

परसों टिकारी के भाषण में बाबा ने जो **'समाजाय इदम्, राष्ट्राय इदम्, न मम'** कहा था उसे मैं ठीक से समझ नहीं पा रही थी। इसलिए आज चलते समय मैंने बाबा से पूछा, "हेगेल के तत्त्वज्ञान में से जिस प्रकार 'आक्रामक राष्ट्रवाद' पैदा हुआ, क्या इस 'राष्ट्राय इदम्' के तत्त्वज्ञान में से वैसा राष्ट्रवाद पैदा होने का डर नहीं है?"

बाबा—"बिल्कुल नहीं, इसमें तो व्यक्ति अपनी स्वेच्छा से अपना सब कुछ समाज को अर्पण कर देता है। यह जो समर्पण की कल्पना है,

वह बिल्कुल ही दूसरे ढंग की है। माँ अपने बच्चे के लिए सर्वस्व का त्याग कर देती है, उसमें समर्पण ही रहता है। माँ का दूध हो या धाय का, दोनों में बच्चे को दूध तो मिलता ही है। लेकिन धाय तो पैसा लेकर दूध पिलाती है, इसलिए दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर हो जाता है। उसी तरह व्यक्ति से समाज के लिए जबर्दस्ती त्याग करवाना और व्यक्ति का समाज के लिए स्वेच्छा से त्याग करना, इन दोनों में जमीन-आसमान का फरक पड़ जाता है।"

आगे चलकर उन्होंने कहा—"अक्सर देखा गया है कि धनवानों के बच्चों को माँ का दूध नहीं मिलता। उनके भाग्य में तो धाय का ही दूध लिखा है।"

मैंने कहा—"लेकिन इसे तो प्रतिष्ठा की निशानी माना जाता है।"

बाबा—"मैं तो मानता हूँ कि श्रीमानों के बच्चे अभागे होते हैं। उन्हें गर्भ-श्रीमान् नहीं; बल्कि गर्भ-दरिद्र कहना होगा। क्योंकि न उन्हें माँ का दूध मिलता है और न माँ के हाथ का वात्सल्यपूर्ण भोजन ही। इससे बढ़कर दुर्भाग्य और क्या हो सकता है?"

फिर बाबा ने अपने जीवन की कुछ पुरानी स्मृतियाँ सुनायीं। उन्होंने कहा—"मैंने जिन लड़कों को पढ़ाया है, उन्हें सिर्फ पढ़ाया ही नहीं है; बल्कि खुद रसोई बनाकर खिलाया भी है। ...... ये जो वल्लभस्वामी आदि मेरे विद्यार्थी थे, उन सबको मैंने अपने हाथ की रसोई खिलायी है। ...... जेल में भी जब मैंने जेल का आश्रम बनाने का काम शुरू किया, तब रसोई का ही काम उठाया।"

इस पर रामदेव बाबू ने विनोद में कहा—"फिर तो सबको फीका ही फीका खिलाया होगा।"

बाबा—"हाँ, मैं तो फीका ही बनाता था। पहले राजनैतिक कैदियों में से सिर्फ १०-१५ ही फीका खानेवाले थे और बाकी सब तीखा खाने-वाले थे। लेकिन धीरे-धीरे सब फीका खाने लगे और केवल १०-५ ही ऐसे रह गये जो तीखा खाते थे। इसके बाद तो चोर कैदी भी फीका

खाने लगे क्योंकि मैं खाना बनाता था। लेकिन बाद में जेलर ने मुझसे प्राथना की कि चोर कैदियों के खिलाने की जिम्मेवारी आप मत उठाइये।"

गया पास आते ही नागरिकों की भीड़ लग गयी। भीड़ को रोकना मुश्किल हो गया। शंखनाद, पुष्पवृष्टि, जयघोष, सर्वत्र आनन्द और उत्साह दिखाई देता था।

धरती के अंक में चपला की गति से आगे बढ़नेवाले कदम उसे कुछ याद दिला रहे थे। उसे आभास हुआ कि यह चरण-स्पर्श तो चिरपरिचित-सा लगता है। वह सोचने लगी—मानवी काल-गणना के अनुसार यद्यपि ढाई हजार साल हो चुके थे; लेकिन उसे लग रहा था, जैसे यह कल की ही घटना हो। ......एक विशाल वृक्ष की छाया में उसका एक प्रिय पुत्र ध्यानस्थ बैठा था। जैसे-जैसे दिन वीतते गये, धरती का मन व्याकुल हो उठा। एक क्षण के लिए उसे अपने प्रिय-पुत्र को देखकर जो आनन्द होता, दूसरे ही क्षण उसकी घोर तपस्या को, क्लेशों को देख उसे अत्यन्त दुःख होता। सारे प्राणों को आँखों में समेटकर वह उसे कई दिनों तक देखती रही। ...... जब उसे इस मार्ग से विचलित करने के लिए काम-क्रोधादि शत्रु आये तो माँ के मन में भय पैदा हुआ। लेकिन पुत्र के मुख की असीम शान्ति देखकर वह निर्भय हो गयी और फिर उसका चालीस दिनों का वह अन्तिम उपवास आरम्भ हुआ। ...... उसकी यादकर आज भी धरती के अंग-अंग सिहर उठते हैं। कामदेव को पराभूत करनेवाली उसकी देह धीरे-धीरे क्षीण होने लगी। अपने ही सामने अपना कोमल फूल मुरझाया जा रहा है—यह वह आँखें फाड़कर देख रही थी। लेकिन उसके दिल में अटूट विश्वास था, इसलिए उसने इकतालीसवाँ दिन देखा। उस दिन जब उसने आँखें खोलीं तो धरती आश्चर्य करने लगी कि हजारों योजन दूर रहनेवाला सूर्य आज इतने निकट कैसे आया है। लेकिन उसे जब यह मालूम हुआ कि यह तेज तो उसके उस तपस्वी बालक की आँखों का ही है, तब उसके मन का हर्षोल्लास तरंगित हो उठा। जैसे ही उसने आँखें खोलीं, उसे चारों ओर मैत्री और करुणा दिखाई देने लगी। आसन छोड़कर पहली बार धरती पर पैर रखते ही भगवान् बुद्ध को धरती माता

का आशीर्वाद मिला। फिर युग-युगों से पीड़ित मानव को दुःखमुक्ति का मार्ग बताने के लिए उनका संचार आरंभ हुआ।

आज भी वही सारा का सारा दृश्य उसकी आँखों के सामने साकार हुआ। वह उसका चेहरा देख रही थी। बहुत दिनों से विदेश गये हुए बालक की पहचान करने में माँ को भी समय लगता है। ......लेकिन धरती तो उसे पहचान ही गयी—'वही फिर लौटकर आ गया!', ऐसा उसे मालूम हुआ। पर इस बार उसकी आँखों में गम्भीरता बढ़ गयी थी। उसने सोचा, उसके बालक ने आज तक जो ज्ञान-विज्ञान सम्पादन किया, शायद उसकी यह गम्भीरता है। उसकी भाषा में भी काफी परिवर्तन हुआ-सा लगता है। 'मैत्री', 'करुणा', 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' आदि शब्द तो पुराने ही हैं। लेकिन 'सामाजिक-क्रान्ति', 'सर्वोदय', 'हृदय-परिवर्तन' आदि शब्द नये थे और माँ के कानों के लिए अपरिचित मालूम हो रहे थे, पर स्वर वही था। दलितों, पीड़ितों, दुखियों के प्रति करुणा के भाव से भरा हुआ स्वर वही था। 'भूमिहीनों का हक', 'जमाने की माँग' वगैरह शब्द कहते हुए उसका स्वर किंचित् गम्भीर और निश्चित लगता था।

जनता ने जयघोष किया—**'भूमि-दान-यज्ञ सफल करेंगे।'** ...... वह सोच रही थी, उस समय तो वह यज्ञ-निषेध कर रहा था, आज यह कौन-सा नया यज्ञ शुरू कर रहा है? फिर से जयघोष हुआ—**'धरती सबकी माता है।'** अब उसे मालूम हुआ कौन-सा यज्ञ है यह। ...... वह कौतूहलपूर्वक बोली—"ऐसे थोड़े ही में बनायी जा सकती हूँ। मैं तुम्हें पहचान गयी, तुम वही हो। जरा आशीर्वाद लेने तो ठहरो।" ...... पर वह तो तीर की गति से चला जा रहा था। "जाओ, इसी तरह आगे बढ़ते जाओ। धर्म-चक्र को कुंठित होते मैं स्वयं नहीं देख सकती। अपनी इस नयी तपस्या से उसे फिर से एक बार गति दो। समस्त संसार में धर्म-चक्र का प्रवर्तन फिर से एक बार हो।"

'संत विनोबा अमर हों'—जनता ने फिर से जयघोष किया।

'न हि वेरेग वेराणि समन्तीध कुदाचन।
अवेरेण च समन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥'

(वैर से वर मिटता नहीं, निर्वैरता से ही मिटता है। यही सनातन धर्म-तत्त्व है ।)

जब प्रथम बार बुद्ध की यह वाणी व्यक्त हुई, तभी उसने जान लिया था कि वह अमर है। मनुष्य कितना ही विचलित क्यों न हो जाय, पतित नहीं हो सकता। गांधी आयेगा, विनोबा आयेगा और उनके मुख से यही वाणी निकलेगी। 'आगे बढ़ो, तुम अमर हो।'

निवास-स्थान पर पहुँचते ही विनोबाजी ने गया जिले से एक लाख एकड़ की माँग करते हुए कहा—"मैं चाहता हूँ कि भगवान् बुद्ध की तपस्या-भूमि अहिंसक क्रान्ति की प्रयोग-भूमि बन जाय।"

फल्गु नदी के किनारे हमारी यात्रा चल रही थी। इसी नदी के किनारे भगवान् का तपस्या-स्थान—बोधगया बसा हुआ है। कहा जाता है कि सुजाता का दिया हुआ इसी फल्गु नदी का जल पीकर भगवान् ने अपने अन्तिम उपवास का अन्त किया था। ...... सुबह होने लगी। पंछियों का कलरव शुरू हो गया। प्राची का मुख उज्ज्वल हो गया। विनोबाजी चिन्तन करते हुए आगे बढ़ रहे थे। हम भी सब मौन लिये चल रहे थे। सहसा ताड़ के वृक्षों की ओट से भगवान् सहस्ररश्मि ने क्षितिज पर पदार्पण किया। उस समय वे अपूर्व तेज लिये आये थे। बाबा एकदम रुक गये और एकाग्र मन से सूर्य की ओर देखने लगे। फिर उन्होंने वेदों के उषा-सूक्तों का गान आरम्भ कर दिया। विनोबा को अपने स्वागत में स्तुतिगान गाते देखकर स्वयं सूर्यनारायण भी मानो प्रसन्न हो गये और अधिक तेज चमकने लगा। वह दृश्य अविस्मरणीय था!

बोधगया के रास्ते में सपाट चेहरे, चपटी नाक और छोटी आँखवाले यात्री दिखाई दे रहे थे। बौद्धों का सबसे पवित्र स्थान बोधगया है। यह विचार आकर्षक मालूम हुआ कि बौद्ध-धर्म के स्नेहबंधन से सारे एशियाई हमारे निकट आये हैं। बाबा तो अक्सर कहते हैं कि 'भारत का संदेश

सारे संसार में फैलानेवाले बौद्ध भिक्षुओं के हम पर अगणित उपकार हैं।'

आज का हमारा निवास बोधगया के महन्त के अतिथि-गृह में था। महन्तजी ने पाँच सौ एकड़ का दान दिया। शंकराचार्य ने बौद्धों को पराभूत किया था, इसलिए उनके बाद उनके शिष्यों ने सारे बौद्ध मन्दिरों पर कब्जा कर लिया। इसलिए आज बोधगया के महन्त भी हिन्दू हैं। बोधगया के मन्दिर के बारे में हिन्दुओं और बौद्धों में काफी झगड़े हुए। परन्तु आज वह मन्दिर दोनों की एक संयुक्त कमेटी के हाथ में है। ...... लेकिन अब इस झगड़े का कोई कारण ही नहीं रह गया है। शंकराचार्य का वेदांत और बुद्ध भगवान् की करुणा तथा भूतदया, इन दोनों का समन्वय 'सर्वोदय दर्शन' में साकार हो रहा है।

बोधगया का मन्दिर सम्राट् अशोक का बनवाया हुआ अतिप्राचीन मन्दिर है। यह मन्दिर उसी पीपल के पेड़ की छाया में बना है, जहाँ बैठकर भगवान् बुद्ध ने तपस्या की थी और ज्ञान प्राप्त किया था। इसी वृक्ष की एक डाली लेकर अशोकपुत्री संघमित्रा लंका गयी थी। सम्राट् अशोक हफ्ते में एक दिन यहाँ आकर अपने सात दिनों के कामों का लेखा-जोखा भगवान् के सामने निवेदन करता और फिर यहीं से प्रेरणा पाकर लौट जाता था।

मन्दिर के निकटवर्ती स्थान में 'महाबोधि सोसाइटी' की तरफ से विदेशी यात्रियों के लिए धर्मशाला तथा एक पुस्तकालय बनाया गया है। पास ही में तिब्बतवालों का बनवाया एक मन्दिर भी है, जहाँ पर भगवान् तथा मायादेवी की मूर्तियाँ और एक अखण्ड जलनेवाला दीपक है।

शाम को बुद्ध-मन्दिर के सामने के मैदान में आम सभा हुई। विनोबाजी बोलने लगे—"हम भगवान् बुद्ध को नवम अवतार मानते हैं। ...... प्रभु रामचन्द्र, कृष्ण भगवान् तथा बुद्ध भगवान्—इन तीनों ने हमें बनाया है। प्रभु रामचन्द्र ने हमें सत्यनिष्ठा तथा मर्यादा-पालन, कृष्ण भगवान् ने निष्काम कर्मयोग तथा बुद्ध भगवान् ने समाज के दीन-दुखियों की सेवा का पाठ पढ़ाया है।

सामने वह महान् वृक्ष दिखाई दे रहा है, जो भगवान् बुद्ध का तपस्या-स्थल था। यह स्थान अत्यन्त पवित्र है। संसार के अनेक देशों से यहाँ यात्री आते रहते हैं। इसलिए यहाँ अत्यन्त स्वच्छता रखनी होगी। विदेश से आनेवाले यात्रियों पर तो हमें विशेष प्यार बरसाना होगा। उनको इस स्थान पर भारत का सच्चा दर्शन प्राप्त होना चाहिए।"

आज के भाषण द्वारा मानो विनोबाजी नवभारत की 'वैदेशिक नीति' ही बता रहे थे। नवभारत की 'वैदेशिक नीति' तो वही होनी चाहिए, जो सम्राट् अशोक की 'वैदेशिक नीति' थी। लगा, मानो डूबते हुए सूरज की आखिरी किरणों ने बुद्ध-मन्दिर के कलश पर एक ही शब्द लिख डाला है 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन'।

सूर्यास्त हो गया था, पर दीपावलियों के सौम्य प्रकाश से बुद्ध-मन्दिर नये तेज से चमकने लगा। आरती का समय था। घण्टानाद हो रहा था। भगवान् बुद्ध ने मेरी समस्त नास्तिकता उसी समय नष्ट कर दी। अनजान में ही भक्ति से मेरे हाथ जुड़ गये। मेरे बगल में बै ी हुई रंगून विद्यापीठ में पढ़नेवाली एक बर्मी छात्रा धीमी आवाज में मंत्रोच्चारण कर रही थी—**'बुद्धं शरणं गच्छामि।'** उस मंत्र की प्रतिध्वनि मेरे हृदय में गूँज उठी। यह वही मन्दिर है, जहाँ धर्म-चक्र-प्रवर्तन के लिए विदेश जानेवाली अशोक-पुत्री संघमित्रा ने इसी मंत्र का उच्चारण किया होगा। मुझे आभास होने लगा, मानो संघमित्रा पूछ रही है—"तुम क्या करोगी?"

आज जमाना मानव से पूछ रहा है—"तुम क्या स्वीकार करोगे, सर्वोदय या सर्वनाश?" प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रश्न का उत्तर आज ही देना पड़ेगा।

"अहिंसा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कारगर हो सकती है। बशर्ते कि तुम अपने हृदय-मन्दिर में अहिंसा-देवी को प्रतिष्ठित करो।"

"व्यक्ति की चित्तशुि तथा सामाजिक क्रान्ति, ये दोनों एक ही हैं, अभिन्न हैं।"

संघमित्रा बार-बार पूछने लगी—"तुम क्या करोगी?"

श्रम-दान

[मूल मराठी का हिन्दी अनुवाद]

●

शिवाजी न० भावे

प्रस्तावना

धीरेन्द्र मजूमदार

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशक
अ० वा० सहस्रबुध्दे
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ
वर्धा, (म० प्र०)

●

दूसरी बार १५,०००
कुल प्रतियाँ २०,०००
अगस्त १९५५
मूल्य : चार आना

●

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

लेखक के दो शब्द

पूज्य विनोबाजी के लेखों, भाषणों आदि के द्वारा समय-समय पर 'श्रम-दान' पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। फिर भी यहाँ पथ-प्रदर्शक रूप में श्रमदानसम्बन्धी विचार संक्षेप में उपस्थित किया गया है। वह पूर्ण न हो तो भी आचार-दृष्टि से कम नहीं है।

सामाजिक क्रान्ति का यह विचार जितना ही व्यापक होकर गहराई में पहुँचेगा—मूलग्राही होगा, उतना कम ही है। कारण इस देश में प्रतिष्ठित माने जानेवाले लोग श्रम नहीं करते। यहाँ श्रम की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। श्रम करनेवालों को तुच्छ गिना जाता है। जो श्रम करते भी हैं, वे लाचारीवश करते हैं और श्रमशून्य जीवन की ही इच्छा रखते हैं।

इस वस्तुस्थिति को पहचानना पहली बड़ी मानसिक क्रान्ति है और इसके बाद श्रम-दान से सारे समाज में प्रत्यक्ष क्रान्ति—इस तरह यहाँ द्विविध क्रान्ति होनेवाली है।

महादेव-मन्दिर,
धूलिया (प० खानदेश)
२०-९-'५४

—शिवाजी न० भावे

प्र स्ता व ना

गांधीजी की पुण्य-तिथि के अवसर पर सूतांजलि की परिपाटी चलाकर सन्त विनोबा ने अखिल भारतीय पैमाने पर देश में श्रमदान-आन्दोलन का श्रीगणेश किया। तब से श्रमदान की चर्चा फैलती गयी और आज देश में व्यापक रूप से श्रमदान का आयोजन हो रहा है। संसार में सबसे प्रचण्ड नदी कोशी बाँधने के प्रयास में श्रमदान के महत्त्व को देश ने अच्छी तरह समझा। केवल कोशी बाँधने के ही काम में श्रमदान का संघटन व्यापक रूप से हुआ, ऐसी बात नहीं; बल्कि विभिन्न प्रदेशों में अनेक प्रकार की योजनाएँ श्रमदान के आधार पर बन रही हैं। ऐसे अवसर पर श्री शिवाजी भावे ने श्रमदान पर जो विवेचन किया है, वह सामयिक है।

वस्तुतः सर्वोदय-समाज की बुनियाद श्रम है। यही कारण है कि विनोबाजी ने सूतांजलि के एक गुण्डी सूत को सर्वोदय का एक वोट माना है। अगर सर्वोदय-समाज का ध्येय शासन-मुक्त समाज है तो ऐसे समाज का निर्माण पूँजी-मुक्ति के बिना हो नहीं सकता। अतः यह आवश्यक है कि सर्वोदय-समाज का सारा काम पूँजी-आधारित न होकर श्रम-आधारित हो।

स्पष्ट है कि शासन-मुक्त समाज कोई उच्छृंखल समाज नहीं होगा। वह व्यवस्थित समाज ही होगा। व्यवस्थित समाज में अगर शासन का निराकरण करना है तो वैसा समाज संचालित न होकर, सहकारी होगा। अब प्रश्न है कि सहकार किस बात का

और किनके बीच हो। मनुष्य और मनुष्य के बीच में सहकार प्रत्यक्ष ही हो सकता है, अप्रत्यक्ष नहीं। प्रत्यक्ष सहकार श्रम के लेन-देन के द्वारा ही हो सकता है, दूसरे तरीके से नहीं। अतः सहकारी समाज में मुख्य सम्पत्ति श्रम की होगी और सामूहिक सम्पत्ति श्रमदान से ही बटोरी जा सकेगी।

दूसरी बात यह है कि सहकार समान स्तर के ही व्यक्तियों के बीच हो सकता है। असमानता से सहकार सम्भव नहीं। इसलिए यह आवश्यक है कि सर्वोदय-समाज में समाज के सभी मनुष्यों का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा बौद्धिक स्तर करीब-करीब समान हो। यह तभी हो सकता है, जब हरएक मनुष्य उत्पादन के काम में लगा रहे और उसीके साथ-साथ सांस्कृतिक तथा बौद्धिक विकास करता रहे। हरएक मनुष्य उत्पादक श्रमिक बने और जीवन-मान ऊपर उठे, इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए श्रम शक्ति का समझदारी से विकास करना होगा। यह तभी सम्भव है, जब मनुष्य की प्रेरणा सतत श्रम की ओर ही हो।

अब प्रश्न यह है कि ऐसी प्रेरणा मिले कैसे? हर आदमी समाज में कुछ-न-कुछ प्रतिष्ठा चाहता है। समाज में जिस वस्तु की प्रतिष्ठा होगी, लोगों की आंकाक्षा उसीको प्राप्त करने की होगी। आज हर व्यक्ति श्रम-विमुख है। जिन लोगों की तकदीर में निरन्तर श्रम करना ही लिखा है, वे भी श्रम-विमुख हैं। वे अगर श्रम करते हैं तो मजबूरी के कारण, न कि उसके प्रति किसी आकर्षण के कारण। ऐसा इसलिए है कि समाज श्रम को हेय दृष्टि से देखता है। स्मृतियों और पुराणों में शूद्र वर्ग को ब्रह्म के चरण से उद्भूत माना है। अर्थात् उसे अधम ही माना गया है।

ऐसे युग में श्रम की प्रतिष्ठा कैसे हो, यह मुख्य विचारणीय प्रश्न है।

श्रम-प्रतिष्ठा के अधिष्ठान के लिए यह आवश्यक है कि देश में एक महायज्ञ का सम्पादन हो। यज्ञ में आहुति की आवश्यकता है। श्रम-यज्ञ का यदि अनुष्ठान करना है तो उसके लिए आहुति भी श्रम की ही होनी चाहिए। यही कारण है कि वर्तमान युग का महायज्ञ श्रमदान-यज्ञ ही माना गया है।

सवाल यह है कि समाज के सारे कार्यक्रम में श्रमदान-यज्ञ का आयोजन हो कैसे तथा उसका स्वरूप और क्रम क्या हो? वैसे तो बापूजी तथा विनोबाजी ने देश के समक्ष अनेक प्रकार के श्रमयज्ञों के उदाहरण रखे हैं और प्रस्तुत पुस्तिका में श्री शिवाजी ने भी "श्रमदान के प्रकार और विषय" शीर्षक के अन्तर्गत इस पर कुछ प्रकाश डाला है। किन्तु जब आज का जमाना सारे समाज का इस ओर आवाहन करता है, तो हमें इसकी अधिक व्यापक तथा संयोजित परिकल्पना करनी होगी, और यह परिकल्पना भी वर्तमान राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्रान्ति के सिलसिले में ही तैयार करनी होगी, क्योंकि कोई भी योजना युग के मुख्य प्रवाह से पृथक् होकर चल नहीं सकती।

आज देश और दुनिया के सामने मुख्य प्रश्न सामाजिक न्याय का है। मानव-समाज का एक हिस्सा दूसरे हिस्से के शोषण पर निर्भर है। सदियों के शोषण तथा निर्दलन के कारण बुनियादी मानव निपीड़ित, निस्तेज तथा बेहोश पड़ा है। ऐसे समाज में नवजीवन का संचार करना आज के युग की पुकार है। हमारी सारी योजना इस पुकार के जवाब में ही होनी चाहिए।

काल-पुरुष की इस पुकार के जवाब में ही सन्त विनोबा ने भूमिदान-यज्ञ आन्दोलन चलाया है। इस आन्दोलन के समक्ष एक महान् उद्देश्य खड़ा है। देश की जनता बेकार है, भूखी है, उसे काम देना है। उसका पेट भरना है। प्रकृति की देन भूमि तथा सारे साधन मौजूद हैं, लेकिन केवल प्राकृतिक साधन ही हमारी आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकते। उस पर श्रम के प्रयोग के बिना आवश्यकताएँ पूरी हो ही नहीं सकतीं। प्रश्न केवल यह है कि यह श्रम सार्वभौम होगा या बाजार का सौदा मात्र। इसी प्रश्न को लेकर आज विनोबा निकले हैं। जिस श्रम के बिना मनुष्य का जीवित रहना असम्भव है, वही श्रम जब बाजार के सौदे के रूप में परिणत होकर पूँजी के कारागार में बंदी हो जाता है तो श्रम-देवता का अभिशाप संसार को आज की संकटपूर्ण स्थिति में पहुँचाये तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है?

संत विनोबा संसार को इस परिस्थिति से मुक्त करना चाहते हैं और यही कारण है कि वे सर्वप्रथम प्रकृति देवी की मुख्य देन—भूमि को पूँजी के हाथ से मुक्त कर श्रम की सार्वभौम सत्ता के हाथ में सौंपना चाहते हैं, जिससे वह श्रम-देवता के वाहन के रूप में पूर्णरूप से फलवती हो सके।

अतएव श्रमदान-यज्ञ का आयोजन भूमिदान-यज्ञ की प्रगति के सिलसिले में ही करना होगा और सारी योजना इसी आन्दोलन के पूरक तथा पोषक रूप में बनानी होगी। इसके लिए देश भर में व्यापक आन्दोलन चलाना होगा। यह सही है कि आज जो लाखों एकड़ भूमि भूमिहीनों को वितरित की जा रही है, उसके लिए साधन-दान तथा सम्पत्तिदान का आयोजन हो रहा है,

लेकिन सोचने की बात है कि इनकी शक्ति कितनी है ? मनुष्यों के पास आज जो कुछ साधन और सम्पत्ति एकत्र हुई है, वह श्रमशक्ति द्वारा उत्पादित साधन का नगण्य अंशमात्र है। उत्पादन का मुख्य अंश तो उपभोग में चला जाता है। जो कुछ बचता है, उसे लोग इकट्ठा करके रखते हैं। हम साधनदान का जो आन्दोलन चला रहे हैं, वह उस बची हुई सामग्री में से कुछ अंश-मात्र लेने का आन्दोलन है। उससे सन्त विनोबा द्वारा परि-कल्पित विराट् क्रान्ति का पेट नहीं भर सकता। जैसे, नदी का अनन्त प्रवाह चलता रहता है। हम उस स्रोत में से बाल्टी भर-कर घर में पानी एकत्र करते हैं, ताकि समय पर काम आये। सामान्य आवश्यकता पर हम उस एकत्र पानी से काम लेते भी हैं, लेकिन घर में अगर आग लग जाय तो उसे बुझाने के लिए हमें सीधे उसी मूलस्रोत के पास जाना पड़ता है। आग लगने के लिए ही क्यों, खेतों को सींचने के लिए भी हमें उसी मूलस्रोत का सहारा लेना पड़ता है। इसी प्रकार अगर भूमिदान-यज्ञ का काम पुराने जमाने की तरह छोटी-मोटी सामान्य राहत का काम होता तो थोड़े-बहुत साधनदान से भी काम चल जाता। लेकिन यह तो एक व्यापक क्रान्ति है। आज देश में करोड़ों एकड़ भूमि हस्ता-न्तरित करनी है। ऐसी हालत में भूमि-वितरण के उद्देश्य की सिद्धि साधन-दान और सम्पत्ति-दान से नहीं हो सकेगी। उसकी पूर्ति तो व्यापक श्रमदान-यज्ञ से ही होगी।

अतएव भूमि-वितरण के साथ-साथ व्यापक रूप से श्रमदान-आन्दोलन चलाना होगा। गाँव-गाँव में श्रमयज्ञ-समिति का निर्माण कर प्राप्त भूमि को तोड़ने, बाँध, आहर बनाने आदि के

कार्यक्रम इस यज्ञ के अभिन्न अंग के रूप में संघटित करने होंगे। इसके लिए कार्यकर्ताओं को भी हर काम के साथ अपना श्रमदान जोड़ना होगा, ताकि वे जनता को इस अनिवार्य आवश्यकता की ओर प्रेरित कर सकें। अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार हर सेवक श्रमदान के काम में लग सकता है। प्रस्तुत पुस्तिका के परिशिष्ट में सेवाग्राम-आश्रम के श्री रेड्डी के तथा सूरत के श्री आप्टे के अनुभव दिये गये हैं। उनसे ज्ञात होगा कि अत्यन्त कमजोर व्यक्ति भी अगर संकल्पपूर्वक श्रम का अभ्यास शुरू करे तो वह भी चमत्कार कर सकता है। विनोबाजी द्वारा परमधाम पवनार में जो प्रयोग किए गए, उनसे सभी सर्वोदय सेवक और सर्वोदय से दिलचस्पी रखनेवाले व्यक्ति अवगत हैं। उन प्रयोगों से भी हर कार्यकर्ता को प्रेरणा मिलती रहती है।

इसके अतिरिक्त कोशिश यह होनी चाहिए कि देश के सभी सार्वजनिक रचनात्मक कार्य तथा ऐसी संस्थाएँ सेवकों के श्रम तथा श्रमदान से ही चलें। इसके बिना सर्वोदय-समाज की स्थापना के उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकेगी।

आज हमारे देश में जो श्रमहीन तालीम चल रही है, उसकी विषमय परिणति देख देखकर सभी चिन्ताशील व्यक्ति भयभीत हैं। इसलिए तालीम के क्षेत्र में उत्पादक श्रम का व्यापक संघटन अनिवार्य है। इस दिशा में देश भर में तुरंत सक्रिय कदम उठाने की आवश्यकता है। ऐसे समय यह पुस्तिका देश के प्रत्येक सेवक-सेविका को प्रेरणा देनेवाली सिद्ध होगी।

श्री शिवाजी ने इस पुस्तिका में श्रम की तात्त्विक मीमांसा की है। लेकिन आज देश और दुनिया की जो हालत है उसे देख

जो लोग श्री भावे द्वारा प्रतिपादित तत्त्वों को नहीं भी मानते होंगे, वे भी यह महसूस करेंगे कि आज अगर सफल राष्ट्र-निर्माण करना है तो वह श्रमदान के आधार पर ही सफल हो सकेगा, कांचन के भरोसे नहीं।

मुझे आशा है कि प्रत्येक पाठक इस पुस्तिका का गहराई से अध्ययन करेगा और जो जहाँ जिस परिस्थिति में है, अपनी शक्ति तथा साधन क अनुसार इस महायज्ञ में अपनी आहुति प्रदान करेगा।

—धीरेन्द्र मजूमदार

अनुक्रम

पहला प्रकरण

[श्रम-सम्बन्धी विवेचन]

दूसरा प्रकरण

[दान-सम्बन्धी विवेचन]

तीसरा प्रकरण

[श्रम-दान-सम्बन्धी विवेचन]

परिशिष्ट

श्रम-दान

सूतांजलि

[विनोबा]

सूतांजलि पर लिखते हुए हरएक प्रांत में सूत्र-कूट-पर्वत खड़ा करने का बिचार मैंने लोगों के सामने पेश किया था। कार्यकर्ताओं को वह आकर्षक मालूम हुआ और कई जगह हासिल हुई गुंडियों का एक ढेर जमा करके उसको सूत्र-कूट-पर्वत के नाम से निर्दिष्ट किया गया और उसके फोटो लोगों ने मेरे पास भेजे। पर्वत तो वे नहीं थे, टीले भी नहीं थे। थे छोटे-छोटे ढेर ही। फिर भी मुझे अच्छा लगा, क्योंकि लोकमानस में कल्पना का आरोपण हो चुकने का वह संकेत था।

पिछले साल देश भर में कुल गुंडियाँ डेढ़ लाख के करीब हुई थीं, जिनमें चालीस हजार अकेले गुजरात की थीं। गुजरात के उत्साही जवानों ने इस साल के लिए संकल्प किया है—पचहत्तर हजार गुंडियाँ प्राप्त करने का। जन-संख्या के हिसाब से एक प्रतिशत गुण्डी मिले, ऐसी उसमें कल्पना है। थोड़े परिश्रम से गुजरात में इतना काम हो सकेगा, इसमें कोई शंका नहीं। गांधी-विचार का बीज उस भूमि में गहरा बोया गया है।

जिस तरह गुजरातवालों ने सोचा है, उसी तरह हर प्रांत में सोचा जा सकता है। बात इतनी ही है कि उसका एक सुव्यवस्थित आयोजन करना पड़ेगा और गाँव-गाँव पहुँचना पड़ेगा। सर्वोदय-विचार के प्रचार के विषय में जो शंकाशील वातावरण गांधीजी के

चले जाने के बाद चंद साल था, वह अब नहीं है। भूदान-यज्ञ का इतना प्रभाव जनता पर पड़ा है कि सर्वोदय को "एक उत्तम, लेकिन अव्यवहार्य" कार्यक्रम अब लोग नहीं समझते हैं, बल्कि अब वे समझने लगे हैं कि इसीसे लोक-कल्याण होगा और वह शक्य भी है। कार्यकर्ताओं को वातावरण के इस परिवर्तन का लाभ उठाना चाहिए।

सरकारी योजना में भी खादी की अनिवार्यता का कुछ भान होने लगा है। स्वयंपूर्ण ग्रामराज्य की दृष्टि से नहीं, तो भी बेकारी हटाने की तात्कालिक गरज से ही क्यों न हो, खादी का वजन बढ़ रहा है। आहिस्ता-आहिस्ता ध्यान में आ रहा है कि खादी जैसे "आजादी का लिबास" रहा, वैसे राजनैतिक आजादी प्राप्त करने के बाद वह "साम्य-योग का संकेत-चिन्ह" बन सकती है। अर्थात् खादी के दो पंखों में से स्वराज्य-प्राप्ति के बाद एक पंख कट गया ऐसा जिन्हें महसूस होता था, वे समझ रहे हैं कि उस कटे हुए पंख की जगह एक नया पंख फूट निकला है। इसका अर्थ यह होता है कि अब सूतांजलि न सिर्फ देहातों से, बल्कि राजधानियों से भी हासिल हो सकेगी। इसका भी लाभ कार्यकर्ताओं को उठाना चाहिए।

सूतांजलि की सारी शक्ति "प्रति मनुष्य एक गुंडी" इस मंत्र में है। उससे गुंडी देनेवालों का एक वैचारिक परिवार बन जायेगा। सर्वोदय-समाज के रजिस्टर में तो हजारों के नाम होंगे, लेकिन सूतांजलि देनेवाले लाखों होंगे। बल्कि, उतनी पुरुषार्थ-शक्ति हममें हो तो करोड़ों भी हो सकते हैं। समर्पित गुंडी के साथ दाता का नाम और पूरा पता तो रहना ही चाहिए, लेकिन

उम्र भी दर्ज हो। छोटे-बड़े सब इसमें दे सकते हैं। इसलिए इसमें न सिर्फ वर्तमान का प्रतिबिंब उठेगा, बल्कि भविष्य की भी सूचना मिलेगी।

उस-उस प्रांत में प्राप्त गुंडियों का विनियोग सर्व-सेवा-संघ साधारणतया उस-उस प्रांत में ही करेगा। परिश्रमनिष्ठ संस्थाएँ खड़ी करने में गुंडियों का सर्वोत्तम उपयोग माना गया है। मेरा सुझाव है कि अगले साल के लिए दस लाख गुंडियाँ इष्टांक माना जाय। १२ फरवरी तक ये सारी गुंडियाँ समर्पित की जानी चाहिए। मुझे आशा है कि पक्षातीत सर्वोदय चाहनेवाले सब लोग उत्साह से इस काम में योग देंगे।

श्रम-दान की योजना

[विनोबा]

आप लोग जानते हैं कि सरकार ने हिन्दुस्तान की तरक्की के लिए एक योजना-समिति बनायी है। उसने पाँच साल के लिए एक योजना बनायी है। वह योजना ऐसी है कि सरकार कुछ गाँवों के क्षेत्र को चुनती है। वहाँ रास्ते बनाये जायेंगे, पानी का इन्तजाम होगा और अन्य काम होंगे। पाँच लाख गाँवों में तो यह हो नहीं सकता, क्योंकि यह तो बहुत भारी योजना हो जाती है, उसमें पैसे का सवाल आता है; इसलिए सरकार ने कुछ गाँव चुने हैं। योजना अच्छी है। परन्तु ऐसी कोई भी योजना तब तक सफल नहीं हो सकती, जब तक कि गाँववालों की ताकत से काम नहीं होता है। इसीलिए हम चाहते हैं कि पाँच लाख गाँवों में एक साथ काम हो। क्योंकि हम गाँववालों के ही आधार पर काम करना चाहते हैं।

सर्वोदय का विचार

अगर पाँच लाख देहातों में काम करना है, तो बाहर की मदद से काम नहीं हो सकता। सरकारी योजना में तो आफिस का बहुत ज्यादा खर्च पड़ता है। बाहर से अफसर आते हैं। लोगों को लगता है कि अब ये ही काम करेंगे। प्रभु का वरदान हमें मिला है तो प्रभु ही काम करेगा। इसीलिए गाँववालों का सहयोग उन्हें नहीं मिलता। उसके लिए क्षेत्र भी ऐसे चुने जाते हैं

जो मोटर के रास्ते पर पड़ें। दूर-दूर के गाँव नहीं चुने जाते। उस पर बहुत खर्च होता है। इस पर भी लोक-शक्ति जाग्रत न हो, और गाँववाले अपनी अक्ल, ताकत और दौलत से काम न करें तो जब तक बाहर से मदद मिलेगी तब तक काम चलेगा और फिर खत्म हो जायगा। इसीलिए सर्वोदय के माननेवालों का विचार है कि गाँव की ताकत से यह काम होना चाहिए और गाँव में ताकत नहीं है, ऐसी बात नहीं है।

गाँव की ताकत

गाँव में श्रम-शक्ति है, उसीसे पैसे का निर्माण होता है। गाँव की जरूरत की सारी चीजें गाँव में पैदा हो सकती हैं। गाँव में कपड़ा बन सकता है, मकान बन सकते हैं। इस पर भी जो थोड़ी-सी मदद बाहर से चाहिए, वह मिल सकती है। इस तरह बहुत सारा काम गाँव की अपनी निजी शक्ति से होना चाहिए। हम खाते हैं, तो अपने हाथों से खाते हैं, दूसरों के हाथों से नहीं खा सकते। खाया हुआ अपनी ही पचनेन्द्रियों से पचाते हैं, इस-लिए हमारा भोजन दूसरा कोई पचायेगा, यह नहीं हो सकता। गाँव की अपनी ताकत बढ़ेगी तभी गाँव में स्वराज्य आयेगा। नहीं तो हर बात के लिए सरकार की तरफ देखना शुरू करें तो पुराने राजाओं के जमाने में जैसा होता था, वैसा ही होगा। उस समय राजा अच्छा रहा, तो प्रजा की हालत भी अच्छी रहती थी। इस तरह राजा पर सारा दारोमदार था। यह गुलामी की हालत खत्म हो, इसीलिए तो हरएक को वोट का हक दिया गया है। लेकिन पेटी में वोट डालने से ही स्वराज्य हो जाय, यह नहीं

हो सकता। जब तक हम अपने परिश्रम से अपने गाँव को सजाते नहीं, तब तक सिर्फ वोट देने से हम जैसे-के-तैसे रह जात हैं। फिर तो यह होगा कि राजा का नाम गया और उसके बदले में मंत्री का आया।

भूमिदान क्यों ?

वैसे तो सरकार भी कानून से जमीन ले सकती है। परन्तु हम इसीलिए घूमते हैं कि जो जमीन देंगे उनको हम अपना कार्यकर्ता बनायेंगे। जमीन देना याने छुट्टी पाना नहीं, जमीन देना याने सेवा का व्रत लेना है। बेजमीन को जमीन के साथ-साथ और भी मदद दनी होगी। यह सब कौन करेगा ? गाँववालों में से ही जो जमीन देंगे वे और भी मदद देंगे। इसीलिए तो हम कहते हैं कि हमें हर गाँव के हर किसान से दानपत्र चाहिए। किसी गाँव से ९९% दानपत्र हासिल हुए और एक भी कम रहा, तो हम कहेंगे कि हमारा काम पूरा नहीं हुआ। क्योंकि गाँव के बेजमीन लोगों की जिम्मेवारी गाँववालों की है, यही हम समझाना चाहते हैं। धर्म का आचरण हरएक को करना होता है।

गाँव स्वर्ग कैसे बने ?

अपने गाँव को स्वर्ग बनाना हरएक का कर्तव्य है। इसीलिए हम जमीन का बँटवारा ग्राम-शक्ति से ही करना चाहते हैं। अक्सर लोग मुझसे पूछते हैं कि जमीन तो दी जा रही है, परन्तु और मदद कौन देंगे ? तो हम कहते हैं कि जो जमीन देंगे वे ही और मदद भी देंगे। हम सरकार से मदद नहीं लेंगे। हमें जमीन

सरकार ने थोड़े ही दी है। जमीन तो लोगों ने दी है। बोने के वास्ते एक आये और काटने के वास्ते दूसरा आये, यह नहीं हुआ करता। जो बोयेगा वही काटेगा। इस तरह हम जमीन का बँट-वारा और उसके साथ ग्रामोद्योग और नयी तालीम, सब चलाना चाहते हैं।

तालीम के लिए हम सरकार पर भरोसा नहीं रखना चाहते। सरकार स्कूल खोलती है तो उसमें बहुत पैसा खर्च होता है। लेकिन हम तो हर गाँव में बिना पैसे का स्कूल खोलना चाहते हैं। वह एक घंटे का स्कूल होगा। गाँव का कोई भी पढ़ा-लिखा मनुष्य हर रोज एक घंटा पढ़ायेगा। उसके लिए उसको तनख्वाह नहीं दी जायगी। उसे साल भर में थोड़ा-सा अनाज दिया जायगा। वह दिन भर अपना धंधा करेगा और सिर्फ एक घंटा पढ़ायेगा। वैसे ही अगर गाँववाले चाहते हैं कि गाँव में पोस्ट-आफिस खुले तो खुल सकता है। गाँव के ही किसी एक बच्चे को तैयार करके डाक लाने के लिए पोस्ट-आफिस के गाँव तक भेजा जाय तो गाँव में हर रोज डाक आ सकती है। उसी तरह गाँववाले ही अपना दवाखाना गाँव में खोल सकते हैं। औषधि के लिए पैसा परदेश भेजना गलत है। हम चाहते हैं कि गाँववाले मिलकर गाँव में एक छोटा-सा वनस्पति का बगीचा लगायें और वनस्पति का ताजा रस बीमारों को दें। यह सबसे बेहतर तरीका है। बाहर की छह-सात महीने की पुरानी दवाइयाँ जीर्ण-शीर्ण होती हैं। उसी तरह खाद के लिए भी गढ़े बनाये जाँय और मनुष्य के मल-मूत्र का खाद बनाया जाय। इस तरह गाँववाले अपनी ताकत से सब कुछ कर सकते हैं। वे क्या नहीं कर सकते, यही सवाल पूछा जा सकता है।

सम्पत्ति-दान

इसके बाद तो सम्पत्ति की थोड़ी-सी मदद जरूरी है और वह गाँव में ही सम्पत्ति-दान के जरिये मिल सकती है। गाँव में कम-से-कम चार-पाँच ऐसे व्यक्तियों का निर्माण हो, जो अपनी सम्पत्ति का छठा हिस्सा गाँव के लिए दान दें। इस तरह गाँव-वालों के सहयोग से सब कुछ हो सकता है। यही बात न्याय के लिए लागू होती है। अब तक न्याय के लिए लोग दूर-दूर के नगरों में जाते हैं जिससे पैसा और समय की बर्बादी होती है। हम तो चाहते हैं कि गाँव के सज्जन मनुष्यों की राय से ही झगड़े मिटाये जायँ। लोग आज एक के बाद एक ऊपर के कोर्ट में जाते हैं। और 'आखिर के कोर्ट में आपके अनुकूल फैसला नहीं हुआ, तो क्या करोगे?'—यह सवाल पूछे जाने पर कहते हैं कि तब भगवान् का नाम लेंगे। जब आखिर में भगवान् का नाम ही लेना है तो पहले ही क्यों नहीं लेते? यह सर्वोदय का विचार है।

सरकारी शक्ति की सीमा

आपका केवल गाँव के लिए बाहर की ताकत में भरोसा रखकर शान्त बैठना गलत है। ग्राम-राज्य का मतलब यह है कि हम दूसरे किसीके कंधों पर नहीं बैठेंगे। आज स्वराज्य तो आया है, परन्तु गाँव पर शहरों की सत्ता चलती है और सरकारी योजना तो ऐसी बनी है कि जिस तरह माँ-बाप अपने बच्चों की फिक्र करते हैं, उसी तरह सरकार जनता की फिक्र करेगी। जो माँ-बाप होते हैं वे तो सब बच्चों की समान फिक्र करते हैं। परन्तु सरकार सब के लिये काम नहीं कर सकती। इसीलिए चन्द गाँव चुने

जाते हैं। किसीके घर में ऐसा नहीं होता कि कुछ बच्चों को खिलाया जाय और कुछ को भूखों मरने दिया जाय। हमारा ढंग ऐसा हो कि हम सबकी एक साथ सेवा करें। जैसे वर्षा हिन्दुस्तान भर में एक साथ होती है तो पन्द्रह दिनों में सारे हिन्दुस्तान को भिगो देती है। उसी तरह हर गाँव से बूँद-बूँद मदद मिलनी चाहिए।

हर घर हमारा बैंक

हम मानते हैं कि हर घर हमारा बैंक है। हर घर में जो अक्ल, पैसा और ताकत है, वह सब हमारी है। आजकल हमारी सरकार के जो बैंक हैं, वे तो दस-पाँच के होते हैं। लेकिन हम तो मानते हैं कि हर घर में और हर दिमाग में हमारा बैंक है। हमें सिर्फ समझाने की देर है। गीता कहती है—'उद्धरेदात्मनात्मानं' यानी अपना उद्धार खुद करना होता है। जो मरेगा वही स्वर्ग देखेगा। स्वर्ग देखना चाहते हो तो मरने की तैयारी करो। फिर सरकार की भी मदद मिलेगी। गाँव के टैक्स का ९९% पैसा सरकार गाँव को ही दे देगी। उस हालत में लोग टैक्स बढ़ाने के लिए ही तैयार होंगे। आज तैयार नहीं हैं, क्योंकि जिस गाँव का पैसा उसी गाँव में खर्च नहीं होता। आज सरकार भी चाहती है कि लोगों के सहयोग से काम हो।

ग्रामराज्य की योजना

जिस गाँव में अधिक जमीन मिली है, उस गाँव में ग्रामराज्य की योजना बनानी होगी। आज बाहर से सरकारी अफसर

गाँव में जाते हैं। ऐसा हम नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि दान देनेवाले दाता ही कायकर्ता बनें। वे अपने घर का खायेंगे और हमारा काम करेंगे। इससे उन्हें इज्जत मिलेगी। जिसे आप जमीन देंगे, उसे दूसरी मदद देने की जिम्मेदारी भी आपकी ही है। आप परोपकार करना चाहते हैं, खाना खिलाते हैं और पानी नहीं पिलाते हैं, तो यह भी कोई धर्म है? हम चाहते हैं कि हर गाँव से दानपत्र मिलें। इसका मतलब है कि हर गाँव में हमें कार्यकर्ता मिलेंगे। बाहर की मदद पर निर्भर रहोगे, और अमेरिका से भीख माँगोगे तो अमेरिका की मदद के साथ उसकी सत्ता भी आ जायेगी। इसलिए हम चाहते हैं कि गाँव की ही शक्ति से काम हो। गाँव के जो कार्यकर्ता होंगे वे अपने घर का धंधा छोड़कर काम करेंगे, ऐसी बात नहीं है। वे घर का काम करते हुए गाँव की बातें सोचेंगे। गाँव में हर रोज शाम को सभा होगी, जिसमें गाँव की भलाई की बातें सोची जायेंगी। इस तरह हम मानते हैं कि जिन्होंने हमें दान दिया, उन्होंने गाँव की सेवा का व्रत लिया है। इसलिए आप लोग दबाव से दान न लें। आप दबाव से जमीन ले सकते हैं, पर जबरदस्ती से दाता को कार्यकर्ता नहीं बना सकते। हम तो चाहते हैं कि दान देनेवाले के मन में परोपकार की भावना निर्माण हो और वह गाँव का सेवक बने। ●

श्रम-दान

[विनोबा]

बहुत खुशी है कि आज मजदूरों के इस क्षेत्र में आप लोगों के दर्शन हो रहे हैं। सारी दुनिया मजदूरों के आधार पर बनी है। मैंने कहा था कि यह पृथ्वी शेषनाग के मस्तक पर स्थिर है। अगर शेषनाग का आधार टूट जाय तो पृथ्वी स्थिर नहीं रह सकेगी, वह जर्रा-जर्रा हो जायगी। यह शेषनाग कौन है? ध्यान में आया कि दिन भर शरीरश्रम करनेवाले मजदूर, जो किस्म-किस्म की पैदावार करते हैं, वे ही शेषनाग हैं। सबका आधार उन मजदूरों पर है। इसलिए भगवान् ने मजदूरों को कर्मयोगी कहा है। लेकिन सिर्फ कर्म करने से कोई कर्म-योगी नहीं होता। हिन्दुस्तान में कुछ मजदूर खेतों पर काम करते हैं, कुछ रेलवे में काम करते हैं, कुछ कारखानों में काम करते हैं। दिन भर मजदूरी करते हैं और अपने पसीने से रोटी कमाते हैं। जो शख्स पसीने से रोटी कमाता है, वह धर्म-पुरुष हो जाता है। उसके जीवन में पाप का आसानी से प्रवेश नहीं हो सकता। दिन भर काम कर लेने पर रात को गहरी नींद आती है। न दिन में पाप-कर्म करने के लिए समय मिलता है, न रात को कुछ सूझ सकता है, क्योंकि थका-माँदा शरीर आराम चाहता है। उसे नींद की जरूरत होती है। जिस जीवन में पापचिंतन की गुन्जाइश ही न हो, वह धार्मिक जीवन होना चाहिए। •

कर्मयोगी कैसे ?

पर यह अनुभव नहीं आ रहा है। अनुभव तो यह है कि जो काम नहीं करते, उनके जीवन में तो पाप है ही; पर उन पापों ने मजदूरों के जीवन में भी प्रवेश कर लिया है। कई प्रकार के व्यसन उनमें होते हैं। व्यभिचार भी करते हैं। याने केवल श्रम करने से कोई कर्मयोगी नहीं होता। हाँ, जो श्रम टालता है, वह तो कर्मयोगी हो ही नहीं सकता। उसके जीवन में पाप है तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि उसके पास समय फाजिल पड़ा है। जहाँ समय फाजिल पड़ा है, वहाँ शैतान का काम शुरू होता है। इसलिए फुरसती लोगों के जीवन में पाप दीखता है तो आश्चर्य नहीं, पर मजदूरी करनेवालों के जीवन में पाप दीखता है तो सोचना चाहिए कि ऐसा क्यों होता है। ऐसा इसलिए होता है कि वे कर्म को पूजा नहीं समझते। लाचारी से करना पड़ता है इसलिए कर्म करते हैं। वे अगर काम से मुक्त हो सकें तो बहुत ही राजी हो जावेंगे। सच्चे कर्मयोगी की यह हालत नहीं होती।

कमाकर ही खाना उचित

हम जेल गये थे। कुछ लोगों को सादी सजा थी। उन्हें मजदूरी करना लाजिमी नहीं था। वे लोग ऐसे ही बैठे रहते थे। खाने को मिलता था, खा लेते थे। हाँ, उन्हें दूसरों से पाँच तोला रोटी कम मिलती थी। उनकी शिकायत यह नहीं थी कि काम नहीं मिलता। वे तो खुश थे कि काम नहीं करना पड़ता। पर शिकायत यही थी कि दूसरों से पाँच तोला रोटी कम क्यों मिलती है। यह बात राजनैतिक कैदियों की कर रहा हूँ। हमने

उनके बीच निवास किया। उनके विचार समझ लिये और उन्हें समझाने की कोशिश की कि सरकार ने जो सादी सजा दी है, वह सादी नहीं, भयंकर है। बिना काम किए खाना खुशकिस्मती नहीं, बदकिस्मती है। अंग्रेजों का राज है, पर यह जो खाते हैं, वह अंग्रेजों का नहीं खाते। वह तो अपने समाज का ही खाते हैं। उसके बदले में समाज को कुछ न देना गुनाह है। खुशी की बात है कि वे यह बात समझ गये और जब जेलर से काम माँगा तो जेलर को, सुपरिण्टेण्डेण्ट को आश्चर्य हुआ कि विनोबा ने यह क्या जादू किया!

कर्मयोगी की ही वाणी में शक्ति

जिन्हें काम दिया था वे काम टालने की कोशिश करते थे और जिन्हें काम नहीं दिया था वे माँग करने लगे। यह दृश्य देखकर चमत्कार-सा मालूम होने लगा। हम जो राजनैतिक कैदी थे, सब ने जेल का सारा आटा पीसने का जिम्मा ले लिया था। खुशी से काम होता था। फौरन जादू ऐसी चली कि जेल आश्रम बन गया। रोज शाम को चर्चा चलती और इतवार को धर्म-चर्चा होती। गीता पर वहाँ मेरे प्रवचन हुए। वे ही आज किताब के रूप में छपे हैं और हजारों लोग उसे लेते हैं। और लोगों के चित्त को समाधान मिलता, शान्ति मिलती, क्योंकि जेल में सभी कर्मयोग में मग्न थे। ऐसे जो कर्मयोग में मग्न होते हैं वे ही गीता का सार समझ सकते हैं और उनकी वाणी में ताकत आती है।

जेल भी महल

जहाँ कर्मयोग की भावना जेल में फैली वहाँ जेल, जेल मिट गया या यों कहिए कि जेल महल बन गया। और वहाँ जो रूखा-सूखा मिलता था, वह हराम का टुकड़ा नहीं, राम का टुकड़ा समझ कर खाते थे। जेल से जब बिदाई का समय आया, तो सबको बहुत बुरा लगा। आज भी वे दिन याद आते हैं और लगता है, अब वैसा मौका वापस कब मिलेगा। अब तो स्वराज्य मिल गया है; तो सिवा चोरी करके जेल जाने का कोई उपाय ही नहीं है या फिर कम्युनिस्ट बनो। बाहर वही खाना-पीना, वही काम करना चलता है, पर जहाँ कर्म-योग का विचार आया, चित्त में यह बात पैठ गयी कि बिना काम किये खाना पाप है वहाँ सारा पाप मिट जाता है और विष का अमृत बनता है। हिन्दुस्तान में क्या, सारी दुनिया में फसल मजदूरों से ही होती है। इसलिए हरएक के लिए काम करना लाजिमी है।

काम से घृणा क्यों ?

आज देहाती लोग भी कहते हैं कि हमारे बच्चों को तालीम मिलनी चाहिए। तालीम किसलिए मिलनी चाहिए? इसलिए नहीं कि लड़का ज्ञानी बनेगा, धर्मग्रन्थ पढ़ सकेगा और जीवन में हरएक काम विचारपूर्वक करेगा। पर इसलिए कि लड़के को नौकरी मिलेगी और हम जैसे दिन भर खटते हैं, वैसे उसे खटना न पड़ेगा। मजदूर भी ऐसा सोचते हैं। काम के प्रति ऐसी घृणा मजदूरों में भी है। काम न करनेवालों में तो है ही।

दिमागी काम करनेवाले लोग मजदूरों को नीच समझते हैं। थोड़ा-सा काम लेने के लिए जितनी मजदूरी देनी पड़ेगी उतनी देंगे, पर ज्यादा-से-ज्यादा काम लेंगे। ऐसी वृत्ति ही बन गयी है। याने उन्हें तो काम से नफरत है ही, पर मजदूरों को भी काम से नफरत है। वह मजदूरी तो करता है पर उसमें उसे गौरव नहीं लगता। किसी मेहतर से पूछो कि क्या करते हो, तो वह बड़े दुख से कहेगा कि मेहतर का काम करता हूँ।

सभी माता-पिता चाहते हैं कि लड़की अच्छे घर में जाय। अच्छे घर का मतलब जहाँ लक्ष्मी हो, जिस घर में पानी भी नहीं खींचना पड़े। जहाँ पानी भी नहीं खींचना पड़ता, वहाँ अनाज भी नहीं पचता और डाक्टरों के बिल भरने पड़ते हैं।

पार्वती की श्रमनिष्ठा

पार्वती ने कहा था कि मैं तो शंकर को ही वरूँगी। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियों ने उससे कहा कि शंकर फकीर हैं, वहाँ जा कर क्या करोगी ? किसी अच्छे घर में जाना। तो उसने कहा, मुझे उसीके यहाँ जाना है।

रामायण की कहानी

रामायण में भी एक कहानी है। अच्छी है। सुनने लायक है। रामजी को वनवास हुआ तो सीताजी ने कहा, मैं भी जाऊँगी। उसे आदत तो नहीं थी ऐसे जीवन की, पर उसने निश्चय किया था कि जहाँ रामजी वहाँ मैं। पर जब कौसल्या ने सुना तो कहा, राम जायगा और सीता भी जायगी तो सीता का कैसे होगा ?

मैंने तो उसे दीप की बाती भी जलाने नहीं दी। याने यहाँ भी काम की प्रतिष्ठा मानी नहीं गयी। इसमें अच्छाई भी है कि ससुर के घर लड़की गयी तो उसे बेटी के समान माना, पर मेहनत को हीन माना गया, यह इसमें दीखता है।

काम और खेल

कहते हैं, लड़कों के खेलने का समय है तो खेलने ही देना चाहिए, काम नहीं देना चाहिए। तालीम का समय है, तो तालीम ही लेने देना चाहिए, काम नहीं देना चाहिए। तालीम के साथ-साथ काम देते हैं तो वह फैक्टरी बन जाती है। माँ भी अपने बच्चे से कहती है कि बेटा, तू पढ़, अभ्यास कर। काम तो लड़की करेगी।

स्कूल में शिक्षा पढ़ायेंगे, विद्यार्थी पढ़ेंगे, पर सफाई तो नौकर ही करेगा। कचरा करने का काम अध्यापकों का और साफ करने का काम नौकर का।

महाभारत का उदाहरण

धर्मराज ने राजसूय यज्ञ किया था। कृष्ण भी वहाँ गये थे। कहने लगे, मुझे भी काम दो। धर्मराज ने कहा, आपको क्या काम दें, आप तो हमारे लिए पूजनीय हैं, आदरणीय हैं। आपके लायक हमारे पास कोई काम नहीं है। भगवान् ने कहा, आदरणीय हैं तो क्या नालायक हैं? हम काम कर सकते हैं। तो धर्मराज ने कहा, आप ही अपना काम ढूंढ़ लीजिए। तो जानते हैं, भगवान् ने क्या काम लिया? जूठी पत्तलें उठाने का और लीपने का।

शरीरश्रम न करें तो ?

यह उदाहरण हमारे सामने है, किन्तु फिर भी विद्यार्थी, प्रोफेसर काम नहीं करेंगे। व्यापारी काम नहीं करेगा। वह तो केवल लिखा-पढ़ी करेगा। दस के सौ बनाना है तो दसगुना काम नहीं करता है, उसे तो केवल एक शून्य दस पर रख देना है। और जो ज्ञानी हैं उनका काम करना तो बहुत बुरी बात है! ज्ञानी तो खा सकते हैं और आशीर्वाद ही दे सकते हैं। काम नहीं कर सकते। अगर कोई सबेरे उठकर पीसता है तो वह ज्ञानी नहीं, मजदूर कहलाएगा। ज्ञानी को, योगी को काम नहीं करना चाहिए। बूढ़ों को काम से मुक्त रखना ही चाहिए। बूढ़ों को काम देना निठुरता मानी जायगी। यानी बूढ़ा, बच्चा, योगी, ज्ञानी, व्यापारी, वकील, अध्यापक, विद्यार्थी, किसी को काम नहीं करना चाहिए। इतना बड़ा बेकार-वर्ग खड़ा हो जायगा तो बेकारी बढ़ेगी। अगर ऐसा होता कि जो काम नहीं करता वह खाता ही नहीं तो कुछ ठीक था, पर यह तो अधिक खाने को माँगता है। ऐसी समाज-रचना जहाँ हुई है वहाँ मजदूर समझते हैं कि हमें भी काम करने से छुट्टी मिले तो अच्छा होगा। ऐसा समाज जहाँ लाचारी से काम करता है, उसमें कर्मयोगी हो ही नहीं सकते। जो काम टालते हैं, जो काम नहीं करते हैं, उनका जीवन भी धार्मिक नहीं होता। इस तरह हमारा समाज दुराचारी बन गया है। इसी कारण समाज में श्रम की प्रतिष्ठा नहीं रही।

श्रम-प्रतिष्ठा

ऐसे समाज में लोग जाकर समझाते हैं कि श्रम करना चाहिए। श्रम की बहुत प्रतिष्ठा है। तो लोग कहेंगे आप कहते हैं श्रम करना चाहिए। श्रम की प्रतिष्ठा करनी है तो आप क्यों नहीं श्रम करते? हम कहते हैं, हम दूसरा काम करते हैं इसलिए हमें श्रम नहीं करना चाहिए। तो भाइयो, यह जरा सोचने की बात है।

वकील की मिसाल

वकील की ही बात लीजिए। हम यह नहीं कहते कि सभी वकील अप्रामाणिकता से वकीली करते हैं। कुछ सचाई से भी वकीली करते होंगे, प्रामाणिकता से काम करते होंगे, पर हम पूछते हैं वकीलों से कि आपको भगवान् ने भूख दी है तो काम क्यों नहीं करते? काम नहीं करते इसका कारण यह है कि जो दिमागी काम करते हैं उन्होंने दिमागी काम की महत्ता इतनी बढ़ा दी है कि उसे हजार रुपया देना ही उचित मानेंगे और श्रम करनेवालों को कम-से-कम देने की कोशिश करेंगे। शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा ही मानो, पर महात्मा गाँधी तो दिमागी काम करते थे, फिर भी प्रतिदिन थोड़ा-सा समय निकाल कर सूत कात ही लेते थे। काम की इज्जत करनी चाहिए। अगर हम काम की इज्जत नहीं करते तो बड़ा भारी धर्म-कार्य खोते हैं ऐसा समझना चाहिए। यह दूसरी बात है कि कुछ दिमागी काम ज्यादा करेंगे और कुछ दिमागी काम कम करेंगे। पर श्रम करनेवालों को भी दिमाग है और दिमागी काम करने

वालों को भी हाथ हैं तो दोनों को दोनों काम करने चाहिए। तभी दोनों की इज्जत बढ़ेगी, प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

काम-काम में भेद क्यों ?

दूसरी बात यह कि दिमागी काम का और श्रम का मूल्य जो कम-ज्यादा रखा है, वह ठीक नहीं है। पहले तो ऐसी व्यवस्था नहीं थी। ब्राह्मण जो ज्ञानी होता था, पढ़ाता था। वह सिर्फ धोती और खाने का अधिकारी था। वह अपरिग्रही माना गया। पर आज तो जो भी विद्या पाता है, वह उसका मूल्य माँगता है। विद्या बेचने लगे हैं। यह गलत है। "कर्मयोग" की महिमा, श्रम की प्रतिष्ठा कायम करनी है, तो कीमत में अधिक फर्क नहीं करना चाहिए।

शरीरश्रम करनेवालों को हम नीच मानते हैं। उन्हें किसी प्रकार की छुट्टियाँ नहीं दी जातीं। मेहतर को अगर एक दिन भी छुट्टी दें तो सारा शहर गंदा हो जायगा। इतना जो उपकारी है उसे हम नीच मानते हैं। उसे साफ रहने के लिए साबुन आदि भी नहीं देते। न उसकी इज्जत है, न प्रतिष्ठा है, न सम्मान है। मेहतर माने क्या? मेहतर माने तो—"महत्तर"। ऐसा जो महत्तर है उसे हमने नीच माना।

मेहतर और माता की समता

मेहतर को तो नीच माना ही पर अपनी जो माता है उसे भी हमने नीच माना। शास्त्रों में आया है कि दस उपाध्याय की बराबरी में एक शिक्षक और सौ शिक्षकों की बराबरी में एक पिता और हजार पिताओं से भी एक माता बढ़कर है। ऐसा

गौरव है माता का। यह तो शास्त्र की बात है। पर हम स्त्रियों को हीन मानते हैं। स्त्रियाँ खेत पर मजदूरी के लिए जाती हैं तो उन्हें मजदूरी कम देते हैं। स्त्रियों को तो ज्यादा देनी चाहिए, क्योंकि उन्हें घर का भी सब काम देखना होता है। बच्चों का लालन-पालन करना होता है। ज्यादा तो नहीं ही देते, पर बराबरी का भी नहीं देते। हर जगह स्त्रियों को कम मजदूरी दी जाती है। स्त्रियों को भार समझते हैं। स्त्रियाँ रात-दिन काम करती हैं, फिर भी उनका भार लगता है, क्योंकि काम की प्रतिष्ठा ही नहीं है। कहते हैं, स्त्रियाँ उत्पादन का काम नहीं करतीं, सिर्फ रसोई करती हैं। हम तो सिर्फ रसोई क्या है यह समझते नहीं। रसोई उत्पादन का काम नहीं तो क्या बढ़ई का काम उत्पादन का है? बढ़ई क्या करता है? काठ लेता है और उससे नयी चीज बनाता है। वैसे ही स्त्री आटा लेकर रोटी बनाती है। अगर नयी चीज पैदा करने को उत्पादन कहो तो ब्रह्मदेव के सिवा उत्पादन करनेवाले किसी और का हमें पता नहीं। किसान क्या करता है? परमेश्वर का पैदा किया बीज खेत में बोता है। उससे हजार गुना पाता है तो वह भी तो परमेश्वर ही करता है। काठ की खुरपी बनाना, चमड़े का जूता बनाना याने एक चीज का दूसरी में रूपांतर करना। हम नयी चीज नहीं बना सकते। हम खुद ही बनाये गये हैं। हम कृति हैं, कर्ता नहीं हैं।

शरणार्थियों के बीच

जैसे काठ की खुरपी बनाना, काठ का रूपांतर करना है वैसे ही गेहूँ का आटा बनाना, रोटी बनाना गेहूँ का रूपांतर है। क्या

इसे उत्पादन तब समझेंगे जब हमारी माताएँ, बहनें कहेंगी कि हम रोटी बनायेंगे बशर्ते कि हमें अठारह आना रोज मिले।

हम आरंभ में शरणार्थियों में घूमते थे। सरकार ने पहले उन्हें कोई काम नहीं दिया था। आटा मिलता था और उसीकी रोटी बनाकर खाते थे। हमने देखा कि वहाँ के सारे लोग इधर-उधर बैठे हैं, हुक्का पी रहे हैं, मजा कर रहे हैं। पर स्त्रियाँ काम ही कर रही थीं। वे बेकार नहीं थीं। क्योंकि उन्हें पानी लाना, चूल्हा लीपवाना, रोटी पकाना पड़ता था। याने स्त्रियाँ कितनी भाग्यवान हैं। बेकार जमात की स्त्रियाँ भी बेकार नहीं। पर स्त्रियाँ अपने को भाग्यवान नहीं समझतीं। वे तो यही कहती हैं कि पिछले जन्म में कोई पाप किया था, जो स्त्री का जन्म मिला।

ब्राह्मण और शूद्र

पुराने जमाने में ब्राह्मण को और शूद्र को अलग-अलग पैसा मिलता था। दोनों के काम में भिन्नता थी। पर शास्त्रों में यह भेद नहीं था। शास्त्रों में तो कहा है कि दोनों को समान मोक्ष मिलेगा, अगर प्रामाणिकता से अपना-अपना काम करेंगे।

आज तो प्रोफेसर की इज्जत भी ज्यादा और उसे पैसा भी ज्यादा दिया जाता है। इसलिए दो बातें होनी चाहिए। हरएक को कुछ-न-कुछ श्रम करना ही चाहिए। अगर बिना काम किये खाते हैं तो हमारा जीवन पापी बनता है और दूसरे कामों का मूल्य समान होना चाहिए। यह जब होगा तब श्रम की प्रतिष्ठा होगी। आज तो श्रम करनेवाले कहते हैं कि हमें ज्यादा छुट्टियाँ मिलनी चाहिए। आठ घण्टे काम करना पड़ता है। उसके बजाय सात

घण्टा काम होना चाहिए। और छह घण्टा हो जाय तो और भी अच्छा। ऐसा सब क्यों हो रहा है? इसलिए कि ऊपर के वैसा करते हैं। प्रोफेसर साल भर में छह माह छुट्टी लेते हैं। मेहतर को तो छुट्टी दे ही नहीं सकते, पोस्टमैन को छुट्टी देकर क्या किया?

बेकारी और मनोरंजन

बेकारी बढ़ी है तो उन्हें रिझाने के लिए सिनेमा शुरू किये गये। बेकारों को उद्योग तो नहीं मिला, उनका तो वह मनोरंजन हुआ और सिनेमावालों का उद्योग हो गया। इतने बुरे-बुरे सिनेमा चले हैं कि पूछिए मत। पर कोई रोकता नहीं। कहते हैं, रोकना तो विधान के खिलाफ होगा। यह सब हमें मिटाना है और इसीलिए हमने भू-दान-यज्ञ और संपत्तिदान-यज्ञ शुरू किया है।

हम कहते हैं कि जमीन की मालकियत रखना गलत है। हवा, पानी, सूरज की रोशनी का कोई मालिक नहीं हो सकता। पर हुआ यह है कि मजदूरों के लिए छोटी-छोटी कोठरियाँ बनाते हैं। मजदूरों को हवा की आवश्यकता कम है, ऐसा कहते हैं। तो हम कहते हैं कि मालिक और मजदूर को समान नाक क्यों दी गयी? मालिक को दस नाक और मजदूर को एक नाक रहती तो कुछ समझ सकते थे, पर ऐसा नहीं है। हरएक को एक ही नाक है तो मकान में फर्क क्यों? हाँ, फर्क तो यह हो सकता है कि मालिक काम नहीं करते तो उन्हें पचता नहीं और मजदूर को पचता है।

समाज में दर्जे क्यों ?

समाज ने दर्जे बना लिये हैं। उनको हमें दूर करना है, इसलिए हम कहते हैं कि मालकियत की यह बात गलत है कि यह दस हजार एकड़ का मालिक, यह पाँच हजार का मालिक और इसके पास कुछ नहीं। इसलिए संपत्ति और जमीन का बँटवारा होना चाहिए। इसलिए हमने एक फच्चर डाल दिया है और उससे 'साम्ययोगी समाज' बनाना चाहते हैं। इसलिए हमने कहा कि छठा हिस्सा हक के तौर पर दे दो, भिक्षा के तौर पर नहीं।

महाभारत का किस्सा है। पाण्डवों ने माँग की कि आधा राज्य हमें दो। दुर्योधन ने कहा कि नहीं देंगे। तो धर्मराज ने कहा, आधा नहीं देते तो हम पाँच भाइयों को पाँच गाँव दे दो, हम संतुष्ट हो जायँगे। दुर्योधन ने कहा कि हक के तौर पर माँगते हो तो सूई की नोक पर जितनी जमीन रहती है उतनी भी नहीं दूँगा। भीख माँगोगे तो दे सकता हूँ और उसके लिए कितना बड़ा महाभारत हुआ। लोग हमें भी कह सकते हैं कि बाबाजी आश्रम के लिए माँगो तो देंगे पर हक के तौर पर देना तो मुश्किल है। लेकिन हमने तो शुरू से ही हक की माँग की है, भिक्षा की नहीं। हम भिक्षा नहीं माँगते। हम तो दीक्षा देना चाहते हैं।

छठे हिस्से के बाद ?

कभी-कभी लोग पूछते हैं कि एक बार छठा हिस्सा देने के बाद तो नहीं माँगेंगे? हम कहते हैं—धर्म-कार्य से छुटकारा

पाना होता है क्या? उसमें तो बँधना होता है। आगे जाकर तो सब कुछ देकर गरीब की सेवा में लग जाना है। वामन के तीन पैर हैं। उनमें से एक यह है। वामन के तीन पैर विराट् पैर हैं। आखिर हमें गरीब ही बनना होगा। जीवन को सादा करना होगा।

जैसे बच्चे को उठाने के लिए माँ को झुकना पड़ता है, वैसे हमें भी अपने जीवन का स्तर थोड़ा नीचे करना होगा। इसका आरंभ छठे हिस्से से हुआ है। अगर यह विचार ठीक से समझ जाओगे तो हमारा उपकार ही मानोगे।

अंगों की एकता

बड़े-बड़े राजा-महाराजा घूमते हैं, काम करते हैं। क्योंकि वे समझते हैं कि इस दुनिया में जो गरीब की सेवा करेगा वही इज्जत पावेगा। यह बात अभी सब नहीं समझे हैं, पर वह दिन जल्दी ही आवेगा जब ऊँच-नीच का भेद नहीं टिकेगा।

एक भाई का कान दुखता था। आँखों से आँसू बह रहे थे। मैंने पूछा, क्यों भाई, क्या हुआ? उसने कहा, कान दुखता है। मैंने कहा, कान दुखता है तो आँख क्यों रोती है? क्योंकि कान का दुख आँख महसूस करती है। सारा शरीर एकरूप होकर सेवा करता है। जैसे शरीर के अवयव होते हैं, वैसे ही हम समाजरूपी शरीर के अवयव हैं। कोई हाथ है, कोई पाँव है, कोई आँख है। एक-दूसरे का दुख एक-दूसरे को महसूस होता है, उसीका नाम समाज है। अगर पाँव की वेदना ऊपर न पहुँचे तो वह मरने की निशानी मानी जायगी।

समाजरूपी शरीर

जिस समाज में एक के दुख का अनुभव दूसरे को होता है वह जिंदा समाज है और जिस समाज में एक के दुख का अनुभव दूसरे को नहीं होता वह मुर्दा समाज है। और मुर्दा जलाने की ही लियाकत रखता है। इसलिए हमें ऐसा समाज जलाना ही होगा।

धर्म हमें समझाते हैं कि दूसरे के दुख से दुखी होनेवाले बिरल होते हैं। हम कहते हैं, दूसरे के दुख से दुखी होनेवाले मानव होते हैं। दुख से दुखी होनेवाले बिरले होते हैं, यह मत समझना, यह कहो कि दूसरे के दुख से दुखी होना "बड़ा धर्म" नहीं, "मानव-धर्म" है। बड़ा धर्म तो यह होगा कि एक-दूसरे के लिए मर मिटें। दूसरे के दुख से दुखी होना मनुष्य का लक्षण है। जिसमें यह लक्षण नहीं होता वह या तो जड़ है या जानवर की कोटि का। इस धर्म का हम प्रचार करना चाहते हैं। और भाइयो, इसलिए हमने इसे 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' नाम दिया है।

हमें यह सब करना है। पर यह काम कौन करेगा? क्या विनोबा करेगा? समाज की उन्नति समाज ही कर सकता है। इसलिए मजदूर को मजदूरी में प्रतिष्ठा माननी चाहिए। हम चाहते हैं, मजदूर भी अपनी संपत्ति का एक हिस्सा दे। हम छठा नहीं माँगते पर एक हिस्सा जरूर दे। तो मालिक को भी सोचना पड़ेगा कि मजदूर देते हैं तो हमें भी देना चाहिए। उन्हें लज्जा होगी और देना ही पड़ेगा। यह मैं नहीं बोल रहा हूँ। वेदों ने कहा है—

"बहुत से बड़े-बड़े लोग दान देते हैं वे लज्जा के डर से देते हैं।"

आत्मा की एकता

हम किसीकी बेइज्जती नहीं करना चाहते। हरएक की इज्जत करना चाहते हैं। हमें यह समझ में नहीं आता कि एक सोलह साल का मैट्रिक पास लड़का एक चालीस साल के बूढ़े बढ़ई से कैसे पूछता है कि 'तेरी मजदूरी क्या है?' इस तरह के दर्जे हमें नहीं रखने हैं। कोई कहे, तेरी मजदूरी कितनी है, तो बढ़ई को कहना चाहिए, आप सभ्यता नहीं जानते। पहले सभ्यता सीखिए तब जवाब देंगे। ऐसा कहने की हरएक मजदूर में हिम्मत आनी चाहिए।

हम किसीको दबाना नहीं चाहते और किसीसे दबना भी नहीं चाहते। बिल्ली शेर को देखकर भागती है और चूहे को देखकर हमला करती है। आज ऐसा ही हो रहा है। इधर तो हाँजी-हाँजी करते हैं और उधर डराने-धमकाने लगते हैं। हम किसीको डराना नहीं चाहते, किसीसे डरना नहीं चाहते। हम किसीका अपमान नहीं करना चाहते और किसीसे अपमानित होना नहीं चाहते।

हमें वेदों ने सिखाया कि हरएक में आत्मा एक होती है। यह न सिर्फ वेदांत का विचार है, बल्कि आपकी राज्यव्यवस्था ने यह बात मानी है, इसलिए हरएक को एक वोट दिया है। पंडित नेहरू को भी एक वोट और उनके चपरासी को भी एक वोट। भाइयो, यह न केवल वेदांत है, बल्कि व्यवहार ने भी यह मान लिया है।

सब भाई-भाई के समान रहें, यह हम करना चाहते हैं। इसलिए भू-दान-यज्ञ का विचार सब समझें, यह हम चाहते हैं। ●

पहला प्रकरण

[श्रम-सम्बन्धी विवेचन]

विषय-प्रवेश

'श्रम-दान' एक सामासिक शब्द है। वह सब कालों में सब समाजों के लिए अत्यन्त उपयोगी है और समाज की उन्नति का एकमात्र मुद्रा-लेख माना जायगा। यह शब्द 'श्रम' और 'दान' इन दो शब्दों से मिलकर बना है। इसलिए क्रम से श्रम, दान और श्रम-दान का स्पष्टीकरण करना होगा। पहले 'श्रम' पर ही विचार करें, कारण 'श्रम-दान' में वही मुख्य शब्द है और जीवन का सर्वाधार भी है। हमारा पालन-पोषण और संवर्धन माता के निरन्तर श्रम से हुआ है। माता के श्रम की कोई तुलना नहीं है। उसका माप-तौल नहीं है। माता के जिस श्रम से हम बड़े हुए, सचमुच हमें उसीको माता का स्थान देना चाहिए। यही नहीं; बल्कि हमें यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि श्रम ही जीवन की सच्ची आराध्य-देवी है।

'श्रम' शब्द का अर्थ

'श्रम' शब्द संस्कृत भाषा का है और हिन्दुस्तान की हिन्दी, मराठी आदि सब भाषाओं में अपने मूल अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। 'श्रम' स्वतन्त्र क्रिया-दर्शक धातु है, जिसका अर्थ परिश्रम करना और थकना है। उसीसे 'श्रम' संज्ञा बनी है। आगे चलकर यह श्रम-शब्द शास्त्राभ्यास, तप आदि अनेक अर्थों में प्रयुक्त

होने लगा, फिर भी उन सबमें श्रम का मौलिक भाव कभी लुप्त नहीं हो सका। 'श्रम' का मुख्य अर्थ शारीरिक श्रम ही है, किन्तु बौद्धिक श्रम के लिए भी इसी शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ यही कि किसी भी श्रम का मूल आधार शरीर-श्रम ही है। बौद्धिक श्रम शारीरिक श्रम के विना भी हो सकता है, पर बुद्धि को बिलकुल ही चलाये बिना शारीरिक श्रम संभव नहीं। तब वह पागल का कार्य हो जायगा। फिर भी जितना बौद्धिक श्रम एकांगी है उतना शारीरिक श्रम एकांगी नहीं। जैसे शारीरिक श्रम के लिए बौद्धिक श्रम अनिवार्य है वैसे ही एकांगी बौद्धिक श्रम के साथ भी शारीरिक श्रम का योग अवश्य होना चाहिए। यह योग दण्ड-बैठक का व्यायाम नहीं, वरन् उत्पादक शरीर-श्रम ही है। कारण शरीर और बुद्धि को चलाने के लिए उत्पादक श्रम अत्यन्त आवश्यक है।

संसार में श्रम का महत्त्व

सृष्टि में यह योजना ही नहीं है कि न्यायतः बिना श्रम के किसीको कुछ मिले। शिकार करनेवाले हिंस्र पशुओं को सोते-सोते कभी शिकार नहीं मिलता। उसके लिए उन्हें अपनी सारी शक्ति बटोरकर श्रम करना ही पड़ता है। जो हिंस्र नहीं हैं, उन जानवरों को भी भागने, चरने या इधर-उधर घूमने के लिए श्रम करना ही पड़ता है। शहद की मक्खियाँ ५-५ मील घूम-घूमकर शहद लातीं और 'छत्ता' बनाने के लिए अविश्रांत श्रम करती ही रहती हैं। पक्षी चारे के लिए सूर्योदय से सूर्यास्त तक लगातार इधर से उधर उड़ते ही रहते हैं। चींटियों के दीर्घ

उद्योग से धान्य के भण्डार-से, श्रम के मूर्तिमन्त स्मारकरूप वल्मीक के वल्मीक (बांबी) तैयार हो जाते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि संसार में प्राणिमात्र को अखण्ड श्रम करना पड़ता है।

न केवल प्राणी ही; बल्कि हमारी यह पृथ्वी और नौ ग्रह भी लगातार घूमने का श्रम करते रहते हैं। उनका प्रकाश, उष्णता और गति निरन्तर जारी रहती है।

'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।'

—गीता, ४।१

अर्थात् योग अविनाशी है, यह मैंने सूर्य से कहा—भगवान् का यह वाक्य सूर्य के निरन्तर दर्शन से उसके श्रमयोग यानी कर्मयोग का प्रमाण उपस्थित करने में बहुत बड़ा सहायक होता है। यही कारण है कि कर्मयोगी भक्त इन्हीं उदाहरणों के आधार पर भगवान् से यही प्रार्थना करते हैं :

'नदीला कधीं विश्राम नाहीं
वायु ही नभीं सदैव वाही।
सूर्याला नाहीं विश्रांती ठावी
देवा! मत्सेवा तैशीच व्हावी॥'

अर्थात् नदी को कभी विश्राम नहीं, वायु भी आकाश में सदा बहती ही रहती है, सूर्यदेव को भी विश्राम का नाम तक मालूम नहीं—भगवन्! मेरी सेवा भी वैसी ही रहे।

इतना ही नहीं, स्वयं भगवान् भी कर्म में अखंड खपते हैं।

'यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥'

—गीता, ३।२३

अर्थात् 'यदि मैं आलस्य त्यागकर कर्म करने में प्रवृत्त न होऊँ तो सभी लोग मेरे ही जैसा आचरण करने लगेंगे।' गीता का यह वचन कर्मयोग या श्रम-दान के लिए लोगों का बहुत बड़ा मार्गदर्शक है।

'स तपोऽतप्यत। स तपस् तप्त्वा इदं सर्वमसृजत्।'

—तै० व० २, अनु ६

हमारी ये उपनिषदें बताती हैं कि ईश्वर ने भी तप या श्रम करके ही यह सारी सृष्टि रची।

विश्राम भी श्रम पर निर्भर

किन्तु 'बाइबिल' में ऐसी भी एक कथा मिलती है कि ईश्वर ने लगातार ६ दिनों तक श्रम कर आकाश, पृथ्वी आदि सारी सृष्टि रची और सातवें दिन विश्राम लिया (बाइबल, जेनिसिस चै० १, २)। ईश्वर के विश्राम की इस कथा का भी एक मर्म है। श्रम करनेवाले के लिए विश्राम जरूरी है। आखिर सृष्टि में श्रम के कारण ही तो विश्राम में भी मजा है। जो श्रम नहीं करते, उनके लिए विश्राम भी नहीं। और विश्राम न होने का अर्थ शान्ति और स्वास्थ्य का भी न होना है। अतः आहार और आरोग्य के लिए श्रम और विश्राम की दिन और रात के रूप में अखंड युगल-जोड़ी बना दी गयी है। जीवन का ही दूसरा नाम 'श्रम-विश्राम की अखण्ड मालिका' है।

किन्तु यदि रात की नींद की बात त्याग दें तो भी श्रम से ही

विश्राम पाने की युक्ति है । उसके लिए श्रम से पूर्णतः मुक्ति जरूरी नहीं। इनमें पहली युक्ति यह है कि एक श्रम से जी ऊब जाय तो दूसरे श्रम में लगें तो वह श्रम दूर हो जाता है। दूसरी युक्ति यह है कि कोई भी श्रम अत्यधिक लगन से किया जाय तो वह श्रम ही प्रतीत नहीं होता । जैसे माता की बालक-सेवा । एक तीसरी भी युक्ति है—श्रम में एकाग्रता आने पर वही विश्राम में बदलने लगता है । जैसे-अनुसन्धानकर्ताओं का अनुसन्धान या खोजबीन । जिस श्रम की आदत न हो, वह पहले तो कठिन ही मालूम पड़ेगा, पर अभ्यास हो जाने पर वही विश्राम बन जाता है। जैसे—तैरना। इस तरह अभ्यास से श्रम का श्रमत्व ही मिटा देना एक चौथी भी युक्ति है। ऐसी अनेक युक्तियाँ मिलकर योग बनता है। 'कर्म अकर्म कैसे बन जाता है' इसका स्पष्टीकरण करते हुए पूज्य विनोबाजी ने 'गीता-प्रवचन' में यह विषय अत्यन्त स्पष्ट कर दिया है। सारांश, श्रम में योग को मिलाकर श्रम का विश्राम बनाया जा सकता है। जहाँ दिन में विश्राम का साधन श्रम है वहीं रात में श्रम का साधन विश्राम है।

यदि श्रम न किया जाय तो श्रम में विश्रान्ति और विश्राम में श्रम-स्फूर्ति मिल नहीं सकती। यही क्यों, बिना श्रम के अन्न भी ठीक नहीं पचता। श्रम से अन्न में जो रुचि मालूम पड़ती है, वह किसी पकवान से पैदा नहीं की जा सकती। श्रम से न केवल जीभ, वरन् सभी इन्द्रियाँ सतेज बन जाती हैं। श्रम का देह और बुद्धि पर सर्वोत्तम प्रभाव दीख पड़ता है। जैसे किसी तलवार को सान देकर चमचमाने या किसी वस्त्र को नदी के स्वच्छ जल में खूब धोने पर उनमें तीक्ष्णता, स्वच्छता और प्रसन्नता पैदा होती

है वैसे ही श्रम से भी बुद्धि में तीक्ष्णता, स्वच्छता और प्रसन्नता आती है। श्रम से भीतर-बाहर शुद्धि होती है।

श्रमयुक्त कृषि और ग्रामोद्योगयुक्त वर्ण-व्यवस्था

यही कारण है कि हमारे प्राचीन ऋषियों के निवासस्थान का नाम 'आश्रम' रखा गया। जहाँ एक विशिष्ट दृष्टि रखकर श्रम किया जाता है, तपस्या का वह स्थान ही आश्रम है। वेद में एक वाक्य आया है—

'अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व।'

—ऋग्वेद, १०।३४

अर्थात् मुझे सम्माननीय सवितृदेव ने आदेश दिया है कि 'पासों से जुआ मत खेलो, खेती करो।' ध्यान देने की बात है कि जुआ सरासर जुआ है ही, पर श्रमप्रधान कृषि और ग्रामोद्योग को छोड़ इधर के पैसे को उधर लगाने का अनुत्पादक रोजगार भी एक जुआ ही है। इसीलिए ऋषियों का सदा इसी पर जोर रहा कि 'कृषि को ही अपना मुख्य उद्योग बनाओ।'

इस तरह कृषि-जीवन मुख्य माना गया। उस कृषि और समाज के लिए आवश्यक ग्रामोद्योग यानी गोरक्षा, वाणिज्य आदि उद्योगों को भी मान्यता दे चातुर्वर्ण्य की रचना की गयी। निश्चित किया गया कि सभी वर्ण श्रमप्रधान कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य आदि उद्योग करें—सभी वर्ण श्रम के आधार पर जीवन-निर्वाह करें। किन्तु जिनके पास अधिक ज्ञान हो वे दूसरों को उसे बिना मूल्य दें। ये ज्ञान देनेवाले ही ब्राह्मण हुए। इसी तरह जहाँ साहस, सुरक्षा-आदि का प्रसंग उपस्थित हो वहाँ क्षत्रिय बिना

मूल्य आगे बढ़ें। संक्रामक रोग महामारी, अकाल, बाढ़ आदि संकटों के समय जब विशेष सेवा की जरूरत पड़े तब केवल सेवा की स्फूर्ति रखनेवाले शूद्र बिना मूल्य लिये सेवा के निमित्त आगे आयें।

चातुर्वर्ण्य की यह रचना वैदिक धर्म के सारस्वरूप गीता की चातुर्वर्ण्य रचना श्रम और गुण के सिद्धान्त पर ही निर्धारित हुई। (गीता, ४-१३, १८-४१ से ४४)। यदि ब्रह्मकर्म, क्षात्रकर्म और शूद्रकर्म के साथ कृषि, गोरक्षा, वाणिज्यादि उद्योग न जोड़े जायँ तो वे केवल कर्मशून्य गुण रह जायँगे। अर्थात् ऐसे निराधार गुण गुण ही नहीं रह जायँगे। इसलिए जीवन के लिए श्रम के कार्य वे विशिष्ट गुण मिलकर ब्राह्मणादि त्रैवर्णिकों के कर्म सिद्ध होते हैं और गुण भी सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि शरीर-श्रम से रहित केवल बौद्धिक ज्ञान, केवल राजकीय कार्य या केवल सार्वजनिक सेवा की विषमता गीता के चातुर्वर्ण्य में कहीं नहीं है।

शारीरिक श्रम से बचना समाजद्रोह

आजकल श्रम त्यागकर शिक्षण आदि कार्य किये जाते हैं। इन्हें श्रम करनेवालों से कई गुना अधिक वेतन मिलता है। जो प्रतिष्ठा मिलती है, वह अलग। इस दृष्टि से देखा जाय तो हजारों रुपये कमानेवाले प्रोफेसर या सरकारी नौकर श्रम के आधार पर निर्मित समाज के द्रोही ही कहे जायेंगे। राजकीय कार्य करनेवाले भी श्रम से बचते रहते हैं। इतना ही क्यों, वे विशेष सत्ता, मान-सम्मान और शरीरश्रम करनेवालों की अपेक्षा कहीं अधिक वेतन भी पाते हैं। सार्वजनिक सेवा करनेवाले शूद्र इस कर्म की शेखी

बघारते रहते हैं। वे भी मान-सम्मान के पीछे लगते और अधिकार तथा पैसे की आकांक्षा करते हैं। संक्षेप में आज के चातुर्वर्ण्य का यही नक्शा है। उसमें शरीर-श्रम अर्थात् उत्पादक परिश्रम से बचने की कोशिश है। वह समाज में भेद और विषमता पैदा करता है और केवल स्वार्थ पर खड़ा है।

चातुर्वर्ण्य की सच्ची बुनियाद शरीर-श्रम है और उसकी इमारत गुणों के सहारे खड़ी की गयी है। बिना बुनियाद की इमारत की तरह श्रमविहीन चातुर्वर्ण्य भी भारी खतरे की चीज है। उसमें श्रम तो नष्ट होता ही है, कोई गुण भी सच्चे गुणरूप में बच नहीं पाता। जहाँ श्रम गया, वहाँ विषमता स्वभावतः आ जाती है। सिवा इसके श्रम-प्रतिष्ठा नष्ट हो जाने के कारण विवशता या लाचारी से श्रम करने की वृत्ति पैदा हो जाती है, जिससे श्रम करनेवाले भी किसी तरह, बड़े ही निरुत्साह से श्रम करते रहते हैं। अतः स्पष्ट है कि शारीरिक श्रमविहीन कोई भी वर्ण कभी और किसी भी प्रकार उपयोगी नहीं कहा जा सकता।

बौद्धिक श्रम के साथ उत्पादक श्रम जरूरी

इस पर कई लोग प्रश्न करते हैं कि 'क्या बौद्धिक श्रम श्रम नहीं है?' इसका उत्तर यही है कि हाँ, बौद्धिक श्रम भी श्रम ही है, पर उसका बदला भी बौद्धिक ही होना चाहिए। जैसे हमने किसी को कोई नया विचार दिया या बतलाया तो उसके बदले में हम उससे दूसरे विचार की तो इच्छा रख सकते हैं, परन्तु विचार के बदले में पैसा या अन्य वस्तु की अपेक्षा रखना उचित नहीं होगा। इसलिए बौद्धिक श्रम करनेवालों को इतने अधिक रुपयों के रूप में

मुआवजा देना, जिससे वे हजारों वस्तुओं का संग्रह कर सकें, सर्वथा अनुचित माना जायगा।

वस्तुतः बौद्धिक श्रम करनेवालों को थोड़ा-बहुत उत्पादक श्रम अवश्य करना चाहिए। इससे उनका और उनके समाज का लाभ ही होगा। उनका वेतन भी अधिक न होना चाहिए। सच तो यह है कि शरीर के लिए आवश्यक वस्तुएँ शरीर द्वारा ही प्राप्त करना सृष्टि-नियम के अनुकूल है। कान को नाद की आवश्यकता होती है, पर उसे आँखों द्वारा पाने की इस सृष्टि में कहीं व्यवस्था नहीं है। शरीर के लिए जो आवश्यक हो वह शरीर द्वारा और बुद्धि के लिए जो आवश्यक हो वह बुद्धि द्वारा ही प्राप्त करना चाहिए। इसीलिए ऋषियों के आश्रमों की तरह पूज्य बापूजी के 'सत्याग्रह-आश्रम' के सिद्धान्तों में भी शरीर-श्रम को महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना गया और वही चातुर्वर्ण्य का मूल तत्त्व है।

यह ऐतिहासिक प्रश्न कि 'क्या यह गीतोक्त चातुर्वर्ण्य समाज में कभी प्रचलित भी था' यहाँ कोई महत्त्व नहीं रखता। यदि मान भी लिया जाय कि वह कभी प्रचलित न था, तो भी चूँकि चातुर्वर्ण्य की यह कल्पना गीता को मान्य है, इसलिए वह एक आदर्श के रूप में तो अवश्य था। गीता के उपदेशक श्रीकृष्ण का जीवन बाल्यावस्था से ही चातुर्वर्ण्य की नींव—शारीरिक श्रम —पर आधारित रहा। यही कारण है कि गीतोक्त कर्मयोग के निरूपण को एक विशेष प्रेरणाशक्ति प्राप्त हो गयी है और इसीलिए तो गोकुल का श्रमप्रधान ग्राम्य जीवन, राजसूय यज्ञ में जूठन उठाने का काम आदि श्रीकृष्ण की जीवन-लीलाएँ अखिल भारत में भक्ति का विषय बन गयी हैं।

चातुर्वर्ण्य की विकसित कल्पना

चातुर्वर्ण्य की कल्पना ही नहीं, अन्य दूसरी कल्पनाएँ क्रमशः उत्तरोत्तर विकसित होती रहती हैं। श्रम पर आधारित और श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट गीतोक्त चातुर्वर्ण्य भी इसी प्रकार का विकसित चातुर्वर्ण्य है। उच्च-नीच भाव का चातुर्वर्ण्य इतिहास में नहीं मिलता—ऐसी बात नहीं पर वह है अविकसित कल्पना ही। वास्तव में 'वैश्य' वर्ण उत्पादक श्रम की विशेषता से पहचाना जाना चाहिए और ब्राह्मणादि वर्ण उत्पादक श्रम + उन-उन गुणों के वैशिष्ट्य से पहचाने जाँय। ये वर्ण कभी भी जन्म पर निर्भर न रहें। ब्राह्मण या शूद्र पहचानना हो तो उस-उस अवसर या गुण-प्रकर्ष से ही पहचाना जाय। यही चातुर्वर्ण्य की सच्ची विकसित कल्पना है। यह भी सच है कि इसमें किसी प्रकार की विषमता नहीं आती। इसलिए जहाँ एक ही व्यक्ति में चातुर्वर्ण्य एकत्र हो गया है उस समाज में अधिक से अधिक ऐसे व्यक्ति पैदा होते जायँ—यही इस विकसित चातुर्वर्ण्य का ध्येय है। समस्त चातुर्वर्ण्य का अधिक-से-अधिक व्यक्तियों में एकत्रीकरण ही महत्त्व की बात है।

बापू और विनोबा : आदर्श उदाहरण

एक ही व्यक्ति में चातुर्वर्ण्य के अत्युत्कट एकत्रीकरण का अत्युत्तम उदाहरण सारे विश्व के सामने पूज्य बापूजी का है। वे अखण्ड श्रम करते थे। पाखानों की सफाई बुनाई, खेती मोची का काम, गो-सेवा, छापाखाने का काम, महारोगी की सेवा—इस तरह उन्होंने अपार श्रम किया। इसके सिवा शिक्षा

का काम भी उन्होंने किया। राजकारण और सत्याग्रह जैसे क्षात्र-कर्म भी उन्होंने अद्‌भुत रूप से कर दिखाये। यही कारण है कि वे नवयुग के स्मृतिकार माने गये।

केवल बापूजी ही इसके उदाहरण हैं, ऐसी बात नहीं। सौभाग्य से ऐसे अनेक व्यक्ति आज इसके उदाहरण-स्वरूप मिल सकते हैं, जिनमें पूज्य विनोबाजी का उदाहरण सबके सम्मुख है। उन्होंने आश्रम में महीनों तक प्रतिदिन ६४० तारों की ४ गुंडियाँ यानी १६-१६ लड़ियाँ कातीं। कातते समय वे पढ़ाते भी रहे। दाहिना हाथ थक जाने पर वे बाँये हाथ से कातते। सुरगाँव में उन्होंने भंगी का काम किया और परंधाम-आश्रम में घण्टों खुदाई करते रहे। वे कुँआ खोदने का भी काम करते। उनमें चातुर्वर्ण्य का एकत्रीकरण साफ-साफ दीख पड़ता है।

किन्तु इन प्रमुख कतिपय उदाहरणों को छोड़ दें तो भी सभी में एक अपेक्षित परिमाण में चातुर्वर्ण्य एकत्र होना आज अत्यावश्यक है। कम-से-कम उसकी बुनियाद के रूप में सभी को उत्पादक श्रम में लीन हो जाना चाहिए। तन्मयता से श्रम करना कोई अनोखी बात नहीं है। छोटे बच्चे भी तो तन्मय होकर खेलते ही हैं। एक और उदाहरण लीजिये—आश्रम में एक निरक्षर बढ़ई रहा। वह वहाँ चरखा बनाने का काम करता था। केवल भोजन करने भर का समय छोड़, क्षण भर विश्राम किये बगैर, वह सदा ही तन्मयता के साथ अखण्ड काम में जुटा रहता। एक बार उसने पूज्य विनोबाजी को भोजन के लिए बुलाया। विनोबाजी कहीं भोजन करने जाते नहीं, पर उसके यहाँ चले गये।

भला उस तन्मय अखण्ड श्रम को उसकी 'भाकरी' (ज्वार की रोटी) की लज्जत किस पकवान में आ सकती थी ?

श्रमपरक ही आश्रम-व्यवस्था

जैसे श्रम चातुर्वर्ण्य या सामाजिक जीवन की बुनियाद है वैसे ही वह व्यक्ति-जीवन की भी बुनियाद माना गया है। ऋषियों ने श्रम के आधार पर ही सम्पूर्ण मानव-जीवन की रचना की है। ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचर्य मुख्य मानकर उसके लिए परिश्रम, गृहस्थाश्रम में गृह मुख्य मानकर उसके लिए परिश्रम, वानप्रस्थ आश्रम में वन को मुख्य मानकर उसके लिए परिश्रम और संन्यासाश्रम में त्याग को मुख्य मानकर उसके लिए श्रम का विधान किया गया। इस तरह ऋषियों ने जीवन की चार प्रमुख अवस्थाओं के अनुसार चार आश्रमों की रचना की। उन सबमें श्रम सर्वसाधारण तत्त्व है। उसमें भी उत्पादक शरीर-श्रम का बहुत बड़ा स्थान है।

इस पर भी यह ऐतिहासिक प्रश्न खड़ा हो सकता है कि 'क्या वर्ण-रचना के समान चार आश्रमों की रचना भी कभी प्रचलित रही ?' किन्तु इसे भी गौण प्रश्न ही मानना होगा। कारण, आश्रम-रचना की कल्पना उपनिषद्-काल से ही दिखाई पड़ती है। महाभारत, रामायण, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में इन चार आश्रमों के बारे में काफी चर्चा है। फिर भी यदि मान लें कि पहले कभी आश्रम-कल्पना प्रचलित न थी तो भी इतना तो निश्चित ही है कि वह मानव-जीवन के लिए एक अत्यावश्यक शास्त्रीय कल्पना है और अनेक लोगों

ने उसका आचरण किया है। इसमें किसी तरह के सन्देह की गुंजाइश नहीं।

किन्तु आज समाज से इस आश्रम-कल्पना का पूर्णतः लोप हो गया है। शंकराचार्य के समय संन्यास कलिवर्ज्य घोषित हो चुका था, किन्तु लोकोद्धार के अनेक कार्यों में एक महत्त्व का कार्य उन्होंने यह भी किया कि संन्यास की कलिवर्ज्यता मिटा दी। यदि समाज में श्रम की महिमा और लोक-सेवा की भावना बढ़ानी हो तो न केवल संन्यास, वरन् चारों आश्रमों को पुनः जीवित करना होगा। आज तो केवल गृहस्थाश्रम ही एक ऐसा आश्रम बचा है, जिसकी दीक्षा लोगों के सामने दी जाती है। किन्तु ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास से रहित केवल गृहस्थाश्रम कदापि 'आश्रम' संज्ञा का पात्र नहीं, क्योंकि उसमें केवल अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण और उपभोग के अतिरिक्त कोई दृष्टि है ही नहीं।

आज किसीको भी अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण के निमित्त चाहे जैसे उपाय करने में किसी तरह की आपत्ति मालूम नहीं पड़ती। इसलिए वहाँ समुचित उत्पादक श्रम का प्रश्न ही नहीं उठता। आज के गृहस्थों की यह वृत्ति-सी बन गयी है कि 'कुछ भी करके पैसा पैदा कर लिया तो सब कुछ पा लिया।' वास्तव में यह समाज-धारणा और नीति की दृष्टि से अत्यन्त शोचनीय बात है।

धन से श्रम का मूल्य अधिक

वस्तुत: देखा जाय तो द्रव्य या पैसा व्यवहार के एक गौण साधन के ही रूप में अपनाया गया। किन्तु जिस तरह किसी राजा की मदद के लिए आया हुआ कोई मन्त्री राजा को हटाकर स्वयं ही मुख्य बन बैठता है, आज पैसे के बारे में भी ठीक इसी तरह की बात हो गयी है। वह आया तो दूसरे मददगार के रूप में, पर बाद में श्रम से तैयार होनेवाली वस्तुओं को पीछे छोड़कर स्वयं ही मुख्य बन बैठा है। पर ध्यान रहे कि जैसे राजा को पदच्युत कर उसकी जगह प्रजा की प्रतिष्ठा किये बगैर लोकतन्त्र व्यवस्थित नहीं होता, वैसे ही पैसे को पदच्युत कर उसकी जगह श्रम की प्रतिष्ठा किये बगैर गृहस्थ-जीवन और समाज-जीवन कभी व्यवस्थित नहीं होगा।

शंकराचार्य उपदेश देते हैं कि 'मूढ़! धन की तृष्णा त्याग दे'—

'मूढ जहीहि धनागमतृष्णाम्।'

उनका यह उपदेश सभी पर समान रूप से लागू होता है। आखिर वे ऐसा क्यों कहते हैं? कारण स्पष्ट है। उसमें वास्तविक अर्थ न होकर अनर्थ ही भरा हुआ है।

'अर्थमनर्थं भावय नित्यं
नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।'

अर्थात् 'तुम अर्थ को अनर्थ समझ लो, वास्तव में उसमें सुख का लेशमात्र भी नहीं है'—यह भी उन्हीं का वचन है। सोचने की बात है कि आखिर यह अर्थ अनर्थ क्यों है? कारण, वह एक

धोखाधड़ी है। बाजार में एक सेर अनाज के लिए चार आना खर्च पड़ता है। पर चार आने और एक सेर अनाज़ की वास्तव में तुलना ही क्या? सचमुच यह अर्थ का अनर्थ ही तो हुआ! यदि कोई पत्थर और मानव की तुलना करने लगे तो हम उसे क्या कहेंगे? जब एक चेतन और दूसरा अचेतन, एक सचर और दूसरा अचर, एक अनेक का प्रेरक और दूसरा अल्प उपयोगी हो तो उन दोनों की परस्पर तुलना ही क्या? तुलना के लिए कुछ समानता तो होनी ही चाहिए। जहाँ समानता नहीं, वहाँ तुलना में खड़ी की गयी वस्तु साफ-साफ अनर्थ ही तो है। आश्चर्य है कि फिर भी उसे 'अर्थ' नाम दिया गया। पर निश्चय ही वह व्यर्थ है।

आखिर एक सेर ज्वार क्या है? उसके पीछे कितना श्रम है? जमीन की देखभाल, जोतना, खाद देना, अच्छे बीज चुनना, उन्हें बोना, सींचना, निरौना, रोपना, पक्षियों से बचाना, अगोरना, बाल काटना, दँवाना, उसावना—आदि कितनी बड़ी श्रम-परम्परा उस एक सेर ज्वार के पीछे खड़ी है! और यदि वही एक सेर ज्वार बो दी जाय तो पुनः कितनी गुना बनकर मिलेगी? उसके लिए चवन्नी की ठीकरी का मूल्य ही क्या? तब क्या चवन्नी की ठीकरी और एक सेर अनाज समान ही माना जायगा?

'सामर्थ्यानामिव समुदयः सञ्चयो वा गुणानाम्
आविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशिः।'

अर्थात् धान्यराशि (अनाज का ढेर) मानो जगत् के पुण्य की राशि है। वह सामर्थ्य का उदय है, वह गुणों का संचय है। इस

तरह स्पष्ट है कि पैसा और अनाज आदि वस्तुओं की तुलना कभी हो ही नहीं सकती। कारण अनाज आदि वस्तुओं के पीछे चेतन मानव का बुद्धियुक्त श्रम है। जूता पैर में ही रहना चाहिए। ठीक इसी तरह पैसे का उपयोग गौणरूप में ही होना चाहिए, उसे सिर चढ़ाना ठीक नहीं। पैसे की जगह श्रम-प्रतिनिधि वस्तुओं की ही प्रतिष्ठा की जानी चाहिए।

श्रमयुक्त वस्तु के विनिमय का चलन हो

आजकल पैसे की बदौलत अनावश्यक वस्तुएं खरीदने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। पर पैसा एकदम चुराया भी जा सकता, है जब कि श्रम-युक्त वस्तु-विनिमय में यह भय करीब-करीब समाप्त हो जाता है। अतः जिसके पास पैसे से बढ़कर श्रमशक्ति भरपूर है, वास्तव में वही श्रीमान् माना जाना चाहिए। पैसा श्री नहीं, वरन् लक्ष्मी ही श्री है और वह एकमात्र श्रम से ही प्राप्त होती है। अवश्य ही आजकल वही श्रीमान् माना जाता है जिसके पास पैसा हो, कारण पैसा देने पर चाहे जो मिल सकता है। पर यह स्थिति अवश्य बदलनी होगी। लोगों को यह संकेत कायम करना होगा कि कुछ खास चीजों—जैसे घड़ी, साइकिल, रेलगाड़ी का टिकट आदि—के लिए ही पैसे का प्रयोग उचित है। यदि यह स्थिति आ जाय तो निश्चय ही पैसे का मूल्य बहुत कुछ गिर जायगा। भले ही पैसे का पूर्णतः निर्मूलन न किया जाय, फिर भी उसकी सार्वभौम प्रतिष्ठा तो समाप्त करनी ही पड़ेगी। इसके बिना श्रम को महत्त्व मिल ही नहीं सकता।

गाँवों में मुख्यत: जीवनोपयोगी वस्तुएँ ही बनती हैं । ग्रामीण उनसे पैसे भुनाने शहरों में जाते हैं । शहरवाले जो भाव नियत कर दें, उन्हें उसी भाव पर अपनी वस्तुएँ बेचनी पड़ती हैं । यदि ऐसी स्थिति पैदा हो जाय कि गाँववालों को पैसे की जरूरत ही न पड़े तो निश्चय ही वे गाँव का बना माल शहर में बेचने न जायँगे । उल्टे, शहरवालों को ही अनाज आदि खरीदने गाँव जाना पड़ेगा । गाँव में उसका जो मूल्य निर्धारित होगा उसीके अनुसार उनकी खरीद होगी । सारांश, अपनी वस्तु बेचकर पैसा भुनाने की प्रवृत्ति जहाँ तक सम्भव हो, अगर निर्मूल होती जायगी तो श्रम के वास्तविक प्रतीक जीवनोपयोगी वस्तु की प्रतिष्ठा बढ़ेगी ।

'काञ्चनमुक्ति'-प्रयोग

इस दृष्टि से विचार किया जाय तो सरकारी कर या मालगुजारी भी अनाज या सूत के रूप में लेना असंभव नहीं । सरकार इस चलन का प्रयोग करे तो कहा जायगा कि उसने सच्चे चलन की कद्र की । इस वास्तविक चलन से अर्थशास्त्र के बहुत से अनर्थ भी दूर हो जायेंगे । आज एक रुपये में जितना अनाज मिलता है, उतना हमेशा नहीं मिलता । उसमें बराबर परिवर्तन होता रहता है । किन्तु अनाज या अन्य वस्तुओं की बात ऐसी नहीं है । एक सेर अनाज सदा एक सेर ही रहेगा । उसमें केवल पुष्ट-अपुष्ट, अच्छे-बुरे का ही अन्तर पड़ सकता है । सारांश, वस्तु की तुलना में पैसा प्रामाणिक (ईमानदार) चलन नहीं । अत: श्रम-प्रतिष्ठा के लिए प्रामाणिक चलन की सर्वत्र समान रूप से जरूरत है ।

पैसा और अप्रामाणिक वस्तुओं का यथासंभव कम-से-कम उपयोग कर श्रम और श्रम-अर्जित वस्तुओं का मूल्य बढ़ाने की दृष्टि से ही पूज्य विनोबाजी द्वारा परंधाम-आश्रम में चलाया गया 'काञ्चन-मुक्ति'-प्रयोग बड़े मार्के का रहा। सारांश, श्रम-प्रतिष्ठा की दृष्टि से पैसे का मूल्य गिराकर जीवनोपयोगी वस्तुओंका मूल्य बढ़ाना अत्यावश्यक है।

श्रम-प्रतिष्ठा के लिए भूमि सब की हो

इसके लिए गृह-उद्योग और ग्राम-उद्योग को थोड़ा भी गाँव से बाहर जाने देना ठीक न होगा। आज गाँव का मुख्य उद्योग—खेती—भी ठीक तरह से नहीं होती। उसमें उचित और जरूरी श्रम नहीं किया जाता। वास्तव में जिन्हें खेती की जरूरत है, उन हजारों-लाखों के पास अपने खेत नहीं हैं। फल-स्वरूप वे केवल खेत-मजदूरी या और कुछ करते रहते हैं। इसी-लिए लगन और अपनत्व के साथ जमीन पर श्रम नहीं हो पाता। अतः यह अत्यावश्यक है कि पैसे या सत्ता के बल पर जमीन का संग्रह करना अनुचित माना जाय। यह बात भूदान-यज्ञ से विश्वविश्रुत हो चुकी है। यदि इस देश में श्रम-प्रतिष्ठा की स्थापना कर समस्त श्रमशक्ति का सदुपयोग करना हो, तो सभी को यह मान्य कर लेना चाहिए कि 'जो जोते, जमीन उसीकी।' बिना इसके ठीक-ठीक खेती का श्रम हो ही नहीं सकता। सारांश, जमीन सबकी हो जाय और सभी उसकी श्रमपूर्वक सेवा करें। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि 'खेतीयोग्य परिश्रम की दृष्टि से कोई भी भूमिहीन न रहे' इतने भर से काम न चलेगा। कारण,

भूमि-हीन के पास खेती के साधन भी तो नहीं होंगे। अतः श्रम के लिए साधन-हीनों को बैल, हल, औजार एवं अन्य वस्तुएं सुलभ करा देनी पड़ेंगी।

गाँवों में पक्के माल का भी श्रम

खेती के श्रम के साथ ही गाँव के सभी लोगों को वर्ष भर काम देना हो और श्रम के बल पर ही गाँव की सभी आवश्यकताएं पूरी करनी हों तो गाँव में उत्पन्न कच्चे माल से वहीं पक्का माल भी बनाना होगा। यदि कच्चे माल से पक्का माल बनाने का श्रम गाँव से बाहर चला जाय तो भी गाँव टिक नहीं सकता। गाँव में रुई पैदा हो तो उसकी सफाई, धुनाई, सूत-कताई और बुनाई का सारा श्रम भी गाँव में ही हो। गन्ना पैदा हो तो उससे गाँव में ही गुड़ बनाया जाय। तिलहन पैदा हो तो गाँव में ही उससे तेल पेरा जाय। धान हुआ तो उसकी कुटाई भी गाँव में ही हो। गाँव का अन्न घर की चक्की पर पीसा जाय। गाँव में ही दूध से घी बनाया जाय। मरे जानवरों की चमड़ी पकाकर उससे जूते और उनकी हड्डियाँ पीटकर खाद भी गाँव में ही बने। कपड़े सीने का श्रम भी गाँव से बाहर चलना ठीक नहीं। गाँव में औषधि भी बनायी जाय। खपरैल, ईंट, मटके और मिट्टी का उद्योग भी गाँव में ही हो। सारांश, दैनिक जीवन के लिए आवश्यक जितने भी उद्योग हों, सब-के-सब गाँवों में ही किये जायं। गाँव का सारा कच्चा माल गाँव में ही पक्का बनकर निकलना चाहिए। तभी गाँव सुखी, स्वतन्त्र और स्वावलम्बी हो सकेगा।

जिस तरह अधिकतर सभी जीवनोपयोगी वस्तुओं का श्रम

गाँव में होना जरूरी है, उसी तरह गाँव के सभी श्रमों को समान प्रतिष्ठा भी देनी आवश्यक है। पर आज यह कहीं नहीं दीखता, फलस्वरूप गाँव के महत्त्व के श्रमों का ह्रास होता जा रहा है। चमार का व्यवसाय और भंगी का काम नीच माना जाता है। उनकी पूरी-की-पूरी जातियाँ अस्पृश्य समझी जाती हैं। किन्तु श्रम-प्रतिष्ठा और मानवता की दृष्टि से यह घोर अन्याय है। इसलिए 'सभी मनुष्य और सभी उद्योग समान हैं' यह सिद्धान्त आचरण में उतारना पड़ेगा। इतना ही नहीं, नीच माने जानेवाले भंगी जैसे काम सभी द्वारा करने की प्रथा जारी कर देनी होगी।

श्रम में स्त्री-पुरुष भेद नहीं

श्रमनिष्ठा में बाधक एक बात और है वह यह है कि कतिपय श्रम केवल स्त्रियाँ ही करें। खाली बैठे रहने पर भी पुरुष स्त्रियों के वे काम कभी न करेगा। बीमार होने पर भी उस बेचारी को किसी तरह वह श्रम करना ही पड़ेगा। सभी समाजों में यह एक प्रथा-सी बन गयी है। पर यह अत्यन्त घातक है। समाज में से यह भावना या मान्यता सर्वथा नष्ट होनी चाहिए कि 'पीसना-पछोरना या रसोई बनाना एकमात्र स्त्रियों का काम है, और यदि पुरुष उन कामों में लग जाय तो मानो स्त्री बन गया और उसके लिए यह हीनता की बात होगी।' वास्तव में कोई पुरुष हरगिज इन कामों को हीन न समझे। हरएक पुरुष यह काम करना जाने तथा इनमें भी सदा भाग लेता रहे। कई जगह सूत कातना भी स्त्रियों का ही काम माना जाता है। सचमुच पुरुषों का स्त्रियों के

काम करने में अपनी तौहीन समझना मातृत्व-शक्ति का अक्षम्य अपराध है।

इतना ही क्यों, स्त्रियों को मजदूरी भी पुरुषों से कम दी जाती है। यह सच है कि स्त्रियाँ मेहनत का काम पुरुषों जितना नहीं कर पातीं, फिर भी लगातार मजदूरी में जुटकर आस्थापूर्वक काम करने में पुरुष उनसे पिछड़ ही जाते हैं। इस दृष्टि से स्त्रियों को कम मजदूरी देने और उनके श्रम को कम मानने की विषमता भी अक्षम्य है। वह सर्वथा नष्ट होनी चाहिए। अधिक क्या, इस बारे में अब तक उनके साथ हुए अन्याय एवं उनकी श्रमसम्बन्धी अटूट आस्था पर ध्यान देते हुए स्त्रियों को पुरुषों से कुछ अधिक मजदूरी देना भी अनुचित न होगा।

यन्त्रों के प्रयोग में विवेक

श्रम-निष्ठा में कमी और देश के महत्त्वपूर्ण उद्योगों के नष्ट होने का एक और बड़ा कारण भौतिक शोधों से आविष्कृत यन्त्रों का अविवेकपूर्ण उपयोग भी है। कपड़े की बुनाई, चावल की कुटाई, बिनौले की चुनाई, तिलहन की पेराई, आटा पिसाई आदि उद्योग यन्त्र द्वारा ही करने की प्रथा-सी चल पड़ने के कारण देश में आज हजारों व्यक्ति बेकार हो गये हैं। यदि यन्त्रों से मानव बेकार और पराधीन बनता हो तो वे उसका श्रम बचानेवाले या पोषक न होकर स्पष्टतः मानव-शोषक ही माने जायंगे, इसमें लेशमात्र भी शंका नहीं है।

आम तौर पर ये यन्त्र तीन तरह के होते हैं: (१) गत्युत्पादक, (२) अत्युत्पादक और (३) विनाशक। रेल, मोटर,

जहाज आदि संचार-साधन या टेलीफोन, रेडियो आदि यन्त्र किसी तरह का उत्पादन नहीं करते। वे केवल इधर से उधर जाने-आने में उपयोगी हैं। यात्रा में विशेष गतिमात्र पैदा करते हैं। ये गत्युत्पादक साधन देश के लिए आवश्यक हैं। फिर भी ध्यान रहे कि कहीं इनके कारण भी मानव कमजोर न हो जाय। इसीलिए उठते-बैठते इनका भी उपयोग ठीक नहीं। यहाँ यह विवेक करना होगा कि पास ही में आना-जाना हो तो पैदल चलें, और आस-पास के गाँवों से यातायात करना हो तो बैलगाड़ी का ही उपयोग करें।

इसी तरह अत्युत्पादक यन्त्रों के बारे में भी यह विवेक रखना होगा कि यन्त्रों से पक्के माल का अधिक उत्पादन तो हुआ, लेकिन लोग बेकार हो जायँ तो वह हमारे किसी काम का नहीं। इसके सिवा अत्युत्पादक यन्त्रों के कारखाने मानव की आजादी छीन लेते हैं। नियत समय पर पहुँचने और अपने अधिकारी को खुश रखने की बला भी उसके पीछे लग जाती है। वहाँ न तो खुली हवा मिलती है, और न घरेलू वातावरण ही। सन्त कबीर कपड़ा बुनते-बुनते उपदेश देते और कविताएँ भी रचते रहे—

झीनी झीनी हो बीनी चदरिया !
आठ कमल दल चरखा डोले
पाँच तत्व गुन तीनी चदरिया !......

यह शुभ संस्कृति केन्द्रित-यन्त्रोद्योग में संभव कहाँ ? नित्य उपयोगी अन्न, वस्त्र आदि वस्तुओं के बीच यन्त्रों को ला बैठाना अपने हाथों अपने को पराधीन बना लेना है। हाँ, छोटे-मोटे यन्त्रों की शोध करके इन कामों में कुछ सुलभता लायी जाय तो

कोई हर्ज नहीं। फिर भी यह अवश्य ध्यान रहे कि हस्त-कला, शरीर-श्रम, स्वावलम्बन, घरेलू वातावरण, स्वातन्त्र्य, शुभ संस्कृति–इन सबका उसमें निरन्तर संरक्षण होता रहे। इतना ही नहीं, इन सबकी उत्तरोत्तर वृद्धि भी होती रहे। सारांश, अत्युत्पादक यन्त्रों का नित्योपयोगी वस्तुओं को छोड़कर घड़ी, साइकिल, विभिन्न औजार आदि के निर्माण में उपयोग अनुचित न होगा। किन्तु देश का जीवन बिगाड़नेवाले यन्त्र, श्रम-प्रतिष्ठा की दृष्टि से सर्वथा अयोग्य ही हैं।

विनाशक यन्त्रोत्पादन अनावश्यक

तोप, बन्दूक, बम के कारखाने जैसे विनाशक यान्त्रिक साधनों की मानव को कतई जरूरत नहीं है। निश्चय ही इनके लिए श्रम करना उसका अपव्यय ही है।

पूछा जा सकता है कि जब तक सभी राष्ट्र, विशेषकर पड़ोसी राष्ट्र इन विनाशक यान्त्रिक साधनों के निर्माण से विरत नहीं होते, तब तक हम इनका निर्माण बंद कर दें तो काम कैसे चलेगा? आधुनिक युद्ध का सीधा अर्थ यह है कि जब युद्ध प्रत्यक्ष युद्ध के रूप में न चल रहा हो, अर्थात् जब आत्म-संरक्षण या चढ़ाई की तैयारी के लिए लड़ाई न हो, तब विनाशक श्रम द्वारा विधायक श्रम नष्ट करते जायँ और प्रत्यक्ष लड़ाई शुरू हो जाने पर विनाशक श्रम से बनी हुई यह सामग्री ही एक-दूसरे के ऊपर फेंककर नष्ट की जाय तथा रहे-सहे जीवन के विधायक साधन भी नष्ट कर दिये जायं। इसलिए यदि अन्य राष्ट्र ये विनाशक प्रयास अपनायें और हम भी इसमें उन्हें मदद दें तो वह कभी

उचित नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत हमें अपनी रचनात्मक शक्ति ही बढ़ानी चाहिए और उसीमें सारी बुद्धि लगानी चाहिए। श्रम के आधार पर खड़ी हमारी समाज-रचना ऐसी हो कि विनाशक शस्त्रों के बल पर आक्रमण करके आक्रामक हमसे कुछ भी लाभ न उठा सकें।

श्रमनिष्ठा का अन्तिम लक्ष्य

वस्तुतः श्रमनिष्ठा का राष्ट्रीय, मानवीय, मौलिक, व्यापक और उदात्त लक्ष्य यही है कि अपने राष्ट्र में और विश्व भर में ऐसी स्वावलम्बी, सत्याग्रही श्रमशक्ति पैदा हो, जो किसी भी प्रकार के विनाशक आक्रमण का मुकाबला करने में पूर्ण सक्षम रहे। जिस तरह कोई भी व्यक्ति हिमालय जैसे पर्वतराज के विरुद्ध आक्रमण करने की कभी नहीं सोचता, उसी तरह स्वावलम्बी और रचनात्मक श्रमनिष्ठ समाज के विरुद्ध लड़ाई लड़ने की पहले तो किसीकी इच्छा ही न होगी और यदि हुई भी तो बारबार वह उसमें असफलता पायेगा और अन्त में भस्मासुर की तरह स्वयं ही भस्म हो जायगा। यही श्रमनिष्ठ समाज के अन्तिम उत्कर्ष की स्थिति है।

सच्ची उच्च संस्कृति

आजकल उच्च संस्कृति की यह कल्पना पेश की जाती है कि 'यन्त्रादि की सहायता से जहाँ तक हो सके, कम-से-कम श्रम कर शेष समय में नाच, गाना, अभिनय, चित्र आदि कलाओं में मानव-जीवन बिताया जाय।' किन्तु श्रम-प्रधान जीवननिष्ठा में उच्च

संस्कृति की कल्पना इस तरह जीवन के खण्ड-खण्ड कर के नहीं की गयी है। श्रम करता हुआ ही हमारा कृषक तुकाराम के 'अभंग' और तुलसी के 'दोहे-चौपाइयाँ' गायेगा। आटा पीसते समय चक्की (के स्वर) पर ही 'मोरोपन्त' (मयूर कवि जो, मराठी के बहुत प्रसिद्ध आर्यादि संस्कृत गीतिकाव्यकार हो गए हैं) के सीता-गीत, सावित्री-गीत गाये जायंगे। ग्रामोद्योग की यही तो खूबी है कि उसमें संस्कृति मिलाकर सुलभता से काम किया जाता है। किन्तु यन्त्रोद्योग में—तीव्र एकांगी काम में यह संभव नहीं।

उच्च संस्कृति का यह मतलब नहीं कि इन्द्रियों के सभी अरमान या चोंचले पूरे किए जायँ। नाचना, गाना, अभिनय करना या चित्रकला कितनी भी बढ़ जाय, पर यह सब उच्च संस्कृति की ही द्योतक होगी, ऐसी बात नहीं। काम के समय के बाद का अध्ययन, संगीत, भजन, ग्रन्थ-लेखन आदि करने में हर्ज नहीं, उसमें कोई बुराई नहीं है; पर यदि यह अवस्था हो कि 'कब काम खत्म हो और कब हम सिनेमा जायँ'—तो वह 'नीच संस्कृति' ही कही जायगी।

जिस तरह किसी फल में माधुर्य, सौन्दर्य, तुष्टि आदि सब तत्त्व अनजाने मिले रहते हैं, ठीक उसी तरह श्रमप्रधान जीवन निष्ठा में श्रम के साथ ही उच्च संस्कृति के सभी गुण मिले-जुले होते हैं। मार्के की बात यह है कि इस श्रमप्रधान जीवन-निष्ठा में उच्च संस्कृति की वह हास्यास्पद खण्डित कल्पना नहीं, जिसमें यह बताया गया हो कि 'पहले आटे की फंकी मारो, फिर घी पियो, अन्त में चीनी चाटो और बस, लड्डू खाने का आनन्द मान लो!'

दूसरा प्रकरण

[दान-सम्बन्धी विवेचन]

दान, मानवता और देवत्व

अब तक के विवेचन से श्रमसंबंधी कल्पना स्पष्ट हो गयी होगी। अब 'दान' शब्द पर ध्यान दीजिए। 'दान' का अर्थ है, देना। 'देना' एक सीधी-सी क्रिया है, पर इसमें मानव की मानवता भरी हुई है। पशु तो देना जानता ही नहीं। वह दूसरे का लेना चाहता है। सारांश, दूसरे को देना यह क्रिया बिल्कुल साधारण होती हुई भी, चूँकि इसमें ममत्व के त्याग की भावना भरी है, इसलिए यह पशु द्वारा न हो सकनेवाली क्रिया है।

'दानेन पाणीर् न तु कंकणेन'

अर्थात् सोने के कंगन से हाथ की शोभा नहीं, वह हाथ के लिए बोझ ही होगा। हाथ की सच्ची शोभा तो दान ही है। दान मानवता का अलंकार है। उसका हाथ को भार कभी नहीं होता, उससे सभी के आभार ही मिलते हैं और मानवता का बोझ मिट जाता है।

मानव की यह दान-वृत्ति बढ़ते-बढ़ते जब अखण्ड जीवन-वृत्ति बन जाती है तब उसमें मनुष्यत्व के ऊपर का देवत्व पैदा हो जाता है। 'देव' का अर्थ है—निरन्तर देनेवाला। इसके विपरीत यदि उसमें लगातार पशुता बढ़ने लगे और दूसरे से

छीन-झपटकर उसे सदा अपने ही पास बनाये रखने की वृत्ति पैदा हो तो उसमें 'राक्षसत्व' उत्पन्न हो जाता है। राक्षसत्व का अर्थ है—न देनेवाला, निरन्तर सहेजकर रखनेवाला।

सोचने की बात है कि मानव कितना ही दान क्यों न दे, तो भी क्या उसके उस दान को उस पैमाने पर देना कहा जायगा, जिस पैमाने पर वह इस सृष्टि से, अपने पूर्वजों से, माता-पिता, इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धव, गाय-बैल सबसे नित्य लेता रहता है? देने का एक अर्थ 'लिए हुए का लौटाना' भी है और वास्तव में वह ठीक भी है। जो कभी पूरा चुकता नहीं हो सकता, दान में उसे चुकता करने (लौटाने) का विनम्र यत्न छिपा हुआ है।

समाज में सदा दान-प्रवाह बहे

यह दान सभी पर लागू है। इसीलिए यह व्यक्तिगत न होकर सारे समाज में फैलाने की वस्तु है। नदी का जल बराबर आता-जाता (बहता) रहता है। इसी तरह चूँकि हमारा समाज से लेने का क्रम बराबर जारी है, इसलिए हमें समाज को देने का क्रम भी (प्रवाह) चालू रखना चाहिए। ध्यान रहे कि हर नदी प्रवाह से ही शुद्ध रहती है। यदि उसका बहना बन्द हो जाय तो वह शुद्ध नहीं रह सकेगी। उसमें गड्ढे हो जायँगे और उसमें गन्दगी और अशुद्धता ही बढ़ेगी। इसी तरह समाज में भी यदि दान का प्रवाह न रहा तो सामाजिक जीवन में सड़न पैदा हो जायगी। इसीलिए वहाँ दान-गंगा निरन्तर बहती और बढ़ती रहे। यही कारण है कि शंकराचार्य ने क्षत्रिय गुणों यानी समाज-

रक्षण के गुणों में दान का यह स्पष्टीकरण किया है—'दानं देयेषु मुक्तहस्तता' अर्थात् खुले हाथों देना ही दान है।

दानकी सर्वोच्च भूमिका अहन्ता-दान

गंगा आगे बढ़ती-बढ़ती अन्त में समुद्र में इस तरह जा मिलती है कि वह स्वयं भी शेष नहीं रह जाती। उसी तरह दान भी देते-देते अन्त में स्वयं दाता ही दे दिया जाता है। यों तो सागर में असंख्य गागरें भरी हैं, पर यहाँ दाता के दिए जाने का मतलब 'गागर में सागर को समा लेना' है। यह दान पूर्ण अहंता का दान है। किसी वस्तु में अपना जो ममत्व होता है उसे त्याग देना, उस पर से अपना स्वामित्व विसर्जन करना ही दान है। ममता का यह दान करते-करते किसी समय अहंता का भी दान हो जायगा। यही दान की सर्वोच्च कल्पना है। जिस तरह श्रमनिष्ठ जीवन की सर्वोच्च कल्पना यह है कि 'उस (श्रमनिष्ठ) पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता और न श्रमनिष्ठ ही किसी पर आक्रमण करेगा' उसी तरह दान की भी सर्वोच्च कल्पना यह है कि 'दाता पर ममता-अहंता का आक्रमण न हो और न दाता ही ममता-अहंता पर आक्रमण करे।' मतलब यह कि न तो दाता कभी ममता-अहंता के पीछे लगेगा और न अहंता-ममता ही दाता के पीछे लगेगी। दान की यही सर्वोच्च अवस्था है।

दान में वस्तु से 'वृत्ति' महत्त्वपूर्ण

यही कारण है कि दान में 'कितना दिया गया' यह मुख्य नहीं, 'किस वृत्ति या भावना से दिया गया' इसी का महत्त्व है। एक

गरीब के पास बहुत ही कम जमीन थी। उसने भूदान-यज्ञ में उसमें से आधी दान कर दी। जब उससे पूछा गया कि 'तुम्हारे पास तो किसी तरह गुजारे भर की जमीन थी, तुम्हें भूदान में उसे देने की क्या आवश्यकता थी?' तो उसने कहा—'क्या गरीब पुण्य न करें, केवल श्रीमान् ही पुण्य कर सकते हैं?' सचमुच यह भूदान करनेवाला लाखों एकड़ भूमि देनेवाले श्रीमानों, राजे-रजवाड़ों से कहीं अधिक श्रीमान् है, इसमें कोई सन्देह नहीं। कारण उसके पास दिल की अमीरी है।

दान देने से जहाँ वस्तु संचित होकर निरुपयोगी पड़ी रहने से बचकर समाज के काम आती है, वहाँ सम्पत्ति बढ़ती भी है और उसके कारण समाज से दरिद्रता भी दूर हो जाती है। साथ ही दाता की संकुचित वृत्ति नष्ट हो कर उसका हृदय विशाल हो जाता है। फलस्वरूप समाज अन्तर्बाह्य ऐश्वर्य से युक्त होने लगता है।

दान में यह कंजूसी कभी नहीं रहती कि 'अमुक के पास अधिक धन है तो उसे हम क्यों न ले लें?' या 'अमुक इतनी अधिक वस्तुओं का उपयोग क्यों करे?' इसके विपरीत दान में ऐश्वर्य की यह भूमिका पायी जाती है कि 'मेरे पास जो कुछ है, उसे सबको किस तरह बाँट सकूँ?' दान में यह भी वृत्ति नहीं रहती कि 'अमुक के पास अमुक वस्तु है, तो उसे छीनकर सबको कैसे बाँटूँ?' इसी तरह दान में यह कल्पना भी नहीं है कि 'अमुक के पास अमुक वस्तु की बहुतायत है, फिर भी वह उसे नहीं देता तो उसे किसी तरह देने के लिए विवश किया जाय!' वहाँ तो न देनेवाले को अपना बना लेना और अपना विचार उसे भली-भाँति समझा देना ही मुख्य माना गया है। जब वह हमारा बनकर

हमारे विचार का कायल हो जायगा तो फिर वह कभी भी अपने पास आवश्यकता से अधिक रख ही नहीं सकता।

विचार और भावना का दान

आखिर हमारा दान का विचार दूसरों की समझ में क्यों नहीं आता? कारण स्पष्ट है। हमारे विचार में ताकत नहीं। यदि विचार के पीछे आचार, भावना, बोध, तपस्या और शुद्धता की प्रचण्ड शक्ति हो तो निश्चय ही हमारा विचार दूसरों की समझ में आकर रहेगा। भला, सूर्य-प्रकाश में कभी अन्धेरा टिक सकेगा? कारण सूर्य के पास प्रकाश की प्रचण्ड शक्ति जो है!

दान में वस्तु मुख्य न होकर अन्तःकरण ही मुख्य है। दान से बुद्धि और अन्तःकरण की परम शुद्धि और विकास ही अपेक्षित होता है। इसीलिए शक्तियुक्त विचार-दान की तरह ही भक्ति-युक्त भावना-दान भी सर्वश्रेष्ठ दान है। समाज में श्रेष्ठ या उच्च भावनाओं का निर्माण और श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों को बद्धमूल करना ही भावना-दान है। यह भावना-दान बड़े पैमाने पर तभी हो सकता है; जब कि व्यक्ति की भावना विशाल, उच्च और गंभीर हो।

इसीलिए स्पष्ट है कि दान में क्षुद्र मनोवृत्ति कभी भी गवारा नहीं की जा सकती। यदि कोई अपने नाम के लिए दे, तो कहना होगा कि देने और लेनेवाले दोनों ही दान का मर्म कतई नहीं जानते। वह दान 'हीन-दान' ही कहा जायगा। कुछ लोग कहते हैं कि 'यदि कोई किसी इमारत पर अपना नाम रखना चाहता है और उसके बदले में लाख रुपया देना चाहता है तो उसे लेने में हर्ज ही क्या है? आखिर इस तरह बैठे-बैठाये एकदम इतने रुपये

कहाँ से मिलेंगे? लोक-सेवा के काम तो आयेंगे?' किन्तु इन लाख रुपयों का लोक-सेवा में व्यय होने की बात गलत है। ऐसा कहने में वास्तविक लोक-सेवा-वृत्ति नहीं है। अवसरवादिता से लोक-सेवा कभी नहीं हुआ करती। कितने तो इससे भी दो कदम आगे बढ़ कर कहते हैं कि 'सेठजी! इतने रुपये दे दीजिए, आपका नाम हो जायगा।' पर ध्यान रहे कि नाम का प्रलोभन देकर किसी तरह लोक-सेवार्थ पैसे उगाहना लोकसेवक की क्षुद्रवृत्ति ही मानी जायगी। यहाँ साधन की शुद्धि नहीं है।

सात्विक दान ही दैवी वस्तु

इसीलिए गीता में दान के तीन भेद बताकर उनमें सात्विक दान को ही ग्राह्य और राजस-तामस दान को त्याज्य बताया गया है। वहाँ सात्विक दान का लक्षण बताया गया है:

'दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्॥'

—गीता १७।२०

अर्थात् योग्य देश यानी योग्य कार्य में, उचित समय में जो उत्तरोत्तर पुण्य प्रेरणा का बीजारोपण करता रहे, ऐसे सुयोग्य व्यक्ति को कर्तव्य-भावना से किसी भी प्रकार के प्रत्युपकार की अपेक्षा न करते हुए, जो दिया जाता है, वह सात्विक दान है।

इस सात्विक दान का लक्ष्य समाज में दैवी भाव का निर्माण करना है। इसीलिए शंकराचार्य ने दैवी भाव या दैवी गुणों के अन्तर्गत दान का यह स्पष्टीकरण किया है—'दानं यथाशक्ति संविभागः' अर्थात् दान का अर्थ है, समुचित विभाजन। समाज में

जो अनुचित विभाजन हो, विषमता आ गयी हो, उसे मिटाने के लिए समुचित विभाजन करना दान की प्रक्रिया है। जहाँ विषमता आये और अनुचित विभाजन हुआ हो, वहाँ दैवी भाव रह ही नहीं सकता। सारांश, दैवी संस्कृति की स्थापना के लिए दान या सम्यक् विभाजन अत्यन्त आवश्यक है और वह अहिंसा द्वारा भलीभाँति होना चाहिए। इसलिए दान का यह नित्य-सूत्र होना चाहिए—'दानं सम्यक् विभाजनम्, सम्यक् प्रकारेण', कारण 'येन केन प्रकारेण' सम्यक् विभाजन हो ही नहीं सकता।

दान से सामाजिक कमी की पूर्ति

दान के विषय में 'गीता-प्रवचन' में पूज्य विनोबाजी ने काफी विवेचन किया है। यज्ञ से सृष्टि की, दान से समाज की और तप से शरीर की कमी पूरी करने का यत्न किया जाता है। इसीलिए साधक के लिए गीतोक्त यह त्रिविध कार्यक्रम बताया गया है। इसीलिए यह दान नैमित्तिक न होकर नित्यकर्म है, यह बात इस विवेचन से स्पष्ट हो जाती है। इस पर सहज ही प्रश्न उठता है कि फिर नैमित्तिक और धार्मिक रूढ़ि के दान या किसी समय गरीबों को दिये जानेवाले दान की क्या व्यवस्था होगी? इस पर यही कहा जायगा कि उसके लिए दानखण्ड (हेमाद्रि), दानमयूख, दानचन्द्रिका, दाननिरूपण आदि अनेक ग्रन्थ बने हैं। हेमाद्रि के 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' में 'दानखण्ड' नाम का एक स्वतंत्र प्रकरण है। किन्तु स्पष्ट है कि सर्वोच्च दान-कल्पना की दृष्टि से ये सभी दान गौण हैं। सामाजिक क्रान्ति की

दृष्टि से भी इनका बहुत ही कम प्रभाव पड़ता है, यद्यपि समाज में इस प्रकार के दानों का परिणाम या प्रभाव कम नहीं दीखता। इसीलिए 'मधुकर'[1] के प्रसिद्ध लेख 'दान और त्याग' में पूज्य विनोबाजी ने गरीबों को दिए जानेवाले नैमित्तिक दान को ऊपरी मरहम पट्टी और त्याग को खाने की दवा कहा है। सचमुच ही आज कर्मकाण्डोक्त दान को नयी प्रेरणा देना अंत्यावश्यक हो गया है।

दान में दाता-प्रतिग्रहीता का वर्गभेद नहीं

जैसे दान देना कर्तव्य है, वैसे ही उसे लेने में भी क्या दीनता या लज्जित होने का भाव है? यह एक बड़े महत्त्व का प्रश्न है। वास्तव में जो भूमिदान ले, वह समाज का प्रतिनिधि बनकर ही उसे ग्रहण करे। तब उसमें वह जो पैदावार करेगा, सारी उसीकी न होकर उसमें समाज का भी कुछ भाग नियत रहेगा। इस दृष्टि से देखा जाय तो जैसे योग्य दान देना बड़प्पन न होकर कर्तव्य ही है, ठीक वैसे ही उसका लेना भी दीनता न होकर कर्तव्य ही सिद्ध होगा। इसके विपरीत अपने पास अयोग्य रीति से अधिक जमीन, अधिक साधन-सम्पत्ति जमाये रखने का पाप दान से धुल जाता है, और दान लेनेवाले ने तो यह पाप ही नहीं किया है। अतः उसके दान लेने में किसी भी तरह की मानहानि नहीं है। वह उसका हिस्सा ही है।

---

१. 'मधुकर' प्रकाशक—ग्राम सेवा मंडल, गोपुरी, वर्धा

साथ ही दान लेनेवाले को भी दान से वंचित न रहना चाहिए। इसीलिए जैसे दान लेनेवाला ब्राह्मण और उसे देने-वाले क्षत्रिय आदि इस प्रकार दो वर्ग बन गए हैं, वैसे ही 'दान देनेवाले' और 'लेने वाले' इस तरह के दो वर्ग बनाने की कल्पना ठीक न होगी। जमीन या अन्य साधनों का दान लेनेवाले दरिद्र से-दरिद्र व्यक्ति को भी दान से कभी विरत न रहना चाहिए। उसे भी यथाशक्ति दान करते ही रहना चाहिए।

तीसरा प्रकरण

[श्रम-दान-सम्बन्धी विवेचन]

श्रमदान सर्वश्रेष्ठ दान

जिस दान में पूर्वोक्त सार्वभौम दानशक्ति निहित है और जो समाज की समस्त साधन-सम्पत्ति, समृद्धि एवं बुद्धि-वैभव का मूल है, वही 'श्रम-दान' है। जिनके पास विशेष बुद्धि है, जमीन और अन्य साधन-सम्पत्ति प्रचुर है, वे तो उन-उन चीजों का दान कर सकेंगे, पर जिनके पास ये चीजें सर्वथा न हों या बहुत ही कम मात्रा में हों, वे किसी भी तरह दान न कर सकेंगे। फलतः दाता और प्रतिग्रहीता (देने और लेनेवाला) ये दो वर्ग बनकर ही रहेंगे। किन्तु यह वर्गभेद न करके भूमि को स्वर्ग बनाने की शक्ति यदि किसी दान में है और वर्गविहीन समाज बनाना है, तो उसका एकमात्र उपाय श्रमदान ही है। इसलिए जिस तरह किसी असाधारण पुरुष द्वारा किया गया विचार और भावना का दान असाधारण होने के कारण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, उसी तरह साधारण पुरुष द्वारा किया जानेवाला श्रमदान भी सार्वत्रिक और मूलभूत दान सर्वश्रेष्ठ दान माना जायगा।

श्रमदान के लिए श्रमशक्ति का संग्रह आवश्यक

इस पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि 'सभी लोग श्रम कहाँ कर सकते हैं? मध्यम और श्रीमान् लोग आज इतनी

गिरी हुई हालत में हैं कि उनसे अन्य दान करते ही नहीं बनता और न श्रमदान ही संभव है; क्योंकि उनसे परिश्रम होता ही नहीं, उनमें श्रमशक्ति का सर्वथा अभाव है। फिर वे श्रमदान कैसे करें?' बात ठीक है। किन्तु श्रमशक्ति से हाथ धोया हुआ व्यक्ति उसे पुनः कमा ही नहीं सकता, ऐसा थोड़े ही है? अभ्यास से श्रम-शक्ति पुनः पायी जा सकती है। वास्तव में प्रत्येक के लिए श्रमशक्ति का अर्जन अनिवार्य है, भले ही कोई श्रीमान् हो या बुद्धिमान्। पूज्य बालकोबाजी वर्षों तक तपेदिक से पीड़ित हो खटिया पर पड़े थे। पर अपनी सतर्कता, अभ्यास और योग द्वारा उन्होंने क्षय-रोग को तो जड़-मूल से मिटा ही डाला, घन्टों घूमने और फावड़ा भी चलाने लग गये। १०-१०, १५-१५ मील की मंजिलें तय करने लगे। उच्च और मध्यम वर्ग के लोग क्षय-रोगी से अधिक कमजोर तो नहीं माने जा सकते। अतः स्पष्ट है कि उनके लिए अभ्यास द्वारा श्रमशक्ति का अर्जन असंभव नहीं।

श्रमदान के प्रकार और विषय

इसके सिवा, श्रमदान में विविधता का अभाव थोड़े ही है। सभी वस्तुओं की तरह उसमें भी हल्का श्रम, मध्यम श्रम और तीव्र श्रम का तर-तम-भाव है ही। सूत कातना हल्का श्रम है। जमीन की खुदाई जैसा तीव्र श्रम करनेवाले के लिए तो वह विश्राम ही मालूम पड़ेगा। इसलिए श्रमदान में वस्तुतः किसीको कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती। केवल श्रमदान की वृत्ति चाहिए।

आज देश में लाखों एकड़ जमीन परती पड़ी है। गोड़ाई कर के उसे खेती योग्य बनाना है। हजारों गाँवों में सड़कें बनानी

हैं। यात्रियों के लिए गाँव-गाँव में चौपाल तैयार करनी हैं। मैले की खाद प्रायः सर्वत्र व्यर्थ नष्ट हो रही है, अतः उसके समुचित उपयोग के लिए गड्ढेवाले पाखाने और बरसात के लिए छाजन-दार पाखाने बनाने हैं। पत्तियों के ढेर के ढेर यों ही व्यर्थ नष्ट हो रहे हैं, उनके उपयोगार्थ जगह-जगह कम्पोस्ट के सैकड़ों गड्ढे बनाने हैं। पाठशालाओं के लिए गाँव-गाँव सैकड़ों छोटी-छोटी झोपड़ियाँ तैयार करनी हैं। छोटी-छोटी नदियों का पानी व्यर्थ बहा जा रहा है, उसे रोकने के लिए छोटे-छोटे बाँध बाँधने हैं। जगह-जगह सिंचाई के लिए कुँएं खोदने हैं। हजारों खेतों में चकबन्दी करनी है। जगह-जगह उपयोगी पेड़ लगाने हैं, सफाईका काम करना है। दलदल प्रदेश में छोटी-छोटी पुलियाँ बनानी हैं। क्या ये सारे काम सरकार कर सकती है? ये काम श्रमदान से ही हो सकते हैं। इन कामों के करते समय गरीब-अमीर, छोटा-बड़ा, शिक्षित-अशिक्षित, सरकारी-गैरसरकारी, स्त्री-पुरुष—सभी प्रकार के भेद भाव भूलने का अवसर और बहुत बड़ा साधन प्राप्त होगा। इससे राष्ट्र कार्य के निमित्त प्रचण्ड श्रमशक्ति का आविर्भाव होगा।

श्रमदान की आचारनिष्ठा

इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि श्रमदान के बारे में बहुत धूमधाम मचायी जाय, उसके फोटो लिए जायं, उस पर बड़े-बड़े भड़कीले लेख लिखे जायं। कितने ही लोग यह समझते हैं कि इससे प्रचार होगा। दूसरों को किसी बात की जानकारी कराने में हर्ज नहीं, परन्तु दूसरे के लिए और केवल प्रचार के लिए हमें श्रमदान नहीं करना है। यह विचर हमें जँच गया है, इसलिए

अपने आचार के लिए, अपने कल्याण के लिए ही श्रमदान करना है। सारांश, समाज में यह अटूट कड़ी बन जानी चाहिए कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को, एक समूह दूसरे समूह को अपने श्रम से सहज ही मदद पहुँचाता रहे।

कुछ आदर्श श्रमदान

विनोबाजी ने श्रमदान के सिद्धान्त पर ही ब्रह्मविद्या की नगरी काशी में 'स्वच्छकाशी'-आन्दोलन चलाकर सबको यह अनुभव करा दिया कि 'सा काशिकाऽहं निजबोध-रूपा।' उत्तर प्रदेश में छात्रों और अन्य लोगों ने श्रमदान द्वारा बहुत से बड़े-बड़े काम किए हैं। महाराष्ट्र में भी सेनापति बापट, गोधड़े-बोवा, तुकड़ोजी महाराज अनेक प्रकार के श्रमदान के आयोजन करते और कराते रहते हैं।

श्रमदान का अन्तिम लक्ष्य

इसी तरह सर्वत्र श्रमदान की ऐसी परम्परा चलती रहे। जैसे शहद की मक्खियों का काम चुपचाप बिना होहल्ले के चलता रहता है, वैसे ही हम भी श्रमदान से ही पृथ्वी, आकाश, चन्द्र, सूर्य, तारागण, वृक्ष, वनस्पति और सारी सृष्टिको मंगलमय बना दें। इसी श्रमदान के सहारे हम समाज में समानता, सामर्थ्य, समृद्धि, सफाई, शुद्धि, बुद्धि, प्रेम, भक्ति और माधुर्य का निर्माण कर सकेंगे। हमारे ऋषिगण भी तो यही प्रार्थना करत हैं—

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

परिशिष्ट--

छोटी खेती का एक सफल अनुभव

[श्री गोविन्द रेड्डी, सेवाग्राम-आश्रम]

सन् '३६ में पू० बापू ने सेवाग्राम को अपना निवास-स्थान बनाया। तभी से आवश्यक अन्नोत्पादन के लिए वहाँ खेती भी शुरू करवायी। जमीन शुरू में कनिष्ठ दर्जे की ही थी। काँस, मोथा आदि घासों से भरी हुई और पान-बसन (पनिहाई) थी। काँस आदि निकालकर, जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर पानी की निकासी के वास्ते प्रबन्ध किया, तब पानबसन थोड़ा कम हुआ। अब जमीन दूसरे दर्जे की बन गयी है। वह काली और सिंचाई के लिए उतनी अनुकूल नहीं है, तो भी सिंचाई करते हैं। सिंचाई के वास्ते पक्की नाली बनायी है।

पू० बापू के बाद आश्रमवाले पू० विनोबाजी से मार्ग-दर्शन लिया करते हैं। विनोबाजी बार-बार कहा करते हैं कि अब आश्रम पैसे के आधार पर नहीं चलना चाहिए। यह बात हम लोग तुरन्त अमल में ला नहीं सके। आखिर ३०-१-'५२ से आश्रम ने तय किया कि वह अपने श्रम पर और फिर भी जरूरत पड़े तो समाज से मिलनेवाले श्रमदान पर ही चलेगा। आश्रम के पास तब ४२ एकड़ जमीन, ६ बैल, ६ गायें थीं। अधिकतर काम नौकरों से ही करा लेते थे। खेती घाटे में तो नहीं रहती थी, फिर भी जैसी होनी चाहिए, वैसी नहीं होती थी। जमीन के अन्दर भरी हुई प्रचंड शक्ति खेती के विस्तार के कारण प्रकट नहीं कर पाते थे। जब इस बात का भान हुआ, तो बड़ी खेती के बजाय खुद जितनी खेती कर सकें, उतनी ही रखने की बात सोची। मई, १९५२ में ढाई एकड़ रखकर बाकी पाँच साल के वास्ते चरखा-संघ को दे दी। चंद महीनों के अनुभव से यह पाया कि बिना अपने बैल के सिंचाई करना असुविधाप्रद है। एक जोड़ी बैल रखने की बात सोची। एक जोड़ी के लिए ढाई एकड़ जमीन कम होती है, इसलिए और ढाई एकड़ जमीन ली। एक जोड़ी बैल के साथ एक गाय भी रखी।

पहले साल ढाई एकड़ में से एक एकड़ में बैल से और डेढ़ एकड़ में हाथ से खेती की। डेढ़ एकड़ में आधा एकड़ सिंचाई बैल से करायी। एक एकड़ में ज्वारी और बाकी जमीन में अन्य अनाज, सब्जी, फल, गन्ना आदि थे। डेढ़ एकड़ में १५ प्लाट बनाये थे। पूरे एक साल में ६०२५ घंटे आदमी के और ४८१$\frac{३}{४}$ घंटे एक जोड़ी बैल के लगे। कभी-कभी निराई आदि काम पूरा करने की जरूरत पड़ती थी, तब बाहर के मजदूरों को भी लगाया। इस तरह ८०० घंटे मजदूरों से लिये। ये घंटे ऊपर के हिसाब में आ गये हैं।

कुल पैदावार पौंडों में इस प्रकार हुई : ज्वारी २२३२, गेहूँ २८७½, धान २४०, दाल ३५३½, तिलहन १६०, गुड़ ६४०, भाजी ६४००, फल २५६०, कपास २४२। रुपयों में कुल आय १२७२ रु० ३ आ० १ पा० की हुई, जिसमें से खेती के लिए खाद, बीज, औषधि और बैल-जोड़ी के किराये के ३९९ रु० तथा ५ आदमियों के धान्य आदि के सिवा अन्य खर्च ७२४ रु० ६ आ० निकाल देने पर आखिरी बचत १४८ रु० १३ आ० १ पा० रही।

योजना का दूसरा वर्ष

सन् १९५३ में पाँच एकड़ की काश्त की गयी, जिसमें मनुष्यों के ११,४०५ और बैलों के १,४९६ घंटे लगे। काश्त की कुल सोलह प्रक्रियाएँ होती हैं। प्रत्येक प्रक्रिया में लगे घंटों की तालिका दी जा रही है।

स्पष्ट है कि बैल की अपेक्षा आदमियों के घंटे जमीन की तैयारी, बोआई, निराई आदि में अधिक लगे। इसका कारण यह है कि कई बार हाथ से जुताई, बौनी और निराई की गयी। हाथ-औजार से गुड़ाई करने से भी आदमी के अधिक घंटे लगे।

प्रक्रियाओं में लगा समय

प्रक्रिया का नाम	आदमी के घंटे	बैल-जोड़ी के घंटे
जमीन जुताई तैयारी	११३४	६६५
बोआई	८४१	८७
सिंचाई	८२९	४२९
निराई	१०५१	—
गुड़ाई	४२५	१७
खाद ढुलाई-फैलाव	४४२	३५
रखवा,ली	११०	—
सार-सँभाल	२८४	—
कटाई	२,५४६	—
गाय-बैल की सेवा	१,७१२	—
कोठार	१५८	—
निरीक्षण	१३६	—
कंपोस्ट	४५१	५८
औजार-मरम्मत	२०५	—

प्रक्रिया का नाम	आदमी के घंटे	बैल-जोड़ी के घंटे
सन् १९५४,७५ की जमीन की तैयारी	४३५	११७
अन्य	६४६	८८
कुल	११,४०५	१,४९६

खाने-पीने की कोई भी चीज बाहर से न खरीदनी पड़े, इस स्वावलंबी दृष्टि से पाँच एकड़ जमीन में अधिक से अधिक जीवनोपयोगी फसलें पैदा की गयीं। तालिका इस प्रकार है:

पैदावार

फसल	मन—सेर	रु० आ०
अनाज	५४—१०	९७८— ८
कपास	२—३०	८३— ०
तिलहन	१५—३०	३५६— ०
गुड़	६— ०	१२०— ०
गन्ना	——	३०९— ०
केले	——	९८— ८
फल	४०— ०	३००— ०
सब्जी	१०६— ०	७९५— ०
मसाले	१— ५	७३— ८
दूध	२९—३०	६२५— ०
कुल कीमत		३७३८— ८

हमारे प्रयोग में इस वर्ष दो कठिनाइयाँ भी रहीं।

१. सन् '५३ में गरमी ११८ डिग्री तक पहुँच गयी थी। इस कारण केला, पपीता, आम आदि की फसल को बहुत नुकसान हुआ।

२. सन् '५३ में वर्षा ३९.९५ इंच हुई। अतः यहाँ की जमीन मशहूर पनिहाई जमीन होने से ज्वारी की फसल मर गयी। ऐसी जमीन के लिए ज्यादा-से-ज्यादा ३० इंच वर्षा पर्याप्त होती है।

परिणाम

१. पाँच एकड़ में जो पैदावार हुई, वह संतुलित आहार तथा प्रति व्यक्ति २५०० क्यालोरी के अनुपात से सात व्यक्तियों के लिए पर्याप्त है।

२. प्रति दिन छह घंटे के हिसाब से पाँच आदमियों ने काम किया है। सात व्यक्तियों को संतुलित आहार मिला है। एक कुटुंब में लगातार काम करनेवाले पाँच व्यक्तियों का मिलना कठिन होता है। ऐसी हालत में छोटी खेती द्वारा एक कुटुंब का संतुलित आहार से जीवन-निर्वाह करना हो, तो काश्त के ढंग को बदलना होगा। बदलने का अर्थ है, दो एकड़ की काश्त में एक परिवार का जीवन-निर्वाह हो। दो एकड़ में छह हजार घंटे श्रम करना होगा। काश्त के लिए छह घंटे मेहनत इसलिए मानी गयी कि कपड़े के लिए कताई तथा पठन-पाठन के लिए भी समय निकालना होता है।

३. काश्त की सभी प्रक्रियाएँ ठीक-ठीक अनुपात में होनी चाहिए, नहीं तो बहुत नुकसान की संभावना रहती है।

४. कृषि-शिक्षण के स्कूल-कॉलेजों में ऐसी व्यवस्था हो कि मौसम के समय छुट्टी रहे और विद्यार्थी किसानों की मदद करें।

५. छोटी खेती में बैल का खर्च नहीं पुसाता। उसके लिए पर्याप्त चारा भी नहीं मिल पाता। सिंचाई की व्यवस्था हो, तो बैल को काम तो मिलेगा, पर चारा पाना कठिन ही है। अतः बैलों का उपयोग सहकारी ढंग से हो।

परिश्रम-निष्ठा का असर

परिश्रम से वंचित रहने से क्या असर होता है, उसकी अपनी ही एक मिसाल देता हूँ।

१९४२ से १९५० के दरमियान जेल और आश्रम में शरीर-श्रम से मैं वंचित रहा, तो एक फर्लांग चलना, एक बाल्टी पानी उठाना तक मुश्किल हो गया था। उसी अवस्था में भगवान् बुद्ध का एक वचन पढ़ा, जो बीमार शिष्य को उन्होंने बताया था : "बीमारी से मुक्ति पाना हो, तो ४०० या ५०० मील पैदल तीर्थ-यात्रा करो या फिर ४०० या ५०० जानवरों को पानी पीने के लिए अकेले ही तालाब खोदो।" इन दोनों के बारे में मैंने बहुत सोचा और १९५० में किसीको न कहते हुए चुपके से पैदल-यात्रा के लिए आश्रम से बाहर निकला। छह माह में १५०० मील घूमा, तब इतनी शक्ति आ गयी थी कि एक दिन में ४० मील तक घूम सका। उसके बाद आश्रम में वापस आया और खेती का काम शुरू किया। भगवान् बुद्ध के दूसरे वचन का, याने खोदने का महत्त्व भी रोजमर्रा देखता हूँ। एक दिन शरीर-श्रम न हो तो बेचैनी-सी होती है।

भूदान-दीपिका

[भूदान-यज्ञ तथा सम्पत्तिदान-यज्ञ का हृदयग्राही विवेचन]

विमला

अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

राजघाट, काशी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ
वर्धा (म. प्र.)

तीसरी बार २०,०००
कुल प्रतियाँ ३०,०००
अगस्त, १९५५
मूल्य : दो आना

मुद्रक :
ओम् प्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय,
बनारस ४७९२–१२

दो शब्द

●

विमलाबहन ठकार एक प्रतिभावान नवयुवती हैं। सुशिक्षित और विदुषी हैं। विदेशों का पर्यटन किया है। भगवद्भक्त हैं। अत्यन्त मीठे भजन गाती हैं। ओजस्वी वक्ता हैं। भूदान-यज्ञ को इनसे जो बल मिला है, वह देश भर में दो-चार से ही मिला होगा। बुद्धिजीवी तथा युवक-समाज को विमलाबहन के भाषणों से विशेष प्रेरणा मिली है।

प्रस्तुत पुस्तिका में विमलाजी का मध्यभारत का एक भाषण छपा है। थोड़े से गंभीर शब्दों में उन्होंने भूदान-यज्ञ तथा संपत्तिदान-यज्ञ का हृदयग्राही विवेचन कर दिया है, और जो साधारण प्रश्न इस संबंध में पूछे जाते हैं उनका समाधानकारी उत्तर दे दिया है। विमलाबहन ने आम सभाओं तथा शिक्षण-शिविरों में अपने दिये हुए भाषणों से हजारों को भूदान-कार्य में सहयोग देने को प्रोत्साहित किया है।

मैं आशा करता हूँ कि इस पुस्तिका द्वारा उनकी प्रेरक वाणी अधिकाधिक व्यक्तियों के हृदय में प्रवेश करेगी।

—जयप्रकाश नारायण

हमारे पास जितनी भी जमीन, संपत्ति, बुद्धि और शक्ति है—वह सब हमें आम जनता के लिए प्राप्त हुई है। ये हमारी निजी संपत्तियाँ नहीं, दैवी संपत्तियाँ हैं, परमेश्वर की देनें हैं। उनका विनियोग जनता की सेवा में करना चाहिए। जिस तरह हम कुटुंब में मिल-जुलकर काम करते हैं, वैसे ही हमें सृष्टि की उपासना करनी है। अपने सुख-दुःख में दूसरों को हिस्सा देना है।...... हमें जो सारी समाज-रचना बदलनी है, उसीका यह श्रीगणेश है। सबका मन समान हो, सबका हृदय समान हो, सबका मंत्र समान हो। इस तरह साम्ययोग की शिक्षा, जो सब महापुरुषों ने हमें दी थी, उसकी प्राप्ति नहीं, साधना करनी है और उसके लिए पहला कदम यह भूदान-यज्ञ है, क्योंकि भूमि सब प्रकार की संपत्ति के उत्पादन का सबसे बड़ा साधन है। उसका सबके काम के लिए, सम्मिलित और संयुक्त उपयोग होना चाहिए—उसमें किसीको कम या अधिक अधिकार नहीं होना चाहिए।

—विनोबा

भूदान-दीपिका

किसीका अनुवाद-प्रतिवाद नहीं

भूदान-आन्दोलन स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद इस देश में से गरीबी और अमीरी के निराकरण के लिए अहिंसा और सत्याग्रह की नीति पर अधिष्ठित एक शानदार इन्कलाब है। हिन्दुस्तान में घूमते हुए मैंने यह अनुभव किया है कि हिन्दुस्तान के सुशिक्षित लोग भी अब तक इस आन्दोलन की महानता को नहीं समझ पाये हैं, न सोचने के लिए फुरसत ही निकाल पाये हैं। वे समझते हैं कि यह आन्दोलन गांधीवाद का समर्थन करनेवाला आन्दोलन है; साम्यवाद को टालनेवाला, साम्यवादी क्रांति को रोकनेवाला आन्दोलन है। कुछ व्यक्ति समझते हैं कि दान-धर्म के नाम पर महज जमीन बटोरने और बाँटने का एक आन्दोलन है। मैं आप लोगों से निवेदन करने आयी हूँ कि यह आन्दोलन न तो किसी वाद का अनुवाद है और न किसी वाद का प्रतिवाद ही।

भारत की मिट्टी का माकूल जवाब

यह आन्दोलन सिर्फ जमीन बटोरने का आन्दोलन नहीं है। आज हमारे देश के सामने जो मूलभूत समस्याएँ खड़ी हैं, उनको सुलझाने के लिए भारत की इस धरती में से निकला हुआ एक माकूल जवाब है। विनोबाजी कितना ही महान् व्यक्तित्व रखने-वाले सत्पुरुष क्यों न हों, यदि उनका विचार हमारी राष्ट्रीय समस्याओं के साथ कुछ अनुबंध न रखता, उसके पीछे परिस्थिति

में आकांक्षा और आवश्यकता न होती, तो वह विचार समस्त देश को अनुप्राणित न कर पाता और वह बिजली वायु-मंडल में नहीं दौड़ा पाता, जो इधर दो-ढाई वर्षों से उसने इस देश में फैलाई है।

समस्या का त्रिविध स्वरूप

हमारी राष्ट्रीय समस्या का रूप त्रिविध है। उसका राजनैतिक स्वरूप यह है कि सियासी आजादी हासिल करने के बाद हम लोगों ने जान-बूझकर, सोच-समझकर, प्रातिनिधिक लोकसत्ता का निर्माण किया, जनतंत्र का निर्माण किया। यह जनतंत्र हम किस प्रकार सुरक्षित और साबित रखें, यह इस मुल्क के सामने आज बड़ी गंभीर समस्या है। संसार में जनतंत्र के सबसे बड़े हिमायती इंग्लैंड और अमेरिका जैसे देश आज जनतंत्र को न सुरक्षित पाते हैं, न साबित रख सकते हैं। साबित इसलिए नहीं रख सकते कि वहाँ पर गरीबी और अमीरी का अन्त वे जनतंत्र की मार्फत कर नहीं पाये हैं। साबित इसलिए भी नहीं रख पाते कि लोगों की व्यवस्थाओं में जो स्वार्थों का विरोध होता है, उसका परिहार वे कर नहीं पाये। सुरक्षित वे इसलिए नहीं समझते हैं कि जब तक गरीबी और अमीरी रहेगी, तब तक जनतंत्र एक कागजी जनतंत्र (Formal Democracy) के रूप में रहेगा और उसको जनतंत्र का वास्तविक स्वरूप प्राप्त नहीं हो सकता। जनतंत्र को सुरक्षित रखने के लिए आज उस देश के नेताओं को साम्यवाद के विरोध का एक हौआ जनता के सामने खड़ा रखना पड़ता है। जिन देशों में गरीबी का निराकरण हुआ, आर्थिक विषमता का निराकरण हुआ, उन देशों में जनतंत्र बच नहीं पाया। जनता को जनतंत्र से हाथ धोना पड़ा। संसार के दार्शनिकों की आज यही धारणा हो गयी है कि जनतंत्र की मार्फत

आर्थिक विषमता का निराकरण होना असंभव है। युग का यह हमें आह्वान है, जमाने की चुनौती है। क्या भारतवर्ष जनतंत्र की मार्फत गरीबी-अमीरी को मिटा सकेगा—जनतंत्र के संदर्भ में अन्याय और शोषण को हटा सकेगा ? मैंने राजनैतिक पहलू के साथ-साथ उसका अविभाज्य आर्थिक पहलू भी संक्षेप में यहाँ रख दिया। जाहिर है कि गरीबी-अमीरी नहीं मिटेगी और अन्याय-शोषण नहीं रुकेगा; जब तक जनतंत्र सुरक्षित नहीं है। हमको जनतंत्र सुरक्षित रखना है। जनतंत्र की मार्फत गरीबी-अमीरी को हटाना है। इसी समस्या का सांस्कृतिक पहलू यह है कि गरीबी और अमीरी को मिटाने के लिए किसी ऐसी प्रक्रिया का हमको प्रयोग करना पड़ेगा, जिस प्रक्रिया में मानव का मूल्य सुरक्षित रहेगा, इंसानियत को हम बचा सकेंगे।

नयी प्रक्रिया की प्रतीक्षा

आज तक संसार में जितनी क्रांतियाँ हुई, जैसा कि उन क्रांतिकारियों का दावा रहा, उन क्रांतियों में सामाजिक परिवर्तन के लिए, समाज के ढाँचे को बदल देने के लिए, इन्सान की बलि दी गयी, मनुष्य की हत्या की गयी, विराट् परिमाण में मानव का खून बहाया गया। आज संसार क्रांति की ऐसी प्रक्रिया की प्रतीक्षा में है, जिसमें समाज-परिवर्तन के साथ-साथ व्यक्ति के जीवन में परिवर्तन होगा, राजी-खुशी से होगा। इतिहास के पन्नों से हमने सीखा है कि जब तक व्यक्ति के जीवन में परिवर्तन स्वेच्छा से नहीं आयेगा, प्रतिक्रांति की जड़ बनी रहेगी और उसका डर सरकार के सिर पर सवार रहेगा।

प्रतिक्रांति की आशंका

छत्तीस-सैंतीस वर्ष पहले रूस में एक महान् प्रयोग वहाँ के क्रांतिकारियों ने किया। क्या वे क्रांतिकारी निर्मम थे ? क्या वे

निर्घृण थे ? क्या उनके हृदय नहीं था ? क्या उनके बाल-बच्चे नहीं थे ? सब कुछ था; लेकिन उन्होंने सोचा कि पहले हम सामाजिक ढाँचे को बदल देंगे, भौतिक परिवर्तन करेंगे और बाद में कानून के सहारे, दंड-शक्ति और शरीर-शक्ति के आश्रय से, मनुष्य के हृदय और बुद्धि को भी बदल सकेंगे। लेकिन बावजूद इसके कि सरकार के इशारों पर साहित्यिक और संगीतज्ञ नाचते रहे, कलाकार और वैज्ञानिक भी खेलते रहे, आज भी रूस की सरकार प्रतिक्रांति के भय से मुक्त नहीं है। बेरिया, मेलेंकोव, मोलोटोव आदि स्टालिन के जीवन-काल में उसके साथी थे, जिम्मेदार ओहदों पर काम करते थे; पर स्टालिन की मृत्यु होते ही चंद महीनों में बेरिया को लोकद्रोही करार दिया गया और अन्त में उसकी हत्या की गयी। जनता का राज्य बने, जनता की सरकार बने और इसके बावजूद प्रतिक्रांति की जड़ बनी रहे, क्या इसको आप क्रांति कहेंगे ?

यथार्थ क्रांति

यदि क्रांति से हमारा मतलब मनुष्य के हृदय और बुद्धि में परिवर्तन करना है, यदि क्रांति से हमारा मतलब सामाजिक जीवन के मूल्यों में ही आमूलाग्र परिवर्तन कर देना है, यदि इन्कलाब से हमारा मतलब इंसान के दिल और दिमाग में जड़-मूल से तब्दीली लाना है, तो स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ, जो व्यक्ति के जीवन में स्वेच्छा से परिवर्तन लावे, ऐसी ही प्रक्रिया अब हम अख्तियार कर सकते हैं। हमारा दावा है कि भूदान-यज्ञ-आंदोलन की प्रक्रिया में इन तीनों कमियों की पूर्ति होती है और आज जो समय का तकाजा है, जमाने की माँग है, उसको हम पूरी कर सकते हैं। विनोबाजी के आंदोलन के पीछे जो ऐतिहासिक आवश्यकता और परिस्थिति की आकांक्षा

है, उसका निवेदन मैंने बहुत ही संक्षेप में यहाँ किया है।

शस्त्र और कानून का रास्ता

शस्त्र-शक्ति के आश्रय से क्रांति हो ही नहीं सकती, यह हमारी मान्यता है; क्योंकि उसमें प्रतिक्रांति का भय बना रहता है और जब तक प्रतिक्रांति का भय बना रहेगा तब तक क्रांति चिरस्थायी और शाश्वत नहीं हो सकेगी। लोग कहते हैं कि शस्त्र-शक्ति का रास्ता छोड़ दीजिये, लेकिन विनोबाजी कानून क्यों नहीं बनवा लेते? विनोबा का सरकार पर तो बड़ा वजन है, गांधीवालों की सरकार बनी है। ये दर-दर घूमने के बजाय, मुट्ठी-मुट्ठी मिट्टी माँगने के बजाय, क्यों नहीं सरकार को मजबूर करते कि वह कानून बनाये और कानून द्वारा ही भूमि का बँटवारा कर ले? क्यों नहीं इस प्रकार सर्वांगीण क्रांति करवा लेते? पर कानून से यदि क्रांति हो सकती तो वह करने के लिए हम तैयार होते।

कानून की मर्यादाएँ

हम कानून के विरोधी नहीं हैं। लेकिन कानून की अपनी मर्यादाएँ हैं, जो हमको ध्यान में रखनी चाहिए। पहली मर्यादा तो यह है कि कानून के लिए एक संदर्भ की आवश्यकता होती है और एक अधिष्ठान भी अनिवार्य होता है। परिस्थिति में संदर्भ और जनता में अधिष्ठान निर्माण करने का यह जो काम है, वह कानून अपने आप नहीं कर सकता। कानून के साथ हमारी पहली दिक्कत यदि कुछ होगी तो वह यही है।

हमारी प्रतिगामी वृत्ति का विनोबा पर प्रहार

सब जानते हैं कि अस्पृश्यता-निवारण का कानून बन गया। लेकिन मैंने देखा है कि अच्छे-अच्छे विद्याधारी, बुद्धिधारी लोगों के घरों में छुआछूत का भाव आज भी बना हुआ है। लेजिस्लेटिव

असेम्बली और कौंसिल के सदस्यों और मंत्रियों के घरों तक में मैंने आज भी छुआछूत का भाव देखा है। यही कारण है कि वैद्यनाथ-धाम में विनोबा-जैसे समस्त मानव जाति के ललामभूत होनेवाले महापुरुष के शरीर पर पंडों की लाठियों का प्रहार हो सका। वह पंडों की लाठियों का प्रहार नहीं था। वह तो, हम लोगों में जो प्रतिगामी वृत्ति है, उस वृत्ति का प्रहार विनोबा के शरीर पर हुआ था। पंडों की लाठियाँ तो निमित्त-मात्र थीं।

एक दृष्टांत : कानून दिल का नहीं

शारदा-कानून बना है कि लड़की की शादी चौदह साल से पहले न हो। बिहार में घूमते समय मैं एक एम० एल० ए० भाई के घर पहुँची। उनकी लड़की की शादी छोटी उम्र में हो गयी। मैंने पूछा, "भाई साहब, आप तो धारा-सभा में बैठते हैं, कानून जानते हैं, भला आपकी लड़की की शादी सात साल की उम्र में हो गयी!" कहने लगे, "बहनजी, कानून तो कागजों पर पड़ा है। हम लोग देहातों में रहते हैं। गाँव है, समाज है, रूढ़ि है, संप्रदाय है, घर में नानी हैं, दादी हैं, परदादी हैं।" कानून जाननेवाले और कानून को माननेवाले भाइयों को यह हालत है कि कानून उनके जीवन में परिवर्तन नहीं ला सका!

जोर-जबरदस्ती से आचरण पर कानून नियंत्रण रख सकता है, मनुष्य के विचार में परिवर्तन करने की शक्ति कानून में नहीं है।

कानून की दूसरी मर्यादा

कानून की दूसरी मर्यादा यह है कि कानून अधिकार तो दे सकता है, लेकिन उस अधिकार के उपयोग की शक्ति वह नहीं दे सकता। स्वतंत्र भारत के संविधान ने स्त्री को नागरिक बना दिया। पुरुष की बराबरी से कंधे-से-कंधा भिड़ाकर राष्ट्र के

नव-निर्माण की जिम्मेदारी उसको सौंपी गयी, लेकिन आज भी राजस्थान, उत्तर प्रदेश और बिहार में परदे की ऐसी घोर प्रथा है कि स्त्रियाँ चहारदीवारी के भीतर गिरफ्तार हैं। क्रांति करने के लिए कानून अपने में समर्थ नहीं है।

तीसरी मर्यादा

एक तीसरी बात और कह दूँ। कानून बनाने के लिए, कानून की रट लगाने के लिए, जनता को हमें सत्ताभिमुख और सत्तापरायण बनाना पड़ेगा। जनता से जाकर यह कहना पड़ेगा कि आपकी सरकार देहली, पटना, ग्वालियर, बम्बई और कलकत्ते में रहती है और आपको जो कुछ चाहिए, सरकार आपको दे देगी। लेकिन हम जनता में इस प्रकार की घोर गलतफहमी नहीं फैलाना चाहते। जनता से हम तो यह निवेदन करना चाहते हैं कि सरकार देहली, पटना, ग्वालियर, बम्बई में नहीं है। सरकार आप ही हैं। पन्द्रह लाख देहातों में रहनेवाले सब व्यक्ति सरकार हैं। देहली, ग्वालियर, पटना में रहनेवाले, बम्बई-कलकत्ता में काम करनेवाले लोग जनता के मुनीम हैं, जनता की इच्छा और आवश्यकता के अनुसार व्यवस्था करने-वाली वह व्यवस्थापिका-समिति है, प्रबन्ध-समिति है।

शासनहीन समाज का आदर्श

आप जानते हैं कि क्रांतिकारियों के सामने जो लक्ष्य है, जिस आदर्श समाज का नक्शा है, उसमें शासनहीन समाज का, राज्य के समाज में विलीनीकरण की अंतिम अवस्था का, चित्र सामने रखा गया है। सर्वोदय-समाज भी शासनहीन समाज की रचना करना चाहता है। शासन-रहित, दंड-निरपेक्ष समाज की योजना सर्वोदय-समाज के सामने भी है। क्रांति की प्रक्रिया में ही राज्य के समाज में विलीनीकरण होने के लिए यदि हम कोई

प्रबन्ध नहीं रखेंगे, तो क्रांति के बाद केन्द्रीय सरकार उसी प्रकार मजबूत बनती चली जायगी, जिस प्रकार आज रूस में है। आज रूस में सरकार तो भगवान् से भी अधिक शक्तिशाली बन गयी है, सर्वसाक्षी है, सर्वव्यापी है। इसलिए कानून की रट लगाने का यह रास्ता, हमें इस लक्ष्य की तरफ ले जानेवाला नहीं है। ठीक उसकी विषम दिशा में, विपरीत दिशा में, ले जानेवाला रास्ता है।

क्रांति का दर्शन

एक बात और स्पष्ट कर दूँ कि कानून के हम विरोधी नहीं हैं। यदि शस्त्र-शक्ति की विरोधी और दंड-शक्ति से भिन्न जन-शक्ति को जाग्रत करने में हम पूरी तरह से सफल नहीं हुए और अंततोगत्वा हमें कानून की शरण लेनी ही पड़ी, तो हम उसको बरदाश्त भले ही कर लें; लेकिन हमारे सामने जो नक्शा है, जो क्रांतिकारी समाज का दर्शन है, उस समाज में सरकार के कानून से हो समाज-परिवर्तन हो, इसकी गुंजाइश नहीं है। जनतंत्र में पहले जनमत-परिवर्तन और बाद में सरकार की सम्मति की मुहर, यह जन-क्रांति का अनुक्रम है। पहले कानून और बाद में जनमत-परिवर्तन, यह तो हुक्मशाही है, तानाशाही है।

'दान' और 'यज्ञ'

मैंने इस विवेचन में, कानून की रट हम क्यों नहीं लगाना चाहते, इसके कुछ कारण संक्षेप में रखे। अब रही हमारी 'दान' और 'यज्ञ' की प्रक्रिया। लोग कहते हैं, शस्त्र-शक्ति नहीं, दंड-शक्ति नहीं, लेकिन यह दान माँगना आपने क्यों शुरू कर दिया ? यह दान माँगना तो भीख माँगना है, याचना करना है। इस प्रकार गैर-जिम्मेदारी से बातें करना उस महापुरुष के साथ, विनोबा के साथ, एक बड़ा भारी और गंभीर अन्याय करना

होगा। विनोबाजी एक अद्यतन वैज्ञानिक दिमाग रखनेवाले महापुरुष हैं, एक संतुलित अध्ययन रखनेवाले तेजस्वी विद्वान् हैं। संस्कृत भाषा पर उनका विशेष प्रभुत्व है। शब्दों का व्याकरण, शब्दों की प्रवृत्तियाँ, शब्दों की प्रकृति वे अच्छी तरह जानते हैं। 'दान' शब्द का प्रयोग उन्होंने उसके परिशुद्ध अर्थ में किया है: 'दानं संविभागः।' बुद्धिमानों के मुकुटमणि भगवान् शंकराचार्य ने परिभाषा की है: 'सम्यक् विभाजनम् दानम्।' किसी भी वस्तु के न्याय्य-वितरण का नाम दान है। याचना करने का नाम दान नहीं है। भीख माँगने और दामन फैलाने का नाम दान नहीं है। अमीर के दरवाजे पर पहुँचकर हम उनसे यह नहीं कहते कि आप दान दीजिये, आपको मुक्ति मिलेगी, आपको स्वर्ग में ऊँची जगह मिलेगी। हम तो समझाते हैं कि भाई, एक कदम हम लोगों ने उठा लिया, जनता का राज्य बन गया। अब जिसका राज्य बन गया है, क्या वह जनता भूखी रह सकती है? जनता का राज्य बन जाय, राजनैतिक सत्ता और कानून, दोनों गरीब के हाथ में चले जायँ और गरीब भूखों मरे तथा मुट्ठी भर लोगों के हाथ में संग्रह रहे, क्या ये तीनों चीजें साथ-साथ चल सकती हैं? गरीबों का राज्य बने, गरीब भूखों मरे और कुछ व्यक्तियों के हाथ में संग्रह रहे, यह अब होनेवाला नहीं है। विनोबा का दान वह पुराना दान नहीं है, जो अमीर की संपत्ति और स्वामित्व का संरक्षण तथा संवर्द्धन करता था। यह दान तो संपत्ति के विसर्जन का संकेत है। यह दान तो संग्रह के प्रायश्चित्त का विधान है। इस दान की दीक्षा और अपरिग्रह के व्रत की दीक्षा विनोबाजी एक व्यक्तिगत नैतिक जीवन के मूल्य की हैसियत से नहीं दे रहे हैं। यह तो एक अभिनव समाज का क्रांतिकारी सामाजिक मूल्य है। यह दान का शानदार क्रांतिकारी अर्थ है।

विनोबा की सर्वतोभद्र 'दान'-नीति

बिहार में रंका नामक एक छोटी-सी रियासत है। वहाँ के राजा साहब ने विनोबा को घर पर बुलाया। जब सब लोग घर पहुँचे, राजा साहब ने विनोबाजी के सामने अत्यन्त नम्रतापूर्वक जमीन के सब कागजात रख दिये। कहने लगे, "बाबा, जितनी जमीन लेना चाहें, ले लीजिये। जितनी लौटाना चाहें, लौटा दीजिये।" एक लाख एकड़ पड़ती जमीन थी, सब-की-सब विनोबाजी ने ले ली और ढाई हजार एकड़ जेर-काश्त जमीन भी ले ली। बची हुई ढाई हजार एकड़ जमीन लौटा दी और मुस्कराते हुए कहने लगे, "राजा साहब, पहली किस्त लेकर जा रहा हूँ। जो जमीन लौटायी है वह आपके पास रहनी नहीं चाहिए। सन् १९५७ से पहले यह सब जमीन आप दे दें।" इसका आशय यह था कि जितनी जमीन खुद जोत सकेंगे, जितनी जमीन पर खुद-काश्त कर सकेंगे, उतनी ही जमीन उनके पास रहेगी। मजदूर लगाकर खेती करने का सपना अब छोड़ देने के सिवा कोई चारा नहीं। मालिक और मजदूर का भेद ही खत्म करना है। उत्पादन के साधन उत्पादकों को दिलाना है। अनुत्पादकों की मालकियत हटानी है। यह विनोबा का शानदार 'दान' है। यदि इसको भी आप भीख माँगना और याचना करना कहेंगे, तो भाइयो, इन्कलाब के लिए इससे अधिक शानदार कौन-सा दूसरा तरीका हो सकता है, जिसमें माँगनेवाले का गौरव होता है, देनेवाले की इज्जत बढ़ती है और पानेवाले की भी शान बढ़ती है—सबका समान विकास करनेवाला, सबका समान उत्थान साधनेवाला, यह सर्वतोभद्र दान का तरीका है।

कुछ और उदाहरण

बिहार में मेरा आँखों देखा हाल है। रामगढ़ के राजा ने

अपने परिवार में से तीन लाख एकड़ जमीन दे दी और विनोबा-जी की फौज के तुच्छ सिपाही की हैसियत से वे आज रात-दिन काम कर रहे हैं। राँची जिले में पालकोट रियासत में मैं काम कर रही थी। राजा साहब ने करीब हजार एकड़ जमीन हमको दान में दे दी। अपने बेटे और बेटी को लेकर मेरे साथ इस प्रकार रात-दिन मेहनत करते रहे कि कोई पहचान भी नहीं सकता था कि ये राजा-महाराजा हैं। कुरसैला में दरभंगा के महाराजाधिराज अपनी पत्नी सहित स्वयं चले गये। एक लाख बीस हजार एकड़ का दान विनोबा के चरणों में चढ़ा दिया! कहने लगे, "महाराज, आंदोलन की जो सेवा कर सकता हूँ, करने के लिए हाजिर हूँ।" गया जिले में जयप्रकाश बाबू के साथ भूदान के सिलसिले में मैं घूम रही थी। अमावा-टिकारी के राजकुमार ने हजारों एकड़ जमीन में से अपने परिवार के लिए सिर्फ तीस एकड़ जमीन रखकर बाकी सारी जमीन आंदोलन में दे दी और स्वयं सिपाही बनकर हम लोगों के साथ काम करने लगे।

रोमांचकारी अनोखी प्रक्रिया

आप कानून से जमीन छीन सकते थे; लेकिन क्या कोई कानून अमीर के हृदय में क्रांतिकारी आंदोलन के लिए, गरीब के लिए वह मुहब्बत पैदा कर सकता था, जो मुहब्बत विनोबा का यह दान पैदा कर रहा है? इसीलिए जवाहरलालजी को पार्लमेंट के सदस्यों की सभा में कहना पड़ा कि यह जो अमीरी और गरीबी के निराकरण में, अमीर का ही सहयोग और उसकी ही सम्मति प्राप्त करने का ढंग, विनोबा ने निकाला है, वह अपने ढंग का अनूठा और अपूर्व है। इतिहास में इससे पहले कभी ऐसा देखा नहीं गया। इसमें व्यक्तियों का सहयोग है और वर्ग का निराकरण है। आज तक संसार ने हमसे कहा कि बिना

वर्ग-संघर्ष के वर्ग-निराकरण हो नहीं सकता और यह कि सामाजिक जीवन की बुनियाद ही संघर्ष है। आज एक बागी सामने बढ़ा है, एक महान् योगी और प्रयोगी पुरुष का कदम आज भारतवर्ष में आगे बढ़ा है। वह कहता है कि वर्ग-निराकरण होगा—बिना वर्ग-संघर्ष के, बिना विद्वेष के, बिना कलह के। व्यक्तियों का सहयोग और वर्ग का निराकरण, गरीब का विधायक पुरुषार्थ और अमीर का सहयोग, यह जो क्रांति का तरीका है, दान की प्रक्रिया में ही जिसका रोमहर्षक स्वरूप समाया हुआ है, वह न सिर्फ सैद्धांतिक दृष्टि से, बल्कि विशुद्ध दृष्टि से भी हमें कारगर मालूम होता है।

लोकशाही का आधार

पंजाब-पेप्सू में मैं भूदान-दौरे में पिछले दिनों घूम रही थी। एक सिख भाई कहने लगे कि बिहारवाले तो भोले-भाले होते हैं, इसलिए उन्होंने जमीन दे दी। जरा पंजाब पधारिये, फिर पता चलेगा कि माँगने से जमीन किस प्रकार मिलती है। यहाँ तो लोग सिर्फ डंडों की भाषा समझते हैं। प्रेम की भाषा वे नहीं जानते। मैंने उनसे कहा, "भाई, यदि मनुष्य की मूलभूत सत्प्रवृत्ति पर आपकी श्रद्धा नहीं है, यदि मनुष्य की मूलभूत अच्छाई पर आपकी निष्ठा नहीं है, तो जनतंत्र बनाने के आप अधिकारी नहीं हैं। जनतंत्र में हर बालिग मर्द-औरत को वोट का अधिकार आपने किस भरोसे दिया है? इसी भरोसे न कि मनुष्य-मात्र के हृदय की मूलभूत प्रेरणा सद्प्रेरणा है, मूलभूत भाव सद्भाव है। अच्छाई की ओर हरएक अग्रसर होना चाहता है। यदि इस प्रकार की हमारी श्रद्धा नहीं है, तो अच्छे समाज का आदर्श हम सामने नहीं रख सकते। हमको तो हुक्मशाही की शरण लेनी चाहिए। फिर तो जनतंत्र को न हम प्राणवान् बना

सकेंगे और न हम जनतंत्र को कभी सफल ही बना सकेंगे।

भगवान् सबके भीतर है

एक बात और है। अमीर के हृदय में क्या शैतान बसा होता है ? भगवान् सिर्फ गरीबों के हृदय में है और अमीरों के हृदय में नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है। भारतीय संस्कृति की यह खूबी है, भारतीय सभ्यता की यह विशेषता है कि हमारी सभ्यता में हमने 'शैतान' की स्वतंत्र सत्ता कभी नहीं मानी। हमारे इतिहास में रावण की मृत्यु होती है तो उसके शरीर से चिन्मय ज्योति निकलकर भगवान् रामचंद्र प्रभु के हृदय में समा जाती है। कंस की, शिशुपाल की मृत्यु होती है तो उनके शरीरों से चिन्मय ज्योति निकलकर भगवान् गोपालकृष्ण के हृदय में समा जाती है। हम तो भगवान् को सर्वव्यापी, सर्वसाक्षी, सर्व-शक्तिमान् माननेवाले हैं। यदि अमीर के हृदय में ईश्वर को देखने की कोशिश नहीं करेंगे, तो हमारे भगवान् एकदेशीय बन जायँगे, सर्वदेशीय नहीं रह जायँगे।

एक हृदय-स्पर्शी घटना

सैद्धांतिक बातों को छोड़ दीजिये। मैंने उनको बिहार का अपना एक दृष्टांत सुनाया। उन दिनों मैं पैदल घूम रही थी। कालेज के दो-चार लड़के साथ थे। एक रियासत से हम लोग गुजर रहे थे। बहुत छोटी रियासत थी। साथियों ने कहा कि इस गाँव में जाना बेकार है। राजा बड़े दुष्ट हैं, शराबी हैं, जुआरी हैं, इनका हृदय-परिवर्तन क्या हो सकता है ? मैंने कहा कि जनता में जनार्दन का दर्शन करने निकले हैं, बगैर दर्शन के मन्दिर के बाहर से ही लौट जायँ ? विनोबा का आंदोलन मजाक नहीं है, मखौल नहीं है। इसके पीछे गंभीर मानव-निष्ठा की

बुनियाद है, मानव-निष्ठा का अधिष्ठान है। आज मानव-निष्ठ समाज-दर्शन की और मानव-निष्ठ क्रांति की प्रक्रिया की हमें आवश्यकता है।

युगपुरुष का उदय

जमाने में जो आवश्यकता होती है, उसको पूरी करने के लिए कोई-न-कोई महापुरुष आगे बढ़ता है। एक जमाना था, जिसमें सत्यनिष्ठा की आकांक्षा थी। सत्यनिष्ठा सगुण और साकार हो उठी, जिसको हमने भगवान् रामचंद्र महाप्रभु कहा था। एक जमाना था, जब निष्काम कर्मयोग की आकांक्षा जनता के हृदय में नाच उठी। निष्काम कर्मयोग सगुण और साकार हो गया, जिसको हमने भगवान् गोपालकृष्ण कहा। आज मानव-निष्ठ दर्शन की आकांक्षा जमाने में है। मानव-निष्ठा, सगुण-साकार हो उठी, जिसको मैं संत विनोबा भावे कहती हूँ।

बहन राखी बाँधकर ही लौटेगी

साथी नहीं माने, दूसरे गाँव में चले गये। मैं अकेली राजा साहब की ड्योढ़ी पर पहुँची। दोपहर का समय था। वे बरामदे में आराम से लेटे हुए थे। मैंने दरवाजा खटखटाया। पूछा गया, "कौन है?" मैंने कहा, "आपकी बहन आयी है।" जब सुना कि बहन आयी है, तो चौंक पड़े। आगे बढ़कर इस तरह देखने लगे कि कहीं कोई पगली तो दरवाजे पर नहीं पहुँच गयी! पूछने लगे कि यहाँ तक कैसे पहुँच पायीं? गाँववालों ने तुम्हें बताया नहीं कि मैं किस प्रकार का शैतान आदमी हूँ? भला, मेरे पास किसी भले आदमी का कोई काम हो सकता है? तुम एक नवजवान लड़की हो, तुम्हारी भलाई इसीमें है कि तुम लौट जाओ। मैंने कहा, "भाई साहब, आप दुष्ट हैं या शराबी हैं या जुआरी हैं,

इससे मुझे क्या मतलब ? एक बात का जवाब दीजिये। आपके कोई माँ-बहन है या नहीं ? एक संत का संदेश लेकर, एक फकीर का पैगाम लेकर, दरवाजे पर पहुँची हूँ। इस तरह लौटनेवाली यह बहन नहीं है। भाई की कलाई में भू-दान-यज्ञ-आंदोलन के विचार की राखी बाँधकर ही यह बहन लौटेगी, पहले नहीं।"

अन्तर्यामी के दर्शन

दुनिया ने उनको दुष्ट कहा था, शैतान कहा था; लेकिन उनकी आँखों में आँसू छलक पड़े। आँसू क्या थे वे, उनकी सोयी हुई भलाई जाग उठी, उनकी मानवता उमड़ पड़ी। काफी तीर्थाटन मैंने बचपन से किया। लेकिन उस दिन उस सज्जन के आँसुओं में भगवान् का जो साक्षात्कार मैंने पाया, भगवान् का जो मंगलमय साक्षात्कार और दर्शन मैंने अनुभव किया, वह न हरिद्वार-ऋषिकेश में किया था, न कहीं गया में या नवद्वीप और जगन्नाथ में पाया था। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "बहन, अन्दर पधारिये।" सभा का आयोजन भी किया। सभा में ५०० एकड़ जेरकाश्त जमीन में से १२५ एकड़ जमीन उन्होंने दान में दे दी। गाँववालों ने भी जमीन दी। चार घंटे के भीतर २१५ एकड़ जमीन का दान लेकर मैं उस गाँव से लौटी। इसलिए यह कहना तो बेकार है कि लोग दान नहीं देते। जो परमात्मा प्रह्लाद के लिए खंभे में से प्रकट हो सका, वह हम लोगों के लिए, गरीबों के लिए, अमीर के हृदय में से प्रकट होनेवाला है, प्रकट हो रहा है।

आध्यात्मिक शक्ति का चमत्कार

जब विनोबा ने तेलंगाना में आन्दोलन शुरू किया और कहा, "माँगने से मैं जमीन की समस्या हल करूँगा", तब सुशिक्षित

लोग मजाक करने लगे, खिल्ली उड़ाने लगे। सुशिक्षितों का तर्क, कुतर्क, वितर्क चलता गया। पर संत का कदम बढ़ता गया और कदम-कदम पर धरती बरसती गयी। आज दो-ढाई वर्षों से अकेला घूमता हुआ यह फकीर लाखों एकड़ भूमि इकट्ठी कर रहा है। क्या क्रांति के इतिहास में इसका कोई मूल्य आपके पास नहीं है? रूस में क्रांति के लिए अस्सी साल लग गये, चीन में क्रांति सफल बनाने के लिए बत्तीस साल लग गये और यहाँ ढाई वर्षों में हिन्दुस्तान के सारे वायु-मंडल में विनोबा ने बिजली दौड़ा दी है। सभी राजनैतिक पक्षों का सैद्धांतिक समर्थन उनको प्राप्त हुआ है। आज किसीका इस आन्दोलन से विरोध नहीं है। विनोबाजी के दान की प्रक्रिया में यह एक ऐसी अपूर्व शक्ति है कि उसमें आध्यात्मिक शक्ति का ही चमत्कार दिखाई पड़ता है।

गरीब का दान : हमारी शक्ति का स्रोत

आप कहेंगे कि अमीर से आप दान लेते हैं सो तो ठीक है; लेकिन गरीब से दान क्यों लिया जाता है? वास्तव में गरीब से जो दान हमें मिलता है और हम माँगते हैं, वही हमारे आन्दोलन की शक्ति का स्रोत है। आप मुझे बतलाइये कि आखिर समाज में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, जिसकी कोख से यह अमीरी और गरीबी निर्माण हुई है, किसके पुरुषार्थ पर समाज में निर्भर है? गरीब तो करोड़ों की तादाद में हैं। १०० में से लगभग ९५ गरीब हैं और ५ अमीर हैं। ये ९५ गरीब यदि अपने ही शोषण में अमीर को मदद नहीं देंगे, यदि अपने ही ऊपर अन्याय करने में अमीर की मदद नहीं करेंगे, तो क्या आप सोचते हैं कि मुट्ठी भर अमीर अपनी अमीरी को कायम रख सकेंगे? तिलक महाराज ने एक दिन भारतवासियों से कहा था कि डेढ़ लाख अंग्रेज चालीस करोड़ भारतीयों पर छह सौ मील दूर से राज्य करते हैं, इसमें

अंग्रेजों की बहादुरी नहीं है। भारतीयों में ही आत्म-विश्वास का अभाव है, धैर्य और साहस का अभाव है। उन्होंने कहा कि उठो, खड़े हो जाओ और कहो कि 'स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है', जिसे या तो प्राप्त करूँगा या मर मिटूँगा। आज विनोबा गरीबों से कहते हैं कि उठो, सीना तानकर खड़े होकर कह दो 'भूखी जनता अब न सहेगी, धन और धरती बँटकर रहेगी।' यदि करोड़ों गरीब इकट्ठे हो जायँगे, संगठित हो जायँगे, तो अमीरों के लिए न कानून बनाना पड़ेगा, न मुट्ठी भर अमीरों के ऊपर हथियार ही उठाना पड़ेगा और न उनकी तरफ आँख उठाकर देखने की ही आवश्यकता पड़ेगी। गरीबों के संगठन मात्र में गरीबी और अमीरी का अन्त करने की शक्ति है। इसीमें पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की मौत है। इसलिए गरीबों से दान लेना एक वैज्ञानिक तरीका है।

गरीबी-अमीरी की जड़

दूसरी एक बात और भी है। आखिर गरीबी-अमीरी पैदा कहाँ से होती है? गरीबी और अमीरी की जड़ या शोषण की प्रवृत्ति की जड़, निजी मालकियत और मिल्कियत की लालसा में है। आज जो गरीब है, वह क्या इसलिए गरीब है कि अपरिग्रह चाहता है? यह बात तो है ही नहीं। वह तो अमीर बनना चाहता है, लेकिन अमीर बनने की कोशिश में वह असफल रह जाता है। असफल अमीर का नाम गरीब है और सफल गरीब का नाम अमीर है। जब तक मनुष्य के हृदय में निजी मालकियत और मिल्कियत का लालच रहेगा, जब तक संग्रह की आकांक्षा और स्वामित्व का प्रलोभन रहेगा, तब तक शोषण की जड़ समाज में से कटनेवाली नहीं है। गरीब और

अमीर सबके हृदय से स्वामित्व की इस आकांक्षा और संग्रह की लालसा को हटाना पड़ेगा ।

मंत्र-द्रष्टा युग-पुरुष

विनोबा एक ऋषि हैं । 'ऋषयो मंत्र-द्रष्टारः ।' ऋषि मंत्र को देखनेवाले और मंत्र को सिद्ध बनानेवाले होते हैं । विनोबाजी ने देख लिया कि यदि हम वर्ग-विहीन, शोषण-रहित समाज बनाना चाहते हैं, समता का राज्य, राम-राज्य का निर्माण करना चाहते हैं, तो सिर्फ पूँजीवाद को हटाना, अन्य किसी वाद को या गांधीवाद को लाना पर्याप्त नहीं होगा । मनुष्यमात्र के हृदय से ही संग्रह की अभिलाषा को हटाना पड़ेगा । इसके लिए संग्रह और स्वामित्व के बारे में विनोबाजी समाज में एक नया रुख पैदा कर रहे हैं ।

दरिद्रनारायण का प्रसाद

तीसरी बात यह है कि गरीब से जो भूदान हमें मिलता है, उसका नैतिक प्रभाव अमीर पर पड़ता है । मैं राँची जिले में गुमला सब-डिवीजन में काम कर रही थी । कोदरो नाम के गाँव में चली गयी । जमीनवाले भाई आगे बढ़े । एक भाई ने पचास एकड़ में से तेरह एकड़ का दान दिया, दूसरे भाई ने पचीस में से तीन एकड़ का दान दिया । जब सभा से लौटने को हुई, तो पेड़ की ओट से एक बहन आगे बढ़ी । चीथड़ों में लिपटा हुआ बदन था । कहने लगी कि यह चालीस डिसमल जमीन है, ले लीजिये । साथ जो भाई थे, हँसने लगे । कहने लगे, बहनजी, यह तो मुसम्मात है, नौकरानी है, हमारे घरों में बर्तन माँजती है, सिर्फ चालीस डिसमल जमीन इसके पास है, इसके दो बेटियाँ भी हैं । इससे आप क्या लीजियेगा ? मैंने कहा कि बहन, आपसे हम दान

क्या लें, आप यह चालीस डिसमल जमीन विनोबा का प्रसाद समझकर वापस ले लीजिये। आप यदि जमीन जोतना चाहेंगी, तो जब बँटवारा होगा, आपको भी हम जमीन दिला देंगे। वह रोने लगी, हाथ जोड़कर कहने लगी, "मैं गरीब हूँ, इसलिए मेरा दान लौटा रही हो? अमीर का दान तो ले लिया और मुझ गरीब का दान लौटा रही हो?" आगे वह मुझसे पूछती है, 'क्या विदुर का साग भगवान् को प्रिय नहीं था? क्या सुदामा के तंदुल भगवान् को प्रिय नहीं थे, जो आज मुझ गरीब का दान लौटाया जा रहा है?" उसको मैं क्या जवाब देती? मैं कायल हो गयी। चरणों में झुककर उसे मैंने प्रणाम किया और दरिद्रनारायण का वह प्रसाद लेकर मैं आगे बढ़ी।

दूसरों को प्रेरणा मिली

दूसरे दिन सुबह उठी तो मेरे पड़ाव के सामने उस गाँव के सभी भूमिधारी भाइयों को मैंने पाया। जिसने दान दिया था, वह कहने लगा कि बहनजी, रात भर सो नहीं सका। मुसम्मात ने उठकर चालीस डिसमल जमीन दे दी। पचास एकड़ में से मैंने सिर्फ तेरह एकड़ दी, यह ठीक नहीं हुआ। सत्रह एकड़ का दान और लिख लीजिये। जिसने पचीस एकड़ में से तीन एकड़ का दान दिया था, उसने चौदह एकड़ जमीन और दी। बाकी भूमिधारी भाइयों ने भी थोड़ी-थोड़ी जमीन और दे दी। उस मुसम्मात के दान का यह प्रभाव रहा।

गरीब से दान क्यों लिया जाता है, इसका और एक वैज्ञानिक कारण निवेदन करना चाहती हूँ। अमीरों को हटाने के बाद यह जो छोटे-बड़े गरीब रहेंगे—कोई पाँच एकड़ का मालिक, कोई दस एकड़ का मालिक, कोई पन्द्रह एकड़ का मालिक—सबको एक सतह पर लाने के लिए हम क्या करेंगे? इसके बारे

में भी तो सोचना पड़ेगा। जब रूस में अमीरों को हटाया गया तो स्टालिन के सामने 'कुलक्स' का याने छोटे-छोटे किसानों का सवाल आया। भूमि जब्त कराने के लिए और सामुदायिक खेती के लिए, किसान तैयार नहीं थे। स्टालिन उनको मना नहीं सका। नतीजा यह हुआ कि चालीस लाख किसानों की हत्या करनी पड़ी, उनका खून बहाना पड़ा। आज अमीरों को हटाने के लिए एक लड़ाई लड़ें, कल जो छोटे-छोटे गरीब हैं उनमें 'विधायक ऐक्य-भावना' का निर्माण करने के लिए क्या फिर दूसरा क्रांतिकारी आन्दोलन छेड़ा जायगा ? इसलिए आज गरीबों में एक-दूसरे के लिए हमदर्दी पैदा करने की योजना भी हमको इसी आन्दोलन में करनी पड़ रही है।

सभी बड़े-छोटे शोषक

सब चीजों का तात्पर्य और सार एक ही है। शोषण की प्रवृत्ति आज समाज में सार्वत्रिक है। न कोई गरीब है, न कोई अमीर। हम और आप, सभी शोषक हैं। कोई छोटा शोषक है, कोई बड़ा शोषक। पाँच एकड़वाले की तुलना में पचीस एकड़-वाला अमीर और शोषक बन जाता है। पचास एकड़वाले की तुलना में सौ एकड़वाला शोषक और अमीर बन जाता है। हर कोई अपने से गरीब को नीचे दबाने की कोशिश करता है—अपने से जो गरीब है उसको कुचलने की, रौंदने की कोशिश करता है। इसलिए दान भी सार्वत्रिक होगा। हर व्यक्ति के हृदय से शोषण की वृत्ति हटानी पड़ेगी।

बँटवारे के तरीके का रहस्य

जो जमीन हमको दान में मिलती है, वह जिस गाँव में मिलती है, उसी गाँव के भूमिहीनों में बाँटी जानी चाहिए। यह

बँटवारे की योजना का पहला नियम है। बँटवारा या वितरण विनोबाजी की योजना के अनुसार होता है, फिर चाहे बँटवारा कोई भी करे। बँटवारा करने के लिए विनोबाजी पक्ष-निरपेक्ष ही नहीं, पक्षातीत वृत्ति के व्यक्तियों को नियुक्त कर लेते हैं। उनका एक बोर्ड बनाया जाता है। उस बोर्ड में सरकार के नुमाइंदे रहते हैं। सरकार उसको मंजूरी दे देती है। वितरण के लिए कानून बनाया जाता है। मसलन हैदराबाद रियासत में, मध्य-प्रदेश में, उत्कल-प्रदेश में, उत्तर-प्रदेश में वितरण के लिए कानून बनाये गये हैं और हिन्दुस्तान के दूसरे सूबों में कानून बनाये जा रहे हैं। ये जो बोर्ड बनते हैं, वे जिलावार समितियाँ नियुक्त कर देते हैं। फिर बोर्ड के सदस्य और सरकारी कर्मचारी, तहसीलदार, पटवारी इत्यादि सरकारी कागजों को लेकर उस इलके में चले जाते हैं, जिस इलाके में वितरण करना होता है। आठ-दस दिन वहाँ रहकर उन लोगों को जमीन का सर्वे करना पड़ता है। निरीक्षण करना पड़ता है, भूमिहीन परिवार कितने हैं, जमीन किस-किसकी है, यह सब देखने के बाद, जाँच करने के बाद, सात दिन की नोटिस दी जाती है और आम सभा में बँटवारा किया जाता है। आम सभा में ही बँटवारा होगा, यह वितरण की योजना का दूसरा नियम है। उस सभा में बेजमीन भाई खड़े हो जाते हैं। बेजमीन से मेरा मतलब उनसे है, जिनके पास एक चप्पा भर भी जमीन नहीं, जो जमीन जोतते हैं, लेकिन मालिक नहीं और जिनके पास दूसरा कोई रोजगार नहीं। ऐसे व्यक्तियों को फी परिवार तरी जमीन एक एकड़ और खुश्क जमीन पाँच एकड़ के हिसाब से बाँटी जाती है। परिवार से मेरा मतलब संयुक्त परिवार से नहीं, एक स्वतन्त्र परिवार से है। जमीन हल्की हो, तो ज्यादा भी देनी पड़ती है। हैदराबाद रियासत में हमको खुश्क जमीन कहीं-कहीं बीस-इक्कीस एकड़

तक देनी पड़ी। उत्तर प्रदेश में तरी जमीन चार एकड़ तक, तो खुश्क जमीन तेरह-चौदह एकड़ तक भी देनी पड़ी। लेकिन एक औसत, एक मोटा हिसाब मैंने आपके सामने पेश किया। जमीन देते समय उस किसान पर तीन शर्तें लगायी जाती हैं। पहली शर्त यह कि जमीन बेचने का उसको अधिकार नहीं रहेगा। आपको मालूम होगा कि उत्कल में, छोटा नागपुर में सरकार ने आदिवासियों को कुछ जमीन बाँट दी। शराब के पीछे, जुए के पीछे चार-छह महीनों में उन्होंने जमीनें बेच डालीं। फिर से नंगे-भूखे बेहाल हुए। इसलिए पहली शर्त हमारी यह होगी कि जमीन बेचने का अधिकार उसको नहीं रहेगा। साहूकार के यहाँ रेहन करने का, गिरवी रखने का और जमीन पड़ती रखने का अधिकार उसे नहीं रहेगा। फर्ज कीजिये, आज किसी किसान को हम जमीन देते हैं, दो-तीन महीनों के बाद उसकी मृत्यु हो जाती है। यदि उसके बेटे जमीन जोतनेवाले होंगे, तो उस जमीन पर उनका अधिकार होगा। यदि बेटे जमीन जोतनेवाले नहीं होंगे, शहरों में कहीं नौकरी करनेवाले होंगे, तो बेटों का जमीन पर अधिकार नहीं हो सकेगा। जमीन समिति को लौटायी जायगी और दूसरे बेजमीन परिवार को दिलाई जायगी। मकसद हमारा यह है कि जमीन जोतनेवाले के पास जमीन रहे। उत्पादन करनेवाले के पास उत्पादन के साधन रहें।

साधन-दान

इस जमीन के साथ-साथ जहाँ संभव हो, खेती के औजार भी हम दे देते हैं। हल, बैलजोड़ी, बीज, सिंचाई का प्रबंध न हो, तो कुएँ खुदवाना इत्यादि सारी मदद भूदान-यज्ञ-समिति यथासंभव करती है। इसके लिए साधन-दान का कदम उठाया

गया है। लोग कहते हैं कि क्या जमीन के बँटवारे से ही क्रांति होगी ? यह तो हमारा दावा कभी नहीं था।

जमीन का बँटवारा पहला कदम है

हिन्दुस्तान कृषि-प्रधान देश है। इसलिए कृषि-प्रधान देश में क्रांति की विभूति किसान होगा। जहाँ अस्सी फीसदी लोग देहात में रहते हैं, वहाँ पहले देहातों की समस्या हल होगी, भूमि का पुनर्वितरण होगा और बाद में जो बीस प्रतिशत लोग बचते हैं, उनकी समस्याएँ सुलझाई जायँगी। यह तो निवेदन करने की आवश्यकता नहीं है कि जिस प्रकार जमीन पर से अनुत्पादक की मालकियत को हम हटाना चाहते हैं, उसी प्रकार उद्योग-धंधों के क्षेत्र में से भी अनुत्पादक की मालकियत जब तक हम नहीं हटायेंगे, गरीबी और अमीरी की जड़ पूरी तरह समाज में से नष्ट नहीं होगी, हमारा कदम रुकनेवाला नहीं है। इस मुल्क में अहिंसात्मक ढंग से, सत्याग्रह की नीति से, या तो गरीबी-अमीरी खत्म होगी या फिर हम खत्म होंगे, इस संकल्प के साथ विनोबाजी और उनके साथी अपना कदम दृढ़तापूर्वक, निर्भयतापूर्वक, संयमपूर्वक और निर्वैर वृत्ति से आगे बढ़ा रहे हैं। शहरों के बारे में हमारी योजना क्या है ?

कारखाने और बड़े उद्योगों पर लोक-स्वामित्व

ये जो बड़े-बड़े उद्योग-धंधे हैं, कारखाने हैं, खदानें हैं, फैक्टरीज इत्यादि हैं, इनके बारे में एक बात तो यह है कि ये बाँटे नहीं जा सकते। जमीन का सौ एकड़ का एक टुकड़ा है। दस-दस के दस टुकड़े कर दें और बाँट दें तो टुकड़ों के बँटवारे के साथ, जमीन के वितरण के साथ, मालकियत का वितरण हो जाता है, बँटवारा हो जाता है। कारखाने में चार मालिक हैं,

उनकी जगह यदि दो हजार मजदूरों को मालिक बना दें, तो मालकियत का बँटवारा नहीं होता, गुणाकार होता है। कारखाने बाँटे नहीं जा सकते, यह उनके बारे में दिक्कत है। उन पर समाज की मालकियत कायम करनी होगी। 'जाति की मालकियत' हम कायम करेंगे। उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करेंगे या समाजीकरण, यह एक स्वतंत्र विषय है। इसलिए विस्तारपूर्वक उसकी मीमांसा करना यहाँ संभव नहीं है।

अनुत्पादक व्यवसायों का निराकरण

इसके अलावा शहरों में अनुत्पादक व्यवसाय हैं। आज शहरों में रहनेवाले जो लोग हैं, उनमें ज्यादा-से-ज्यादा अनुत्पादक व्यवसाय करनेवालों की संख्या है। किराये पर, मुनाफे पर, दलाली पर, ब्याज पर, ठेके पर जीना, ये सब रोजगार बन गये हैं। यह तो छोड़ दीजिये। लोगों के गुनाहों पर जीना भी रोजगार बन गया है; हम उन्हें वकील कहते हैं। लोगों की बीमारियों पर जीने का भी पेशा बन गया है; हम उन्हें डाक्टर कहते हैं। बीमार तो बेचारा बीमारी के मारे परेशान है, मुसीबत में फँसा हुआ रहता है; लेकिन डाक्टर के लिए तो वह वित्तोपार्जन का सुनहला अवसर है। गुनहगार तो परेशान है गुनाह के मारे; लेकिन वकील साहब को तो ज्यादा फीस लेने के लिए मौका मिलता है। ये जो पेशे हैं, सब समाजविरोधी पेशे हैं। समाज में जब तक इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था रहेगी, तब तक एक की आपत्ति दूसरे के लिए सुंदर अवसर बनकर खड़ी हो जाती है। एक की मुसीबत जब तक दूसरे के लिए मौका और अवसर का रूप धारण करेगी, तब तक समाज में से शोषण का अंत नहीं हो सकेगा, समता का राज्य हम निर्माण नहीं कर सकेंगे। इसलिए इन अनुत्पादक व्यवसायों को रोजगारों के पेशों के रूप में खत्म

करेंगे और सेवा के रूप में अवशिष्ट रखेंगे। यह हमारी योजना उनके बारे में है। इसके लिए संपत्तिदान का तीसरा कदम उठाया गया है और चौथा कदम श्रमदान का है।

श्रम-दान

आज उत्पादक परिश्रम की इज्जत समाज में नहीं है। इसलिए सब परिश्रम टालने की कोशिश करते हैं। हम और आप सब करते हैं। परिश्रम में किसीको आनन्द नहीं आता। आनन्द का अनुभव आज मजदूर और किसान भी नहीं कर रहे हैं। वे श्रम इसलिए नहीं करते कि वे धर्मनिष्ठ हैं, लेकिन वे लाचार हैं, इसलिए श्रम करते हैं। उत्पादक-परिश्रम का जब तक समाज में मूल्य नहीं रहेगा, उत्पादक-परिश्रम की कोई प्रतिष्ठा नहीं होगी, तब तक हम परिश्रम टालने की कोशिश करेंगे। टालने की कोशिश करेंगे तब तक एक वर्ग श्रमजीवी का और दूसरा वर्ग सुखजीवी का रहेगा। वर्ग रहेंगे तब तक शोषण रहेगा और शोषण रहेगा तब तक राम-राज्य का निर्माण नहीं होगा। इसलिए हर व्यक्ति के हृदय में उत्पादक-परिश्रम की प्रतिष्ठा निर्माण करनेवाला श्रमदान का चौथा कदम विनोबाजी ने बढ़ाया। इन संकेतों के बारे में बहुत ही संक्षेप में मैं जिक्र कर सकती हूँ। इससे ज्यादा इतने विशाल आन्दोलन के सभी पहलुओं पर यहाँ प्रकाश डालना संभव नहीं है।

बुद्धि-दान और समय-दान

अब, विनोबा ने बुद्धि-दान और समय-दान का कदम बढ़ाया है। आप जानते हैं, विनोबाजी एक ऐसे निस्पृह पुरुष हैं, जिनके हृदय में न सत्ता की अभिलाषा है, न संपत्ति का मोह है, न सम्मान का प्रलोभन है। सारा संसार उनके लिए तृणवत् बन

गया है। ऐसे एक योगी पुरुष का यह आन्दोलन है। उन्होंने उसे योगारूढ़ बुद्धि से शुरू किया है। यह वाद का या पक्ष का आंदोलन नहीं है। यह पक्ष-निरपेक्ष और पक्षातीत आन्दोलन है। वाद तो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से तोड़नेवाली चीज है। 'युज्यते इति योगः' एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से जोड़नेवाला, सह-जीवन के विज्ञान का और सह-जीवन की कला का नाम ही 'योग' है। विनोबा का यह आन्दोलन गरीब-गरीब को और गरीब-अमीर को जोड़नेवाला है, भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्षों को अपने-अपने पक्ष-द्वेषों को, व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष को भुलाकर नव-राष्ट्र के निर्माण में कंधे-से-कंधा लगाकर काम करने का मौका देनेवाला एक सुंदर आंदोलन है। इसमें मदद करना, यथा-शक्ति, यथाबुद्धि, स्वेच्छा से अपने पास जो कुछ हो समर्पण कर देना, सबका फर्ज है। इसलिए मेरा अनुरोध है कि विनोबा के आंदोलन में आप लोग मदद कीजिये।

पहली मदद तो बुद्धि-दान की चाहते हैं। विचार-दान की भीख आप लोगों से माँगते हैं। तटस्थ बुद्धि से, सारे पक्षाभि-निवेशों को छोड़कर, वादों का आग्रह छोड़कर, आप इस आंदो-लन के बारे में सोचें। हमारा विरोध हो, सैद्धांतिक मतभेद हो, तो बात अलग है। लेकिन यदि सैद्धांतिक मतभेद न हो, तो हम तटस्थ प्रेक्षक के रूप में नहीं रह सकते। जमाना तेज रफ्तार से आगे बढ़ रहा है। संसार में आज जनतंत्र सुरक्षित रखने के लिए सारी दुनिया हिन्दुस्तान की ओर देख रही है। इन तीन-चार वर्षों में यदि हम जनतंत्र को सत्याग्रह की नीति द्वारा सुरक्षित और साबित नहीं बना पायेंगे, गरीबी और अमीरी को नहीं मिटा सकेंगे, तो न मालूम हिन्दुस्तान में क्या नजारा देखने को मिलेगा! यह विनोबा की वाणी नहीं, यह तो ईश्वर का संकेत है, जो विनोबा की वाणी में समा गया है। ये भारतमाता

के अरमान विनोबा की वाणी में समा गये हैं। यह दान विनोबा नहीं माँग रहा है, यह तो समय का तकाजा है। यह समय की माँग है। इसलिए आप सब लोग सर्वत्र इस आन्दोलन का विचार-प्रचार करने में, कार्यकर्ताओं को मदद देंगे, ऐसी उम्मीद है। आपको जमीन कितनी मिलती है और कितनी नहीं, इसका हिसाब कोई मूल्य नहीं रखता। इस जमीन को अब विनोबा के पास जाने से कोई रोक नहीं सकता। जमीन चल पड़ी है, गंगा की धारा की भाँति बहने लगी है, लोक-राज्य की परिणति लोक-स्वामित्व में होने ही वाली है। जब जनता का राज्य बन जायगा, तो मुट्ठी भर लोगों का संग्रह रहनेवाला नहीं है। यह बतलाने के लिए अब किसी दार्शनिक और ज्योतिषी की जरूरत नहीं। हम इतना ही चाहते हैं कि जमीन का जो वितरण होगा, वह एक नये क्रान्तिकारी समाज का आधारभूत कदम साबित हो, नये समाज का अधिष्ठान बन जाय। नये अर्थशास्त्र का, नये जीवन का दर्शन जनता के सामने इस प्रक्रिया के द्वारा रखा जाय। जमीन के बँटवारे के साथ-साथ हमको ग्रामोद्योग बढ़ाने पड़ेंगे। फी एकड़ पैदावार किस प्रकार बढ़ानी है, यह लोगों को सिखाकर एक एकड़ और पाँच एकड़ जमीन के खण्डों को आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक और लाभदायक बनाना पड़ेगा। हमारे विधायक पुरुषार्थ को आज जमाने ने आह्वान किया है।

सबै भूमि गोपाल की।
सम्पति सब रघुपति कै आही॥

हमारे प्रकाशन

साम्ययोग का रेखाचित्र

(विमला)

प्रस्तुत पुस्तिका में साम्यवाद और साम्ययोग की मूल्यग्राही तात्त्विक तुलना २४ सूत्रों में की गयी है। पुस्तिका कार्यकर्ताओं, विद्यार्थियों और राजनैतिक-कार्य करनेवालों के बड़े काम की है। दाम : दो आना।

भूदान-आरोहण

(नारायण देसाई)

भूदान-यज्ञ अब देश की रग-रग में व्याप्त हो गया है। आंदोलन के उद्भव और विकास का सारगर्भित और मूल्यग्राही विवेचन सजीव भाषा में किया गया है। यह पुस्तक जितनी कार्यकर्ताओं के लिए उपयोगी है, उतनी ही पढ़े-लिखे नगरवासियों तथा ग्रामीण जनता के लिए भी उपादेय है।

दाम : आठ आना।

क्रांति का अगला कदम

(दादा धर्माधिकारी)

"दादा प्रत्येक विचार कसौटी पर कसकर ही प्रस्तुत करते हैं। इससे उनका भाषण श्रोता पर आक्रमण जैसा नहीं होता, बल्कि उसे प्रसन्न कर देता है। ...... युक्ति-बुद्धि से युक्त तथा सेवा की भावना से ओतप्रोत कार्यकर्ताओं के निर्माण में दादा की यह रचना उपयोगी सिद्ध होगी।" विनोबाजी के इन शब्दों के बाद और कुछ कहने को नहीं रह जाता।

दाम : चार आना।

स्त्री-जीवन

(दादा धर्माधिकारी)

लेखक ने नारी-समस्या पर काफी चिन्तन किया है। प्रस्तुत पुस्तिका में उनके इस विषय के क्रांतिकारी लेखों और विचारों का संकलन किया गया है। भारत में नारी जाति की स्थिति, मातृ-प्रतिष्ठा आदि को समझने के लिए यह पुस्तिका क्रांतिकारी होते हुए भी प्रेरक और मार्गदर्शक है।

दाम : चार आना।

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

राजघाट, काशी